Shri Vateshwar Acharya Virchit

VATESHWAR SIDDHANT

(Sanskrit, Hindi, Vijnan Bhashya Upapatti Sahit)



Edited by

Acharyavar Ram Swarup Sharma

and

Pandit Mukund Mishra Jyotish Acharya



Published by

Indian Institute Of Astronomical & Sanskrit Research

Gurudwara Road, Karol Bagh, NEW DELHI-5

Published by

Indian Institute of Astronomical

an Sanskrit Research

Gurudwara Road, New Delhi-5

Aided by

Ministry of Scientific Research and Cultural Affairs of
The Government of India.



First Edition 1962

Price : **Rupees Forty only.**

Printed by

Manager, Padmshree Prakashan
a. the Everest Press, Delhi

श्रीवटेश्वराचार्य-विरचितः

वटेश्वरसिद्धान्तः

संस्कृत-हिन्दी-विज्ञान-भाष्योपपत्ति-समलंकृतः

सम्पादकौ

आचार्यवर पंडित रामस्वरूप शर्मा

संचालक :

ज्योतिषाचार्य पंडित मुकुन्दमिश्रः

उपसंचालक :



प्रकाशक :

इंडियन इंस्टीट्यूट आफ आस्ट्रानोमिकल

एण्ड संस्कृत रिसर्च

प्रकाशक—
इण्डियन इन्स्टीट्यूट आफ आस्ट्रानोमिकल एण्ड संस्कृत रिसर्च,
२२३६, गुरुद्वारा रोड, करोलबाग, नई दिल्ली—५

भारत सरकार के वैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक विभाग के
अनुदान से प्रकाशित

प्रथम संस्करण १९६२

मूल्य चालीस रुपए

मनेजर पथश्री प्रकाशन द्वारा एवरेस्ट प्रेस, दिल्ली में मुद्रित

Foreword

The Indian Institute of Astronomical and Sanskrit Research is now presenting its first publication in the shape of the first volume of VATESHWAR SIDDHANT to facilitate the study of the science of Astronomy as known to the ancient people of India. We hope that it will be found useful by the Learned Societies interested in that subject. The publication has been made possible by the munificence of the Governments of India and of Jammu and Kashmir for which our grateful thanks are due to them and also to Professor Humayun Kabir, the Honourable Minister for Scientific Research and Cultural Affairs and to Bakshi Ghulam Mohammad, the Honourable Prime Minister of Jammu & Kashmir. Our thanks are also due to the Governments of Nepal, Uttar Pradesh, Rajasthan and Madhya Pradesh and to many other persons who have kindly helped in the good cause by becoming patrons and members and by giving donations and valuable advice and suggestions.

Brijlal Nehru,
President.
Indian Institute of Astronomical
[illegible]

NEW DELHI,
1-3-1962

मङ्गलाचरण—

"ब्रह्मकुशशिबुध-भृगु-रवि-कुज-गुरु-कोण-भगणान्नमस्कृत्य ।
आर्यभटस्त्विह निगदति कुसुमपुरेऽभ्यर्चितं ज्ञानम् ॥"

के अनुसार ही अपने सिद्धान्तग्रन्थ ग्रहवक्षारियतिक्रमानुसार वटेश्वराचार्य ने भी मङ्गलाचरण किया है जो कि यथोलिखित है—

"ब्रह्मावनीन्दु-बुध-शुक्र-दिवाकरार-जीवार्क-सूनु-भगुरुन् पितरौ च नत्वा ।
ब्राह्मं ग्रहर्क्ष गणित महदत्तसूनुर्वक्ष्येऽखिलं स्फुटमतीव वटेश्वरोऽहम् ॥"

लेकिन आर्यभटगीतिकापाद मे एक युग ४३२०००० मे भूभगण=१५८२२३७५०० इतना होता है यह कह कर "अनुलोमगतिर्नौस्थ पश्यत्यचलं विलोमग यद्वत् । अचलानि भानि तद्वत्समपश्चिमगानि लङ्कायाम्" इससे भूभ्रमण स्वीकार करते हैं, लेकिन वटेश्वराचार्य भूभ्रमण को नही मानते है, उसका (भूभ्रमण) खण्डन भी नही करते हैं। आर्यभटीय के टीकाकार परमेश्वर कहते हैं कि वस्तुत 'स्थिरैव भूमि' ब्रह्मगुप्त ने इस आर्यभटमत का खण्डन किया है यदि कहा जाय कि ब्रह्मगुप्त जैसे इसके अतिरिक्त बहुत स्थलो मे खण्डन किया है वैसे ही यहा भी किया है उनका स्वभाव ही आर्यभटमत खण्डन का है लेकिन सो बात नही है, आर्यभट स्वय पहले 'अनुलोमगतिर्नौस्थ' इत्यादि लिखकर—

"उदयास्तमयनिमित्त नित्यं प्रवहेण वायुना क्षिप्तः ।
लङ्कासमपश्चिमगोभपञ्जरः स ग्रहो भ्रमति ॥"

इस लेख मे भूभ्रमण को स्वीकार नही करते हैं, आर्यभट के अपने मन मे भी 'पृथ्वी अपने अक्ष के ऊपर घूमती है' इस तरह की धारणा दृढ नही थी—यह उनके लेख से मालूम होता है, ग्रहो के भगणादि साधन के लिए गणित भूभ्रमणाधारक है इसके लिए प्रमाण है, ग्रह भगणादि ज्ञान के लिए कोई प्रक्रिया भी नही दिखलाई है, इन्ही कारणो से आर्यभट मत के श्रद्धालु वटेश्वराचार्य ने भूभ्रमणविषयक उनके मत को स्वीकार नही किया है, वस्तुत आकाश मे जो ग्रहादियो के पिण्ड हैं वे सब परस्पर आकर्षण शक्तिवश से चलते ही हैं, जो गणितकर्त्ता या ग्रन्थरचयिता जिस पिण्ड पर रहते हैं वह उसको स्थिर मानकर भिन्न ग्रहादि पिण्डो को चल मानते है, हमारे भारतीय प्राचीनाचार्यों के पृथ्वीपिण्ड के स्थिरत्व स्वीकार करने मे यही कारण है, आर्यभट ही की तरह उनके अतिरिक्त हमारे प्राचीनाचार्य और नवीनाचार्य भी भूभ्रमण जानते थे। लेकिन आर्यभट की तरह स्पष्ट शब्दो मे उसका उल्लेख नही करने म पूर्वकथित कारण ही कारण है। मङ्गलाचरण के बाद वटेश्वराचार्य मुनि आदि से बनाये हुए शास्त्र के अभ्यासबल से अपने मे ग्रन्थरचना करने की क्षमता दिखाकर ब्रह्मस्फुटसिद्धान्तकथित युगादिमान और ग्रहो के स्पष्टीकरणादि कुछ भी ठीक नही है इसलिए ब्रह्मगुप्त मत के निराकरण के लिए मुनि आदि रचित शास्त्रसम्मत ग्रन्थ बनाने की आवश्यकता जानकर इस ग्रन्थ (वटेश्वरसिद्धान्त) की रचना करते हैं।

'श्रुत्युत्तमाङ्गमिदमेव यतो नियोगः कालेऽयनर्त्तु-तिथि-पर्व-दिनादि पूर्वे ।
वेदी ककुब्भवन-कुण्ड-तदन्तरादि ज्ञेयं स्फुटं श्रुनिविदां बहुमत्यमस्मात् ॥'

इससे वटेश्वराचार्य स्व-रचित ज्योतिष ग्रन्थ (वटेश्वरसिद्धान्त) में वेदों के प्रधानाङ्गत्व नेत्रस्वरूप दिखलाते हैं । इस ज्योतिष ग्रन्थ के वेदों के प्रधान अङ्ग होने के कारण इसके पढने के लिए किन्हें अधिकार है, किन्हें अधिकार नहीं है —इस विषय के लिए जिस तरह अन्य आचार्य लोग कहते हैं उस तरह ये आचार्य (वटेश्वर) नहीं कहते है । इस विषय में भास्कराचार्य इस तरह कहते हैं—

तस्माद् द्विजैरध्ययनीयमेतत्पुण्यं रहस्यं परमं च तत्त्वम् ।
यो ज्योतिषं वेत्ति नरः स सम्यक् धर्मार्थकामान् लभते यशश्च ॥

महाभाष्यकार भी 'ब्राह्मणेन निष्कारण षडङ्गो वेदोऽध्येतव्यो ज्ञेयश्च' कहते हैं, सिद्धान्तशेखर आदि ग्रन्थों में भी इस विषय में बहुत लिखा गया है । सिद्धान्त ग्रन्थ के लक्षण वटेश्वराचार्य ने जो कहे हैं भास्करकथित लक्षण से कुछ कम है । भास्कराचार्योक्त में 'प्रश्नाश्चया सोत्तरा. । यन्त्रादि यत्रोच्यते, यह है वटेश्वरसिद्धान्त में प्रत्येक अधिकार में प्रश्नाध्याय है किन्तु प्रश्नों के उत्तर नहीं है, इस ग्रन्थ में सिद्धान्तग्रन्थ लक्षण में यन्त्र नाम का भी उल्लेख नहीं है । अन्य प्राचीन ज्योतिष ग्रन्थों और नवीन ग्रन्थों में भी 'चतुर्युगसहस्रेण ब्रह्मणो दिनमुच्यते' इस पुराणकथित ब्रह्मदिन के समान ही ब्रह्मदिन देखते हैं, लेकिन आर्यभट सिद्धान्त (आर्यभटीय) और वटेश्वरसिद्धान्त में एक हजार आठ (१००८) युगों का एक ब्राह्मदिन कहा गया है, ये दोनों आचार्य युगचरणों (सत्ययुगादि) को भी समान ही मानते है । लेकिन अन्य आचार्यों ने युग चरणों में असाहश्य (असमानता) स्वीकार की है । मनुमान में भी मतभेद है । पुराणों में और पूर्वकथित आचार्यद्वय के अतिरिक्त आचार्य ग्रन्थों में इकहत्तर (७१) युगों का एक मनुप्रमाण कहा गया है, परन्तु आर्यभटीय में बहत्तर (७२) युगों का एक मनु कहा है, वटेश्वराचार्य भी इसी को मानते हैं—

'चत्वार्याहु सहस्राणि वर्षाणां तु कृत युगम्' इत्यादि मनुस्मृतिकथित वचन प्रमाण से दैवमान से सत्ययुगचरणमान=४०००, त्रेतायुगचरणमान=३०००, द्वापरयुगचरणमान=२०००, कलियुगचरणमान=१०००, इन सब के योग करने से युगमान=४०००+३०००+२०००+१०००=१२०००, तथा युगस्य दशमो भागश्चतुस्त्रिद्वयेक सङ्गुणः । क्रमात्कृतयुग दीना षष्ठांश सन्ध्ययो. स्वक, इस सूर्यसिद्धान्तोक्त वचन से सन्ध्या सन्ध्यांशसहित सत्ययुगादि चरण=४८००, ३६००, २४००, १२००, और इन युगचरणों के क्रमशः सन्ध्यासन्ध्यांश=८००, ६००, ४००, २००, मनुस्मृति आदि स्मृतिशास्त्र ग्रन्थों में सन्ध्या सन्ध्यांश रहित केवल शुद्ध ही सत्ययुगादिचरणमान मनु आदि स्मृति शास्त्रकार कहे हैं । यदि उन सत्ययुगादि चरणमानों को तीन सौ साठ (३६०) से गुण दिया जाय तो भास्करादि कथित उनके मान आते हैं ।

'युगाना सप्तति सैकामन्वन्तरमिहोच्यते' इसके अनुसार ७१ युग=१ मनु, एक ब्रह्मदिन में चौदह मनु होते है इसलिए १४ मनु=७१ युग×१४=६६४ युग, लेकिन 'मन्वय

स्युर्मनूना कृताब्दैः समाः' इत्यादि से चौदह मनु सम्बन्धी सन्ध्या सन्ध्यांश मान=६ युग, इसलिये १४ मनु+सन्ध्या सन्ध्यांश=९९४ युग+६ युग=१००० युग=१ ब्रह्मदिन =१ कल्प, इससे पुराणोक्त वचन के अनुकूल ही प्राचीनाचार्य और नवीनाचार्य कथित ब्रह्मदिन प्रमाण सिद्ध हुआ, बहत्तर युगों का एक मनु होता है उसके वश से ब्रह्मदिन प्रमाण=१००८ युग आर्यभट ने जो कहा है जिसको वटेश्वराचार्य भी कहते है, इसमें अधिक प्रमाण नही मिलने के कारण ब्रह्मगुप्त ने उनके मत का खण्डन किया है। कलियुगादि से पहले तीन युग चरण बीत गये हैं इस ब्रह्मगुप्तकथित विषय का भी खण्डन वटेश्वराचार्य करते हैं, जैसे—

"युगपादान् जिष्णुसुतस्त्रीन् यातानाह कलियुगादौ यत् ।
तस्य द्वापरे पादौ युगगतये ये स्फुटो नाऽतः ॥"

लेकिन वटेश्वराचार्य भी तो 'युगत्रिवृन्द' सहस्राङ्घ्रयस्त्रय' इससे उसी बात को कहते हैं ब्रह्मगुप्तोक्त जिस विषय का खण्डन करते हैं। वटेश्वराचार्य क्या खण्डन करते हैं वे ही जान सकते है। ब्रह्मगुप्तोक्त भूपरिध्यानयन का भी खण्डन करते हैं। वस्तुत. ब्रह्मगुप्त का वह आनयन ठीक नही है। ब्रह्मगुप्तोक्तबहुत विषयो का खण्डन अपने सिद्धान्त में वटेश्वराचार्य ने किया है, लेकिन ये खण्डन ठीक है या नही इस बात को विवेचक लोग विचार करें। आर्यभटमत खण्डन के लिये ब्रह्मगुप्त ने जिस तरह के वचन का प्रयोग किया है उसी तरह ब्रह्मगुप्तमतखण्डन के लिए वटेश्वराचार्य का है। जैसे आर्यभट मत खण्डन के लिये ब्रह्मगुप्तोक्त वाक्य ये है—

"स्वयमेव नाम यत्कृतमार्यभटेन स्फुटं स्वगणितस्य ।
सिद्धं तदस्फुटत्वं ग्रहणादीनां विसंवादात् ॥
जानात्येकमपि यतो नार्यभटो गणितकालगोलानाम् ।
न मया प्रोक्तानि ततः पृथक् पृथक् दूषणान्येषाम् ॥
आर्यभटदूषणानां संख्यावक्तुं न शक्यते यस्मात् ।
तस्मादयमुद्देशो बुद्धिमताऽन्यानि योज्यानि ॥"

अपने सिद्धात (वटेश्वरसिद्धात) मे ब्रह्मगुप्त मतखण्डन मे वटेश्वरोक्त वचन ये है—

"भानुभुजादियोगाच्चन्द्रे शुक्लं प्रकल्पितं तेन ।
नो लग्नभुजानुगतं वेत्ति न शुक्लं सुतो जिष्णोः ॥
जिष्णुसुतं दूषणानां संख्यां वक्तुं न शक्यते यस्मात् ।
तस्मादयमुपदेशो बुद्धिमताऽन्यानि योज्यानि ॥
एकमपि न वेत्ति यतो जिष्णुसुतो गणितगोलानाम् ।
न मया प्रोक्तानि ततः पृथक् पृथग् दूषणान्येषाम् ॥"

वेधविधि को जानने वाले ब्रह्मगुप्त के जिस तरह अनेक विवेचनात्मक विषय से सम्पन्न नाना तरह के तात्विक विचार से युक्त ब्राह्मस्फुट सिद्धात है उसी तरह वे वटेश्वर॰

सिद्धात भी है। इन दोनो महारथी आचार्यों की अपूर्व प्रतिभा मे किसी के मन मे लेशमात्र भी सन्देह नही हो सकता है। इन दोनो आचार्यों के बाद जो आचार्य हुए हैं वे सब बहुत स्थानो में इन्ही दोनों आचार्यों के सिद्धातग्रन्थ में लिखित विषयो के ही प्रतिपादन करते हैं। मेरा कथन सत्य है या असत्य ये बातें इन दोनो आचार्यों के सिद्धातग्रन्थ (ब्राह्मस्फुटसिद्धात और वटेश्वरसिद्धात) को और अन्य सिद्धातग्रन्थ देखने से स्पष्ट है। आर्क्ष (नाक्षत्र), चान्द्र, सौर, सावन, ब्राह्म (ब्रह्मासम्बन्धी) जैव (बृहस्पतिसम्बन्धी), पैत्र्य (पितृसम्बन्धी) दैव (देवतासम्बन्धी) मानव (मनुष्यसम्बन्धी) इन नव प्रकार के मानो मे सौरमान, चान्द्रमान, सावनमान और नाक्षत्रमान इन चारो मानो से मनुष्यो के व्यवहार चलते हैं, भास्कराचार्यादि सिद्धातो मे पूर्वकथित चारो मानो (सौर, चान्द्र, सावन और नाक्षत्र) से ही मनुष्यो के व्यवहार कार्य कहे गये हैं लेकिन वटेश्वराचार्य उपयुक्त नौ प्रकार के मानो मे किन किन से कौन-कौन कार्य होना चाहिए इसका वर्णन करते हैं, जैसे—

"पर्वाविमतिथिकरणाधिमासकज्ञानमैन्दवान्मानात् ।
प्रभवाद्यब्दाः षष्टिर्युगानि नारायणादीनि ॥
आङ्गिरसादेतेषां ज्ञप्तिं पैत्र्याच्च पैतृको यज्ञ ।
कामलजासुरदेवैस्तेषामायुः परिच्छित्तिः ॥
अध्ययननियमसूतकमखगतयः सच्चिकित्सा च ।
होरामुहूर्तयामाः प्रायश्चित्तोपवासाश्च ॥
आयुर्दायश्च नृणा गमनागमने च सावनात्मानात् ।
ऋत्वयनविषुवदब्दा युगं क्षयर्द्धो दिनस्य सौरात्स्यु ॥
ज्याद्याविधयश्चार्क्षाच्छशधरभगणोद्भवाश्च नाक्षत्रात् ।
मासाश्च वासराणां सज्ञाः सदसत्फलावगतिः ॥"

इस सिद्धात मे ग्रहादि के भगणादि साधन युगमान के द्वारा किये गये है, यदि युगीय भगणादि को कल्प मे लाना हो तो युगीय भगणादि को एक अयुत (१००००) से गुणने से कल्पीय हो जाते हैं। यदि कल्पीय भगणादि को ब्रह्मा की आयु मे लाना हो तो उनको ७२००० इतने से गुणने पर ब्रह्मा की आयु मे आ जाते हैं। जैसे—

युग प्रमाण=४३२००००, कल्पप्रमाण=४३२००००००० तब

$\frac{\text{कल्पवर्ष}}{\text{युगवर्ष}} = \frac{४३२००००००० }{४३२००००} = १००००$ इसलिए युगवर्ष से कल्पवर्ष को १००००

इतना अधिक होने के कारण युगोत्पन्न ग्रहादि भगणादि को १०००० इतने से गुणने से कल्प में वे भगणादिक होते हैं। इसी तरह कल्पीय ग्रहभगणादि को ब्रह्मा की आयु मे लाना हो तो

$\frac{\text{ब्रह्मायुवर्ष}}{\text{कल्पवर्ष}} = \frac{४३२००००००० \times ३६० \times २ \times १००}{४३२०००००००} = ७२०००$ इससे सिद्ध होता

हैं कि कल्पीय ग्रहादि भगणादि को ७२००० इतने से गुणने पर ब्रह्मा की आयु मे ग्रहादि भगण हो जायेंगे। अहर्गणानयन भी वटेश्वराचार्य ने अनेक प्रकार से किया है, अहर्गण से अभीष्ट वार ज्ञानार्थ अहर्गण को सात से भाग देकर जो शेष रहे उसमे एक जोड़ देने से

वर्त्तमान वार होता है। प्रत्येक अहर्गणानयन प्रकार में इसी तरह लिखा है इन्हीं के अनुसार सिद्धान्तशेखर में श्रीपति ने भी अनेक प्रकार से अहर्गणानयन किया है और अहर्गण से वर्त्तमान वार ज्ञान के लिए उसी तरह किया है, परन्तु हरएक अवस्था में क्षेप ही नहीं करना चाहिए, स्थितिविशेष में निरेक भी करना चाहिए जैसाकि सिद्धान्तशिरोमणि में भास्कराचार्य कहते हैं—

'अभीष्ट वारार्थमहर्गणश्चेत्सैको निरेकस्तिथयोऽपि तद्वत्' इत्यादि। इनसे प्राचीन सूर्यसिद्धान्त में अहर्गण के क्षेप निरेक करण सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा गया है। लघ्वहर्गणानयन भी वटेश्वराचार्य ने किया है। ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त में ब्रह्मगुप्त भी 'लघ्वहर्गणानयन' किया है परन्तु सिद्धान्तशेखर में उसके आनयन के लिए कुछ भी उल्लेख नहीं है, इसमें क्या कारण है मालूम नहीं होता भास्कराचार्य ने भी लघ्वहर्गणानयन सिद्धान्तशिरोमणि में किया है यद्यपि यह आनयन ठीक नहीं है तथापि एक अपूर्व विषय है, प्रस्तुत सिद्धान्तोक्त वर्षेश, मासेश कालहोरेश ज्ञान के लिए विधियां और उनके क्रमप्रदर्शन के लिए जो विधियां हैं तदनुरूप ही सिद्धान्तशेखर में श्रीपति कथित है, इनको देखने से मालूम होता है कि श्रीपति ने ये विषय ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त से या वटेश्वरसिद्धान्त से लेकर लिखे हैं। ब्रह्मगुप्तोक्त रविसङ्क्रान्ति का भी अधोलिखित श्लोक द्वारा आचार्य (वटेश्वर) खण्डन करते है। जैसे—

> सङ्क्रान्तिर्घर्मांशोः समस्तसिद्धान्ततन्त्रबाह्योऽत ।
> कुदिनामज्ञानान्मन्दोच्चस्य स्फुटो नाऽर्कः ॥
> कल्पितभगणैर्द्युचराः कल्पितकुदिनैः प्रकल्पितैश्च युगैः ।
> परिधीनामज्ञानाद् दृग्विरोधास्स्फुटा नाऽतः ॥

ब्रह्मगुप्तोक्त युगमान ही को वटेश्वराचार्य जब अशुद्ध कहते हैं तो उसके सम्बन्ध से साधित ग्रहभगणादि मान भी अशुद्ध ही होगा इसलिए उन भगणों द्वारा साधित ग्रह भी अशुद्ध ही होंगे अत अशुद्ध स्फुट रविवश से जो सङ्क्रातिकाल होगा वह भी अशुद्ध ही होता है, लेकिन वटेश्वर का यह कथन तभी ठीक हो सकता है जब ब्रह्मगुप्तोक्त युगादिमान ठीक नहीं होगा, आर्यभटकथित युगादि मानों को वटेश्वराचार्य भी स्वीकार करते हैं। ब्रह्मगुप्तकथित युगादिमान ठीक नहीं है, हमने जो कहा है वही ठीक है इसके लिए कोई प्रबल प्रमाण नहीं देते हैं, तब उनका कथन किस तरह माननीय होगा। स्मृतिकारादि कथित पूर्वोक्त मानो के साथ ब्रह्मगुप्तोक्त मानों की तुल्यता के कारण और वटेश्वरस्वीकृत मानो को स्मृतिकारादि कथित मानो से विभिन्न होने के कारण इनका कथन दुराग्रहपूर्ण है यह मेरा मत है, इसको विवेचक लोग विचार कर समझे इनका मध्यमाधिकारीय प्रश्नाध्याय बहुत ही उत्तम है, उसमे बहुत उत्तम उत्तम प्रश्न है, लेकिन ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त में भी इसी तरह के बहुत प्रश्न हैं, यह कहना कठिन है कि ये प्रश्न वटेश्वराचार्य के अपने हैं या ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त के आधार पर लिखे हैं, इस विषय का निर्णय विज्ञ ज्योतिषिक लोग स्वयं करेंगे।

स्पष्टाधिकार

स्पष्टाधिकार मे आर्यभट ब्रह्मगुप्त आदि सब आचार्यों ने वृत्त के एक पाद मे २२५ दो सौ पच्चीस कला वृद्धि करके चापो की चौबीस ज्या साधन कर अपने अपने सिद्धान्तग्रन्थ मे पठित किया है। लेकिन वटेश्वराचार्य ने छप्पन (५६) संज्ञक विकला सहित कलात्मक ज्या साधन कर पठित किया है। इष्टचाप ज्यानयन विधि एक ही तरह की हैं। भास्कराचार्य ने *भोग्य खण्ड स्पष्टीकरण किया है, वटेश्वराचार्य भोग्यखण्ड स्पष्टीकरण का नाम नही कहते हैं* लेकिन शेषांशज्यानयन देखने से भास्करकृत भोग्यखण्ड स्पष्टीकरण ठीक वटेश्वरोक्त के सदृश हैं। वटेश्वरोक्त शेषांशज्यानयन मे यदि गतैष्य ज्यान्तरार्ध के स्थान पर गतैष्यखण्ड के अन्तरार्ध और प्रथम चाप के स्थान मे दशांश लिया जाय तब दोनो आचार्यों के प्रकारो में कुछ भी भेद नही रहेगा, *शेषांशज्या शब्द से शेष चाप सम्बन्धिनी ज्यावृद्धि समझनी* चाहिए, इस विषय मे सिद्धान्तशेखर मे श्रीपति कुछ भी नही कहते है। प्राय अनेक स्थलो मे ब्रह्मगुप्तकथित या वटेश्वराचार्यकथित विषयो के अनुरूप ही श्रीपति ने लिखा है लेकिन यहा किस कारण से कुछ नही लिखा नही कह सकते। भास्करोक्त भोग्यखण्ड *स्पष्टीकरण प्रकार का मूल ब्राह्मस्फुटसिद्धान्तकथित प्रकार या वटेश्वरोक्त शेषाप ज्यानयन* ही हो सकता है, उनका यह अपना खास प्रकार नही है इसमे कुछ भी सन्देह नही। यद्यपि वटेश्वरोक्त से भास्करोक्त प्रकार सूक्ष्म है लेकिन भास्करोक्त प्रकार भी सूक्ष्म नही है उसमे भी बहुत स्थूलता है यह उसकी उपपत्ति देखने ही से स्पष्ट है। अन्य आचार्यों के ग्रहस्पष्टीकरण के सदृश ही इनका (वटेश्वर का) भी ग्रह स्पष्टीकरण है, मङ्गलादि ग्रहो के स्पष्टीकरण के लिए चार फल (मन्दफलार्ध शीघ्रफलार्ध, मन्दफल और शीघ्रफल) सब आचार्य कहते है, मध्यम रवि और मध्यम चन्द्र केवल अपने अपने मन्दफल सस्कार करने ही से स्पष्ट रवि और स्पष्ट चन्द्र होते हैं, लेकिन मध्यम कुजादिग्रहो के लिए पूर्वोक्त चार फलो का सस्कार जो कहा गया है उसमे मन्दफलार्ध और शीघ्रफलार्ध सस्कार करने के लिए कुछ भी कारण नही मालूम होता है, केवल अपने अपने मन्दफल और शीघ्रफल के सस्कार करने ही से कुजादि मध्यम ग्रह स्पष्ट कुजादि ग्रह होत हैं यह विषय गोल पर स्पष्ट देखने मे आता है। *मन्दफलार्ध और शीघ्रफलार्ध सस्कार विषय मे सब आचार्यों ने केवल* आगम प्रमाण लिखा है। स्पष्टीकरण के लिए किसी भी आचार्य का स्वतन्त्र विचार नही है ग्रहो के मन्दगतिफलानयन और शीघ्रगतिफलानयन अन्य प्राचीनाचार्यों के सदृश ही वटेश्वराचार्य ने भी किये है। अन्याचार्यो की अपेक्षा भास्करोक्त बहुत ही अच्छा है। सूर्य-सिद्धान्त मे नतकर्म की चर्चा नही की गई है, वटेश्वराचार्य ने भी उसके *विषय मे कुछ नही* लिखा है। लेकिन यह ठीक नही है, स्पष्टीकृत ग्रह मे भुजान्तरादि सस्कार करने पर भी जो स्पष्ट ग्रह होते हैं वे स्वगोलस्थ स्पष्टग्रह होते है। वे जिस गोल मे हम लोगो को दृश्य होते हैं उन्ही को वास्तव स्पष्टग्रह हम लोग कह सकते है, गणितसाधित पूर्वकथित स्वगोलस्थ स्पष्ट ग्रह मे जितना सस्कार करने से हम लोगो से स्पष्टग्रह (प्रत्यक्षीभूतग्रह) होते हैं उसी सस्कार का नाम नतकर्म कहा गया है, सिद्धान्तशिरोमणि मे भास्कराचार्य ने रवि और चन्द्र को नतकर्मानयन किया है जो कि ब्रह्मगुप्तसम्मत है—स्वय भास्कराचार्य कहते हैं। लेकिन यह आनयन ठीक नही है, यह विषय नतकर्मोपपत्ति देखने ही से स्पष्ट है। तथापि

उनके आनयन आदरणीय हैं क्योंकि इन्होंने एक अद्भुत नवीन विषय कहा है। जिसके बिना सम्पूर्ण स्पष्टीकरण निरर्थक कहा जा सकता है। क्योंकि जिन स्पष्टग्रहों के लिए स्पष्टीकरण का विधान लिखा गया है उन विधानों से वस्तुतः ठीक स्पष्ट ग्रह की सिद्धि न हो तब तो वह विधान ही असफल हो सकता है इसलिए जिन आचार्यों ने नतकर्मानयन नहीं किया उनमें वह त्रुटि है, ब्रह्मगुप्त और भास्कर ने नतकर्म साधन कर अपनी दूरदर्शिता का परिचय दिया है, आर्यभटादि प्राचीनाचार्यों में किसी का भी दृष्टिपात उदयान्तर संस्कार के ऊपर नहीं हुआ, केवल भास्कराचार्य ही ग्रहर्गणोत्पन्न ग्रह में उदयान्तरासु सम्बन्धी ग्रहचालन फल संस्कार की आवश्यकता समझ कर विधिपूर्वक उसका साधन कर संस्कार किया है। उदयान्तर साधन में भास्कराचार्य की क्या त्रुटि है, उसको दिखला कर उसका वास्तवानयन कैसे होता है और उसका परमत्व कब होता है ये सब बातें प्रसङ्गवश इस ग्रन्थ में स्थान विशेष पर हमने दिखलाई हैं। भास्करकथित उदयान्तर का मूल सिद्धान्तशेखर के त्रिप्रश्नाधिकार में श्रीपतिकृत विषुवांश और भुजांश का अन्तरानयन है यह किसी का मत है। परन्तु उक्त ग्रन्थ के उक्त अधिकार में उक्त विषुवांश और भुजांश का अन्तरानयन नहीं देखने के कारण वह मत ठीक नहीं मालूम होता है॥ अभी तक इस देश के ज्योतिषी लोग जानते हैं कि तात्कालिक गतिसिद्धान्त का ज्ञान सबसे पहले भास्कराचार्य को हुआ, 'फलांशखाङ्कान्तर शिञ्जिनीघ्नी' इत्यादि भास्करोक्त की उपपत्ति देखने से तथा

> "दिनान्तरस्पष्टखगान्तरं स्याद् गतिः स्फुटा तत्समयान्तराले।
> कोटी फलघ्नी मृदुकेन्द्रभुक्तिस्त्रिज्योद्धृता कर्किमृगादि केन्द्रे॥
> तया युतोना ग्रहमध्यभुक्तिस्तात्कालिकी मन्दपरिस्फुटा स्यात्॥"

इसकी उपपत्ति देखने से तथा 'तात्कालिकी मन्दपरिस्फुटा स्यात्' यहाँ तात्कालिकी शब्द देखने से भी ज्योतिषी लोगों की पूर्वोक्त धारणा की पुष्टि होती है। इसी तरह 'कक्षामध्यगतिर्यग्रेखाप्रतिवृत्तसम्पाते। मध्यैव गतिः स्पष्टा पर फल तत्र खेटस्य' इस भास्करोक्ति से यहाँ (कक्षामध्यगतिर्यग्रेखा प्रतिवृत्त के सम्पात में ग्रह रहने से) ग्रहों की मन्दस्पष्टगति और स्पष्टगति के बराबर होने के कारण शीघ्रगति फलाभाव होना चाहिए, उसी पूर्वकथित स्थान को भास्कराचार्य शीघ्रगति फलाभाव स्थान कहते हैं। चलन कलन में तात्कालिक गति का यह सिद्धान्त है कि किसी चलराशि के परमत्व में और परमाल्पत्व में उसकी तात्कालिक गति शून्य होती है भास्करकथित पूर्वोक्त स्थान में शीघ्र फल के परमत्व होने के कारण उसकी तात्कालिक गति शून्य होनी चाहिये, यही भास्कराचार्योक्ति से भी होती है, लल्लाचार्य शिष्यधीवृद्धिद नामक अपने सिद्धान्तग्रन्थ में कक्षावृत्त और प्रतिवृत्त के योगबिन्दु में ग्रह के रहने से शीघ्रगति फलाभाव स्वीकार करते हैं जिसका खण्डन गणिताध्याय में भास्कराचार्य 'धीवृद्धिदे चलफलं युगतेर्यदुक्तं लल्लेन तन्न गदितं गणकैर्विचिन्त्यम्' इत्यादि से बहुत युक्तियुक्त किया है। इन सब को देखने से भी भास्कराचार्य के तात्कालिक गतिसिद्धान्तविषयक ज्ञान में कुछ भी सन्देह नहीं रह जाता है। लेकिन भास्कराचार्य से अतिशय प्राचीन वटेश्वराचार्य भी तात्कालिक गतिसिद्धान्त को जानते थे यह भास्करकथित भोग्य खण्ड स्पष्टीकरण मूलभूत वटेश्वरोक्त ज्याद्यानयन देखने ही से स्फुट हो जाता

है। भास्करीय लीलावती की निसृष्टार्थदूती नाम की अपनी टीका में 'चापोननिघ्नपरिधि प्रथमाह्वय स्यात्' इत्यादि की व्याख्या में मुनीश्वर लिखते हैं—

'दो. कोटिभागरहिताभिहता खनागचन्द्रास्तदीयचरणोनशरार्कदिग्भि' इत्यादि ज्याखण्ड विना ही चाप से श्रीपतिकृतज्यानयन के अवलम्बन से ग्रहलाघव में गणेशदैवज्ञ ने नव प्रकार लिखा है—'इति कृत लघुकार्मुकशिञ्जिनी ग्रहणकर्म विना श्रुतिसाधनम्।' इस करण कुतूहलस्थ छायासाधनविषय भास्कराचार्याभिमान का मूलकारण यही श्रीपतिकथित प्रकार है। गणकतरङ्गिणी में महामहोपाध्याय पण्डित सुधाकर द्विवेदी के लेख से भी मालूम होता है कि पूर्वकथित प्रकार श्रीपति ही का है। बहुत पहले से भी ज्यौतिषकों में इस बात की प्रसिद्धि है कि इस प्रकार के रचयिता श्रीपति ही हैं। लेकिन वटेश्वरसिद्धान्त के स्पष्टाधिकारीय 'ज्याखण्डैर्विना स्फुटीकरणाध्याय' के अधोलिखित श्लोक देखने से मालूम होता है कि पूर्वोक्तप्रकार श्रीपति का नहीं है—

चक्रार्धांशा भुजांशैर्विरहितनिहतास्तद्विहीनैर्विभक्ता,
खव्योमेष्वभ्रवेदैः सलिलनिहताः पिण्डराशिः प्रदिष्टः।
षड्भाशघ्ना भुजांशा निजकृतिरहितास्तत्तुरीयांशहीनै-
र्भक्ता स्यात्पिण्डराशिर्विशिखनयनभूव्योमशीतांशुभिर्वा॥

सिद्धान्तशेखर में श्रीपति ने निम्नलिखित श्लोक में ज्याविना इष्टज्या का चापानयन किया है—

"इष्टज्यया विनिहताः शरभास्कराशा ज्यापादयुक् त्रिभगुणेन हृता फलं तत्।
त्यक्त्वा खनन्दकृतितः ८१०० पदमभ्रनन्दभागाच्च्युतं भवति धन्वविना ज्यकाभिः॥"

लेकिन इसीका आनयन वटेश्वरसिद्धान्त में निम्नलिखित रूप में है—

त्रिभनवगुणयुक्तो ज्यातुरीयोऽत्र हारो विशिखरविलचन्द्रैस्ताडितायास्तु मौर्व्याः।
खखविशिखखवेदैराहता चेष्टजीवा त्रिभगुणकृतिघातज्यासमासेन भक्ता॥
फलहीना नवतिकृतिस्तन्मूलेन च वर्जिता नवतिः।
शेष धनुरथवा यन्त्रिज्याखण्डैर्विनैव फलम्॥

इससे मालूम होता है कि उपर्युक्त दोनों प्रकार 'वटेश्वरसिद्धान्त' ही से लेकर श्रीपति ने 'सिद्धान्तशेखर' में लिखा है—(१) 'वटेश्वराभिधेन ज्योतिर्विदा विरचित एको ज्यौतिषसिद्धान्तग्रन्थ आसीदिति तत्तत्स्वनिबन्धेनैकैर्भास्कराद्यैर्व्याख्यातृभिश्च तन्मत-प्रतिपादनात्स्फुटमेव। परमय ग्रन्थ प्रायो लुप्त एवाभूदिति बहुधैव प्रतीयते। एतत्सम्बन्धे गणकतरङ्गिण्याम् "यथा ब्रह्मगुप्तेनार्यमतादीना खण्डन कृत तथैव वटेश्वरेण सिद्धान्ते बहुत्र ब्रह्मगुप्तखण्डन कृतमस्ति, अयमेव 'कजन्मनोऽष्टौ सदला समाययु' रित्यादिना ब्रह्मण आयु सार्धवर्षाष्टक गतमिति मतम्। अस्य सिद्धान्तग्रन्थो मया सम्पूर्णो न दृष्ट ग्वालियर महाराजा-श्रितस्य श्रीबालज्योतिर्विदो गेहेऽयमस्तीति श्रुत्वा तत्रासकृत्पत्र प्रेषित परन्त्वद्यावधि किम-प्युत्तर न प्राप्तम्" श्रीमान् म० म० सुधाकर द्विवेदिमहोदयो लिखितवान्।

श्रीमान् भास्कराचार्य 'तथा वर्तमानस्य कस्यायुषोऽर्धगत सार्धवर्षाष्टक केचिदूचु" इत्युक्त्या सार्धवर्षाष्टक वटेश्वरमतमेव लक्ष्यीकरोति। मुञ्जालाचार्यकृत लघुमानसम्य इन्दूच्चोनार्ककोटिघ्नेत्यादि दृग्गणितैक्यकृच्चन्द्रसस्कारविषये तट्टीका कृता लल्लाचार्येण

श्लोकद्वयस्यास्यावरणमेवमुच्यते । "अथ चन्द्रस्य ग्रहसमागमच्छायाशृङ्गोन्नतिदृक्साधने वटेश्वरोक्तसिद्धान्तोक्तदृक्कर्मविशेष श्लोकद्वयेनाहेति" । अथ श्रीपतिनापि सिद्धान्तशेखरे ग्रहयुद्धाध्याये २४ श्लोकैर्वटेश्वरसिद्धान्तानुसार एव चन्द्रस्य विलक्षण संस्कारो ब्रह्मगुप्त-लल्लाद्यनुक्त प्राय उक्त इति ।

अथच श्रीपतिना—

श्रीजिष्णुजार्यभटलल्लवटेशसूर्यदामोदरप्रभृतयोऽपि च तन्त्रकाराः।
शक्ताः प्रवक्तुममलामिह तन्त्रयुक्तिमस्मद्विधो जडमतिस्तु कथं प्रवक्ति ॥

इत्युक्त्याऽऽर्यभट ब्रह्मगुप्तलल्लाचार्यै सममेव वटेश्वरस्यापि नामोल्लेख क्रियत इति वटेश्वरसिद्धान्त सर्वमान्य आसीदिति प्रतीयते । अत्र शङ्करबालकृष्णदीक्षितमतेन वटेश्वर-कृत एक करणसारनामा ग्रन्थ ८२१ शकाब्दे रचित इति श्रूयते यत्र काश्मीरस्याक्षांशा ३४।६ एतन्मिता ग्रन्थोक्त्या सिद्ध्यन्ति प्राय सर्वेऽपि ज्यौतिषसिद्धान्तरचयितार एक करणग्रन्थमपि व्यवहारोपयोगिन रचितवन्त एवासन्निति वटेश्वरसिद्धान्तानुसारी करणसार इत्याख्यो ग्रन्थश्च वटेश्वरकृत आसीदिति च प्रतीयते परमधुना वटेश्वरसिद्धान्त, करणसारश्च न कुत्राप्युपलभ्यौ वार्त्तागोचरौ स्त इत्यलमतिविस्तरेण (२) । (१) यहा से लेकर (२) यहा तक सिद्धान्तशेखर के परिशिष्टस्थ लेख से भी मालूम होता है कि वटेश्वरसिद्धान्त के ऊपर अधिक श्रद्धा रहने के कारण श्रीपति ने पूर्वोक्तज्या और चाप का आनयन उसी सिद्धान्त से लेकर लिखा है और भुजकोटिज्यादिसाधनबिना अहर्गण ही से ग्रहस्पष्ट करने के प्रकार वटेश्वरसिद्धान्त मे अधोलिखित हैं—

> स्वोच्चनीचपरिवर्तशेषकाद् भूदिनैः कृतहतात्पदानि तु ।
> शेषकात्त्रिगुणितादगृहादितः पूर्ववच्च भुजकोटिसाधनम् ॥
> मन्दजं चलभवं च तद्वर्तभूं दिनैर्भगणलिप्तिकोद्धृतैः ।
> खेचरस्य भगणावशेषकं संस्कृतं कलिकयाऽखिलं स्फुटम् ॥
> दो.फलेन सवितुश्चरासुभि स्वेन देशविवरेण चोक्तवत् ।
> संस्कृतं कुदिनभाजितं भवेन्मङ्गलादिखचरः परिस्फुट ॥

यह विषय ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त, वटेश्वरसिद्धान्त और सिद्धान्तशेखर मे वर्णित है, इस विषय को भास्कराचार्यादि ने अपने सिद्धान्तग्रन्थो मे क्यो नहीं लिखा इसको वे ही लोग जान सकते हैं। श्रीपति ने इस विषय को ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त या वटेश्वरसिद्धान्त से लिया होगा क्योंकि उनके सामने दोनो सिद्धान्त आदर्शरूप मे उपस्थित थे ।

अन्य सिद्धान्तग्रन्थो मे जैसे अन्य अधिकार सब अलग अलग वैसे है ही पाताधिकार भी पृथक् ही है परन्तु वटेश्वरसिद्धान्त मे स्पष्टाधिकारान्तर्गत ही पाताध्याय है, पाताधिकार सम्बन्धी सब विषय स्पष्टाधिकारान्तर्गत ही वर्णित हैं, सिद्धान्तशेखर के पाताध्याय मे वर्णित सब विषय ब्राह्मस्फुटसिद्धान्तोक्त या वटेश्वरसिद्धान्तोक्त हैं इन दोनो सिद्धान्तोक्त विषयों से कुछ भी विशेष बात नही है। इस सिद्धान्त मे स्पष्टाधिकार सम्बन्धी प्रश्नाध्याय

भी उसी (स्पष्टाधिकार) के अन्तर्गत है और इस अधिकार में ग्रहस्फुटीकरण के अलग अलग अध्याय हैं। जैसे—

सूर्याचन्द्रमसो स्फुटीकरणविधि प्रथम । स्वोच्चनीचग्रहस्फुटीकरविधिर्द्वितीय । प्रतिमण्डलस्पष्टीकरणविधिस्तृतीय । ज्याखण्डैविना स्फुटीकरणविधिश्चतुर्थ । फलज्यास्फुटीकरणविधि पञ्चम । तिथ्यानयनविधि षष्ठ । प्रश्नविधि सप्तम । यह क्रम और किसी सिद्धान्तग्रन्थ मे देखने मे नही आता है, कर्णानयन के विषय मे भी इस ग्रन्थ में बहुत कहा गया है जो भास्करादि सिद्धान्त मे नही है ॥

त्रिप्रश्नाधिकार मे भी प्रतिपादन शैली आर्यभटादि प्राचीनाचार्य और उन (वटेश्वर) से नवीनाचार्य (श्रीपति भास्कर आदि) से विलक्षण ही देखने म आती है, जैसे—विषुवच्छायानयनविधि प्रथम । लम्बाक्षज्यानयनविधिर्द्वितीय । क्रान्तिज्यानयनविधिस्तृतीय । द्युज्यानयनविधिश्चतुर्थ । कुज्यानयनविधि पञ्चम अग्रानयनविधि षष्ठ । स्वचरार्धप्राणज्यासाधनविधि सप्तम । लग्नादिविधिरष्टम । द्युदलभादिविधिर्नवम । इष्टच्छायाविधिर्दशम । सममण्डलप्रवेशविधिरेकादश । कोणशङ्कुविधिर्द्वादश । छायातोऽर्कानयनविधिस्त्रयोदश । छायापरिलेखविधिश्चतुर्दश । प्रश्नाध्यायविधि. पञ्चदश । इन अध्यायो मे वर्णित विषयो के देखने से ग्रन्थकार के अद्भुत पाण्डित्य का परिचय मिलता है। सूर्यसिद्धान्त, ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त, वटेश्वरसिद्धान्त और सिद्धान्तशेखर मे कोणशङ्कु साधन प्रकार एक ही तरह के है। परन्तु वटेश्वरसिद्धान्त म अनेक प्रकार से उसका साधन किया गया है। कोणशङ्कु साधनविधि नामक अध्याय म तृतीय श्लोक से नवम श्लोक तक बहुत जगह लघु सञ्ज्ञक के भेद से वे दिखलाये गये है जैसे 'इष्टश्रवणाभ्यस्ता अग्रास्त्रिज्योद्धृता लघुका' इत्यादि, द्युतिगुणितास्त्रिगुणहृता अग्राद्युतिवृत्तगा भवन्ति लघुका, इत्यादि, 'बाग्रा-स्तद्वृतिगुणितास्त्रिज्याभक्ता भवन्ति तद्वृतिगा । लघका हि विदिङ्नार' इत्यादि इनके अतिरिक्त सब आचार्यों ने केवल एक ही प्रकार से कोणशङ्कु का आनयन किया है केवल श्रीपति ने सिद्धान्तशेखर म अन्य आचार्यों की अपेक्षा अधिक प्रकार लिखे हैं, भास्कराचार्य ने अग्राकृति द्विगुणिता त्रिगुणस्य वर्गात् इत्यादि से असकृत्प्रकार द्वारा जो कोणशङ्कु का साधन किया है उसका मूल 'इष्टाग्रान्तरकृत्या द्विगुणितयोदग्वियुक्' इत्यादि वटेश्वरोक्त या 'इनाग्रकाया सहितोनिताया इष्टेन' इत्यादि श्रीपत्युक्त प्रकार ही हो सकता है, लेकिन कोणशङ्कु साधन प्रकार किसी आचार्य का ठीक नहीं है। भास्करोक्तकोणशङ्कुसाधन का खण्डन उत्तरगोल मे—

"युगमाश्रोनाक्षप्रभावर्गनिघ्नी बाणाढ्यशङ्क्याह्विकार्वैर्विभक्ता ।
अक्षच्छायावर्गयुक्तं फलान्न्दग्रान्यूना स्यात्खिल सौम्यगोले ॥"

इससे महामहोपाध्याय सुधाकर द्विवेदी ने किया है और दक्षिण गोल मे उसका खण्डन सिद्धान्तशिरोमणि की टिप्पणी मे सशोधक (महामहोपाध्याय बापूदेव शास्त्री) ने निम्नलिखित पद्य से किया है।

"अक्षप्रभाकृतिविहीनहृगद्विनिघ्नः पञ्चाब्धिभागजगुणो विहृतो द्विकाश्वैः।
अक्षप्रभाकृतियुतैः फलतोऽग्रकाज्ञ्न्नाऽल्पा तदा न सदिद रवियाम्यगोले।।"

भास्कर प्रकार के उपर्युक्त खण्डन से ही उसके मूलभूत वटेश्वरसिद्धान्तोक्त और श्रीपत्युक्त कोणशंकु आनयन का भी खण्डन समझना चाहिये। जिस देश में सत्रह अङ्गुल से अधिक पलभा है वहां उत्तर गोल में चार कोणशंकु उत्पन्न होते हैं और दक्षिण गोल में कोणशंकु का अभाव होता है इस भास्करोक्त वासना माप्योक्त वा मूल प्राचीनोक्तकोणशंकु साधन ही है। इष्टदिक् छायानयन के लिए 'समभण्डलप्रवेशविधि" में इष्टकोणशंकु साधन किया गया है। भास्कराचार्य ने 'व्यासार्धवर्ग पलभाकृतिघ्नो दिग्ज्याकृति-ऽर्कदशवर्गनिघ्नो। तत्सयुति स्यात्' इत्यादि से इष्टच्छायाकर्णसाधन किया है, वस्तुत भास्करोक्त प्रकार का मूल वटेश्वर प्रकार ही है। सूर्यसिद्धान्तकार और सिद्धान्तशेखरकार इस विषय में कुछ भी नही कहते हैं इसीसे मालूम होता है कि भास्कराचार्य का उपर्युक्त प्रकार अपना प्रकार नही है, त्रिप्रश्नाधिकार के आदि में वटेश्वराचार्य ने अनेक प्रकार से दिग्ज्ञान किया है जिनमे कुछ प्रकार अन्य सिद्धान्तो मे नही पाये जाते हैं। भाभ्रम के सम्बन्ध से दिक्ज्ञान प्रकार वटेश्वराचार्य का जैसा है तदनुरूप ही श्रीपति का प्रकार भी है, छायाभ्रमण मार्गज्ञानार्थ 'इष्टेन्हि मध्ये प्राक् पश्चाद् धृते बाहुत्रयान्तरे। मत्स्यद्वयान्तरयुते' इत्यादि से सूर्यसिद्धान्तकार और 'भग्रेषु चिन्हानि विधाय वृत्तमियोऽवगाहे' इत्यादि से लल्लाचार्य ने जो युक्ति दिखलाई है वटेश्वराचार्य भी तदनुरूप ही कहते हैं, ये सब आचार्य छायाभ्रमण मार्ग वृत्ताकार स्वीकार करते हैं उसी के सम्बन्ध मे दिक्ज्ञान भी किये हैं, परन्तु मेरु से अतिरिक्त साक्षदेश मे छायाभ्रमण मार्ग सदा वृत्ताकार नही होता है इसलिए सिद्धान्तशिरोमणि के गोलाध्याय मे भास्कराचार्य ने 'भात्रितयाद्भाभ्रमण न सत्' इत्यादि से उन लोगो के वृत्ताकार छायाभ्रमण मार्ग का खण्डन किया है जो कि बहुत ही युक्तिसङ्गत है। यद्यपि छायाभ्रमण मार्ग कैसा होता है इसके सम्बन्ध मे भास्कराचार्य ने अपना विचार कुछ भी नही व्यक्त किया तथापि सब देशो म सदा छायाभ्रमण मार्ग वृत्ताकार नहीं होता है इस विषय को सबसे पहले वे ही समझ सके। सूर्यसिद्धान्तकार ने छायाभ्रमण मार्ग वृत्ताकार होता है इस बात को कहकर उससे और कुछ काम नही लिया है जैसा कि वटेश्वराचार्य श्रीपति ने उससे काम (दिक्ज्ञान) लिया है जो ठीक नही है वटेश्वराचार्य के त्रिप्रश्नाधिकार के प्रश्नाध्याय मे जो अनेक प्रकार के प्रश्न हैं उनमे बहुत प्रश्नो के उत्तर सिद्धान्तशेखर मे पाये जाते हैं, मेषादि राशियो के निरक्षोदय मान साधन प्रकार ब्रह्मगुप्त वटेश्वर श्रीपति आचार्यों के एक ही तरह के हैं, स्वदेशीय राश्युदय मान से लग्नानयन प्रकार वटेश्वराचार्य और श्रीपति के एक ही तरह के हैं लग्नानयन म कुछ विशेष बातें नहीं कहते हैं, अन्य सिद्धान्तो की अपेक्षा इन दोनो आचार्यों के सिद्धान्तो मे विशिष्ट बातें य हैं 'स्वदेशीय राश्युदय बिना विलग्न और काल साधनप्रकार तथा स्वदेशीयोदय बिना रवि और लग्न के अन्तरासु साधन प्रकार' चन्द्रग्रहणाधिकार मे रवि और चन्द्र के स्फुट कर्णावर्णसाधन प्रकार वटेश्वरसिद्धान्त मे जसा है उसके सदृश ही सिद्धान्तशिरोमणि मे 'मन्दश्रुतिर्द्राक्श्रुतिवत्प्रसाध्या तया त्रिभज्या द्विगुणा विहीना। त्रिज्याकृति दोषहृता स्फुटा स्यान्निशाश्रुतिस्तिग्मरुचेर्विधोश्च।।' भास्कराचार्य का प्रकार है। आज तक ज्योतिषियो की यही धारणा थी कि यह प्रकार भास्कराचार्य का है

परन्तु वटेश्वरसिद्धान्त के प्रकाशित होने पर उसमे उस प्रकार को देखकर वह धारणा दूर हो जायगी, इस सिद्धान्त (वटेश्वरसिद्धान्त) मे छाद्य और छादक निर्णय मे और रवि, चन्द्र और भूभा बिम्बानयन मे कहीं भी राहु या भूभा का नाम स्पष्ट नहीं कहते है—सब जगह उसके स्थान पर तम कहते है, लेकिन मध्यमाधिकार मे "खण्डयति तमोऽर्धेन क्षपाकर तिग्माशु विधुदलेन। राहुकृत च ग्रहण प्राहुस्ते समस्त आचार्या" ग्रन्थकार के इस लेख से मालूम होता है कि ये राहुकृत ग्रहण ही मानते हैं, इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि इस अधिकार मे जहा जहा 'तम' शब्द का प्रयोग इन्होने किया है उन सब स्थलो मे उससे राहु ही को समझना चाहिए। सिद्धान्तशेखर मे श्रीपति ने 'राहुनिराकरणाध्याय लिखा है लेकिन राहुबिम्बानयन और भूभाबिम्बानयन दोनो उक्त ग्रन्थ मे देखने हैं इससे मालूम होता है कि उनके मन मे निश्चय नही था कि राहुकृत चन्द्रग्रहण होता है या भूभाकृत भास्कराचार्य सिद्धान्तशिरोमणि के गोलाध्याय मे छाद्य और छादक के निर्णय के सम्बन्ध मे कहते है "अर्कस्छादकाच्चन्द्रच्छदक पृथुतरोऽवगम्यते, कुत । यतोऽर्धखण्डितस्येन्दो विषाणयो कुण्ठता दृश्यते स्थितिश्च महती। अर्कस्य पुनरर्धखण्डितस्य तीक्ष्णता विषाणयो स्थितिश्च लघ्वी। एतत्कारणद्वयानुपपत्त्याऽर्कस्यच्छादकोऽन्य स च लघु । एव रवीन्द्वोर्न च्छादको राहुरिति वदन्ति । कुत । दिग्देशकालावरणादिभेदात्। एकस्य प्राक्स्पर्श । इतरस्य पश्चात्। रवे क्वापि ग्रहणमस्ति क्वापि नास्ति। क्वापि दर्शान्तादग्रत क्वापि पृष्ठत । अतो राहुकृत न ग्रहणम्। नहि यहवा राहव । एव के वदन्ति। केवलगोलविद्यास्तदभिमानिनश्च। इद सहिता-वेदपुराणबाह्यम्। यत सहितासु राहुरष्टमो ग्रह 'स्वर्भानुर्ह वा आसुर सूर्यतमसा विव्याध" इति माध्यन्दिनीश्रुति ।

सर्वं गङ्गासम तोय सर्वे ब्रह्मसमा द्विजा ।
सर्वं भूमिसम दान राहुग्रस्ते दिवाकरे ॥

इत्यादि पुराण वाक्यानि। अतोऽविरुद्धमुच्यते । राहुरनियतगतिस्तमोमयग्रहावर-प्रदानाद्भूभा प्रविश्य चन्द्र छादयति चन्द्र प्रविश्य रवि छादयतीति सर्वमिमानामवि रुद्धम्' कही पर राहु का बिम्बादिसाधन नही किया है ग्रहण म राहु की कुछ जरूरत नही है, राहु की अनियतगति के कारण और ग्रहण म स्पर्शादि की निश्चित दिशा के कारण राहुकृत ग्रहण का खण्डन स्पष्ट ही है। बडे दूरदर्शी ग्रहो से वर पाय हुए वटेश्वराचार्य ने भी स्पष्टरूप से भूभा का नाम निर्देश नही किया है यह बहुत आश्चर्य है। भूभा (राहु) बिम्बानयन वटेश्वराचार्य न जिस तरह किया है, तदनुरूप ही श्रीपति और भास्कराचार्य ने किया है, इन सब के मत से 'वधित रविकर्ण चन्द्रकक्षा मे जहा पर लगता है उस बिन्दु म सूर्यबिम्ब और भूबिम्ब की क्रमस्पर्श रेखा के ऊपर जो लम्ब करेंगे वही भूभा व्यासार्ध आता है, लेकिन यह स्पर्श के लिए उपयुक्त नही है इसलिए उन सब के मत ठीक नहीं हैं। वधितरविकर्ण और चन्द्रकक्षा के योगबिन्दु से उसी रेखा (वधितरविकर्ण) के ऊपर जो लम्बरेखा होती है उसको मुनीश्वर भूभाव्यासार्ध कहते है। यह भी पूर्वोक्त कार्य के लिए अनुपयुक्त है, अत इनका भी मत ठीक नहीं, स्पर्शरेखा और चन्द्रकक्षा के योग बिन्दु से मध्यरेखा (वधित-रविकर्ण) के ऊपर जो लम्ब रेखा होती है वही वास्तव भूभाव्यासार्ध है जिसका साधन

सिद्धान्त तत्त्वविवेक में कमलाकर ने किया है जो कि बहुत ही ठीक है। म० म० पण्डित सुधाकर द्विवेदीजी ने वास्तव भूभाबिम्बार्धानयन किया है, सशोधकोक्त भूभाबिम्बार्धानयन ठीक नहीं है। वटेश्वराचार्य ने रवि, चन्द्र और भूभा (राहु) के योजनात्मक बिम्बों के कलात्मकीकरण के लिए जो नियम कहे हैं सो ठीक नहीं हैं। श्रीपति और भास्कराचार्य का भी बिम्बकलानयन तत्सदृश ही है। इन आचार्यों ने स्थित्यर्ध और विमर्दार्ध के साधन असकृत्प्रकार से किये हैं, सकृत्प्रकार से उनके (स्थित्यर्ध और विमर्दार्ध) आनयन सिद्धान्तशिरोमणि की टिप्पणी में म० म० पण्डित बापूदेवशास्त्री (सशोधक) और सूर्यसिद्धान्त की सुधावर्षिणी टीका में म० म० पण्डित सुधाकर द्विवेदी ने किया है, ये दोनों प्रकार वटेश्वराचार्योक्त स्थित्यर्ध और विमर्दार्ध के आनयन स्थल में हमने दिखलाये हैं, आक्षवलन और आयनवलन के साधन उत्क्रमज्याविधि ही से इनका भी है जैसा लल्लाचार्यकृत है। शिष्यधीवृद्धिद में लल्लोक्त साधन अधोलिखित है।

स्पर्शादिकालजनतोत्क्रमशिञ्जिनीभिः क्षुण्णाक्षभा पलभवश्रवणेन भक्ता।
चापानि पूर्वनतपश्चिमयोः क्रमेण सौम्येतराणि समवेहि यथाक्रमेण॥
ग्राह्यात्सराशित्रितयाद् भुजज्याग्यस्ता ततः प्राग्वदपक्रमज्या।
तस्या धनुः सत्रिगृहेन्दु दिक् स्यात्क्षेपो विपातस्य विधोर्दिशि स्यात्॥
अपक्रमक्षेपपलोद्भवाना युतिः क्रमादेकदिशां कलानाम्।
कार्यो वियोगोऽन्यदिशां ततो ज्या ग्राह्या भवेत्सा वलनस्य जीवा॥

सिद्धान्तशेखर में श्रीपति ने भी वलनों के आनयन इसी तरह किये है, आयनवलन और आक्षवलन के सस्कार करने से स्पष्ट वलन होता है। लेकिन लल्लाचार्य वटेश्वराचार्य और, श्रीपति आचार्य आयनवलन आक्षवलन और शर इन तीनों के सस्कार (योग और वियोग) रूप स्पष्ट वलन कहते हैं, शर सस्कार जो किये हैं सो ठीक नहीं है 'वलनानयने क्षप शिलोचैस्ते कुबुद्धय' इत्यादि से भास्कराचार्य ने उसका खण्डन युक्तियुक्त किया है। उन आचार्यों के उत्क्रमज्या प्रकार से साधित वलनों के खण्डन भी उनके बहुत पाण्डित्यपूर्ण है। कमलाकर ने सिद्धान्ततत्त्वविवेक में आक्षवलन और आयनावलन के बिना ही स्पष्ट वलनानयन किये हैं जो बहुत ही सुन्दर है। अङ्गुलिप्तानयन भी किसी आचार्य का ठीक नहीं है, वटेश्वराचार्य ने उन्नत कालानुपात से उसका आनयन किया है। श्रीपति और भास्कराचार्य दो प्रकार से (शङ्क्वनुपात से और उन्नत कालानुपात से) उसका आनयन किया है। भास्कराचार्य कहते हैं कि शङ्क्वनुपात से जो फल आता है वह सूक्ष्म है और उन्नत कालानुपातागत फल स्थूल है, लेकिन सूक्ष्मभाव और स्थूलत्व का ज्ञान होना बहुत कठिन है। भास्कराचार्य को कैसे उसका पता चला सो नहीं कह सकते हैं। इस ग्रन्थ में चन्द्रग्रहण परिलेख रविग्रहणाधिकार में परिलेखविधि नामक अध्याय में है रविग्रहणाधिकार ही के अन्तर्गत पर्वज्ञान विधिनामक पञ्चमाध्याय है, परन्तु सिद्धान्तशेखर में सूर्यग्रहणाध्याय के बाद पर्वसम्भवाध्याय है, सिद्धान्तशिरोमणि में और सिद्धान्ततत्त्वविवेक में चन्द्रग्रहणाधिकार से पहले पर्वसम्भवाधिकार है, इन भिन्न भिन्न लेखक्रम में अपनी-अपनी रुचि ही कारण कह सकते हैं।

इस पुस्तक के सम्बन्ध मे

सन् १९४१ मे मेरे मन मे विचार उत्पन्न हुआ, कि भारत के छ शास्त्रो मे से नेत्ररूप ज्योतिषशास्त्र की ओर भारतीय जनता का कोई ध्यान नहीं है जिस कारण यह दिन-प्रतिदिन अवनति की ओर जा रहा है, क्यो न इसकी रक्षा की जाय। तभी मैंने प्रतिज्ञा की कि यथाशक्ति मैं अपने जीवन मे ज्योतिषशास्त्र की उन्नति के लिये कार्य करू गा। यह कार्य कोई लघु कार्य नही था, क्योकि इसमे ज्योतिष का प्रचार, प्राचीन हस्तलिखित ग्रथो का प्रकाशन एव भारत तथा अन्य देशो, विभिन्न राज्यो एव स्थानो पर उपेक्षित पडी हुई ज्योतिष पुस्तको की खोज तथा उनका सम्पादन, मुद्रण एव प्रकाशन आदि कार्य है। इस वृहत् कार्य के साधन के लिए तो 'सस्था' की आवश्यकता होती है जो इस कार्य को अग्रसर करे तथा शुभ परिणाम तक पहुचा सके। अत तभी एक सस्था स्थापित करने का विचार आया और ५ दिसम्बर सन् १९४३ को लाहौर के ओरियण्टल कालेज के प्रिंसिपल डा० लक्ष्मणस्वरूप डी लिट् महोदय द्वारा 'कुशल ज्योतिष कार्यालय' नामक सस्था का उद्घाटन कराया। उद्घाटनकाल मे गोस्वामी ईश्वरदास जी (भारत बैंक के डिस्ट्रिक मैनेजर) ने सभा की अध्यक्षता की।

उन्ही दिनो ज्योतिष का कार्य आरम्भ कर दिया और ज्योतिष के तीन अगो— सिद्धान्त, होरा, सहिता में से होरा शास्त्र की, आचार्य हेमप्रभ सूरी रचित 'त्रैलोक्यप्रकाश' नामक पुस्तक को पाठान्तरो सहित हिन्दी टीकायुक्त १९४५ मे प्रकाशित किया।

तदनन्तर सन् १९४७ मे भारत स्वतन्त्र हुआ तथा पजाब का विभाजन हो गया। तब हमने भी पजाब छोडकर भारत की राजधानी दिल्ली मे अपना ज्योतिष अनुसन्धान केन्द्र बनाया। ज्योतिष को पूर्ण रूप से समुन्नत करना एक व्यक्ति के वश का कार्य नही जब तक कि इस कार्य मे जनता का सहयोग प्राप्त न हो। यह विचार कर मैंने श्री बृजलाल जी नेहरू एव अन्य सदस्यो के समक्ष जनता सरक्षण सस्था (Public body) बनाने का एक प्रस्ताव रखा और उन कृपालु महानुभावो ने "इण्डियन इन्स्टीच्यूट आफ अस्टोनोमिकल सस्कृत रिसर्च' नामक सस्था का सूत्रपात किया उत्तर प्रदेश के भूतपूर्व मुख्यमन्त्री माननीय श्री डा० सम्पूर्णानन्द जी के करकमलो से इस बृहज्ज्योतिष सस्था का उद्घाटन कार्य सम्पन्न हुआ। तदनन्तर सस्था ने अपने कार्य का ज्योतिष-विज्ञान 'नामक' मासिक पत्रिका के रूप में श्रीगणेश किया।

आचार्य वटेश्वर का नाम मैंने अलबेरूनी की भारतयात्रा मे पढा। अलबेरूनी ने लिखा है कि वटेश्वर-सिद्धान्त नाम का एक उत्तम ग्रन्थ भारत मे है जिसमे ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त पर आलोचना की गई है। मेरे मन मे उत्कण्ठा थी कि यह ग्रन्थ मुझे प्राप्त हो जाये।

इसके बाद "गणकतरगिणी" मे भी महामहोपाध्याय सुधाकर द्विवेदी रचित के 'स्वाध्याय' से १९ वें पृष्ठ पर वटेश्वराचार्य प्रणीत 'वटेश्वरसिद्धान्त' के न प्राप्त होने की विवशता देखी। इससे उत्कण्ठा और भी बढी। इस पुस्तक के लिये मैंने प्रयत्न शुरू किया। भारत मे

बिहार, काश्मीर एवं अन्यान्य राज्यों में मैंने जाकर हस्तलिखित प्रति की प्राप्ति का प्रयत्न किया किन्तु कहीं भी यह पुस्तक उपलब्ध न हुई। अन्त में मैंने इसकी खोज लाहौर-स्थित विश्वविद्यालय के बृहत् पुस्तकालय में की और वहां मेरा मनोरथ पूर्ण हुआ। मुझे वहां हस्तलिखित प्रति उपलब्ध हो गई। तदनन्तर मैंने श्री जगदीश शास्त्री एम ए एम ओ एल द्वारा 'वटेश्वरसिद्धान्त' की प्रति को वहीं बैठकर नकल करवाया। इस प्रकार यह महान् ज्यौतिषग्रन्थ प्राप्त हुआ।

पुस्तक तो प्राप्त हो गई किन्तु उसी रूप में मुद्रण कराने से कोई लाभ नहीं दिखाई देता था इसलिए मैंने उसे भाष्य, उपपत्ति और हिन्दीभाषानुवाद सहित छापने का विचार किया किन्तु पर्याप्त समय तक इस कार्य को सुसम्पन्न करने के लिए किसी योग्य ज्यौतिषी की खोज में रहा, अन्त में श्री पंडित विश्वनाथ झा द्वारा सिद्धान्त ज्योतिष के प्रकाण्ड पंडित मुकुन्दमिश्र ज्यौतिषाचार्य का पता चला। उन्हें इस कार्य को सुसम्पन्न करने के लिये मैंने बुलाया। उन्होंने अपने महान परिश्रम से इस पुस्तक के सम्पादन, संस्कृत भाष्य, उपपत्ति और हिन्दी टीका आदि में मुझे पूर्ण सहयोग प्रदान किया।

इस प्रकार यह पुस्तक अभी तीन अधिकार के इस विशाल स्वरूप में आज आपके समक्ष प्रस्तुत है। इससे ज्योतिष के प्रचार में कितना कार्य होगा तथा इस पुस्तक से ज्योतिष महानुभाव कितने अग्रसर हो सकेंगे—यह बात विद्वन्मण्डली पर ही छोड़ता हूँ।

आभार ग्रहण

इस कार्य में ज्योतिष के परम विद्वान् श्री पं० विश्वनाथ झा ज्योतिषाचार्य ने मुझे जो होरा तथा गणितकार्य में सहयोग प्रदान किया है उसके लिए मैं उनका हृदय से आभार स्वीकार करता हूँ। प्रूफ पढ़ने में महान् सहायक विद्याभास्कर लक्ष्मीनारायण शास्त्री तथा इस कार्य की सम्पन्नता के लिये मैं भारत सरकार के सांस्कृतिक व वैज्ञानिक विभाग तथा प्रांतीय सरकारों और अपने संस्था के सदस्यों का अनुगृहीत हूँ।

भृगु आश्रम
नई देहली
२१-१० ६१

विदुषाम् अनुचर
रामस्वरूप शर्मा

भूमिका

आनन्दपुरनामके नगरे श्रुतिस्मृति-धर्माचारविचारकुशलो महदत्तभट्ट-नामको द्विज आसीत्, तत्पुत्रो लब्धग्रहप्रसादः सकलज्योतिपिकसार्वभौम प्रस्तुत-ग्रन्थ (वटेश्वरसिद्धान्त) रचयिताऽतिप्रतिभावाञ्छ्रीमान् वटेश्वराचार्यो द्विशून्याष्ट-(८०२) मिते शाकवर्षे जन्म लेभे। आनन्दपुर प्राय. पञ्चनद (पञ्जाब) प्रदेशान्त-र्गतमस्तीति जनश्रुत्या ज्ञायते। स्वनामसज्ञिते सिद्धान्ते (वटेश्वरसिद्धान्ते) प्रत्ये-काधिकारसमाप्तिस्थले 'इति श्रीमदानन्दपुरीयमहदत्तभट्टसुत वटेश्वरविरचिते स्वनामसज्ञिते स्फुटसिद्धान्ते' इत्यादि ग्रन्थकारलेखादपि ज्ञायते यदयमा-नन्दपुरवास्तव्य आसीत्। पञ्चनदप्रदेशान्तर्गत यदानन्दपुर तदेवैतस्याऽनन्द-पुरमुत तद्भिन्न तन्निर्णायकप्रमाणाभावान्निर्णेतु न शक्यते। अस्तु, जन्मसमया-च्चतुर्विंशतिमिते वयसि प्रस्तुतग्रन्थ स्वनामसज्ञित सिद्धान्त ग्रन्थकारो रचितवा-न्निति तदुक्तग्रन्थवचनाद् ज्ञायते, तदुक्तश्लोकश्चय था—

'शकेन्द्रकालाद् भुजशून्यकुञ्जरै (८०२) रभूदतीतैर्मम जन्म हायनैः।
अकारि सिद्धान्तमितैः स्वजन्मनो मया जिनाब्दै (२४) र्द्युसदामनुग्रहात् ॥"

अथ निस्कन्धज्योतिप (सिद्धान्त सहिता-होरा) शास्त्रनिपुणात्स्वसमये-ऽद्वितीयात् काव्यकलाभिज्ञाज्ज्योतिपिकाच्छ्रीपते (जन्मसमय शकाब्द ९२१ रप्यतिप्राचीन आसीदिति द्वयोर्जन्मसमयावलोकनेनैव स्फुटीभवति। लुप्तप्रायस्यैत त्सिद्धान्तरत्नस्य विद्वत्समाजेषु प्रचूर प्रचार आसीदिति भास्कराचार्यविरचित सिद्धान्तशिरोमणेष्टिप्पणीस्थात् 'कजन्मनोऽष्टौ सदला समाययु' वटेश्वरसिद्धान्तीय वचनाद् ब्रह्मायुपि तत्सिद्धान्तीयग्रहादिभगणपाठदर्शनाच्च ज्ञायते यद् 'अतो युज्य कुर्वते ता पुनर्येऽप्यसत्स्वेपु तेभ्यो महद्भ्यो नमोऽस्तु' सिद्धान्तशिरोमणेस्थ भास्क रकृतोऽयमाक्षेपो वटेश्वराचार्यं लक्ष्यीकृत्यैनास्ति, गणकतरङ्गिण्यामेतत्सिद्धान्त-ग्रन्थविपये महामहोपाध्याय-पण्डितसुधाकरद्विवेदिमहोदयलेखादप्यस्य प्रचुर-प्रचारे न कश्चित्सन्देहः। वटेश्वराचार्य आर्यभटमतपोपको ब्रह्मगुप्तमतविरोधी चाऽसीत्। आर्यभटीयगीतिकापादे आर्यभटकृतमङ्गलाचरणस्य—

"ब्रह्मकुशशिबुध-भृगु-रवि-कुज-गुरु-कोण-भगणान्नमस्कृत्य।
आर्यभटस्त्विह निगदति कुसुमपुरेऽभ्यर्चितं ज्ञानम् ॥"

अस्यानुरूपमेव ग्रहकक्षास्थितिक्रमानुसारं मङ्गलाचरणं स्वसिद्धान्ते कृतवान् । यथा—

"ब्रह्मावनीन्दु-बुध-शुक्र-दिवाकरार-जीवार्क-सूनु-भगुरून् पितरौ च नत्वा ।
ब्राह्मं ग्रहर्क्षगणितं महदत्तसूनुर्वक्ष्येऽखिलं स्फुटमतीव वटेश्वरोऽहम् ॥"

परन्त्वार्यभटीयगीतिकापादे एकस्मिन् युगे ४३२०००० भूभगणाः = १५८२२३७५०० एतावन्तो भवन्तीति कथयित्वा "अनुलोमगतिर्नौस्थः पश्यत्यचलं विलोमगं यद्वत् । अचलानि भानि तद्वत्समपश्चिमगानि लङ्कायाम्" अनेन भूभ्रमणं स्वीकरोत्यार्यभटः । परं वटेश्वरेण भूभ्रमणं न स्वीक्रियते, तत्खण्डनमपि न क्रियते आर्यभटीयटीकाकारेण परमेश्वरेण कथ्यते यद्वस्तुतः 'स्थिरैव भूमिः' । आर्यभटमतस्यास्य खण्डनं ब्रह्मगुप्तेन कृतम् । यदि कथयिष्यते यद् ब्रह्मगुप्तेन यथाऽन्यमतस्य खण्डनं बहुषु स्थलेषु कृतं तथैवात्रापि कृतम् । आर्यभटमतखण्डनकरणं तस्य भात्रं, परन्तु तन्नहि । आर्यभटेन स्वयमपि पूर्वम् 'अनुलोमगतिर्नौस्थ' इत्यादि लिखित्वा

"उदयास्तमयनिमित्तं नित्यं प्रवहेण वायुना क्षिप्तः ।
लङ्कासमपश्चिमगो भपञ्जरः स ग्रहो भ्रमति ॥"

अनेन भूभ्रमणं नहि स्वीक्रियते । आर्यभटस्य स्वमनस्यप्येवं 'पृथ्वी स्वाक्षोपरि भ्रमति' दृढधारणा नाऽसीऽदिति तल्लेखादेव ज्ञायते । ग्रहादिभगणादीनां साधनार्थं गणितं भूभ्रमणाधारकमस्तीत्येतदर्थं काऽपि प्रक्रिया नावलोक्यते तस्मादेव कारणात्तन्मतसमर्थनेन वटेश्वराचार्येण भूभ्रमणविषयकं तन्मतं नाङ्गीकृतम् । वस्तुतस्तु आकाशे ये ग्रहादिपिण्डास्ते परस्पराऽऽकर्षणवशतश्चलन्त्येव परन्तु गणितज्ञा ग्रन्थरचयितारो वा यत्र पिण्डे निवसन्ति ते तं पिण्डं तदितरांश्च ग्रहादिपिण्डान् भ्रमणशीलान् स्वीकुर्वन्ति । पृथिव्याः स्थिरत्वस्वीकरणेऽप्ययमेव हेतुः, आर्यभटसदृशमेवास्माकं प्राचीना अर्वाचीनाश्चाऽऽचार्या भूभ्रमणं जानन्ति स्म परन्तु यथाऽऽर्यभटेन स्पष्टशब्देन भूभ्रमणं व्यलेखि तथा तदुल्लेखे पूर्वकथितकारणमेव कारणम् । अस्तु, मङ्गलाचरणानन्तरं वटेश्वराचार्यं मुन्यादिरचितैतद्विषयकग्रन्थबलेनाऽस्मिन् ग्रन्थरचनक्षमत्वं प्रदर्श्य ब्राह्मस्फुटसिद्धान्तोक्तयुगादिमानं ग्रहभगणादिमानञ्च किमपि समीचीनं नास्ति तन्मतनिराकरणार्थं मुन्यादिरचितशास्त्रसमतग्रन्थरचनाऽऽवश्यकताञ्च ज्ञात्वा तद्रचनां करोतीति—

'श्रुत्युत्तमाङ्गमिदमेव यतो नियोगः कालेष्वनर्तु-तिथि-पर्व दिनादि पूर्वे ।
वेदो ककुब्भवन-कुण्ड-तदन्तरादि ज्ञेयं स्फुटं श्रुतिविदा बहुमत्यमस्मात् ॥'

अनेन स्वरचितज्योतिषग्रन्थे (वटेश्वरसिद्धान्ते) वेदस्य प्रधानाङ्ग (नेत्र)-त्वं प्रदर्शयति, परमेतस्य वेदस्य प्रधानाङ्गत्वाल्लेपामेतत्पठनेऽधिकार एतस्मिन् विषये यथान्यैराचार्यैः कथितं तथाऽनेन न कथ्यते । एतद्विषये भास्करेणैव कथ्यते ।

तस्माद् द्विजैरध्ययनीयमेतत्पुण्यं रहस्यं परमं च तत्त्वम् ।
यो ज्यौतिषं वेत्ति नरः स सम्यक् धर्मार्थकामान् लभते यशश्च ॥

महाभाष्यकारेणापि 'ब्राह्मणेन निष्कारण षडङ्गो वेदोऽध्येतव्यो ज्ञेयश्च' कथ्यते, एतद्विषये सिद्धान्तशेखरादिग्रन्थेषु बहुलिखितमस्ति, एतदाचार्यकथितसिद्धान्तग्रन्थलक्षणेऽपि भास्करकथिततल्लक्षणत किञ्चिन्न्यूनत्वमस्ति, भास्करोक्ते 'प्रश्नास्तथा सोत्तरा , यन्त्रादि यत्रोच्यते, इत्यस्ति परमत्र सिद्धान्ते प्रत्येकाधिकारे तत्तदधिकारसम्बन्धिन प्रश्ना सन्ति, तदुत्तराश्च न सन्ति, यन्त्रादेरपि चर्चा नास्ति, अन्येषु प्राचीनज्योतिषसिद्धान्तग्रन्थेषु नवीनसिद्धान्तग्रन्थेषु च 'चतुर्युगसहस्रेण ब्रह्मणो दिनमुच्यते' इति पुराणकथितब्रह्मदिनतुल्यमेव ब्रह्मदिन वर्णितमस्ति परन्त्वार्यभटीये वटेश्वरसिद्धान्ते चाऽधिकसहस्रयुगैस्तद्दिन कथ्यते, तयोर्मतेन युगचरणमानान्यपि समानान्येव सन्ति, किन्त्वेतदतिरिक्ताचार्यमतेन युगचरणे स्वसादृश्यमस्ति, मनुमानेऽपि मतभेदोऽस्ति पूर्वकथितसिद्धान्तग्रन्थद्वये द्विसप्ततियुगैरेको मनुरुक्तोऽस्ति, पुराणेषु वटेश्वरार्यभटातिरिक्ताऽऽचार्यसिद्धान्तेषु चैकसप्ततियुगैर्मनुरुक्तोऽस्ति ।

'चत्वार्याहु सहस्राणि वर्षाणा तु कृत युग' मित्यादिमनुस्मृतिकथितवचनप्रामाण्याद्वैवमाने सत्ययुगचरणमानम् = ४०००, त्रेतायुगचरणमानम् = ३०००, द्वापरयुगचरणमानम् = २०००, कलियुगचरणमानम् = १०००, एतेषा योगकरणेन युगमानम् = ४००० + ३००० + २००० + १००० = १००००, तथा "युगस्य दशमो भागश्चतुस्त्रिद्व्येकसङ्गुण । क्रमात्कृतयुगादीना षष्ठाश सन्ध्ययो स्वक " इति सूर्यसिद्धान्तोक्तवचनेन सन्ध्यासन्ध्याशसहितयुगचरणा = ४८००, ३६००, २४००, १२००, तथैषा क्रमश सन्ध्यासन्ध्याशा = ८००, ६००, ४००, २०० मनुस्मृत्यादिस्मृतिग्रन्थेषु सन्ध्याशरहित केवल शुद्धमेव सत्ययुगादिचरणमान कथितम् । यदि तानि सत्ययुगादिचरणमानानि षष्ट्यधिकशतत्रयें ३६० गुण्यन्ते तदा भास्करादिकथिततन्मानानि समागच्छन्ति, 'युगाना सप्तति सैका मन्वन्तरमिहोच्यते' इत्युक्तयनुसारेण ७१ युग = १ मनु , परन्त्वेकस्मिन् ब्रह्मदिने चतुर्दश मनवोऽत १४ मनव = ७१ युग × १४ = ९९४ युग, परन्तु 'सन्धय स्युर्मनूना कृताब्दै समा ' इत्युक्तेश्चतुर्दशमनुसम्बन्धिसन्ध्यासन्ध्याशमानम् = ६ युग, अत १४ मनु + सन्ध्या-सन्ध्याश = ९९४ युग + ६ युग = १००० युग = १ ब्राह्मदिनम् = १ कल्प । अत पुराणादिकथितब्राह्मदिनानुकूलमेव प्राचीनाचार्यनवीनाचार्यकथित ब्राह्मदिन सिद्धम् । आर्यभटमतेन द्विसप्ततियुगैरेको मनुर्भवत्यतस्तन्मतेन ब्राह्मदिनम् = १००८ युग वटेश्वराचार्योऽप्येतदेव स्वीकरोति । अत्र मताधिक्याभावात्स्मृत्यादिकथितविरुद्धत्वाच्च ब्रह्मगुप्तेनाऽस्यखण्डनमकारि, कलियुगादित पूर्वयुगचरणत्रय व्यतीतमिति ब्रह्मगुप्तोक्तस्य खण्डन वटेश्वरेणैव क्रियते—

"युगपादान् जिष्णुसुतस्त्रीन् यातानाह कलियुगादौ यत् ।
तस्य द्वापरपादो युगगतये ये स्फुटो नाऽस्तः ॥"

परं वटेश्वरेणापि तु 'युगत्रिवृन्द सदृशाऽड्घ्रयस्त्रयः' पद्येनानेन ब्रह्मगुप्तोक्तमेव कथ्यते । वटेश्वरेण किं खण्डयते इति तैरेव कथयितुं शक्यते । ब्रह्मगुप्तोक्तभूपरिध्यानयनस्यापि खण्डनमनेन क्रियते । वस्तुतो ब्रह्मगुप्तोक्त तदानयनं समीचीनं नास्ति, ब्रह्मगुप्तोक्तबहुविषयाणां खण्डनं वटेश्वरेण स्वसिद्धान्ते कृतं परं तत्समीचीनं नवेति विवेचकाः स्वयमेव विचारयन्तु । आर्यभटमतखण्डनार्थं ब्रह्मगुप्तेन यादृशाना प्रयोगः यथाऽऽर्यभटमतखण्डनार्थं ब्रह्मगुप्तोक्तवाक्यानि—

"स्वयमेव नाम यत्कृतमार्यभटेन स्फुटं स्वगणितस्य ।
सिद्धं तदस्फुटत्वं ग्रहणादीनां विसंवादात् ॥
जानात्येकमपि यतो नार्यभटो गणितकालगोलानाम् ।
न मया प्रोक्तानि ततः पृथक् पृथक् दूषणान्येषाम् ॥
आर्यभटदूषणानां संख्या वक्तुं न शक्यते यस्मात् ।
तस्मादयमुद्देशो बुद्धिमताऽन्यानि योज्यानि ॥"

स्वसिद्धान्ते ब्रह्मगुप्तमतखण्डनविषये वटेश्वरोक्तवाक्यानि—

"भानुभुजादियोगाच्चन्द्रे शुक्लं प्रकल्पितं तेन ।
नो लग्नभुजानुगतं वेत्ति न शुक्लं सुतो जिष्णोः ॥
जिष्णुसुतं दूषणानां संख्यां वक्तुं न शक्यते यस्मात् ।
तस्मादयमुपदेशो बुद्धिमताऽन्यानि योज्यानि ॥
एकमपि न वेत्ति यतो जिष्णुसुतो गणितगोलानाम् ।
न मया प्रोक्तानि ततः पृथक् पृथग् दूषणान्येषाम् ॥"

वेधविधिज्ञस्य ब्रह्मगुप्तस्य यादृशोऽनेकविवेचनात्मकविषयसम्पन्नो विविधतात्त्विकविचारयुक्तो ब्राह्मस्फुटसिद्धान्तोऽस्ति तादृश एव वटेश्वरस्यापि सिद्धान्तोऽस्ति, एतयोर्महारथिनोराचार्ययोरपूर्वप्रतिभाया कस्यापि मनसि लेशमात्रोऽपि सन्देहो न भवितुमर्हति । एतदाचार्यद्वयानन्तरं ये केचन ग्रन्थरचयितार आचार्या अभूवन् ते सर्वे बहुषु स्थलेषु स्वस्वसिद्धान्तग्रन्थे एतदाचार्यद्वयसिद्धान्तग्रन्थस्य विषयप्रतिपादनमेव कृतवन्त, ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त-वटेश्वरसिद्धान्तयोर्दर्शनेनैतदतिरिक्तसिद्धान्तग्रन्थदर्शनेन च मत्कथनमिति सत्यमसत्यं वेत्यस्य ज्ञानं भविष्यति तद्विदां विवेचकानाम् । मानवं दैवजैवं पैत्र्यार्क्षब्राह्मसौरेन्दवसावनानि नव मानानि सर्वेषु सिद्धान्तग्रन्थेषु प्रतिपादितानि सन्ति, तेषु चतुर्भि (सौरचान्द्रसावननाक्षत्रै) रेव मानैर्मानवाना सर्वे व्यवहाराश्चलन्तीति भास्करादिसिद्धान्तग्रन्थेषु वर्णिता सन्ति, किन्त्विह सिद्धान्ते पुरोदीरितनवविधमानैः कानि कानि कार्याणि व्यवहृतानि भवन्तीति वर्णितानि सन्ति यथा—

"पर्वावमर्ततिथिकरणाधिमासकज्ञानमैन्दवान्मानात् ।
प्रभवाद्यब्दा षष्टिर्युगानि नारायणादीनि ॥
आङ्गिरसादेतेषा ज्ञप्ति पैत्र्याच्च पैतृको यज्ञ ।
कामलजासुरदैवैस्तेषामायु परिच्छित्ति ॥
अध्ययनर्तनियमसूतकमखव्रतय सच्चिकित्सा च ।
होराभूहूर्तयामा प्रायश्चित्तोपवासाश्च ॥
आयुर्दायश्च नृणा गमनागमने च सावनान्मानात् ।
ऋत्वयनाऽऽप्लुवदब्दा युग क्षयर्द्धो दिनस्य सौरात्स्यु ॥
ज्याद्याविधयश्चार्क्षाद्धृक्षग्रहभगणोद्भवाश्च नाक्षत्रात् ।
मासाश्च वासराणा सज्ञा सदसत्फलावगति ॥"

अत्र सिद्धान्ते अहर्गणग्रहभगणादिसावनानि युगमानादेतत्साधितानि सन्ति, यदि युगीयग्रहभगणादय कल्पीया अपेक्षिता भवेयुस्तदा ते युगीया भगणादय एकायुते १०००० न गुणनीया, यदि च कल्पीया ग्रहभगणादयो ब्रह्मायुष्यपेक्षिता भवेयुस्तदा ते कल्पीया भगणादय द्विसप्ततिसहस्रै ७२००० गुणनीया, यथा युगमानम्=४३२००००, कल्पप्रमाणम्=४३२००००००००

अत $\frac{\text{कल्पवर्ष}}{\text{युगवर्ष}} = \frac{४३२००००००००}{४३२००००} = १००००$ तेन कल्पवर्ष=युग × १००००, तथाच

$\frac{\text{ब्रह्मायुर्वर्ष}}{\text{कल्पवर्ष}} = \frac{४३२०००००००० \times २ \times ३६० \times १००}{४३२००००००००} = ७२०००$ ब्रह्मायुर्वर्ष= ७२००० × कल्प, एतेन पूर्वोक्तसिद्धिर्भवति । अत्र सिद्धान्ते (वटेश्वरसिद्धान्ते) ऽहर्गणानयनमप्यनेकै प्रकारै कृतमस्ति, तेषु कुत्रापि कुत्रापि पद्ये ष्वशुद्धयोऽपि वर्त्तन्ते अहर्गणादभीष्टवारज्ञानार्थमहर्गणे सप्तभक्ते ऽवशिष्टे सैकक्ते सति वर्त्तमानवारो भवत्येवमेव सर्वत्र दृश्यते, परन्तु सर्वदा सैककरण न भवति स्थितिविशेषे निरेककरणमप्यावश्यक भवति, एतद्विषये सिद्धान्तशिरोमणौ भास्कराचार्येणैव वथ्यते । यथा—

'अभीष्टवारार्थमहर्गणश्चे त्सैको निरेकस्तिथयोऽपि तद्वदित्यादि' सिद्धान्तशेखरे श्रीपतिनापि बहुभि प्रकारैरेनत्साधन कृतमस्ति, परन्तु तस्मा (अहर्गणात्) दभीष्टवारार्थं वटेश्वराचार्यस्यैव मार्ग (सैककरणरूप) स्तेनाऽपि गृहीतोऽस्ति, सूर्यसिद्धान्ते सैकनिरेककरणसम्बन्धे किमपि नहि प्रतिपादितमस्ति प्रस्तुतसिद्धान्ते लघ्वहर्गणानयनमप्यनेकै प्रकारैर्वटेश्वरेण कृतमस्ति, ब्राह्मस्फुटसिद्धान्तेऽपि तदानयनमस्ति, किन्तु सिद्धान्तशेखरे तदानयन दृग्गोचर न भवति, भास्कराचार्येणापि सिद्धान्तशिरोमणौ तदानयन कृतमस्ति, यद्यपि लघ्वहर्गणानयन कस्यापि समीचीन नास्तीति तदानयनावलोकनेन स्फुटीभवति, तथाप्येकमपूर्वचमत्कारपूर्णं तदानयनमस्ति, अत्र सिद्धान्ते वर्षेशमासेशकालहोरेश ज्ञानार्थं तत्क्रमप्रदर्शनार्थं च ये विषय सन्ति तदनुरूपा एव सिद्धान्तशेखरेऽपि

सन्ति, ब्रह्मस्फुटसिद्धान्तेऽपि तद्दर्शनेन ज्ञायते यद् ब्राह्मस्फुटसिद्धान्ताद् वटेश्वरसिद्धान्ताद्वोद्धृत्य सिद्धान्तशेखरे लिखिता । ब्रह्मगुप्तोक्तरविसंक्रान्तिकालस्यापि खण्डनं वटेश्वरेण कृतमस्ति । यथा—

> संक्रान्तिर्घर्मांशो समस्तसिद्धान्ततन्त्रबाह्यास्त ।
> कुदिनानामज्ञानान्मन्दोच्चस्य स्फुटो नाऽर्के ॥
> कल्पितभगणैर्यु चरा कल्पितकुदिनै प्रकल्पितैश्च युगं ।
> परिधीनामज्ञानाद् दृष्टिविरोधास्स्फुटा नाऽस्त ॥

वटेश्वराचार्यमते ब्रह्मगुप्तोक्तयुगमानमेव समीचीनं नास्ति तदा तत्सम्बन्धेन साधितग्रहभगणादिकानामसमीचीनत्वात्तत्साधितग्रहादीनामप्यसमीचीनत्वादशुद्धस्फुटरविवशेन साधित संक्रान्तिकालोऽप्यशुद्ध एव भवेत् । वटेश्वरोक्तमिदं तदैव समीचीनं भवितुमर्हति यदा ब्रह्मगुप्तोक्तयुगादिमानं समीचीनं न भवेत् । आर्यभटोक्तयुगादिमानमेव वटेश्वराचार्येण स्वीक्रियते, ब्रह्मगुप्तोक्तं तद्युक्तियुक्तं नहि, मया यत्कथ्यते तदेव युक्तियुक्तमेतदर्थं किमपि प्रबलप्रमाणं नोपस्थाप्यते तर्हि कथमेतत्कथनं मान्यं भवेत् । स्मृतिकारोक्तयुगादिमानैं सह ब्रह्मगुप्तोक्तमानानां सामञ्जस्याद्वटेश्वरस्वीकृतमानानाञ्चाऽसामञ्जस्याद्वटेश्वरकृतखण्डनं दुराग्रहपूर्णमस्तीति मन्मतम् । विवेचकाः सुधियः स्वयं विवेचयन्तु । एतस्याऽऽचार्यस्य मध्यमाधिकारीय प्रश्नाध्यायोऽतीव शोभनोऽस्ति, तत्र विलक्षणा प्रश्ना सन्ति, ब्राह्मस्फुटसिद्धान्तेऽप्येतत्सदृशा एव बहव प्रश्ना सन्ति यदवलोकनेन वटेश्वरोक्ता प्रश्ना स्वकीया ब्रह्मगुप्तोक्ताऽधारका वेत्यस्य निर्णयं विज्ञा ज्यौतिषिका स्वयमेव कुर्वन्त्विति ॥

स्पष्टाधिकार

अत्राधिकारे ब्रह्मगुप्तादिभि सर्वैराचार्यैर्वृत्तस्यैकस्मिन् पादे तत्त्वाश्वि २२५ कलावृद्धया चापानां चतुर्विंशतिसंख्यका जीवा साधिता, परं वटेश्वराचार्यं षट्पञ्चाशत् (५६) संख्यका सविकला कलात्मकज्या साधिता । इष्टचापज्यानयनविधि सर्वेषां समान एव, एतन्मते त्रिज्या=३४३८'। ४४", भास्कराचार्येण भोग्यखण्डस्पष्टीकरणं कृतम् । वटेश्वराचार्येण भोग्यखण्डस्पष्टीकरणस्य नाम न कथ्यते परन्तु तदुक्तशेषांशज्या $= \frac{\text{शे}}{\text{प्रचा.}}\left(\frac{\text{यो}}{\text{२}} \mp \frac{\text{अ} \times \text{शे}}{\text{२प्रचा.}}\right)$ =शेषचापसज्यावृद्धि, स्वरूपे गतैष्यज्यान्तरार्धस्थले गतैष्यखडान्तरार्धग्रहणेन प्रथमचापस्थले दशांशग्रहणेन च $\frac{\text{यो}}{\text{२}} \mp \frac{\text{अ} \times \text{शे}}{\text{२प्रचा}} = \frac{\text{यो}}{\text{२}} \mp \frac{\text{अ} \times \text{शे}}{\text{२०}}$ =भास्करोक्तस्पष्टभोग्यखड, शेषांशगुणकाङ्क स्पष्टमेव भास्करोक्तस्पष्टभोग्यखड भवेत् । शेषांशज्याशब्देन शेषचापसम्बन्धिनी ज्यावृद्धिर्बोध्या, सिद्धान्तशेखरेऽत्र विषये श्रीपतिना किमपि न कथ्यते । परं ब्राह्मस्फुटसिद्धान्ते तदानयनमस्त्यतो भास्करोक्त-भोग्यखण्डस्पष्टीकरणप्रकारस्तस्य स्वकीयो नास्तीति कथने न कश्चित्सन्देह । तन्मूलं ब्राह्म-

स्फुटसिद्धान्तोक्त भोग्यखण्डस्पष्टीकरणं वटेश्वरोक्त शेषचापसम्बन्धिज्यावृद्ध्यानयनं वा भवितुमर्हति । वटेश्वरोक्ताद्भास्करोक्तप्रकारं सूक्ष्मं किन्त्वत्रा (भास्करप्रकारे) पि यहुस्थौल्यमस्तीति तदुपपत्तिदर्शनेन ज्ञायते । अन्याचार्योक्तग्रहस्पष्टीकरण सदृश एव वटेश्वरस्याप्यस्ति, मन्दरविचन्द्रौ स्वस्वमन्दफलेन संस्कृतौ स्फुटौ भवतः । किन्तु कुजादिग्रहस्पष्टीकरणार्थं फलचतुष्टय(मन्दफलार्धं,शीघ्रफलार्धं मन्दफल, शीघ्रफलञ्च) सर्वैराचार्यैरभिहितम् । मन्दफलार्धशीघ्रफलार्धसंस्कारयोः किमपि कारणं गोलेनावलोक्यते, एतद्विषये सर्वैराचार्यैः 'अत्राऽऽगम एव प्रामाण्यम्' कथ्यते। मन्दफलशीघ्रफलयोः संस्कारः कुजादिमध्यमग्रहे परमाऽऽवश्यकः, परं तत्स्फुटीकरणार्थं तत्फलद्वयार्धमपि सर्वैः संस्क्रियते । ग्रहस्पष्टीकरणविषये कस्याऽप्याचार्यस्य शुद्धं स्वतन्त्रं स्वमतं नास्ति । ग्रहाणां मन्दगतिफलानयनं चाऽन्याचार्योक्तसदृशमेव वटेश्वरोक्तमपि, अन्याचार्यापेक्षया भास्करोक्तं तदानयनं सूक्ष्ममस्ति, वटेश्वराचार्येण नतकर्मसम्बन्धे किमपि न लिखितम् । सूर्यसिद्धान्तेऽपि तदानयनोल्लेखो नास्ति परमिति समीचीनं न भवितुमर्हति, स्पष्टीकृतग्रहा भुजान्तरान्तरादिसंस्कारसंस्कृता स्वगोलस्थाः स्पष्टा भवन्ति, ते ग्रहा यत्र गोलेऽस्माकं दृग्गोचरीभूता भवन्ति तत्रैव तेऽस्माकं स्पष्टग्रहा , स्वगोलस्थस्पष्टग्रहा यावता संस्कारेण संस्कृता अस्माकं स्पष्टग्रहा भवन्ति तस्यैव संस्कारस्य नाम नतकर्म कथ्यते । रविचन्द्रयोर्नतकर्मानयनं ब्रह्मगुप्तोक्तसमतं सिद्धान्तशिरोमणौ भास्करेणाभिहितम् । परमेतदानयनं न समीचीनमिति नतकर्मोपपत्तिदर्शनेन स्फुटं भवति । तथापि तदानयनमादरणीयमेकस्य चमत्कारपूर्णस्याऽऽवश्यकसंस्कारविशिष्टस्य प्रतिपादितत्वात् । एतन्नतकर्म विना सम्पूर्णं ग्रहस्पष्टीकरणं निरर्थकमेवास्तीति कथयितुं शक्यते । यतो येषां ग्रहाणां स्पष्टीकरणार्थं यानि विधानानि सन्ति तैर्यदि ते स्पष्टा न भवेयुस्तदा तद्विधानान्येवासफलानि भवितुमर्हन्ति । तेन यैराचार्यैर्नतकर्मानयनं न कृतं तेषामियं त्रुटिः । ब्रह्मगुप्तभास्कराचार्यौ नतकर्मसाधनद्वारा स्वस्वदूरदर्शिताया परिचयं दत्तवन्तौ । आर्यभटादिप्राचीनाचार्येषु कस्याप्युदयान्तरसंस्कारोपरि दृष्टिपातो नाभूत् । केवलं भास्कराचार्येणैवाहर्गणोत्पन्नग्रहेषूदयान्तरासु सम्बन्धिग्रहचालफलसंस्कारस्याऽऽवश्यकतां ज्ञात्वा तदानयनं कृत्वा संस्कारः कृतः । भास्करोक्तोदयान्तरे किं स्थौल्यं तद्वास्तवानयनं कथं भवेत्सत्परमत्वं च कुत्र भवेदित्यादि सर्वे विषया अत्र ग्रन्थे प्रसङ्गवशाद्यथास्थानं दर्शिता मया, एतेनाऽऽचार्येणोदयान्तरं न कथ्यते । भास्करकथितोदयान्तरस्य मूलं सिद्धान्तशेखरनिप्रश्नाधिकारे श्रीपतिकृत विषुवांशभुजांशयोरन्तरानयनमस्तीति कस्यापि मतमस्ति, परमुक्तग्रन्थस्योक्ताधिकारे तद्दर्शनेन तन्मतं तथ्यं न प्रतिभाति ।। भारतीया ज्योतिर्विदो जानन्ति स्म यच्चलराशेस्तात्कालिकगतिसिद्धान्तं सर्वप्रथमं भास्कराचार्य एव ज्ञातवान् 'फलांशखाङ्कान्तरशिञ्जिनीघ्नी द्राक्केन्द्रभुक्तिरि' त्यादेरुपपत्तिदर्शनेन "दिनान्तरस्पष्टखगान्तरं स्याद् गतिः स्फुटा तत्समयान्तराले । कोटीफलघ्नी मृदुकेन्द्रभुक्तिस्त्रिज्योद्धृता कर्किमृगादिकेन्द्रे ।। तया युतोना ग्रहमध्यभुक्तिस्तात्कालिकी मन्दपरिस्फुटा

स्यान्'' तदुपपत्तिदर्शनेन च तात्कालिकी मन्दपरिस्फुटा स्यादत्र 'तात्कालिकी'-शब्दावलोकनेन च पूर्वोक्तज्यौतिषिकधारणाया पुष्टिर्भवति । एवमेव 'कक्षा-मध्यगतिर्ग्रहेखाप्रतिवृत्तसम्पाते मध्यैव गति स्पष्टा पर फन तत्र खेटस्य' इति भास्करोक्त्या कक्षामध्यगतिर्ग्रहेखाप्रतिवृत्तसम्पाते ग्रहे मन्दस्पष्टस्पष्ट-गत्यो समत्वात्तत्रैव शीघ्रगतिफलाभावो भवितुमर्हति, तत्रैव शीघ्रफलस्यापि परमत्व भवति, चलनकलने चलराशेस्तात्कालिकगत सिद्धान्तोऽस्ति यत्कस्यापि चलराशे परमत्वे परमाल्पत्वे च तात्कालिकी गति शून्यसमा भवति । पूर्वोक्तस्थान स्थे ग्रहे शीघ्रफलस्य परमत्वात्तत्तात्कालिकी गति (शीघ्रगतिफल) शून्यसमा भवितुमर्हति, तात्कालिकगतिसिद्धान्तेन यच्छीघ्रगतिफलाभावस्यान सिद्ध तदेव भास्करोक्तमप्यस्त्यतो भास्कराचार्यश्चलराशेस्तात्कालिकगतिसिद्धान्त जानाति स्मे यत्र न कश्चित्सन्देह । भास्कराचार्यतोऽतीव प्राचीनो वटेश्वराचार्यश्चलराशि-तात्कालिकगतिसिद्धान्त जानाति स्मेति भास्करकथितस्पष्टभोग्यखण्डमूलभूतस्य वटेश्वरोक्तशेषाक्षज्यानयनदर्शनादेव स्पष्ट भवति ।। भास्कराचार्यरचितलीला-वत्या निसृष्टार्थदूत्यभिधाया स्वटीकाया चापोननिघ्नपरिधि प्रथमाह्वय स्यादि' त्यादेर्व्याख्याया मुनीश्वरो लिखति यत्—

'दो कोटिभागरहिताभिहता खनागचन्द्रास्तदीयचरणोनशरार्कदिग्भि' इत्यादि ज्याखण्डैर्विना चापादेव श्रीपतिकृतज्यानयनावलम्बेन ग्रहलाघवे गणेश दैवज्ञेन सर्वे प्रकारा लिखिता इति कृत लघुकार्मुकशिञ्जिनीग्रहणकर्म विना द्युतिसाधनम्' इति करणकुतूहलस्यच्छायासाधनविषयकभास्कराचार्याभिमान-मूलकारणमपि श्रीपत्युक्तोऽयं प्रकार एव गणकतरङ्गिण्या महामहोपाध्यायसुधा करद्विवेदिमहोदयलेखादपि ज्ञायते यत्पूर्वोक्तप्रकार श्रीपतेरेवास्ति, वहो पूर्व-कालादपि ज्यौतिषिकेषु प्रसिद्धिरस्ति यदेतस्य प्रकारस्य रचयिता श्रीपतिरेवास्ति परन्तु वटेश्वरसिद्धान्तस्य स्पष्टाधिकारीयज्याखण्डैर्विना स्फुटीकरणाध्याय-स्याधोलिखितश्लोकदर्शनेन विदित भवति यत्पूर्वकथितप्रकारो वटेश्वरा-चार्यस्यासिन, श्रीपतेर्नहि

चक्रार्धांशा भुजांशैर्विरहितनिहतास्तद्विहीनैर्विभक्ता,
खव्योमेष्वभ्रवेदै सलिलनिहता पिण्डराशि. स्यात् ।
षड्भांशघ्ना भुजांशा निजकृतिरहितास्तत्तुरीयांशहीनै-
र्भक्ता स्यात्पिण्डराशिर्विशिखनयनभूव्योमशीतांशुभिर्वा ।।

सिद्धान्तशेखरे श्रीपतिनाऽधोलिखितश्लोकेन ज्याभिर्विनेष्टज्यायाश्चापानयन कृतमस्ति—

"इष्टज्यया विनिहता शरभास्कराशा ज्यापादयुक् त्रिभगुणेन हृता फल तत् ।
त्यक्त्वा खनन्दकृतित ८१०० पदमभ्रनन्दभागाच्च्युत भवति धन्वविना ज्यकाभि ।।"

परमेतदानयन वटेश्वरसिद्धान्तेऽप्योलिखितमस्ति—

त्रिभनवगुणयुक्तो ज्यातुरीयोऽत्र हारो।
विशिखरविखचन्द्रं स्ताडितायास्तु मौर्व्या ॥
खखविशिखखवेदैराहता वेदजीवा।
त्रिभगुणकृतिघातज्यासमासेन भक्ता ॥

फलहीना नवतिकृतिरतन्मूलेन च वर्जिता नवतिः।
शेष धनुरथवा यत्त्रिज्याखण्डैर्विनैव फलम् ॥

उपर्युक्त ज्यातश्चापानयनार्थमपि श्रीपतिप्रकारस्तस्य स्वकीयो नास्ति, प्रायो वटेश्वरसिद्धान्तादेवोद्धृत्य लिखित । (१) वटेश्वराभिधेन ज्योतिर्विदा विरचित एको ज्यौतिषसिद्धान्तग्रन्थ आसीदिति तत्परिवर्तिभिरनेकैर्ग्रन्थकारैर्व्याख्याविधातृभिश्च तन्मतप्रतिपादनात्स्फुटमेव, परमय ग्रन्थ प्रायो लुप्त एवाभूदिति बहुधैव प्रतीयते, एतत्सम्बन्धे गणकतरङ्गिण्याम् "यथा ब्रह्मगुप्तेनार्यभटादीना खण्डन कृत तथैव वटेश्वरेण सिद्धान्ते बहुत्र ब्रह्मगुप्तखण्डन कृतमस्ति, अस्यैव 'वजन्मनोऽष्टौ सदला समाययु' रित्यादिना ब्रह्मण आयु सार्धवर्षाष्टक गतमिति मतम् । अस्य सिद्धान्तग्रन्थो मया सम्पूर्णो न दृष्ट, ग्वालियरमहाराजाश्रितस्य श्रीवालज्योतिर्विदो गेहेऽयमस्तीति श्रुत्वा तत्रास्मत्कृतपत्र प्रेषित परन्त्वद्यावधि किमप्युत्तर न प्राप्तम्" श्रीमान् म० म० सुधाकरद्विवेदिमहोदयो लिखितवान् ।

श्रीमान् भास्कराचार्य 'तथा वर्त्तमानस्य कस्यायुषोऽर्ध गत सार्धवर्षाष्टक केचिद्दूचु' इत्युक्त्या सार्धवर्षाष्टक वटेश्वरमतमेव लक्ष्यीकरोति । मुञ्जालाचार्यकृतलघुमानसस्य इन्दूच्चोनार्ककोटिघ्ने त्यादि दृग्गणितैक्यकृच्चन्द्रसंस्कारविषये तट्टीका कृता यल्लयार्येण श्लोकद्वयस्यास्यावतरणमेवमुच्यते । 'अथ चन्द्रस्य ग्रहसमागमच्छाया शृङ्गोन्नतिदृक्साधने वटेश्वरसिद्धान्तोक्तदृक्कर्मविशेष श्लोकद्वयेनाहेति' । अथ श्रीपतिनापि सिद्धान्तशेखरे ग्रहयुद्धाध्याये २४ श्लोकैर्वटेश्वरसिद्धान्तानुसार एव चन्द्रस्य विलक्षण संस्कारो ब्रह्मगुप्तलल्लाद्यनुक्त प्राय उक्त इति ।

अथ च श्रीपतिना—

श्रीजिष्णुजार्यभटलल्लवटेशसूर्यदामोदरप्रभृतयोऽपि च तन्त्रकारा ।
शक्ता प्रवक्तुममलामिह तन्त्रयुक्तिमस्मद्विधो जडमतिस्तु कथ प्रवक्ति ॥

इत्युक्त्याऽर्यभट ब्रह्मगुप्त-लल्लाचार्यै सममेव वटेश्वरस्यापि नामोल्लेख क्रियत इति वटेश्वरसिद्धान्त सर्वमान्य आसीदिति प्रतीयते । अत्र शङ्करबालकृष्ण दीक्षितमतेन वटेश्वरकृत एक करणसारनामा ग्रन्थ ८२१ शकाब्द रचित इति श्रूयते, यत्र काश्मीरस्याक्षांशा ३४।९ एतन्मिता ग्रन्थोक्त्या सिद्ध्यन्ति, प्राय सर्वेऽपि ज्यौतिषसिद्धान्तरचयितार एक करणग्रन्थमपि व्यवहारोपयोगिन रचितवन्त एवासन्निति वटेश्वरसिद्धान्तानुसारी करणसार इत्याख्यो ग्रन्थश्च वटेश्वरकृत

स्यात्'' तदुपपत्तिदर्शनेन च तात्कालिकी मन्दपरिस्फुटा स्यादत 'तात्कालिकी'-शब्दावलोकनेन च पूर्वोक्तज्यौतिषिकधारणाया पुष्टिर्भवति । एवमेव 'कक्षा-मध्यगतिर्यग्रेखाप्रतिवृत्तसम्पाते मध्यैव गति स्पष्टा पर फल तत्र खेटस्य' इति भास्करोक्त्या कक्षामध्यगतिर्यग्रेखाप्रतिवृत्तसम्पाते ग्रहे मन्दस्पष्ट स्पष्ट-गत्यो समत्वात्तत्रैव शीघ्रगतिफलाभावो भवितुमर्हति, तत्रैव शीघ्रफलस्यापि परमत्व भवति, चलनकलने चलराशेस्तात्कालिकगत सिद्धान्तोऽस्ति यत्तस्यापि चलराशे परमत्वे परमाल्पत्वे च तात्कालिकी गति शून्यसमा भवति । पूर्वोक्तस्थान स्थे ग्रहे शीघ्रफलस्य परमत्वात्तत्तात्कालिकी गति (शीघ्रगतिफल) शून्यसमा भवितुमर्हति, तात्कालिकगतिसिद्धान्तेन यच्छीघ्रगतिफलाभावस्थान सिद्ध तदेव भास्करोक्तमप्यस्त्यतो भास्कराचार्यश्चलराशेस्तात्कालिकगतिसिद्धान्त जानाति स्मे यत्र न कश्चित्सन्देह । भास्कराचार्यतोऽतीव प्राचीनो वटेश्वराचार्यश्चलराशि-तात्कालिकगतिसिद्धान्त जानाति स्मेति भास्करकथितस्पष्टभोग्यखण्डमूलभूतस्य वटेश्वरोक्तशेषाशज्यानयनदर्शनादेव स्पष्ट भवति ।। भास्कराचार्यरचितलीला वत्या निसृष्टार्थदूत्यभिधाया स्वटीकाया 'चापोननिघ्नपरिधि प्रथमाह्वय स्यादि' त्यादेर्व्याख्याया मुनीश्वरो लिखति यत्—

'दो कोटिभागरहिताभिहता खनागचन्द्रास्तदीयचरणोनशरार्कदिग्भि' इत्यादि ज्याखण्डैर्विना चापादेव श्रीपतिकृतज्यानयनावलम्बेन ग्रहलाघवे गणेश-दैवज्ञेन सर्वे प्रकारा लिखिता इति कृत लघुकार्मुकशिञ्जिनीग्रहणकर्म विना द्युतिसाधनम्' इति करणकुतूहलस्यच्छायासाधनविषयकभास्कराचार्याभिमान-मूलकारणमपि श्रीपत्युक्तोऽयं प्रकार एव गणकतरङ्गिण्या महामहोपाध्यायसुधा-करद्विवेदिमहोदयलेखादपि ज्ञायते यत्पूर्वोक्तप्रकार श्रीपतेरेवास्ति, यहो पूर्व-कालादपि ज्यौतिषिकेषु प्रसिद्धिरस्ति यदेतस्य प्रकारस्य रचयिता श्रीपतिरेवास्ति परन्तु वटेश्वरसिद्धान्तस्य स्पष्टाधिकारीयज्याखण्डैर्विना स्फुटीकरणाध्याय-स्याधोलिखितश्लोकदर्शनेन विदित भवति यत्पूर्वकथितप्रकारो वटेश्वरा-चार्यस्यास्ति, श्रीपतेर्नहि

चक्रार्धांशा भुजांशैर्विरहितनिहतास्तद्विहीनैर्विभक्ता,
खव्योमेष्वभ्रवेदै सलिलनिहता पिण्डराशि प्रदिष्ट ।
षड्भांशघ्ना भुजांशा निजकृतिरहितास्तत्तुरीयांशहीनै-
र्भक्ता स्यात्पिण्डराशिर्शिखिनयनभूव्योमशीतांशुभिर्वा ।।

सिद्धान्तशेखर श्रीपतिनाऽधोलिखितश्लोकेन ज्याभिर्विनेष्टज्यायाश्चापानयन कृतमस्ति—

"इष्टज्यया विनिहता शरभास्कराशा ज्यापादयुक् त्रिभगुणेन हृता फल तत् ।
त्यक्त्वा खनन्दकृतित ८१०० पदमभ्रनन्दभागाच्च्युत भवति धन्वविना ज्यकानि ।।"

परमेतदानयन वटेश्वरसिद्धान्तेऽधोलिखितमस्ति—

त्रिभनवगुणयुक्तो ज्यातुरीयोऽत्र हारो।
विशिखरविखचन्द्रैस्ताडितायास्तु मौर्व्या ॥
खखविशिखखवेदैराहता वेष्टजीवा ।
त्रिभगुणकृतिघातज्यासमासेन भक्ता ॥

फलहीना नवतिकृतिरतन्मूलेन च वर्जिता नवतिः ।
शेषं धनुरथवा यत्त्रिज्याखण्डैर्विनैव फलम् ॥

उपर्युक्त ज्यातश्चापानयनार्थमपि श्रीपतिप्रकारस्तस्य स्वकीयो नास्ति, प्रायो वटेश्वरसिद्धान्तादेवोद्धृत्य लिखित । (१) वटेश्वराभिधेन ज्योतिर्विदा विरचित एको ज्यौतिषसिद्धान्तग्रन्थ आसीदिति तत्परिवर्तिभिरनेकैर्ग्रन्थकारैर्यथाविधातृभिश्च तन्मतप्रतिपादनात्स्फुटमेव, परमय ग्रन्थ प्रायो लुप्त एवाभूदिति बहुधैव प्रतीयते, एतत्सम्बन्धे गणकतरङ्गिण्याम् "यथा ब्रह्मगुप्तेनार्यभटादीना खण्डन कृत तथैव वटेश्वरेण सिद्धान्ते बहुन ब्रह्मगुप्तखण्डन कृतमस्ति, अस्यैव 'कजनमनोऽष्टौ सदला समाययु' रित्यादिना ब्रह्मण आयु सार्धवर्षाष्टक गतमिति मतम् । अस्य सिद्धान्तग्रन्थो मया सम्पूर्णो न दृष्ट, ग्वालियरमहाराजाश्रितस्य श्रीबालज्योतिर्विदो गेहेऽयमस्तीति श्रुत्वा तत्रास्मत्कृत्यन प्रेषित परन्त्वद्यावधि किमप्युत्तर न प्राप्तम् ' श्रीमान् म० म० सुधाकरद्विवेदिमहोदयो लिखितवान् ।

श्रीमान् भास्कराचार्य 'तथा वर्तमानस्य कस्यायुषोऽर्ध गत सार्धवर्षाष्टक केचिदूचु ' इत्युक्त्या सार्धवर्षाष्टक वटेश्वरमतमेव लक्ष्यीकरोति । मुञ्जालाचार्यकृतलघुमानसस्य इन्दूच्चोनार्ककोटिघ्नेत्यादि दृग्गणितैक्यकृच्चन्द्रसस्कारविषये तट्टीका कृता यल्लयार्येण श्लोकद्वयस्यास्यावतरणमेवमुच्यते । 'अथ चन्द्रस्य ग्रहसमागमच्छाया शृङ्गोन्नतिदृक्साधने वटेश्वरसिद्धान्तोक्तदृक्कर्मविशेष श्लोकद्वयेनाहेति । अथ श्रीपतिनापि सिद्धान्तशेखरे ग्रहयुद्धाध्याये २ ४ श्लोकैर्वटेश्वरसिद्धान्तानुसार एव चन्द्रस्य विलक्षण सस्कारो ब्रह्मगुप्तलल्लाद्यनुक्त प्राय उक्त इति ।

अथ च श्रीपतिना—

श्रीजिष्णुजार्यभटलल्लवटेशसूर्यदामोदरप्रभृतयोऽपि च तन्त्रकारा ।
शक्ता प्रवक्तुममलामिह तन्त्रयुक्तिमस्मद्विधो जडमतिस्तु कथ प्रवक्ति ॥

इत्युक्त्याऽर्यभट ब्रह्मगुप्त लल्लाचार्य सममेव वटेश्वरस्यापि नामोल्लेख क्रियत इति वटेश्वरसिद्धान्त सर्वमान्य आसीदिति प्रतीयते । अत्र शङ्करबालकृष्ण दीक्षितमतेन वटेश्वरकृत एक करणसारनामा ग्रन्थ ८२१ शाकाब्दे रचित इति श्रूयते, यत्र काश्मीरस्याक्षाशा ३४।९ एतन्मिता ग्रन्थोक्त्या सिद्ध्यन्ति, प्राय सर्वेऽपि ज्यौतिषसिद्धान्तरचयितार एक करणग्रन्थमपि व्यवहारोपयोगिन रचितवन्त एवासन्निति वटेश्वरसिद्धान्तानुसारी करणसार इत्याख्यो ग्रन्थश्च वटेश्वरकृत

आसीदिति च प्रतीयते, परमधुना वटेश्वरसिद्धान्त करणसारश्च न कुत्राप्युप-लभ्यौ वार्त्तागोचरौ स्त इत्यलमतिविस्तरेण (२)

(१) इत आरभ्य (२) एतत्पर्यन्त सिद्धान्तशेखरस्य परिशिष्टस्थलेखादिदं ज्ञायते यद्वटेश्वरसिद्धान्तोपरि श्रीपतेः श्रद्धाऽधिकतमासीत्तेनैव हेतुना पूर्वोक्तज्या चापयोरानयनं तत्सिद्धान्तादेवोद्धृत्य श्रीपतिना प्रायो लिखितं भवेदित्यनुमीयते। तथा भुजकोटिज्यादिसाधनमन्तराऽहर्गणादेव स्फुटग्रहं कर्त्तुं प्रकारोऽत्र सिद्धान्ते ऽधोलिखितरूपेणाऽस्ति।

स्वोच्चनीचपरिवर्त्तशेषकाद् भूदिनै कृतहतात्पदानि तु ।
शेषकास्त्रिगुणितादगृह्यदित पूर्ववच्च भुजकोटिसाधनम् ॥
मन्दज बलभव च तद्वर्तम् दिनैर्भगणलिप्तिकोद्धृतैः ।
खेचरस्य भगणावशेषक संस्कृत कलिकयाऽखिल स्फुटम् ॥
दो फलेन सवितुश्चरासुभि स्वेन देशविवरेण चोक्तवत् ।
संस्कृत कुदिनमाजितं भवेन्मध्यमादिखचर परिस्फुट ॥

विषयोऽयं ब्राह्मस्फुटसिद्धान्तवटेश्वर सिद्धान्त सिद्धान्तशेखरेषु वर्णितोऽस्ति भास्कराचार्यादिभि कथमयं विषयो न लिखित इति त एव ज्ञातुं शक्नुवन्ति, श्रीपतिना प्रायो ब्राह्मस्फुटसिद्धान्ताद्वटेश्वरसिद्धान्ताद्वा प्रायो लिखितो भवेद्य-तस्तत्सम्मुखे तत्सिद्धान्तद्वयमादर्शरूपेणोपस्थितमासीत्।

ग्रन्थेषु सिद्धान्तग्रन्थेषु यथाऽन्येऽधिकारा पृथक् पृथक् सन्ति तथैव पाताऽधिकारोऽपि पृथगेवास्ति, किन्त्विह सिद्धान्ते स्पष्टाधिकारान्तर्गत एव पाताध्यायोऽस्ति, अत्रैव पाताध्याये पाताधिकारसम्बन्धिन सर्वे विषया वर्णिता सन्ति, स्पष्टाधिकारसम्बन्धिप्रश्नाध्यायोऽप्येतदधिकारान्तर्गत एवास्ति, तथैतदधिकारे ग्रहस्फुटीकरणार्थं पृथक् पृथगध्याया सन्ति, यथा—

सूर्याचन्द्रमसो स्फुटीकरणविधि प्रथम । स्वोच्चनीचग्रहस्फुटीकरणविधिर्द्वितीय । प्रतिमण्डलस्पष्टीकरणविधिस्तृतीय । ज्याखण्डैर्विनास्फुटीकरणविधिश्चतुर्थ । फलज्यास्फुटीकरणविधि पञ्चम । तिथ्यानयनविधि षष्ठ । प्रश्नविधि सप्तम । अयोऽयं यस्मिन्नप्यन्यसिद्धान्तेनावलोक्यते। कर्णानयनेऽप्यत्र ग्रन्थे बहु कथितमस्ति यच्च भास्करादिसिद्धान्ते नोपलभ्यते।

त्रिप्रश्नाधिकारेऽपि विषयप्रतिपादनशैली, आर्यभटादिप्राचीनाचार्येभ्यो वटेश्वरतो नवीनाचार्यश्रीपतिभास्करादिभ्यो विलक्षणैव दृग्गोचरीभूता भवति यथा—

विषुवच्छायानयनविधि प्रथम । लम्बाक्षज्यानयनविधिर्द्वितीय । क्रान्तिज्यानयनविधिस्तृतीय । द्युज्यानयनविधिश्चतुर्थ । कुज्यानयनविधि पञ्चम ।

अग्रानयनविधि षष्ठ । स्वचरार्धप्राणज्यानयनविधि सप्तम । लग्नादिविधिरष्टम । द्युदलभादिविधिर्नवम । इष्टच्छायानयनविधिर्दशम । सममण्डलप्रवेशविधिरेकादश । कोणश कुविधिर्द्वादश । छायातोऽर्कानयनविधिस्त्रयोदश । छायापरिलेखविधिश्चतुर्दश । प्रश्नाध्यायविधि पञ्चदश इति, अध्यायेष्वेतेषु वर्णितविषयावलोकनेन तदाचार्यस्याद्भुतप्रतिभाया परिचयो मिलति । सूर्यसिद्धान्तब्राह्मस्फुटसिद्धान्त वटेश्वरसिद्धान्त सिद्धान्तशेखरेषु कोणश कुसाधनमेकमेव, वटेश्वरसिद्धान्ते तत्साधनमनेकै प्रकारै कृतमस्ति, येषु प्रथम प्रकार पुरोदीरिताचार्यकोणश कुसाधनवदस्ति, कोणश कुसाधनविधिनामकेऽध्याये तृतीयश्लोकान्नवम श्लोक यावद्बहुन लघुक्सज्ञकभेदेन तत्साधनानि प्रदर्शितानि सन्ति, यथा 'इष्टश्रवणाभ्यस्ता अग्रास्त्रिज्योद्धृता लघुका इत्यादि' धृतिगुणितास्त्रिगुणहृता अग्रा धृतिवृत्ताग्रा भवन्ति लघुका इत्यादि' 'वाऽग्रास्तद्धृतिगुणितास्त्रिज्या भक्ता भवन्ति तद्धृतिगा । लघुका हि विदिङ्नार इत्यादि' सिद्धान्तशेखरे श्रीपतिनाऽप्यनेके प्रकारा लिखिता , सिद्धान्तशिरोमणौ भास्कराचार्येण 'अग्राकृति द्विगुणिता त्रिगुणस्य वर्गादि' त्यादिनाऽस्मकृत्प्रकारेण यत्कोणशङ्कोरानयन कृत तस्य मूलम् 'इष्टाग्रान्तरकृत्या द्विगुणितयोदग्वियुगि' त्यादि वटेश्वरोक्तम् 'इनाग्रकाया सहितोनिताया इष्टे नत्यादि श्रीपत्युक्त कोणश कुसाधन वा भवितुमर्हति। परन्तु तदानयन केषामपि समीचीन नास्ति, उत्तरगोले भास्करोक्तकोणश कुसाधनस्य खण्डनमधोलिखितानुसार म० म० सुधाकरद्विवेदिन कृतवन्त —

"युग्माश्वोनाक्षप्रभावर्गनिघ्नी बाणाभ्य शज्या द्विकाश्वैर्विभक्ता ।
अक्षच्छायावर्गयुक्तं फलाद्वेदग्रा न्यूना स्यात्खिल सौम्यगोले ॥"

दक्षिणगोले च तत्खण्डन सिद्धान्तशिरोमणेष्टिप्पण्या सशोधकेन (म० म बापूदेवशास्त्रिणा) अधोलिखितश्लोकेन कृतमस्ति—

"अक्षप्रभाकृतिविहीनदृगग्निनिघ्न पञ्चाब्धिभागजगुणो विहृतो द्विकाश्वै ।
अक्षप्रभाकृतियुतं फलतोऽग्रकाद्न्नाऽल्पा तदा न सदिद रवियाम्यगोले ॥"

उपर्युक्तभास्करोक्तप्रकारखण्डनेनैव तत्प्रकारमूलभूतयोर्वटेश्वरोक्तश्रीपत्युक्तप्रकारयोश्चापि खण्डन बोध्यम । यत्र देशे सप्तदशाङ्गुलाधिका विषुवती तत्रोत्तरगोले कोणश कुचतुष्टयमुत्पद्यते । दक्षिणगोले च तदभाव इति भास्करवासना भाष्योक्तस्यापि मूल तत्प्राचीनकोणशङ्क्वानयनमेवास्ति । इच्छादिक्छायानयनार्थं सममण्डलप्रवेशविधिनामकेऽध्याये इष्टकोणशङ्कोरानयन वटेश्वरेणाभिहितमस्ति, भास्कराचार्येण तु व्यासार्धवर्ग पलभाकृतिघ्नो दिग्ज्याकृतिद्वादशवर्गनिघ्नी । तत्सयुतिरि' त्यादिनेष्टच्छायाकर्णानयन कृतम, वस्तुतो भास्करोक्तप्रकारस्य मूल वटेश्वरोक्तप्रकार एव भवितुमर्हति । सूर्यसिद्धान्त-

कारादिभिरेतद्विषये किमपि न कथ्यते। त्रिप्रश्नाधिकारादावाचार्येण बहुभि प्रकारैर्दिग्ज्ञान कृतमस्ति येषु कतिचन प्रकारा अन्येषु सिद्धान्तेषु नोपलभ्यन्ते। भाभ्रमसम्बन्धेन दिग्ज्ञानप्रकारो वटेश्वराचार्योक्तसदृश एव श्रीपत्युक्तस्तत्प्रकारोऽस्ति, वृत्ताकारच्छायाभ्रमणमार्गार्थम् 'इष्टेऽन्हि मध्ये प्राक् पश्चाद्धृते बाहुत्रयान्तरे। मत्स्यद्वयान्तरयुतेरि' त्यादिना सूर्यसिद्धान्ते 'अग्रेषु चिन्हानि विधाय वृत्तैर्मिथोऽदगाहैरि' त्यादिना शिष्यधीवृद्धिदे सिद्धान्ते या युक्ति प्रतिपादितास्ति सैव वटेश्वराचार्यस्यापि, सिद्धान्तशेखरे श्रीपतेश्चापि, परन्तु वृत्ते छायाभ्रमण सर्वदा मेरावेव भवति, तदन्यत्र साक्षे देशे न्यूनाधिक्य वशेन छायाभ्रमणमार्गा वृत्तपरवलयदीर्घवृत्तानिपरवलयरेखाकारा भवन्ति, निरक्षे विषुवद्दिने रेखाकारो भाभ्रम, तेनैव हेतुना सिद्धान्तशिरोमणेर्गोलाध्याये भास्कराचार्येण 'भान्तियाद भाभ्रमण म सदि' त्यादिना वृत्ताकारच्छायाभ्रमणस्य खण्डन कृत, वृत्ते सर्वदा छायाभ्रमण भवत्येव नहि, तर्हि भाभ्रमवृत्तसम्बन्धेन यैराचार्यैर्वटेश्वरलल्लप्रभृतिभिर्दिग्ज्ञान कृत तदपि युक्तियुक्त नहि, यद्यपि छायाभ्रमणमार्गाकृतिसम्बन्धे भास्करेण स्वविचारो न प्रदर्शित किन्तु पूर्वोक्तखण्डन तद्विषयकतज्ज्ञान पाठक व्यनक्ति। मेषादिराशीना निरक्षोदया साधनप्रकारो ब्रह्मगुप्तवटेश्वरश्रीपतीना समान एवास्ति, स्वदेशीयराश्युदयमाने लग्नानयनप्रकारेऽपि न किमप्यन्तरमस्ति किन्तु स्वदेशोदयैर्विना विलग्नविघटिकयोरानयन रविलग्नयोरन्तरासु साधनञ्चात्र सिद्धान्ते प्रदर्शितमस्ति। सिद्धान्तशेखरेऽपि तदानयन दृश्यते किन्तु भास्करादिसिद्धान्तेषु नावलोक्यते। एतदधिकारीयप्रश्नाध्याये ये प्रश्ना सन्ति तेषु बहूनामुत्तर सिद्धान्तशेखरेऽप्यस्ति, चन्द्रग्रहणाधिकारे रविचन्द्रयो स्फुटकला कर्णसाधनमेतद्ग्रन्थकारकृतमस्ति, सिद्धान्तशेखरादिसिद्धान्तेषु तदुल्लेखो न दृश्यते, सिद्धान्तशिरोमणौ भास्कराचार्येण 'मन्दश्रुतिद्राक् श्रुतिवत्प्रसाध्या तया त्रिभज्या द्विगुणा विहीना। त्रिज्याहृति शेषहृता स्फुटा स्यात्लिप्ता श्रुतिस्तिग्मरुचेर्विधोश्च' त्यनेन तदानयन कृतमस्ति, परमेतद्ग्रन्थे (वटेश्वरसिद्धान्ते) तत्साधनदर्शनेन भास्करोक्त तत्साधन स्वकीयमेतदीय वेति कथितु न शक्यम। छाद्यच्छादकयोर्निर्णयेऽन्येषु रविचन्द्रभूभाबिम्बादिसाधनेषु चाऽऽचार्येण भूभाया नाम कुत्रापि न लिखित सर्वत्रैव तम इत्यव लिख्यते, अयमाचार्योऽपि राहुकृत ग्रहण स्वीकरोति, सिद्धान्तशेखरे भूभा बिम्बानयन राहुबिम्बानयनमपि दृश्यते यदि राहुशब्देन भूभाया एव ग्रहण तेन कृत भवेत्तदा तु तथ्यमेवाऽन्यथा राहुकृत भूभाकृत वा चन्द्रग्रहण भवतीत्येतद्विषयकनिश्चयस्तन्मनसि नाऽऽसीदिति कथयितु शक्यते। तेन तु राहुनिराकरणाध्यायो लिखितोऽस्ति तर्हि राहोरपि बिम्बानयन कथ कृतमिति महदाश्चर्यम्। भास्कराचार्येण "अर्कच्छादकाच्चन्द्रच्छादक पृथुतरोऽवगम्यते। कुत ? यतोऽर्धखण्डितस्ये-दोर्विषाणयो कृष्णता दृश्यते। स्थितिश्च महती। अर्कस्य पुनरर्धखण्डितस्य तीक्ष्णता विषाणयो स्थितिश्च लघ्वी। एतत्कारणद्वयानुपपत्त्याऽर्कस्य च्छादकोऽन्य स च लघु। एव स्वोन्दोर्न च्छादको राहु-

रिति वदन्ति, कुत ? दिग्देशकालावरणादिभेदात् । एकस्य प्राक् स्पर्श इतरस्य पश्चात् । रवे क्वापि ग्रहणमस्ति क्वापि नास्ति । क्वापि दर्शान्तादग्रत क्वापि पृष्ठत । अतो राहुकृत न ग्रहणम् । नहि बहवो राहव । एव के वदन्ति । केवल-गोलविद्यास्तदभिमानिनश्च । इद सहिता वेद पुराण वाह्यम् । यत सहितासु राहुरष्टमो ग्रह । "स्वर्भानुर्ह वा आसुर सूर्यं तमसा विव्याध" इति माध्यन्दिनी श्रुति ।

सर्वं गङ्गासम तोय सर्वे ब्रह्मसमा द्विजा ।
सर्वं भूमिसम दान राहुग्रस्ते दिवाकरे ॥

इत्यादिपुराणवाक्यानि । अतोऽविरुद्धमुच्यते । राहुरनियतगतिस्तमोमय-ब्रह्मवरप्रदानाद् भूभा प्रविश्य चन्द्र छादयति । चन्द्र प्रविश्य रविं छादयतीति सर्वागमानामविरुद्धम्" सिद्धान्तशिरोमणेर्वासनाभाष्ये लिखितम् । पर कुत्रापि राहो किमपि बिम्बादिक न साधितम् । ग्रहणे राहो किमपि प्रयोजन न भवति, ग्रहणे स्पर्शादिदिङ्नियमाद्यवलोकनेन राहोरनियतगतित्वाच्च राहुकृतग्रहणस्य खण्डन स्पष्टमेवास्ति, अतिदूरदर्शिनो लब्धग्रहप्रसादा वटेश्वराचार्या अपि कथ स्पष्टशब्देन भूभाया नाम निर्देश न कृतवन्त इति महदाश्चर्यम् । स्थिति-विमर्दार्धयोरानयनमसकृद्विधिनाऽनेनापि कृतम् । सकृत्प्रकारेण तदानयन सिद्धान्त-शिरोमणेष्टिप्पण्या म० म० पण्डित बापूदेव शास्त्रिणा (सशोधकेन) सूर्यसिद्धा-न्तस्य सुधावर्षिणीटीकाया म० म० पण्डित सुधाकर द्विवेदिना च कृतमस्ति, आचार्योक्तस्थित्यर्धविमर्दार्धयोरानयनस्थले सकृत्प्रकारेण तदानयनमेतन्महानु-भावद्वयकृत मया प्रदर्शितमस्ति, आक्षायनवलयो साधनमुत्क्रमज्या विधिनैव तेना-प्याचार्येण लल्लाचार्योक्तवत्कृत, शिष्यधीवृद्धिदे लल्लोक्त तत्साधनञ्च—

स्पर्शादिकालजनतोत्क्रमशिञ्जिनीभि क्षुण्णाक्षभा पलभवश्रवणेन भक्ता ।
चापानि पूर्वनतपश्चिमयो क्रमेण सौम्येतराणि समवेहि यथाक्रमेण ॥
प्राह्यारसराशित्रिलवाद् भुजज्याव्यस्ता तत प्राग्वदपक्रमज्या ।
तस्या धनु सत्रिगृहेन्दुदिक् स्यात्क्षेपो विपातस्य विधोर्दिशि स्यात् ॥
अपक्रमक्षेपपलोद्भवाना युति क्रमादेकदिशा कलानाम् ।
कार्यो वियोगोऽन्यदिशा ततो ज्या ग्राह्या भवेत्सा वलनस्य जीवा ॥

सिद्धान्तशेखरे श्रीपतिनाऽप्येवमेवानयन कृत वलनानाम् । आयनाक्षवल-नयो सस्कारेणैव स्पष्टवलन भवति, परमेभिर्लल्लवटेश्वर श्रीपत्याचार्यैस्तदर्थ-(स्पष्टवलनार्थ) माक्षायनवलनशराणा सस्कार कृत । शरसस्कारकरण न युक्त-मेतदर्थं 'वलनानयने क्षेप क्षिप्तो यैस्ते कुबुद्धय' इत्यादिना भास्करेणातीव युक्तियुक्त खण्डन कृतम् । उत्क्रमज्यया वलनानयनप्रकारखण्डनमपि तत्कृतम-

तीव पाण्डित्यपूर्णमस्ति, कमलाकरेणाक्षजायनवलनद्वयं विना व स्पष्टवलनानयनं कृतमस्ति, अङ्गुलिप्तानयनमपि कस्यापि (आचार्यस्य) समीचीनं नास्ति, वटेश्वरेणोन्नतकालानुपातेन तदानयनं कृतमस्ति, श्रीपतिना भास्करेण च प्रकारद्वयेन 'शङ्क्वनुपातेनोन्नतकालानुपातेन च) तदानयनं कृतम्। तत्र भास्करेण कथ्यते यच्छङ्क्वनुपातागतं फलं सूक्ष्ममुन्नतकालानुपातागतफलञ्च स्थूलं भवति, अनयोः सूक्ष्मत्व स्थूलत्वयोर्ज्ञानमतीव दुर्घटमस्ति, भास्करेण कथमेतयोः सूक्ष्मत्व स्थूलत्वञ्च ज्ञातमिति कथयितु न शक्यते।

भूभाबिम्बानयनं वटेश्वरेण यथा कृतं तदनुरूपमेव श्रीपत्युक्तं भास्करोक्तञ्चास्ति, एतेषामनेन वर्धितरविकर्णो यत्र चन्द्रकक्षायां लगति तद्बिन्दुतः स्पर्शरेखो (सूर्यबिम्बभूबिम्बयो क्रमस्पर्शरेखो) परि यो लम्बस्तदेव भूभाव्यासार्धमायाति, परमेतत्स्पर्शोचितं भूभाव्यासार्धं नास्त्यतस्तन्मतं न शोभनम्। मुनीश्वरेण वर्धितरविकर्णचन्द्रकक्षयोर्योगबिन्दुतस्तद्रेखो (वर्धितरविकर्ण) परि यो लम्बस्तदेव भूभाव्यासार्धं कथ्यते, एतत्कथितभूभाव्यासार्धमपि स्पर्शानुपयुक्तत्वान्न शोभनम्। स्पर्शरेखाचन्द्रकक्षयोर्योगबिन्दुतो मध्यरेखो (वर्धितरविकर्ण) परि यो लम्बस्तदेव वास्तवभूभाव्यासार्धम्। यत्साधनं सिद्धान्ततत्त्वविवेके कमलाकरेण युक्तियुक्तं कृतम्। म. म सुधाकरद्विवेदिनाऽपि वास्तवभूभाबिम्बार्धानयनं कृतमस्ति, सशोधकोक्तञ्च तदानयनं स्थूलमस्ति, वटेश्वरेणापि रविचन्द्रभूभा (राहु) बिम्बाना योजनात्मकाना कलात्मकीकरणानयनं शोभनं न कृतं, श्रीपतिना भास्करेण चैतत्सदृशमेव तदानयनं कृतमस्ति, चन्द्रग्रहणपरिलेखोऽत्र ग्रन्थे सूर्यग्रहणे तत्परिलेखेन सहैवास्ति, पर्वज्ञानविधिनामको रविग्रहणाधिकारीयपञ्चमाध्यायस्तदन्तर्गत एवास्ति, परं सिद्धान्तशेखरे सूर्यग्रहणाध्यायात्परं पर्वसम्भवाध्यायोऽस्ति, सिद्धान्तशिरोमणौ सिद्धान्ततत्त्वविवेके च चन्द्रग्रहणाधिकारात्पूर्वमेव पर्वसम्भवाऽधिकारोऽस्ति, एषु भिन्नभिन्नलेखक्रमेषु स्वस्वरुचिरेव कारणं वक्तु शक्यते।

प्रस्तुत-पुस्तक-विषये

एकचत्वारिंशदुत्तरैकोनविंशतितमे क्रिस्ताब्दे (१९४१) मम मानसे विचारः समजनि यत् भारतीयेषु षट्सु शास्त्रेषु नेत्ररूपं ज्योतिषं शास्त्रं प्रति जनतायाः नहि किमपि ध्यानम्, येनेदं प्रतिदिनम् अवनत्युन्मुखम्, कथं नेदं संरक्षणीयम्! तदैव मया प्रतिज्ञातं यत् यथाशक्ति अहं स्वजीवने ज्योतिषशास्त्रस्योन्नत्यै कार्यं विधास्ये। एतत्कार्यं नास्ति लघुरूपम्, यत. अस्मिन् कार्ये ज्योतिषस्य प्रचारः, प्राचीनाना पाण्डुलिपिबद्धाना ग्रन्थाना प्रकाशनम् एवं भारतेऽन्यदेशेषु विभिन्नराज्येषु तथान्यस्थानेषु उपेक्षिता ज्योतिषग्रन्थानामन्वेषण. तेषा सम्पादनं मुद्रणं प्रकाशनादिकं च कार्यं वर्तते। अस्य बृहत् कार्यस्य सिद्ध्यै 'संस्थायाः' आवश्यकता भवति, या एतत्कार्यं साधयेत् तथा शुभपरिणामं उपलभेत। अतस्तदैव संस्थामेकां स्थापयितुं व्यचारयम्। दिसम्बरमासस्य पञ्चतारिकाया त्रयश्चत्वारि-

शदुत्तरैकविंशतितमे ख्रिस्ताब्दे (५ १२ १६४३) लवपुरस्थप्राच्यमहाविद्यालयस्य (ओरियण्टल कालेज) आचार्याणा श्रीलक्ष्मणस्वरूपमहोदयाना करकमलाभ्या 'कुशल ज्योतिषकार्यालय' नामकसंस्थाया उद्घाटनमकारयत् । उद्घाटनावसरे गोस्वामी श्री ईश्वरदास (भारतधनकोषस्य देशीयाध्यक्ष) सभाया. अध्यक्षतामलंचकार ।

तेषु दिवसेषु कार्यारम्भे जाते ज्योतिषाङ्गत्रये सिद्धान्त-होरा सहितासु होराशास्त्रस्य, आचार्यहेमप्रभसूरिविरचित 'त्रैलोक्यप्रकाश' नामक पुस्तकस्य पाठान्तरै सहित हिन्दीटीकायुक्त प्रकाशन पञ्चचत्वारिंशदधिकैकोनविंशतितमे ख्रिस्ताब्दे (१६४५) समभवत् ।

तदनन्तर सप्तचत्वारिंशदुत्तरैकविंशतितमे ख्रिस्ताब्दे (१६४७) भारतवर्षं स्वतन्त्रमभवत्, पञ्चापदेशस्य भागद्वये विभाजनमभवच्च । तदा वयमपि जन्मभूमिं विहाय भारतस्य राजधान्या दिल्लीनगर्यां स्वज्योतिषानुसन्धानकेन्द्रमरचयाम । ज्योतिष पूर्णरूपेण समुन्नतकरण नैकजनस्य कार्य, यावदस्मिन् महति कर्मणि जनताया साहाय्य न भवेत् । इत्थ विचार्य अह श्रीवृजलालनेहरुमहोदयस्य तथाऽन्यसदस्याना समक्ष 'जनता-सरक्षण' संस्थाया स्थापनस्य प्रस्तावम् अस्थापयम् । तै कृपालु महानुभावै भारतीयज्योतिष सस्कृतानुसधानसस्थाया (इण्डियन इन्स्टीटयूट आफ अस्ट्रानोमिकल एण्ड सस्कृत रिसर्च) सूत्र-पातमकारि । उत्तरप्रदेशस्य भूतपूर्वै मुख्यमन्त्रिभि माननीयै श्रीसम्पूर्णानन्दमहोदयै स्वकरकमलाभ्याम् अस्या वृहत्सस्थाया उद्घाटन सुसम्पादितम् । तत सस्थेय स्वकार्यस्यारम्भ 'ज्योतिष-विज्ञान' नाम्न्या मासिकपत्रिकयाऽकरोत् ।

आचार्याणा श्रीवटेश्वरमहानुभावाना नाम मया अलबेरूनी यात्रिणो भारतयात्रायामपठम् । अलबेरूनी तस्यामलिखत् यत् वटेश्वरसिद्धान्तनामक एकोत्तमो ग्रन्थो भारते विद्यते यस्मिन् ब्रह्मस्फुटसिद्धान्तविषयिकी आलोचना वर्तते । मम चेतसि उत्कण्ठाऽऽसीत् यद् ग्रन्थोऽय कथ मामुपलभ्येत ।

तत गणकतरगिण्यामपि महामहोपाध्यायसुधाकरद्विवेदिरचिते स्वाध्याये वटेश्वराचार्यप्रणीतस्य वटेश्वरसिद्धान्तस्य अनुपलब्धिविवशतामपश्यम् । इद पुस्तक लब्धुमहयतमानोऽभवम् । भारतस्य विहारप्रान्ते, काश्मीरेषु एव अन्यान्येषु राज्येषु अह गत्वा हस्तलिखितग्रन्थस्यास्य प्राप्त्यै प्रयत्नमकरवम् । किन्तु कुत्रापि नहि लब्धवान् ग्रन्थमिमम् । अन्ते मयाऽस्यान्वेषण लवपुरस्थ-विश्वविद्यालयस्य वृहत्पुस्तकालयेऽकारि तत्र सफलमनोरथोऽभवम् । अह तत्र हस्तलिखित वटेश्वरसिद्धान्तमुपलब्धवान् । तत अह श्री जगदीशशास्त्रि एम० ए०, एम० ओ० एल० महोदयद्वारेण वटेश्वरसिद्धान्तस्य प्रतिलिपिमकारयम् । इत्थम् अय महान् ज्योतिषग्रन्थो हस्तगतो जात ।

पुस्तक तु प्राप्त किन्तु तथैव मूलरूपेण मुद्रापणेन नहि कोऽपि लाभो दृश्यते स्म, अत सभाष्य सोपपत्ति हिन्दीभाषानुवादसहितश्च मुद्रितो भवेदिति व्यचारयम। किन्तु पर्याप्ता वेला यावत् अस्य कार्यस्य सुसम्पन्नाय नहि कश्चित् सहायो योग्यो ज्योतिषी मिलित। बहुकालानन्तर श्रीपण्डितविश्वनाथ (झा) द्वारेण सिद्धान्त ज्योतिषस्य प्रकाण्डविद्वास श्रीमुकुन्दमिश्रज्योतिषाचार्या अस्वो ऽपथमव तरिता। आहूताश्चास्य कार्यस्य सम्पादने। तै महानुभावै स्वमहता परिश्रमेण पुस्तकस्यास्य सम्पादने सस्कृतभाष्योपपत्तिहिन्दीटीकादिलेखने च मह्य महान् सहयोग प्रादायि।

इत्थविधिना पुस्तकमिदमिदानीम् अधिकारत्रयस्य विशालस्वरूपेण भवता समक्ष प्रस्तूयते। अनेन ज्योतिषस्य प्रचारकार्ये कियाल्लाभो भविष्यति तथाऽनेन ग्रन्थेन ज्योतिषिका महाभागा कियन्मात्रम् अग्रेसरो भवितु शक्ष्यन्ति—एतत् सर्व विद्वन्मण्डलायत्त मन्ये।

आभार-स्वीकार

अस्मिन्कर्मणि ज्योतिषस्य परमविद्वान् श्रीपण्डितविश्वनाथ (झा) ज्योतिषाचार्यवर्यै गणितकर्मणि च मह्य महान् सहयोगोऽदायि तदर्थमह हृदयेन तेषामाभार गृह्णामि। प्रूफसशोधनकर्मणि महान् सहायको विद्याभास्करो लक्ष्मीनारायण शास्त्री धन्यवादार्ह। तथा कार्यस्यास्य सम्पन्नताये भारतशासनस्य सास्कृतिक वैज्ञानिक विभागाना प्रान्तीयशासनाधिकारिणा अस्या सस्थाया सदस्याना चानुगृहीतोऽस्मि।

भृगु आश्रम
नई देहली

विदुषामनुचर
रामस्वरूपशर्मा

विषयानुक्रमणिका

मध्यमोधिकारः

अष्टमोऽध्याय —

अथ देशान्तरविधिः

नवमोऽध्याय —

अथ प्रश्नविधि

स्पष्टाधिकारः

प्रथमोऽध्यायः—

द्वितीयोऽध्याय.—

तृतीयोऽध्याय —

चतुर्थोऽध्यायः—

पञ्चमोऽध्यायः—

षष्ठोऽध्यायः—

द्वितीयोऽध्यायः—

तृतीयोध्यायः—

चतुर्थोऽध्यायः—

द्वित्राः शब्दाः

श्रीवटेश्वरसिद्धान्त की रचना आज से लगभग ६०० वर्ष पहले हुई थी। लिखे जाने के थोडे ही दिन के भीतर, इसकी गणना सिद्धान्त-ज्योतिष के लब्धप्रतिष्ठ ग्रन्थो मे हो गई। यह आश्चर्य का विषय है कि जिस पुस्तक ने विद्वत्समाज मे इतना समादर प्राप्त किया था, वह कुछ दिनो मे नाम-शेषमात्र रह गई थी। यह हर्ष का विषय है कि बडे अन्वेषण के पश्चात् उसकी एक हस्तलिखित प्रति पण्डित रामस्वरूप शर्मा को मिल गई। उसका प्रकाशन करके उन्होने उपयोगी कार्य किया है। कुछ मित्रो की सहायता से उसका जो विज्ञान-भाष्य लिखा गया है व हिन्दी टीका दी गई है उससे उपयोगिता और भी बढ गई है। उपपत्तियो मे उस प्रक्रिया का व्यवहार करके, जो आधुनिक गणित-ग्रन्थो मे प्रयुक्त होती है, विद्यार्थियो के लिए उपादेयता की मात्रा को कई गुना बढा दिया है।

जिस व्यक्ति ने २४ वर्ष के वय मे ऐसा ग्रन्थ लिखा उसकी प्रतिभा निश्चय ही असाधारण रही होगी। ग्रन्थ को देखने से इस अनुमान की पुष्टि होती है। परन्तु इसके साथ ही कुछ और बातो की ओर भी ध्यान जाये बिना नही रहता। जिस दिनो पुस्तक लिखी गई थी, उस समय भारतीय विज्ञान मे अधोमुखी प्रवृत्ति का आरम्भ हो गया था। ज्योतिष प्रत्यक्षमूलक शास्त्र है। जिस व्यक्ति ने २४ वर्ष की अवस्था मे ऐसी पुस्तक लिखी, निश्चय ही उसने आकाशवर्ती पिंडो के प्रत्यक्ष अध्ययन मे अधिक समय नही लगाया। उसके ज्ञान की गम्भीरता चाहे जो रही हो, पर वह ज्ञान गुरुमुख से और पुस्तको से प्राप्त हुआ था। उसका आधार वेधशाला मे किया गया प्रयोग व अध्ययन न था। वही प्रवृत्ति आज भी है लोग पुस्तक पढकर ज्योतिषी बन जाते हैं। लोकोक्ति के अनुसार, "बाबा वाक्यम् प्रमाणम्" का युग आ गया था। कालिदास के इस कहने को कि 'पुराणमित्येव न साधु सर्वम्' लोग भूल चले थे। व्याकरण व दर्शन के समान ज्योतिष भी शास्त्रार्थ का विषय बन गया था। वटेश्वरसिद्धान्त म पूरा एक अध्याय, ब्रह्मगुप्त के खडन में दिया गया है। उसका शीर्षक ही है 'मन्यदूषणानि'। यह हो सकता है कि भू-भ्रमण आदि किन्ही विषयो पर ग्रन्थकार को आर्यभट्ट के मत मे स्वारस्य हो और ब्रह्मगुप्त के मत मे वैरस्य, परन्तु ब्रह्मगुप्त को मूर्ख सिद्ध करने का प्रयास अशोभन है। कही वह कहते हैं, "रविशशिनोरज्ञानात् तिथेर्न पचागमपि वेत्ति"। कही उनके लिए 'विनष्टमत्र' जैसे विशेषण का प्रयोग किया गया है। जब किसी विद्या की उन्नति का प्रवाह रुक जाता है तभी प्राचीन ग्रन्थो को सर्वोपरि प्रामाणिकता दी जाती है। उनको देवो व ऋषियो की कृतिमात्र कहा जाने लगता है और उनसे लघुमात्र भी भिन्न बात कहना अज्ञान का ही द्योतक नही प्रत्युत एक प्रकार से पाप समझा जाने लगता है। आज हमारे यहा ज्योतिष व वैद्यक मे यही हो रहा है। उपज्ञा का मार्ग बन्द सा हो गया है। ब्रह्मगुप्त के सम्बन्ध मे वटेश्वर की यह आपत्ति है कि 'जिष्णुतनयो निजबुद्ध्या दिव्यशास्त्रमपहाय अन्यद् प्राह' अर्थात् ब्रह्मगुप्त ने देवादिरचित शास्त्रो को छोडकर अपनी बुद्धि से उससे भिन्न कहा है। जो प्रशसा की बात होनी चाहिए थी वही दोष बन गई। कही-कहीं तो दोषदर्शन के नशे मे ऐसा तर्क दे गये हैं जिस पर हँसी आती है। कम से कम मेरी बुद्धि मे यह बात नही बैठती।

व्यक्ते, भूव्यासार्धे सहस्रप्रमिते गणितसौक्ष्म्यात् ।
कर्तव्यं व्यासार्धं ममयमुनिरतस्त्वतिगणितजाड्यमिदम् ।।

पृथ्वी का व्यासार्ध १००० मानना चाहिए क्योंकि इसमें गणित की सूक्ष्मता है। ब्रह्म-गुप्त ने जो ७९० स्वीकार किया है इसमें गणितजाड्य है। पृथ्वी का व्यास वस्तुस्थिति का अंग है। वह न तो ठीक ठीक १००० है और न ही ७९०। यदि ब्रह्मगुप्त ने गणना करने में भूल की तो वह भूल बतलानी चाहिए। सूक्ष्मता व जडता अप्रासंगिक है।

मैं यह सब ग्रन्थ की निन्दा करने के लिए नहीं लिख रहा हूँ वरन् यह दिखलाने के लिए कि वैज्ञानिक ह्रास के युग में ऐसी प्रवृत्तियां प्रोत्साहित होती हैं। बुद्धि का उपयोग, पुराने ज्ञान के संचय व परस्पर के छिद्रान्वेषण में होने लगता है। वटेश्वर के कई सौ वर्ष बाद भारत के गणिताकाश में भास्कर जैसे दीप्तिमान् नक्षत्र का उदय हुआ, जिन्होंने न्यूटन व लाइब्निट्ज के कई शताब्दी पहले तात्कालिक गति के नाम से Differential Calculus को उपज्ञप्त किया। कितने खेद की बात है कि परवर्ती भारतीय गणितज्ञ इस प्रक्रिया का मूल समझ न सके और कुछ ने तो उसका खंडन करने में ही अपनी कृतकृत्यता समझी। अब काल ने करवट ली है। ऐसी आशा करनी चाहिए कि भारत फिर ज्ञान के क्षेत्र में अग्रसर होगा।

लखनऊ —सम्पूर्णानन्द

(भू० पू० मुख्य मन्त्री, उत्तर प्रदेश)

२१-१०-६१

सम्मति—उपकुलपति, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

वटेश्वरसिद्धान्त

विज्ञानभाष्योपपत्तिसहित

श्री रामस्वरूप शर्मा द्वारा सम्पादित

पुस्तक का अवलोकन किया। ऐतिहासिक दृष्टि से ८२६ शक काल मे इस ग्रन्थ का निर्माण श्रीवटेश्वराचार्य ने किया है क्योंकि २४ वर्ष की आयु मे उन्होंने इस ग्रन्थ का निर्माण किया था और आचार्य का जन्म शक ८०२ वर्णित है। यथा—

"शकेन्द्रकालाद्भुज-शून्य-कुञ्जरैरभूद्गतोनैर्मम जन्महायनैः।
अकारि राद्धान्तमितं स्वजन्मनो मया जिनाब्दैर्युसदामनुग्रहात्॥"

व० सि० अध्याय १ श्लोक २१।

श्लोक से उक्त बातें स्पष्ट हैं।

गणकतरङ्गिणी पृ० सं० १६ पंक्ति १४ मे लिखा है—

"यथा ब्रह्मगुप्तेनाऽऽर्यभटादीनां खण्डनं कृतं तथैव वटेश्वरेण स्वसिद्धान्ते बहुत्र ब्रह्मगुप्त-खण्डनं कृतमस्ति।........ .... अस्य सिद्धान्त-ग्रन्थो मया सपूर्णो न दृष्टः। ग्वालियरमहाराजाश्रितस्य श्रीबालज्योतिर्विदो गेहेऽयमस्तीति श्रुत्वा तत्रासकृत्पत्रं प्रेषितं परन्त्वद्यावधि किमप्युत्तरं न प्राप्तम्।"

गणकतरङ्गिणी में उक्त गद्य मे स्पष्ट है कि यह ग्रन्थ अब तक अनुपलब्ध रहा है। विद्वान् सम्पादक ने उक्त ग्रन्थ को केवल प्राप्त ही नही किया है अपितु सुन्दर विज्ञानभाष्योपपत्ति सहित ग्रन्थ का सम्पादन कर सिद्धान्त ज्योतिष के एक महान् प्रयास को सफल बनाया है।

पुस्तक तीन अध्यायों म प्रकाशित हो रही है। सिद्धान्तग्रन्थो म कम-से-कम १४ अध्याय पाये जाते हैं। जैसे सूर्यसिद्धान्त १४ अध्यायों म प्रकाशित है। इससे स्पष्ट है कि यह ग्रन्थ अभी अपूर्ण है, अर्थात् यह ग्रन्थ खण्डमात्र है।

ब्रह्मसिद्धान्त का संशोधन कर इस ग्रन्थ का निर्माण आचार्य वटेश्वर ने किया था जैसा कि मगलाचरण से स्पष्ट है। मगलाचरण मे ही कथा-क्रम का उल्लेख आचार्य ने किया है। यह ग्रन्थ आचार्यों की अपेक्षा अपना वैशिष्ट्य रखता है। अब वटेश्वरसिद्धान्त को विज्ञानभाष्योपपत्ति तथा हिन्दी टीका ने सर्वसुगम बना दिया है। वास्तव मे यह बहुत ही उत्तम प्रयास है। नवम शतक (शक काल) मे इतने बडे ग्रन्थ का होना ज्योतिष के इतिहास को गौरवान्वित करता है। मुझे विश्वास है कि इस ग्रन्थ के माध्यम से सम्पादक ने ज्योतिष शास्त्र को विशेष प्रगति प्रदान करने का प्रयास किया है। आशा है विद्वान् लोग इससे विशेष लाभ उठावेंगे और सम्पादक का प्रयास पूर्ण सफल होगा यही मेरी शुभ कामना है।

एन० एच० भगवती
उपकुलपति
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

३१-१०-१९६१

वटेश्वर-सिद्धान्ते

मध्यमाधिकार-स्पष्टाधिकार-त्रिप्रश्नाधिकाररूपं

पूर्वार्द्धम्

॥ श्रीगणेशाय नम ॥

वटेश्वरसिद्धान्तः

विज्ञानभाष्योपपत्तिसहितः

तत्र मध्यमाधिकारे

प्रथमोऽध्यायः

**ब्रह्मावनीन्दुबुधशुक्रदिवाकरार-जीवार्कसूनुभगुरून् पितरौ च नत्वा ।
ब्राह्मं ग्रहर्क्षगणित महदत्तसूनुर्वक्ष्येऽखिल स्फुटमतीव वटेश्वरोऽहम् ॥१॥**

विज्ञानभाष्यम्—अह महदत्तसूनु (महदत्तनामक पण्डितपुत्र) वटेश्वराचार्य ब्रह्म (ख-शून्य, परमात्मा वा), अवनी (पृथ्वी), इन्दु (चन्द्र), बुधशुक्रौ (प्रसिद्धौ) दिवाकर (सूर्य।), आर (भौम), जीव (बृहस्पति), अर्कसूनु (शनैश्चर), भानि (नक्षत्राणि) गुरुः (विद्यागुरु) एतान् पितरौ (जन्मदातारौ) नत्वा (नमस्कृत्य) अखिल (सम्पूर्णम्) ब्राह्म (ब्रह्मगुप्तकृत ब्रह्मसिद्धान्तीय वा) ग्रहर्क्ष गणितम् (ग्रह-नक्षत्रस्थूलगणितम्) अतीव (अतिशय) स्फुटम् (स्पष्टम्) वक्ष्ये (ब्रुवे) ॥१॥

अत्र सर्वप्रथम ब्रह्मशब्दोपादानमस्ति तदनन्तर पृथ्वीतो नक्षत्रकक्षावृत्त-पर्यन्त ग्रहस्थिति वर्णितास्ति । 'ब्रह्म' त्युक्त्या ब्रह्मशब्देन खस्य आकाशस्य शून्यस्य वा, पृथ्वीतो नक्षत्रकक्षावृत्त यावत् कक्षावृत्ताना केन्द्ररूपस्य भूकेन्द्र-सज्ञकस्यात्यन्ताकर्षणशक्तिसम्पन्नस्य च ग्रहण कर्त्तव्यमन्यथा पृथ्वीतो नक्षत्र-कक्षावृत्त-पर्यन्तमुपर्युपरिस्थितग्रहापेक्षया ब्रह्मणोऽवस्था तस्याधोगतत्वापत्तिः ब्रह्म-स्थानस्य सर्वोर्ध्वगत्वादतो ब्रह्मशब्देन ब्रह्मणो ग्रहण न युक्त प्रतीयते अथवा ब्रह्माण्डगोलान्तर्गतानवनीन्दुबुधशुक्रादीन् नत्वेत्यर्थं वर्त्तव्य ।

ग्रन्थकारकृत-मगलाचरणवर्णित ग्रहस्थित्या सह पृथिव्या स्थितिरपि वर्णितास्ति, पर पृथिव्या आकृति कीदृशी वर्त्तत एतस्य विचार क्रियते। कुत्रचिद् वृक्षादिविरलितसमावनौ कियद्दूरेष्टिका स्तम्भाग्रस्थोद्दीपित-शीशक-घटप्रदीप निशाया दृष्ट्वा तत्समुख तदासन्न च गते सति स्तम्भमूलेप्येक दीप दृष्ट्वा दृष्ट्यवरोधकाभावेऽपि पूर्वं कथ न दृष्टमतो दृष्टयवरोधिका भूरेवेत्यनुमितम् । अतो भूपृष्ठे वक्रत्वमस्तीति सिद्धम् ।

अथ सत्यपि वृक्षाग्राच्चतुर्दिक्षु समाकाशे पृथ्व्यामेव पक्व फल पतत् दृष्ट्वा भूपृष्ठ निष्ठाखिल बिन्दुष्वाकृष्ट शक्तिरस्तीत्यनुमित, तथा मापनेन वृक्षाग्रात् पतनबिन्दु यावद्बद्धरेखा<पतनेतर-बिन्दुषु बद्धरेखा, अत पृथिव्या बहि स्थ-बिन्दो पृष्ठस्थ बिन्दुगत रेखाणा बहि खण्डानि>केन्द्रगरेखा-बहि खण्ड, इति गोलीय नैसर्गिकधर्मदर्शनात् गोलत्वमस्ति कच्चिदिति। अतस्तावत् गोलत्व प्रकल्प्यात्र सन्ति गोलीयधर्मा नवेति परीक्षा क्रियते।

पृथिव्या स्थानद्वये समस्तस्तम्भ द्वयमारोप्यैकस्तम्भस्य शीर्ष बिन्दुतोऽन्यस्तम्भाग्र विद्धम्। पृथ्व्यन्तर्गत एकस्तादृशो बिन्दुरस्ति, यस्मिन् विशिष्टाऽऽकर्षण शक्तिरस्ति यो हि बिन्दु पृथिवीपृष्ठस्थ पदार्थान् स्वाभिमुखमाकर्षयति स बिन्दु (भूमध्यक)। पृथिव्या पृष्ठे स्थापित स्तम्भद्वय भूबिन्दोराकर्षण शक्तिवशात्तत्र (भू) बिन्दौ मिलति (च, प) समस्त स्तम्भ द्वयाग्र, च बिन्दुस्थ दृष्ट्या द्वितीयस्तम्भाग्र (प) विद्धम्।

च बिन्दुस्थ दृष्टिलग्नकोणस्तुरीययन्त्रद्वारा मापनेन विदित। एतत्तुल्य एव प बिन्दु लग्न कोण, अत च प भू त्रिभुजे १८०—(<च+<प)=<भू। च प स्तम्भाग्रान्तरमपि मापनेन विदितमस्ति तदोक्त-त्रिभुजेऽनुपात क्रियते।

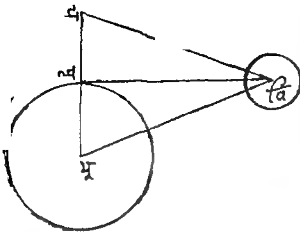
$$\frac{\text{स्तम्भाग्रान्तर} \times \text{ज्या} < \text{च}}{\text{ज्या} < \text{भू}} = \text{भूप} = \text{भूव्यासार्ध} + \text{स्तम्भ}$$

अत्र स्तम्भस्य शोधनेन भू व्यासार्ध मानमवशिष्टम्। एव भूव्यासार्धज्ञान जातम्, एव कृते सर्वत्रैव फलसाम्यमुपलब्धमतो भूर्गोलाकाराऽस्तीति सिद्धम्। वस्तुतस्तु भूदीर्घपिण्डाकाराऽस्ति, पर तत्र लघुव्यास बृहद्व्यासयोरत्यल्पान्तरत्वात्तयो समत्व कल्पितमाचार्यैरिति।

चतुर्थे पृष्ठे दत्त चित्र द्रष्टव्यम्।

तथा च मङ्गलश्लोकवर्णितग्रहस्थितिदर्शनेनैव रव्यादिवारगणनक्रमोऽपि सिद्धयति। यथा ग्रहस्थिति —चन्द्र, बुध, शुक्र, रवि, कुज, गुरु, शनैश्चर। एते क्रमश उपर्युपरि क्रमेण सन्ति। मन्दादध क्रमेणैव चतुर्था दिवसाधिपा इति सूर्यसिद्धान्तोक्ते शनैश्चरतोऽधोऽध क्रमेण चतुर्थश्चतुर्थो वारेशो भवति। यथा शनैश्चरतश्चतुर्थो रविरत प्रथमदिनपति सूर्य, सूर्यादधश्चतुर्थश्चन्द्रोऽस्ति तेन द्वितीयदिनपतिश्चन्द्र। चन्द्रादधश्चतुर्थो मङ्गलोऽतस्तृतीयो दिनपतिर्मङ्गल, मङ्गलादधश्चतुर्थो बुधोऽतश्चतुर्थो दिनपतिर्बुध इत्यादि, एव वारगणनाक्रम सर्वप्रथम भारतीयैरेव गाणितिक कृत इति।

अथ पृथ्वीतो नक्षत्र यावदुपर्युपरि क्रमेण स्थितानां तेषां (चन्द्रबुधशुक्ररव्यादीनां) स्थितेर्ज्ञान कथ भवेदर्थाच्चन्द्रादुपरि बुधस्तदुपरि शुक्र इत्यादेर्ज्ञान कथमित्येतदर्थ वेधेन ग्रहबिम्बीय कर्णज्ञान क्रियते।



वि=ग्रहबिम्बकेन्द्रम्

भू=भूकेन्द्रम्

पृ=पृष्ठस्थानम्

च=दृष्टिस्थानम्

पृ च=दृष्टयुच्छ्रिति.

भू वि=ग्रहबिम्बीयकर्ण.

पृ वि=पृष्ठकर्ण

भू पृ=भूव्यासार्धम्

चित्र न० १

अत्र पृ च वि त्रिभुजे च पृ वि, पृ च वि तुरीययन्त्र द्वारा मापनेन विदितौ तत १८०—(<च पृ वि+ <पृच वि)=पृ वि च तत उक्त त्रिभुजे कोणत्रयस्य दृष्टयुच्छ्रायस्य च ज्ञानादनुपातेन पृ वि विदित भवेत्, तथा १८०— <च पृ वि=< भू पृ वि तदा भू पृ वि त्रिभुजे भू पृ, पृ वि भुजयोस्तदन्तर्गतकोणस्य च ज्ञानात् त्रिकोणमित्या भू वि ज्ञान भवेदयमेव ग्रह बिम्बीय कर्ण ।

एव सर्वेषा ग्रहाणा बिम्बीय-कर्णज्ञान कृत्वाऽऽचार्यैर्ग्रहकक्षा व्यासार्धमान पठितम् । तत्र सर्वग्रहापेक्षया चन्द्रबिम्बीयकर्णमानमल्पमायाति चन्द्रकर्णतोऽधिक बुधकर्णमान ततोऽधिक शुक्रकर्णमान, ततोऽधिक रविकर्णमानमित्यादि, तेन भूकेन्द्राद्बिम्बीय-कर्णव्यासार्धेन यद्वृत्त तदेव ग्रहकक्षावृत्त भवत्यतश्चन्द्रकक्षावृत्तादुपरि बुधकक्षावृत्तम्, तदुपरि शुक्रकक्षावृत्त, तदुपरि रविकक्षावृत्तमित्यादिमङ्गलश्लोकवर्णित-स्थिति-क्रमेण सर्वेषा कक्षा वृत्तान्युपर्युपरि क्रमेण भवन्ति । एतावता सिद्धम् यद्येषु मार्गेषु ग्रहा भ्रमन्ति सच मार्गो वृत्ताकारो भवति, यस्य नाम कक्षावृत्तमित्यर्थात् भूकेन्द्राद् ग्रहबिम्बकेन्द्रगत सूत्रम् ग्रहकक्षाव्यासार्धम् तद्वशात पृथिव्या केन्द्रमभित उपर्युपरि ग्रहाणा वृत्ताकारा कक्षा , नवीनैस्तु सूर्यकेन्द्राभिप्रायेण दीर्घवृत्ताकारकक्षाया ग्रहभ्रमण स्वीक्रियते । दीर्घवृत्तस्यैकनाभौ रविकेन्द्र तस्माद्बहिर्मन्दकर्णाग्रे बुध, शुक्र, भूमि, मगल, गुरु-शनीना कक्षा क्रमश ऊर्ध्वाधररूपेण सन्तीति ॥१॥

हिन्दी भाष्यम्—मैं महदत्त पडित का पुत्र वटेश्वराचार्य ब्रह्म (परमात्मा), या शून्य (भूकेन्द्र बिन्दु) पृथिवी चन्द्र, बुध, शुक्र, रवि, भौम, बृहस्पति शनैश्चर, नक्षत्र, आचार्य गुरु, अपने जन्मदाता माता पिता इन सब को प्रणाम कर ब्रह्मगुप्त कृत समस्त ग्रह नक्षत्रो का गणित (स्थूल गणित) को अतिशय स्पष्ट कहता हूँ ।

यहाँ सर्वप्रथम ब्रह्म शब्द दिया गया है । उसके बाद पृथिवी से नक्षत्र तक ग्रहस्थिति वर्णित है । 'ओ ख ब्रह्म' इस उक्ति से ब्रह्म शब्द से आकाश मानो शून्य का अर्थात् पूर्व वर्णित पृथिवी से नक्षत्र तक ग्रह कक्षा वृत्तो के केन्द्र रूप भूकेन्द्र नामक आकर्षणशक्तियुक्त बिन्दु का ग्रहण करना चाहिये । यदि ब्रह्म शब्द से ब्रह्म ही का ग्रहण करेंगे तो ब्रह्म का

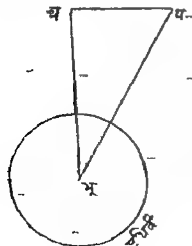
स्थान ग्रहों से पृथिवी से भी नीचा हो जाएगा जो उचित नहीं है। ब्रह्म शब्द से शून्य (भूकेन्द्र बिन्दु) ही का ग्रहण करना उचित है, या ब्रह्माण्ड गोलान्तर्गत पृथिवी, चन्द्र, बुध, शुक्र आदि को नमस्कार कर ब्राह्म गणित को स्पष्ट कहता हूँ। ऐसा अर्थ करना चाहिये।

यहां पर (मङ्गलाचरण में) कही हुई ग्रहस्थिति के साथ पृथ्वी की भी स्थिति कही गई है, पर पृथ्वी का आकार कैसा है इसके सम्बन्ध में विचार करना है। वृक्षादि रहित किसी समान जगह पर से कुछ दूरी पर ईंटो के खम्भे के ऊपर जलती हुई लालटेन आदि प्रकाशमान चीजों को देखकर उसके तरफ समीप जाने पर उस खम्भे की जड़ में भी रात्रि में एक लालटेन देख कर मन में आया कि जब कोई चीज दृष्टि की अवरोधक नहीं थी तो एक ही समय में दोनो लालटेनो को क्यों नहीं देखा। इसमें अनुमान किया कि पृथ्वी ही दृष्टि की अवरोधक है। इससे सिद्ध हुआ कि पृथ्वी के पृष्ठ में वक्रता (टेढ़ापन) है।

चारों तरफ आकाश के बराबर रहने पर भी पृथ्वी के पृष्ठ पर पके फल को गिरते हुए देखकर पृथ्वी के पृष्ठ पर प्रत्येक बिन्दु में आकर्षण शक्ति है। इस तरह का अनुमान हुआ। तथा वृक्षाग्र से पतन बिन्दु तक रेखा < पतनेतर बिन्दु तक रेखा इस लिये पृथ्वी पृष्ठ पर बहिर्गत बिन्दु से पृथ्वी पृष्ठ तक रेखाओं के बहिर्खण्ड > केन्द्रग रेखा बहिर्खण्ड, यह गोल पदार्थ में होता है। इसलिये पृथ्वी में भी किसी तरह का गोलत्व ज्ञात हुआ। अतः पहले पृथ्वी में गोलत्व स्वीकार कर परीक्षा करनी है कि इसमें गोलीय धर्म है या नहीं।

पृथ्वी पृष्ठ पर दो जगह में दो बराबर खम्भों को गाड़कर एक खम्भे के अग्रभाग में दृष्टि रखकर दूसरे खम्भे के अग्रभाग को देखा। पृथ्वी के भीतर एक ऐसा बिन्दु है जो पृथ्वी पृष्ठ पर की चीजों को अपनी तरफ खींचता है। अतः दोनों खम्भे बढ़कर उसी बिन्दु में मिलते हैं। उस बिन्दु का नाम भू है। जो गणित द्वारा निम्न प्रकार से सिद्ध है।

च प = खम्भों का अग्रान्तर है इसे नाप कर जाना। <च का ज्ञान तुरीय यन्त्र द्वारा कर लिया। इसी कोण के बराबर < प कोण भी है। अतः १८० — (>च + <प) = < भू तब च प भू त्रिभुज में अनुपात से $\frac{\text{चप} \times \text{ज्या} < \text{च}}{\text{ज्या} < \text{भू}}$ = भू प = भू व्यासार्ध + खम्भा



-चित्र न० २ -

इसमें खम्भा वियुक्त करने से भूव्यासार्ध अवशिष्ट रहा। इस प्रकार हर एक जगह करने से भू व्यासार्ध का मान बराबर देख लिया। अतः पृथ्वी गोलाकार है यह उपपन्न हुआ। वस्तुतः पृथ्वी का आकार दीर्घ पिण्डाकार है लेकिन उसके लघुव्यास और बृहद् व्यास में बहुत ही कम अन्तर है। इसलिए

दोनों व्यासों को बराबर प्राचीन आचार्यों ने माना है। अतः पृथ्वी में गोलत्व सिद्ध हुआ।

मङ्गलश्लोक में वर्णित ग्रहस्थिति को देखने से रवि, सोम, मंगल आदि वार गणना-क्रम भी सिद्ध होता है। जैसे चन्द्र, बुध, शुक्र, रवि, कुज, गुरु, शनि ये उपरि-उपरि क्रम से है। 'मन्दादधः क्रमेणैव चतुर्था दिवसाधिपा' इस सूर्यसिद्धान्त की उक्ति से शनि से नीचे नीचे क्रम में चौथे दिनपति होते हैं। जैसे-शनि से चौथा रवि है अतः यह प्रथम दिनपति हुआ। रवि से चौथा अधः क्रम से चन्द्र है अतः दूसरा दिनपति चन्द्र हुआ। चन्द्र से नीचे क्रम में चौथा भौम है अतः तृतीय दिनपति मंगल हुआ इत्यादि।

इस प्रकार वार-गणना-क्रम रवि, सोम, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि-इन दिनों का ज्ञान सर्वप्रथम भारतीय ज्योतिषियों ने किया।

पृथिवी से नक्षत्र तक चन्द्र, बुध, शुक्र, रवि, कुज, गुरु, शनि, नक्षत्र ऊपर-ऊपर क्रम से इन सब की स्थिति का ज्ञान कैसे होता है। इसके लिये वेध से ग्रहों के बिम्बीयकर्ण का ज्ञान अपेक्षित है।

चित्र नं० १ देखिये

वि = ग्रह बिम्ब केन्द्र

भू = भू केन्द्र

पृ = पृष्ठस्थान

च = दृष्टिस्थानम्

पृ च = दृष्टि की ऊँचाई

भू वि = ग्रह बिम्बीय कर्ण

पृवि = पृष्ठ कर्ण

भू पृ = भूव्यासार्ध

च पृ वि, पृ च वि ये दोनो कोण तुरीय यन्त्र से नाप कर जान लिया, तब १८० — ($<$च पृ वि + $<$पृ च वि) = $<$पृ वि च तब पृ च वि त्रिभुज में पृ च दृष्टि-उच्छ्रिति और तीनों कोणों के ज्ञान से पृ वि का भी ज्ञान हो जायगा।

१८० — $<$च पृ वि = $<$भू पृ वि तब भू पृ वि त्रिभुज में भू पृ, पृ वि दोनों भुजों के तथा तदन्तर्गत कोण के ज्ञान से त्रिकोण मिति से (भू वि) इसका ज्ञान हो गया। यही ग्रह बिम्बीय कर्ण है। इसी तरह सब ग्रहों के बिम्बीय कर्णों का ज्ञान करके आचार्य ग्रहकक्षाव्यासार्ध पठित कर चुके हैं।

सब ग्रहों के बिम्बीय कर्णमानों से चन्द्रबिम्बीय कर्ण लघु होता है। चन्द्रबिम्बीय कर्ण से $<$बुध बिम्बीय कर्ण इससे अधिक शुक्र बिम्बीय कर्ण, इससे अधिक रवि बिम्बीय

नहीं इससे अधिक भौमबिम्बीय कर्ण इत्यादि। अतः चन्द्र कक्षावृत्त से ऊपर बुध कक्षावृत्त और बुध कक्षा वृत्त से ऊपर शुक्रकक्षावृत्त और इससे ऊपर रवि कक्षावृत्त इत्यादि होता है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि जिस मार्ग में ग्रह चलते हैं वह मार्ग वृत्ताकार है। ग्रह कक्षा व्यासार्धवश से पृथ्वी केन्द्र (भूकेन्द्र) के चारो ओर नीचे ऊपर क्रम से ग्रहों का कक्षावृत्त है।

आधुनिक ज्योतिषी लोग सूर्य केन्द्राभिप्रायिक दीर्घवृत्ताकार कक्षावृत्तों में सब ग्रहों का भ्रमण होना मानते हैं। दीर्घवृत्त की एक नाभि में रवि केन्द्र है और उसके बाहर मन्दकर्णाग्र में बुध, शुक्र, पृथ्वी, कुज, गुरु, शनैश्चर इन ग्रहों का कक्षावृत्त क्रम से ऊर्ध्वाधर रूप से है॥१॥

कालक्रियागणितगोलमहागमार्थं ज्ञानप्रपञ्च-विमलीकृतचारुधीभिः ।
दिव्यैः प्रदर्शितमिदं मुनिभिर्यदज्ञाः कुर्मो वयं तदवलोक्य गुणाः स तेषाम् ॥२॥

वि भा—कालक्रिया (त्रुट्यादितः प्रलयान्तं यावत् कालगणना कालसाधनं वा) गणितं (व्यक्तमव्यक्तं च) गोलं (खगोल, भगोल, ग्रहगोलादि) महागमं (प्रामाणिकातीव प्राचीनग्रन्थः ।) एतेषां यथार्थज्ञानवैशद्येन विमलीकृत-सुन्दरबुद्धिभिः दिव्यैर्मुनिभिः (दिव्यज्ञानिभिः महात्मभिः) इदं (ज्यौतिषशास्त्रं) प्रदर्शितम् *(जनसाधारणसमक्षे रक्षितम्) तदवलोक्य (तत्प्रदर्शितं ज्यौतिषशास्त्रं* दृष्ट्वा) यदज्ञा वयं (यज्ज्ञानरहिता वयं) तच्छास्त्रं कुर्मः । तेषां महात्मनां सगुणः (आशीर्वादफलम्) अर्थात् ज्यौतिषशास्त्र-ज्ञानरहितेन मया यद् ग्रन्थ-प्रणयनं क्रियते तन्मुनिप्रणीत-ग्रन्थावलोकनफलम् । एतावतैतदपि सिद्ध्यति, यदाचार्यो वटेश्वरः आत्मनि ज्यौतिषशास्त्रानभिज्ञत्वं प्रदर्शयन् भङ्ग्यन्तरेण कालक्रियागणितगोलादेरभिज्ञत्वं प्रदर्शयति, कथमन्यथाऽनभिज्ञेन ग्रन्थकरणं भवितुमर्हतीति ॥२॥

हि भा—त्रुट्यादि से लेकर प्रलयान्त तक कालगणना वा कालसाधन, गणित (व्यक्त तथा अव्यक्त) खगोल भगोल ग्रहगोलादि, प्रामाणिक बहुत प्राचीन ग्रन्थादि के यथार्थ ज्ञान से साफ सुन्दर बुद्धि वाले दिव्य ज्ञानी मुनि महात्माओं द्वारा यह ज्योतिष शास्त्र दिखलाया गया है। उसको (मुनिप्रणीत ज्योतिष शास्त्र को) देखकर ज्योतिष शास्त्र में अनभिज्ञ मैं *ज्योतिषशास्त्रीय ग्रन्थ को करता हूं*, यह उन्हीं महात्माओं के आशीर्वाद का फल है। इससे पूर्वाचार्यों के प्रति (मुनि-महात्माओं के प्रति) अपनी कृतज्ञता प्रकाशित करते हुए आचार्य (वटेश्वर) काल क्रिया गणित गोलादि विषयों में अतीव ज्ञानी अपने को दूसरे ढंग से प्रकट करते हैं॥२॥

ग्रन्थारम्भकारणमाह

किं तुच्छबुद्धि-कृतदृष्टि-विभेद एषां कोऽत्र युगं स्फुटमुपैति सदैकतो नः ।
यस्मादतः सकलशास्त्रविचारसारं प्रोद्भास्यतेऽखिलमपास्त-कुदृष्टिमार्गम् ॥३॥

वि भा—यस्मात् कारणात् एषां (महात्मनां मुनीनां कथितविषयेभ्य इति शेषः) तुच्छबुद्धिकृतदृष्टिविभेदः (अल्पबुद्धि द्वारा रचितग्रन्थेषु प्रत्यक्ष-

विभेद किं नार्थान् मुनिकथित-विषयेभ्योऽल्पबुद्धि द्वारा रचितग्रन्थेषु प्रत्यक्ष-विभेदोऽस्त्येव, क्वोक्त (ब्रह्मगुप्तकथितम्) युग (युगादिमानम्) सदा (सर्वदा) एकत (एकमपि) स्फुट नोपैति (न प्राप्नोति) अर्थात् ब्राह्मस्फुटसिद्धान्ते ब्रह्मगुप्त-कथित युगादिमानमेकमपि स्पष्ट न भवति अत (अस्माद्धेतो) अखिल (सम्पूर्ण) अपास्तकुदृष्टिमार्ग (निराकुलाशुद्धपद्धतिम्) सकलशास्त्रविचारसार (सम्पूर्ण-शास्त्रविचाररहस्यम्) मया प्रोद्भास्यते (प्रकाश्यते) प्रकाशित करोम्यह वा ।।३।।

हि भा —जिस कारण अल्पबुद्धि द्वारा रचित ग्रन्थो मे प्रत्यक्ष विभेद उन मुनियो द्वारा कथित विषयो मे क्या नही है अर्थात् मुनियो द्वारा कथित विषयो से अल्प बुद्धिद्वारा रचित ग्रन्थो मे प्रत्यक्ष विभेद है ही । ब्रह्मगुप्त के ग्रन्थ (ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त) मे कथित एक भी युगादिमान स्पष्ट नही होता है । इसलिए मैं इस अशुद्ध पद्धति को हटाकर सम्पूर्ण शास्त्रो का सारभूत ग्रन्थ को करता हू (बनाता हू) ।।३।।

इदानी ज्यौतिषशास्त्रस्य वेदाङ्गत्वनिरूपणमाह—

श्रुत्युत्तमाङ्गमिदमेव यतो नियोगः कालेऽयनर्तु तिथिपर्वदिनादिपूर्वः ।
वेदीककुब्भवनकुण्ड-तदन्तरादि ज्ञेय स्फुट श्रुतिविदां बहुमत्यमस्मात् ॥ ४ ॥

वि भा —यत (यस्मात् कारणात्) अयनर्त्तु, तिथि, पर्व, दिनादि पूर्वे काले अयने (उत्तरायणे, दक्षिणायने) ऋतव (वसन्तादय षट्) तिथय (प्रतिपदादय) पर्वाणि (सक्रान्ति-ग्रहणादीनि) दिनानि (रव्यादय) एत-दादिपूर्वककाले, नियोग (वेदविहित-क्रियाणा प्रयोगो भवति) अस्मात् (शास्त्रात्) वेदी ककुब्भवन कुण्डतदन्तरादि स्फुट ज्ञेय (यज्ञवेदी, दिक्, यज्ञमण्डप) कुण्डानि, तदन्तरादि (दैर्घ्यविस्तारादि) इति स्फुटम् ज्ञातव्य भवति (अर्थात् अयनर्त्तु तिथि-पर्वादि काले वेदविहितक्रियाणा विनियोगो भवति, तत्कालज्ञानञ्च ज्योतिषशास्त्राद् भवति, यज्ञवेद्यादिरचना तत्र दिग् ज्ञान दैर्घ्यविस्तारादिज्ञानञ्च ज्योतिषशास्त्रादेव भवति) अस्माद्धेतोरिदमेव ज्यौ-तिषशास्त्र श्रुत्युत्तमाङ्गम् (वेदप्रधानाङ्ग नेत्ररूप) श्रुतिविदा (वैदिकानाम्) बहुमत्य (बहुसम्मत) ज्ञेयमिति ।।४।।

ज्योतिषशास्त्रस्य वेदाङ्गत्व-तदङ्ग-प्रधानत्वविषये सिद्धान्तशिरोमणौ भास्करेण कथ्यते । *यथा*—

वेदास्तावद्यज्ञकर्मप्रवृत्ता यज्ञा प्रोक्तास्ते तु कालाश्रयेण ।
शास्त्रादस्मात् कालबोधो यत स्याद्वेदाङ्गत्व ज्यौतिषस्योक्तमस्मात् ।।
शब्दशास्त्र मुख ज्यौतिष चक्षुषी, श्रोत्रमुक्त निरुक्त च कल्प करौ ।
या तु शिक्षाऽस्य वेदस्य सा नासिका पादपद्मद्वय छन्द आद्यैर्बुधै ।।
वेदचक्षु किलेद स्मृत ज्यौतिष मुख्यता चाङ्गमध्येऽस्य तेनोच्यते ।
सयुतोऽपीतरै कर्णनासादिभिश्चक्षुषाऽङ्गेन हीनो न किञ्चित् कर ।।
तस्मात् द्विजैरध्ययनीयमेतत् पुण्य रहस्य परम च तत्त्वम् ।

भास्कराचार्येण सिद्धान्तग्रन्थलक्षणे वटेश्वरापेक्षयाऽन्येऽपि बहवो विषया प्रतिपादिता सन्ति । यथा—

"त्रुट्यादि-प्रलयान्त-कालकलना-मानप्रभेद: क्रमाच्चारश्च द्युसदां द्विधाऽत्र गणितं प्रश्नास्तथा सोत्तरा: । भूधिष्ण्या ग्रहसंस्थितेश्च कथनं यन्त्रादि यत्रोच्यते । सिद्धान्त: स उदाहृतोऽत्र गणितस्कन्धप्रबन्धे बुधै: ॥" इति ॥५॥

हि. भा. —जिस ग्रन्थ में त्रुट्यादि सम्पूर्ण कालमान, ग्रहादि के उदयास्तवश सावन दिन, कुट्टकगणित युक्त समस्त व्यक्त अव्यक्त गणित, ग्रह, नक्षत्र, पृथ्वी इन सब की स्थिति ग्रहपिण्ड, नक्षत्रपिण्ड, पृथ्वीपिण्ड, किस आकार के हैं और कहाँ पर किस रूप में है इन सब का वर्णन जिस ग्रन्थ में उत्तम तरह से किया जाय उस मुनिवरों ने सिद्धान्त कहा है। सिद्धान्त ग्रन्थ के लक्षण के विषय में भास्कराचार्य ने आचार्य वटेश्वर जी से कुछ और विशेष बातें कही हैं। "यन्त्रादि यत्रोच्यते स सिद्धान्त उदाहृत:" परन्तु वटेश्वराचार्य ने उक्त भास्कराचार्य के समान अपने ग्रन्थ में कहीं भी यन्त्रादि का वर्णन नहीं किया है। यही भास्कराचार्य के सिद्धान्त विषय परिभाषा में विशेषता देखी जाती है ॥५॥

आदौ ससर्ज भगणं झष मेष सन्धि-संस्थग्रहै: सह ग्रहस्फुरदंशुजालम् ।
ब्रह्मा प्रतिक्षणगमर्कजसोमकक्षा वक्रध्रुवप्रतिनिबद्धमिनेन्दुवश्यम् ॥६॥

वि. भा. —ब्रह्मा (स्रष्टा) आदौ (प्रथमत:) झष मेष सन्धि संस्थ ग्रहै: सह (रेवत्यन्तस्थितै: ग्रहै: सार्धम्) ग्रहस्फुरदंशुजालम् (ग्रह किरण द्वारा देदीप्यमानम्) भगणं (नक्षत्र समूहम्) प्रतिक्षणगम् (निरन्तर चलायमानम्)। अर्कज सोम कक्षा वक्रध्रुवप्रतिनिबद्ध (शनिकक्षातश्चन्द्रकक्षा यावत् तदभिमुख ध्रुवयष्टिसन्नद्धम्)। इनेन्दुवश्यम् (सूर्यचन्द्राधीनम्) ससर्ज रचितवान् अर्थात् भगणादि संस्थै ग्रहै: सह ध्रुवयष्ट्याधारे प्रतिक्षण चलायमानम् भगण रचितवान् । ब्रह्मगुप्तोऽप्येवमेव कथयति—ध्रुवतारा प्रतिबद्ध-ज्योतिषचक्रं प्रदक्षिणगमादौ। पौष्णाश्विन्यन्तस्थै: सह ग्रहै: ब्रह्मणा सृष्टम् ।

अत्र ग्रन्थकार कथनेन ज्ञायते यदाकाशे ये ग्रहा यानि नक्षत्राणि च सन्ति सर्वेषां सृष्टिकर्ता ब्रह्मा वास्ति परन्तु "सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च" इति वेदोक्त्या ब्रह्मा सूर्यस्य पुत्र: सिद्धयति तदा पुत्रात् ब्रह्मण: पितु: सूर्यस्य कथं सृष्टिर्भवेत् ? तथा च "सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्" इत्यादि वेदोक्त्याऽपि ब्रह्म (प्रजापति) द्वाराऽऽकाशी ग्रहादिसृष्टिर्न भवतीति।

अत्र धाताशब्देन परमेश्वरस्य ग्रहणं ब्रह्मणो नहि, ब्रह्मा केवल पार्थिव-सृष्टिकर्त्ताऽस्ति आकाशीय-सृष्टिकर्त्ता नहि, ब्रह्मणा तेजोमय सूर्ये एको विशिष्ट प्रकाशवर्धक: सौराकरपपदार्थो नियोजितो यद्द्वारा सूर्यस्य प्रकाशोऽतीव दूरे गच्छेत् । अतो ब्राह्मप्रलये (ब्रह्मणो दिनान्ते) स विशिष्ट पदार्थ: सूर्ये नियोजितो विनष्टो भवति, येन तत्र (प्रलयकाले) अन्धकारो जायते । यद्यपि सूर्यस्तस्मिन्

समयेऽपि वर्तत एव किन्तु तदा सूर्येऽतीव प्रकाशाल्पता जायते एतेनैव कारणेन सूर्यसिद्धान्ते ब्रह्मकल्पाद् भिन्नः सृष्टिकल्पः प्रतिपादितोऽस्ति। सूर्येण यत् समर्थनं सिद्धान्ततत्त्वविवेके कमलाकरेण कृत भास्करमतखण्डनञ्च कृतमिति। ग्रन्थकारपद्येन ज्ञायते यद् भगोल भ्रमणेन सहैव ग्रहगोलस्यापि भ्रमण प्रतिक्षण ध्रुवकीलद्वयगतसूत्रा (ध्रुवयष्टि) धारे भवति। कथमित्युच्यते। भूगर्भादिष्ट-व्यासार्धको हि गोलो भगोलः। भचक्र-भगोलयोः ध्रुवसूत्रयष्टि-प्रोतत्वेन सहैवागमनादि-भवनाद् भगोलससक्तयोर्मन्दशीघ्रगोलयोः ग्रहाधिकरणयोरपि तत्राहैव गमनमिति।

अथ ध्रुवसूत्राधिकरणकम् पश्चिमाभिमुख भचक्रभ्रमणम्। तत्सूत्रमध्ये कदम्बसूत्र ब्रह्मणा तथा निबद्धम्, यथा कदम्बसूत्र भचक्रस्य पश्चिमभ्रमे विघ्न न कुर्वत् सप्रह कराघातजनितभ्रमे भचक्र पृष्ठे कदम्बस्थाने खचितं भूत्वा स्थिर भवेत्। तेन ध्रुवसूत्र ध्रुवस्थानादुक्तवेगविरामान्त प्रागपरदिशि २७° पर्यन्तम् भचक्रस्य पृष्ठ धर्षति। प्रतीत्यर्थमस्य वामकरतले दक्षतर्जनीमध्यमे समारोप्य गतिभ्या ते प्रचाल्य सर्वं दर्शयेत्। तेन ध्रुवतारा न स्थिरा केवलं ध्रुवस्थानमेव स्थिरमिति सिद्धमतोऽत्राचार्योक्तं, ध्रुवप्रतिनिबद्धमिति साधु सगच्छते। अत्र भास्करेण, तदन्ततारे च नथा ध्रुवत्वे" इति यत्कथ्यते तत्तथ्य नास्ति।

उपरि-लिखित युक्त्यैव स्फुटमत' सिद्धान्ततत्त्वविवेके कमलाकरेण तस्य यत् खण्डनं "ध्रुवतारा स्थिरा ग्रन्थे मन्यन्ते ते कुबुद्धय।" इत्यादिना कृतम् तत्समीचीन प्रतिभाति।

हि भा.—भगणादि (रेवत्यन्त) मे स्थित ग्रहो के साथ शनि कक्षा से अधोऽध क्रम से चन्द्र कक्षा तक चन्द्राभिमुख नक्षत्र गणो को ब्रह्मा ने बनाया, जिनमे सूर्य और चन्द्र प्रधान हैं। ब्रह्मगुप्त भी इसमे सम्मत हैं। जैसे—

ध्रुव-तारा-प्रतिबद्ध-ज्योतिश्चक्र प्रदक्षिणगमादौ। पौष्णाश्विन्यन्तस्थं सह ग्रहैर्ब्रह्मणा सृष्टम्॥

आचार्य के कथन से मालूम होता है कि आकाश मे जो ग्रह और नक्षत्र गण हैं सब के सृष्टिकर्ता ब्रह्मा ही हैं लेकिन "सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च" इस वेदवचन से ब्रह्मा सूर्य के पुत्र सिद्ध होते है, तब पुत्र (ब्रह्मा) से पिता (सूर्य) की सृष्टि कैसे सम्भव हो सकती हैं। और, "सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्" इस वेदमत्र मे भी ब्रह्मा द्वारा आकाशीय ग्रहादि सृष्टि नही होनी हैं। यह स्पष्ट सिद्ध हैं।

यहाँ धाता शब्द से परमेश्वर का ग्रहण किया गया हैं। ब्रह्मा का ग्रहण नही किया हैं। ब्रह्मा केवल पृथ्वी पर की सृष्टि करता है, आकाशीय ग्रहादि सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा नही है। ब्रह्मा तेजोमय सूर्य में एक ऐसा प्रकाश फैलाने वाला शीशा रूप पदार्थ रख देता है, जिसके द्वारा सूर्य की रोशनी बहुत दूर तक जाती हैं। इसलिये ब्राह्मलय (ब्रह्मा का

दिनान्त में) वह प्रकाश फैलाने वाली चीज नष्ट हो जाती है। जिससे उस समय (प्रलय काल) में अन्धकार हो जाता है। यद्यपि सूर्य भगवान् उस समय भी रहते हैं किन्तु उनमें अत्यन्त प्रकाश की कमी रहती है। इसी कारण से सूर्यसिद्धान्त में ब्रह्मकल्प से सृष्टि-कल्प भिन्न माना गया है जिसका समाधान सिद्धान्ततत्त्वविवेक ग्रन्थ में कमलाकर भट्ट ने किया है और भास्कर मत का खण्डन किया है।

ग्रन्थकार के वचन से मालूम होता है कि भगोल भ्रमण के साथ ही ग्रहगोल का भी भ्रमण बराबर दोनों ध्रुव कीलों में गई हुई रेखा (ध्रुवयष्टि) के आधार पर होता है ऐसा क्यों होता है? भूगर्भ से इष्ट व्यासार्ध से भगोल बनता है। भचक्र और भगोल दोनों का ध्रुव यष्टि के आधार पर साथ ही आने जाने के कारण भगोल समस्त मन्द गोल और शीघ्र गोल का भी (जिनमें ग्रह भ्रमण करते हैं) साथ ही भ्रमण होता है। ध्रुवसूत्र (ध्रुवयष्टि) के आधार पर भचक्र का भ्रमण पश्चिमाभिमुख होता है उसके बीच में ब्रह्मा कदम्बसूत्र को उस ढंग से बाँध देता है जिसम कदम्बसूत्र भचक्र के पश्चिमाभिमुख भ्रमण में बाधा नहीं करते हुए ब्रह्मा के हाथ के आघात से उत्पन्न भ्रमण में भचक्र के पीठ पर कदम्ब स्थान में गड कर स्थिर हो, इसलिये ध्रुव सूत्र ध्रुवस्थान से पूर्व कथित वेग के विराम (अन्त तक) पूर्व और पश्चिम. २७° पर्यन्त भचक्र के पीठ को रगडता है। इसलिये ध्रुवतारा स्थिर नहीं हैं, केवल ध्रुवस्थान ही स्थिर है, यह सिद्ध हुआ। अत सिद्धान्तशिरोमणि में "तदन्ततारे च तथा ध्रुवत्व' भास्करोक्त का खण्डन सिद्धान्ततत्त्वविवेक में कमलाकरभट्ट ने किया है। कमलाकर यह भी कहते हैं कि ध्रुव स्थान स्थिर है ध्रुव तारा स्थिर नहीं है। यथा—

"'ध्रुवतारा स्थिरा ग्रन्थे मन्यन्ते ते कुबुद्धय" वटेश्वराचार्य यहाँ "ध्रुवप्रति-निबद्धमित्यादि" युक्तिसगत कहते हैं ।।६।।

ब्राह्मणा भचक्रं निर्मायाऽकाशे क्षिप्त तदा तत्कराघातेन। तस्याऽन्दोलिका गतिर्जाता तद्गतिज्ञानार्थमधोलिखितविधिः—

प्रथम ज्योतिषशास्त्र-मूलभूत भचक्र सम्बन्धे किञ्चिद्विचार्यते। भचक्र-मिति शब्दात्ताराणामाधारे गोलत्वध्वनि। यतो भचक्रस्थाने भसघेनाप्य-दोषात्। अतोऽत्र भाना (नक्षत्राणाम्) चक्रस्य (समूहस्य) चक्र गोल इत्येकशेष-समासो नेय।

भचक्रे कथ गोलत्वमानन्त्यञ्चेति विचार।

दृष्टिभ्या भचक्रस्थैकनक्षत्रे विद्धे दृष्टिसूत्रद्वय दृष्टिद्वयान्तर्गत-सूत्रै-र्जायमानत्रिभुजे नक्षत्र-लग्नकोणस्येन्द्रियाग्राह्याच्छून्यसमत्वादनुपातेन

$$\frac{\text{दृष्टिद्वयान्तर्गतरेखा} \times \text{दृष्टिलग्नकोण द्वययोगार्धज्या}}{\text{ज्या } (0)} = \text{दृष्टिसूत्र} = \text{अनन्त}।$$

दृष्टिसूत्रयोरन्तत्वादिष्ट स्थान केन्द्रिकानन्त-व्यासार्धक भचक्रमिति सिद्धम्।

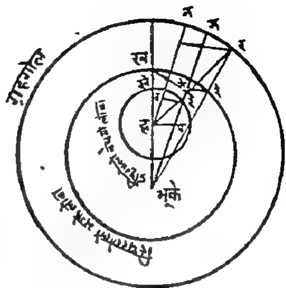
कदम्बाख्यताराया द्युज्याचाप स्थिर कदम्बे ताराणा च चल दृश्यते तेन भचक्रस्य काचित् प्रवहेतर निदानाऽपि गतिरस्तीत्यनुमितम्। स च कदम्बोत्पन्न महद्वृत्तरूपमार्गे स्यादिति गोल युत्यैव स्फुटम्। अस्या आन्दोलिकाकारगते कारण प्रवहाधिकरणक भचक्र-त्यागकालिक-स्रष्टृ-कराघातमेवेत्यनुमितम् । उक्त-महद्वृत्ते प्रवहप्रधानमार्गान्नाडीमण्डलात् प्रस्तुतगतिमूलक यावन्मित भचक्रस्य चलनसकलन तावदेवाचार्यै प्रागपराख्या अयनाशा परिभाषिता । तत्साधनमुक्तमहद्वृत्ताधिकरणकसार्वदिकावस्थान-विशिष्टस्य पूर्णप्रकाशवतो नक्षत्रबिम्बस्य ग्रहबिम्बस्य वाऽवलम्बेन कर्तु शक्यमतस्तावत् सूर्यबिम्बस्यैव। अथ तच्चलनम् (भचक्रस्य चलनम्) वेधेन निर्णीयते तत्र तावदुक्तमहद्वृत्तमार्गनिर्णय ।

पर तस्य भूगर्भाधीनत्वात्तस्य चागम्यत्वात् पृष्ठादेवोपाय । दृष्टिस्थानादेव दृश्यगोल भूगर्भात् स्थिरगोल च कृत्वा गोलयो केन्द्रग-दृष्ट्या दृश्यगोलीय भगोलीय परिणतो भचक्रस्थ ध्रुवताराभ्याम् नवत्यशेन कृते तत्तद्गोलीय-नाडीवृत्ते ध्रुवसूत्रकेन्द्रान्तरैर्जातत्रिभुजधरातलच्छिन्नगोलद्वयी मार्गे च तत्तद्याम्योत्तरवृत्ते । स्वनाडीवृत्तयाम्योत्तरवृत्त धरातलयोर्योगरेखा स्वनिरक्षोर्ध्वाधरसूत्रम्, वर्धितकेन्द्रान्तररेखा चोर्ध्वाधरसूत्रम्। ध्रुवसूत्रस्य नाडीवृत्तधरातलोपरिलम्बत्वाद् ध्रुवसूत्रयोश्च समान्तरत्वात् भगोलीय दृश्यगोलीयनाडीवृत्त धरातले समानान्तरे सिद्धे ।

अथ दृष्टिस्थानात् स्थिरगोलीय (भगोलीय) नाडीवृत्त धरातलोपरि कृतो लम्बो नाडीवृत्तधरातलयोरन्तरम्। गोलद्वयेऽक्षाशयो समत्वात्तज्ज्ञानमेव भवितुमर्हति यथा—

$\frac{\text{अक्षज्या} \times \text{केन्द्रान्तर रेखा}}{\text{त्रिज्या}}$ =धरातलान्तरम्। रविगतदृष्टिसूत्रस्वनाडीवृत्त-भूतलयो स्वगोले (वेधगोले)ऽन्तरम्=वेधगोलीय क्रान्तिज्या। दृग्गोलीय क्रान्तिज्यामापनेन ज्ञातवातो $\frac{\text{दृग्गोलीय क्रान्तिज्या} \times \text{दृष्टिकर्ण}}{\text{दृग्गोलीयव्यासार्ध}}$=ग्रहाद्दृग्गोलीय-निरक्षोर्ध्वाधरोपरि कृतलम्ब रेखा=लम्ब, लम्ब-धरातलान्तर=ग्रहगोलीय क्रान्तिज्या। एतज्ज्ञानेन $\frac{\text{ग्रगोक्राज्या} \times \text{त्रि}}{\text{बिम्बीयकर्ण}}$ =भगोलीय क्रान्ति ज्या=स्थिरगोलीय क्रान्तिज्या, अस्याश्चाप क्रान्ति ।

भू=भूकेन्द्रम्
दृ=दृष्टिस्थानम्
ग्रहगोले र=रवि
भू र=रविबिम्बीयकर्णः
दृ=वेधगोलकेन्द्रम्
भू दृ=केन्द्रान्तरम्
दृप=धरातलान्तरम्
ख=स्थिरगोले स्वस्तिकम्
ख$_1$=वेधगोले ख स्वस्तिकम्
भू म=भगोलीय निरक्षोर्ध्वाधर-सूत्रम्
दृन=वेधगोलीय निरक्षोर्ध्वाधर सूत्रम्।
दृग=दृष्टिकर्णः।
र$_1$म$_1$=भगोलीय क्रान्तिज्या



चित्र सं० ३

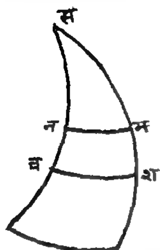
र$_{11}$व—दृग्गोलीय क्रान्तिज्या=र$_{11}$ बिन्दुतो वेधगोलीय निरक्षोर्ध्वाधर-रेखोपरि-लम्ब।

पुनर्द्वितीयेऽह्नि षष्टिदण्डात्मककालेऽर्काधिष्ठान-बिन्दुर्याम्योत्तरे किन्तु ध्रुवप्रोतवृत्ते तत्रैवागतोऽनन्तरं यावता कालेनार्को याम्योत्तरवृत्ते समागतः षड्गुणितं तत्कालमानं रवेर्निरक्षोदययोर्विषुवांशयोरन्तरं स्यात्, याम्योत्तरवृत्तस्य निरक्षदेशीय क्षितिजत्वात्, क्रान्तिश्चोक्त-युक्त्या ज्ञाता, एवमेव बहुषु दिनेषु गोलमेकं व्याप्ते संस्थाप्य तत्र नाडीवृत्ताख्यं महद् वृत्तं विधाय तस्येष्ट-बिन्दो पूर्व-पूर्वक्रमेण विषुवांशान्तरान् दत्वेष्टबिन्दौ प्रत्येकदानाग्रबिन्दौ च कृतध्रुवप्रोतवृत्तेषु सतत्क्रान्ती (प्रत्याह्निक क्रान्ती) दत्वा क्रान्तिद्वयाग्रलग्नं महद्वृत्तं कृतं सत्क्रान्त्यग्रेषु गतमित्युपलब्धमतो रविभ्रमणमार्गो महद् वृत्तमिति सिद्धम्। क्रान्त्यग्रेषु गतत्वात्तत्क्रान्तिवृत्तमिति संज्ञा शोभनेति।

अथ पूर्वोक्तोपपत्तौ कालमानं नाडीवृत्तेऽङ्गीकृतं कथं नाडीवृत्तं कालवृत्तमित्युच्यते।

प्रवहवायुना भ्राम्यमाणेऽपि भगोले बहुभिरपि वर्षैर्न तु काश्चिचिन्ताराणां स्थिरत्वयोरलब्ध ध्रुवताराद्कितं ध्रुवस्थानाद् द्युज्या-चापान्तरमुपलभ्यते। एतावदेवावगत यद्वास्तव भगोलपृष्ठ-निष्ठस्थिरकेन्द्रोत्पन्न नाडीवृत्ताऽहोरात्रवृत्तयोर्धरातलमेकमेव, तत्रैतस्योपलब्ध प्रवहवायुवेग-भ्राम्यमाणोक्त मण्डलद्वयस्यैकावत्वेन कालगणनोचिता, प्रनाद्यनन्तस्याभ्याच्चुतोसम-कालस्यागमनिर्गतिगर्वदैरूपत्वात्, इयमेव युक्तिः प्राचीनार्वाचीन घटीयन्त्रादिभिः कालाबोधेऽङ्गीकृतम्।

अधुना विषुवांशयोरन्तर क्रान्तिद्वयञ्च ज्ञात्वा परमक्रान्त्यानयनम्। नाडीवृत्तक्रान्तिवृत्तोत्पन्नकोण परमक्रान्तिस्तत् प्रमाणम्=य कल्पितम्। विषुवांशान्तरम्=वि, सन=र नम=क्रान्ति=क्रां, च श=क्रान्ति $_1$=क्रा$_1$। नच=वि।



मध्यावयव =र तदा मध्यजा दोर्ज्या-त्रिज्यागुणेत्यादिना

ज्यार त्रि=स्पक्रा$_1$×कोस्पय

$$\frac{\text{ज्यार त्रि}}{\text{स्प क्रा}}=\text{कोस्पय (१)}$$

तथा ज्या (र+वि) त्रि=स्पक्रा$_1$ कोस्पय

$$\frac{\text{ज्या(र+वि) त्रि}}{\text{स्पक्रा}_1}=\text{कोस्पय (२)}$$

(१) (२) अनयो समीकरणम्

$$\frac{\text{ज्या}\times\text{रत्रि}}{\text{स्पक्रा}}=\frac{\text{ज्या (र+वि) त्रि}}{\text{स्पक्रा}_1}$$ पक्षौ त्रि भक्तौ तथा

स्पक्रा$_1$ गुणितौ तदा $\frac{\text{ज्यार स्पक्रा}_1}{\text{स्पक्रा}}$=ज्या(र+वि) अत्र $\frac{\text{स्पक्रा}^1}{\text{स्पक्रा}}$=गु$_8$

तदा ज्यार गु=ज्या(र+वि) चापयोरिष्टयोर्दोर्ज्ये इत्यादिना

ज्यार गु=$\frac{\text{ज्यार को ज्यावि+को ज्यार ज्यावि}}{\text{त्रि}}$ पक्षौ त्रिगुणितौ

तदा ज्यार गु त्रि=ज्यार काज्यावि+कोज्यार ज्यावि समशोधनेन ज्यार गु त्रि—ज्यार कोज्यावि=कोज्यार ज्यावि=ज्यार (गु त्रि—कोज्यावि)

$$\frac{\text{ज्यार}}{\text{कोज्यार}}=\frac{\text{ज्यावि}}{\text{गु त्रि—को ज्यावि}}$$ =व्यक्त पक्षौ द्वादशभिर्गुणितौ

$\frac{\text{ज्यार १२}}{\text{को ज्यार}}$=१२×व्य, वा $\frac{\text{ज्यार त्रि}}{\text{ज्कोज्यार}}$= स्पर=त्रि व्य

आभ्या या पलभा अक्षांशस्पर्शरेखा वा सा व्यक्ताऽर्थाद्यस्मिन्देशे १२×व्य, वा त्रि व्य एतत्तुल्य पलभा अक्षांश स्पर्श रेखा वा तद्देशीयाक्षांशमानमेव र मानम्। ततो य मान व्यक्तमेवेति सिद्धमभीप्टम्।

अथ यत् क्रान्ति वृत्ताधार भचक्रस्य चलन तदेव निरूपित रविमार्गरूप-

क्रान्तिवृत्तमिति निर्णय । ध्रुवस्थाने कदम्ब याम्योत्तर-वृत्तस्थाने कदम्बप्रोत-वृत्त नाडीवृत्तस्थाने क्रान्तिवृत्तमक्षज्यास्थाने दृक्षेपञ्च नीत्वा या पूर्वोक्ता युक्ति सैवानापि, किन्त्वत्र लम्बरेखा—नाडीवृत्तधरातलान्तर=० इत्युपलब्धमत सिद्धम् ।

अथ रेवत्या शराभावनिर्णय

उक्त-गोलद्वयकेन्द्रात् कदम्बे रेवत्याञ्चे सूत्रे नीते केन्द्रद्वय-लग्न-कोण-माने शरकोटितुल्ये, कदम्बगतयो रेवतीगतयोश्च रेखयो समानान्तरत्वात्ताभ्या-मूनो नवत्यश =शरचाप=० इत्युपलब्धम् । एवमेव पुष्यमघादानभिपजा नक्षत्राणा शराभाव उपलब्धो भवति । तेन "पौनर्भ पुष्यान्तिम वारुणानामित्यादि" भास्क-रोक्त सिद्धमिति ।

अथ गोलद्वय-केन्द्रात् ध्रुवे रेवत्याञ्च रेखे नीते गोलद्वय केन्द्रलग्न कोणमाने द्युज्याचापमिति तुल्ये ध्रुवगतयो रेवतीगतयोश्च रेखयो समानान्तरत्वात् । अत ९०—रेवती द्युज्या चाप=रेवती क्रान्त्यश, तत $\frac{\text{त्रि} \times \text{ज्याक्रा}}{\text{ज्याजि}}$= ज्याभु,

अस्याश्चापमयनाशा , परमान्ते=२७° भवन्ति । अत्र प्रसगागताना गोलद्वयी लग्न विनिभ दृक्षेपचापाक्षाश चापादीना समत्वोपपत्तिरुह्येति ।

ग्रहे प्रथमपदे तत्कालीन-क्रान्तीना वेधेन क्रमादधिकत्व द्वितीयपदे ह्रासत्व तृतीयपदे प्रथमवच्चतुर्थे द्वितीवद्दृश्यतेऽतो ग्रहाणा प्राग्गतित्व सिद्धम् । ग्रहाणा बहुदिने प्रवहस्य त्वेकेनैव दिनेन भगणपूर्तिरत प्रवहगत्य-पेक्षया तदल्पगतित्व सिद्धम् । भप मेप सन्धिसस्थैर्ग्रहैरित्याद्युक्त्या भूकेन्द्रा-द्रेवतीगतसूत्रे ग्रहा ऊर्ध्वाधरक्रमेण ब्रह्मणा निवेशिता इत्यनेन ग्रहबिम्बीय-कर्णानामसमत्व सूच्यते, ग्रहपिण्डाना गोलत्व नवेति निर्णय । गोलमेक क्वापि सस्थाप्य दृष्टिस्थाने समा यष्टित्रयस्तथा स्थापिता यथा गोलस्पर्शकराणि दृष्टिसूत्राणिस्युस्तानि च दृश्यवृत्ताधारसमसूचीगतानि आधारवृत्त धरातल-समानान्तरधरातल यष्टचग्रेषु मिथो बद्धरेखात्रयजनित त्रिभुजोपरिस्थ वृत्तमुक्त सूच्या कर्णेषु लगतीति सुस्पष्टम् । तद् वृत्त केन्द्रगत दृष्टिसूत्र वर्धित सदा-धारवृत्तकेन्द्रगतञ्चेते गोलधर्मा । अथ तावद् ग्रहपिण्डे गोलत्व प्रकल्प्योक्त-गोलधर्मा दृश्यन्तेऽतो ग्रहपिण्डे गोलत्व सिद्धम् । तस्मैव सस्थान-सस्मरणेन कनम दृष्टिसूत्र बिम्बकेन्द्रग दृष्टिसूत्राणामानयन बिम्बव्यासार्धानयनमि-त्यादय स्फुटा एवेति बिम्बीयकर्णानयन प्रागुक्तमन्यथा वा तदानयन कार्यमेव तत्तद्बिम्बीय-कर्णानामसमत्वमुपलब्धमिति ।

अथ वेधगोले दिने क्रान्तिवृत्त निवेशनप्रकार ।

पृष्ठच्छायातो गर्भच्छाया तानमयवा दृष्ट्युच्छ्राय+भूव्यासार्ध, दृष्टिकर्णविम्बीयकर्णो तन त्रिभुजे भुजत्रयज्ञानाद् भूके न्द्राग्रहाण्यत रा। समय च ज्ञानात् ।

$\frac{\text{ज्यानतांश} \times १२}{\text{कोज्यान}}$ = गर्भच्छाया, तत आद्ये पदेऽपचयिनीत्यादिनार्कपदज्ञानम्। क्रान्तिवृत्तयोर्धरातलान्तरं विज्ञाय क्रान्तिज्ञानं ततो भुजांशज्ञानम्। भुजांशज्ञानादर्कपदज्ञानाच्चार्कज्ञानम्। अथ लम्बांश-नतांशध्रुज्याचापाशैर्जायमानत्रिभुजे भुजत्रयज्ञानात् "त्रिज्या गुणाद् धरणिकोटिगुणाद्विहीनादित्यादिविलोमेन" ध्रुवलग्नकोणस्य नतकालस्य कोटिज्ञानम्।

नतकालकोटिचाप-चरचापयोः संस्काररूपमिष्टकालं प्रकल्प्य ज्ञाततात्कालिकार्केण लग्नज्ञानम्। ततो लग्नज्ञाने लग्नपदज्ञानेन च लग्नभुजांशज्ञानम्। एतत्तुल्यमेव वेधगोलेऽपि। गोलसन्धिलग्न-विन्दुगतयोस्तत्तद्गोलीयरेखयोः समानान्तरत्वात्, लग्नभुजांशज्ञानाच्च लग्नक्रान्ति-ज्ञानम्। ततः

$\frac{\text{त्रि ज्याक्रा}}{\text{ज्यालम्ब}}$ = अग्रा इयमपि गोलयोः समा (पूर्वस्वस्तिक गतयोर्लग्नगतयो रेखयोः समानान्तरत्वात्) अथ वेधगोले पूर्वस्वस्तिकाल्लग्नगोलक्रमेण (दक्षिणगोले पूर्वस्वस्तिकाद् दक्षिणदिशि उत्तरगोले लग्ने सति पूर्वस्वस्तिकादुत्तरदिशि) क्षितिजे लग्नाग्राचापसमं छित्वा छेदितविन्दोर्लग्नभुजांश व्यासार्धवृत्तं छिन्नविन्दुगतं ध्रुवप्रोतं वृत्तात् त्यान्तरे नाडीवृत्ते लगिष्यति। तत्र लग्नपदक्रमनिश्चितैकविन्दु-छिन्नविन्द्वोः प्रोतमेकं महद् वृत्तं कार्यं तदेव क्रान्तिवृत्तम्।

अथ वेधगोले रात्रौ क्रान्तिवृत्तनिवेशनप्रकारः।

पूर्वनिर्णीतं शराभावं नक्षत्राणां "पैत्रर्क्ष-पुष्यान्तिमवारुणानां" मेकतमे विद्धे यावास्तन्नतांशो वेधगोले तावानेव भगोलेऽप्यतो वेधगोले मापनेनोक्तनतांशमानं विज्ञाय विद्धनक्षत्रं रविं प्रकल्प्य पूर्ववत् कृतेऽत्रापि जातं क्रान्तिवृत्तनिवेशनम्।

ननु पैत्रर्क्ष-पुष्यान्तिमवारुणानामेकतमं सदोदित एव, कथमित्युच्यते।

पुष्य	=३ । ३ । २० । ०	उपरि ३ । १६ । ४० । ०	यावत्।
मघा	=४ । ० । ० । ०	उपरि ४ । १३ । २० । ०	यावत्
शतभिषक्	=१० । ६ । ४० । ०	उपरि १० । २० । ० । ०	यावत्
रेवती	=११ । १६ । ४० । ०	उपरि १२ । ० । ० । ०	यावत्

एवं पश्यन् प्रवहवशेन गोलं भ्राम्यन् मेषादेरारभ्य प्रतिविन्दु क्षितिजस्थं कुर्वन् विचारितेऽभीष्टसिद्धिः स्यात्। अथवा शराभावनक्षत्रद्वयं सदोदितमेव षड्भान्तराल्पान्तरत्वात् परिणत-नक्षत्र-द्वयगतं वृत्तं क्रान्तिवृत्तमिति॥

अथ वेधगोलीय ग्रहज्ञानेन भूगर्भगोलीय ग्रहज्ञानम्॥

वेधगोले दृष्टया परिणतबिम्बस्य स्पष्टभोग-चिह्नं (बिम्बोपरिगतकदम्बप्रोतवृत्तं यत्र क्रान्तिवृत्ते लगति तच्चिह्नम्), तद्गोलीयग्रह एव भूगर्भगोलीयोऽपीति ग्रहपरिचयः।

अथ परिभाषा

वेधगोलीयस्थानम्=स्थान, स्थानीय दृग्वृत्तभूतलेन छिन्नस्य भूगर्भ-गोलस्य छेदितप्रदेशस्तद्गोलीय दृग्वृत्तम्। तस्य (तद्गोलीय दृग्वृत्तस्य) गर्भगो-लीय-क्रान्तिवृत्तस्य च योगविन्दु =प। भूगर्भात् प विन्दुगता रेखा=प संज्ञिका दृष्टित स्थानगता रेखा फ संज्ञिका।

अथ प-फ रेखे समान्तरे (रेखागणित ११ अध्याययुक्त्या) रेवतीगते च रेखे समानान्तरे (गोलद्वये क्रान्तिवृत्त धरातलयो समानान्तरत्वात्) तेन भूगर्भ लग्न दृष्टि स्थान लग्नकोणयो साम्यात् सिद्ध यद् भूगर्भगोले रेवतीत पविन्दुपर्यन्त भगोले वेधगोलीय स्पष्टग्रहतुल्य (भगोलीय रेवतीत प विन्दु पर्यन्तम्=वेधगोलीय रेवतीत स्थानपर्यन्तम्) केन्द्र लग्नकोणस्य चापमानत्वात्। स्थानीयनतांश=प विन्दूत्थ नतांश, प, फ रेखयो समानान्तरत्वात्। स च नतांशो वेधगोले मापनेन विदित। तथा विम्बीय नतांश प विन्दूत्थ नतांश-चापाभ्या जायमान कोण ख स्वस्तिकलग्नो यावान् वेधगोले तावानेव भूगर्भगोले (गोलद्वय धरातलैकत्वात्) स च नतांशोत्पन्न-कोणो वेधगोले मापनेन ज्ञेयस्ततो भूगर्भगोलपृष्ठे सजातत्रिभुजे, "त्रिज्यागुणाद् धरणि-कोटिगुणादित्यादि विलोमेन, परिणत विम्ब प विन्दु प्रोन-वृत्तीयाधार चापज्ञानम्। तथा च वेधगोलीय शर क्रान्तिवृत्त धरातलान्तरयोर्ज्ञानाद् भूगर्भ गोले शरज्ञानम् (यथापूर्व नाडीवृत्त धरातलान्तरज्ञानेन वेधगोलीय क्रान्ति-ज्ञानेन भूगर्भ गोलीय क्रान्तिज्ञान कृत तथैवात्राऽपि शरज्ञान कृतम्)।

अतश्चापीय जात्ययुक्त्या गर्भ गोलीय ग्रह प विन्द्वोरन्तरचापस्य संस्का-राख्यस्य ज्ञानम्।

अ =संस्कारचापम्।
वेधगो स्पग्रह±संस्कारचा=भूगर्भ-गोलीय स्पष्टग्रह।

चित्र न० ५

अथ संस्कारचापस्य धनर्णव्यवस्था।

तत्र परिभाषा

वेधगोलीय क्रान्तिवृत्तम्=दृष्ट क्रा वृत्तम्। भूगर्भगोलीय क्रान्तिवृत्तम् =वास्तवक्रान्तिवृत्तम्, बिम्बीय कर्णगोलीय क्रान्तिवृत्त=वास्तव[1] क्रान्तिवृत्तम्।

वर्धिता प रेखा वास्तव क्रान्तिवृत्ते यत्र लग्नाः तत्र प, बिन्दु । बिम्बत इष्ट-क्रान्तिवृतधरातले या शरज्या लम्बस्तस्या (शरज्याया.) मूल क्षाख्यं वर्धिताया फ रेखायामेव स्यात् फ रेखा तु स्थानीय दृग्वृत्त धरातले, उक्त शरज्या वर्धिताऽवर्धिता वा वास्तव क्रान्तिवृत्तधरातले लम्ब स्यात्, एतदुक्त भवति स्थानीय दृग्वृत्त धरातलनिष्ठन. क्ष बिन्दोर्वास्तव क्रान्तिवृत्त धरातले लम्ब. क्रियते । स च लम्बो यस्या दिशि स्थानीय दृग्वृत्त वास्तव-क्रान्तिवृत्त धरातलाभ्या-मुत्पन्नकोणोऽल्पः स्यात्तस्या दिशि पतिष्यति ।

भूगर्भाद्वि म्वकर्ण व्यासार्धेन यो गोलस्तत्रोच्यते—

प बिन्दुस्थ दृग्वृत्त वास्तव, क्रान्ति-वृत्ताभ्यामुत्पन्नकोणो दृक्षेप-चापाभिमुखोऽल्प स्यात्, क्ष बिन्दुस्तु वास्तव क्रान्तिवृत्त धरातलोर्ध्वाधरसूत्रयोर्मध्ये-स्यात् । यत. फ रेखैव मध्ये वर्त्तते । एभि सिद्ध यत् दृक्षेपवृत्तात्पूर्व कपाले ग्रहे सति रेखात. प्रतीच्यामेव लम्ब. पतिष्यति । यत प रेखा स्थानीय दृग्वृत्त वास्तव क्रान्तिवृत्त धरातलयोर्योगरेखा, भूगर्भाल्लम्बमूलगतरेखा प' बिदुत प्रतीच्यामेव क्रान्तिवृत्ते लगिष्यति स एव बिन्दुर्भूगर्भाभिप्रायिक-ग्रहस्थानम् । त्रिज्या-गोलेऽपीयमेव स्थिति । पश्चिमकपालेऽप्येवमेव विचारणीयम् । अत. सिद्ध वित्रिभादूने ग्रहे सस्कारश्चाप धनमन्यथा ऋणमिति ॥

हि भा —ब्रह्मा ने भचक्र को निर्माण कर आकाश मे फेंक दिया तब ब्रह्मा के हाथ के आघात से उसकी आन्दोलिका गति उत्पन्न हुई । उस गति के ज्ञान के लिये अधोलिखित भनी चाहिये । पहले ज्योतिष शास्त्र के मूलभूत भचक्र के विषय मे कुछ उपपत्ति सम-विचार करते हैं ।

भचक्र शब्द से ताराओ के आधार मे गोलत्व की ध्वनि होती है । क्योंकि भचक्र स्थान मे भसङ्घ कहने मे भी दोषाभाव है अत यह नक्षत्रसमूह (भचक्र) के चक्र (गोल) ऐसा एकदेश समास मे अर्थ करना चाहिये ।

भचक्र मे गोलत्व और अनन्तत्व क्यो है इसके लिये विचार ।

दो दृष्टि स्थान से भचक्रस्थ किसी तारा को वेध करने से दृष्टि सूत्रद्वय और दृष्टि-द्वयान्तर्गत सूत्रो से जो त्रिभुज बनता है उसमे तारालग्न कोण शून्य है अत उक्त त्रिभुज मे अनुपात से—

$$\frac{\text{दृष्टिद्वयान्तर्गत रेखा} \times \text{दृष्टि द्वयलग्न कोणद्वय योगार्धज्या}}{\text{ज्या }(0)} = \text{दृष्टिसूत्र} = \text{अनन्त}$$

इस तरह दृष्टि सूत्रद्वय के अनन्तत्व से इष्टस्थान कैन्द्रिक अनन्त व्यासार्ध वाला भचक्र सिद्ध हुआ ॥

कदम्ब तारा का द्युज्या चाप स्थिर है, कदम्ब मे ताराओ को चल देखते हैं । इससे सिद्ध होता है कि प्रवह वायु से भिन्न भी भचक्र गति के कारण है वह कदम्बोत्पन्न नवत्यश वृत्तरूप मार्ग मे है यह बात गोल युक्ति से स्पष्ट है । इस आन्दोलिकाकार गति के कारण भचक्र छोडने के समय के ब्रह्मा के हाथ का आघात ही है ऐसा अनुमान किया गया । उक्त महद्वृत्त मे प्रवह के प्रधान मार्ग (नाडीवृत्त) से प्रस्तुत गति के मूलभूत जितने भचक्र चलन का सङ्कलन होता है वही आचार्यों से अयनाश कहा गया है । उसके

साधन उस महद्वृत्तस्थ प्रकाशवती तारा अथवा ग्रहबिम्ब के वश से कर सकते हैं। अब भचक्र चलन ज्ञानवेध से करते हैं। पहले पूर्वोक्त महद्वृत्त मार्ग का निर्णय करते हैं। लेकिन वह भूगर्भाधीन है, भूगर्भसम्बन्धी पदार्थज्ञान कठिन है इसलिये भूपृष्ठ ही से काम करते हैं। दृष्टिस्थानवश करके एक गोल बनाइये जिसका नाम दृग्गोल अथवा वेधगोल है। भूगर्भ से जो गोल होगा वह स्थिर गोल अथवा भगोल कहलाता है। दोनों गोलों के केन्द्रस्थ दृष्टि से भचक्रस्थ ध्रुव तारागत रेखाद्वय स्व-स्व गोल में जहा-जहा लगता है दोनों गोल में परिणत ध्रुव तारा होगी, परिणत ध्रुवों के केन्द्र मान कर नवत्यंश व्यासार्धवृत्त दोनों गोल में नाडीवृत्त होंगे, दोनों ध्रुवसूत्र (दृष्टिस्थान और भूकेन्द्र से भचक्रस्थ ध्रुव-तारागत रेखाद्वय) और केन्द्रान्तर रेखाओं (भूकेन्द्र से दृष्टिस्थानगत रेखा) से जो त्रिभुज बनता है उस धरातल (त्रिभुज रूपी धरातल) से कटित गोलद्वय में मार्ग दोनों गोल में याम्योत्तर वृत्त हैं। स्वनाडीवृत्त याम्योत्तर वृत्त धरातल की योगरेखा दोनों गोल में निरक्षोर्ध्वाधर सूत्र है। वर्धित केन्द्रान्तर रेखा ऊर्ध्वाधर सूत्र है। नाडीवृत्त धरातल के ऊपर ध्रुवसूत्र लम्ब है, दोनों गोल के ध्रुव सूत्र समानान्तर है, इसलिये दोनों नाडीवृत्त धरातल समानान्तर होंगे, दृष्टिस्थान से स्थिरगोलीय नाडीवृत्त धरातल के ऊपर जो लम्ब होगा वह नाडीवृत्तधरातलान्तर है, दोनों गोल में अक्षांश बराबर हैं, अतः धरातलान्तर ज्ञान इस प्रकार होगा। यथा

$\frac{\text{अक्षज्या} \times \text{केन्द्रान्तरे}}{\text{त्रि}}$ = धरातलान्तर। रविगत दृष्टिसूत्र स्वनाडी वृत्त (वेधगोलीय नाडीवृत्त) धरातल का अन्तर वेधगोल में वेधगोलीय क्रान्तिज्या है। दृग्गोलीय क्रान्तिज्या (वेधगोलीय क्रान्तिज्या) मापन द्वारा विदित ही है इसलिये

$\frac{\text{दृग्गोलीय क्रान्तिज्या} \times \text{दृष्टिकर्ण}}{\text{दृग्गोलीय ज्या ३}}$ = ग्रह से दृग्गोलीय निरक्षोर्ध्वाधर रेखा के ऊपर लम्ब

लम्ब—धरातलान्तर = ग्रहगोलीय क्रान्तिज्या, इसके ज्ञान से

$\frac{\text{ग्रगोक्राज्या} \times \text{त्रि}}{\text{बिम्बीयकर्ण}}$ = भगोलीय क्रान्तिज्या = स्थिरगोलीय क्रान्तिज्या,

चाप करने से स्थिरगोलीय क्रान्ति हुई। यहाँ चित्र (१) देखिये, भू = भूकेन्द्र, द = दृष्टिस्थान, र = ग्रह गोल में रवि,

भूर = रवि बिम्बीय कर्ण, द = वेधगोल केन्द्र, भूद = केन्द्रान्तर। दय = धरातलान्तर

स = स्थिरगोल में स्वस्तिक, स$_1$ = वेधगोलीय स्वस्तिक। भूम = भगोलीय निरक्षोर्ध्वाधरम् दन = वेधगोलीय निरक्षोर्ध्वाधरम्। दर = दृष्टिकर्ण। र$_1$म = भगोलीय क्रान्तिज्या र$_{11}$व = दृग्गोलीय क्रान्तिज्या = र$_{11}$ बिन्दु से वेधगोलीय निरक्षोर्ध्वाधर रेखा के ऊपर लम्ब

फिर दूसरे दिन ६० दण्डात्मक काल में जहाँ पर रवि है वह बिन्दु याम्योत्तर वृत्त (ध्रुव प्रोतवृत्त) में वहीं पर आया बाद में जितने काल में रवि याम्योत्तर वृत्त में आवे

उस काल को छ से गुणा देने से रवि के निरक्षदेशीय दोनो उदय के विषुवांशान्तर हो गया (याम्योत्तर वृत्त को निरक्ष देश के क्षितिज होने के कारण) पूर्वोक्त युक्ति से क्रान्ति विदित है। इस तरह बहुत दिनो तक करके अपने आगे एक गोल को रख कर उसमे नाडीवृत्त महद्वृत्त बना कर तत्स्थित (नाडीवृत्त स्थित) इष्ट विन्दु से पूर्व पूर्व क्रम से विषुवांशान्तर दान देकर इष्ट विन्दु और दानाग्र विन्दुओ मे ध्रुव प्रोत वृत्त कर देना। उन ध्रुव प्रोतवृत्तो मे प्रत्येक दिन की क्रान्ति देकर दो क्रान्ति के अग्रगत महद्वृत्त कर देना वह प्रत्येक क्रान्ति के अग्रगत होता है, ऐसा देखा जाता है इसलिये रवि भ्रमण मार्ग महद्वृत्त सिद्ध हुआ, क्रान्तियो के अग्र मे जाने के कारण उसका नाम क्रान्तिवृत्त है॥

पहले की उपपत्ति मे नाडीवृत्तमे कालमान स्वीकार किया गया है। नाडीवृत्त कालवृत्त क्यो है इसके लिये विचार करते हैं। प्रवह वायु द्वारा भगोल के घूमने पर भी बहुत वर्षों मे भी किसी तारा की स्थिरता के कारण ध्रुव स्थान से द्युज्या चाप मे अन्तर नही पाया जाता है इसीमे सूचित होता है कि वास्तव भगोल पृष्ठस्थ स्थिर केन्द्रोत्पन्न नाडीवृत्त धरातल और अहोरात्र वृत्त धरातलो मे स्थिरता है। उनमे एक रूप से प्राप्त प्रवहवायु वश से भ्राम्यमाण कथित नाडीवृत्त और अहोरात्र वृत्तके अवलम्बन से काल-गणना उचित है। यही युक्ति घटीयन्त्रादि के द्वारा काल-ज्ञान के लिये प्राचीनाचार्यों की है॥

अब विषुवांशद्वय के अन्तर और क्रान्तिद्वय जान कर परम क्रान्ति ज्ञान के लिये विचार। चित्र (२) देखिये।

नाडीवृत्त और क्रान्तिवृत्त से उत्पन्न कोण परम क्रान्ति है, उसका प्रमाण=य, मानते है, विषुवांशान्तर=वि, सन=र, नम=क्रान्ति=क्रा, घश=क्रान्ति$_1$=क्रा$_1$, मध्यावय=र तब मध्यजा दोर्ज्या त्रिज्या गुणा भ्रान्त्यस्पर्शरेखाहतिर्भवेद् इस नियम से

ज्यार त्रि=स्पक्रा कोस्पय . $\frac{\text{ज्यार त्रि}}{\text{स्पक्रा}}$=कोस्पय (१)

तथा ज्या (र+वि) त्रि=स्पक्रा$_1$ कोस्पय ∴ $\frac{\text{ज्या (र+वि) त्रि}}{\text{स्पक्रा}_1}$ =कोस्पय २)

(१) (२) इन दोनो का समीकरण करनेसे $\frac{\text{ज्यार त्रि}}{\text{स्पक्रा}}=\frac{\text{ज्या (र+वि) त्रि}}{\text{स्पक्रा}_1}$ दोनो पक्ष को

त्रि भाग देकर स्पक्रा$_1$ गुणा दीजिये तब $\frac{\text{ज्यार स्पक्रा}_1}{\text{स्पक्रा}}$=ज्या (र+वि) यहा $\frac{\text{स्पक्रा}_1}{\text{स्पक्रा}}$=गु

तब ज्यार गु=ज्या (र+वि) चापयोरिष्टयोर्दोर्ज्ये मिथ कोटिज्यका हते इत्यादि से ज्यार गु=$\frac{\text{ज्यार कोज्यावि+ज्यावि कोज्यार}}{\text{त्रि}}$ दोनो पक्षो को त्रि से गुणने से ज्यार गु त्रि

=ज्यार कोज्यावि+ज्यावि कोज्यार समशोधन से ज्यार गु त्रि —ज्यार कोज्यावि=

ज्यावि. कोज्यार = ज्यार (गु त्रि—कोज्यावि) अत $\frac{\text{ज्यार}}{\text{कोज्यार}} = \frac{\text{ज्यावि}}{\text{गु त्रि—कोज्यावि}}$ = व्यग्र

दोनो पक्षो को बारह से गुणने से $\frac{\text{ज्यार} \times १२}{\text{कोज्यार}}$ = १२ × व्य वा $\frac{\text{ज्यार} \times \text{त्रि}}{\text{कोज्यार}}$ = स्पर = त्रि व्य

इन पर से जो पलभा या अक्षास स्पर्शरेखा होगी व्यक्त हो गयी, अर्थात् जिस देश मे १२ × व्य वा त्रि व्य एतत्तुल्य क्रमश पलभा वा अक्षाश स्पर्शरेखा होगी उस देश के अक्षाशमान र होगा, इस परसे य मान सुलभ ही है ॥

जिसे क्रान्तिवृत्त के आधार पर भचक्र का चलन है वही पूर्व निरूपित रवि भ्रमण मार्ग रूप क्रान्तिवृत्त है इसका निर्णय करते हैं।

यहाँ ध्रुव स्थान की जगह पर कदम्ब, याम्योत्तर वृत्त के स्थान पर कदम्ब प्रोत-वृत्त, नाडीवृत्त के स्थान पर क्रान्तिवृत्त, अक्षज्या के स्थान पर दृक्षेप लेकर नाडीवृत्त धरा-तलान्तरादि ज्ञानार्थ जो युक्ति बतलायी गई है वही युक्ति यहाँ भी समझनी चाहिये। लेकिन यहा लम्बरे—धरातलान्तर = ० यह उपलब्ध होता है, अत सिद्ध हो गया ॥

अब रेवती के शराभाव के विषय मे विचार करते हैं।

पूर्वकथित गोलद्वय (वेधगोल, स्थिरगोल) के केन्द्र से कदम्ब मे और रेवती मे रेखाओ को लाने से केन्द्रद्वयलग्न कोणद्वयमान शरकोटि के बराबर है क्योकि कदम्बगत रेखाद्वय और रेवतीगत रेखाद्वय समानान्तर हैं।

९०—शरकोटि = शरचाप = ० यह उपलब्ध होता है, इसी तरह मघा, पुष्य, शतभिष इन नक्षत्रो के भी शराभाव उपलब्ध होना है। इसलिये "रेवत्र्यर्क्षपुष्यान्तिमवारुणानामि"त्यादि भास्कराचार्य कहते हैं॥ गोलद्वयकेन्द्र मे ध्रुव मे और रेवती मे रेखायें लाये तब गोलद्वयकेन्द्र लग्न कोणमानद्युज्याचाप तुल्य होंगे क्योकि ध्रुवतारारेखाद्वय और रेवतीगत रेखाद्वय समानान्तर हैं इसलिये ९०—रेवती द्युज्याचाप = रेवतीक्रान्त्यश तब $\frac{\text{त्रि० ज्याक्रां}}{\text{ज्याजि}}$ = ज्याभु, इसके चाप करने से अयनाश प्रमाण होगा वह परम (परमायनाश) = २७° होते हैं। यहाँ प्रसङ्गवश उपपत्यन्तर्गत आये हुए गोलद्वय के लग्न, वित्रिभ दृक्षेपचाप-अक्षाश आदियो के समत्व की उपपत्ति स्वयमेव समझनी चाहिये ॥ ग्रह के प्रथम पद मे रहने से वेध से तत्कालीन क्रान्ति के क्रम मे अधिकत्व द्वितीय पद मे ह्रासत्व प्रथम पदवत् तृतीय पद मे, चतुर्थ पद मे द्वितीय पदवत् देखते हैं इसलिये ग्रहो के प्राग्गतित्व (पूर्वाभिमुखचलन) सिद्ध हुआ। ग्रहो के बहुत दिनो मे भगण पूरा होता है। प्रवह के एक ही दिन मे भगणपूर्ति होती है इस-लिये प्रवह गति के अपेक्षा ग्रहो के अल्पगतित्व सिद्ध हुआ।

आचार्योक्त "अथमेषसन्धि-मरवेर्ग्रहे" इत्यादि पद्य से सिद्ध होता है कि भूकेन्द्र से रेवतीगत सूत्र मे ऊर्ध्वाधर (ऊचे नीचे) क्रम से ब्रह्मा ने ग्रहो के निवेशन किया और ग्रहबिम्बीय वर्णों का असमत्व सूचित होता है, ग्रह पिण्डो मे गोलत्व है या नही इसके लिये विचार।

कही पर एक गोल को रख कर दृष्टिस्थान मे समानयष्टित्रय को उस तरह रखें जिससे दृष्टिसूत्र सब गोल को स्पर्श करे अर्थात् दृष्टिसूत्र सब गोल की स्पर्शरेखायें हो और वे दृष्टिसूत्र सब दृश्य वृत्ताधार सम सूची कर्णरेखायें है, आधार वृत्त धरातल के समानान्तर धरातल यष्टित्रयाग्र मे परस्पर रेखायें कर देने से जो त्रिभुज बनता है तदुपरिगतवृत्त पूर्व कथित सूची कर्णो मे लगता है। उस वृत्तके केन्द्र मे दृष्टिस्थान से जो रेखा (दृष्टिसूत्र) जायगी उसको बढाने मे आधार वृत्त के केन्द्र मे जाती है ये सब गोलीय धर्म है। अब पहले ग्रह पिण्ड मे गोलत्व स्वीकार कर पूर्वकथित गोलीय धर्म देखते हैं। इसलिये ग्रह पिण्ड मे गोलत्व सिद्ध हुआ। कथित क्षेत्र-सस्थान के स्मरण करने से कौन दृष्टिसूत्र बिम्ब केन्द्रगत होता है, और दृष्टिसूत्र के आनयन, बिम्बव्यासार्धानयनादि सब बाते स्पष्ट ही हैं, बिम्बीय कर्णानयन पहले लिखा जा चुका है अथवा दूसरे तरह से भी उसका आनयन करना चाहिये. बिम्बीय कर्णो के आनयन करने से उनमे असमत्व पाया गया इसलिये ग्रह कक्षाओ मे ऊर्ध्वाधरत्व सिद्ध हुआ ॥

दिनमे वेधगोलीय क्रान्तिवृत्त निवेशन प्रकार।

पृष्ठच्छाया से गर्भच्छायानयन अथवा दृग्द्युच्छाय + भूव्यासार्ध, दृष्टिकर्ण, बिम्बीयकर्ण, इन भुजो मे जो त्रिभुज बनता है उसमे तीनो भुज विदित है इसलिए त्रिकोण मिति से भूकेन्द्र लग्ननतांश कोण का ज्ञान हो जायगा। तब $\frac{\text{ज्यानतांश} \times १२}{\text{कोज्यान}}$ = गर्भच्छाया। तब "भाद्ये पदेऽपचयिनी पलभाऽल्पिका" इत्यादि से रवि पदज्ञान होगा। दोनो गोल (वेधगोल और स्थिरगोल) के क्रान्तिवृत्त धरातलो के अन्तर जान कर क्रान्ति ज्ञान करना, उस पर से भुजांश ज्ञान, भुजांश ज्ञान से रविपदज्ञान उस पर से रविज्ञान हो जायगा।

नतांश लम्बांश, द्युज्याचापांश इन तीनो भुजो से उत्पन्न त्रिभुज मे तीनो भुजो के ज्ञान मे "त्रिज्या गुणाद्धरणिकोटि गुणाद्विहीनात् इत्यादि के विलोम से ध्रुवलग्नकोण (नतकालकोटि) का ज्ञान हो गया, नतकालकोटिचाप और चरचाप के सस्कारजनित पदार्थ को इष्टकाल मान कर विदित तात्कालिक रवि पर से लग्न ज्ञान हो जायगा, लग्न ज्ञान से और लग्न पद ज्ञान से लग्न भुजांशज्ञान होगा, इसके बराबर ही वेधगोल म भी होगा क्योंकि गोलसन्धिबिन्दु और लग्न बिन्दुगत रेखायें दोनो गोल के समानान्तर है, लग्न भुजांश ज्ञान से लग्न क्रान्ति ज्ञान होगा तब $\frac{\text{त्रि० ज्याक्रा}}{\text{ज्याल}}$ = अग्रा, यह भी दोनो गोल मे बराबर होगी, क्योंकि गोलद्वयकेन्द्रो से पूर्वस्वस्तिकगत रेखाद्वय और लग्नगत रेखाद्वय समानान्तर है वधगोल मे पूर्वस्वस्तिक से लग्नगोलक्रम मे (दक्षिणगोल मे पूर्वस्वस्तिक से दक्षिण तरफ उत्तरगोल मे लग्न रहने से पूर्वस्वस्तिक से उत्तर तरफ) क्षितिज मे लग्नाग्राचाप तुल्य काट कर कटित बिन्दु से लग्न भुजांश व्यासार्धवृत्त कटित बिन्दुगत ध्रुव प्रोतवृत्त मे तुल्यान्तर पर नाडीवृत्त मे लगेगा, वहा पर लग्न पद क्रम से निश्चित एक बिन्दु और कटित बिन्दु मे लगा कर जो वृत्त होगा वही क्रान्तिवृत्त है ॥

वेधगोल में रात्रि में क्रान्तिवृत्त निवेशन प्रकार।

पूर्वनिर्णीतशराभाव नक्षत्रों में किसी नक्षत्र का वेधजनित वेधगोल में जो नतांश प्रमाण होता है तत्तुल्य ही भगोल में भी होता है। वेधगोल में नतांशमान को मापन द्वारा जान कर विद्ध नक्षत्र को रवि मान कर पूर्ववत्क्रिया सम्पादन करने से यहां भी क्रान्तिवृत्त निवेशन हो जायगा। पूर्वनिर्णीत शराभाव नक्षत्रों में कोई एक बराबर सदोदित क्यों रहता है इसका विचार।

पुष्य =३ । ३ । २० । ० इससे ऊपर ३ । १६ । ४० । ० तक
मघा =४ । ० । ० । ० इससे ऊपर ४ । १३ । २० । ० तक
शतभि=१० । ६ । ० । ० „ „ १० । २० । ० । ० तक
रेवती =११ । १६ । ४० । ० „ „ १२ । ० । ० । ० तक

इसको देखते हुए प्रवहद्वारा गोल को घुमाते हुए मेषादि से लेकर प्रत्येक विन्दु को क्षितिजस्थ करते हुए विचार करने पर अभीष्ट सिद्धि होती है। अथवा शराभाव नक्षत्रद्वय सदोदित रहते ही हैं, वेधगोल में जहां पर उक्त नक्षत्रद्वय परिणत होंगे तद्गत (परिणत नक्षत्रद्वयगत) वृत्त क्रान्तिवृत्त होता है॥

वेधगोलीय ग्रहज्ञान से भूगर्भगोलीय ग्रहज्ञान प्रकार।

वेधगोल में दृष्टि से परिणत बिम्ब का स्पष्ट भोगचिन्ह (बिम्बोपरिगत कदम्ब प्रोतवृत्त क्रान्तिवृत्त का सम्पातविन्दु) वेधगोलीय ग्रह है। इसी तरह भूगर्भ गोल में भी ग्रह होता है।

परिभाषायें

वेधगोलीय स्थान=स्थान, स्थानीय दृग्वृत्त धरातल से कर्तित भूगर्भगोल का प्रदेश तद्गोलीय (भूगर्भगोलीय) दृग्वृत्त है, उसका और गर्भगोलीय क्रान्तिवृत्त का योगविन्दु प, भूगर्भ से प विन्दुगत रेखा प संज्ञक है। दृष्टि से स्थानगत रेखा फ संज्ञक हैं।

प, फ दोनों रेखायें समानान्तर हैं (रे० ११ अ० युक्ति से) रेवतीगत रेखाद्वय समानान्तर हैं, अतः भूगर्भ लग्नकोण दृष्टिस्थान लग्नकोण के बराबर हुआ अर्थात् भूगर्भगोल में रेवती से प विन्दु तक चाप वेधगोलीय स्पष्ट ग्रह के बराबर (भगोलीय रेवती से प विन्दु तक चाप=वेधगोलीय रेवती से स्थान तक) स्थानीय नतांश=प विन्दु के नतांश, क्योंकि प, फ रेखाद्वय समानान्तर है। वेधगोल में वह नतांश मापन से विदित है। तथा बिम्बीय नतांश प विन्दु के नतांश से उत्पन्नकोण स्वस्वस्तिक सलग्न, वेधगोल में जितना है उतना ही भूगर्भ गोल में भी है। वह नतांशोत्पन्न कोण वेधगोल में मापन से जान लेना तब भूगर्भ गोल के पृष्ठ पर जो त्रिभुज बनता है उसमें "त्रिज्यागुणाद् धरणिकोटिगुणात्" इत्यादि विलोम से परिणत बिम्ब प विन्दुगत वृत्तीयाधारचाप का ज्ञान हो गया और वेधगोलीय शर, क्रान्तिवृत्तधरातलान्तर के ज्ञान से भूगर्भगोल में शरज्ञान (जैसे पहले नाडीवृत्त धरातलान्तर ज्ञान से और वेधगोलीय क्रान्ति ज्ञान से भूगर्भ गोलीय क्रान्ति ज्ञान किया गया है उसी तरह यहां भी शरज्ञान किया) अतः चापीयजात्ययुक्ति से गर्भगोलीय ग्रह और प

विन्दु के अन्तर चाप (जिसका नाम संस्कार है) ज्ञान हो जायगा।

अ = संस्कारचाप। वेधगोलीय ग्रह ± संस्कारचा = भूगर्भगोलीय स्पष्टग्रह

संस्कारचाप की धन और ऋण की व्यवस्था।

परिभाषा

वेधगोलीय क्रान्तिवृत्त = इष्टक्रावृ। भूगर्भगोलीय क्रावृ = वास्तव क्रान्तिवृत्त, बिम्बीय कर्णगोलीय क्रान्तिवृत्त = वास्तव क्रान्तिवृ, प रेखा को बढ़ाने से वास्तव क्रान्तिवृत्त में जहां लगती है वहां प बिन्दु है। बिम्ब से इष्टक्रान्तिवृत्त धरातल के ऊपर जो लम्ब करते हैं वह शरज्या है। शरज्या मूल बिन्दु = क्ष है। यह बिन्दु वर्धित फ रेखा ही में है। फ रेखा स्थानीय दृग्वृद्ध धरातल में है। पूर्वकथित शरज्या वर्धित या अवर्धित वास्तव क्रान्तिवृत्त धरातल पर लम्ब है। स्थानीय दृग्वृत्त धरातल निष्ठ म बिन्दु से वास्तव क्रान्तिवृत्त धरातल पर लम्ब करने से उसका मूल बिन्दु 'जिस तरफ स्थानीय दृग्वृत्त वास्तव क्रान्तिवृत्त से उत्पन्नकोण जिस तरफ अल्प होता है उसी तरफ पतित होता है।

भूगर्भ से बिम्बीय कर्ण व्यासार्धगोल में कहते है।

प विन्दुगत दृग्वृत्त वास्तव क्रान्तिवृत्त से उत्पन्नकोण दृक्षेपाभिमुख अल्प होता है। वास्तव क्रान्तिवृत्त धरातल और ऊर्ध्वाधर सूत्र के मध्य में क्ष बिन्दु है। क्योंकि फ रेखा मध्य में है। इन सब से सिद्ध होता है कि दृक्षेप वृत्त से पूर्व कपाल में ग्रह के रहने से रेखा से पश्चिम ही लम्ब पतन होगा। क्योंकि प रेखा स्थानीय दृग्वृत्त धरातल और क्रान्तिवृत्त धरातल की योग रेखा है, भूगर्भ से लम्ब मूल गत रेखा प बिन्दु से पश्चिम ही क्रान्तिवृत्त में लगेगी, वही बिन्दु भूगर्भाभिप्रायिक ग्रह स्थान है। त्रिज्यागोल में भी यही स्थिति है। पश्चिम कपाल में भी इसी तरह विचार करना, इससे सिद्ध होता है, त्रिभ से ग्रह अल्प हो तो संस्कारचाप धन होता है अन्यथा ऋण होता है। इति ॥८॥

अधुना कालमान कथयति

कमलदलनतुल्य काल उक्तस्त्रुटिस्तच्छतमिह लवसञ्ज्ञस्तच्छतं स्यान्निमेष.।
सदल-जलधिभिस्तैर्गुर्विहैवाक्षरं तत्कृतपरिमित-काष्ठा-तच्छरार्धेन चासु ॥७॥

वि० भा०—कमल-दलन-तुल्य काल (सूच्या भिन्ने कमलपुष्पे यावान् समयो लगेत् स समय त्रुटिसञ्ज्ञक उक्त। तच्छत (त्रुटिशत) लवसञ्ज्ञक। तच्छत (लवशत) निमेष (नेत्रपक्ष्मपाते यावान् समय) स्यात्। तैः सदल जलधिभिः (सार्धचतुर्भिर्निमेषैः) इह गुर्वक्षर (एकगुर्वक्षरोच्चारणकाल) तत्कृत-परिमित-(गुर्वक्षरचतुष्टयोच्चारणसमय) काष्ठासञ्ज्ञक। तच्छरार्धेन (सार्धद्वय-काष्ठामितेन) असु (प्राणसञ्ज्ञक काल) भवतीति ॥७॥

यथा

सूच्या भिन्ने पद्मपत्रे य समय स त्रुटिसञ्ज्ञक

१०० त्रुटि = १ लव, १०० लव = १ निमेष (नेत्रयो पक्ष्मपातकाल)

२३ काष्ठा=१ असु ।

४३ निमे दीर्घाक्षरोच्चारणसमय । ४ दीर्घाक्षरोच्चारणसमय=१ काष्ठा

कालमानाना विभागकल्पने सिद्धान्तशिरोमणौ भास्करोक्तपद्यानि—

योऽक्ष्णोर्निमेषस्य खरामभाग स तत्परस्तच्छतभाग उक्ता ।
त्रुटिर्निमेषैर्धृतिभिश्च काष्ठा तत्त्रिंशता सद्गणकै कलोक्ता ॥
त्रिंशत्कलाक्षी घटिकाक्षण स्यान्नाडीद्वय तै खगुणैर्दिनञ्च ।
गुर्वक्षरै खेन्दुमितैरसुस्तै षड्भि पल तैर्घटिका खषड्भि ॥ इत्यादय

स्वस्थ पुरुषस्य नेत्रपक्ष्मपातकाल =१ निमेष

$\frac{\text{निमेष}}{३०}$=तत्पर, $\frac{\text{तत्पर}}{१००}$=त्रुटि

१८ निमेष=१ काष्ठा, ३० काष्ठा=१ कला

३० कला=१ नक्षत्रघटिका, २ घटिका=१ क्षण

३० क्षण=१ दिनम्

अथवा दशगुर्वक्षरोच्चारणकाल =१ असु ६ असु=१ पलम्

६० पल=१ घटिका, ६० घ०=१ दिनम् । (क)

सिद्धान्तशेखरे श्रीपत्युक्त कालमान विभाग कल्पनैव यस्ति, भास्करोक्तात्किञ्चिदपि भिन्ना नास्ति ।

सोमसिद्धान्ते (क) सदृश एव कालमानविभागोऽस्ति—

दशगुर्वक्षर प्राण षड्भि प्राणैर्विनाडिका ।
तत्षष्ट्या नाडिका प्रोक्ता नाडीषष्ट्या दिवानिशम् ॥

ब्राह्मसिद्धान्ते तु कालमानविभागोऽधोलिखितोऽस्ति—

अष्टादश निमेषास्तु काष्ठा त्रिंशत्तु ता कला ।
तासा त्रिंशत् क्षणास्तेऽपि घटनाडीति प्रशस्यते ॥
यद्वा गुर्वक्षराणा तु दशात्र प्राण उच्यते ।
षड्भि प्राणैर्विनाडी तु तत्षष्ट्या घटिका तथा ॥
नाडीषष्ट्या ह्यहोरात्रमिति ॥६॥

ग्रन्थकारोक्त कालमानानि सूर्यसिद्धान्तोक्त कालमानेभ्यो भिन्नानि सन्ति । यथा सूर्यसिद्धान्तोक्त-कालमानानि ।

१०० त्रुटि=१ तत्परसञ्ज्ञक । ३० तत्पर =१ निमेष ।
१८ निमेष=१ काष्ठा ३० काष्ठा=१ कला
३० कला=१ घटी २ घटी=१ मुहूर्त
३० मुहूर्त=१ दिन नाक्षत्रम् ।

वटेश्वरसिद्धान्त निमेपकाल =१०००० त्रुटि
सूर्यसिद्धान्त निमेपकाल =३००० त्रुटि द्वयोर्महान् भेदोऽस्तीति।

हि. भा. —कमलपुष्प को सुई से छेदने मे जितना समय लगता है। उसे एक त्रुटिसंज्ञक काल कहते हैं।

१०० त्रुटि=१ लव १०० लव=१ निमेप
४½ निमेप=१ दीर्घ अक्षर उच्चारणकाल
४ दीर्घ अक्षरोच्चारणकाल=१ काष्ठा
२½ काष्ठा=१ असु

वटेश्वरसिद्धान्त के कालमान से सूर्यसिद्धान्तोक्त कालमान भिन्न है, जैसे सूर्यसिद्धान्तोक्त कालमान निम्नलिखित है —

१०० त्रुटि=१ तत्पर ३० तत्पर=१ निमेप
१८ निमेप=१ काष्ठा ३० काष्ठा=१ कला
३० कला=१ घटी २ घटी=१ मुहूर्त
३० मुहूर्त=१ नाक्षत्रदिन
वटेश्वर सिद्धान्त के अनुसार निमेपकाल=१०००० त्रुटि
सूर्यसिद्धान्त के अनुसार निमेपकाल=३००० त्रुटि
दोनो मे बहुत अन्तर है।

कालमानो के विभाग के सम्बन्ध मे सिद्धान्तशिरोमणि मे भास्कराचार्य कहते हैं। योऽक्ष्णोर्निमेषस्य खराम भाग इत्यादि।

स्वस्थ पुरुष के १ पक्ष्मपात मे जितना समय लगता है उसे निमेपकाल कहते हैं।

$\frac{\text{निमेप}}{३०}$=तत्पर $\frac{\text{तत्पर}}{१००}$=त्रुटि
१८ निमेप=काष्ठा ३० काष्ठा=१ कला
३० कला=१ नाक्षत्र घटिका २ घटिका=१ क्षण (मुहूर्त)
३० क्षण=१ दिन।

अथवा

दश गुरु अक्षरो मे उच्चारण करने में जो समय लगता है उसे एक असु कहते हैं।

६ असु = १ पल ६० पल = १ घटी
६० घटी = १ दिन

सिद्धान्तशेखर म श्रीपति भी इसी तरह कहते हैं।
सोमसिद्धान्त में (क) इसी तरह कालमान है।

दशगुर्वक्षर प्राण इत्यादि।
ब्रह्मसिद्धान्त में कालमान यथोलिखित हैं—
अष्टादश निमेषास्तु इत्यादि ॥७॥

आर्क्ष पल षडसवो घटिका पलाना षष्ट्या दिन च घटिका खलु षष्टिमाहु'।
मास खवह्निभिरथाब्दमिनाहत त क्षेत्रे च कालसदृशावयव तथाहु' ॥८॥

वि भा —षडसव (षट्प्राणा) आर्क्ष पल (नाक्षत्रपलमेकम्) पलाना षष्ट्या (षष्टिपलै) घटिका (एकदण्ड), घटिकाना षष्टि (दण्डाना षष्टि) दिन आचार्या आहु। खवह्निभिर्दिनै (त्रिंशद्भिर्दिनै) मास, इनहत (द्वादश-गुणित) त (मास) मब्द (वर्षम्) आहु। तथा क्षेत्रे काक्षाया कालसदृशावयवम् (वर्षादिसदृश भगणाद्यवयवम्) आचार्या कथितवन्त इति ॥८॥

एतदेव स्पष्ट विलिख्य प्रदर्श्यते —
६ असु = १ नाक्षत्रपलम् ६० पलम् = १ घटी
६० घ० = १ दिनम् ३० दिन = १ मास
१२ मास = १ वर्षम्।

तथा

१२ मासै = १ वर्षम्	तथैव	१२ राशिभि = १ भगण	
३० दिनै = १ मास	,,	३० अंशै = १ राशि	
६० घटीभि = १ दिनम्	,,	६० कलाभि = १ अंश	
६० पलै = १ घटी	,,	६० विकलाभि = १ कला	

सिद्धान्तशिरोमणौ भास्कराचार्यैरप्येवमेव कथ्यते, यथा—

गुर्वक्षरै खेन्दुमितैरसुस्तै षड्भि पल तैर्घटिका खषड्भि ।
स्याद्वा घटीषष्टिरह खरामैर्मासो दिनैस्तैर्द्विकुभिश्च वर्षम् ।
क्षेत्रे समाद्येन समा विभागा स्युश्चक्रराश्यशकलाविलिप्ता ॥

सिद्धान्तशेखरे श्रीपतिनाप्येवमेव कथ्यते—

मास प्रोक्तस्त्रिंशताऽहर्निशाना द्विघ्नै षड्भिस्तैश्च वर्ष प्रदिष्टम्।
एव चक्राक्षाशलिप्ता विलिप्तास्तुल्या क्षेत्रेऽनेहसाऽब्दादिकेन ॥८॥

हि भा. :—६ असुओं का एक नाक्षत्र पल होता है, साठ पल की एक घटी होती है। साठ घटी का एक दिन होता है। तीस दिन का एक महीना होता है। बारह महीनों का एक वर्ष होता है। जैसे—

६ असु = १ पल	६० पल = १ घटी
६० घटी = १ दिन	३० दिन = १ मास
१२ मास = १ वर्ष	

पक्षा में वर्षादि सदृश भगणाद्यवयव होते हैं। जैसे —

१२ मास = १ वर्ष	इसी तरह	१२ राशि = १ भगण
३० दिन = १ मास	,,	३० अंश = १ राशि
६० घटी = १ दिन	,,	६० कला = १ अंश
६० पल = १ दण्ड	,,	६० विकला = १ कला

सिद्धान्तशिरोमणि में भास्कराचार्य इसी तरह कहते हैं। यथा—
गुर्वक्षरं खेन्दुमितैरसुस्तैः षड्भिः इत्यादि।

सिद्धान्तशिरोमणि में भास्कराचार्य इसी तरह कहते हैं —
मासः प्रोक्तोऽत्र सावोऽहर्निशानाम् इत्यादि ॥ ८ ॥

युगादिमान कथयति

दन्ताब्धयोऽयुतहता युगमर्कमानाच्चन्द्राद्रयो युगगुणा मनुरेक उक्तः।
कल्पश्चतुर्दशमनुर्द्युनिशं च तौ द्वौ कस्य स्ववर्षशतमत्र सदायुरुक्तम् ॥९॥

वि भा —दन्ताब्धय (४३२) अयुत (१००००) हता (गुणिता) तदा ४३२०००० अर्कमानात् (सौरवर्षमानात्) युग (महायुग) भवति अर्थात् ४३२०००० सौरवर्षैरेक महायुगमान भवति। चन्द्राद्रय (७१) युगगुणा (महायुग-गुणिता) अर्थात् ७१ महायुगै, एको मनु उक्त (कथित) चतुर्दशमनु एक कल्पो भवति, तौ द्वौ (कल्पौ) कस्य ब्रह्मण द्युनिश (अहोरात्र) भवति, स्ववर्षशत (स्वदिनमानवशेन) वर्षशत तदायु उक्तम् (कथितम्)।

एतदेव स्पष्ट विलिख्य प्रदर्श्यते—

४३२०००० सौरवर्ष = १ महायुगम्	७१ महायुग = १ मनु
१४ मनव = १ कल्प।	२ कल्प = ब्रह्मणोऽहोरात्रम्
३६० अहोरात्र = १ ब्रह्मणो वर्षम्	१०० वर्षाणि = ब्रह्मण आयु।

कृतयुगे धर्मपादा	= ४	
त्रेतायाम् ,,	= ३	
द्वापरे ,,	= २	चतुर्णां युगचरणाना योगो महायुगम्
कलौ ,,	= १	कृतयु + त्रेतायु + द्वायु + कयु
सर्वेषा योगः	= १०	

ततोऽनुपात दशभिर्धर्मपादैर्महायुगमान लभ्यते तदैकचरणे किं समागमिष्यति

कलिप्रमाणम् $= \frac{४३२००००\times१}{१०}$ $=$ ४३२०००$=$कलिप्रमाणम्

इदमेव द्विगुणित तदा द्वापरमानम्$=$८६४०००

त्रिगुणित तदा त्रेतामानम्$=$१२९६०००

चतुर्गुणित तदा कृतयुगमानम्$=$१७२८०००

एतेनाचार्येण युगचरणमान-सम्बन्धे न किमपि कथ्यते केवलमग्रे (म अधि. ६ अध्याये) कथ्यते यदार्यभटस्वीकृत युगचरणमान तथ्यमस्ति तेनार्यभटेन सर्वाणि युगचरणानि समान्येव कथ्यन्ते।

हि भा —चार सौ बत्तीस को एक प्रयुत से गुणने से ४३२०००० सौरवर्षमान से महायुगमान होता है। ७१ महायुग का एक मनु होता है, चौदह मनु का एक कल्प होता है दो कल्प का ब्रह्मा का अहोरात्र होता है, तीन सौ साठ अहोरात्र का १ ब्राह्म वर्ष होता है, १०० सौ वर्ष का ब्रह्मा की आयु होती है। जैसे —

४३२०००० सौरवर्ष$=$१ महायुग	७१ महायुग$=$१ मनु
१४ मनु$=$ १ कल्प	२ कल्प$=$ १ ब्रह्माहोरात्र
३६० अहोरात्र$=$ १ ब्रह्मवर्ष	१०० वर्ष $=$ब्रह्मा की आयु होती है।

वटेश्वराचार्य युगचरणमान के सम्बन्ध मे कुछ भी नही कहते हैं। आगे (मध्यमाधिकार के ६ अध्याय) मे कहते हैं कि आर्यभट स्वीकृत युगचरणमान ठीक है, आर्यभट सब युगचरणो को बराबर मानते हैं।

प्रत्येक कल्पो ब्रह्मादिनम् भवति एतावता सिद्धयति यत्सृष्टयादित (ब्रह्मदिनादित) सृष्टयन्त(ब्रह्मदिनान्त यावत्) ब्रह्मा रविं पश्यति, अत उदयकालाद्यावत्कालपर्यन्त सूर्यदर्शन भवति, स एव काल दिनशब्देन व्यवहृतो भवति। पर सृष्टयादित सृष्टयन्त यावद्ब्रह्मा रविं पश्यति नवेति विचार। सर्वेषा देवाना वासस्थान सुमेरुपर्वते (उत्तरदिशि) वर्तते तेन ब्रह्माप्युत्तरदिश्येव कुत्रापि भवेत्। अत परमदक्षिणेऽर्थात् धनुरन्ताहोरात्रवृत्ते रविर्भवेत्तदा धनुरन्ताहोरात्रवृत्तस्य प्रतिबिन्दुतो भूगोलस्य या स्पर्शरेखा भवेयुस्तासा स्पर्शरेखाणा ध्रुवसूत्रेण साकमुत्तरदिशि कुत्राप्येकस्मिन्न व बिन्दौ योगो भवेत्। प्रथम ध्रुवसूत्रेण सह स्पर्शरेखाणा योगो भवेन्नवेति विचार। <केरन$+$<नकेर$=$<केनस्प पर <स्प$=$९० केनस्प कोण समकोणाल्प सिद्ध, एवमेव के चस्प, कोणोऽपि समकोणाल्पस्तेन ध्रुवसूत्रेण सह स्पर्शरेखाणा योगो भवेत्परमेकस्मिन्नेव बिन्दौ योगो भवेन्नवेति विचार।

स, र = रविगोलीय याम्योत्तराहोरात्र वृत्तयो सम्पात विन्दू र, स विन्दुभ्या भूविम्वस्य कृते स्पर्शरेखे निल, निरक्षोर्ध्वाधरेखायां क्रमशः न, च विन्दुद्वये लग्ने। केर, केरन रेखे कार्ये, केस्प = केस्प, = भूव्यासार्धम्। केर = केस = रविकर्ण। के = भूकेन्द्रम्। रम, सम = अहोरात्रवृत्तव्यासार्धम् = परमाल्पद्युज्याचापम्।

चित्र न ६

<रकेम = <सकेम = परमाल्पद्युचा <निकेम = ६०, ∴ <नकेर = जिनांशा। <मकेम = परमाल्पद्युचा।

अथ केस्पर, केस्प, त्रिभुयो केर = केस, केस्प, = केस्प, स्पर = स्प,स ∴ <केरस्प = <केसस्प तेन केरस्प + <केरम = <स्परम = <केमस्प, + केसम = <स्प,सम

∴ स्पर्शरेखयोर्ध्रुवसूत्रेण सहैकस्मिन्नेव विन्दौ योगो भवेदेवमेवान्यासामपि स्पर्शरेखाणां ध्रुवसूत्रेण साकं तस्मिन्नेव विन्दौ योगो भवितुमर्हति। यत्र योगस्तत्र यो विन्दु कल्प्य। अत्र यो विन्दौ यो द्रष्टा भवेत्स सर्वदा रविं पश्येत्। ग (योगविन्दु) भूपृष्ठस्थानात्कियति दूरे वर्तते तदानयनं क्रियते।

<केरन = कुच्छन्नकला, <नकेर = जिनांश कुच्छन्नकला + जिनांश <स्पनके, <नकेयो = ६० ∴ <नयोके = ६० − (कुकला + जिनांश) तदा केस्पयो त्रिभुजेऽनुपात.

$$\frac{\text{भूव्या } \frac{1}{2} \times \text{त्रि}}{\text{कोटिज्या (कुच्छन्नक + जिनांश)}} = \text{केयो} \therefore \text{केयो} - \text{केपृ} = \text{केयो} - \text{भूव्या } \tfrac{1}{2} =$$

पृयो = ७६ योजन

ब्रह्मा तु यो विन्दुतोऽप्यतिदूरे चाप्यतो ब्रह्मा सर्वदैव (सृष्ट्यादितः सृष्ट्यन्तं यावत्) रविं पश्यतीति सिद्धम्॥

हि. भा.—ब्रह्मा का दिन एक कल्प के बराबर होता है। इससे यह सिद्ध होता है कि सृष्ट्यादि से सृष्ट्यन्त तक ब्रह्मा रवि को देखते हैं। जिसमे उदयकाल से अस्तकाल तक दिन माना जाता है।

परन्तु सृष्ट्यादि से सृष्ट्यन्त तक ब्रह्मा रवि को देखते हैं या नहीं, इसके लिये विचार करते हैं। देवताओं का निवास-स्थान सुमेरु पर है, पर सुमेरु पर्वत उत्तर की तरफ है इसलिये ब्रह्मा भी उत्तर ही तरफ कहीं होंगे। इसलिये रवि जब परम दक्षिण होंगे अर्थात् धनुरन्ताहोरात्र-वृत्त में होंगे तब धनुरन्ताहोरात्र वृत्त के प्रतिबिन्दु से भूबिम्ब की जो स्पर्शरेखायें होंगी उन सब को ध्रुवसूत्र (दोनों ध्रुव में गई हुई रेखा) के साथ एक ही बिन्दु पर योग होगा। पर पहले यह विचार करना चाहिये कि ध्रुवसूत्र के साथ स्पर्श रेखा का योग होता है या नहीं।

<केरन+<नकेर=<केनस्प पर<स्प=९०∴ केनस्प कोण, समकोणाल्प सिद्ध हुआ। इसी तरह केचस्प$_1$ कोण भी समकोणाल्प है इसलिये ध्रुव सूत्र के साथ स्पर्शरेखाओं का योग अवश्य होगा। लेकिन एक ही बिन्दु में योग होता है या नहीं इसके लिये विचार करते हैं।

स, र=रविगोलीय याम्योत्तरवृत्त और धनुरन्ताहोरात्रवृत्त का योग-बिन्दु है। र स बिन्दुओं से भूबिम्ब की स्पर्शरेखायें (निल) निरक्षोर्ध्वाधर रेखा में न, च बिन्दु पर लगती है। केर, केस रेखा कीजिये केस्प=केस्प$_1$=भूव्या ½, कर=केम=रविकर्ण, भू=भूकेन्द्र

रम, सम=धनुरन्ताहोरात्र वृत्त व्यासार्ध=परमाल्प द्युज्याचा, <रकेम=सकेम= परमाल्पद्युचा अत <नकेर=जिनाश, <केरम=जिनाश, <केसम=जिनाश

<केरन=<केस=कुच्छन्नकला, . केरस्प+<केरम=<स्परम=<केसस्प$_1$ +<केसम=<स्प$_1$सम

अत रस्प, सस्प$_1$ स्पर्शरेखाओं का योग ध्रुव सूत्र के साथ एक ही बिन्दु पर होगा यह सिद्ध हुआ। इसी तरह और भी स्पर्शरेखायें ध्रुव सूत्र के साथ उसी बिन्दु पर मिलेंगी यह सिद्ध हुआ, ध्रुव सूत्र के साथ स्पर्शरेखाओं को एक ही बिन्दु पर जहां योग हुआ वहां योगबिन्दु रखिये, योगबिन्दु पर जो होंगे उनको बराबर रवि का दर्शन होगा, वह बिन्दु (यो) भूपृष्ठ (पृ) स्थान से कितने दूर पर है इसका साधन करते हैं।

<केरन=कुच्छन्नकला, <नकेर=जिनाश ∴ कुच्छन्नकला+जिनाश=<स्पनके

<नकेयो=९० ∴ <नयोके=९०-(कुच्छन्नकला+जिनाश)

तब केस्पयो जात्य त्रिभुज में अनुपात करते हैं $\frac{\text{भूव्या ½} \times \text{त्रि}}{\text{कोज्या (कुकला+जिनाश)}}$=केयो,

. केयो—केपृ=केयो भूव्या-½=पृयो=७६ योजन।

ब्रह्मा यो बिन्दु से भी बहुत दूर पर है इसलिये ब्रह्मा बराबर (सृष्ट्यादि से प्रलय पर्यन्त) रवि को देखते हैं अर्थात् सृष्ट्यादि से प्रलय पर्यन्त एक कल्प ब्राह्म दिन सिद्ध हुआ॥

कजन्मनोऽष्टौ सदलाः समाययुस्तथा समाप्ता मनवो दिनस्य वा ।
युगत्रिवृन्द सद्दशाङ्घ्रयस्त्रयः कलेर्नवागैकगुणा शकावधे ॥१०॥

वि भा —कजन्मन (ब्रह्मण) आयुष सदला अष्टौ समा (सार्धाष्टवर्षाणि) समाययु (समाप्ति गता अर्थाद्व्यतीयु) तथा दिनस्य नववर्षस्य प्रथमदिने षड् मनवो व्यतीता, युगत्रिवृन्द (सप्तविंशतिप्रमित युग) व्यतीतम्, सद्दशाङ्घ्रयस्त्रय (तुल्ययुगाङ्घ्रित्रय) व्यतीता, कले शकावधि (कलियुगादित शकारम्भ यावत्) नवागैकगुणा (३१७९) एतावन्ति वर्षाणि व्यतीतानि सर्वेषा योगकरणेन सृष्ट्यादित शकादि यावत्कल्पगतवर्षाणि भवन्तीति । आचार्येण कल्पगतवर्षाणि न लिखितानि—भास्कराचार्येण तानि लिखितानि —

याता षड् मनवो युगानि भमितान्यन्यद्युगाङ्घ्रित्रय,
नन्दाद्रीन्दुगुणास्तथा शकनृपस्यान्ते कलेर्वत्सरा ।
गोऽद्रीन्द्वद्रिकृताङ्क दस्र नगगो चन्द्रा शकाब्दान्विना,
सर्वे सङ्कलिता पितामहदिने स्युर्वर्त्त माने गता ॥

यथा गणितम्

६ मनु+७ सन्धि+२७ युग+३ युग चरण+३१७९=
=६ मनु+७ सन्धि+२७ युग+ (युग—कलियुचरण) +३१७९
=६×७१ मयु+७×४×४३२०००+२७ युग+ (युग—कयुचरण) +३१७९
=६×७१×४३२००००+७×४×४३२०००+२७×४३२००००+
(४३२००००—४३२०००) +३१७९
=६×७१×४३२००००+२८×४३२००००+२७×४३२००००+
(४३२००००—४३२०००) +३१७९
=१८४०३२००००+१२०९६०००+११६६४००००+३८८८+३१७९
=१९७२९४७१७९=कल्पगत वर्ष=भास्कर-कथित-कल्पगत-वर्षाणि ।

ब्रह्मणो गतायुर्विषये सूर्यसिद्धान्ते लिखितमस्ति यत् 'परमायु शत तस्य तयाहोरात्रसख्यया । आयुषोऽर्धमित तस्य शेषकल्पोऽयमादिम ॥" इति । अतएव मतद्वै विध्ये भास्कर ।

तथावर्त्तमानस्य कस्यायुषोऽर्ध गत सार्धवर्षाष्टक केचिदूचु ।
भवत्वागम कोऽपि नात्योपयोगो ग्रहावर्त्तमान द्युयातात्प्रसाध्या इति ॥ १० ॥

हि भा —ब्रह्मा की आयु के साढे आठ वर्ष बीत गये, तथा नवम वर्ष के प्रथम दिन मे छ मनु बीत गये हैं, सत्ताईस युग बीत गये, युग (महायुग) के तीन चरण (सत्ययुग, त्रेता, द्वापर) बीत गये, कलियुगादि से शकादि (शकारम्भ) तक ३१७९ वर्ष बीत गये । इन सब के योग करने से सृष्ट्यादि से शकादि तक कल्पगत वर्ष होते हैं, इनका गणित उपरि-लिखित देखिये । वटेश्वराचार्य ने कल्पगत वर्ष नहीं लिखे हैं । भास्कराचार्य ने लिखा है जो सस्कृत विज्ञानभाष्य मे दिखलाया गया है । ब्रह्मा की गतायु के विषय मे सूर्यसिद्धान्तकार ने

लिखा है—परमायु शतं तस्य इत्यादि। इसलिये दो तरह के मत होने पर सिद्धान्तशिरोमणि में भास्कराचार्य ने लिखा है कि—तथा वर्त्तमानस्य इत्यादि।

सूर्यसिद्धान्त के मत से आयु का आधा भाग बीत गया इस तरह दो मत होने पर भास्कराचार्य कहते हैं कि कोई भी आगम हो, मुझे उसकी जरूरत नहीं (ब्रह्मा की गतायु से कुछ भी जरूरत नहीं है) क्योंकि ग्रहों का साधन तो वर्त्तमान ग्रहर्गण पर से करना है। इति ॥१०॥

अथ रविबुधशुक्राणां कुजगुरुशनि-शीघ्रोच्चानाञ्च भगणमानं कथयति —

खाभ्र खाभ्र दशनाब्धयो युगे भार्गवेन्दुसुत-सूर्यपर्ययाः।
शीघ्रतुङ्ग भगणाः प्रकीर्त्तिताः सूर्यसूनु सुरपूजितासृजाम् ॥११॥

वि. भा. —युगे (महायुगे) खाभ्र खाभ्रदशनाब्धय (४३२००००) भार्गवेन्दु-सुत-सूर्यपर्यया (शुक्र-बुधरवि भगणा भवन्ति) एते एव सूर्यसूनु सुरपूजितासृजाम् (शनि-गुरु मङ्गलानां) शीघ्र-तुङ्गभगणाः (शीघ्रोच्चभगणाः) प्रकीर्त्तिता (कथिता)।

अर्थान्महायुगे रविबुधशुक्राणां यावन्तो भगणास्तावन्त एव शनिगुरुमङ्गल-शीघ्रोच्चानामपि भवन्तीति।

उपपत्ति —मध्यमरविसमावेव मध्यमबुधशुक्रौ भवतः। तथा रविरेव शनिगुरुमङ्गलानां शीघ्रोच्चम्। अतो रविभगणसमा =बुधशुक्रयोर्भगणा = शनिगुरुमङ्गल-शीघ्रोच्चभगणा।

अथ युगसौरवर्ष=युगरविभगण। पर युगसौरवर्षाणि=४३२००००
∴ युगरविभगणा =युगसौरवर्षाणि=४३२००००=युगबुधभगण=युगशुक्रभगण=शनिशीघ्रोच्चभगण=मङ्गलशीघ्रोच्चभगण=गुरुशीघ्रोच्चभगण . सिद्धम् ॥११॥

एवं महायुग में शुक्र बुध सूर्यों का भगण ४३२०००० होते हैं इतने ही शनि गुरु मङ्गलों के शीघ्रोच्चों का भगण ॥

उपपत्ति—

मध्यमरवि के बराबर मध्यम बुध और शुक्र होते हैं। शनि, गुरु और मङ्गल इनके शीघ्रोच्च रवि है इसलिए महायुग में —

रविभगण=बुधभगण=शुक्रभगण=शनिशीघ्रोच्चभगण=गुरुशीघ्रोच्चभगण=मङ्गलशीघ्रोच्चभगण

परन्तु युगसौरवर्ष=युगरविभगण, ∵ युगसौरवर्ष=४३२००००
∴ युगे रविभगण=४३२००००=बुधभगण=शुक्रभगण=शनिशीघ्रोच्चभगण=

गुरुशीघ्रोच्चभगण=मङ्गलशीघ्रोच्चभगण ∴ उपपन्न हुआ ॥११॥

युगे चन्द्रकुजशनीना भगणमान कथयति ।

शशिनोरसवह्निसुरेषु नगक्षितिभृद्विषयास्त्वचलात्मभुवः ।
गजपक्ष गजाङ्ग-नवद्विभुजा खयमाक्षि कृतर्त्तु-गुणाश्च गुरोः ॥१२॥

वि भा —शशिन (चन्द्रस्य) रसवह्निसुरेषु नगक्षितिभृद्विषया (५७७५३३३६) महायुगे भगणा भवन्ति । अचलात्मभुव (कुजस्य) गजपक्ष गजाङ्ग-नवद्विभुजा (२२९६८२८) भगणा भवन्ति, गुरो. (बृहस्पते) खयमाक्षिकृतर्त्तु गुणा (३६४२२०) भगणा भवन्ति ॥

चन्द्रभगणोपपत्ति

अथ ग्रहवेधार्थं गोलबन्धोक्तरीत्या गोलयन्त्र विरच्य खगोलान्तर्गतो भगोल कार्यं । वेधगोलीय क्रान्तिवृत्त भगणाशाङ्कित तथा तत्रत्यवेधवृत्तमपि (कदम्ब-प्रोतवृत्त) भगणाशाङ्कित कार्यं तद्गोलयन्त्र दृढीकृत्य गोलकेन्द्रे ध्रुवाभिमुखयष्टी निवेश्य रात्रौ गोलकेन्द्रगतदृष्ट्या रेवती तारा विलोक्य गोलयन्त्रीयक्रान्तिवृत्ते (रेवती) मेषादिमङ्कयेत् । तथा गोलकेन्द्रगतदृष्ट्यैव चन्द्र विलोक्य वेधगोलीय (गोलयन्त्रीय) परिणतचन्द्रोपरि कदम्बप्रोतवृत्त निवेशनीयम् । एव सति कदम्ब-प्रोतवृत्त-तत्रत्यक्रान्तिवृत्तयोर्य सम्पात स एव वेधागत स्पष्टचन्द्रो ज्ञातव्य । मेषादित स्फुटचन्द्रावधि (स्पष्टचन्द्रावधि) क्रान्तिवृत्ते ये राश्यशादयस्ते गणनीया । स एव तस्मिन् काले स्पष्टचन्द्रो राश्यादिको भवेत् । एवमन्यस्मिन्नपि दिने स्पष्टचन्द्रो वेदितव्य तदा विदितमन्दोच्चात्स्पष्टचन्द्राच्च "स्फुट ग्रह मध्यखग प्रकल्प्येत्यादि" विलोमेन तन्मन्दफलमानीय तेन सस्कृत स्पष्टश्चन्द्रो मध्यमचन्द्रो भवेत् । एव दिनद्वये मध्यमचन्द्रौ ज्ञात्वाऽन्तरेण चन्द्रमध्यमा गति विज्ञाय "यद्येकेन दिनेनैतावती चन्द्रगतिस्तदा युगकुदिने किमित्यनुपातेन" चन्द्रभगणा उत्पद्यन्ते ॥१२॥

हि भा —चन्द्रमा के भगण=५७७५३३३६ होते हैं।
मगल के भगण=२२९६८२८
बृहस्पति के भगण=३६४२२०

उपपत्ति —ग्रह के वेध के लिये गोलबन्ध नियम के अनुसार गोलयन्त्र बनाकर खगोल के अन्तर्गत भगोल को करना चाहिये, रचितगोलीय (वेधगोलीय) क्रान्तिवृत्त में ३६० अश चिन्हित करना और वहाँ के वेधवृत्त का (कदम्ब प्रोतवृत्त) भी ३६० अश में चिन्हित कीजिये । उस गोलयन्त्रको स्थिर करके गोलकेन्द्र मे ध्रुवाभिमुखयष्टी करके रात्रि मे गोलकेन्द्रगत दृष्टिद्वारा रेवतीतारा को देखकर वेधगोलीय क्रान्तिवृत्त मे रेवती को (मेषादि को) अकित करना । और गोलकेन्द्रगत दृष्टि द्वारा चन्द्रमा को देखकर वेधगोल मे परिणत चन्द्र के ऊपर तद्गोलीय कदम्ब प्रोतवृत्त करना । इसतरह वेधगोलीय कदम्ब प्रोतवृत्त क्रान्तिवृत्त का जो सम्पात है वही वेधागत स्पष्टचन्द्र समझना चाहिये । मेषादि मे (रेवती मे) स्पष्टचन्द्र तक क्रान्तिवृत्त मे जो राश्यशादि है उसको गिन लेना चाहिये, वही उस समय राश्यादिक स्पष्टचन्द्र होते हैं।

इस तरह और दिन में भी स्पष्टचन्द्र का ज्ञान करना चाहिये। तब मन्दोच्च और स्पष्टचन्द्र से विलोम विधि (मध्यमचन्द्र से स्पष्टचन्द्रसाधन की विपरीत क्रिया से) चन्द्रमन्दफल लाकर स्पष्टचन्द्र में संस्कार करें तब मध्यमचन्द्र होंगे। एवं दो दिन मध्यमचन्द्र जानकर अन्तर करने से चन्द्रमध्यमगति समझनी चाहिये, तब "एक दिन में इतनी चन्द्रगति पाते हैं तो कुदिन में क्या" इस अनुपात से चन्द्रभगण आजायेंगे। ॥१२॥

शनेर्बुधशुक्रशीघ्रोच्चयोश्च भगवानाह।

गजयट्शरयट् मनवश्च शनेः शशिसूनुचलस्य खरसैर्हि युताः।
नखखाद्रि-गुणाङ्क-नगक्षितयो भृगुपुत्र-चलस्य बुधैर्गदिताः ॥१३॥

वि भा —शने (शनैश्चरस्य) गजयट् शरयट्मनव (१४६५६८) भगणा भवन्ति। शशिसूनुचलस्य (बुधशीघ्रोच्चस्य) खरसै (६०) युता नखखाद्रिगुणाङ्क-नगक्षितय (१७९३७०८०) भगणा भवन्ति। भृगुपुत्रचलस्य (शुक्रशीघ्रोच्चस्य) बुधैर्गदिता, एतस्याग्रिमश्लोकेन सम्बन्ध ॥१३॥

बुधशुक्रयो शीघ्रोच्चोपपत्ति

पूर्वस्या दिशि चक्रयन्त्रवेधेन रविशुक्रयोरन्तराशा ज्ञातव्या, स्पष्टर∼विस्पशुक्र =अन्तराशा, ∵ स्पष्टरवि—अन्तराश=स्पष्टशुक्र । स्पष्टशुक्रो मन्दफलमानीय स्पष्टशुक्रे विपरीत धनर्णं कार्यं तदा मदस्पष्टशुक्रो भवेत्। स्पष्टरवेरपि विलोमविधिना मध्यमरविज्ञान कार्यं तयोर्यदन्तर तच्छीघ्रफल धनमृण वेनि। अर्थान्मध्यमरवि-तुल्यशुक्रस्य तन्मन्दफलव्यस्तसस्कृतानीत स्पष्ट शुक्रस्यान्तरेण यद्दण धन वा शीघ्र-फल तदेव स्पष्टशुक्रमदस्पष्टशुक्रयोर तरमपि शीघ्रफल भवतीति। प्रत्यह वेधेन परम शीघ्रफलमानतेव्यम्, एतस्य शीघ्रफलस्य परमत्व प्राय कक्षामध्यगनिर्यग्रेखा-प्रतिवृत्तसम्पातस्थे ग्रहे एव भवनि, । ∵ तत्र स्पष्टशुक्राच्छीघ्रोच्च राशित्रयान्तरे वर्त्तते तेन स्पष्टशुक्र—३ राशि=शीघ्रोच्चम् एव द्वितीयपर्ययेऽपि पूर्वोक्तेनैव विधिना शीघ्रोच्च ज्ञातव्यम्। एतयो शीघ्रोच्चयोरन्तर तद्दिनज शीघ्रोच्चगतिर्भवेत्ततोऽनुपातो यद्येतत्कालातरदिनैरिय शीघ्रोच्चगतिस्तदैकेन दिनेन किमिति फलमेकदिनजा शीघ्रोच्चगतिस्ततोऽनुपातेन "यद्येकेन दिनेनेय शीघ्रोच्चगतिस्तदा कुदिनै केनि" शीघ्रोच्चभगणा। एवमेव बुधस्यापि भगणोपपत्तिरनुसन्धेयेनि ॥१३॥

हि भा —शनैश्चर का भगण=१४६५६८
बुधशीघ्रोच्चभगण=१७९३७०८० शुक्रशीघ्रोच्चभगण आगे के श्लोक में है। पूर्व दिशा में चक्रयन्त्र द्वारा स्पष्टरवि शुक्र के अन्तराश समझना चाहिए, उस अन्तराश को स्पष्टरवि में घटाने से स्पष्ट शुक्र हो जायेंगे। स्पष्टशुक्र पर से मन्दफल साधन कर स्पष्टशुक्र में विलोम संस्कार करने से मन्दस्पष्टशुक्र होंगे। स्पष्टरवि पर से भी विलोमविधि से मध्यमरवि का ज्ञान करना चाहिए, दोनों के अन्तर करने पर धन या ऋण शीघ्रफल होगा अर्थात् मध्यमरवि-तुल्यमध्यमशुक्र का और मन्दफल व्यस्त संस्कृत लाये हुए स्पष्टशुक्र का अन्तर करने पर जो धन या ऋण शीघ्रफल होता है वही स्पष्टशुक्र-मन्दस्पष्टशुक्र का अन्तर शीघ्रफल होता है। इस

तरह प्रत्येक दिन वेध से परमशीघ्रफल लाना चाहिये। शीघ्रफल का परमत्व प्राय कक्षा-मध्यगतिर्यग्रेखा प्रतिवृत्त सम्पात मे ग्रह के रहने से होता है अत वहाँ स्पष्टशुक्र से शीघ्रोच्च तीन राशि पर होता है इसलिए स्पष्टशुक्र—३ राशि=शीघ्रोच्च एव द्वितीयभगण मे भी वेध मे पूर्व विधिद्वारा शीघ्रोच्च का ज्ञान करना, इन दोनो शीघ्रोच्चो का अन्तर उतने समय की शीघ्रोच्चगति होती है तब अनुपात करते हैं कि प्रथम वेधदिन द्वितीय वेधदिन के अन्तर मे यह शीघ्रोच्चगति पाते है तो एक दिन मे क्या फल एक दिन सम्बन्धी शीघ्रोच्चगति होगी तब "यदि एक दिन मे यह शीघ्रोच्चगति तब कुदिन मे क्या" इस अनुपात से युग मे शुक्र का भगण आ जायगा। इसी तरह बुधभगणानयनोपपत्ति भी होती है। इति ॥१३॥

अथ चन्द्रमन्दोच्चभगणान् चन्द्रपातभगणाश्चाह।

रसशैल गुणाक्षि भुजाभ्रनगाः शिखिखाश्विकरीभपयोनिधयः।
हिमगूच्च युगर्क्षगणेभगुणाद्वियमाग्निभुजाः शशिपातभवाः ॥१४॥

वि भा —रसशैल गुणाक्षि भुजाभ्रनगा (७०२२३७६) शुक्रशीघ्रोच्चभगण. (एतस्य पूर्वोक्त १३ श्लोकेन सम्बन्ध) शिखिखाश्विकरीभ पयोनिधय (४८८२०३) हिमगूच्च-भवर्क्षगणा (चन्द्रमन्दोच्च-भगणा), इभगुणाद्वियमाग्नि-भुजा (२३२२३८) शशिपातभवा (चन्द्रपातोत्पन्ना) भगणा भवन्तीति ॥

उपपत्ति

शुक्रशीघ्रोच्च भगणोपपत्तिस्तु प्रागुक्तैव अधुना चन्द्रमन्दोच्चोपपत्ति प्रदर्श्यते। प्रत्यह वेधेन चन्द्रस्फुटगतयो विलोक्या। एतस्या गते परमाल्पत्व यस्मिन् दिने दृष्ट तत्र दिने मध्यमस्फुटचन्द्रौ समौ भवेताम् तदा तदेवोच्चस्थानम्। यत उच्चस्थे ग्रहे फलाभाव गतेश्च परमाल्पत्वम्। ततोऽनन्तर तस्माद्दिनादारभ्यान्यस्मिन् पर्यये प्रतिदिन चन्द्रवेधद्वारा तथैवोच्चस्थान ज्ञेयम्। इदमुच्चस्थान पूर्वोच्चस्थानादग्रे भवति। तयोरन्तर तद्दिनजा चन्द्रोच्चगतिर्भवेत्। तत यद्येतावद्भिरन्तरदिनैरियमुच्चगतिस्तदैकेन दिनेन किमित्यनुपातनैकदिनजा चन्द्रगति। तत यद्येकेन दिनेनेय चन्द्रोच्चगतिस्तदा कुदिनै किमित्यनुपातेन (युग) चन्द्रमन्दोच्चभगणा समागच्छन्तीति ॥१४॥

हि भा —शुक्रशीघ्रोच्च भगण=७०२२३७६ इसको १३वें श्लोक से सम्बन्ध है इसकी उपपत्ति वहीं देखिये—

चन्द्रमन्दोच्च भगण=४८८२०३
चन्द्रपात भगण=२३२२३८

चन्द्रमन्दोच्चभगणोपपत्ति

प्रतिदिन वेध मे चन्द्र स्पष्टगति देखनी चाहिये, इस गति की परमाल्पता जिस दिन देखी जायगी उस दिन मध्यमग्रह-स्पष्टग्रह (मध्यमचन्द्र-स्पष्टचन्द्र) बराबर होंगे, तब वही उच्चस्थान होगा जिस लिये उच्चस्थान मे ग्रह रहने से फल=०, गति की परमाल्पता होगी

है। उसके बाद उस दिन से प्रारम्भ कर दूसरे भगण में भी प्रत्येक दिन वेध से पूर्वोक्त नियम द्वारा चन्द्रमन्दोच्च स्थान का ज्ञान करे। यह चन्द्रमन्दोच्च स्थान पूर्वकथित चन्द्रमन्दोच्च स्थान से आगे होता है। दोनों के अन्तर करने से उतने दिन सम्बन्धिनी चन्द्रमन्दोच्च गति होगी, तब "यदि इतने दिन में यह चन्द्रमन्दोच्चगति पाते हैं तो एक दिन में क्या" इस अनुपात से एक दिन की चन्द्रमन्दोच्चगति होगी। इस पर से अनुपात द्वारा "एक दिन में यह चन्द्रमन्दोच्चगति पाते हैं तो कुदिन में क्या" चन्द्रमन्दोच्चभगण प्रमाण आ जायगा। इति।

चन्द्रपात-भगणोपपत्ति।

प्रत्यह चन्द्रवेधाद्दक्षिणशरे क्षीयमाणे यस्मिन् दिने शराभावो दृष्टस्तद्दिने क्रान्तिवृत्ते तत्स्थान चिन्हित तत्र यावाश्चन्द्र स चक्रशुद्ध पातो भवेत्। एवं द्वितीयपर्ययेऽपि पातस्थान ज्ञेयम्। इद पूर्वपातस्थानात्पश्चिमे समागच्छत्यत पातस्य विलोमा गतिरस्तीत्यस्य प्रतीतिर्जाता, द्वयो पातयोरन्तरेण तद्दिनजा पातगतिस्ततोऽनुपातो यद्येतावद्भिरन्तरदिनैरिय पातगतिस्तदैकेन कुदिनेन किमित्यनुपातेनैकदिनजा पातगतिस्ततो यद्येकेन दिनेनैय पातगतिस्तदा युग-कुदिनै किमिति समागच्छति युगचन्द्रपातभगणा इति ॥१४॥

चन्द्रपात भगणोपपत्ति।

प्रत्येक दिन चन्द्रमा के वेध करने से जिस दिन दक्षिण शर क्षीयमाण होने पर शराभाव देखा जायगा उस दिन क्रान्ति वृत्त में उस स्थान को अङ्कित कर देना, वहा पर जितना चन्द्रप्रमाण होगा उसको बारह राशि में घटाने से पात होगा इसी तरह, दूसरे पर्यय में भी पातस्थान समझना चाहिये। पर यह पात-स्थान पूर्वपातस्थान से पश्चिम होता है, इससे पात की विलोमगति सिद्ध होती है। दोनों पातों के अन्तर करने से उतने दिनों में पातगति होगी तब अनुपात करते हैं कि इतने अन्तर दिनों में यह पातगति पाते हैं तो एक दिन में क्या आ जायगी' एक दिन सम्बन्धी पातगति, तब अनुपात करते हैं कि 'एक दिन में यह पातगति तो युग-कुदिन में क्या' इस अनुपात से युग चन्द्रपातभगण आ जायगे। ॥१४॥

कमलविष्टरवक्त्र-सरोरुह-स्फुटगिराभिहिता मुनिपर्यया।
य इह तानपि वच्मि युगोद्भवान् द्युचरलब्धवरो भुजगोऽप्ययः ॥१५॥

इदानीं ब्रह्मायुषि रविकुजगुरूणा भगणानाह—

मन्दतुङ्ग भगणोऽब्ज-जीविते भूमि-पङ्कज शराष्टयो रवे।
लोहितस्य शरपट् शिवोरगा धीकृताङ्क-दहनेन्दवो गुरो ॥१६॥

वि भा—अब्जजीविते (ब्रह्मजीवनकाले) कमल-विष्टर-वक्त्र-सरोरुह-स्फुटगिरा (ब्रह्ममुख-कमल-स्पष्टवाण्या) ये मुनिपर्यया (मुनीना कृते भगणा) अभिहिता (कथिता) तान् युगोद्भवानपि (युगोत्पन्नानपि) भगणान्, द्युचरलब्धवर (ग्रहप्राप्तप्रसाद) अह (वटेश्वर) वच्मि (ब्रुवे)। भुजगोऽप्यय इति निरर्थक प्रतिभाति।

ब्रह्मायुषि-भूमि-पङ्कज-शराष्टय (१६५११) रवेर्मन्दोच्चभगणा'। लोहितस्य (मङ्गलस्य) शरषट्-शिवोरगा (८११६५) मन्दोच्चभगणा। धीकृताङ्कदहनेन्दव (१३६४५) गुरोर्मन्दोच्चभगणा भवन्तीति॥ १५-१६॥

हि भा —ब्रह्मा के जीवनकाल में ब्रह्मा के मुखकमल से निकली हुई स्पष्टवाणी द्वारा मुनियो के लिये जो भगण कहा गया है। ग्रहो के प्रसाद से मैं (वटेश्वर) युगोत्पन्न उन भगणो को भी कहता हू।

ब्रह्मा की आयु मे—
रवि का मन्दोच्चभगण=१६५११
मङ्गल का मन्दोच्चभगण=८११६५
बृहस्पति का मन्दोच्चभगण=१३६४५

रविमन्दोच्च-भगणोपपत्ति।

मिथुनस्थे रवौ कस्मिश्चिदपि दिने रेवतीतारकोदयाद्यावतीभिर्घटिकाभी रविरुदितस्तावतीभिर्मीनान्ताल्लग्न साध्यम्। तत्र यल्लग्न स तदा स्फुटरवि। एवमन्यदिनेऽपि तयो स्फुटरव्योर्यदन्तर सा स्फुटगति। एव प्रतिदिन स्फुटगतयो ज्ञातव्या। यस्मिन् दिने गते परमाल्पत्व तत्र दिने यावान् रविस्तावदेव रवेर्मन्दोच्चम्। एव द्वितीयपर्ययेऽपि मन्दोच्च ज्ञेयम्। एतन्मन्दोच्च प्रथममन्दोच्चादग्रे भवति। यद्यपि मन्दोच्चस्यास्य बहुष्वपि वर्षेषु गतिर्नोपलभ्यते तथापि चन्द्रमन्दोच्चवदस्यापि गति स्वीक्रियते। तयोर्मन्दोच्चयोरन्तर तद्दिनजा मन्दोच्चगतिर्भवेत्। ततोऽनुपातेन "यद्येतावद्भिरन्तरदिनैरिय मन्दोच्चगतिस्तदैकेन दिनेन कि जातैकदिनजा रविमन्दोच्चगति।" ततोऽनुपातेन रवेर्मन्दोच्चभगणा समागच्छन्तीति। युगीयभगणादय कल्पीयभगणादयश्च ब्रह्मायुषि कथमागच्छन्ति तदर्थमग्रे (द्वितीयाध्यायस्य सप्तमश्लोके) आचार्योक्तिविधिर्ज्ञेय॥१५-१६॥

हि भा —मिथुन मे रवि के रहने पर किसी भी दिन रेवती नक्षत्र के उदय से जितनी घटी मे रवि उदित हो उतनी घटी करके मीनान्त से लग्न साधन करना, तब जो लग्न हो वही स्पष्ट रवि होंगे, दूसरे दिन भी इसी तरह करना, दोनों स्पष्ट रवि के अन्तर स्पष्टगति होती है, इस तरह प्रत्येक दिन स्पष्टगति समझनी चाहिये। जिस दिन मे गति की परमाल्पता होगी उस दिन जितने रवि होंगे उतने ही रवि मन्दोच्च प्रमाण होंगे, इस तरह दूसरे पर्यय मे भी मन्दोच्च ज्ञान करना, यह मन्दोच्च पूर्व मन्दोच्च से आगे होता है, यद्यपि इस मन्दोच्च की गति बहुत वर्षों मे भी नही उपलब्ध होती है तथापि चन्द्रमन्दोच्च की तरह यहा भी आचार्य ने इसकी गति स्वीकार की है।

दोनो मन्दोच्च के अन्तर करने पर उतने दिनो की मन्दोच्चगति होगी। तब अनुपात से "इतने अन्तर दिन मे यह रविमन्दोच्चगति पाते हैं तो एक दिन मे क्या" एक दिन की रविमन्दोच्चगति आई, इस पर से अनुपात द्वारा रविमन्दोच्च भगण आजायेंगे। युगीयभगणादियो को या कल्पीय भगणादियो को ब्रह्मा की आयु मे लाने के लिये आगे

(दूसरे अध्याय के सप्तम श्लोक मे) आचार्य ने नियम लिखे हैं ॥१५-१६)

इदानीं ब्रह्मायुषि शनि-बुध-शुक्र-मन्दोच्च-भगणानाह । —

कृतसप्तनवद्विपर्वताः शनेः क्षितिगोदोर्मुनिभूभृदब्धयः ।
शशिजस्य सुरारिमन्त्रिणो द्विकृताष्टद्विकपञ्चभूमयः ॥१७॥

वि भा —ब्रह्मायुषि कृतसप्तनवद्विपर्वता. (७२९७४) शनेर्मन्दोच्चभगणा· क्षितिगोदोर्मुनिभूभृदब्धय (४७७२९१) शशिजस्य (बुधस्य) मन्दोच्चभगणाः द्विकृताष्टद्विकपञ्चभूमय (१५२८४२) सुरारिमन्त्रिण. (शुक्रस्य) मन्दोच्चभगणा ॥१७॥

ब्रह्मा की आयु म शनैश्चर का मन्दोच्चभगण=७२९७४
बुध का मन्दोच्चभगण=४७७२९१
शुक्र का मन्दोच्चभगण=१५२८४२

उपपत्ति.

एतेषा (मङ्गल बुध-बृहस्पति-शुक्रशनैश्चराणा) मन्दोच्चभगणोपपत्ति. । वेधेन स्फुटग्रह ज्ञात्वा त मन्दस्फुट प्रकल्प्य तत शीघ्रफलमानीय स्फुटग्रहे तद्विलोमं सस्कुर्यादेवमसकृन्मन्दस्फुटग्रहो वेदितव्य । एव प्रतिदिन मन्दस्फुटो ज्ञेय । धनमन्द फले क्षीयमाणे स मन्दस्फुटग्रहो यस्मिन् दिने मध्यतुल्यो भवेत्तदा तत्तुल्यमेव मन्दोच्च ज्ञेयम् । एव द्वितीयपर्ययेऽपि मन्दोच्च ज्ञेयं ततो रविमन्दोच्च भगणवदत्रापि भगणा नेया इति ॥१७॥

हि भा —वेध मे स्फुटग्रह जानकर उसे मन्दस्पष्ट मानकर शीघ्रफल साधन करना, स्फुटग्रह म उसको विलोम सस्कार करने पर द्वितीय मन्दस्पष्टग्रह होगा । इस तरह असकृत्कर्म करने से मन्दस्पष्टग्रह का ज्ञान होगा । इस तरह प्रतिदिन मन्दस्पष्टग्रह जानना चाहिये । धन मन्दफल क्षीयमाण रहने पर जिस दिन मन्दस्पष्टग्रह मध्यमग्रह के बराबर होगा उस दिन उसीके बराबर मन्दोच्च होगा । इस तरह द्वितीय पर्यय मे भी करना । तब रविमन्दोच्चभगण के अनुसार यहा भी मन्दोच्चभगण का ज्ञान हो जायगा ॥१७॥

मङ्गलादिग्रहाणां पातभगणानाह ।

नवकुनगाष्ट कुवेदशरेषु श्रुतिहरिणाङ्कमधीमतिनन्दाः ।
शरशशिखिधीरस रामरसाश्र द्विपकृतमेन्दुरसाङ्कशशाङ्काः ॥१८॥
जलधिगजर्त् नखा, यमशून्य द्विनवगुणा, द्विकृतेन्दुगुणाश्च ।
बुधसित कुजसुरेज्य शनीनां कमलभवायुषि पातमसङ्घाः ॥१९॥

वि भा —कमलभवायुषि (ब्रह्मायुर्दाये) बुधसितकुजसुरेज्यशनीना (बुध-शुक्रमङ्गल-गुरुशनैश्चराणाम् एते क्रमश पातभसाङ्घा (पातभगणा) भवन्ति यथा नवकुनगाष्ट कुवेदशरेषु श्रुतिहरिणाक मधीमतिनन्दा (९५५२७१४५५४१८७१९) शरशिखिधीरस रामरसाश्रद्विपकृतमेन्दुरसाक शशाका (१९६१२७४८०६३६५५५) जलधिगजर्त् नखा (२०६८४) यमशून्यद्विनवगुणा (३९२०२) द्विकृतेपुगुण (१५४२)

ब्रह्मा की आयु मे बुध, शुक्र, मङ्गल, गुरु और शनैश्चर इन सब के निम्नलिखित पात भगण होते हैं। जैसे—

बुधपात भगण=६५५२७१४५५४१८७१६
शुक्र „ „ =१६६१२७४८०६३६५५५
मङ्गल „ „ =२०६८४
गुरु „ „ =३६२०२
शनि „ „ =१५४२

उपपत्ति ।

पृष्ठाभिप्रायिक शरज्ञानादगर्भीयशर ज्ञात्वा तदभावस्थले यो हि गणितागत-मन्दस्पष्टग्रह स एव चक्रशुद्ध पात स्यात्। बुधशुक्रयो पातभगणेऽङ्काधिक्यदर्शना-ल्लाघवार्थं तत्केन्द्रभगणान् तत्र विशोध्य पातभगणत्वेन प्राचीना स्वीकुर्वन्ति। तत एव कारणात् "मन्दस्फुटात्खेचरत स्वपातयुक्तादित्यादिना शरसाधनार्थं-केन्द्रकरणे मध्यम रवि मन्दस्पष्ट शुक्रयोरन्तररूपेण मन्दफलेन विपरीत-सस्कृत-शीघ्रोच्चस्थाने यो हि शर स एव सर्वत्र भवत्यतो बुध शुक्र शराभावस्थाने मन्द-फलव्यस्त सस्कृतशीघ्रोच्च द्वादशशुद्ध पात स्यात्। एव द्वितीयपर्ययेऽपि, ततोऽ-नन्तर मन्दोच्चभगणोपपत्तिवदत्राप्युपपत्त्या भगणा आनेतव्या इति।

वस्तुतो ब्रह्मायुषि भगणकथनमेव व्यर्थ यत कल्पे एव सर्वेषा भगणपूर्त्ति-र्भवति कल्पा (ब्रह्मदिना) नन्तर सर्वेषा ग्रहाणा लयो भवति तेनानेककल्पाना भगणकथन निरर्थकमेवातो भास्कर आक्षिपति यथा —

यत सृष्टिरेषा दिनादौ दिनान्ते लयस्तेषु सत्स्वेव तच्चारचिन्ता।
अतो युज्यते कुर्वते ता पुनर्येऽप्यसत्स्वेषु तेभ्यो महद्भ्यो नमोऽस्तु ॥

हि भा —पृष्ठाभिप्रायिक शरज्ञान से गर्भीय शर जान कर उसके अभावस्थान मे जो गणितागत मन्दस्पष्ट ग्रह होते हैं वही चक्रशुद्ध (१२-पात) पात होता है। बुध और शुक्र के पातभगण मे अङ्को के अधिक होने के कारण गणितलाघवार्थ उनके केन्द्र भगण को उसमे घटा कर पात भगण प्राचीनाचार्य स्वीकार करते हैं। उसी कारण से "मन्दस्फुटात्खेचरत इत्यादि प्रकार से" शरसाधनार्थ केन्द्र के लिये मध्यम रवि स्पष्ट शुक्रा-न्तर रूप मन्दफल करके विपरीत सस्कृत शीघ्रोच्चस्थान मे जो शर होगा वही सब जगह होता है इसलिये बुध और शुक्र के शराभाव स्थान मे मन्द फल व्यस्त सस्कृत शीघ्रोच्च को बारह राशि मे घटाने पर पात होता है। इस तरह दूसरे पर्यय मे भी पातज्ञान करना चाहिये। उसके बाद रवि मन्दोच्च भगणोपपत्ति के तरह यहा भी पात भगण ज्ञान होता है ॥ १८-१६ ॥

ब्रह्मा की आयु मे भगण पाठ करना ही व्यर्थ है क्योंकि कल्प (१ ब्रह्मा-के दिन) के बाद सब ग्रहों का लय हो जाता है। कल्प मे ही सब के भगणो की पूर्त्ति होती है। इसलिए अनेक कल्पों का भगण कहना व्यर्थ है अत भास्कराचार्य ने आक्षेप किया है। यथा

यत सृष्टिरेषा दिनादौ दिनान्ते इत्यादि।

स्वशीघ्रनीचोच्चक वृत्तपर्ययैर्हृतावशिष्टाः खगपातपर्ययाः।
ज्ञशुक्रयोस्तच्चल केन्द्र संयुति वदन्ति पातानथवा मनीषिणः ॥ २० ॥

वि भा —स्वशीघ्रनीचोच्चक वृत्तपर्ययैः (स्व-शीघ्रोच्च-पातादि-भगणैः) खगपातपर्ययाः (ग्रहभगणादि-पातादिका) साध्याः हृतावशिष्टाः (भगणान् त्यक्त्वा शेषाः राश्यादिका ग्राह्याः) बुध-शुक्रयोः पाते तच्चलकेन्द्र संयुति (शीघ्र-केन्द्र योग) कृत्वा तदा मनीषिणः (पण्डिताः) पातान् (वास्तव पातान्) वदन्ति ॥ बुध शुक्रयोः पातविषये भास्करोऽप्येवमेव कथयति, यथा
ये चाऽत्र पातभगणाः पठिता ज्ञभृग्वोस्ते शीघ्रकेन्द्रभगणैरधिका यत स्युरिति ॥

हि. भा —अपने अपने शीघ्रोच्च पातादि भगणो द्वारा ग्रहों के भगणादि पातो का साधन करना चाहिये। उनमें भगण को छोड कर राश्यादि का ग्रहण करना चाहिये। बुध और शुक्र के पातो मे उनके शीघ्र केन्द्र जोडने से उनके वास्तव पात होते हैं, ये बातें पण्डित लोग कहते हैं बुध और शुक्र के पात के विषय मे भास्कराचार्य भी ऐसे ही कहते हैं। यथा येचाऽत्र पातभगणा इत्यादि ॥२०॥

ग्रन्थकार स्वजन्मसमय ग्रन्थकालञ्च कथयति।

शाकेन्द्र कालादभुज शून्य कुञ्जरैरभूदतीतैर्मम जन्महायनैः।
अकारि राद्धान्तमितं स्वजन्मनो मया जिनाब्दैर्द्यु सदामनुग्रहात् ॥ २१ ॥

वि भा —शाकेन्द्रकालात् (शकारम्भत) भुजशून्यकुञ्जरैः (८०२) हायनैः (वर्षैः) अतीतैः (गतैः) मम जन्माभूत् (अर्थाच्छकारम्भात्पर ८०२ वर्षेषु व्यतीतेषु मम जन्माभूत्) द्यु सदा (ग्रहाणा) अनुग्रहात् (कृपात) स्वजन्मन (स्वजन्मसमयात्) जिनाब्दैः (चतुर्विंशतिवर्षैः) इतैः (गतैः) अर्थात् (जन्मसमयात् २४ वर्षेषु व्यतीतेषु) मया राद्धान्त (सिद्धान्त) अकारि (कृतम्)।

इति वटेश्वरसिद्धान्ते मध्यमाधिकारे भगणनिर्देशनामक प्रथमाध्याय समाप्तः।

हि भा —शकवर्षारम्भ से ८०२ इतने वर्ष बीतने पर मेरा जन्म हुआ, अपने जन्म के समय से चौबीस वर्ष बीतने पर ग्रहों की कृपा से मैंने इस सिद्धान्त की रचना की ॥ २१ ॥

इति वटेश्वरसिद्धान्त मे मध्यमाधिकार म भगण निर्देश नामक
प्रथमाध्याय समाप्त हुआ ॥



मध्यमाधिकारस्य

द्वितीयाध्याये

मानविवेकः

जलधर रस पञ्चक्ष्माभृदग्नि द्विपक्ष-
द्विपक शरशशाङ्का भोदयाः स्युर्युगेऽमी ॥
निज भगण विहीना खेचरस्योदया' प्राक्
दिनकृदुदय राशिः सावनो भूदिनाख्यः ॥ १ ॥

वि भा —एकस्मिन् युगेऽमी "१५८२२३७५६४" एतावन्तो भोदया (नाक्षत्र-दिनानि) स्युरिति ते भोदया खेचरस्य (ग्रहस्य) निज भगणविहीना सन्त , तदुदया (ग्रहसावनदिनानि स्यु , दिनकृदुदयराशि (सूर्योदयसमूह) सूर्यसावन , स एव भूदिनाख्य कुदिन सज्ञय ।

उपपत्ति —

प्रथमदिने उदयकाले क्रान्तिवृत्ते नक्षत्रेण साक सूर्योदयो दृष्ट पुन द्वितीयदिने नक्षत्रोदयानन्तर सूर्योदयो दृष्टोऽतो नाक्षत्रैकदिने सावनदिनैकज रवि गति कलोत्पन्ना सुयुक्त एक सावनान्तर्गत नाक्षत्रीय कालो भवेद्यथा —

१ नाक्षत्र दिन + रविगतिकलोत्पन्नासु=१ सावन दिनान्त पाति नाक्षत्र-काल , एव दिनद्वयस्य २ नाक्षत्रदिन+ २ दिनज रविगति योगासु=२ सावन दिनान्त पाति नाक्षत्रका एव यस्मिन्निष्टदिने नाक्षत्रकालोऽपेक्षितस्तद्दिन-सख्यक नाक्षत्र दिनमिष्ट दिन गतियोग कलासु युक्त तदेष्ट दिनान्त पाति नाक्षत्र-कालो भवेदिति नियमादेकस्मिन् वर्षे नाक्षत्रकाल कियान् भवेदस्य विचार क्रियते। वर्षान्त पाति सावनसख्या तुल्ये नाक्षत्रदिने-एकवर्षसम्बन्धि रविगतियोगो द्वादशराशिसमोऽर्थात्क्रान्तिवृत्तमेवातस्तदुत्पन्नासु नैकनाक्षत्रदिनेन युक्तस्तदा वर्षान्त पाति नाक्षत्रदिनान्यर्थाद्वर्षान्त पाति भभ्रमा स्यु.। वर्षान्त पाति सावनस + १=वर्षान्त पातिभभ्रम ततोऽनुपातेन" यद्येकस्मिन् वर्षे वर्षान्त पातिभभ्रमस्तदा युगवर्षे किमित्यनेन" युगे भभ्रमा =

(वर्षान्त पातिसावनस + १) युगवर्ष=वर्षान्त पातिभभ्रम × युगवर्ष
=वर्षान्त पातिसावनस × युगवर्ष +युगवर्ष =युगसावनस +युगवर्ष =
युगभभ्रम=युगकुदिन+युगवर्ष =१५८२२३७५६४
अथ युगभभ्रम=युगकुदिन+युगवर्ष पर रवियुगभगण=युगवर्ष
∴ युगभभ्रम=युगकुदिन+युग रविभगण

ततः युगभभ्रम—युगरविभगण=युगकुदिन=युगरविसावन दि
एवमेव युगभभ्रम—युगग्रहभगण=युगग्रहकुदिन

अत उपपन्नम् ।

हि भा.—एक युग मे १५८२२३७५६४ इतने नाक्षत्र दिन होते हैं, युगभभ्रम मे युगग्रह, भगण घटाने से युगग्रह कुदिन होते हैं, युगरवि सावन-युगकुदिन संज्ञक है ॥ १ ॥

उपपत्ति ।

प्रथम दिन उदयकाल मे क्रान्तिवृत्त मे नक्षत्र के साथ रवि का उदय देखा गया, दूसरे दिन नक्षत्रोदय के बाद सूर्योदय देखा गया, इसलिये एक नाक्षत्र दिन मे एक सावन दिन सम्बन्धी रविगति कालोत्पन्नासु जोडने से एक सावनान्तर्गत नाक्षत्र दिन होगा, यथा

१ नाक्षत्रदिन+रविगति कलोत्पन्नासु=१ सावनान्तर्गत नाक्षत्रकाल, एव दो दिनो मे २ नाक्षत्रदिन+२ दिन सम्बन्धी गति योगासु=२ सावन दिनान्तर्गत नाक्षत्रकाल, इस तरह जिस इष्ट दिन मे नाक्षत्रकाल का प्रयोजन हो उस इष्टदिन सख्यक नाक्षत्रदिन मे इष्टदिन सम्बन्धी गति योगकला सम्बन्धी असु जोडने से इष्टदिनान्तर्गत नाक्षत्रकाल होगा। इस नियम से एक वर्ष मे नाक्षत्र काल कितने होगे इसका विचार करते हैं। वर्षान्तर्गत सावन सख्या तुल्य नाक्षत्र दिनो में एक वर्ष सम्बन्धी रविगतियोग १२ राशि के बराबर होता है अर्थात् क्रान्तिवृत्त के बराबर होता है इसलिये एतदुत्पन्नासु प्रमाण एक नाक्षत्रदिन होता है, "अत १ वर्षान्तर्गत सावन सख्या मे एक जोडने से एक वर्षान्तर्गत भभ्रम होगा यथा १ वर्षान्त-पाति सावनस+१=१ वर्षान्त-पाति भभ्रम, अब अनुपात से युग मे भभ्रम लाते हैं यथा एक वर्ष मे एक वर्षान्त-पाति भभ्रम पाते हैं तो युग वर्ष मे क्या इस अनुपात से युग भभ्रममागया, युगभभ्रम$=\frac{(१\text{वर्षान्त पातिमावनम}+१)\text{युगवर्ष}}{१}$ = १ वर्षान्त पाति-भभ्र × युगव

= वर्षान्त-पाति सावनस × युगवर्ष + युगवर्ष = वर्षान्त-पातिभभ्रम × युगवर्ष =
युग सावनम + युगवर्ष = युगकुदिन + युगवर्ष = युगभभ्रम
= १५८२२३७५६४,

पहले के स्वरूप से युगकुदिन+युगवर्ष = युगभभ्रम पर रवियुगभगण = युगरविवर्ष

∴ युगकुदिन + युगरविभगण = युगभभ्रम

∴ युगभभ्रम — युगरविभगण = युगकुदिन = युगरविसावन

इसी तरह युगभभ्रम — युगग्रहभगण = युगग्रहकुदिन

इससे आचार्योक्त पद्य उपपन्न हुआ ॥ १ ॥

भगण विवरशिष्टा ये द्वयोस्तद्वियोगा
रविशशि भगणोत्थास्ते शशाङ्कस्य मासाः ।
दिनकरभगणा ये तानि वर्षाणि भानोः
ऋतुदिन निकरस्था मोदयाः प्राक् प्रदिष्टाः ॥ २ ॥

वि भा —रविशशिभगणोत्था (रविचन्द्रभगणोत्पन्ना) ये वियोगा (अन्तराणि) ते द्वयो (रविचन्द्रयो) भगणविवरशिष्टा (भगणान्तरविशेषा) शशाङ्कस्य मासा (चान्द्रमासा) भवन्त्यर्थाद्युग-रविचन्द्रभगणान्तरतुल्या युग-चान्द्रमासा भवन्तीति। ये दिनकर भगणा (युगरविभगणा) भानो (सूर्यस्य) तानि वर्षाणि (सौरवर्षाणि) अर्थाद्युगे ये रविभगणास्तत्तुल्यान्येव रविवर्षाणि (सौरवर्षाणि) भवन्ति तैं सौरवर्षे ऋतुदिननिकरस्था अर्थादृतुमास-दिनादीना ज्ञान भवति, भोदयास्तु प्राक् प्रदिष्टा (पूर्वं कथिता)।

अत्र "भगण-विवरशिष्टा" इति शोभन न प्रतिभाति ।

उपपत्ति

यथामान्तकाले रविचन्द्रयोरन्तराभाव (अमान्ते रविचन्द्रयोरेकत्र स्थितत्वात्) तदनन्तर रविचन्द्रयोश्चलनेन चन्द्रगतेराधिक्यात्पूर्वामान्तविन्दौ गत्वाऽग्रे पुनरपि चन्द्रो रविणा सहयोग करिष्यति तदा द्वितीयामान्तकालो भवेत्, प्रथमामान्ताद् द्वितीयामान्त यावच्चान्द्रमास । तत्र चन्द्रगति =१२ राशि+रविगति=१ च भगण+रविगति, अत एकस्मिंश्चान्द्रमासे रविचन्द्रगत्यन्तरम्=चग—रविग=१ चभगण । ततोऽनुपातो यद्येकचन्द्रभगणतुल्य रविचन्द्रयोर्गत्यन्तर यदा भवेत्तदैकश्चान्द्रमासस्तदा युगीयगत्यन्तरेण (युगभगणान्तरेण) किं समागच्छन्ति रविचन्द्रभगणान्तरतुल्याश्चान्द्रमासा इति ।

युगे यावन्तो रविभगणास्तावन्त्येव युगवर्षाणि=युगसौरवर्षाणि । अन्यत् सर्वं स्फुटमेवेति ॥ २ ॥

हि भा —रवि और चन्द्र के युग में जो भगण है उनका अन्तर तुल्य युगचान्द्रमास होता है । युग में जितने रविभगण हैं उतने ही युग रविवर्ष वा युग सौरवर्ष होने हैं, उसीसे ऋतु, मास, दिनो का ज्ञान होता है और भभ्रम तो पहले कहे जा चुके हैं ॥२॥

उपपत्ति ।

अमान्त काल म रवि और चन्द्र एक जगह रहते हैं इसलिये वहा (अमान्तकाल मे) उनका अन्तराभाव होता है, बाद मे दोनो के चलने से चन्द्रगति के अधिक होने के कारण चन्द्र पूर्व स्थान में (अभीष्ट विन्दु म) जाकर रवि के साथ योग करेंगे तो फिर दूसरा अमान्तकाल होगा, प्रथमामान्त से द्वितीयामान्त तक एक चान्द्रमास है, इसलिये एक चान्द्र-मास म चन्द्रगति=१२ राशि+रविगति=१ चभगण+रविगति ∴ चगति—रविगति =१ भगण

इस पर से अनुपात करते हैं कि एकभगण तुल्य रविचन्द्र गत्यन्तर में एक चान्द्र-मास पाते हैं तो युगीय रविचन्द्र गत्यन्तर (युगीय रविचन्द्र भगणान्तर) में क्या, इस अनुपात से रविचन्द्र के युगभगणान्तर तुल्य युग चान्द्रमास आते हैं आचार्योक्त सिद्ध हो गया। युग में जितने रविभगण हैं उतने ही युग सौरवर्ष हैं यह स्पष्ट है। इति ॥ २ ॥

स्वग्रहोच्चभगणान्तरं जगुः स्वोच्चनीच परिवर्त्त सञ्ज्ञकम् ।
मासराशि विवरं शशीनयोर्यत्तदुक्तमधिमाससञ्ज्ञकम् ॥ ३ ॥

वि भा —स्वग्रहोच्चभगणान्तर (ग्रहभगणोच्च भगणयोरन्तर) स्वोच्चनीच-परिवर्त्तसञ्ज्ञकम् (शीघ्र केन्द्रभगण मान) अर्थात् युगे उच्चग्रह भगणान्तरतुल्या केन्द्र भगणा भवन्ति, तथा शशीनयो (चन्द्रसूर्ययो) मासराशिविवरं यत्तदधिमास-सञ्ज्ञकमर्थाच्चान्द्रमाससौरमासयोरन्तरमधिमास-सञ्ज्ञकमिति ॥

उपपत्ति ।

मध्यग्रह — मन्दोच्च = मन्द केन्द्र
तथा मध्यग्र$_1$ — मन्दोच्च$_1$ = मध्यकेन्द्र$_1$ अनयोरन्तरम् = मध्यगति — मन्दोच्चगति = मन्दकेन्द्रगति ।

ततो युगे मध्यग्रहभगण — मन्दोच्चभगण = मन्दकेन्द्रभगण
एवमेव शीघ्रोच्चभगण — शीघ्रग्रहभगण = शीघ्रकेन्द्रभगण

अधिमासोपपत्ति ।

अर्थैकसावन दिने चन्द्रगति = ७९०′ । ३५″
रविगति = ५९′ । ८″ अनयोरन्तरम् = ७३१′ २७″
= १२° । ११′ । २७″

अथ यत चग — रविग = १२° = १ तिथिरत सावन दिन पूर्त्तिकालात् प्रागेव चान्द्रदिनपूर्त्तिरिति ।

∴ चादि < सादि < सौदि, सौदि = ६०′

६० कला रविगतिर्यदा भवेत्तदा सौरदिनपूर्त्ति । सावनदिन पूर्त्तिस्तु ५९′ । ८″ एतत्तुल्यरविगतावेवातो दिनसङ्ख्यया सौदि < चादि
∴ युग चान्द्रमास — युग सौरमास = युगाधिमास ।

हि भा – ग्रह और उच्च का भगणान्तरतुल्य केन्द्रभगण होता है और चान्द्रमास सौरमास का अन्तर अधिमास (मलमास) कहलाता है ॥३॥

उपपत्ति

ग्रह और उच्च का अन्तर केन्द्र कहलाता है ।

मध्यग्र — मन्दोच्च = मन्दकेन्द्र
मध्यग्र$_1$ — मन्दोच्च$_1$ = मन्दकेन्द्र$_1$ दोनों के अन्तर करने से

मध्यगति—मन्दोच्चगति = मन्दकेन्द्रगति, युग मे मध्यग्रहभगण—मन्दोच्चभगण = मन्द के भगण, इसी तरह शीघ्रोच्चभगण—मन्दस्पष्टग्रहभगण = शीघ्रकेन्द्रभगण ॥

अधिमास की उपपत्ति

एक सावन दिन मे चन्द्रगति = ७९०′। ३५″
रविगत = ५९′ । ८″ दोनो के अन्तर करलेसे ७३१′ । २७″
= १२° । ११′ । २७″

लेकिन जब चन्द्रगति—रविगत = १२° तब एक तिथि होती है, इसलिये सावन दिन पूर्तिकाल से पहले ही चान्द्रदिन पूर्तिकाल सिद्ध हुआ, चादि < सादि < सौदि सौदि = ६०, अर्थात् रवि की गति जब ६०, होती है तो एक सौर दिन की पूर्ति होती है, और सावन दिन की पूर्ति ५९, । ८, इतनी रविगति मे होती है, इसलिए सख्या करके सौदिस < चादिस युगचामास—युसौरमास = युगाधिमास सिद्ध हुआ ॥ ३ ॥

क्षितिशशिनोर्दिवसान्तरमाहुस्तिथिविलयान् नृसमा रविवर्षम् ।
पितृदिवस विधुमासमिनाब्दं दितितनयामरवासरसञ्ज्ञम् ॥ ४ ॥

वि भा—क्षितिशशिनोर्दिवसान्तर (सावनदिन चान्द्रदिनयोरन्तर) तिथि विलयान् तिथिक्षय—अवम वा रविवर्ष (सौरवर्ष) नृसमा (मानववर्ष) विधुमास (चान्द्रमास) पितृदिवस, इनाब्द (सौरवर्ष) दितितनयामरवासर सञ्ज्ञम् (राक्षसदेवयोर्दिनम्) आचार्या जगु । अर्थाच्चान्द्र सावन दिनयोरन्तरमवमदिनम् सौरवर्ष तुल्य मानववर्ष पितृदिन चान्द्रमासतुल्य, सौरवर्ष तुल्य देवराक्षसयोर्दिनमाचार्या कथयन्तीति ॥४॥

उपपत्ति —

भूकेन्द्राच्चन्द्रकेन्द्रगत सूत्र पितृत्रिज्यागोले यत्रलग्न तत्र कल्पितश्चन्द्र पितृ ख म०प वा (तद्रूर्ध्वभागस्थाशिरिणाम्) तज्जनित नवत्यशवृत्त तत्क्षितिजम् पितृ ए मध्ये यदा रविर्गच्छे तदाऽमान्तकालस्तत्रैव चन्द्रस्य स्थितत्वात् । ऊर्ध्वं ख स्वस्तिकगतेरवौ दिनार्धं भवति तेन सिद्ध यदमान्तकाले पितृदिनार्ध भवति, एव यदा द्वितीयामान्तकालस्तदा पुन पितृदिनार्धं भवेत्तदा प्रथमामान्ताद् द्वितीयामान्त यावच्चान्द्रमास = प्रथम-द्वितीय पितृ-दिनार्ध कालान्तर, पर प्रथम द्वितीय पितृ दिनार्धकालान्तर = प्रथम द्वितीयसूर्योदयान्तरकाल = १ अहोरात्र सिद्ध यत्पितृणामहोरात्रम् = एकचान्द्रमास ।

अत आचार्योक्त सिद्धम् । परमाचार्योक्त दिनार्धे काचित्त्रुटिरस्ति, यथा अथ पितृक्षितिजस्थे रवौ तदुपरि कल्पित चन्द्रप्रोतमिष्टवृत्त कल्पित चन्द्रोपरि कदम्ब प्रोतवृत्तञ्च कृत तदा क्रान्तिवृत्त कदम्ब प्रोतवृत्तेष्ट वृत्त जनित जात्यत्रिभुजे कर्णचापम् = ९०, कोटि चापम् = ९० अतस्तदुदयास्तकालयो सदैव रवि-

चन्द्रान्तरं=९० भवेदिति सिद्धम् (कल्पित चन्द्रगत कदम्ब प्रोतवृत्त क्रान्तिवृत्तयो योगे बिन्दोश्चन्द्रत्वात्) अत. कृष्णपक्षाष्टम्यर्धे (सार्धसप्तम्याम्) उदय शुक्लपक्ष सार्धसप्तम्यामस्तो ज्ञेय । यदा र~च=६ राशि तदा पूर्णिमाया रात्र्यर्धम् । तस्मिन् अमान्ते च दिनार्धम् । परमेव दिनरात्र्यर्धे तदैव यदा कल्पित चन्द्रकेन्द्रगत कदम्ब-प्रोतवृत्त याम्योत्तरवृत्तमेव भवेत् । अतस्तस्य क्वाचित्कत्वात् याम्योत्तरवृत्तात् कल्पितचन्द्रगत कदम्ब प्रोतवृत्त क्रान्तिवृत्तं पूर्वे पश्चिमे वा लगेत् तदेव चन्द्रस्थानम् । तस्मिन् स्थाने यदा रविरागच्छेत्तदाऽमान्तकालोऽत्र अमान्तकाल±आयनदृक्कर्म-कलासु=वास्तवदिनार्धम् । पूर्वं दिनार्धसम्बन्धेन यत्पितॄणामहोरात्र प्रदर्शित तन्न समीचीन दिनार्धकालस्यावास्तवत्वात् ॥४॥

हि.भा —चान्द्रदिन सावन दिनो का अन्तर क्षयदिन होता है। सौरवर्षतुल्य मानववर्ष होता है, पितरो का दिन (अहोरात्र) एक चान्द्रमास के बराबर होता है। और देव तथा राक्षस का अहोरात्र एक सौरवर्ष के बराबर होता है।

उपपत्ति ।

भूकेन्द्र से चन्द्रकेन्द्रगत सूत्र पितृ त्रिज्या गोल मे जहा लगता है वहा पितरो का खस्वस्तिक या कल्पित चन्द्र है। उसको केन्द्र मानकर नवत्यंशव्यासार्ध से जो वृत्त होगा वही पितृक्षितिज वृत्त है। पितृ खस्वस्तिक मे जब रवि आयगे तब पितरो का दिनार्ध होगा वही अमान्तकाल भी है इससे सिद्ध होता है कि पितरो का दिनार्धकाल अमान्त मे होता है, एव जब द्वितीय अमान्त होगा तब फिर पितरो का दिनार्ध होगा तब

प्रथमामान्तकाल से द्वितीयामान्तकाल तक काल=१ चन्द्रमास=प्रथम पितृ दिनार्ध-*काल द्वितीयपितृदिनार्धकालान्तर*

पर प्रथम द्वितीयदिनार्धकालान्तर=प्रथमद्वितीयसूर्योदयान्तरकाल=अहोरात्र

सिद्ध हुआ कि पितरो का अहोरात्र प्रमाण (पितृदिन) चान्द्रमास के बराबर होता है ॥

इनमे पितृदिनार्धकाल ठीक नही है यथा—

पितृक्षितिज मे जब रवि है तब रविकेन्द्र और कल्पित चन्द्रकेन्द्रगत दृग्वृत्त कर देना, कल्पित चन्द्र के ऊपर कदम्ब प्रोतवृत्त कर दीजिये तब क्रान्तिवृत्त कदम्ब प्रोतवृत्त-दृग्वृत्तो से जो चापीय जात्य त्रिभुज बनता है उसमे कर्णचाप=९० कोटिचा=९० . पितरो के उदय और अस्तकाल म र~च=९०=रविचन्द्रान्तरांश, बराबर होगा, · कृष्णपक्ष की साढे सप्तमी मे उनका उदय होता है शुक्लपक्ष की साढे सप्तमी मे अस्त होता है जब र~च =६ राशि तब पूर्णिमा मे रात्र्यर्ध (दोपहररात्रि) होता है। अमान्तकाल म दिनार्ध होता है, लेकिन इस तरह दिनार्ध और रात्र्यर्ध तब ठीक होगा जब कल्पित चन्द्रकेन्द्रगत कदम्ब प्रोत-वृत्त याम्योत्तरवृत्त ही होगा। ऐसी स्थिति कभी हो सकती है इसलिए कल्पितचन्द्र केन्द्रगत कदम्ब प्रोतवृत्त क्रान्तिवृत्त मे याम्योत्तरवृत्त से पूर्व या पश्चिम मे लगेगा वही चन्द्रस्थान है। वहा जब रवि आजायगे तो अमान्तकाल होगा, अत अमान्तकाल±आयनदृक्कर्मकलासु =वास्तवदिनार्ध, दिनार्धकाल के अवास्तविक होने के कारण पितरो का अहोरात्र प्रमाण भी ठीक नही है यह सिद्ध हुआ ॥४॥

अथ देवासुरदिनोपपत्तिः

उत्तरध्रुवो देव खस्वस्तिकम् । दक्षिणध्रुवश्च राक्षस खस्वस्तिकम् । ध्रुवोत्पन्नवत्यशवृत्त (नाडीवृत्त) तयो क्षितिजम् । तदुत्तरे रविर्यदा मेपात्कन्यान्त यावत्तावद्देवदिनमसुरनिशा च, एव नाडीवृत्ताद्दक्षिणे रवौ तुलादेर्मीनान्त यावत्तावद्देव निशाऽसुरदिन च भवति । अत सौरवर्षतुल्य रविचक्रभोगकालमान देवासुराणामहोरात्र भवतीति । वस्तुतस्तु १ चक्रभोगकाल—तयोर्द्युरात्रान्तकालिकायनगत्युत्पन्नकाल=वास्तव द्युरात्रम् परमाचार्येणायनगत्युत्पन्नकाल= ० कल्पितोऽस्तत्जन्या त्रुटिरत्र ज्ञेयेति ॥४॥

हि भा—देवो का ऊर्ध्व खस्वस्तिक उत्तरध्रुव है । राक्षसो का ऊर्ध्वखस्वस्तिक दक्षिण ध्रुव है । नाडीवृत्त दोनो (देव, राक्षस) का क्षितिजवृत्त है, जब रवि मेषादि से कन्यान्त तक रहेंगे तब नाडीवृत्त से ऊपर होने के कारण ६ महीनो का देव दिन होगा, और ६ महीनो की राक्षसरात्रि होगी । इसी तरह जब रवि तुलादि से मीनान्त तक रहेंगे तो ६ महीनो की देवरात्रि और ६ महीनो का राक्षसदिन होगा ।

देवा और राक्षसो का अहोरात्रमान=दिन+रात्रि=१ रविभगणभोगकाल
=१ सौरवर्ष

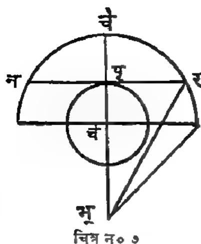
अत आचार्योक्त सिद्ध हुआ ।

पर यहाँ १ चक्रभोगकाल—अहोरात्रान्तकालिक अयनांशगत्युत्पन्नकाल=वास्तव-अहोरात्रमान

लेकिन आचार्य ने ऋणखण्ड को शून्य मान लिया है । इसलिये एक सौरवर्ष तुल्य देव, राक्षस का" अहोरात्रमान जो कहा गया है सो स्थूल है, यह सिद्ध हुआ ॥४॥

पूर्वोपपत्तौ निखित यत् कृष्णपक्षसार्धसप्तम्या पितृणामुदयकाल शुक्लपक्षसार्धसप्तम्यामस्तकालो भवति । परमिति न भवति यथा—

भूकेन्द्राच्चन्द्रकेन्द्रगता रेखा वर्धिता यत्र चन्द्रपृष्ठे लग्ना तद्बिन्दुतश्चन्द्रगर्भक्षितिजसमानान्तरधरातल कार्य तत्पितृपृष्ठक्षितिजधरातलम् । एतद्यत्र रविकक्षाया लगति तत्र यदि रविर्भवेत्तदा पितृणामुदयकाल स्यात् । रविबिन्दौ भूकेन्द्राद्रेखा नेया तदैक त्रिभुजमुत्पन्न, भूकेन्द्राद्रवि यावद्रविकर्ण एको भुज । भूकेन्द्राच्चन्द्रपृष्ठ यावत् (चन्द्रकर्ण+चन्द्रव्यासार्ध) द्वितीयो भुजः । पृष्ठक्षितिजधरातले रवितश्चन्द्रपृष्ठ यावत्तृतीयो भुजोऽस्मिन् जात्यत्रिभुजेऽनुपात क्रियते, यदि रविकर्णेन त्रिज्या लभ्यते तदा (चक+चव्या $\frac{१}{२}$)ऽनेन किमित्यनुपातेन समागता सितवृत्तीयान्तर कोटिज्या तत्स्वरूपम्$=\frac{\text{त्रि० (चकर्ण+चव्या } \frac{१}{२}\text{)}}{\text{रविक}}$



चित्र न० ७

पृ=चन्द्रपृष्ठस्थानम्।
च =चन्द्रकेन्द्रम् ।
भू =भूकेन्द्रम्।
रपृन=पितृपृष्ठक्षितिजम् ।
च₁=रविगोले परिणतचन्द्र ।
रच₁न= रविगोलीय सितवृत्तम्।
र= रवि ।
भूर= रविकर्ण ।
भूपृ= चन्द्रक+च व्या $\frac{१}{२}$।
भूच =चन्द्रकर्ण ।
च पृ=चन्द्र व्या $\frac{१}{२}$

अस्याश्चाप नवतेर्विशोध्य तदा रविचन्द्रयो सितवृत्तीयान्तराशा भवेयु ९०—चाप=सितवृत्तीयान्त-राशास्ततो भक्ता व्यर्कविधोर्लवा-यमकुभिरित्यादिना

गततिथि $=\frac{९०-\text{चाप}}{१२}=७\frac{१}{२}-\frac{\text{चाप}}{१२}$

एतेन सिद्ध यद्यदा पितृणामुदय कालस्तदा तत्कालीनतिथिप्रमाणम् $=७\frac{१}{२}-\frac{\text{चाप}}{१२}$ तेन कृष्णपक्ष सार्ध-सप्तम्यामुदयो न भवितुमर्हति किन्तु सार्धसप्तम्या चापस्य द्वादशाश विशो धनेन यद्भवति तत्रोदयो भवेत्। एव-मस्तेऽपि विचार कार्य । एतावता "कृष्णे रवि पक्षदलेऽभ्युदेत्यादि" भास्करेण यदुक्त तन्न समीचीनमिति सिद्धम् उपर्युक्तखण्डन म म सुधा-करद्विवेदिना कृतमस्ति।

परमनापि त्रुटिरस्ति यत उपर्युक्तोपपत्तौ सितवृत्तीयान्तरवशेन गततिथि-प्रमाणमानीत तन्नोचितम्, क्रान्तिवृत्तीय रविचन्द्रान्तरवशेन गततिथिप्रमाण समुचित भवितुमर्हति। तर्हि वास्तवानयन कथ भवेदिति विचार्यते। पूर्वयुक्त्या सितवृत्तीयान्तर ज्ञानमस्ति तदा सितवृत्तीयान्तर क्रान्तिवृत्तीयान्तर शरचापैर्य-स्चापीय जात्यत्रिभुज तत्र कर्णभुज-चापयोर्ज्ञानात्

भुजकोटिज्या × कोटिकोटिज्या = त्रि × कर्णकोज्या

= शरकोज्या × क्रावृत्तीयान्तरकोज्या = त्रि × सितवृत्तीयान्तरकोज्या

$\therefore$ $\frac{\text{त्रि} \times \text{सितवृअ कोज्या}}{\text{शरकोज्या}}$ = क्रावृत्तीयान्तरकोज्या, अस्याश्चाप नवतेर्विशोध्य

तदा क्रान्तिवृत्तीयान्तराशा भवेयुस्ततस्तिथिज्ञान सुगममिति ॥

हि भा —पूर्व कथित उपपत्ति म कहा गया है कि कृष्ण पक्ष की साढ़ सप्तमी मे

पितरो का उदयकाल होता है और शुक्ल पक्ष की साढे सप्तमी मे अस्तकाल होता है लेकिन यहठीक नही है। जैसे —

(क) क्षेत्र देखिये।
पृ = चन्द्रपृष्ठ स्थान
च = चन्द्रकेन्द्र।
भू = भूकेन्द्र
च₁ = रविगोल मे परिणतचन्द्र
रचन₁ = रविगोलीय सितवृ
र = रवि। भूर = रविकर्ण
भूच = चन्द्रकर्ण।
च पृ = चन्द्रव्या $\frac{१}{२}$

भूकेन्द्र से चन्द्रकेन्द्र गत रेखा को बढाने से चन्द्रपृष्ठ मे जहाँ लगती है उस विन्दु से चन्द्रगर्भ क्षितिज धरातल के समानान्तर धरातल कर देने से वह धरातल रवि कक्षा मे जहाँ लगता है वहा रवि के रहने से पितरो का उदयास्त होता है। भूकेन्द्र से उस विन्दु मे (रवि मे) रेखा ले आने से एक त्रिभुज बनता है। भूर = रविकर्ण, भूपृ = चन्द्रकर्ण + च व्या $\frac{१}{२}$ भूपृर त्रिभुज मे = अनुपात करते है

$$\frac{\text{त्रि} \times (\text{चन्द्रकर्ण} + \text{चव्या } \frac{१}{२})}{\text{रविकर्ण}} = \text{ज्या} < \text{भूरपृ} = \text{सितवृत्तीयान्तर कोटिज्या}$$

इसका चाप करने से सितवृत्तीयान्तर कोटि = चाप, नवत्यश मे घटाने से ९० — चाप = सितवृत्तीय रविचन्द्रान्तराश अब इस पर से भक्ता व्यर्कविधोर्लवा इत्यादि से गततिथि प्रमाण आ जायगा $\frac{९० - \text{चाप}}{१२} = ७\frac{१}{२} - \frac{१ \text{ चाप}}{१२}$ ६ इससे सिद्ध होता है कि जब पितरो के उदयकाल मान कर तिथ्यानयन करते हैं तो साढे सप्तमी मे $\frac{\text{चाप}}{१२}$ ऋण आता है। इसलिय 'कृष्ण पक्ष के साढे सप्तमी मे उदयकाल कहना ठीक नही है। एव शुक्ल पक्ष के साढे सप्तमी मे अस्तकाल भी कहना ठीक नही होता है। भास्कराचार्य यही बात 'कृष्ण पक्ष के साढे सप्तमी मे पितरो का उदय और शुक्ल पक्ष के साढे सप्तमी मे अस्त होता है' कहते है जिसका खण्डन उपर्युक्त रीति से म म सुधाकर द्विवेदी ने किया है। परन्तु इनके खण्डन मे भी त्रुटि है उपर्युक्त खण्डन मे सितवृत्तीय रवि चन्द्रान्तराश वश से जो तिथ्यानयन किया गया है सो ठीक नही है क्रान्तिवृत्तीय रविचन्द्रान्तराश को बारह से भाग देने से गततिथि प्रमाण ठीक होता है। तब वास्तवानयन कैसे होगा इसके लिये विचार। पूर्व युक्ति से सितवृत्तीयान्तराश जान कर सितवृत्तीयान्तराश क्रान्तिवृत्तीयान्तरांश, शर इन कर्ण, कोटि भुजचापो मे जो चापीय जात्यत्रिभुज बनता है उसमे

$$\text{भुजकोटिज्या} \times \text{कोटिकोटिज्या} = \text{त्रि} \times \text{कर्णकोटिज्या}$$

$$\text{शरकोज्या} \times \text{क्रावृअ कोज्या} = \text{त्रि} \times \text{सिवृअ कोज्या}$$

$$\frac{\text{त्रि} \times \text{सिवृअ कोज्या}}{\text{शरकोज्या}} = \text{क्रावृअ कोज्या}$$ इसके चाप को नवत्यश मे घटाने मे क्रान्ति — वृत्तीयान्तराश होगा, इस पर मे तिथ्यानयन करना चाहिय ॥ इति ॥

सिद्धान्ततत्त्वविवेके कमलाकरेण कुत्र सदोदितरविदर्शन भवेदेतदर्थं बहु प्रतिपादित-मस्ति, प्रसङ्गाद-त्रोच्यते। कस्मिन् देशे दृश्याशवशेन सदा रविदर्शन भवेदिति विचार्यते।

स्वाधोनिरक्षखस्वस्तिक स्वाध खस्वस्तिकयोरन्तरमक्षांशा । तत्र यद्य-क्षांशा = जिनांश + कुच्छन्नकला तत्राऽधोनिरक्षखस्वस्तिकादुत्तरविपरमगमन-प्रान्तविन्दुतो भूविम्बस्य स्पर्शरेखा तदूर्ध्वाधररेखाया समान्तरा तेन तयोर्योगा-भावादूर्ध्वाधररेखाया न कोऽपि तादृशो बिन्दुर्यत्स्थितो द्रष्टा सदा रविमवलोकयेत् ।

अथ यत्र अक्षांशा > जिनांश + कुच्छन्नकला तत्र परमरविगमनप्रान्त बिन्दुतोऽध खस्वस्तिक यावत् = कुच्छन्नकला । तत्र तत्परमरविगमनप्रान्त विन्दुतो भूविम्वस्य या स्पर्शरेखा साऽवश्य तदूर्ध्वाधरसूत्रेण मिलति तत्र तद्योग विन्दुगत द्रष्टु सदा रविदर्शन भवेत् ।

यतस्तत्र अक्षांशा > जिनांश + कुच्छन्नकला अतो लम्बांशा =

$$९० - \text{अक्षांश} < ९० - (\text{जिनांश} + \text{कुच्छन्नकला}) = ६६ - \text{कुच्छन्नकला}$$

उभयत्र २४ योजनेन

$$\text{लम्बांश} + २४ < ६६ - \text{कुच्छन्नकला} + २४ = ९० - \text{कुच्छन्नकला} = \text{कुच्छन्नकोटि}$$

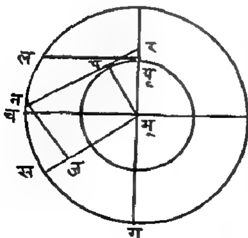
$$\text{अर्थात् लम्बांश} + २४ < \text{कुच्छन्नकोटि}$$

एतेन सिद्ध यल्लम्बांशचतुर्विंशत्यशयोर्योगतुल्यं दृश्यांशकं कुच्छन्नकोट्य ल्पकैर्यद्दृष्टिस्थान भवेत्तद्वशेन सदैव रविदर्शन भवेदिति ॥

एतावता
कुच्छन्न कोट्यल्पक दृश्यकाशोद्भवै स्वदृकचिह्नजयोजनैश्च ।
सर्वाक्षदेशेऽपि कुगर्भभूजादध स्वनद्दृश्यलवे समन्तात् ॥
अस्ति खगेन्द्राश्रित गोलमध्ये सन्दर्शन यत्तदपीह चित्रम् ।
कुच्छन्नकोट्यल्पक दृश्यकाशैरुक्त कुगर्भ क्षितिजादध स्थै ॥

कमलाकरोक्तमुपपद्यते ।

अत्रैव यदि दृश्यांशा गर्भक्षितिजादुपरिगतास्तदा कथ तदुपपत्तिरिति विचार्यते ।



चित्र न० ८

भू = भूकेन्द्रम् । पृ = भूपृष्ठ स्थानम्
लच = कुच्छन्नचापम् = नस
नच = दृश्यांशा ।
कुच्छन्न — दृश्यांश = नस — नच = चस, चग = ९०
अत ९० — चस = ९० — (कुच्छन्न — दृ) = सग = <
सभूग = < नरभू
तत पभूर त्रिभुजेऽनुपात

$\frac{\text{भूव्या}\frac{1}{2}\times\text{त्रि}}{\text{ज्या}<\text{परभू}}$ =भूर तत भूर–सूपृ =भूर–भूव्या ½=पृर= $\frac{\text{भूव्या}\frac{1}{2}\times\text{त्रि}}{\text{ज्या}<\text{परभू}}$ –भूव्या ½

= $\frac{\text{भूव्या}\frac{1}{2}\times\text{त्रि}}{\text{कुच्छन्न दृश्यांशान्तर कोज्या}}$ —भूव्या ½=पृर। एतद्वशतो दृश्यांशज्ञानमपि सुबोधमत एतावता कमलाकरोक्तसूत्रावतार ॥इति ॥४॥

ऊर्ध्वस्थिता दृश्यलवा यदि स्यु कुच्छन्न भागानधिकास्तदानीम् ।
कुच्छन्न-दृश्यांश-वियोग-कोटिज्यया हृत त्रिज्यकया विनिघ्नम् ।

कुखण्डक तत्तु कुखण्डकोन कुपृष्ठगोऽप्यूर्ध्वगदृष्टि-चिन्हम् ॥ इति ॥४॥

हि भा —सिद्धान्ततत्त्वविवेक मे कमलाकर ने कहा पर बराबर (सदा) रविदर्शन होता है इसके सम्बन्ध मे बहुत उपपादन किया है, प्रसङ्ग से यहाँ कहते हैं।

किस देश मे दृश्यांश वश करके सर्वदा रविदर्शन होता है इसके लिये विचार करते है। वहाँ अधो निरक्ष खस्वस्तिक और स्वाघ खस्वस्तिक के अन्तर अक्षांश है। वहा यदि अक्षांश=जिनांश+कुच्छन्नकला तब अधोनिरक्ष खस्वस्तिक से उत्तर तरफ रवि के परम ग्रहण प्रान्त बिन्दु से भूबिम्ब की जो स्पर्शरेखा होगी वह ऊर्ध्वाधर खस्वस्तिक गतरेखा की समानान्तर होती है। इसलिये दोनो के योगाभाव से ऊर्ध्वाधर सूत्र मे कोई भी ऐसा बिन्दु नही है जहा पर दृष्टिस्थान रख कर द्रष्टा सदा रवि को देखे।

जहा अक्षांश>जिनांश+कुच्छन्नकला वहा परमरविगमनप्रान्तबिन्दु और अधो खस्वस्तिक के अन्तर=कुच्छन्नकला अत वहा परमरविगमनप्रान्तबिन्दु से भूबिम्ब की जो स्पर्शरेखा होगी वह ऊर्ध्वाधर सूत्र के साथ अवश्य मिलेगी, उस योग बिन्दुगत द्रष्टा को बराबर रवि दर्शन होगा।

वहा अक्षांश>जिनांश+कुच्छन्नकला अत लम्बांश=(९०—अक्षांश<९०—(जि+कुक)

या लम्बांश<६६—कुच्छन्नकला दोनो मे २४ जोडने से

लम्बांश+२४<६६—कुच्छन्नकला+२४=९०—कुच्छन्नकला=कुच्छन्नकोटि

अर्थात् लम्बांश+२४<कुच्छन्नकोटि

इससे सिद्ध होता है कि कुच्छन्नकोटि से अल्प लम्बांश+२४ एतत्तुल्य दृश्यांशवश से जो दृष्टिस्थान होगा उसके वश से बराबर रविदर्शन होगा॥ इससे कमलाकरोक्त सूत्र उपपन्न हुआ।

कुच्छन्नकोट्यल्पक दृश्यकाशोद्भवं इत्यादि।

यहा यदि हृग्यास गर्भ क्षितिज से ऊर्ध्वस्थित होंगे तब उपपत्ति कैसे होगी सो दिखलाते हैं (क) क्षेत्र देखिये। भू=भूकेन्द्र। पृ=पृष्ठस्थान। नच=कुच्छन्नकला=नस। नच=हृग्यास, कुच्छन्नकला—हृग्यास=नम—नच=मच। चग=९०∴९०—सच=९० —(कुच्छन्न—हृग्यास)=मग=∠सभूग=∠नरभू

अब परभू त्रिभुज मे अनुपात करते हैं $\frac{\text{भूव्या }\frac{१}{२}\times\text{त्रि}}{\text{ज्या}\angle\text{परभू}}$=भूर∴भूर—भूपृ=पृर=भूर —भूव्या $\frac{१}{२}$

$$=\frac{\text{भूव्या }\frac{१}{२}\times\text{त्रि}}{\text{कुच्छन्न हृग्यासान्तर कोज्या}}-\text{भूव्या }\frac{१}{२}=\text{पृर}$$

इसके वश से हृग्यास ज्ञान भी सुगम है॥ ऊर्ध्वस्थिता हग्यलवा यदि स्यु इत्यादि।

इदानी बार्हस्पत्यवर्षं वर्णनं करोति।

गुरुभगणाऽऽर्कवधोऽब्दगणः स्यात्त्रिदशगुरोर्विजयाश्विनपूर्वः।
द्विगुणितपर्ययसंयुतिरुक्ता दिनकरचन्द्रमसोऽर्थनिपाताः ॥५॥

वि भा —गुरुभगणार्कवध (बृहस्पतिभगणद्वादशघात) त्रिदशगुरो (बृहस्पते) विजयाश्विनपूर्वं (विजयादिनामकषष्टि, आश्विनादिनामक द्वादश वा) अब्दगण स्यात् (वर्षसमूहो भवेत्) अर्थाद्बृहस्पतिभगणा द्वादशगुणास्तदा विजयादिनामकानि षष्टिबार्हस्पत्य वर्षाणि वा, आश्विनादिनामकानि द्वादशबार्हस्पत्य-वर्षाणि भवन्ति। तथा दिनकरचन्द्रमसो (सूर्यचन्द्रयो) द्विगुणित पर्यय-संयुति (द्विगुणित भगणयोग) अर्थनिपात (अर्थनिपातसंज्ञका) उक्ता (कथिता) अर्थात् रविचन्द्रयोर्द्विगुणित भगणयोगस्य नामार्थनिपात इति।

बृहस्पतेर्मध्यगत्यैकराशिभोगकालो बार्हस्पत्यवर्षमिति सर्वै सिद्धान्तग्रन्थकारैः प्रतिपादितोऽस्ति यथा मध्यगत्याभभोगेन गुरोर्गौरववत्सरा इति।

तथा "बृहस्पतेर्मध्यम राशिभोगात्सम्वत्सर साहितिका वदन्ति" (भास्कर) एतदादिकान्यनेकानि तत्साधकवचनानि सन्ति। अत्राचार्येण गुरुभगणा द्वादशगुणास्तदा राश्यादिकानि तत्प्रमाणानि भवन्ति, तान्येव विजयादिकानि बार्हस्पत्य-षष्टिवर्षाणि, आश्विनादिद्वादशवर्षाणि वा" कथ्यन्ते परमन्यैराचार्यै सूर्यसिद्धान्तकारादिभिरितोऽधिकानि तत्सम्बन्धे प्रतिपादितानि यथा सूर्यसिद्धान्ते—

"द्वादशघ्ना गुरोर्याता भगणावर्त्तमानकै।
राशिभि सहिता शुद्धा षष्ट्या स्युर्विजयादय"

गुरोर्गतभगणा द्वादशगुणास्तदा राश्यादिका भवन्ति तत्र वर्त्तमानगुरुराशियोजनेन षष्ट्याभक्तेन च शेषाणि विजयादिषष्टि-सख्यक-गुरुवर्षाणि भवन्ति, सृष्ट्यादौ विजयवर्षसद्भावाद्विजयादितो गणना समुचितेति ॥५॥

हि भा —गुरु भगण को बारह से गुणने से विजयादि नाम के साठ वा आश्विन आदि नाम के बारह बार्हस्पत्यवर्ष होते है। रवि और चन्द्र के द्विगुणितभगण योग "अर्धनिपात" संज्ञक कहा गया है।

गुरु (बृहस्पति) की मध्यमगति द्वारा एक राशिभोगकाल बार्हस्पत्यवर्ष होता है यह सब सिद्धान्तग्रन्थकारों का कहना है। यथा —

मध्यगत्या भभोगेन गुरोर्गौरववत्सरा इति

तथा 'बृहस्पतेर्मध्यम-राशिभोगात्सम्वत्सरं साहितिका वदन्ति'' (भास्कर)

इसके सम्बन्ध में अनेक वचन है। यहां आचार्य (वटेश्वर) गुरुभगण को बारह से गुणने पर जो राश्यादिक उनका प्रमाण होता है उसीको विजयादि नामक साठ वा अश्विनादि-नामक बारह बार्हस्पत्य वर्ष कहते हैं। लेकिन सूर्यसिद्धान्तकारादि अन्य आचार्य इनसे और अधिक बातें इसके सम्बन्ध में कहते हैं। जैसे "द्वादशघ्ना गुरोर्याता भगणा वर्तमानकैः इत्यादि।

गुरु के गत भगणों को बारह से गुणन पर राश्यादिक होता है उसमें गुरु के वर्तमान राशिप्रमाण जोडने से साठ से भाग देने से शेष विजयादि साठ गुरु वर्ष होते है। सृष्ट्यारम्भ में विजय वर्ष रहने के कारण विजयादि से गणना उचित ही है ॥५॥

उत्सर्पिणी प्रथममेव युगार्धमुक्ता
ज्ञेया द्वितीयमपसर्पिणिकाभिधाना।
मध्ये युगस्य सुषमा खलु दुष्षमा स्या-
दाद्यन्तयोः कुमुदिनी वनबन्धुयोगात् ॥ ॥६॥

वि भा —युगस्य मध्ये, प्रथममेव युगार्धं (युगस्य पूर्वार्धं) उत्सर्पिणी (उत्सर्पिणी नामिका) उक्ता (कथिता) द्वितीय युगार्धं (युगस्योत्तरार्धं) अपसर्पिणि-काभिधाना (अपसर्पिणी संज्ञका) ज्ञेया (बोद्धव्या) आद्यन्तयोः (तयोरादावन्ते च) कुमुदिनीवनबन्धुयोगात् (सूर्यसयोगात्) ते पूर्वकथिते (उत्सर्पिणी-अपसर्पिणी नामके) सुषमा दुष्षमा चे (क्रमशः सुषम दुष्षमे चे) ति ज्ञेये ॥६॥

आर्यभटीये तु "उत्सर्पिणी युगार्धं पश्चादपसर्पिणी युगार्धं च।

मध्ये युगस्य सुषमादावन्ते दुष्षमेन्दूच्चात्" इति पाठोऽस्ति। एतद्विषये युगस्य समभागद्वयं कृत्वा पूर्वार्धस्योत्सर्पिणी द्वितीयार्धस्यापसर्पिणीति संज्ञा जैनमतानुसारतः कृता, तथा युगस्य समभागत्रयं कृत्वाऽऽद्यन्तयोर्दुःसमा मध्यस्य च सुषमा संज्ञा चेति च प्रतिपादिता, अत्र व्याख्याकारैरिन्दूच्चादीनां कालभेदेन गतेर्भेदो भवतीत्याचार्यः कथयतीति व्याख्यातं मन्मते तन्न तथ्यं प्रसङ्गानुसारतोऽत्र ग्रहभगणादौ भेदप्रदर्शनानौचित्यात्। इन्दूच्चस्यैव पदस्य प्रयोगकरणे प्रमाणा-भावाच्च मन्मते तु "उत्सर्पिणी युगार्धं पश्चादपसर्पिणी युगार्धं च। मध्ये युगस्य सुसमाऽऽदावन्ते दुःसमाग्न्यशात्" इति पाठः साधुः स च लेखकाध्यापकाध्येतृदोषै-रन्यथाजात इति गणकतरङ्गिण्यां म म प सुधाकर द्विवेदिभिर्लिखितं तत्समीचीनं प्रतिभातीति ॥

हि. भा —युग के मध्य मे पहला युगार्ध (युग के पूर्वार्ध) उत्सर्पिणी नाम के हैं। दूसरा युगार्ध (युग के उत्तरार्ध) अपसर्पिणी नाम का समझना चाहिये। उन दोनो के आदि और अन्त मे सूर्य के संयोग होने से वे ही (उत्सर्पिणी-अपसर्पिणी) क्रम मे सुषमा और दुष्षमा कहलाती है।

आर्यभटीय मे "उत्सर्पिणी युगार्धं पश्चादपसर्पिणी युगार्धं च। इत्यादि

गणकतरङ्गिणी मे म म प सुधाकर द्विवेदी जी लिखते हैं कि युग के समान द भाग करके पूर्वार्ध की उत्सर्पिणी परार्ध की अपसर्पिणी संज्ञा जैनमत के अनुसार की गई, और युग के समान तीन भाग करके आदि और अन्त की दुःसमा, मध्य की सुषमा संज्ञा कही गई है। यहाँ व्याख्याकार ने "चन्द्रमा के उच्चादियो के कालभेद मे गति मे भेद होना है यह आचार्य कहते हैं' इस तरह व्याख्या की है। मेरे मत मे वह ठीक नही है, प्रसङ्ग के अनुसार यहाँ ग्रहभगणादि म भेद देखना अनुचित है। श्लोकोक्त पद्य मे "इन्दूच्च" पद का प्रयोग करने मे प्रमाण नही है इसलिये ठीक नहीं है। मेरे मत मे

"उत्सर्पिणी युगार्धं पश्चादपसर्पिणी युगार्धं च। मध्ये युगस्य सुसमाऽऽदावन्ते दुःसमान्त्यंशात्" यह पाठ ठीक है, यह पाठ लेखको, अध्यापको, पढने वालो के दोषो से भि हो गया, यह द्विवेदीजी का कहना ठीक मालूम होता है॥

पूर्वकथित षष्टिमत्यब्दानां बार्हस्पत्यवर्षाणां विजयादिकानां नामान्यधो ग्र लिखितक्रमेण ज्ञेयानि।

१	विजय	१३	विश्वावसु	२५	पिंगल	३७	शुक्ल	४९	वृष		
२	जय	१४	पराभव	२६	कालयुक्त	३८	प्रमोद	५०	चित्रभानु		
३	मन्मथ	१५	प्लवग	२७	सिद्धार्थी	३९	प्रजापति	५१	सुभानु		
४	दुर्मुख	१६	कीलक	२८	रौद्र	४०	अंगिरा	५२	तारण		
५	हेमलम्ब	१७	सौम्य	२९	दुर्मति	४१	श्रीमुख	५३	पार्थिव		
६	विलम्ब	१८	साधारण	३०	दुन्दुभि	४२	भाव	५४	व्यय		
७	विकारी	१९	विरोधकृत्	३१	रुधिरोद्गारी	४३	युवा	५५	सर्वजित्		
८	शर्वरी	२०	परिधावी	३२	राक्षस	४४	धाता	५६	सर्वधारी		
९	प्लव	२१	प्रमादी	३३	क्रोधन	४५	ईश्वर	५७	विरोधी		
१०	शुभकृत्	२२	आनन्द	३४	क्षय	४६	बहुधान्य	५८	विकृत		
११	शोभन	२३	राक्षस	३५	प्रभव	४७	प्रमाथी	५९	खर		
१२	क्रोधी	२४	नल	३६	विभव	४८	विक्रम	६०	नन्दन		

युगपठितभगणेभ्यः कल्पीयभगणज्ञानं ततो ब्रह्मायुषि भगणज्ञानञ्चाह ।

(१)

यद्युगोत्थमिह पर्ययादिकं तद्भुजाभ्र गगनेन्दु (१०००) ताड़ितम् ।
कल्पजं खखनखग्रहाहतं तद्भवेत्कमलविष्टरायुषि ॥७॥

वि. भा. —इह (अस्मिन् ग्रन्थे) युगोत्थं (महायुगोत्पन्न) यत्पर्ययादिकं (भगणादिकं) तत् भुजाभ्रगगनेन्दुभिः (१०००) ताडितं (गुणितं) तदा कल्पजं (कल्पोद्भवं) भगणादिकं भवेत् तथा कल्पजं भगणादिकं खखनखग्रहा (७२०००) हतं (७२०००) एभिर्गुणितं सन् कमलविष्टरायुषि(ब्रह्मायुर्दाये) भगणादिकं भवेदिति ॥७॥ —

(१) भुजाभ्रम् (शून्यद्वयम्)

हि. भा. —इस ग्रन्थ मे युग मे जो ग्रहादियो के भगणादि पठित है उनको १००० एक हजार से गुणने से कल्पसम्बन्धी भगणादि प्रमाण हो जायेगे। और कल्पसम्बन्धी भगणादि प्रमाणो को ७२००० इतने से गुणने पर ब्रह्मा की आयु मे भगणादि प्रमाण होते है ॥७॥

उपपत्ति

यदि युगवर्षैर्युगपठित भगणादिमान लभ्यते तदा कल्पवर्षे किमित्यनुपातेन

$$\text{कल्पे भगणादिमानम्} = \frac{\text{युगभगणादिमान} \times \text{कल्पवर्ष}}{\text{युगवर्ष}}$$

$$= \frac{\text{युगभगणादिमान} \times ४३२००००००००}{४३२००००}$$

$=$ युगभगणादिमान $\times$ १००० $=$ कल्पभगणादिमान। अत सिद्ध यद्युगपठित-भगणादिमान १००० गुणितं तदा ब्रह्मायुषि भगणादिमान भवेत् ।

अथ १००० युग $=$ १ ब्रह्मदि $=$ १ कल्प ∴ २००० युग $=$ ब्रह्माहोरात्रम् ।

तत∴ २००० युग $\times$ ३६० $=$ १ ब्रह्मवर्ष पर ब्रह्मायु $=$ १०० वर्ष

∴ $=$ २००० यु $\times$ ३६० $\times$ १०० $=$ ब्रह्मायु $=$ ७२०००००० युग

कल्पसम्बन्धिभगणादिमानं ब्रह्मायुष्यानीयते यथा

$$\frac{\text{कल्पभगणादिमान} \times \text{ब्रह्मायुः}}{\text{कल्पवर्ष}} = \frac{\text{कल्पभगणादिमान} \times ७२०००००० \text{ युग}}{१००० \text{ यु}}$$

$=$ कल्पभगणादिमान $\times$ ७२००० $=$ ब्रह्मायुषि भगणादिमानम् अतः सिद्ध यत्कल्पीय भगणादिमानं ७२००० गुणितं तदा ब्रह्मायुषि तन्मान भवेत्। अत आचार्योक्तं युक्तियुक्तम् ॥६॥

हि. भा. —युगपठित भगणादि मानो को कल्प मे लाने के लिए अनुपात करते है, 'यदि युग वर्ष मे युगपठित भगणादिमान पाते हैं तो कल्पवर्ष मे क्या" इस अनुपात से कल्प

मे भगणादिमान $=\frac{\text{युगभगणादिमान} \times \text{कल्पवर्ष}}{\text{युगवर्ष}} = \frac{\text{युगभगणादिमान} \times ४३२००००००० }{४३२००००}$

$=$ युगभगणादिमान $\times$ १००० । इसस सिद्ध हुआ कि युग पठित भगणादिमानो को १००० से गुणने पर कल्प सम्बन्धी भगणादिमान होते है ॥

१००० युग $=$ १ ब्रह्मदिन $=$ १ कल्प २००० युग $=$ १ ब्रह्माहोरात्र

पर ३६० अहोरात्र $=$ १ वर्ष २००० युग $\times$ ३६० $=$ १ ब्रह्मवर्ष

लेकिन ब्रह्मा की आयु $=$ १०० वर्ष २००० यु $\times$ ३६० $\times$ १०० $=$ ब्रह्मायु $=$ ७२०००००० युग अब कल्प सम्बन्धी भगणादिमानों को ब्रह्मा की आयु में लाते हैं, जैसे —

$\frac{\text{कल्पभगणादिमान} \times \text{ब्रह्मायुवर्ष}}{\text{कल्पवर्ष}} = \frac{\text{कल्पभगणादिमान} \times ७२००००००\ \text{युग}}{१०००\ \text{यु}}$

$=$ ७२००० $\times$ कल्प भगणादिमान $=$ ब्रह्मा की आयु मे भगणादिमान । इससे सिद्ध हुआ कि कल्पसम्बन्धी भगणादिमानो को ७२००० इतने से गुणने से ब्रह्मा की आयु मे उनके मान आजायेंगे आचार्य का कथन युक्तियुक्त है इति ॥६॥

अथ कालस्य नवमानान्याह —

आर्क्षं चान्द्रमस सौर सावन ब्राह्मजैव पितृदेव दैत्यजैः ।
काल एभिरनुमीयतेऽव्ययो येन माननवकस्य च व्ययः ॥८॥

वि. भा —आर्क्ष चान्द्रमस सौरसावन ब्राह्मजैव पितृदेव दैत्यजैः (पूर्वकथितै-रेभि) मानैः अव्यय (अविनाशी व्यापक) काल (समय) अनुमीयते (अर्थादनाद्यनन्त-स्य कालस्य यद्यपि विभागो न भवितुमर्हति तथापि लोकव्यवहारार्थं पूर्वोक्त नवमान-द्वारा विभक्तकालस्य प्रतीतिर्भवति) येन माननवकस्य (पूर्वकथित नवधा कालमान-स्य) व्ययो भवति (अर्थादव्ययकालस्यैतन्माननवकद्वारा व्ययो भवतीति) । अत्र "दैत्यजैः" अय पाठोऽसाधु प्रतिभाति (देवदैत्यजमानयो समत्वात्) तेन (देव-दैत्यजैः) अत्र देवमर्त्यजैरिति पाठ साधु (अन्येषु सिद्धान्तग्रन्थेषु तथैवोक्तत्वात्" यथा सिद्धान्तशिरोमणौ भास्करोक्तम्—

"एव पृथङ्मानवदैवजैव पैत्र्यार्क्ष सौरैन्दव सावनानि ।
ब्राह्म च काले नवम प्रमाण ग्रहास्तु साध्या मनुजै स्वमानात्" ॥८॥

हि भा —नाक्षत्रमान, चान्द्रमान, सौरमान, सावनमान, ब्राह्म (ब्रह्मसम्बन्धी) मान, बार्हस्पत्यमान, पितृसम्बन्धी मान, देव-दैत्य सम्बन्धी मान इन्हीं नौ प्रकार से कालमान से व्यापक (अव्यय) काल की कल्पना की जाती है। (यद्यपि जिस काल का न आदि है न अन्त है उसका विभाग करना असम्भव है तथापि व्यवहार के लिये उस अव्यय काल का व्यय (आरम्भ-अन्तादि) समझा जाता है। यहाँ, आचार्योक्त पद्य में "दैत्यजैः" यह पाठ असङ्गत मालूम पड़ता है क्योंकि देवो और दैत्यों के कालमान एक ही (बराबर) होने के

कारण देव कालमान मे दैत्य कालमान का पृथक् पाठ नही हो सकता, दोनो (देव, दैत्य) मानो के एक होने के कारण आचार्योक्त पद्य से आठ ही कालमान आता है, इनमे आचार्य ने मानव मान को छोड दिया है दैत्यमान के स्थान पर मानवमान कहना चाहिये अर्थात् "दैत्यजं" शब्द के स्थान पर "मर्त्यजं वा मानवं" होना चाहिये। अन्य ग्रन्थो मे दैत्यमान नही कह कर मानवमान ही कहा गया है, जैसे भास्कराचार्य कहते हैं

"एवं पृथङ् मानवदैवजैव" इत्यादि ॥८॥

अथ सृष्ट्यारम्भकालवर्णनमाह ।

त्रुट्यादि पद्मोद्भव जीवितान्तः कालः समं तेन झषाजसन्धौ ।
लङ्का कुजस्थ द्युचरैः प्रवृत्तो रवेर्दिने चैत्रसितादितोऽयम् ॥९॥

नि भा —त्रुट्यादि पद्मोद्भवजीवितान्त (त्रुट्यादितो ब्रह्मायु पर्यन्त) य काल (समय) तेन कालेन सम (सार्धं) लङ्का कुजस्थ द्युचरै (लङ्काक्षितिजस्थैर्ग्रहै) झषाजसन्धौ (रेवत्यन्ते) स्थितै रवेर्दिने चैत्र-सितादित (चैत्र-शुक्ल-प्रतिपदादित) अय (सर्वोऽपि काल) प्रवृत्तो बभूवार्थात् "लङ्कायामर्कोदये चैत्रशुक्ल-प्रतिपदारम्भेऽर्कदिनादावश्विन्यादौ" सर्वेषा युगाना मन्वन्तराणा सौरादिमासाना वर्षाणा कल्पस्य चैककालावच्छेदेन प्रवृत्तिर्बभूवेति ॥९॥

हि भा —त्रुट्यादि से ब्रह्मा की आयु पर्यन्त कालो के साथ मीन मेष की सन्धि (रेवत्यन्त) म लङ्का क्षितिजस्थ ग्रहो के रहन पर रविदिन मे चैत्र शुक्ल प्रतिपदारम्भ से इन सब कालो की प्रवृत्ति हुई अर्थात् लङ्का मे सूर्योदय काल मे चैत्र शुक्ल प्रतिपदारम्भ मे रविवार अश्विन्यादि मे सब युगादिमन्वन्तर-कल्प सौरादिवर्ष मासादि की प्रवृत्ति हुई। इति ॥९॥

अथ केषु कार्येषु केषा मानानामुपयोग इत्याह ।

पर्वावमतिथि करणाधिमासक ज्ञान मैन्दवान्मानात् ।
प्रभवाद्यब्दाः षष्टिर्युगानि नारायणादीनि ॥१०॥
अङ्गिरसादेतेषां ज्ञप्ति पैत्र्यात्तु पैतृको यज्ञः ।
कामलजासुरदैवैस्तेषामायु परिच्छित्ति ॥११॥

वि भा —पर्व (ग्रहणादि) अवम (तिथिक्षय) तिथि प्रसिद्धैव, करणानि (तिथ्यर्धरूपाणि) अधिमास (मलमास) एतेषा ज्ञान ऐन्दवान्मानात् (चान्द्रमानात्) भवति, षष्टि (षष्टिसख्यका) प्रभवाद्यब्दा (प्रभवादिवर्षाणि) नारायणादीनि (नारायणादि नामकानि) युगानि यानि सन्ति, एतेषा ज्ञप्ति (ज्ञान), अङ्गिरसात् (बार्हस्पत्यमानात्) भवति, पैत्रिक (पितृसम्बन्धी) यज्ञ (श्राद्धादि) पैत्र्यान्मानात् (पितृसम्बन्धिमानात्) कर्त्तव्य । (कामलजासुरदैवै (ब्राह्मदैत्य-दैवमानै) तेषा (ब्रह्मदैत्यदेवाना) आयु परिच्छित्ति (आयुर्गणना) कार्येति ॥ १०-११ ॥

हि भा—पर्व (ग्रहण आदि), तिथिक्षय, तिथि, करण (तिथ्यर्ध) मलमास, इन सब का ज्ञान चान्द्रमान से करना चाहिये, प्रभव आदि साठ वर्षों का और नारायण आदि नाम के युगों का ज्ञान बृहस्पति सम्बन्धी मान से करना चाहिये, पितृसम्बन्धी यज्ञ (श्राद्धादि), पितृसम्बन्धी मान (पैत्र्यमान) से करना चाहिये, ब्राह्ममान से ब्रह्मा की आयु गणना, आसुरमान और देवमान से क्रमशः असुरों और देवों की आयु की गणना करनी चाहिये ॥१०-११॥

अध्ययन नियमसूतक मखगतयः सच्चिकित्सा च ।
होरामुहूर्तयामाः प्रायश्चित्तोपवासाश्च ॥ १२ ॥
आयुर्दायश्च नृणां गमनागमने च सावनान्मानात् ।
ऋत्वयनविषुवदब्दा युगं क्षयर्द्धी दिनस्य सौरात्स्युः ॥ १३ ॥

वि भा—अध्ययननियमा (वेदवेदाङ्गपठनारम्भसम्बन्धिनियमा) सूतक (जननाशौच मरणाशौच च) मखगतय (यज्ञसम्पादनविधय.), सच्चिकित्सा (शोभनरूपेण रोगिणामौषधादिप्रयोगारम्भ), होरा (लग्न राश्यर्ध वा) मुहूर्ता (शुभकार्यार्थमुचितसमया) यामा (प्रहरादिविचारा) प्रायश्चित्तमुपवासाश्च, *नृणा (मनुष्याणा) आयुर्दाय (जीवनदैर्घ्यम्) गमनागमने (मनुष्याणा यातायातयो* रुचितविचार) इत्येषा ज्ञान सावनमानाद्भवति । ऋतवो (वसन्तादय) अयने (उत्तरायण-दक्षिणायने), विषुवद्दिनम् (मेषतुलसंक्रान्ती) अब्दा (वर्षाणि) युग (महायुगादि) दिनस्य क्षयर्द्धी (दिनह्रासवृद्धी) सौरमानादेतेषा ज्ञान भवतीति ॥ १२-१३ ॥

हि भा—वेद-वेदाङ्गों के पठन सम्बन्धी नियम, जननमरणाशौच, यागादि धार्मिक कार्यों की विधि, अच्छी तरह रोगियों के लिये औषधि आदि का प्रयोग आरम्भ करना, होरा (लग्न या राशि का आधा), किसी शुभ कार्यविशेष के लिये उचित समय, प्रहर का विचार प्रायश्चित्त और उपवास, मनुष्यों के आयुर्दाय, मनुष्यों के आने जाने के लिये समुचित विचार, ये सब बातें सावन मान से करनी चाहियें । ऋतु (वसन्तादि) अयन (उत्तरायण-दक्षिणायन) विषुवदिन (मेषसंक्रमण-तुलसंक्रमणदिन) वर्ष-युग, दिन का घटना, बढ़ना ये सब बातें सौरमान से करनी चाहियें ॥ १२-१३ ॥

ज्याद्या विषयश्चार्क्षाच्छशधर भगणोद्भवाश्च नाक्षत्रात् ।
मासार्ध-वासराणां संज्ञाः सदसत्फलावगतिः ॥ १४ ॥

वि भा—ज्याद्या ज्यादीना लक्षणानि तत्साधनानि च स्पष्टाधिकारे सन्ति तेन तानि तत्रैव ज्ञातव्यानि । अथवा तत एव ज्ञातव्यानि । केभ्यो मानेभ्य. कानि कानि कार्याण्येतस्मिन् विषयेज्याचार्यापेक्षया वटेश्वरेणाधिकानि लिखिता-नीनि (ज्या, कोटिज्या, स्पर्शरेखा कोटिस्पर्शरेखा, छेदनरेखा, कोटिच्छेदन-रेखा, उत्क्रमज्या, कोट्युत्क्रमज्या) विषय (ज्यादिसाधनार्थं साधनानि विधान वा) धार्क्षान्मानात् (नाक्षत्रमानात्) ज्ञातव्या इति शशधरभगणोद्भवाश्च (चन्द्रभगण-

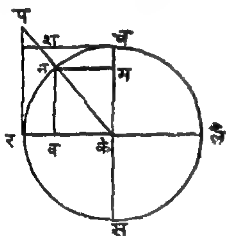
भोगाश्च नाक्षत्रमानादेव । मासार्धवासराणा सज्ञा. (मासपक्षदिननामानि) सदसत्फलावगति. (शभाशुभफलज्ञानम्) नाक्षत्रमानादेव ज्ञातव्येति ।

हि. भा —(१) ज्या आदि (ज्या, कोटिज्या, स्पर्शरेखा, कोटिस्पर्शरेखा, छेदनरेखा, कोटिच्छेदनरेखा, उत्क्रमज्या, कोत्युत्क्रमज्या की विधियाँ नाक्षत्रमान मे समझनी चाहियें, चन्द्रभगणभोग भी नाक्षत्रमान से जानना चाहिये, मास, पक्ष, दिनो के नाम और शुभ अशुभ फल ज्ञान नाक्षत्रमान से समझना चाहिये ॥

(१) ज्या आदि के लक्षण और साधन स्पष्टाधिकार मे है इसलिये ये सब वही पर समझने चाहियें अथवा वही से समझना चाहिये । किन मानो से कौन-कौन सा काम करना चाहिये इस विषय मे अन्य आचार्यों से वटेश्वराचार्य अधिक बाते कहते हैं ॥ १४ ॥

(१) —

यथाज्यादीना (ज्या, कोटिज्या, स्पर्शरेखा, कोटिस्पर्शरेखा,छेदनरेखा, कोटिच्छेदन, उत्क्रमज्या=बाण =शर, कोत्युत्क्रमज्या) परिभाषा लिख्यन्ते ज्यादयश्चापीया कोणीयाश्च भवन्ति ।



चित्र न० ६

के=वृत्तकेन्द्रम् । चस, रल परस्पर लम्बरूपिण्यौ व्यासरेखे, केच=त्रिज्या=केर । नच=किमपि चापमस्ति यस्य ज्या, कोटिज्या, स्पर्शरेखा, कोटिस्पर्शरेखा इत्यादय का भवन्तीति विचार । रचचापम् = ९०, रच —नच=९०—चाप = नर= कोटिचापम् । नच चापस्यैकप्रान्ते (च) विन्दौ केन्द्रात् (के)

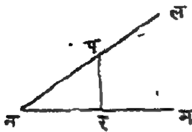
विन्दुतो केच रेखा नेया तदुपरि चापस्य द्वितीयप्रान्तात् (न विन्दुत) वृतो लम्ब = नम = न च चापस्य ज्या=चापज्या । एव नरकोटिचापस्य ज्या = नव = चा. कोटिज्या । च विन्दुतो वृत्तस्पर्शरेखा कार्या केन्द्राच्चापस्य द्वितीयप्रान्त (न) विन्दौ केन रेखा नेया सा वर्धिता यत्र वृत्तस्पर्शरेखाया लगति तत्र श विन्दु कल्प्यस्तदा शच रेखा नच चापस्य स्पर्शरेखा

नच चापस्पर्शरेखा = शच । केश रेखा = चापच्छेदन रेखा ।

एव नर चापस्य रविन्दुतो वृत्तस्पर्शरेखा कार्या केन्द्रान् (केविन्दुत) द्वितीय प्रान्त (न) विन्दुगता केन रेखा यत्र तस्या स्पर्शरेखाया लगति तत्र प विन्दु कल्प्यस्तदा परेखा रन चापस्य स्पर्शरेखा अर्थात् कोटिस्पर्शरेखा, केप=कोटिच्छेदनरेखा, चम = चापोत्क्रमज्या = बाण = शर । रव=कोत्युत्क्रमज्या = त्रिज्या — चापज्या = त्रिज्या — चापकोटिज्या, यस्य कस्यापि कोणस्य ज्या,

कोटिज्या, स्पर्शरेखा, कोटिस्पर्शरेखा इत्यादय का भवन्त्येतदर्थ विचार । यथा लनम कोऽपि कोणोऽस्ति यस्य ज्यादय का भवन्तीति प्रदर्श्यन्ते नल रेखायां कोऽपि प विन्दुर्गृहीत । प विन्दुतो नम रेखोपरि परलम्ब कार्यस्तदा $\angle$ नरप = ९०

ज्या$\angle$ नरप = त्रिज्या अत्र त्रिज्या = १ गृह्यते ।



चित्र नं० १०

लनमकोण = को

नपर त्रिभुजेऽनुपातेन कोणज्या $= \frac{\text{पर}\times १}{\text{नप}} = \frac{\text{पर}}{\text{नप}}$

तथा कोणकोटिज्या $= \frac{१ \times \text{नर}}{\text{नप}} = \frac{\text{नर}}{\text{नप}}$

$$\frac{\text{कोणज्या}}{\text{कोणकोटिज्या}} = \text{कोणस्पर्शरेखा} = \frac{\frac{\text{पर}}{\text{नप}}}{\frac{\text{नर}}{\text{नप}}} = \frac{\text{पर}}{\text{नर}}$$

$$\frac{\text{कोणकोटिज्या}}{\text{कोणज्या}} = \text{कोणकोटिस्पर्शरे} = \frac{\frac{\text{नर}}{\text{नप}}}{\frac{\text{पर}}{\text{नप}}} = \frac{\text{नर}}{\text{पर}}$$

$$\frac{१}{\text{कोणकोटिज्या}} = \text{कोणच्छेदनरेखा} = \frac{१}{\frac{\text{नर}}{\text{नप}}} = \frac{\text{नप}}{\text{नर}}$$

$$\frac{१}{\text{कोणज्या}} = \text{कोणकोटिच्छेदनरेखा} = \frac{१}{\frac{\text{पर}}{\text{नप}}} = \frac{\text{नप}}{\text{पर}}$$

१ − कोणकोटिज्या = कोणोत्क्रमज्या । १ − कोणज्या = कोणकोट्युत्क्रमज्या ॥१४॥

इति वटेश्वर सिद्धान्ते मध्यमाधिकारे कालमानविवेके द्वितीयाध्याय ।

हि भा — ज्या आदिकों (ज्या कोटिज्या स्पर्शरेखा कोटिस्पर्शरेखा, छेदनरेखा कोटिच्छेदनरेखा उत्क्रमज्या कोटि-उत्क्रमज्या) की परिभाषाएं लिखते हैं। ज्या आदि [illegible] और [illegible] होते हैं ।

यहाँ चित्र (१) देखिए ।

* [illegible] । यहाँ [illegible] परस्पर सम्बन्ध [illegible] है।

कप = त्रिज्या = कन

नच कोई एक चाप है जिसकी ज्या, कोटिज्या, स्पर्शरेखा आदि क्या होती है इसका विचार करते है। रच चाप = ९०, रच—नच = ९०—चाप = नर = कोटिचाप। नच चाप = चाप। चाप के एक प्रान्त (च) विन्दु मे केन्द्र से केच रेखा कीजिये। उसके ऊपर चाप के दूसरे प्रान्त न विन्दु से नम लम्ब कीजिये तब नम रेखा नच चाप की ज्या होती है।

नम = चापज्या। इसी तरह नरकोटि चाप की ज्या = चाप कोज्या = नव। चाप के एक प्रान्त च विन्दु मे वृत्त की स्पर्शरेखा कीजिये। केन्द्र-से दूसरे प्रान्त (न) मे लाई हुई केन रेखा वृत्त स्पर्शरेखा में जहाँ लगती है वहाँ'श' विन्दु रखिये तब शच = चापस्पर्शरेखा, केश = चापच्छेदनरेखा, तब नर चाप के र विन्दु मे वृत्तस्पर्शरेखा कीजिये। केन्द्र से न विन्दु मे लाई हुई रेखा बढ कर उस रेखा म जहाँ पर लगती है वहाँ प विन्दु है तब रप = कोटिस्पर्शरेखा, केप = कोटिच्छेदनरेखा,

चम = चाप की उत्क्रमज्या = बाण = शर। रव = कोटिचाप की उत्क्रमज्या = त्रि—चापज्या = त्रिज्या — चाप कोटिज्या = उज्या

किसी कोण की (ज्या, कोटिज्या, स्पर्शरेखा, कोटिस्पर्शरेखा, छेदनरेखा, कोटिच्छेदन रेखा, उत्क्रमज्या, कोट्युत्क्रमज्या क्या होती है उसके लिये विचार।

चित्र न (१०) देखिये

लनग एक कोण है जिसकी ज्या, कोटिज्या आदि क्या होती है, यह दिखलाना है।

नल रेखा म कोई प विन्दु लेकर उससे नग रेखा के ऊपर परलम्ब कीजिये, तब < नरप = ९०, ज्या < नरप = त्रिज्या यहाँ त्रिज्या = १ लेते हैं

नपर त्रिभुज मे अनुपात से $\frac{\text{पर}}{\text{नप}}$ = कोणज्या

$\frac{\text{नर}}{\text{नप}}$ = कोणकोटिज्या

तब $\frac{\text{कोणज्या}}{\text{कोणकोटिज्या}}$ = कोणस्पर्शरे = $\frac{\text{पर}}{\text{नर}}$

तथा $\frac{\text{कोणकोटिज्या}}{\text{कोणज्या}}$ = कोणकोटिस्प = $\frac{\text{नर}}{\text{पर}}$

$\frac{१}{\text{कोणकोटिज्या}}$ = कोणच्छेदनरे = $\frac{\text{नप}}{\text{नर}}$

$\frac{१}{\text{कोणज्या}}$ = कोणकोटिच्छेरेखा = $\frac{\text{नप}}{\text{पर}}$

१ — कोणकोटिज्या = कोण की उत्क्रमज्या, १ — कोणज्या = कोणकोटि की उत्क्रमज्या ॥१४॥

इति वटेश्वरसिद्धान्त म मध्यमाधिकार मे कालमान विवेक नामक
द्वितीयाध्याय समाप्त हुआ।

तृतीयाध्याये

द्युगण (अहर्गण) विधि

कोत्पत्ति कल्पयुगयात समा इनघ्ना मासान्विता खगुणसङ्गुणिता अहोभि ।
युक्ता पृथक्त्वधिकसङ्गुणिता इनाहैर्लब्धाधिमासदिवसैः सहिता
पृथक् पृथक् ॥१॥
दिनक्षयघ्ना शिशिरांशु वासरैरवाप्तहीनाहगणैर्विवर्जिता ।
द्युराशयस्तेष्वगभक्तशिष्टको दिनाधिपो व्योमचराधिपादिक ॥२॥

वि भा —कोत्पत्तिकल्पयुगयातसमा (ब्रह्मोत्पत्तिकालाद्वर्त्तमानकल्पस्य यावन्तो युगाब्दा व्यतीता) इनघ्ना (द्वादशगुणिता) मासान्विता (वर्त्तमान वर्षस्य चैत्रशुक्लप्रतिपदादितो यावत्यो गतमाससंख्यास्ता योज्या) खगुणसङ्गुणिता त्रिंशद्गुणिता) अहोभिर्युक्ता (गतामान्ताद्वर्त्तमानदिन यावत्तिथिसंख्याभिर्युक्ता) पृथक् (स्थानद्वये स्थाप्या) अधिकसङ्गुणिता (ते स्थापिता अङ्का एकत्र युगाधिमाससंख्याभिर्गुणिता) इनाहैर्लब्धाधिमासदिवसै (युगसौरदिनै भक्ता सन्ता ये लब्धाधिमासदिवसास्तै) सहिता (द्वितीयस्थानस्थापिता अङ्का युक्ता) ते पृथक् पृथक् स्थाप्या , दिनक्षयघ्ना (ते पृथक् स्थापिता अङ्का एकत्र युगावमैर्गुणिता) शिशिरांशुवासरैरवाप्तहीनाहगणै (युगचान्द्रदिनैर्भक्ता सन्तो ये लब्धाक्षयवासरास्तैर्द्वितीयस्थानस्थापिता अङ्का) विवर्जिता (हीना कार्यास्तदा) द्युगणाय (सावनाहर्गणो भवेत्) तेष्वगभक्तशिष्टके (तेषु समानीत सावनाहर्गणेषु सप्तभक्तेषु ये शेषास्ते) व्योमचराधिपादिक (रव्यादिक) दिनाधिप (वारपति) भवेदिति ।

हि भा — ब्रह्मोत्पत्तिकाल मे वर्तमान वर्ष के जितने युगवर्ष बीत गये हैं उनको बारह से गुण देना गुणनफल म वर्तमान वर्ष के चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से जो गतमास संख्या हो जोड देना, उसको तीस से गुणा देना, उसमे गत अमावास्यान्त से वर्तमान दिन तक तिथि संख्या जोड कर दो स्थानो मे रखना, एक स्थान स्थित संख्या को युग की अधिमास संख्या से गुण कर युग सौर दिन से भाग देने पर जो लब्धि (अधिमास दिन) आवें, इसे दूसरे स्थान मे रखे हुए अङ्को मे जोड देना, इसे दो स्थानो म रखना, एक स्थान की संख्या को युग की अवमदिन संख्या से गुण कर युग चान्द्रदिन मे भाग देने से जो लब्धि (क्षयदिन) हो उसे दूसरे स्थान मे रखे हुए अङ्का म घटाने से सावनाहर्गण होता है, इसमे (सावनाहर्गण मे) सात से भाग देने से जो शेष रहे वह रवि से गणना करने से वारपति होते हैं ॥ १-२ ॥

उपपत्ति

कजन्मनोऽष्टौ सदला समा ययुरित्यादिना सृष्ट्यादितो गत वर्षान्त यावद् गतवर्षाणि=गव गव × १२=गतसौरमासा चैत्रादिगत चान्द्रमासतुल्यैरेव सौरमासैर्युतास्तदा सृष्ट्यादितो गतसौरमासा =गव × १२+गत

चान्द्रमास तुल्य सौरमास, त्रिंशता गुणनेन सृष्ट्यादितो गतसौरदिनानि = (गव × १२ + गतचान्द्रमास तुल्य सौरमास) × ३०, इष्टतिथि-तुल्यै सौरदिनैर्युक्तानि तदा सृष्ट्यादित इष्ट चान्द्रान्त यावत्सौर दिनानिभवन्ति = (गव × १२ + गतचान्द्रमासतुल्यसौरमास) × ३० + इष्टतिथितुल्यसौरदिन = इसौरदिनानि ततोऽनुपातो यदि युगसौरदिनैर्युगाधिमासा लभ्यन्ते तदेष्टसौरदिनै किमित्यनेन लब्धा सशेषाधिमासा =

$$\frac{\text{युगाधिमास} \times \text{इसौर}}{\text{यसौरदि}} = \text{गताधिमास} + \frac{\text{अधिशे}}{\text{युगसौ}}$$

यत सौरचान्द्रान्तरमधिमासा (अत्र पूर्वगतसौरमासाश्चैत्रादि चान्द्रमासतुल्यैरेव सौरमासैर्युक्तास्तत्राधिशेषतुल्यमधिक गृहीत भवेदतोऽनुपातागतमधिशेषग्रहण नाऽत्र क्रियते, अत इष्टसौरदि + गताधिदिन = तिथ्यन्ते चान्द्राहर्गण = इचा ।

ततो यदि युगचान्द्रैर्युगावमानि लभ्यन्ते तदेष्टचान्द्रै किमित्यनुपातेन सशेषावमानि

$$\frac{\text{युगावम} \times \text{इचा}}{\text{युचा}} = \text{गतावम} + \frac{\text{अवमशे}}{\text{युचा}}$$ अत इष्टचान्द्रे एतस्य शोधनेन

$$\text{इचा} - \left(\text{गतावम} + \frac{\text{अवमशे}}{\text{युचा}}\right) = \text{इचा} - \text{गतावम} - \frac{\text{अवमशे}}{\text{युचा}} = \text{तिथ्यन्ते}$$

सावनाहर्गण

परमपेक्षितस्तु सूर्योदयकालिक सावनाहर्गणोऽतो "दर्शाग्रत सक्रमकालत प्राक् सदैव तिष्ठत्यधिमासशेषमित्युक्त" तिथ्यन्तकालिक सावनाहर्गणे ऽवमशेषयुक्ते तदा सूर्योदयकालिक सावनाहर्गण $= \text{इचा} - \text{गतावम} - \frac{\text{अवमशे}}{\text{युचा}} + \frac{\text{अवशे}}{\text{युचा}}$

$$= \text{इचा} - \text{गतावम}$$

अत सर्वमुपपन्नम् ॥

अथ सृष्ट्यादितो भुवि लोकैर्वारगणना कथ समारब्धेति निर्णीयते। सृष्ट्यादिर्नाम लङ्का प्रथम सूर्योदयकालो भूस्थजनाना दिनार्धरात्र्यर्धास्तकाल स्यात्। स कालो यदि सर्वेषा रविवारीय एव स्वीक्रियते तदा रेखात पश्चिमे दोषापत्तिर्भवेद्यथा। इष्टात्पर य सूर्योदयस्तस्मात्परमग्रिमदिनगणनाऽऽरभ्यते लोकैरिति युक्तव्यवहारेण रेखात पश्चिमे प्रथमसूर्योदयात्पर सोमवारगणना स्यात्। अतएवार्कोदयादूर्ध्वमधश्च ताभिरित्यादिना सृष्ट्यादिकाल एव सोमवारप्रवृत्तिकाल स्यादिति सिद्धस्तदसङ्गतम्। नोचेत् सृष्ट्यादिकालात्पर यदा यदा यत्र यत्र प्रथम सूर्योदयस्तदा तदा तत्र तत्र रविवार इति कल्प्येत तदा रेखात प्राच्या प्रथमसूर्योदयात्पर यो लङ्काद्वितीयसूर्योदय सोमवारप्रवृत्तिकाल स एवार्कोदयादूर्ध्वमधश्च ताभिरित्यादिना रविवार प्रवृत्तिकाल सिद्ध्यति। रेखात प्राच्या दोषापत्तिरतो रेखात पश्चिमे प्रथमसूर्योदयात्पर रविवारगणना प्राच्या सोमवारगणना समारब्धेति। एतेन लंकाय स्पष्टवार स एव सर्वत्र स्पष्टवार इति सिद्ध ।

अथ लङ्का सूर्योदयकालीन मध्यमतिथेरज्ञानात् स्वदेशोदयकालीन स्पष्टतिथिमेव लङ्कोदयकालीनमध्यमतिथिं मत्वाऽहर्गणानयन कृतमाचार्येण । अत स्वदेशोदयकाले या स्पष्टतिथि सैव लङ्कोदयकाले मध्यमतिथिर्भविष्यति नवेति विचार ।

अथ मध्यरवि±रमफ=स्पष्टरवि =स्पर
मध्यच±चमंफ=स्पष्टचन्द्र =स्पच अनयोरन्तरे द्वादशभक्ते तदा स्पष्टति=

$$\frac{\text{मच}\sim\text{मर}\pm\text{चमफ}\pm\text{रमफ}}{१२}=\frac{\text{स्पच}-\text{स्पर}}{१२}=\text{स्पति}=\text{मति}\pm\frac{\text{रमच}\mp\text{रमफ}}{१२}$$

$$\text{यत}\quad \frac{\text{स्पच}-\text{स्पर}}{१२}=\text{स्पति},\ \frac{\text{मच}-\text{मर}}{१२}=\text{मति}$$

अथ परमचन्द्रमन्दफलम्=५°।२′।८″ अनयोर्योग
परम रवि मन्दफलम्=२°।१०′।३१″
परम च म फ+परपफ=७°।१२′।३६″ < १२°

अत परमस्पति~परममति $=\frac{७°।१२′।३६″}{१२}<१$ अत परममपि स्पष्टमध्यमतिथ्योरन्तरमेकतिथ्यल्पमेवेति सिद्धम् । एतेन मध्यम तिथ्यन्तात् पूर्वं परतो वा $\frac{\text{च य फ}\times\text{र म फ}}{१२}$ एतत्तुल्यान्तरे स्पष्टतिथ्यन्तोऽभूद्भविष्यतीति सिद्धम् । अत स्वदेशोदयकाले या स्पष्टतिथि सैव लङ्कोदयकाले मध्यमतिथि कदाचिदेव स्यादिति निर्णीतम् । तेनाहर्गणोऽभीप्टवारार्थ सैको निरेकश्च कार्य । परञ्चात्र स्वदेशोदयकालीन स्पष्टतिथिर्लङ्कोदयकालीनमध्यमतिथिर्न स्यात्तदा साधिताहर्गण सान्तर एव, तदप्यन्तर तिथ्यन्तरतुल्यमेव अतो यावत्स्वदेशोदयकालीन स्पष्ट तिथि लङ्कोदयकालीन मध्यमतिथ्योरन्तर रूपतुल्य तावदेव सैकनिरेकरूप-संस्कार शोभन । यावच्चोक्ततिथ्योरन्तर =२, यथा स्वदेशोदयकाले स्पष्ट तिथि =५ मी, मध्यमतिथि =६ष्ठी, स्वदेशोदयकाले स्पष्टतिथि =६ष्ठी, मध्य मतिथि =७मी, एवमित्यादि तावद्द्विसंस्करणमेव भवितुमर्हति । अतोऽत्र तावत्सर्वत्र द्विसंस्करणस्य योग्यता भवति नवेति निर्णीयते । कस्या अपि मध्यमतिथे रादितो मध्यम स्पष्टतिथ्यन्तर परम यत्तत्तुल्यमग्रतो दानेन यो बिन्दुस्तत्पर्यन्तमेतत्पूर्व-स्पष्टतिथेरन्तबिन्दुरागमिष्यति न कदापि तदग्रे ।

घ प वि

मध्यमगत्यन्तरम्=७३१ । २७ अतो मध्यमतिथिप्रमाणम्=५९ । ३ । ३८
मध्यमस्पष्ट तिथ्यन्तरपरमाल्प मध्यमसावन घट्यादि =३५ । २६ । २६
मध्यमस्पष्ट तिथ्यन्तान्तर परम स्पष्टसावनघट्यादि =३६ । १८ । २६
(५९ । ३ । ३८)—(३६ । १८ । २६)=१६ । ४५ । ६ (क)

कमानमस्मादल्प कदापि न स्यात् । अतोऽस्य कमानस्यान्तबिन्दुलङ्कोदयकाले कल्पिते सिद्ध यद्रेखात प्राच्या यस्मिन् देशे चर देशान्तरयोग कमानतुल्यस्तद्देश-

पर्यन्त कदापि द्विसस्करणस्य योग्यता न स्यात् । एव रेखात प्रतीच्याम् । अत एक-सस्करण सर्वदेशिकत्व द्विसस्करणस्याल्पदेशिकत्व सिद्धम् । तेनैकसस्करणमेव युक्तियुक्तमिति ।

आचार्यवटेश्वरेणाहर्गणानयने विशेषविचारो न कृतोऽनस्तत्सम्बन्धे किञ्चिदुच्यते । अहर्गणानयनेऽभीष्टाहश्चैत्राद्यन्तरे ये स्पष्टमासादयश्चान्द्रास्तेषामेव प्रयोजनम् । तत्र तदन्तरेऽङ्गुल्यधिकरणगणनया यावन्तो मासा उपलब्धास्त एव गृहीता सन्ति । अतएवाभीष्टाहश्चैत्राद्यन्तरे स्पष्टोऽधिमास पतितोऽस्ति चेत्तदा तज्जनिताशुद्धिरहर्गणेऽवश्य पतिष्यतीति विशेष क्रियते । तत्रेष्टतिथ्यन्तसौरान्तयोरन्तरस्थोऽधिशेषो मासाल्प कदाचिन्मासोऽपीत्यहर्गणानयनवासनोक्त स्मर्तव्यमिति ।

यदि स्पष्टोऽधिमास पतितोऽस्ति तदा यद्यधिशेष एकमासस्तदाऽधिमासानयनेन गताधिमासा ये आगमिष्यन्ति तेष्वेवेवास्याप्यागमात्साधिताहर्गण शुद्ध एवात सस्कारो न कर्त्तव्य । यदाऽधिशेषो मासाऽल्पस्तदाऽऽगताधिमासान् सैकान् कृत्वाऽहर्गण साध्य । "अन्यथेष्टतिथ्यन्त—३० तिथि" एतत्तुल्यतिथ्यन्त कालिकाहर्गण आगमिष्यतीति दोषापत्ति —

यदि च स्पष्टोऽधिमासोऽपतितोऽस्ति तदा यद्यधिशेषो मासाल्पस्तदाऽहर्गण शुद्ध एवातोऽन सस्कारो न कर्त्तव्य । यद्यधिशेष एकमासस्तदाऽऽगताधिमासान् निरेकान् कृत्वाऽहर्गण साध्य । 'अन्यथेष्टतिथ्यन्त + ३० तिथि' एतत्तुल्यस्तिथ्यन्तकालिकाहर्गण आगमिष्यतीति दोषापत्ति । अथ यदेवमहर्गण सस्कर्त्तव्यस्तदाऽधिशेषश्चैत्रादयो मासाश्च किंविशिष्टा ग्राह्याश्चन्द्रार्कसाधने तदर्थविचार ।

उक्त प्रथमसस्कारकाले आगताधिशेष $=\frac{\text{अशे}}{\text{कसौ}}$, वास्तवाधिशेष $=\frac{\text{अधिशे}}{\text{कसौ}}+\frac{\text{कअमा}\times ३०}{\text{कसौ}}=\frac{\text{अशे}+३०\ \text{कअमा}}{\text{कसौ}}$, उक्त द्वितीयसस्कारकाले च

आगताधिशे $=\frac{\text{अशे}}{\text{कसौ}}$, वास्तवाधिशे $=\frac{\text{अशे}}{\text{कसौ}}-\frac{\text{कअमा}\times ३०}{\text{कसौ}}=\frac{\text{अशे}+\text{कअमा}\times ३०}{\text{कसौ}}$

चैत्रादिगतमासाश्च क्रमेण सैकान् निरेकान् कृत्वा चन्द्रार्कौ साध्याविति । अथ वृहदहर्गणे यदोक्तसस्कारस्तदा लघ्वहर्गणे किंविशिष्ट सस्कारस्तदर्थ विचार । यदा स्पष्टोऽधिमास पतितोऽस्ति तदा यद्यधिशेषो मासस्तदा साधित चान्द्राहर्गण एव चान्द्रवर्षोर्वरितो यश्चैत्रसितादिगतस्तिथिसमूह स एव वास्तव । यदा च मासाल्पस्तदान्य सस्कार कर्त्तु युज्यते स तथाऽधिमासस्य निथिर्गृहीत्वा लघ्वहर्गण साध्य ।

यदा स्पष्टोऽधिमासोऽपतितोऽस्ति तदा यद्यधिशेषो मासाल्पस्तदा गृहीत चैत्रसितादिगत तिथिसमूह एव वास्तव । यदा चाधिशेषो मासस्तदा साधित चैत्रा-

सितादिगत तिथिसमूह—३० तिथि=वास्तव चैत्र सितादिगत तिथिसमूह । अतोऽत्र वास्तवशेष =चैसिगतिथिसमूह—३०—शुद्धि=चैसिगति समूह—(३०+शुद्धि) एतावता यत्तिथिसंघे संस्कृत तस्लुद्धावेव मस्तनमभूदिति स्फुट दृश्यते ।। एतावता स्पष्टोऽधिमास पतितोऽथोत्यारभ्य शुद्धया तदा खदहर्नरित्यन्त भास्करोक्त सम्यगुपपद्यते सूर्यसिद्धान्तकार-सिद्धान्तशेखरकारादिभिरेतद्विषये किमपि न कथ्यते । तैस्तु लघ्वहर्गणानयनमपि न कृतम् ।

वटेश्वरेण क्षयमास सम्बन्धे न विशेषरूपेण विचार कृतोऽस्तत्सम्बन्धे किञ्चिद्विचार्यते । यदा स्पष्टचामा>स्पसौमा तदैव क्षयमासोऽत्र कदैवमित्यन्विष्यते ।

उच्चस्थाने स्परग=मरग— रमगतिफल$\frac{१ \text{ सा}० १८००}{\text{मरग—रमगफ}}$= स्पष्टसौमासान्त पासावन

तथा $\frac{१ \text{ सा}० १८००}{\text{मरग}}$=मसौरमासान्त पातिसावन अतोऽत्र स्पसौमा>मसौमा

अथ यदा चगफ=० तदा $\frac{१ \text{ सा} \times २१६००}{\text{मच—(मरग—रमगफ)}}$=स्पष्ट चामासान्त पातिसावन

तथा $\frac{१ \text{ सा} \times २१६००}{\text{मचग—मरग}}$=मचान्द्रमासान्त पातिसावन मचामा>स्पचामा

$\frac{१ \text{ सा} \times १८००}{\text{मरग}}$=मसौमासान्त पाति सावन, $\frac{\text{मचग}=७९०' । ३५''}{\text{मरग}=५९' । ८'}$ द्वयोरन्तरकरणेन ७३१' । २७''>५९' । ८'' मसौमा>मचामा

अत स्पसौमा>मसौमा>मचामा>स्पचामा

तथा कक्षा मध्यगतिर्यत्रे स्वा प्रतिवृत्तसम्पाते मरग=स्परग स्पसौमा=मसौमा तथा स्पचामा=मचामा तत्रापि स्पसौमा=मसौमा>मचामा=स्पचामा स्पसौमा>स्पचामा, अथ नीचस्थाने

$\frac{१ \text{ सा} \times १८००}{\text{मरग+रमगफ}}$=स्पसौमासान्त पासावन । मसौमा>स्पसौमा

$\frac{१ \text{ सा} \times २१६००}{\text{मचग-(मरग+रमगफ)}}$=स्पष्ट चामासान्त पासावन मचामा<स्पचामा

एतावता स्पसौमा<मसौमा>मचामा <स्पचामा मध्यमसौरमासात् स्पष्टसौरमासमध्यमचान्द्रमासयोरल्पत्वेन स्पसौमा<=>मचामा एतत्त्रयमपि सम्भाव्यते तथा स्पसौमा<=>स्पचामा एतत्त्रयमपि सम्भाव्यते निर्णायकाभावात् । अतोऽत्र

गणितमेव शरणम् । नीचे रविमन्दगतिफलम्=२ । १४″ रविमध्यगति=५९′ । ८″ अनयोर्योग ६१′ । २२″ =स्परग

$$\frac{१ सा \times १८००}{स्परग} = \frac{१८००}{६१।२२} = २९ । २० = स्पसौमा ।$$

मचग=७९०′ । ३५″ स्परग=६१′ । २२″, अनयोरन्तरम्=७२९′ १३″ $\frac{१ सा \times २१६००}{७२९ ।१३}$ = २९ । ३७ एव यदा स्यात्तदा प्रत्यक्षत स्पसौमा < स्पचामा इति दृश्यते अत क्षय मासलक्षण कदाचित्स्यादिति प्रतीतिर्जाता ।

पर कदा स्पचामा=स्पसौमा इत्यन्विष्यते ।

$$\frac{२१६००}{मचग-(मरग+रमगफ)} = \frac{१८००}{मरग+रमगफ} = छेदगमेन$$

२१६०० (मरग+रमगफ)= १८००{मचग—(मरग+रमगफ)}अपवर्त्तनन

१२ (मरग+रमगफ)=मचग—(मरग+रमगफ)=१२ मरग+१२ रमगफ

=मच ग—मरग—रमगफ समयोजनादिना

१२ मरग+१३ रमगव=मचग -मरग १३ रमगफ=मचग—१२ मरग —मरग = १३ मरग

$$रमगफ = \frac{मचगम—१३मरग}{१३} = \frac{मचग}{१३} - मरग = ४ । ४१$$

एतेन सिद्ध यद्यदा रवेमर्मन्दगतिफल (१ ।४१) भवेत्तदा स्पचामा = स्पसौमा एव स्यादिति ।

अथ कस्मिन् स्थले १ । ४१ इद रवेर्मन्दगतिफल भवेत्तदर्थविचार ।

तत्कोटिजीवा धृतवाणभक्त त्यादि भास्करोक्त्या $\frac{लब्धी केन्द्रकोज्या}{५४} = १।४१$

=रमगफ लब्धीकेकोज्या = ५४ (१ । ४१) = ५४ । २२१४ = ९० । ५४ अस्याश्चापम् तथा कर्त्तव्य यथा भोग्यखण्डा स्फुटीकरण निरपेक्ष शुद्धमानमागच्छेत् — तद्यथा ।

$$\frac{(९०।५४)\ ३४३८}{१२०} = \frac{(९०।५४)५७३}{२०} = (४′।३२″ । ४२‴)५७३ = २२९० ।$$

१८३३६, २४०६६, २६०४ ज्या प्रोह्य तत्त्वाश्विहृतावशेषमित्यादिना चापम् = ४२° । १५′ = केन्द्रकोटि, अत केन्द्राश = (४६ + ९०)+ (० । १५) = १३६ + (० । १५) = ४।१६° । १५′ अत्र वर्त्तमानकालीन रवेर्मन्दोच्चम् =
रा
२।१८° एतद्युन तदा केन्द्राश+मन्दोच्च=

रा　　　　　　　　रा　　　रा
(४।१९°।१५′) +(२।१८°) = ७।७°।१५′ अर्थाद् वृश्चिके गतेर्ऽर्क स्पष्टामा = स्पसौमा एव भविष्यतीति सिद्धम् । अतोऽस्मात्कालादारभ्य पुनर्यदैतत्तुल्य गतिफल स्यात्तावत्कालपर्यन्त क्षयमासपात सम्भाव्यते । किञ्च नीचात्तुल्यान्तर उभयतस्तुल्यमेव गतिफल स्यादत २७० — (४९।१५) = २२०°।४५′ =

रा　　　　　　　　　　　　　　गा　　　　　　　　गा
७।१०°।४५′ अत्र मन्दोच्चयोजनेन (७। १०°।१५′) + (२।१८°) =

रा
९।२८°।४५′ अर्थात्मकरान्तपर्यंत यावद्रविर्गमिष्यति तावदेव क्षयमाससम्भवोऽतो भास्करेण "क्षय कार्त्तिकादित्रयेऽन्यत स्यादित्युक्तम्"

अथ यदा क्षयमासो भवति तदा वर्षमध्येऽधिमासद्वय भवतीति निरूप्यते यदा क्षयमासपातस्तदा य स्पष्टसौरमास स्पष्टचान्द्रमासोदरे पतितस्तदाऽऽदि सङ्क्रान्तिबिन्दावधिमासानयनेन सावशेषा ये गताधिमासास्तत्राधिशेषमल्पतरमेव भवतीति दर्शनादवगम्यते । अत क्षयमासपातकालात्पूर्वं मासान्तेऽवश्यमधिमासपात स्यात् । एवमेतद्दर्शनादेवान्तसङ्क्रान्तिबिन्दौ यदधिशेषमागच्छति तत्किञ्चिन्न्यून-माससममित्यवगम्यतेऽतोऽग्रेऽवश्य मासासन्नेऽधिमासपातो भविष्यतीति वर्षमध्येऽ धिमासद्वय भवेदेवेति, सर्वं भास्करेण एव सिद्धान्तशिरोमणौ स्फुट लिखित-मस्तीति ।

उत्पत्ति

हि भा —"कजन्मनाऽष्टौ मदला समाययु" इत्यादि स सृष्ट्यादि से वर्तमान कल्प के जितने युग वर्ष बीते हैं उनका नाम गत वर्ष रखिये । तब गव $\times$ १२ = गत सौरमास इसमें चैत्रादि गत चान्द्रमास तुल्य ही सौरमास जोडने से सृष्ट्यादि से गत सौरमास होंगे ।

गव $\times$ १२ + गतचान्द्रमास तुल्य सौरमास = सृष्ट्यादि से गत सौर मास = ग०सौरमास दिनात्मक करने से गत सौरदि = (गव $\times$ १२ + गत चान्द्रमास तुल्य सौरमास) $\times$ ३० इसमें इष्ट तिथितुल्यसौरदिन जोडने से (गव $\times$ १२ + गत चान्द्रमास तुल्य सौर मास) $\times$ ३० + इष्टति = इसौरदिन, तब "यदि युगसौर दिन म युगाधिमास पाते हैं तो इष्ट सौरदिन म क्या इस अनुपात से $\frac{\text{युगाधि मास} \times \text{इसौ}}{\text{युसौ}}$ = गताधिमास + $\frac{\text{अधिशे}}{\text{युचा}}$ यहाँ पहले गतसौर मास म चैत्रादि गत चान्द्रमास तुल्य सौरमास जोडे थे इसलिये सौर चान्द्र के अन्तर तुल्य अधिशेष अधिक जोडा गया था । अत अनुपातागत अधिशेष को यदि छोड देते हैं तो उस त्रुटि का (पहले अधिशेष तुल्य अधिक लेने का) निराकरण हो जायगा इसलिये केवल गताधिदिन का इष्ट सौर दिन में जोडने से तिथ्यन्तकालिक चान्द्राहर्गण होगा इसौदि + गताधिदिन = तिथ्यन्त कालिक चान्द्राहर्गण तब युगचान्द्र में युगावमदिन पाते हैं

= इचा

तो इष्टचान्द्र दिन में क्या इस अनुपात से

$\frac{\text{युगावम} \times \text{इचा}}{\text{युचा}} = \text{गतावम} + \frac{\text{अवशे}}{\text{युचा}}$ इष्ट चान्द्राहर्गण मे घटाने से

$\text{इचा} - \text{गतावम} - \frac{\text{अवशे}}{\text{युचा}} =$ तिथ्यन्त कालिक सावनाहर्गण, इसमे अवम शेप जोडने से

सूर्योदय कालिक सावनाहर्गण होगा, $\text{इचा} - \text{गतावम} - \frac{\text{अवमशे}}{\text{युचा}} + \frac{\text{अवशे}}{\text{युचा}}$

$= \text{इचा} - \text{गतावम} =$ सूर्योदयकालिक सावनाहर्गण।

पृथ्वी पर सृष्टयादि काल से वारगणना क्यो आरम्भ की गई इसका निर्णय करते हैं। लङ्का प्रथम सूर्योदय काल का नाम सृष्टयादि है। यह काल यदि सब के लिये रविवारीय स्वीकार करते हैं तब रेखा से पश्चिम मे दोपापत्ति होगी। इष्ट दिन के बाद जो सूर्योदय होता है उसके बाद अगले दिन की गणना आरम्भ करते है यही वारगणना के लिये व्यवहार है। इस तरह व्यवहार युक्त गणना से रेखा से पश्चिम देश मे प्रथम सूर्योदय के बाद सोमवार गणना होती है। इसलिये "अर्कोदयादूर्ध्वमधश्च ताभि-रित्यादि से सृष्टयादि काल ही सोमवारप्रवृत्तिकाल है यह सिद्ध हुआ पर यह असङ्गत है। यदि नही तो सृष्टयादि के बाद जहाँ जहाँ जब जब प्रथम सूर्योदय होगा वहाँ वहाँ तब तब रविवार कल्पना करने से रेखा से पूर्व मे प्रथम सूर्योदय के बाद जो लङ्का द्वितीय सूर्योदय सोमवार प्रवृत्ति काल है वही अर्कोदयादूर्ध्वमधश्च ताभिरित्यादि से रविवार प्रवृत्तिकाल सिद्ध होता है। रेखा से पश्चिम मे दोपापत्ति होती हैं इसलिये रेखा से पश्चिम मे प्रथम सूर्योदय के बाद रविवार गणना रेखा से पूर्व मे सोमवार गणना आरम्भ हुई।

लङ्का सूर्योदय कालिक मध्यमतिथि के नही विदित होने के कारण स्व-देशोदयकालिक स्पष्ट तिथि को लङ्कोदयकालिक मध्यमतिथि मान कर आचार्य ने अहर्गणान-यन किया हैं इसलिये स्वदेशोदयकाल मे जो स्पष्टतिथि है वही लङ्कोदयकाल मे मध्यमतिथि होगी या नही इसके लिये विचार करते हैं।

मध्यमरवि $\pm$ रविमफल $=$ स्पष्टरवि $=$ स्पर $=$ मर $\pm$ रमफ

मध्यमचन्द्र $\pm$ चन्द्रमफल $=$ स्पष्टचन्द्र $=$ स्पच $=$ मच $\pm$ चमफ

दोनो के अन्तर को बारह से भाग देने पर $= \frac{\text{मच} \sim \text{मर} \pm \text{चमफ} \mp \text{रमफ}}{१२} = \frac{\text{स्पच} - \text{स्पर}}{१२}$

$= \text{स्पति} = \text{मति} \pm \frac{\text{चमफ} \pm \text{रमफ}}{१२} \because \frac{\text{स्पच} - \text{स्पर}}{१२} = \text{स्पष्टतिथि} = \text{स्पति}।\ \frac{\text{मच} - \text{मर}}{१२}$

$=$ मध्यमतिथि $=$ मति

अथ परमचन्द्रमन्दफल $= ५^\circ \mid २' \mid ८''$ दोनो के योग करने से $७^\circ\ १२' \mid ३९'' < १२$

परम रवि मन्दफल $= \frac{२^\circ \mid १०' \mid ३१''}{७^\circ \mid १२' \mid ३९''}$

इसलिये परम स्पति—परममति $= \frac{७' \mid १२'' \mid ३९''}{१२} < १$ इससे स्पष्ट है कि

परमस्पष्ट तिथि और परममध्यम तिथि का अन्तर एक तिथि से छोटा होता है, इसलिये मध्यमतिथ्यन्त से पहले या पीछे $\frac{\text{च म फ}\pm\text{रमफ}}{१२}$ इतने अन्तर पर स्पष्टतिथ्यन्त हो गया रहेगा या होगा यह सिद्ध हुआ, अतः स्वदेशोदयकाल में जो स्पष्टतिथि होगी वही लङ्कोदय काल में मध्यमतिथि कभी ही होगी—इसीलिये वार (दिन) लाने के लिये साधित अहर्गण में एक जोडना चाहिये या घटाना चाहिये। लेकिन यदि स्वदेशोदय कालिक स्पष्टतिथि मध्यमतिथि नहीं होगी तब साधित अहर्गण में कुछ अन्तर पड़ेगा, वह अन्तर भी तिथ्यन्तर के बराबर होता है इसलिये जब तक स्वदेशोदयकालिक स्पष्टतिथि लङ्कोदयकालिक मध्यमतिथि का अन्तर एक के बराबर होगा तभी तक "एक जोडना या घटाना" इस तरह का संस्कार ठीक है। जब तक दोनों तिथियों का अन्तर=२ है, जैसे स्वदेशोदयकाल में स्पष्टतिथि=५ मी है, मध्यमति=६ठी या स्वदेशोदय काल में स्पष्टतिथि=६ ठी है, मध्यमतिथि=७ मी इत्यादि तब तक अहर्गण में दो संस्कार करना चाहिये, किसी मध्यमतिथि के आदि से परमस्पष्ट मध्यमतिथि के अन्तर तुल्य आगे दान देने से जो विन्दु होता है, उस विन्दु पर्यन्त इससे पूर्व स्पष्टतिथ्यन्त विन्दु आवेगा कदापि उससे आगे नहीं,

घटी प. वि

रविचन्द्र के मध्यमगत्यन्तर=७३१ । २७ . मध्यमतिथि प्रमाण=५९ । ३ । ३८

मध्यम और स्पष्टतिथ्यन्तर परमाल्प मध्यमसावन घट्यादि=३५ । २९ । २६

मध्यम और स्पष्टतिथ्यन्तर परमाधिक स्पष्टसावनघट्यादि=३९ । १८ । २६

(५९ । ३ । ३८)—(३९ । १८ । २९)=१९ । ४५ । ९ (क)

क मान इससे छोटा कभी भी नहीं होता है, इसलिये इस 'क' मान के अन्त विन्दु को लङ्कोदयकाल में मानने से सिद्ध होता है कि रेखा से पूर्व जिस देश में चर और देशान्तर का योग (क) मान के बराबर होता है उस देश तक दो संस्कार की सम्भावना किसी भी तरह नहीं हो सकती है। इसी तरह रेखा से पश्चिम देश में भी विचार करना, इसलिये अहर्गण में एक संस्कार की व्यापकता, दो संस्कार की अव्यापकता सिद्ध हुई। अतः एक संस्कार ही ठीक है॥

आचार्य वटेश्वर ने अहर्गणानयन में विशेष विचार नहीं किया है इसलिए उसके सम्बन्ध में कुछ विचार करते हैं। अहर्गणानयन में अभीष्टदिन और चैत्रादि के अन्तर में जो स्पष्ट चान्द्रमासादि होते हैं उन्हीं का प्रयोजन होता है वहाँ उनके अन्तर में गणना करने से जितने मास उपलब्ध होते हैं वे ही ग्रहण किये गये हैं। इसलिए यदि इष्टदिन और चैत्रादि के अभ्यन्तर में स्पष्टाधिमास पतित हो तो तज्जनित त्रुटि अहर्गण में अवश्य होगी। वहा इष्टतिथ्यन्त और सौरान्त के मध्य में जो मासात्मक अधिशेष है वह कभी एक महीना के बराबर भी होता है यह बात अहर्गणानयन की उपपत्ति देखने से साफ होती है।

यदि स्पष्टाधिमास पतित है तब अधिशेष यदि एक मास के बराबर है तब अधिमास

साधन से जो गताधिमास आवेंगे उन्ही मे इसके भी आने से साधिताहर्गण शुद्ध ही होता है इसलिए किसी सस्कार की जरूरत नही होती है। यदि अधिशेष एक मास से अल्प हो तब अधिमासानयन से जो गताधिमास आवे उनमे एक जोडकर अहर्गण साधन करना चाहिए नही तो इष्टतिथ्यन्त—३० तिथि एतत्तुल्य तिथ्यन्त कालिक अहर्गण आने से दोषापत्ति होती है।

यदि स्पष्टाधिमास अपतित है तब यदि अधिशेष मासाल्प हो तो अहर्गण शुद्ध ही होता है इसमे किसी सस्कार की जरूरत नही होती है। यदि अधिशेष एक महीना के बराबर हो तो अधिमासानयन से जो गताधिमास आवे उनमे एक घटाकर अहर्गणानयन करना चाहिए नही तो "इष्टतिथ्यन्त + ३० तिथि" एतत्तुल्य तिथ्यन्तकालिक अहर्गण आने से दोषापत्ति होती है। यदि अहर्गण मे इस तरह के सस्कार होते हैं तब अधिशेष और चैत्रादि मास किस तरह ग्रहण करना चाहिए चन्द्रमा और रवि के साधन के लिए, उसके लिए विचार करते है।

प्रथम सस्कार के अवसर मे आगताधिशे $= \dfrac{\text{अधिशे}}{\text{कसौ}}$, वास्तवाधिशे $= \dfrac{\text{अधिशे}}{\text{कसौ}} + \dfrac{\text{कअमा ३०}}{\text{कसौ}} = \dfrac{\text{अधिशे} + \text{कअमा} \times \text{३०}}{\text{कसौ}}$, द्वितीय सस्कार समय मे आगताधिशे $= \dfrac{\text{अधिशे}}{\text{कसौ}}$ वास्तवाधिशे $= \dfrac{\text{अधिशे}}{\text{कसौ}} - \dfrac{\text{कअमा} \times \text{३०}}{\text{कसौ}} = \dfrac{\text{अधिशे} - \text{कअमा} \times \text{३०}}{\text{कसौ}}$ चैत्रादि गत मासो मे सैक और निरेक कर चन्द्रमा और रवि के साधन करना चाहिए। बृहदहर्गण मे जब इस तरह के सस्कार किये जाते है तब लघ्वहर्गण मे किस तरह के सस्कार करना चाहिए इसके लिए विचार करते हैं।

यदि स्पष्टाधिमास पतित है तब अधिशेष एक महीना के बराबर हो तो चान्द्राहर्गण ही मे चान्द्रवर्ष के उर्वरित जो चैत्र सितादि गततिथि समूह है वही वास्तव है।

यदि अधिशेष मासाल्प है तब जो सस्कार करना चाहिए वह और अधिमास की तिथि लेकर लघ्वहर्गण साधन करना चाहिए।

यदि स्पष्टाधिमास अपतित है तब अधिशेष यदि मासाल्प हो तो जो चैत्र सितादिगत तिथिसमूह लिया गया है वही वास्तव है। यदि शेष एक महीना के बराबर हो तो साधित चैत्रसितादिगत तिथिसमूह — ३० तिथि = वास्तव चैत्रसितादिगत तिथिसमूह, इसलिए यहा वास्तवचै = चैसिगततिथिसमूह—३०—शुद्धि = चैसिगतिसमूह — (३०+शुद्धि) इसको देखने से स्पष्ट है कि जिसको तिथिमध्य मे सस्कार करना चाहिए वह शुद्धि ही मे किया गया है। इन सब मे "स्पष्टोऽधिमास पतितोऽपि" इत्यादि से लेकर 'शुद्धया तदा सदहर्गणयुतया" यहा तक भास्करोक्त उपपन्न होता है॥ सूर्यसिद्धान्तकार और सिद्धान्त शेखरकार ने इन विषयो मे कुछ भी नही कहा है। उन्होंने लघ्वहर्गणानयन भी नही किया है। वटेश्वराचार्य क्षयमास के विषय मे विशेषविचार नहीं किया है इसलिए उसके सम्बन्ध मे कुछ विचार करते हैं॥

जब स्पचामा > स्पसौमा तभी क्षयमास होता है इसलिए कब इस तरह की स्थिति होती है। इसके लिए विचार करते हैं।

उच्चस्थान में स्परग = मरग — रमगफ, $\frac{१ \text{ मा} \times १८००}{\text{मरग} - \text{रमगफ}}$ = स्पष्ट सौरमासान्त पातिसावन

तथा $\frac{१ \text{ मा} \times १८००}{\text{मरग}}$ = मध्यम सौमासान्त पातिसावन। ∴ स्पसौमा > मसौमा

जब चगफ = ० तब $\frac{१ \text{ सा} \times २१६००}{\text{मच} - (\text{मरग} - \text{रमगफ})}$ = स्पष्टचान्द्रमासान्त पातिसावन

तथा $\frac{१ \text{ सा} \times २१६००}{\text{मचग} - \text{मरग}}$ = मध्यम चान्द्रमासान्त पासावन

मचामा > स्पचामा। $\frac{१ \text{ सा} \times १८००}{\text{मरग}}$ = मसौरमासान्त पासावन

मचग = ७९०'। ३५''
मरग = ५९'। ८''
दोनों के अन्तर = ७३१'। २७'' > ५९'। ८''
मसौमा > मचामा

अत स्पसौमा > मसौमा > मचामा > स्पचामा।

तथा कक्षा मध्यगतिर्यग्रेखा प्रतिवृत्त का सम्पात में मरग = स्परग। ∴ स्पसौमा = मसौमा तथा स्पचामा = मचामा वहां भी स्पसौमा = मसौमा > मचामा = चामा स्पसौमा > स्पचामा।

नीचस्थान मे $\frac{१ \text{ सा} \times १८००}{\text{मरग} + \text{रमगफ}}$ = स्पष्टसौरमासान्त पातिसावन, मसौमा > स्पसौमा

$\frac{१ \text{ सा} \times २१६००}{\text{मचग} - (\text{मरग} + \text{रमगफ})}$ = स्पचामासान्त पासावन   मचामा < स्पचामा।

इससे सिद्ध होता है कि

स्पसौमा < मसौमा > मचामा < स्पचामा, मध्यम सौरमास से स्पष्ट सौरमास और मध्यमचान्द्र मास से अल्प होने के कारण स्पसौमा < = > मचामा ये तीनों हो सकते हैं। तथा स्पसौमा < = > स्पचामा ये भी तीनों हो सकते है। इसलिए यहां गणित ही शरण है।

नीचस्थान मे रविमन्दगफ = २'। १४''
रविमध्यग = ५९'। ८''
दोनो के योग = ६१'। २२'' = स्परग

∴ $\frac{१ \text{मा} \times १८००}{\text{स्परग}} = \frac{१८००}{६१ । २२}$ = २९। २० = स्पसौमा

मचग = ७९०'। ३५''
स्परग = ६१'। २२''
दोनो के अन्तर = ७२९'। १३''

∴ $\frac{१ \text{ मा} \times २१६००}{७२९ । १३}$ = २९। २७

ऐसी स्थिति में प्रत्यक्ष देखने में आता है कि स्पसौमा < स्पचामा इसलिए क्षयमास का लक्षण कभी होता है यह प्रतीति हुई। लेकिन कब स्पचामा = स्पसौमा इसके लिए विचार करते हैं।

$$\frac{२१६००}{\text{मचग} - (\text{मरग} + \text{रमगफ})} = \frac{१८००}{\text{मरग} + \text{रमगफ}}$$ छेदगम करने से

२१६०० (मरग + रमगफ) = १८०० {मच ग — (मरग + रमगफ)}

अपवर्त्तन देनेसे १२ (मरग + रमगफ) = मचग — (मरग + रमगफ) = १२ मरग + १२ रमगफ = मचग — मरग — रमगफ संशोधन करने से १२ मरगफ + १३ रमग = मचग — मरग

∴ १३ रमगफ = मच ग — १३ मरग

$$\therefore \text{रमगफ} = \frac{\text{मच ग} - १३\ \text{मरग}}{१३} = \frac{\text{मच ग}}{१३} - \text{मरग} = १ । ४१$$

इससे सिद्ध होता है कि जब रवि के मन्दगतिफल (१ । ४१) इतना होगा तब स्पचामा = स्पसौमा ऐसा होगा।

किस स्थान में (१ । ४१) इतना रवि के मन्दगति फल होता है इसके लिए विचार।

तत्कोटिजीवाहृतवाणभक्ता इत्यादि से $\frac{\text{लघुकोज्या}}{५४}$ = १ । ४१ = रमगफ, लकेन्द्रकोज्या = (१ । ४१) × ५४ = ५४ । ७२१४ = ९० । ५४, इसके चाप करते हैं।

$$\frac{(९० । ५४)\ ३४३८}{१२०} = \frac{(९० । ५४)\ ५७३}{२०} = (४' \ । \ ३२'' \ । \ ४२''')\ ५७३ =$$

२२९७, १८३३६, २४०६६, २६०४ ज्या प्रोह्यतत्त्वाश्विहृतावशेष इत्यादि से चाप = ४२° । १५' = केन्द्रकोटि इसलिए केन्द्रांश = (४६।९०) + (०।१५) = १३६ + (०।१५)

रा
= ४ । २६° । १५' इसमें वर्तमानकालीन रविमन्दोच्च जोड़ने से

रा रा रा
(४ । २६° । १५') + (२ । १८°) = ७ । ७° । १५' अर्थात् रवि के वृश्चिक में रहने से स्पचामा = स्पसौमा ऐसा होता है यह सिद्ध हुआ। इसलिए उस काल से लेकर फिर जब एततुल्य गतिफल होगा तावत्काल पर्यन्त क्षयमास पात की सम्भावना होगी। लेकिन नीच स्थान से दोनों तरफ तुल्यान्तर में तुल्य ही गतिफल होता है इसलिए २७०—(४६ । १५)

रा रा
= २२०° । ४५' = ७ । १०° ४५' यहां रवि के मन्दोच्च जोड़ने से (७ । १०° ।

रा रा
४५') + (२ । १८°) = ९ । २८° । ४५ अर्थात् मकरान्त पर्यन्त जब तक रवि जायेंगे तभी तक क्षयमास सम्भव होता है इसलिए भास्कर ने "क्षय कार्तिकादित्रयेनान्यतः" इत्यादि ठीक ही कहा है। जब क्षयमास होता है तब वर्ष के मध्य में दो अधिमास होते हैं। इसके लिए विचार करते हैं॥

जब क्षयमास पात होता है तो स्पष्ट सौरमास स्पष्ट चान्द्रमास के मध्य ही में पर

जाता है तव प्रथम सक्रान्ति विन्दु म अधिमासानयन से अधिशेष सहित जो गताधिमास आवेगा उनमे अधिशेष बहुत छोटा होता है इसलिए क्षयमास पातकाल मे पूर्व मासान्त मे अवश्य ही अधिमासपात होता है । इसी तरह इसके देखने ही से अन्त सक्रान्ति विन्दु मे जो अधिशेष आता है वह किञ्चिन्न्यून एक मास के बराबर होता है इसलिए आगे मासान्त म अवश्य ही अधिमास पात होगा अत वर्ष मध्य म दो अधिमास सिद्ध हुए । ये सब बातें भास्कराचार्य ने अपने सिद्धान्तशिरोमणि म स्पष्ट कही हैं ॥

अथ केषु केषु शाकवर्षेषु क्षयमासोऽभूद्भविष्यत्यादेर्निर्णयार्थं विचार्यते । यदि कार्त्तिकात्पूर्वं कस्मिन्नपि मासेऽधिमासपातस्तदैव कार्त्तिकादित्रये क्षयमाससम्भव इति । किन्त्वासावधिमासपातो वर्षाद्यधिशेषस्यार्थात्प्राकनन प्राक्तन वर्षान्ताधिशेषस्य शुद्धिमङ्कस्य वशेनैव भवितु शक्यत इत्यल्पविचारेणैव स्फुटम् । उक्तशुद्धेरभाव उक्ताधिमासस्याप्यभावात् । अतो यादृशीषु शुद्धिषूक्ताधिमासपातस्तासामेवैक-तमा "यदा किलैकविंशति शुद्धिस्तदा भाद्रपदेऽधिमास " इत्थ भास्करेणोदाहृता वासना भाष्ये । अतस्तद्वत् यदोक्तशुद्धि = २१ तदा भाद्रपदोऽधिमास कथमिति विचार । मेषादिक्रमेण राशीनामाद्यन्तकालीन स्पष्टार्का = ०, १, १, २, २, ३ ११, १२ राशय एभिर्ज्ञाततात्कालिक मन्दोच्चेन २।१८° स्वस्वमध्यार्काद्विलोम-प्रकारेण साध्या । तत्राऽपन्नयोर्द्वयोर्द्वयोरन्तरेणानुपातेन $\frac{\text{(१ सा × अन्तरक)}}{\text{रमग}}$ लब्धदिनानि स्पष्टसौरमासा शिरोमणेष्टिप्पराया ते लिखिता सन्ति । अथ कन्यार्वं पूर्यमाणमासस्य भाद्रत्वेन आदित उक्तपञ्चसौरमासेषु पृथक् पृथक् चैत्रादि स्पष्ट-चान्द्रमासा कर्तुं युज्यन्ते स्वस्वस्पष्टाधिशेषावमाय । तत्रणखण्ड स्वल्पान्तरान्मध्यम-चान्द्रमाससमये व्यतीतम् प्रतिवर्षे तत्काले $\frac{\text{१ सा × २१६००}}{\text{मचग ± चगफ − (मरग + रगफ)}}$ = स्पचान्द्रमासान्त पातिसावन । अत्र "चन्द्रगतिफल" अस्य निश्चयाभावात् अथ ते शेषा

२६।३१।५०	२६।३१।५०	२६।३१।५०	२६।३१।५०	२६।३१।५०
३०।५५।२३	३१।५८।५६	३१।३७।३२	३१।२८।३५	३१। २।५२
१।२३।४३	१।३३।६	२। ५।४२	१।५६।४५	१।३१। २

१ । २३ । ४३
१ । ३३ । ६
२ । ५ । ४२
१ । ५६ । ४५
१ । ३१ । २
८ । ३२ । १८ = सर्वाधिशेष

स्वल्पान्तरात्स्पष्टभाद्रमास
(२६ । ३७ । ०) − (८ । ३२ । १८) = २१ । ४ । ३२
अतो यदा किलैकविंशति शुद्धिस्तदा भाद्रपदोधिमास इति युक्तियुक्तमेवेति ॥

अथ यादृश्या शुद्धौ तदग्रिमे वर्षे उक्ताऽधिमासपातस्तादृशी शुद्धिरग्रे पुनर्यद्वर्षान्ते स्यात्तदग्रिमे वर्षेऽवश्यमुक्ताधिमासपातेन क्षयमाससम्भव किञ्च यन्मि-तैर्वर्षै पूर्णाधिमासा लभ्यन्ते तन्मिता एव समा (वर्षाणि) उक्तशुद्धिद्वयनिष्ठवर्षा-

न्तयोरन्तरे स्यु कथमिति कथ्यते । वर्षस्यान्तेऽधिमासानयनेन गत्रमास + शु= सावयवाधिमास तदग्रे पूर्णाधिमासोत्पादकवर्षान्तेऽधिमासानयनेन

गत्रमा + एक द्विन्यधिमास + शुद्धि = गत्रमा₁ + शुद्धि = सावयवाधिमास₁ सिद्धम्, अथ कियन्मितैर्वर्षै पूर्णाधिमासास्तज्ज्ञानम् ।

$$\frac{\text{कअमास} \times १}{\text{कल्पसौरवर्ष}} = \frac{१५९३३००००००}{४३२००००००००} = \frac{५३११}{१४४००}$$

= ० + १/
२ + १/
१ + १/
२ + १/
२ + १/
६ + १/
१ + १/
१ + १/
७ + १/
३ + १/२

अथाऽऽसन्नमानग्रहणेन क्रमत एकवर्षेऽधिमास

सख्या = ०/१, १/२, १/३, ३/८, ७/१९, ४५/१२२, ५२/१४१, ९७/२६३, ७३१/१९८२, २२९०/६२०९, ५३११/१४४००,

एतद्दर्शनात्स्फुटमेतद्यत् — हरमिते वर्षे भाज्यमितोऽधिमासस्तेन यस्मिन् वर्षे क्षयमासस्तदारभ्य हारमितैर्वर्षै पुन पुन क्षयमाससम्भव । तत्रातिस्थूलत्वादाद्यचतुष्टय त्यक्तम् । शेषेषु च १९, १२२, १४१, २६३ एतानि ग्रहीतु युक्तानि पूर्वापेक्षया सूक्ष्मत्वादल्पदिनात्मकत्वेन लोके प्रतीत्युत्पत्तेश्च । तत्रापि भास्करेण मुख्यतया १९, १४१ इमावेव गृहीतौ किन्च प्रागग्रतश्चेति भास्करभाष्येण १९, १४१ — १९ = १२२ १४१ + १९ = १६०, १४१ एतानि स्वयमेव गृहीतान्यभवन् । युक्तिसिद्धमेव तत् यतो यदा क्षयमासस्तत पूर्वं परश्च १९ वर्षे क्षयमास इति युक्त्यैव सिद्धमस्ति । अतो १४१ ऽस्मादपि पूर्वं परतो १९ वर्षे क्षयमास इति सिद्धम् ।

किन्च भास्करगृहीतेभ्योऽपि सूक्ष्मस्वल्पदिनात्मकमपि २६३ इद मान भास्करेण यत न गृहीत तदर्थं सुधाकरद्विवेदिनाऽऽक्षिप्यते ।
युवेदेन्दुवर्षे यत्तनिद्गोगुवर्षैर्नवेन्द्राद्रयष्टीनै युवेदेन्दु वर्षे ।
क्षयाख्या स्थितिर्भास्करार्यैर्निरुक्ता न रामाग्निनेत्रै किमर्थं न वेद्मि ॥

हि भा —अब किन किन सौरवर्षों मे क्षयमास हो गया है और होगा इसके लिए विचार करते हैं ।

यदि कार्तिक से पहले किसी महीने मे अधिमास पात होता है तभी कार्तिकादित्रय मासो मे क्षयमास सम्भव होता है । लेकिन यह अधिमासपात वर्षादि अधिशेष से अर्थात्

पहले-पहले के शुद्धिसंज्ञक वर्षान्ताधिशेष के वश ही में हो सकता है। उस शुद्धि के अभाव से उक्ताधिमास का भी अभाव होता है। इसलिए जिस तरह की शुद्धियो में उक्ताधिमास पात होता है उन्ही शुद्धियो मे एक "यदा किलैकविंशति शुद्धिस्तदा भाद्रपदोऽधिमास" इस तरह भास्कर कथितोपपत्ति भाष्य मे है। इसलिए जब उक्त शुद्धि=२१ तब भाद्रपद अधिमास क्यो होता है इसके लिए विचार। मेषादि क्रम से राशियो के आदि और अन्त-कालिक स्पष्ट रवि=०, १, १, २, २, ३ ११, १२ राशि इन पर से विदित तात्का-लिक रवि मन्दोच्च के द्वारा अपने अपने मध्यम रवि से विलोम प्रकार से साधन करना। वहा आसन्न के दो दो के अन्तर से अनुपात $\dfrac{\text{"१ सा} \times \text{अन्तर क"}}{\text{रमग}}$ द्वारा लब्ध दिन स्पष्ट सौर-मास होते हैं जो सिद्धान्तशिरोमणि के टिप्पणी में लिखित है।

कन्यार्क मे पूरा होने वाले मास को भाद्रमास होने से आदि मे उक्त पाचो सौरमासो मे अलग अलग चैत्रादि स्पष्ट चान्द्रमासो को करना युक्तियुक्त है अपने अपने स्पष्टाधिशेष और अवम के लिए। वहा ऋणखण्ड स्वल्पान्तर से मध्यम चान्द्रमास समय ही में व्यतीत हो जाता है प्रत्येक वर्ष मे तत्काल मे $\dfrac{\text{१ सा} \times \text{२१६००}}{\text{मच ग} \pm \text{च गफ} \;-\; (\text{मरग} + \text{रगफ})}$ =स्पष्ट चान्द्र-मासान्त पाति सावन, इसमे चन्द्रगति फल के निश्चयाभाव से वे शेष अधोलिखित हैं।

२९। ३१। ५०	२९। ३१। ५०	२९। ३१। ५०	२९। ३१। ५०	२९। ३१। ५०
३०। ५५। ३३	३१। ५८। ५६	३१। ३७। ३२	३१। २८। ३५	३१। २। ५२
१। २३। ४३	१। ३३। ६	२। ५। ४२	१। ५६। ४५	१। ३१। २

१। २३। ४३ स्वल्पान्तरात्स्पष्टभाद्रमास =
१। ३३। ६ (२९। ३७। ०)—(८। ३२। १८)=२१। ४। ३२
२। ५। ४२ अतो, यदैकविंशति शुद्धिस्तदा भाद्रपदोऽधिमास इत्यादि
१। ५६। ४५ भास्करोक्त युक्तियुक्त सिद्ध हुआ॥
१। ३१। २
८। ३२। १८=सर्वाधिशेष

अब— जिस तरह की शुद्धि मे अग्रिम वर्ष मे उक्ताधिमास पात होता है उस तरह की *शुद्धियो मे फिर जिस वर्षान्त मे होता है उससे अग्रिमवर्ष मे अवश्य ही उक्ताधिमास* पात से क्षयमास सम्भव होता है किन्तु जितने वर्षों मे पूर्णाधिमास की उपलब्धि होती है उतने ही वर्ष उक्त शुद्धिद्वयनिष्ठ वर्षान्तद्वय के अन्तर मे होते है क्यो-ऐसा होता है, तदर्थ युक्ति—

वर्ष के अन्त म अधिमासानयन से गतमास+शु=सावयवाधिमास उससे आगे पूर्णाधिमासोत्पादक वर्षान्त मे अधिमासानयन से गताधिमास+एकद्वित्र्यधिमास+शु= गतमा$_1$+शुद्धि=सावयवाधिमास ∴ पूर्वोक्त सिद्ध हुआ॥

कितने वर्षों में पूर्णाधिमास होता है उसके लिए विचार

$$\frac{\text{कल्पाधिमास} \times १}{\text{कल्पवर्ष}} = \frac{१५९३३००००००}{४३२००००००००} = \frac{५३११}{१४४००} =$$

० + १/
२ + १/
१ + १/
२ + १/
२ + १/
६ + १/
१ + १/
१ + १/
७ + १/
३ + १/३

आसन्नमानग्रहण में क्रम से एक वर्ष में अधिमास संख्या =

$\frac{०}{१}$, $\frac{१}{२}$, $\frac{१}{३}$, $\frac{३}{८}$, $\frac{७}{१९}$, $\frac{४५}{१२२}$, $\frac{५२}{१४१}$, $\frac{९७}{२६३}$, $\frac{७३१}{१९८२}$, $\frac{२२९०}{६२०९}$, $\frac{५३११}{१४४००}$

इनके देखने से स्पष्ट है कि हर तुल्य वर्ष में भाज्य तुल्य अधिमास होता है इसलिए जिस वर्ष में क्षयमास होता है उससे लेकर हार तुल्य वर्षों में फिर फिर क्षयमास सम्भव होता है उनमें अति स्थूलत्व के कारण पहले के चार मानों को छोड़ दिया गया। शेषमानों में १९, १२२, १४१, २६३ ये ग्रहण करने के लिए युक्तियुक्त है उनमें भी भास्कर ने मुख्यरूप से १९। १४१ इन्हीं दोनों को लिया है। किन्तु "प्रागप्रतश्च" इस भास्करभाष्य में १९, १४१ — १९ = १२२, १४१ + १९ = १६०, १४१ यह तो स्वयं लिये गये। जब क्षयमास पात होगा उससे पहले और पीछे १९ वर्षों में क्षयमास होगा अत १४१ इनसे भी पहले और पीछे १९ वर्षों में क्षयमास सिद्ध होता है। भास्कर गृहीत वर्षों से भी सूक्ष्म २६३ यह मान भास्कराचार्य ने क्यों नहीं ग्रहण किया। तदर्थ म म सुधाकर द्विवेदी जी ने आक्षेप किया है जैसे —

"कुवेदेन्दुवर्षं क्वचिद्गोकुवर्षं" इत्यादि ॥२॥

अथाहर्गणानयस्य द्वितीय प्रकार ।

यातोऽर्कमासनिकरः क्षणदाकराहैर्निघ्नोऽर्कवासरहृतो गगनाग्निनिघ्नः ।
तिथ्यन्वितः कुदिनसङ्गुणितो विभक्तश्चन्द्र द्युभिर्दिनगणः खलु वासरैक्यः ॥३॥

वि. भा.—यात (गत) अर्कमासनिकरः (सौरमाससमूह.) क्षणदाकराहै. (युगचान्द्रदिनमानै.) निघ्नः (गुणितः) अर्कवासरहृतः (युगसौरदिनैर्भक्तः) गगनाग्निनिघ्नः (त्रिंशद्भिर्गुणित) तिथ्यन्वितः (गततिथिसङ्ख्यया युक्तः) कुदिन सङ्गुणित. (युग सावनदिन गुणितः) चन्द्रद्युभिर्विभक्तः (युगचान्द्रदिनैर्हृतः) फलं वा दिनगणः (सावनाहर्गणो भवेत्) दिनपतिज्ञानार्थं यदि अहर्गणः सप्तभक्तः शेषो रव्यादिगणनया वर्त्तमानवारो नागच्छेत्तदाऽहर्गणः सैकः (एकेन सहित.) कार्य.

आचार्येण केवल 'सैक' इत्येव कथ्यते परं निरेक करणास्यपि स्थितिर्भवत्यत "सैको निरेक्ष" कथन युक्तिसङ्गतमिति।

हि भा—गतसौरमाससमूह को युगचान्द्रदिन सख्या से गुणा कर युगसौरमास सख्या से भाग देना फल को तीस (३०) से गुणा करना, गत तिथि सख्या को जोडना फिर युग कुदिन सख्या से गुणकर युगचान्द्र दिन से भाग देना तब जो लब्धि होती है वही अहर्गण होता है, उस अहर्गण पर से यदि दिनपति ठीक नही आवे तो अहर्गण मे एक जोडना या घटाना चाहिये तब उस अहर्गण पर मे ठीक वर्त्तमान दिन आजायेंगे। यहा आचार्य ने केवल एक जोडना ही कहा है, परन्तु कभी कभी एक घटानें की भी स्थिति आजाती है इसलिये एक घटाना भी कहना चाहिये ॥३॥

उपपत्ति.

यदि युगसौरदिनैर्युगचान्द्रदिनानि लभ्यन्ते तदा गतसौरदिनै किमित्यनुपातेन गतसौर दिनसम्बन्धि चान्द्रदिनानि तत्स्वरूपम् $= \frac{\text{युगचान्द्रदिन} \times \text{गतसौरदिन}}{\text{युगसौरदिन}}$

$= \frac{\text{युगचादि} \times \text{गतसौरमास} \times ३०}{\text{युगसौरदिन}} = \frac{\text{युगचादि} \times \text{गतसौरदि}}{\text{युगसौरदि}} =$ गतसौरदिस चादिन। अत्र शुक्लं प्रतिपदादितो वर्त्तमानदिन यावत्तिथिसख्यायोजनेन वर्त्तमानदिन यावत्तिथ्यन्तकालिक चान्द्राहर्गण $= \frac{\text{युगचादि} \times \text{गतसौरमास} \times ३०}{\text{युगसौरदि}} +$ गततिथि, ततोऽनुपातो यदि युगचान्द्रदिनैर्युगकुदिनानि लभ्यन्ते तदाऽऽनीत चान्द्राहर्गणेन किं समागमिष्यति तत्सम्बन्धि सावनाहर्गण। अहर्गणतो दिनपतिज्ञानार्थं कदाचित्कदाचिदहर्गण सैको निरेकश्च कार्य—एतस्य कारण (१।२) श्लोकोपपत्तौ मया प्रदर्शितम्।

हि भा—युगसौर दिन मे युगचान्द्र दिन पाते हैं तो गतसौर दिनो मे क्या इस अनुपात से गतसौर दिन सम्बन्धी चान्द्रदिन प्रमाण आ गया $\frac{\text{युगचादि} \times \text{गतसौरदि}}{\text{युगसौरदि}} =$

$\frac{\text{युगचादि} \times \text{गतसौरमास} \times ३०}{\text{युगसौरदि}} =$ गतसौरदिनचान्द्रदिन, इसमे वर्त्तमान महीना के शुक्ल प्रतिपदा स वर्त्तमान दिन तक तिथिसख्या जोडने से वर्त्तमान दिन तक चन्द्राहर्गण हुआ, $\frac{\text{युगचादि} \times \text{गतसौरमास} \times ३०}{\text{युगसौरदि}} +$ गततिथि $=$ चान्द्राहर्गण। तब अनुपात करते हैं कि युगचान्द्रदिन मे युगकुदिन पाते हैं तो चान्द्राहर्गण म क्या आ जायगा तत्सम्बन्धी सावनाहर्गण, अहर्गण से दिनपतिज्ञान के लिये कभी कभी अहर्गण मे एक जोडा जाता है, या घटाया जाता है। इसका कारण १।२ श्लोको की उपपत्ति मे दिखला चुके हैं इति ॥३॥

पुनरहर्गणानयनम् ।

युगक्वहृघ्ना रवियातवासरा समन्विता सूर्यदिनोत्थशेषकै ।
विभाजिता सूर्ययुगोत्थवासरैरहर्गण स्यादथवैकसयुत ॥४॥

वि भा —रवियातवासरा (गतसौरदिवसा) युगक्वहृघ्ना (युगकुदिन-गुणिता) सूर्यदिनोत्थशेपकै (अहर्गणसम्बन्धि सौरदिनशेपै) समन्विता (युक्ता) सूर्ययुगोत्थवासरै (युगसौरदिनै) विभाजिता (भक्ता) अथवाऽहर्गण भवेत् । एकसयुत (एकयुत) तदा वास्तवाहर्गण स्यात् (अहर्गणे सप्तभक्ते यद्यभीष्ट-वारो नागच्छेत्तदाऽहर्गण सैकोऽथवा निरेकश्च कार्य) इति ॥४॥

अत्रोपपत्ति ।

यदि युगकुदिनैर्युगसौरदिनानि लभ्यन्ते तदाऽहर्गणेन किमित्यनुपातेन सशेपा-गतसौरदिवसा समागतस्तत्स्वरूपम् $= \frac{\text{युगसौदि} \times \text{अहर्गण}}{\text{युकुदि}} = \text{गतसौदि} + \frac{\text{शे}}{\text{युकु}}$ पक्षौ 'युकुदि' गुणितौ तदा युगसौदि.अहर्गण $=$ युकुदि गतसौदि $+$ शे पुन पक्षौ 'युसौदि' भक्तौ तदा $\frac{\text{युकुदि गतसौदि} + \text{शे}}{\text{युसौदि}} =$ अहर्गण, अनेनाचार्येणाऽहर्गणे सर्वत्रैवाभीष्टवारज्ञानार्थं सैककरणमेव लिखित कुत्रापि निरेककरणस्य चर्चा न कृता, सिद्धान्तशेखरे श्रीपतिनाप्यहर्गणानयनेषु सैककरणमेव लिखित परमिय त्रुटि-रस्ति । निरेककरणस्यापि स्थितिर्भवति, सिद्धान्तशिरोमणौ भास्कराचार्येण सैककरण निरेककरणश्चाभिहित यथा

अभीष्टवारार्थमहर्गणश्चेत्सैको निरेकस्तिथयोऽपि तद्वत् ।
तदाऽधिमासावमशेपके न कल्पाधिमासावमयुक्तहीने ॥

हि भा —गत सौर दिन को युगकुदिन से गुण देना शेप (अहर्गण सम्बन्धी सौरदिन शेप) जोडकर युगसौरदिन मे भाग देने से अहर्गण होता है । अहर्गण मे एक जोडने से वास्तवा-हर्गण होता है । अभीष्टदिन ज्ञानार्थ अहर्गण म सात से भाग देने से एक आदि शेप रहने पर रवि आदि दिन समझना चाहिये, अहर्गण म सात से भाग देने से यदि दिन ठीक आवे तो अहर्गण को शुद्ध समझना चाहिये । यदि एक दिन का अन्तर हो तो एक जोडकर या कही घटाकर भी अहर्गण लेना चाहिय, यदि अधिक दिन का अन्तर पडे तो अहर्गण को अशुद्ध समझना चाहिय । वहा पुन जाच के लिय गणित करनी चाहिये ॥४॥

उपपत्ति

यदि युग कुदिन म युगसौर दिन पाते हैं तो अहर्गण म क्या इस अनुपात से शेप सहित गत सौरदिन पाते हैं । $\frac{\text{युगसौरदि} \times \text{अहर्गण}}{\text{युकुदि}} = \text{गतसौरदि} + \frac{\text{शे}}{\text{युकुदि}}$ दोनो पक्षो को "युकुदि' से गुणने से युगसौदि अहर्गण $=$ युकुदि गतसौदि $+$ शे फिर दोनो पक्षों को

"युगसौदि" से भाग देने से $\frac{\text{युकुदि गतसौदि + शे}}{\text{युसौदि}}$ = अहर्गण,

ग्रन्थकार अहर्गण में सब जगह एक जोडना ही कहते हैं परन्तु अहर्गण पर से इष्ट दिन लाने पर यदि ठीक नहीं आता है तो अहर्गण में कहीं एक जोड़ा जाता है। सिद्धान्त शेखर में श्रीपति ने भी अहर्गणानयनों में प्रत्येक स्थान में एक जोडना ही लिखा है किसी प्रकार से अहर्गण निरेक (एक घटाना) करना नहीं लिखा है। भास्कराचार्य ने सिद्धान्त-शिरोमणि में दोनों बातें (सैक करना, निरेक करना) लिखा है अर्थात् आगत अहर्गण पर इष्टवार ज्ञान के लिये यदि अहर्गण में एक जोड़ने से अभीष्टवार आवे तो एक जोड़ना यदि एक घटाने से ही इष्टवार आवे तो एक घटा देना चाहिये। जैसे "अभीष्टवारार्थमहर्गणश्चेत्सैक" इत्यादि ॥४॥

पुनः प्रकारान्तरेणाहर्गणानयनम् ।

वृद्धचहावम-विशेष सङ्गुणा· प्रेतसूर्यदिवसा विभाजिता. ।
प्रोक्तवद्रविदिनैस्त्वहर्गणः सैकयात रविवासरान्विताः ॥ ५ ॥

वि भा—प्रेतसूर्यदिवसा (गतसौरवासरा) वृद्धचहावमविशेषसङ्गुणा (युगावमाधिदिनान्तरगुणिता) रविदिनैः (युगसौरदिनैः) विभाजिता (भक्ता) सैकयात रविवासरान्विता (एकसहित गतसौरदिनयुता) तदा पूर्ववदहर्गणो भवेदिति ॥ ५ ॥

अस्योपपत्ति

अथ युचान्द्रदि—युसावनदि=युअवमदि ।
युचादि—युसौरदि=युगाधिदिन

अनयोरन्तरेण

युचादि—युसौदि—(युचादि—युसावदि)=युगाधिदि—युगावमदि
=युगचादि—युसौरदि—युगचादि+युगावनदि
=युगसावनदि—युगसौदि=युगाधिदि—युगावमदि

ततोऽनुपातो यदि युगसौरदिनैरिद युगाधिदिनावमान्तर लभ्यते तदा गत सौरदिनैः किमित्यनुपातेनेष्ट सावनदिनेष्ट सौर दिनयोरन्तरम्=

$\frac{(\text{युगाधिदि—युगावमदि})\text{गसौदि}}{\text{युसौदि}} = \frac{(\text{युगसावनदि—युगसौदि})\text{ गसौदि}}{\text{युगसौदि}} =$

=इष्टसावनदि—इसौरदि=गताहर्गण—गतसौरदि

$\therefore \frac{(\text{युगाधिदि—युगावमदि})\text{ गसौदि}}{\text{युसौदि}} + \text{गसौदि} = \text{गताहर्गण}$

अभेष्ट वार ज्ञानार्थमहर्गण सैको निरेकश्च कार्य परमाचार्येण निरेककरण न कथ्यते। एतावताचार्योक्तमुपपन्नम् ॥ ५ ॥

हि भा —गतसौर दिन को युग के अधिमास दिन और अवम के अन्तर स गुणाकर युगसौर दिन से भाग देने स जो फल हो उसमे गतसौर दिन और एक जोडने स अहगण होता है ॥ ५ ॥

उपपत्ति

युगचादि—युसावनदि=युगावम
युचादि—युगसौरदि=युगाधिदिन दोनो के अन्तर करने स

युचादि—युसौदि—(युचादि—युगसावनदि)=युचादि—युसौदि—युचादि+युसावदि=युसादि—युसौदि=युगाधिदि—युगावमदि

अब इस पर से अनुपात करते है यदि युगसौर दिन म युगाधिदिन और अवम का अन्तर पाते हैं तो गतसौरदिन मे क्या इस अनुपात से इष्टसावनदिन और इष्टसौर (गतसौर) दिन का अन्तर आया,

$$\frac{(\text{युगाधिदिन}-\text{युगावम})}{\text{युगसो}} = \text{इसावनदि}-\text{इष्टसौदि}=\text{गताहगण}-\text{गसौदि}$$

$$\frac{(\text{युगाधिदि}-\text{युगावम})\ \text{गसौदि}}{\text{युसौदि}}+\text{गसौदि}=\text{गताहगण}\ .$$

अहगण से इष्टवार ज्ञान के लिय अहगण म एक जोडना या घटाना चाहिये। परन्तु आचाय एक घटाने के लिये नही कहते है ॥ ५ ॥

अथ स्फुटाधिमासशेपज्ञानम्

भूदिनैरधिकशेपमाहत वाऽधिकैरवमशेपमेतयो ।
सयुति शशधरद्युभाजिता स्यात्स्फुट त्वधिकमासशेपकम् ॥ ६ ॥

वि भा —अधिकशेप (अधिमासशेप) भूदिनै (युगकुदिनै) आहत (गुणित) वा अवमशेपम् (क्षयशेपम्) अधिकै (युगाधिमासै) गुणित, एतयो सयुति (योग) शशधर द्युभाजिता (युगचान्द्रदिन-भक्ता) तदा स्फुट (सूक्ष्म) अधिकमासशेपक स्यादिति ॥ ६ ॥

अत्रोपपत्ति

$$\text{अथ}\quad \frac{\text{युगावम}\times\text{अहर्गण}}{\text{युकुदि}} = \text{गतावम}+\frac{\text{अवशे}}{\text{युकुदि}}\ \text{समशोधनेन}$$

$$\frac{\text{युगावम}\times\text{अहर्गण}}{\text{युकुदि}}-\frac{\text{अवशे}}{\text{युकुदि}}=\text{गतावम},\ \text{अत्राहर्गणयोजनेन}$$

$$\text{जातानि गतचान्द्रदिनानि}=\frac{\text{युगावम}\times\text{अहर्गण}-\text{अवशे}}{\text{युकुदि}}+\text{अहर्गण}$$

$$=\frac{\text{युअवम}\times\text{अहर्गण}+\text{युकुदि}\times\text{अहर्गण}-\text{अवशे}}{\text{युकुदि}}=\quad .$$

$$\frac{\text{अहर्गण (युअवम+युकुदि)—अवशे}}{\text{युकुदि}} = \frac{\text{अहर्गण}\times\text{युचादि—अवशे}}{\text{युकुदि}}$$

ततोऽनुपातेन सशेषा गताधिमासा $= \dfrac{\text{युअमा} \times \text{गतचादि}}{\text{युचादि}} =$

$$\frac{(\text{अहर्गण} \times \text{युचादि — अवशे})\ \text{युअमा}}{\text{युचादि} \times \text{युकुदि}} = \text{गताधिमा} + \frac{\text{अधिशे}}{\text{युचादि}}$$

$$\frac{\text{अहर्गण} \times \text{युचादि} \times \text{युअमा — अवशे} \times \text{युअमा}}{\text{युचादि} \times \text{युकुदि}} = \text{गताधिमा} +$$

$\dfrac{\text{अधिशे}}{\text{युचादि}}$ पक्षौ युगकुदिनैर्गुणितौ तदा

$$\frac{\text{अहगण}\times\text{युचादि}+\text{युअमा—अवशे}\times\text{युअमा}}{\text{युचादि}} = \left(\text{गताधिमा}+\frac{\text{अधिशे}}{\text{युचादि}}\right)\text{युकु}$$

$$=\text{अहर्गण}\times\text{युअमा}—\frac{\text{अवशे}\times\text{युअमा}}{\text{युचादि}} = \text{गअमा}\times\text{युकुदि}+\frac{\text{अधिशे}\times\text{युअमा}}{\text{युचादि}}$$

समयोजनेन

$$\text{अहर्गण}\times\text{युअमा}=\text{गअमा}\times\text{युकुदि}+\frac{\text{अवशे}\times\text{युकुदि}}{\text{युचादि}}+\frac{\text{अवशे}\times\text{युअमा}}{\text{युचादि}}$$

$$=\text{गअमा}\times\text{युकुदि}+\frac{\text{अधिशे}\times\text{युकुदि}+\text{अवशे}\times\text{युअमा}}{\text{युचादि}}$$

$=\text{गअमा}\times\text{युकुदि}+\text{स्पष्टाधिशेष}$

$$\text{अहर्गण} = \frac{\text{गअमा}\times\text{युकुदि}+\text{स्पष्टाधिशे}}{\text{युअमा}}$$ =एतेन "गताधिकघ्ना

स्फुटशेषसयुता इत्याद्यप्युपपद्यते" तथोपरिलिखितोपपत्तौ

$\dfrac{\text{अधिशे}\times\text{युकुदि}+\text{अवशे}\times\text{युअमा}}{\text{युचादि}}$ =स्पष्टाधिमासशेष एतेन च 'भूदिनैर

धिकशेषमाहत वाऽधिकै " इत्यादि सिद्धमिति सिद्धान्तशेखरे श्रीपतिना-प्येतदनुरूपमेव कथ्यते । यथा

> कल्पोत्थाधिकमासभूमिदिवसैरनाधिशेषे हते
> तद्योग शशिवासरै सविहृत स्पष्टाधिशेषो भवेत् ।
> क्ष्माहघ्नोऽथ गताधिमासनिचय स्पष्टाधिशेषान्वित
> कल्पोत्थाधिकमासहृद्दिनगणा स्यु पूर्ववन्मध्यमा ॥

ब्रह्मगुप्तेनाप्येतदेव कथ्यते । यथा—

> गुणमधिमासकशेष युगकुदिनैरवमशेषमधिमासै ।
> तद्युतिरिन्दुदिनहृताऽधिमासशेष स्फुट भवति ॥

भूदिन गताधिमासकघात. स्पष्टाधिमासशेषयुत.
भक्तो युगाधिमासैरहर्गण. पूर्ववन्मध्या' ॥ इति ॥६॥

हि भा —अधिशेष को युगकुदिन से गुण देना और अवमशेष को युगाधिमास से गुण देना, दोनो के योग मे युगचान्द्रदिन से भाग देने से स्फुट अधिमास शेष होता है ॥६॥

उपपत्ति

$$\frac{\text{युगावम}\times\text{अहर्गण}}{\text{युकुदि}}=\text{गतावम}+\frac{\text{अवशे}}{\text{युकुदि}}$$ समशोधन करने से

$$\frac{\text{युगावम}\times\text{अहर्गण}-\text{अवशे}}{\text{युकुदि}}=\text{गतावम}$$, इसमें अहर्गण को जोडने से गतचन्द्र दिन होंगे

$$\frac{\text{युगावम}\times\text{अहर्गण}-\text{अवशे}}{\text{युकुदि}}+\text{अहर्गण}=\text{गताचान्द्रदिन}$$ ।

$$=\frac{\text{युगावम}\times\text{अहर्गण}-\text{अवशे}\times\text{अहर्गण}\times\text{युकुदि}}{\text{युकुदि}}=\frac{\text{अहर्गण}(\text{युगावम}+\text{युकुदि})-\text{अवशे}}{\text{युकुदि}}$$

$$=\frac{\text{अहर्गण}\times\text{युचादि}-\text{अवशे}}{\text{युकुदि}}$$ अब अनुपात से $$\frac{\text{युअमा}\times\text{गचादि}}{\text{युचादि}}=\text{गताधिमास}+\frac{\text{अधिशे}}{\text{युचादि}}$$

$$=\frac{(\text{अहर्गण}\times\text{युचादि}-\text{अवशे})\ \text{युअमा}}{\text{युकुदि}\times\text{युचादि}}=\text{गताधिमास}+\frac{\text{अधिशे}}{\text{युचादि}}$$

$$=\frac{\text{अहर्गण}\times\text{युचादि}\times\text{युअमा}-\text{अवशे}\times\text{युअमा}}{\text{युकुदि}\times\text{युचादि}}=\text{गताधिमास}+\frac{\text{अधिशे}}{\text{युचादि}}$$

दोनो पक्षो को "युकुदि" से गुण देने से

$$\frac{\text{अहर्गण}\times\text{युचादि}\times\text{युअमा}-\text{अवशे}\times\text{युअमा}}{\text{युचादि}}=\text{युकुदि}\times\text{गताधिमा}+\frac{\text{अधिशे}\ \ \text{युकुदि}}{\text{युचादि}}$$

$$\text{अहर्गण}\times\text{युअमा}-\frac{\text{अवशे}\ \ \text{युअमा}}{\text{युचादि}}=\text{युकुदि}\ \ \text{गताधिमा}+\frac{\text{अधिशे}\ \ \text{युकुदि}}{\text{युचादि}}$$

दोनो पक्षो मे $\frac{\text{अवशे}\times\text{युअमा}}{\text{युचादि}}$ जोडने से

$$\text{अहर्गण}\times\text{युअमा}=\text{युकुदि}\ \ \text{गताधिमा}+\frac{\text{अधिशे}\ \ \text{युकुदि}}{\text{युचादि}}+\frac{\text{अवशे}\ \ \text{युअमा}}{\text{युचादि}}$$

यहा $$\frac{\text{अधिशे}\ \ \text{युकुदि}+\text{अवशे}\ \ \text{युअमा}}{\text{युचादि}}=\text{स्फुटाधिमासशे}\ \ldots\ (१)$$

तब अहर्गण युअमा $=$ युकुदि गताधिमा $+$ स्फुटाधिशे

$$\therefore\ \frac{\text{युकुदि}\ \ \text{गताधिमा}+\text{स्फुटाधिशे}}{\text{युअमा}}=\text{अहर्गण}$$, इससे "गताधिमघ्ना स्फुटशेषयुताः"

इत्यादि उत्पन्न हुआ, और (१) इससे 'भूदिनैरधिकशेषमाहृत माऽधिकं' इत्यादि उपपन्न हुआ।

सिद्धान्तशेखर में श्रीपति भी इसी तरह कहते हैं। जैसे—
'कल्पोत्थाधिकमास भूमिदिवसैर्ग्नाधिशेष हृते' इत्यादि।

ब्रह्मगुप्त भी इसी तरह कहते हैं। जैसे 'गुणमधिमासकशेष' इत्यादि।

प्रकारान्तरेणाहर्गणानयनम्।

गताधिकघ्ना स्फुटशेषसयुता कुवासराश्च युगणोऽधिकोद्धृता।

वि भा—कुवासरा (युगकुदिवसा) गताधिकघ्ना (गताधिमासगुणिता) स्फुटशेषसयुता (स्फुटाधिमासशेषयुक्ता) अधिकोद्धृता (युगधिमासभक्ता) तदा द्युगण (अहर्गण) भवेदिति ॥

अस्योपपत्ति पूर्वश्लोके (६ श्लोक) पपत्तौ द्रष्टव्येति।

हि भा—युग कुदिन को गताधिमास से गुण देना, स्फुटाधिमास शेष को जोडकर युगाधिमास से भाग देने से अहर्गण होता है।

इसकी उपपत्ति पूर्वश्लोक (६ श्लोक) की उपपत्ति में देखिये।

पुन प्रकारेणाहर्गणानयनम्।

सशेष यातावम भूदिनाहते युगावमैर्लब्धमहर्गणोऽथवा ॥७॥

वि भा—अथवा सशेषयातावमभूदिनाहते (युगकुदिनसशेषगतावमयोर्घाते) युगावमैर्भक्ते लब्ध (फल) अहर्गणो भवेदिति ॥

अत्रोपपत्ति।

यदि युगकुदिनैर्युगावमानि लभ्यन्ते तदाऽहर्गणेन किमित्यनुपातेन समागच्छन्ति सशेषाणि गतावमानि तत्स्वरूपम् $= \frac{\text{युअव अहर्गण}}{\text{युकुदि}} = \text{गतावम} + \frac{\text{अवशे}}{\text{युकु}}$

पक्षौ "युकुदि" गुणितौ तदा युअव अहर्गण $= \text{युकुदि} \left(\text{गतावम} + \frac{\text{अवशे}}{\text{युकु}}\right)$

तत $\frac{\text{युकुदि}\left(\text{गतावम} + \frac{\text{अवशे}}{\text{युकु}}\right)}{\text{युअव}} = \text{अहर्गण}$

अत उपपन्नम् ॥७॥

हि भा—युग कुदिन और शेष सहित गतावम के घात में युगावम से भाग देने से अहर्गण होता है ॥

उपपत्ति

'यदि युगकुदिन में युगावम पाते हैं तो अहर्गण में क्या' इस अनुपात से शेष सहित

गतावम का प्रमाण आता है, $\frac{\text{युअव अहर्गण}}{\text{युकुदि}}$ = गतावम + $\frac{\text{अवशे}}{\text{युकुदि}}$ दोनो पक्षो को "युकु" के गुणने से युअव अहर्गण = युकुदि $\left(\text{गतावम} + \frac{\text{अवशे}}{\text{युकु}}\right)$ दोनो पक्षो को "युअव" से भाग दें जैसे $\frac{\text{युकुदि} \left(\frac{\text{गतावम} + \text{अवशे}}{\text{युकु}}\right)}{\text{युअव}}$ = अहर्गण, इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥७॥

अथ शुद्धिदिनज्ञानमाह

**शशधरभगणघ्ने यातसूर्यद्युराशौ युगरविदिनभक्ते मण्डलादि. शशाङ्कः ।
त्रिकुहतदिनहीनोऽसौ च भागादिकोऽक्षैरपिहतगतवर्षैरन्वित शुद्धयहानि ॥८॥**

वि भा —यातसूर्यद्युराशौ (गतसौरदिने) शशधरभगणघ्ने (युगचन्द्रभगणगुणिते) युगरविदिनभक्ते (युगसौरदिनभक्ते) तदा मण्डलादि (भगणादि) शशाङ्क (चन्द्र) स्यात् असौ चन्द्र त्रिकुहतदिनहीन (त्रयोदशगुणित सौरदिनरहित) भागादिक कार्यं, अक्षैर्हतगतवर्षे (पञ्चगुणित गतवर्षे) अन्वित (सहित) तदा शुद्धिदिनानि भवन्ति ॥८॥

हिं भा —गतसौरदिनको युगचन्द्र भगण से गुण देना, युगसौर दिन से भाग देने पर भगणादिचन्द्र होते हैं। उसमे तेरह गुणित सौरदिन घटाकर भशादिक करना, उसमे पञ्चगुणित गत वर्ष जोडने पर शुद्धिदिन होते हैं ॥८॥

अत्रोपपत्ति

अथ $\frac{\text{युगचन्द्रभगण} \times \text{अहर्गण}}{\text{युगकुदि}}$ = अहर्गणसम्बन्धि = १३ × असर + अधिमास

भगणादिच—१३ भगणादिरपि = अमास पर $\frac{\text{युचभगण} \times \text{गतसौरदि}}{\text{युगसौरदि}}$ = भगणादिच

भगणादिच—१३भगणादिरवि = $\frac{\text{युचभगण} \times \text{गतसौरदिन}}{\text{युगसौरदि}}$ — १३भगणादिर = अधिमास

एकस्मिन् वर्षे क्षयाहाद्यम् = ५।४८।२२।७।३० अत्र पञ्चातिरिक्तावयवान् विहाय केवल पञ्च गृहीता तदा पञ्चगुणित गतवर्षयोजनेन यद्भवति तस्यैव नाम "शुद्धिदिनम्" रचितमाचार्येण, अत्र त्रिकुहदिनहीनस्थाने (त्रिकुहतरविहीन) इति पाठ समुचित प्रतिभाति ॥८॥

$\frac{\text{युगचन्द्रभगण} + \text{अहर्गण}}{\text{युकुदिन}}$ = अहर्गणसभगणादिचन्द्र = १३ × अमर + अधिमा

भगणादिच—१३ × भगणादिरवि = अमास =

$\frac{\text{युगचभगण} + \text{गतसौदिन}}{\text{युगसौरदि}}$ = भगणादिचन्द्र

अत भगणादिच—१३ भगणादिरवि = अमास = $\frac{\text{युगचभ} \times \text{गतसौरदि}}{\text{युगसौरदि}}$ —

१३ भगणादिरवि

हि भा —एक वर्ष में क्षयदिनादि = ५।४८।२२।७।३० यहाँ पर केवल पाँच लेकर बाकी अवयव को छोड दिया गया तब ५ × गतवर्ष उसमें जडने से जो होता है उसका नाम शुद्धिदिन कहते हैं। अर्थात्

५ गव + $\frac{\text{युगचभगण} \times \text{गतसौरदिन}}{\text{युगसौरदि}}$ —१३ भगणादिरवि = शुद्धिदिन

यहा 'त्रिकुहत दिनहीनोऽमौचभागादिक'' इत्यादि इसके स्थान पर 'त्रिकुहतरवि में हानीऽसौव भागादिक' ऐसा पाठ उचित मालूम होता है ॥८॥

प्रकारान्तरेणाहर्गणसाधनमाह।

भोदयैर्गतखराशुवासरा. संगुणा युगदिनेशवासरैः।
भाजिता. कथितशुद्धिवर्जिताः स्याद्द्युराशिरयवैकसंयुत ॥९॥

वि भा — गतखराशुवासरा (गतसौरदिवसा) भोदयै (युगभोदयसख्याभि. सगुणा (गुणिता) युगदिनेशवासरै (युगसौरदिनै) भाजिता (भक्ता) कथितशुद्धिवर्जिता (८ श्लोकानीतशुद्धिदिनै रहिता) तदा द्युराशि (अहर्गण) स्यादिति ॥९॥

हि. भा. —गत सौरदिन सख्या को युगीय भोदय सख्या से गुण देना युगसौरदिन से भाग देना फल में पूर्व कही हुई शुद्धि को घटाने से अहर्गण होता है ॥९॥

उपपत्ति

यदि युगसौरदिनैर्युग भोदय सख्या लभ्यते तदा गतसौरदिनै किमित्यनुपातेन गतसौरदिनसम्बन्धि नाक्षत्रदिनानि तत्स्वरूपम्-$\frac{\text{युगभोदय} \times \text{गतसौरदि}}{\text{युगसौरदिन}}$

अत्र यदि शुद्धिदिनानि ऊनीक्रियन्ते तदाऽहर्गणो भवेदिति ॥९॥

यहा गतसौरवर्ष सम्बन्धी नाक्षत्रदिन लाते हैं। यदि युगसौरदिन युगभोदय पाते हैं तो गतसौरदिन में क्या इस अनुपात से गतसौरदिन सम्बन्धी नाक्षत्र दिन प्रमाण आया $\frac{\text{युगभोदय} \times \text{गतसौरदि}}{\text{युगसौरदि}}$ इसमें शुद्धिदिन के घटाने से अहर्गण होता है ॥९॥

पुन प्रकारान्तरेणाहर्गणज्ञान तथा दिनशुद्धिज्ञानञ्चाह।

भोदयार्क भगणान्तरेण वा प्रोक्तवद्दिनगणोऽर्कवत्सरः ॥१०॥
नवाष्टरामाग रसैः समाहत. खलाभ्रषट्क प्रविभाजित. फलम्।
खरामशेष दिनशुद्धिरिष्यते मधौ सितादेर्दिवसैर्दिनाब्दपः ॥११॥

वि भा — वा (अथवा) भोदयार्कभगणान्तरेण (युगपठित भोदय-रवि-भगणयोरन्तरेण) प्रोक्तवत् (पूर्वकथितरीत्या) दिनगण (अहर्गण) ज्ञेय । अर्कवत्सर (गतसौरवर्षसमूह) नवाष्टरामाङ्करसै समाहत (६६३८९ एतैर्गुणित) खखाभ्रषट्कप्रविभाजित (६००० एभिर्भक्त) फल (लब्ध) खरामशेष (त्रिशद्भक्तावशिष्ट) मधो सितादेर्दिवसै (चैत्रशुक्लप्रतिपदादिदिनै) दिनशुद्धि (शुद्धिदिनसञ्ज्ञक) दृश्यते (कथ्यते) ततो दिनाब्दप (दिनपतिर्वर्षपतिश्च) भवेदिति ॥ १०-११ ॥

अत्रोपपत्ति ।

भभ्रमास्तु भगणैर्विवर्जिता यस्य तस्य कुदिनानितानिवेत्यादिना
युभभ्रम — युरविभगण = युकुदिन = युगसावनाहर्गण ।

अर्थैकवर्षेऽधिदिनानि = ११ । ३ । ५२ । ३० । ० = १० + १ वसदिनाद + १ वर्षसअवमादि

ततोऽनुपातेन गताधिमास = $\frac{\text{१ वर्ष सअधिदिन} \times \text{गतवष}}{\text{१ वर्ष} \times \text{३०}}$ =

= $\frac{(\text{१०} + \text{१ वर्षसदिनादि} + \text{१ वर्षसअवमादि}) \times \text{गतवर्ष}}{\text{३०}}$

अत्र भाज्ये गतवर्षातिरिक्तानि खण्डानि मिलित्वा ६००० वर्षे ६६३८९ इति भवन्ति तदा गताऽधिमासा = $\frac{\text{६६३८९} \times \text{गतवर्ष}}{\text{३०} \times \text{६०००}}$, अधिदिनात् त्रिशता भागे हृते कल्पगताधिमासा जायन्ते शेपश्च चैत्रादि प्रथमार्कोदयस्य रविमण्डलस्य च मध्ये सावनोऽहर्गणो भवति यस्य नाम शुद्धिदिनम् । तत कल्पगताब्ददिनयुतौ वारस्तिष्ठति । वारश्चैप सावनात्मक । शुद्धिदिनमपि सावनात्मकम्, तेन वर्षदिनयोगे दिनशुद्धेर्विशोधनेन येऽवशिष्टास्तावन्तो वाराश्च आदेर्गता स्यु । रूप च शुद्धे सविकल्पत्वाद्दीयतेऽन्यथारूपयोजनस्याऽऽवश्यका न भवेत् तत सप्तभक्ते शेपश्च आदौ वाराधिपतिर्भवत्येवमेव वर्षपतिश्चेति ॥१०-११॥

हि भा — युग पठित भोदय और रविभगण का अन्तर करने स अहर्गण होता है । गतसौरवर्ष को ६६३८९ इनसे गुणकर ६००० इतने मे भाग देना जो लब्धि हो उसम तीस से भाग देने से जो शेष रहता है चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से दिन शुद्धि कहलाता है इस पर से वर्ष पति और दिनपति के ज्ञान होते हैं ॥१०-११॥

उपपत्ति

'भभ्रमास्तु भगणविवर्जिता यस्य कुदिनानि तानि वा इस नियम से युगभोदय — युरभगण = युकुदि ।

एक वर्ष मे अधिदिन = ११ । ३ । ५२ । ३० । ० = १० + १ वर्ष सदिनादि +

१ वर्ष सम्रवमादि इससे अनुपात द्वारा गताधिमास $= \frac{१ \text{ वर्ष सम्राधिदिन} \times \text{गतवर्ष}}{१ \text{ वर्ष} \times ३०}$

$= \frac{(१० + १ \text{ वर्ष सदिनादि} + १ \text{ वर्षसम्रवमादि}) \text{ गतवर्ष}}{३०}$ यहा भाज्य मे गतवर्ष के अतिरिक्त

जो खण्ड सब हैं वे मिलकर ६००० वर्षों ६६३८६ होते हैं तब गताधिमास $=$

$\frac{६६३८६ \times \text{गतवर्ष}}{३० \times ६०००}$ अधिदिन को तीस से भाग देने से गताधिमास होते है शेष चैत्रादि प्रथम-सूर्योदय और रविवर्षान्त के बीच मे सावनाहर्गण होता है इसी का नाम शुद्धिदिन है। गत-वर्ष दिनयोग करने से दिनसमूह सावनात्मक होता है शुद्धिदिन भी सावनात्मक है। इसलिये वर्ष दिन योग म शुद्धिदिन को घटाने से जो शेष रहता है वे चैत्रादि से गतदिन है। शेप सहित शुद्धि के रहने से एक उसमे जोडना चाहिये यदि शुद्धि शेपसहित न रहे तो एक जोडने की जरूरत नही है। सात से भाग देने से चैत्रादि मे वारपति होते हैं। एव वर्षपति भी होते हैं ॥ १०-११ ॥

पुनरहर्गणानयनमाह

विश्वरामनवमङ्गलैककैस्ताडिता गतसमा विभाजिता.।
खाभ्रखाङ्ग दहनैरवाप्तक शुद्धिहीनमथ चैत्र शुक्लत ॥१२॥
वासरैर्यु तमवमर्वाजत वर्षवासरयुत दिवागण.।

वि भा —गतसमा (गतसौरवत्सरा) विश्वरामनवमङ्गलैककै (१८६३१३ एभि) ताडिता (गुणिता) खाभ्रखाङ्गदहनै (३६०००) विभाजिता (भक्ता) अवाप्तक (लब्ध) शुद्धिहीन (शुद्धिदिनरहित) चैत्रशुक्लतो वासरै (चैत्रशुक्ल-प्रतिपदादित इष्टदिन यावत्दिनै) युत (सहित) अवमवर्जित, वर्षवासरयुत (३६० दिनसहित) तदा दिवागण (अहर्गण) भवेदिति ॥१२३॥

अत्रोपपत्ति

एकस्मिन् वर्षे सावनदिनाद्यम् = ३६५ । १५ । ३१ । १५ । ० ततो गतवर्ष-सम्बन्धि दिनाद्यम् = (३६५ । १५ । ३१ । १५) गतवर्ष = (३६० + ५ । १५ । ३१ । १५) गतवर्ष अत्र १५ । ३१ । १५ इति ६०० वर्षे ६३१३ भवति तदा (३६० × ५ $\frac{\times ६३१३) \text{ गतवर्ष}}{६००}$ पुन ५ एतेन सवर्णनेन $\frac{(३६० + ५ + ६३१३) \text{ गतवर्ष}}{३६०००}$

$= \frac{(३६० + १८०००० + ६३१३) \text{ गतवर्ष}}{३६०००} = \frac{३६० \text{ गवर्ष} + १८६३१३ \text{ गतवर्ष}}{३६०००} =$ गतवर्ष सम्बन्धि दिनादि, अत्र चैत्रशुक्लप्रतिपदादितदिनसख्यायोजनेन तत्र शुद्धि न विशोध-नेन च क्षयघटी विशोधनेनाहर्गणो भवेदिति ॥ १२३ ॥

हि भा —गतसौरवर्ष को १८६३१३ इतने से गुणा कर ३६००० इससे भाग देकर

जो लब्धि हो उसमे शुद्धि दिन को घटा देना चैत्र शुक्लादि से दिन सख्या जोड देना अवम को घटा देना और वर्ष को दिनसख्या ३६० जोड देना तव अहर्गण होता है ॥१२½॥

उपपत्ति ।

एक वर्ष मे सावनदिनादि = १६५ । १५ । ३१ । १५ । ० तव गतवर्ष सम्बन्धी सावन दिनादि प्रमाण = (३६५ । १५ । ३१ । १५) गतवर्ष = (३६० + ५ । १५ । ३१ । १५) गतवर्ष यहा १५ । ३१ । १५ ये ६०० वर्षो मे ६३१३ इतने होते है तव (३६० + ५ । $\frac{६३१३}{६००}$) गत वर्ष फिर ५ इसके साथ सवर्णन करने मे $\left(३६० + ५ + \frac{६३१३}{६०० \times ६०}\right.$ गतवर्ष

$= \left(३६० + ५ + \frac{६३१३}{३६०००}\right)$ गतवर्ष $= \left(३६० + \frac{१८००००+६३१३}{३६०००}\right)$ गतवर्ष $= \left(३६० + \frac{१८६३१३}{३६०००}\right)$ गतवर्ष $=$ ३६० गव $+ \frac{१८६३१३ \text{ गतवर्ष}}{३६०००}$ = गतवर्ष सम्बन्धिदिनादि, इसमे चैत्र शुक्लादि से दिनसख्या जोडने तथा शुद्धिदिन घटाने से जो हो उसमे क्षयाह घटाने से अहर्गण होता है ॥ १२½ ॥

पुनरहर्गणानयनम् ।

विश्वराम नवभिः समाहताः खाभ्रषट्कविहृता. फल च यत् ॥१३॥
प्राग्वदक्षरसरामसगुणैरब्दकैर्युतमहर्गणोऽथवा भवेत् ।

वि भा —समा (गतसौरवत्सरा) विश्वराम नवभि (६३१३ एभि) समाहता (गुणिता) खाभ्रषट्क विहृता (६०० भक्ता) यत्फल भवेत्तत् प्राग्वत् (पूर्ववत्) अक्षरसराम सगुणै (३६५ गुणितै) अब्दकै (गतवर्षै) युत (सहित) अथवाऽहर्गणो भवेदिति ॥१३½॥

अत्रोपपत्ति ।

अथैकस्मिन् वर्षे सावन दिनाद्यम् = ३६५।१५।३१।१५ ततोऽनुपातेन गतवर्ष-सम्बन्धि दिनाद्यम् = गव × ३६५ + गव (१५।३१।१५) अत्र १५।३१।१५ तत् ६०० वर्षे ६३१३ एतत्तुल्य भवति तदा गतवर्षसम्बन्धि $\frac{६३१३}{६००}$ फलमानीया "३३५ गव" ऽत्र योजनेनाहर्गणो भवेत् ३६५ गव + $\frac{६३१३ \text{ गव}}{६००}$ = अहर्गण

सिद्धान्तशेखरे श्रीपतिनेत किञ्चिदधिक वक्ष्यते, यथा—
विषय रसगुणघ्ने कल्पयाताब्दराशौ
सविकल दिवसाद्य चाब्दिकाहर्गणे च ।
क्षिप भवति सराशि सावनाना दिनाना
नियतमधिकमासैरूनरात्रैर्विनापि ॥ इति ॥१३½॥

हि.भा.—गत सौर वर्ष को ६३१३ इतने से गुण कर ६०० से भाग देकर जो लब्धि हो उसको ३६५ गुणित गत वर्ष मे जोडने से अहर्गण होता है ॥१३½॥

उपपत्ति

हि. भा.—एक सौर वर्ष मे सावनदिनाद्य =३६५।१५।३१।१५ अनुपात से गत वर्ष सम्बन्धी दिनाद्य =गव × ३६५ + गव (१५।३१।१५) यहा १५।३१।१५ ये ६०० वर्ष मे ६३१३ इतने होते हैं तब ६३१३ इसको गत वर्ष मे गुण कर ६०० से भाग देकर जो फल होगा "३६५ गव" मे जोड देने से अहर्गण होता है

$$३६५ \text{ गव} + \text{गव} \times \frac{६३१३}{६००} = \text{अहर्गण}$$

सिद्धान्तशेखर मे श्रीपति इससे कुछ अधिक कहते हैं, यथा
"विषयरन्ध्रगुणाघ्ने कल्पयाताब्दराशौ" इत्यादि ॥ १३½ ॥

पुनरहर्गणानयनम् ।

विश्वरामशरवेदताड़िताः खाभ्रखाङ्गगुणभाजिताः फलं च यत् ॥१४॥
प्राग्वदब्धिरसरामताड़ितैरब्दकैर्युतमहर्गणोऽथवा ।

वि भा—अथवा गतवत्सरा विश्वरामशरवेदताडिता (४५३१३ एभिर्गुणिता) खाभ्रखाङ्ग गुणभाजिता (३६००० एभिर्भक्ता) फल यद् भवेत्तत् प्राग्वत् (पूर्ववत्) अब्धिरसरामताडितै (३६४ गुणितै) अब्दकै (गतवर्षै) युत (सहित) तयाऽहर्गणो भवेदिति ॥

अत्रोपपत्ति ।

अत्रैकवर्षे सावनदिनाद्यम् = ३६५।१५।३१।१५ ततोऽनुपातेन गतवर्षसम्बन्धिदिनाद्यम् = गव × ३६५ + गव (१५।३१।१५) = गव + ३६४ + गव + गव (१५।३१।१५) अत्र (१५।३१।१५) तत् ६०० वर्षे ६३१३ रेतत्तुल्य भवति तदा

$$\text{गव} \times ३६४ + \text{गव} + \frac{\text{गव} \times ६३१३}{६००} = \text{गव} \times ३६४ + \left(\text{गव} + \frac{\text{गव} \times ६३१३}{६०० \times ६०}\right)$$

$$= \text{गव} \times ३६४ + \left(\text{गव} + \frac{\text{गव} \times ६३१३}{३६०००}\right) = ३६४ \text{ गव} + \left(\frac{३६००० \text{ गव} + \text{गव} \; ६३१३}{३६०००}\right)$$

$$= ३६४ \text{ गव} + \frac{४५३१३ \text{ गव}}{३६०००} = \text{अहर्गण}$$ एतावताऽऽचार्योक्तमुपपन्नम् ॥१४½॥

हि भा.—अथवा गत सौरवर्ष को ४५३१३ इतने से गुण कर ३६००० से भाग देकर जो फल हो उसको ३६४ गुणित गत वर्ष जोडने से अहर्गण होता है ॥१४॥

उपपत्ति ।

एक वर्ष मे *सावन दिनादि* = ३६५।१५।३१।१५ *अनुपात से गत वर्ष सम्बन्धी दिनादि*
= गव (३६५।१५।३१।१५) = गव × ३६५ + गव (१५।३१।१५)
= ३६४ गव + गव + गव (१५।३१।१५) यहा १५।३१।१५ ये ६०० वर्ष मे ६३१३ इतना होता है तब गव × ३६४ + गव + गव × $\frac{६३१३}{६००}$ =

$$=\text{गव}\times ३६४+\text{गव}+\frac{\text{गव}\times ९३१३}{६००\times ६०}=\text{गव}\times ३६४+\text{गव}+\frac{\text{गव}\times ९३१३}{३६०००}$$

$$=\text{गव}+३६४+\frac{३६००० \text{ गव}+\text{गव}\times ९३१३}{३६०००}=$$

$$=\text{गव}\times ३६४+\frac{\text{गव}\times ४५३१३}{३६०००}=\text{अहर्गण ।}$$

इससे आचार्योक्त उत्पन्न हुआ ॥१४$\frac{१}{२}$॥

अथ लघ्वहर्गणसाधनमाह

अब्दवेदरसरामकाहर्ति वा क्षिपेद्दिनगणो लघुर्भवेत् ।
एवमेव शतशः प्रसाधयेद् वासरौघमलघु लघु क्रमात् ॥१५॥

वि. भा —अब्दवेद रसरामकाहर्ति (शकादितो कस्यापि युगस्यादितो व, यद्यहर्गणानयनमभीष्ट तत्र ये गताब्दास्ते ३६४ गुणनीया गुणनफल) तनत्य गतवर्ष सम्बन्धि घट्यादिफले, ४५३१३ गुणित गतवर्षे क्षिपेद्योजयेत्तदा लघुर्दिनगणो (लघु सावनाहर्गणो भवेत्), एवमेव अनयैवरीत्या क्रमात् अलघु (महान्त) लघु (अल्प) दिनौघ (सावनाहर्गण) शतश (प्रकारशतै·) प्रसाधयेदिति ॥ १५ ॥

हि भा —किसी युगादि या शकादि से यदि अहर्गणानयन करना हो तो वहा की गतवर्ष सख्या को ४५३१३ से गुण देने से, उसमे ३६४ गुणित गतवर्ष सख्या जोडने से लघु अहर्गण होगा । इस तरह सैकडो प्रकार से वृहदर्गण वा लघ्वहर्गण का साधन करना चाहिये ॥ १५ ॥

अत्रोपपत्तिस्तु तृतीयाध्याये १४ श्लोकोपपत्तिवदेव ज्ञेया, केवल गतवर्पसख्याया विभेद तत्र (१४ श्लोके) गतवर्षस्थाने गतसौरदिवसा गृहीता , अत्र गतवर्षस्थले शकादित इष्टयुगादितो वाऽहर्गणानयने क्रियमाणेऽनया ये गताब्दास्ते ग्रहीतव्या इति । भास्कराचार्येण वर्षान्तादिष्टदिनपर्यन्त दिनगणस्य नाम लघ्वहर्गण कथ्यतेऽर्थाद्वर्षान्तकालिकाहर्गणस्येष्टाहर्गणस्य चान्तर लघ्वहर्गण इति ।

अथ लघ्वहर्गण कदा सावयव कदाच निरवयव इति निरूप्यते । यदाऽधम·शेषाभावस्तदा सूर्योदयामान्तवर्षान्तानामेकत्र स्थितत्वात्सौराहर्गण-चान्द्राहर्गण-सावनाहर्गणाना निरवयवत्वमन्यथा सावयवत्वमिति, अथ निरग्रलक्षण कल्पे कियन्मितमिति विचार्यते । यदा च निरग्रलक्षणमस्ति तदा सौराहर्गण चान्द्राहर्गण-सावनाहर्गणाना महत्तमापवर्त्तनाङ्कोऽन्वेष्टव्यास्तदा महत्तमापवर्त्ताङ्केन तेऽहर्गणा अपवर्त्तिता कार्या लब्धितुल्यवर्षे पुन पुनस्तेषा निरवयवत्वम् । अथचापवर्त्तित·सौराहर्गणमानानि कियद्भिर्वर्षैर्वर्षान्ते भविष्यतीति विचार. । महत्तमापवर्त्ताङ्केनापवर्त्तनेन यावन्ति दिनानि तानि ३६० भजनेन यान्यवशिष्टानि भवेयुस्तानि येनाङ्केन गुणनेन ३६० भवत्तरेव गुणन-तुल्यवर्षैस्तान्यपवर्त्तित सौराहर्गणमानानि वर्षान्ते भविष्यन्तीति सिद्धान्तितम् ।

एवञ्च "अपवर्त्तित चान्द्राहर्गण-सावनाहर्गणमाने कियद्भिर्वर्षैर्वर्षान्ते भविष्यत इति विचार्यते। सौराहर्गणेन साकं चान्द्राहर्गण सावनाहर्गणयोर्महत्तमापवर्त्तनाङ्कमन्विष्यापवर्त्तनाङ्केनापवर्तिते ते चान्द्राहर्गणसावनाहर्गणमाने लब्धितुल्य-वर्षे पुनर्वर्षान्ते भविष्यत इति ॥ १५ ॥

हि भा —इसकी उपपत्ति तृतीयाध्याय १४ श्लोक मे लिखित उपपत्ति की तरह जाननी चाहिये, केवल गतवर्ष सख्या मे भेद है। १४ श्लोक मे गतवर्ष स्थाने गतसौर वर्ष सख्या ली गई है, यहा गतवर्ष स्थान मे शकादि से या किसी युगादि से ग्रहर्गणानयन मे यहा की गतवर्ष सख्या लेनी चाहिये, भास्कराचार्य वर्षान्त से इष्टदिन पर्यन्त दिन समूह को लब्धहर्गण कहते हैं अर्थात् वर्षान्तकालिक ग्रहर्गण इष्टाहर्गणक अन्तर को लब्धहर्गण कहते हैं ॥

लब्धहर्गण कब सावयव होता है और कब निरवयव होता है इसके लिये विचार करते हैं।

जब अवम शेषाभाव होगा तब सूर्योदय-अमान्तकाल, वर्षान्त इन सब को एक जगह रहने के कारण सौराहर्गण-चान्द्राहर्गण सावनाहर्गण के निरवयवत्व होता है अन्यथा सावयवत्व होता है।

निरग्रलक्षण सख्या मे कितने होते हैं इसके लिये विचार करते हैं। जब निरग्र-लक्षण हैं तब *"सौराहर्गण चान्द्राहर्गण-सावनाहर्गण"* इन सब के महत्तमापवर्त्तनाङ्क निकाल कर-महत्तमापवर्त्तनाङ्क से उन ग्रहर्गणो को अपवर्त्तन देने से जो लब्धि होगी तत्तुल्य वर्षो मे फिर-फिर उन ग्रहर्गणो का निरवयत्व सिद्ध हुआ। अब अपवर्त्तित सौराहर्गण के मान कितने वर्षो में वर्षान्त मे होगा इसके लिये विचार करते हैं। महत्तमापवर्त्तनाङ्क से अपवर्त्तन देने से जितने दिन होगे उनको ३६० में भाग देने से जो शेष बचता है उसको जिस अङ्क से गुणने से ३६० होगा उन्ही गुणकाङ्कतुल्य वर्षो मे वे अपवर्त्तित सौराहर्गणमान फिर वर्षान्त मे होगे।

इसी तरह अपवर्त्तित चान्द्राहर्गणमान, अपवर्त्तित सावनाहर्गणमान कितने वर्षों मे वर्षान्त मे होंगे इसके लिये विचार करते हैं। सौराहर्गण के साथ चान्द्राहर्गण और सावनाहर्गण का महत्तमापवर्त्तनाङ्क निकाल कर अपवर्त्तनाङ्क से चान्द्राहर्गण और सावनाहर्गण को अपवर्त्तन देने से जो लब्धि आयेगी तत्तुल्य वर्षों में पुन वे वर्षान्त मे होंगे, इति ॥१५॥

अथ ब्रह्मदिनादौ गतसावनदिनानि कृतादियुगमानानि चाह।

शून्य नखाङ्कनवैकरसैला भूदिवसा द्युगणः कदिनादौ।
यात युगाब्दगणश्च कृतादौ त्रिघ्नयुगस्त्रिगुणः कृतभक्तः ॥१६॥

वि भा —कदिनादौ (ब्रह्मदिनादौ) शून्यनखाङ्क नवैकरसैला (१६१९९२००) भूदिवसा (सावनवासरा) द्युगण (अहर्गण) व्यतीत आसीत्। कृतादौ (सत्ययुगादौ यातयुगाब्दगण.) (गतयुग वर्षसमूह) त्रिगुण कृतभक्त (अर्थान्महायुगस्य $\frac{3}{4}$ त्रि चरणत्रय व्यतीतम् ॥ १६ ॥

हि. भा.—ब्रह्मादिनादि म १६१९९२०० सावनाहर्गण बीत गय थे। सत्ययुगादि मे गतयुगवर्ष महायुग के तीन चरण $\frac{3}{4}$ बीत गये थे ॥१६॥

कलियुगादावहर्गणमाह ।

तद्योगः कल्पादौ द्युगणः कोत्पत्तितोऽथवा निघ्नः
नवगुण रसाष्ट नवनग नेदभुजैः कुदिनवेदिशिः ॥१७॥
रवैकाक्षिशरशर वसुनवरूपाक्षतत्त्ववस्वगाङ्काः ।
कल्पादौ द्युगणोऽयं कलिगत द्युगणेन संयुतस्त्विष्टः ॥१८॥

सि भा —तद्योग (पूर्वकथितानां योग) कोत्पत्तित (ब्रह्मादिनादित) कल्पादौ द्युगण (सावनाहर्गण) अथवा कुदिनवेदशि (कल्पकुदिनचतुर्थांश) नवगुण रसाष्ट नव नगवेदभुजै (२४७९८६३९) निघ्न् (गुणित) तदा रवैकाक्षिशरशर-वसुनवरूपाक्षतत्त्ववस्वगाङ्का (९७८२५५१९८५५२१०), कल्पादौ द्युगण सावनाहर्गण । अत्र कलिगताहर्गणेन युक्तस्तदा कल्पादित इष्टदिन यावदिष्टाहर्गणो भवेत् ॥ १७-१८ ॥

हि भा —ऊपर कहे हुए मानो के योग करने से कलियुगादि मे अहर्गण होता है । अथवा कल्प कुदिन के चतुर्थाश को २४७९८६३९ इतने से गुणने से ९७८२५५१९८५५२१० इतने कलियुगादि मे अहर्गण होते है । इसमे कलि के गताहर्गण जोडने से कल्पादि से इष्टाहर्गण होता है ॥१७-१८॥

अत्रोपपत्ति

कल्पादित कल्यादि यावद्यानि सौरवर्षाणि तानि विदितानि सन्ति, ततोऽनुपातेन यदि कल्पवर्षे कल्पकुदिनानि लभ्यन्ते तदैभि (कल्पादित कल्यादि यावत्सौर-वर्षे) किमित्यनुपातेन कल्पादित कल्पादि यावत्सावनाहर्गण

$$= \frac{\text{कल्पकुदिन} \quad \text{कल्पादित कल्यादि यावत्सौव}}{\text{कल्पवर्ष}}$$

$$\frac{\text{कल्पकुदिन} \times \text{कल्पादित कल्यादि यावत्सौव}}{\text{कल्पवर्ष}} = \frac{\text{कल्पकुदि} \times ३}{४ \times \text{कवर्ष}}$$

$$\frac{\text{कल्पकुदिन}}{४} \times २४७९८६३९ = ९७८२५५१९८५५२१० = \text{कलियुगादावहर्गण} ।$$

अत्र कल्पादित कल्पादि यावदहर्गणयोजनेनेष्टदिन सावनाहर्गणो भवेदिति ॥ १७-१८॥

हि भा —कल्पादि से कलियुगादि तक जितने सौरवर्ष हैं विदित हैं तब उस पर से अनुपात करते हैं । यदि कल्पवर्ष मे कल्पकुदिन पाते हैं तो कल्पादि से कलियुगादि तक सौरवर्ष मे क्या आजायेगा कल्पादि से कलियुगादि तक सावनाहर्गण=

$$\frac{\text{कल्पकुदिन} \times \text{कल्पादित कल्यादि यावत्सौवर्ष}}{\text{कल्पवर्ष}}$$

$$= \frac{\text{कल्पकुदिन} \times \text{कल्पादित कल्यादियावत्सौव} \times ४}{४ \times \text{क वर्ष}}$$

$$=\frac{\text{कल्पकदिन}}{४}\times\frac{\text{कल्पादित कल्पादि यावत्सौवर्ष}\times ४}{\text{कल्पवर्ष}}=\frac{\text{कल्पकुदिन}}{४}\times\text{पठितगुणकाङ्क}$$

$$=\frac{\text{कल्पकदिन}}{४}\times २४७९८६३९=९७८२४५१९८५५२१०=\text{कलियुगादिकसावनाहर्गण ।}$$

॥ १७–१८ ॥

अथ कल्पादितो युगादितो वा व्यस्तदिनाधिपज्ञानमाह ।

सप्ताभ्यस्तात्कुदिनाद्द्युगणोनात्सप्तभाजिताच्छेषम् ।
तेन च मन्दसिताद्यो व्यस्तगणनया दिनाधिपतिः ॥१९॥

हि. भा —सप्ताभ्यस्तात् (सप्तगुणितात्) कुदिनात् (कल्पकुदिनाद्युगकुदिनाद् वा) द्युगणोनात् (अहर्गणरहितात्) सप्तभाजित् (सप्तभक्तात्) शेष यत्तेन व्यस्तगणनया (विलोमगणनया) मन्दसिताद्य (शनिशुक्रादिक) दिनाधिपतिः (दिनपति) भवेदिति ॥१९॥

अत्रोपपत्ति ।

सप्तभक्तेऽहर्गणे शेष यदि शे₁, तथा "७ युकुदि—अहर्गणे' अस्मिन् सप्तताप्टे शेष=शे तदा शे=७ शे₁ अतो—शे₁ अस्माद्यादित क्रमगणना सैव ७—शे₁ अस्मात् शन्यादेर्विपरीतगणना । यथा

यदि शे₁=१ तदा क्रमगणनया वर्त्तमान सोमवारस्तथा

शे=६ । अस्मात् रवि । शनि । शुक्र । गुरु । बुध । कुज । इति विपरीतगणनया वर्त्तमान सोम एव जात ॥१९॥

हि भा —सात गुणित कल्पकुदिन या सातगुणित युगकुदिन मे अहर्गण घटा कर सात से भाग देने से जो शेष होता है उस करके विपरीतगणना द्वारा शनि शुक्र आदि दिनपति होते हैं ।

उपपत्ति

अहर्गण को सात से भाग देने से जो शेष रहता है उसका नाम=शे₁ और ७ युकुदि—अहर्गण इसमे सात से भाग देने से जो शेष रहता है उसका नाम=शे तब शे=७—शे₁ इसलिये—शे₁ इससे जो रव्यादिक क्रमगणना होती है वही ७—शे₁ इससे शनि आदि की विपरीतगणना होती है । जैसे

यदि शे₁=१ तदा क्रमगणना से वर्त्तमान सोमवार होता है तथा

शे=६ इससे रवि । शनि । शुक्र । गुरु । बुध । कुज । विपरीतगणना स वर्त्तमान सोम ही आता है ॥१९॥

अथ सावनाहर्गणतश्चान्द्राहर्गणज्ञान सौराहर्गणज्ञानञ्च क्रियते ।

द्युगणोऽधोऽधम गुणितात्कुदिनहृतादाप्तयुगविधोर्युगण ।
पृथगधिकगुणो विधुर्दिनहृतोऽधिमासदिनवर्जितोऽर्काहा ॥२०॥

वि. भा.—द्यु गण (सावनाहर्गण) अध (स्थानद्वये स्थापनीय) एकत्राऽवम गुणितात् (युगावमदिनगुणितादहर्गणात्) कुदिनहृतात् (युगकुदिनभक्तात्) आप्त (लब्ध) यत्तेन द्वितीयस्थानस्थोऽहर्गणो युक्तस्तदा विधोर्द्युगण (चान्द्राहर्गणो भवेत्)। अथ पृथक् (स्थानद्वये स्थाप्य) एकत्र अधिकगुण (युगाधिमासदिनगुणित) विधुदिनहृत (युगचान्द्रदिनभक्त) यल्लब्धमधिमासदिन तेन द्वितीयस्थानस्थश्चान्द्राहर्गणो हीनस्तदाऽर्काहा (सौरदिवसा) भवन्तीति ॥२०॥

हि. भा.—सावनाहर्गण को दो जगहो मे रखना एक जगह अहर्गण को युगावमदिन से गुण कर युगकुदिन से भाग देने से जो लब्ध होता है, उसे द्वितीय स्थान स्थित सावन अहर्गण मे जोड देना तब चान्द्राहर्गण होता है। इसको दो जगहो मे रखना, एक जगह युग के अधिमास दिन से गुण देना, युगचान्द्र दिनो से भाग देने से जो फल (गत अधिमासदिन) आवे उसे दूसरे स्थान मे रखे हुए चान्द्राहर्गण मे घटा देने से सौराहर्गण होता है ॥२०॥

उपपत्ति।

अत्रानुपातो यदि युगकुदिनैर्युगावमदिनानि लभ्यन्ते तदाहर्गणेन किमित्यनुपातेनाहर्गणसम्बन्धिगतावमदिनानि समागच्छन्ति, तत्स्वरूपम्

$= \frac{\text{युगावमदिन} \times \text{अहर्गण}}{\text{युगकुदिन}}$ एतेन फलेन सावनाहर्गणो युक्तस्तदा चान्द्राहर्गणो भवेत्

सावनाहर्गण + अनुपातागतावमदिन = चान्द्राहर्गण

तत यदि युगचान्द्रदिनैर्युगाधिदिनानि लभ्यन्ते तदाऽऽनीत चान्द्राहर्गणेन किं समागच्छन्ति गताधिदिनानि तत्स्वरूपम् $= \frac{\text{युगाधिदिन} \times \text{चान्द्राहर्गण}}{\text{युचा}}$ गताधिदिन। एतै समागतगताधिदिनैश्चान्द्राहर्गणो हीनस्तदा सौराहर्गण = चान्द्राहर्गण — अनुपातागतगताधिदिन अत उपपन्नमाचार्योक्तम् ॥२०॥

उपपत्ति

हिं भा—यहा अनुपात करते हैं कि युगकुदिन मे युगावम दिन पाते हैं तो अहर्गण म क्या इस अनुपात से गतावम दिन आते है, $\frac{\text{युगावमदिन} + \text{अहर्गण}}{\text{युकुदिन}}$ = गतावमदिन, इन्हे सावनाहर्गण मे जोडने से सावनाहर्गण × गतावमदिन = चान्द्राहर्गण, इस पर से पुन अनुपात करते हैं कि यदि चान्द्रदिन मे युगाधिदिन पाते है तो चान्द्राहर्गण मे क्या इस अनुपात से गताधिदिन आ जायेंगे। $\frac{\text{युगाधिदिन} + \text{चान्द्राहर्गण}}{\text{युचादि}}$ = गताधिदिन, इनको चान्द्राहर्गण मे घटाने मे सौराहर्गण हो जायगा, चान्द्राहर्गण = गताधिदिन — सौराहर्गण, इससे आचार्योक्त पद्य उपपन्न हुआ ॥२०॥

इदानीमेकस्य मानज्ञानेनान्यस्य ज्ञान कथमित्याह।

पातावमेन्दु दिनराशिचयः स्वशिष्ट्या युक्तोनितोऽवमहृतो विधुवासरा वा।
एवं गताधिकगणश्च रविद्युराशिरन्योन्यतोऽवमदिनानि गताधिमासा. ॥२१॥

वि भा—गतावमेन्दुदिनराशिचय (गतावम चान्द्रदिन समूह) स्वशिष्टया (स्वशेषेण) युक्तोनित. (सहितरहित) अवमहृत वा विधुवासरा (चान्द्रदिवसा) भवन्तीति। अर्थादेषा सशेषावमादीना परस्पर-सङ्कलनेन व्यवकलनेन वाऽवमभक्तेन यथा चान्द्रदिवसा भवन्ति तथा सर्व कर्मकार्यम्। एव गताधिदिनं सौरदिनस्य गुणनेन पूर्ववद्भागहरणेनयुक्तो नितेत्यादि करणेना-वमदिनानि गताधिमासादच भवन्तीति ॥२१॥

हि भा—गतावम, चान्द्रदिन सौरदिन, सशेषाधिमास इन सब को परस्पर जोडने घटाने, गुणने से अवम से भाग देने से, चान्द्रदिन का ज्ञान होता है। इसी तरह गताधिमासदिन से सौरदिन को गुण कर परस्पर भाग देने से, जोडने, घटाने से अवम और अधिमास आदि का ज्ञान होता है ॥२१॥

पुन प्रकारान्तरेणाहगणानयनमाह।

पृथगिनदिनराशिश्चन्द्रभघ्नो विभक्त शतगुणित खखेषु व्योमवेदैर्विहीन।
रसनग नखल द्विव्योमरामैश्च युक्त पृथगिन हृतराशिर्द्विष्टइत्थ विभक्त ॥ २२ ॥
खाग्नि खैक शरषण्मुखैर्युतो रामखाग भजितास्त वर्जित।

स्याद् द्यु राशिरविसावनोऽथवा—

वि भा—इनदिनराशि (गतसौरवासर) पृथक (स्थानद्वये) स्थापित। एकत्र चान्द्रभघ्न (चन्द्रराशिगुणित) शतगुणित खखेषु व्योमवेदै (४०५००००) विभक्त (भाजित) फल रसनगनवलद्विव्योमरामै (३०२९७६) विहीन (रहित) शेष पृथक् स्थापित सौरदिने युक्त (सहित) पूर्वहरेण विभक्त (भाज्य) फल पृथक् (स्थानद्वये स्थाप्यम्) एकत्र खाग्निखैकशरषण्मुखै (१६५१०३०) युत, रामखागभजितास्तवर्जित (७०३ एतद्भजनेन यत्फल) तेन द्वितीयस्थाने हीन तदा द्युराशि रविसावन (रविसावनाहर्गण) स्यादिति ॥ २२ ॥

हि भा—गतसौर दिन को दो जगह रखना, एक जगह उसे चन्द्रराशि से गुण देना, ४०५०००० इस भाग देना, जो लब्धि आवे उसमे (३०२९७६) घटा देना शेष को द्वितीय स्थान मे रखे हुए सौरदिन मे जोड देना, उपरोक्तहर से भाग देना, लब्धि को दो जगहो मे रखना, एक जगह १६५१०३० जोड देना, ७०३ इस भाग देने से जो लब्धि हो उसे द्वितीय स्थान स्थित सख्या में घटाने से सूर्य का सावनाहर्गण होता है ॥२२॥

अत्रोपपत्ति।

यदि युगसौरदिनैर्युगाधिदिनानि लभ्यन्ते तदा गतसौरदिनै किमित्यनुपातेन लब्धानि सशेषाधिमासदिनानि तत्स्वरूपम् $= \frac{\text{युगाधिदिन} \times \text{गतसौरदि}}{\text{युगसौरदि}} =$

गताधिदिन $+ \frac{\text{अधिशेषदि}}{\text{युगसौरदि}}$ अत्र यदि युगाधिदिनयुगसौरदिनस्थले तत्तन्मानानि गृह्यन्ते

तदाऽपवर्त्तनादिना $\frac{\text{युगाधिदिन} \times \text{गतसौरदि}}{\text{युगसौरदि}} = \frac{२७१ \times \text{गतसौरदि}}{४०५००००} =$ गताधिदिन $+$

$\frac{३०२९७६}{४०५००००}$ अत्र $\frac{३०२९७६}{४०५००००}$ इति त्यक्तं तदा लब्धगताधिदिनैर्गतमासदिनं सहितं तदा चान्द्रदिनं भवेत्पुनरपि स्थानद्वये स्थाप्यम् ।

ततोऽनुपातो यदि युगचान्द्रदिनैर्युगावमदिनानि लभ्यन्ते तदा समानीत-चान्द्रदिनैः किमित्यनुपातेन सशेषावमदिनानि तत्स्वरूपम्

$= \frac{\text{युगावमदि} \times \text{समागतचान्द्रदि}}{\text{युगचांदिन}} =$ गतावमदि $+ \frac{\text{अवमशेदि}}{\text{युचादि}}$ अत्रापि युगावम-दिनादि मानग्रहणेनापवर्त्तनेन च $\frac{\text{युगावमदि} \times \text{समागतचादि}}{७०३} =$ गतावमदि $+$

$\frac{१६५१०३०}{७०३}$ एतेन लब्धफलेन पृथक् स्थापित चान्द्राहर्गणमानानि रहितानि शेषाणि च त्यक्तानि तदा सावनाहर्गणो भवतीति । अत्र श्लोकपद्ये त्रुटिरस्तीति. ।

अत्र पद्ये पृथग्गिनदिनराशिश्चन्द्रभघ्न इत्यादि वर्त्तते तत्र चन्द्रभघ्न इत्यनेन चन्द्रराशिगुणित इत्यर्थो न कार्यः । चन्द्रभघ्न (२७१) इत्यनेन गुणित इत्यर्थोऽवधेय इति ॥२२॥

हि भा.—यदि युगसौर दिन में युगाधिमास दिन पाते हैं तो गतसौर दिन में क्या इस अनुपात से शेष सहित गताधिदिन आ जायगा, $\frac{\text{युगाधिमासदि} \times \text{गतसौदि}}{\text{युगसौदि}} =$ गताधिमासदिन $+ \frac{\text{अधिशे}}{\text{युगसौदि}}$

यहां युगाधिमासदि, युगसौरदिन इनको अपने-अपने युगपठित दिवससंख्या लिखने से और अपवर्तन देने से $\frac{२७१ \times \text{गतसौदि}}{४०५००००} =$ गताधिदि, शेष को छोड़ दिया गया । गतसौर दिन में गताधिदिन जोड़ने से चान्द्र दिन हुआ, तब अनुपात करते हैं । युगचान्द्र दिन में युगावमदिन पाते हैं तो आये हुए चान्द्रदिन में क्या इस अनुपात से शेष सहित गतावमदिन आवेगा

$\frac{\text{युगावमदिन} \times \text{समागतचान्द्रदि}}{\text{युगचादि}} =$ गतावमदि $+ \frac{\text{अवमशे}}{\text{युचा}}$

यहाँ युगावमदिन, युगचान्द्रदिन इनके स्थान पर इनके युगपठित मान लेने से और अपवर्त्तनादि देने से अपवर्त्तित $\frac{\text{युगावमदि} \times \text{समागतचादि}}{७०३} =$ गतावमदि $+ \frac{\text{पातिशे}}{७०३}$

शेष को छोड़ देने से चान्द्राहर्गण में (समागत चान्द्रदि) में गतावम दिन को घटाने से सावनाहर्गण हो जायेगा । यहाँ पद्य में चन्द्रभघ्नः शब्द से चन्द्रराशि से गुणित का ग्रहण नहीं करना चाहिये किन्तु २७१ इनसे गुणित समझना चाहिये ॥२२॥

पुनरहर्गणानयनम्

सूर्यं मासनिकरो द्विधा स्थितः ॥ २३ ॥
गोगजाग्नि रसषड्गुणो हृतः खाभ्रखाभ्र रसरूपबाहुभिः ।
लब्धमास सहितोऽग्नितारडितः खाग्निभिस्तिथियुतः पृथग् धृतः ॥२४॥
मूर्छनाभ्रनवखाक्षिभिर्हतः खार्क भक्तशिशिरांशुवासरैः ।
लब्धहीनदिवसापवर्जितः स्याद्द्युराशिरिनसावनोऽथवा ॥२५॥

वि. भा —सूर्यमासनिकर (सौरमासगण) द्विधा (स्थानद्वये) स्थित (स्थाप्नीय), एकत्र गोगजाग्निरसषड्गुणो हत (६६३८९ एतेर्गुणित) खाभ्रखाभ्ररसरूपबाहुभि (२१६०००० एतैर्भजनेन ये लब्धा मासास्तै) सहित द्वितीयस्थानस्थितसौरमासगणो युक्त) खाग्निभि (त्रिंशद्भि) ताडित (गुणित) तिथियुत (वर्त्तमानमासस्य शुक्लप्रतिपदादितो गततिथिसख्याभिर्युक्त, पृथग्धृत (स्थानद्वये स्थाप्नीय) एकत्र मूर्छनाभ्रनवखाक्षिभि (२०९०२१) हत (गुणित) खार्कभक्त शिशिरांशुवासरै (द्वादशभक्त-युगचान्द्रदिनैर्भक्त सन्) लब्धहीन दिवसापवर्जित (लब्धैरवमदिनैर्द्वितीयस्थानस्थिताङ्को हीन) तदा अथवा इनसावन द्युगण (सूर्यसावनाहर्गण) स्यादिति ॥ २४-२५ ॥

हि भा —गत सौरमासगण को दो जगह रखना, एक जगह उसको (६६३८९) इससे गुणकर (२१६००००) इससे भाग देना जो मासात्मक भागफल हो उसे द्वितीय स्थान मे रखे हुए गतसौरमासगण मे जोड देना, तब तीस से गुणकर वर्त्तमान मास के शुक्लप्रतिपदा से गततिथि सख्या जोड देना, उसको दो जगह मे रखना, एक जगह (२०९०२१) इतने से गुणा करना बारह से भाग लिये हुए युगचान्द्र दिन से भाग देना, लब्धि (अवम दिनो को) द्वितीय जगह मे रखे हुए अङ्को मे घटा देना तब सूर्य का सावन अहर्गण होता है ॥२४-२५॥

उपपत्ति

प्रथम प्रकारेण यदहर्गणानयन कृत तत्रैव युगपठित सौरमासादिमान सगृह्य गणित क्रियते यथा तत्राहर्गणसाधनावसरे गतसौरमासगणादनुपात कृत

$$\frac{\text{युगाधिमास} \times \text{गतसौरमास}}{\text{युगसौरमास}} = \frac{१५९३३३६ \times \text{गतसौमा}}{५१८४०००० } = \frac{५३१११२ \times \text{गतसौरमास}}{१७२८०००० } = \frac{६६३८९ \times \text{गतसौरमा}}{२१६०००० } =$$

गताधिमास इति द्वितीयस्थानस्य सौरमासगणे युक्तस्तदा चान्द्रमासगणो वर्त्तमानमासस्य गतामान्त यावद्भवेत्, त्रिंशद्गुणनेन वर्त्तमानमासस्य गतामान्त यावच्चान्द्रदिनानि भवन्ति, अत्र वर्त्तमानमासस्य शुक्लप्रतिपदादित इष्टदिन यावत्तिथि सख्या योज्या तदेष्टदिन यावच्चान्द्राहर्गणोभवेत्तत

$$\frac{\text{युगावमदि} \times \text{चान्द्राहर्गण}}{\text{युगचादि}} = \frac{२५०८२०५२ \times \text{चान्द्राहर्गण}}{१६०३०००० ८०}$$

39254

$$= \frac{१२५४१०२६ \times \text{चान्द्राहर्गण}}{८०१५०००४०} = \frac{६२७०६३ \times \text{चान्द्राहर्गण}}{४००७५००२०}$$

$$= \frac{२०६०२१ \times \text{चान्द्राहर्गण}}{१३३५८३३४०} = \frac{२०६०२१ \times \text{चान्द्राहर्गण}}{\frac{\text{युगचान्द्रदि}}{१२}} = \text{गतावमदिनानि}$$

अत चान्द्राहर्गण—गतावमदि = सावनाहर्गण ॥ २४-२५॥

हि भा —प्रथम प्रकार से जो अहर्गणानयन किया गया है उसी मे पठित युगसौरमासादि प्रमाण लेकर गणित करते है। जैसे महर्गणानयन मे गतसौरमास गण पर से अनुपात किया गया $\frac{\text{युगाधिमास} \times \text{गसौमा}}{\text{युगसौरमास}}$ यहा पर पठित युगाधिमास सख्या—युगसौरमास सख्या ग्रहण करने से $\frac{१५९३३३६ \times \text{गतसौमास}}{५१८४००००} =$

$= \frac{५३१११२ \times \text{गतसौमा}}{१७२८००००} = \frac{६६३८९ \times \text{गतसौरमास}}{२१६००००} = \text{गताधिमास}$ । इसको गतसौरमास मे जोडने से वर्त्तमान मास के गतामान्त तक चान्द्रमासगण हो जायेंगे। इन्हे तीस से गुणने से गतामान्त तक चान्द्रदिन होगे इनमे वर्त्तमान मास के शुक्ल प्रतिपदा से इष्टदिन तक तिथिसख्या जोडने से इष्ट दिन तक चान्द्राहर्गण होगा, तब

$$\frac{\text{युगावमदिन} \times \text{चान्द्राहर्गण}}{\text{युगचादि}} = \frac{२५०८२०५२ \times \text{चान्द्राहर्गण}}{१६०३०००००८०} =$$

$$\frac{१२५४१०२६ \times \text{चान्द्राहर्गण}}{८०१५०००४०} = \frac{६२७०६३ \times \text{चान्द्राहर्गण}}{४००७५००२०} = \frac{२०६०२१ \times \text{चान्द्राहर्ग}}{१३३५८३३४०}$$

$$= \frac{२०६०२१ \times \text{चान्द्राहर्गण}}{\frac{\text{युगचादिन}}{१२}} = \text{गतावमदिन} ।$$

चान्द्राहर्गण—गतावमदिन = सावनाहर्गण ॥ २४-२५ ॥

प्रकारान्तरेणाहर्गण साधनम्

दिश्वाग्निनन्द मन्वग्नि शशिघ्ना भाजिताः समाः ।
खखाभ्राङ्कगुणैर्लब्ध मेषाद्यहयुत च वा ॥ २६ ॥

वि भा —समा (गताब्दा) विश्वाग्निनन्द मन्वग्निशशिघ्ना (१३१४९३१३ एभिर्गुणिता) खखाभ्राङ्कगुणै (३६०००) भाजिता (भक्ता) लब्ध मेषाद्यहयुत (मेषसक्रान्तित इष्टदिन यावद्दिनसख्यया सहित) वाऽहर्गण इति ॥ ६१॥

हि भा —गतसौरवर्ष को १३१४९३१३ से गुणकर (३६०००) इतने से भाग देने से जो लब्धि हो उसमे मेषादि से इष्टदिन तक जितनी दिनसख्या हो जोड देना तब महर्गण होता है ॥ २६ ॥

अत्रोपपत्तिः

(१) अत्रैकवर्षे सावनदिनादि =३६५ । १५ । ३१ । १५ । ०

ततोऽनुपातेनगतवर्षसम्बन्धिदिनाद्यम् = $\frac{(३६५ । १५ । ३१ । १५ । ०) \text{ गतवर्ष}}{१ \text{ वर्ष}}$

= (३६५ । १५ । ३१ । १५ । ०) गतवर्ष अत्र १५ । ३१ । १५ । ० इति ६०० वर्षे

६३१३ एतत्तुल्य भवति तदा $\left(३६५+\frac{६३१३}{६००}\right)$ गतवर्ष, पुनरपि

३६५ एतेन सह सवर्णनेन $\left(३६५+\frac{६३१३}{६००\times६०}\right)$ गतवर्ष =

$\left(३६५+\frac{६३१३}{३६०००}\right)$गतवर्ष

$=\left(\frac{१३१४००००+६३१३}{३६०००}\right)$गतवर्ष$=\frac{१३१४६३१३\times\text{गवर्ष}}{३६०००}$=गतवर्षसदिनादि

अत्र मेषादितो दिनसंख्या योजनेनाहर्गणो भवेत् ॥

इति वटेश्वरसिद्धान्ते मध्यमाधिकारे युगणविधिस्तृतीयोऽध्याय समाप्तिमगात् ।

हि भा—एक वर्ष मे सावनदिनादि=३६५ । १५ । ३१ । १५ । ०
तब अनुपात से गतवर्ष सम्बन्धी दिनादि= (३६५ । १५ । ३१ । १५ । ०) गतवर्ष
यहा १५ । ३१ । १५ । ० यह ६०० वर्षों मे ६३१३ एततुल्य होता है
तब $\left(३६५+\frac{६३१३}{६००}\right)$ गतवर्ष, फिर ३६५ इसके साथ सवर्णन करने से

$\left(३६५+\frac{६३१३}{६००\times६०}\right)$गतवर्ष$=\left(३६५+\frac{६३१३}{३६०००}\right)$ गतवर्ष

$=\frac{(१३१४००००+६३१३) \text{ गतवर्ष}}{३६०००}=\frac{(१३१४६३१३) \text{ गतवर्ष}}{३६०००}$

गतवर्ष सदिनादि

इसमें मेषादि से दिनसंख्या (इष्टदिन तक) जोडने से अहर्गण प्रमाण होगा ।

इति वटेश्वरसिद्धान्त के मध्यमाधिकार मे युगण विधि नाम का तीसरा अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।।



सर्वतोभद्रनामकः

चतुर्थोऽध्यायः

तत्रादौ अहर्गणद्वारा ग्रहानयनमाह ।

द्युगणे भगणाभ्यस्ते कुदिनहृते पर्ययादि गतखेटाः ।
रव्युदये लङ्कायां मृदूच्चपाताः स्वकुद्युभिः साध्याः ॥ १ ॥

वि. भा.—द्युगुणे (अहर्गणे) भगणाभ्यस्ते (युगग्रहभगणगुणे) कुदिनहृते (युगकुदिनभक्ते) तदा पर्ययादिगतखेटा (भगणादिकग्रहाः) भवन्ति, लङ्कायां (लङ्काक्षितिजे) रव्युदये ते ग्रहा आगच्छन्ति, एवं मृदूच्चपाताः (मन्दोच्चपातादय) स्वकुद्युभि (स्वसावनदिनै.) साध्या' ।

अत्रोपपत्तिः ।

$\frac{\text{युगग्रहभगण} \times \text{अहर्गण}}{\text{युगकुदिन}} = \text{गतभगण} + \frac{\text{भगणांशे}}{\text{युकु}}$ प्रतिदिनजनित गतिकलोत्पन्नासु वैषम्यमूलक प्रतिकुदिन वैषम्येनैतादृशानुपाताभावादेकवर्पान्त.पाति स्पष्टकुदिनानामेकत्रितानां कृतस्वसस्यकसमखण्डानां मध्यसावनमेव स्पष्टगतिकलाभ्यो मध्यगतिकलेति च कृत्वैकस्तादृशो ग्रहश्चेत्कल्पितो भवेद्यस्य कुदिन मध्यमसावन तद्गतिकला च मध्यमगतिकला भवेत्तदा तत्कुदिनेनैवमनुपात' स्यात् । परञ्चायं क्रान्तिवृत्ते चालितो भवेत्तत्र समचापजासूनामप्यसमत्वात् । अथ

$\frac{\text{वर्पान्त.पास्पसावनयोग}}{\text{वर्पान्त.पास्पसावनस}} = \text{मध्यमसा}$

वर्पान्तःपातिस्पष्ट-सावनयोगसम्बन्धिनाक्षत्रम् = वर्पान्त.पातिस्पष्टसावस + १ ना

अतः १ मध्यसावन $= \frac{\text{वअ पास्पष्टसावस} + \text{१ ना}}{\text{वअपास्पसावस}} = \text{१} + \frac{\text{१ ना}}{\text{वअपास्पसावनस}}$

$= \text{१ ना} + \frac{\text{२१६०० असु}}{\text{वअ पास्पसास}}$ पर $\frac{\text{२१६०० कला}}{\text{वअ पास्पसावनस}} = \text{मध्यगतिकला}$

अत मध्यगति कला समासु = $\frac{२१६०० \text{ असु}}{\text{वग्र पास्पसावनस}}$. मसावन=१ ना+मगतिक-

लासमासु पर कला तुल्या असवो नाडीमण्डल एवातो नाडीमण्डल एवोक्तग्रहश्चालनीय इति सिद्धम् । अत स्वस्वभगणादनेनानुपातेन नाडीमण्डलीय मध्यमार्कस्य काल्पनिकत्वात्कल्पिते क्रान्तिवृत्तीय मध्यमार्क आगतोऽयं मध्यमग्रह अत आचार्यो "रव्युदये लङ्कायां" वदतीति । आचार्योक्त "रव्युदये लङ्कायां" मिद समीचीन नास्ति यत आचार्येणात्रोदयान्तर शून्य कल्पितमिति ॥ १ ॥

हि भा — अहर्गण को युग ग्रहभगण से गुणकर युगकुदिन से भाग देने से भगणादिक ग्रह लङ्का क्षितिजोदय कालिक होत हैं। इसी तरह अपने अपने सावनदिनो से मन्दोच्च पातादि साधन करना ॥१ ॥

उपपत्ति

$$\frac{\text{युगग्रहभगण} \times \text{अहर्गण}}{\text{युकु}} = \text{गतभगण} + \frac{\text{शेष}}{\text{युकु}}$$

अथ $\frac{\text{वर्षान्त पाति स्पष्टसावनयोग}}{\text{वर्षान्त पातिस्पसावनस}} = १ \text{ मध्यमसा}$

वर्षान्त पाति स्पष्टसावनयोग सम्बन्धी नाक्षत्र=वर्षान्त पातिस्पष्टसावनस+१ ना

अत १ मध्यमसावन = $\frac{\text{वर्षान्त पातिस्पष्टसावनस} + १ \text{ ना}}{\text{वर्षान्त पाति स्पष्टसाम}} =$

$$१ + \frac{१ \text{ ना}}{\text{वर्षान्त पातिस्पसावनस}} = १ \text{ ना} + \frac{२१६०० \text{ असु}}{\text{वग्र पास्पसास}}$$

लेकिन $\frac{२१६०० \text{ कला}}{\text{वर्षान्त पाति स्पष्टसावनस}} = \text{मध्यमगतिकला}$

इसलिये मध्यगतिकला समासु = $\frac{२१६०० \text{ असु}}{\text{वर्षान्त पातिस्पसावनस}}$

अत मध्यमसावन = १ ना + मध्यगतिकलासमासु

पर कलातुल्य असु नाडीवृत्त ही मे होती है इसलिये पूर्वोक्तानुपात से जो ग्रह आते हैं उनको नाडीवृत्त मे ले जाना चाहिये यह सिद्ध हुआ अत अपने अपने युगभगण से अनुपात द्वारा जो ग्रह आते हैं वे क्रान्तिवृत्तीयमध्यमार्कोदय कालीन (लङ्काक्षितिजोदयकालीन) होते हैं यह आचार्य का कथन ठीक नहीं है क्योकि नाडीवृत्तीयमध्यमार्क क्रान्ति वृत्तीयमध्यमार्क का अन्तर (उदयान्तर) यहा शून्य मानते हैं तभी 'रव्युदये लङ्कायां' हो सकता है, अन्यथा नहीं ॥ १ ॥

प्रसङ्गादुदयान्तर सम्बन्धे किञ्चिद्विचार्यते ।

अहर्गणादनुपातेन यो ग्रह समागच्छति स मध्यमसावनान्तविन्दुकोऽर्थाद्-

गोलसन्धितो रविभुजाशव्यासार्धवृत्त यत्र नाडीवृत्ते लगति तद्बिन्दुक । रव्युपरिगत ध्रुवप्रोतवृत्त कार्यं तन्नाडीवृत्ते यत्र लगति ततो भुजांशवृत्तनाडीवृत्तसम्पात यावदुदयान्तरासव । एतत्सम्बन्धिग्रहगतिकला प्रमाणमानीयते, तत्रानुपातो यद्यहोरात्रासुभिर्ग्रहगतिकला लभ्यन्ते तदोदयान्तरासुभि किमित्यनुपातेनोदयान्तरासुसम्बन्धिनी ग्रहगतिस्तत्स्वरूपम् $\frac{\text{ग्रहगतिकला} \times \text{उदयान्तरासु}}{\text{अहोरात्रासु}}$ एतत्फल यद्यहर्गणानीतग्रहे (अहर्गणान्तकालिक ग्रहे) सस्क्रियते तदा ध्रुवप्रोतवृत्त नाडीवृत्त सम्पातविन्दौ (मध्यमार्कोदयकाले) ग्रहो भवेत् । उदयान्तरस्वरूपदर्शनेन स्पष्टमवसीयते यद् भुजाश विषुवाशयोरन्तरम्=उदयान्तरम् । सम्पातविन्दौ मध्यमरवौ विषुवाशभुजाशयोरभावादुदयान्तराभाव । तथाऽयनसन्धिस्थे मध्यमरवावपि तयो समत्वादुदयान्तराभाव * एतयोर्मध्ये ह्युदयान्तरमुत्पद्यते । पूर्वमनुपातेन यदुदयान्तरफलमानीत तन्न समीचीन यत उदयान्तरासु मध्येऽपि ग्रहाणा काचिद्गतिर्भवति तद्ग्रहण तु न कृतमत पूर्वानीतोदयान्तरफलेन सस्कृतोऽहर्गणान्तकालिक ग्रहो नहि मध्यमार्कोदयकालिको भवेत् । अतएव वास्तवोदयान्तरप्रमाणम्=य एतदुदयान्तरासु मध्ये या ग्रहगतिस्तज्जनितासुभिर्यदि पूर्वोक्तमुदयान्तर सस्क्रियते तदा वास्तवमेवोदयान्तर भवति । अथवास्तवोदयान्तरकाले ग्रहगति =

$\frac{\text{ग्रहगतिक} \times \text{य}}{\text{अहोरात्रासु}}$ एतत्सम्बन्ध्यसुप्रमाणज्ञानार्थमनुपातो यदि राशिकला १८०० भिर्निरक्षोदयासवो लभ्यन्ते तदोदयान्तरकलाभि किमित्यनुपातेन तत्सम्बन्ध्यसुप्रमाणम्=$\frac{\text{ग्रगक} \times \text{य} \times \text{निरक्षोदयासु}}{\text{अहोरात्रासु} \times १८००}$ अत्र $\frac{\text{ग्रगक}}{\text{अहोरात्रासु}}$=१ असुजगति

तथा $\frac{\text{निरक्षोदयासु}}{१८००}$= १ कलोत्पन्नासु

तत १ असुजगति × १ कलोत्पन्नासु × य=पूर्वानीतासव । पूर्वोक्तोदयान्तरे सस्करणेन वास्तवमुदयान्तरम्=पूर्वकथितोदयान्तर±१ असुजग × १ कलोत्पन्नासु × य=य

समशोधनेन

पूर्वकथितोदयान्तर=य∓१ असुजगति १ कलोत्पन्नासु × य

=य (१∓१ असुजग × १ कलोत्पन्नासु)

अत $\frac{\text{पूर्वकथितोदयान्तर}}{१\mp१ \text{ असुजग} \times १ \text{ कलोत्पन्नासु}}$=य

एतेन म म श्रीसुधाकरद्विवेदिसूत्रम् ।

"एकासुजातगतिसङ्गुणितैकलिप्तोत्पन्नासु राश्युदयहीनयुतेन तेन ।

रूपेण पूर्वमुदयान्तरमत्र भक्त स्वर्गं ग्रहे युग युजो पदयो क्रमेण ॥

उपपद्यते ।

या त्रुटि प्राचीनोक्तोदयान्तरकर्मणि तादृश्येव भुजान्तरकर्मणि चरकर्मणि चास्ति वास्तवनयनमप्येकविधमेवार्थात्प्राचीनोक्तोदयान्तरवशतो यद्वास्तवोदयान्तर कृत तत्र हरे यत्फलमस्ति तदेव फल प्राचीनोक्तभुजान्तराद्यराद्य तद्वास्तवानयने भवति, केवल भाज्ये यत्र प्राचीनोक्तमुदयान्तर तत्र प्राचीनोक्तभुजान्तर चरञ्च भवतीति ॥

अथवा वास्तवोदयान्तरसाधनम् ।

अथोदयान्तरम्=भुजाश-विषुवाश तदा चापयोरिष्टयोरित्यादिनोदयान्तरज्या=

$$\frac{\text{ज्याभु}\times\text{कोज्यावि}-\text{कोज्याभु}\times\text{ज्यावि}}{\text{त्रि}}, \text{पर } \frac{\text{पद्यु}\times\text{ज्याभु}}{\text{द्यु}}=\text{ज्यावि}$$

तथा $\frac{\text{कोटिज्याभु त्रि}}{\text{द्यु}}=\text{कोज्यावि}$

$$\frac{\text{ज्याभु कोज्याभु त्रि}-\text{कोज्याभु. पद्यु ज्याभु}}{\text{त्रि द्यु}}=\text{उदयान्तरज्या, तुल्यगुणक}$$

पृथक्करणेन

$$\frac{\text{ज्याभु. कोज्याभु (त्रि}-\text{पद्यु)}}{\text{त्रि द्यु}}=\frac{\text{ज्याभु. कोज्याभु ज्याजिउ}}{\text{त्रि द्यु}}=$$

उदयान्तरज्या अत्र ज्याजिउ=जिनांशोत्क्रमज्या

हरभाज्यौ त्रि+पद्यु गुणितौ तदा

$$\frac{\text{(त्रि+पद्यु) (ज्याभु कोज्याभु ज्याजिउ)}}{\text{(त्रि+पद्यु) त्रि द्यु}}=$$

$$\frac{\text{(त्रि ज्याभु कोज्याभु+पद्यु ज्याभु कोज्याभु) ज्याजिउ}}{\text{(त्रि+पद्यु) त्रि. द्यु}}$$

$$\frac{\text{ज्याजिउ (कोज्यावि ज्याभु)+ज्यावि कोज्याभु)}}{\text{त्रि (त्रि+पद्यु)}}=$$

$$\frac{\text{ज्याजिउ ज्या (वि+भु)}}{\text{त्रि+पद्यु}}=\text{उदयान्तरज्या} \quad (1)$$

एतेन 'विषुवांशभुजांशयोगजीवा जीनभागोत्क्रमजीवयाविनिघ्नी । परमाल्प द्युज्यया विभक्ता त्रिभजीवायुतयोदयान्तरज्या ॥

इति विशेषोक्तसूत्रमुपपद्यते ।

(१) एतत्स्वरूपदर्शनेन सिद्धयति यत् "ज्याजिउ, त्रि+पद्यु" अनयो स्थिरत्वाद्यदि ज्या (वि+भु) तस्य परमत्व भवेत्तदैवोदयान्तरस्यापि परमत्व भवेत्पर परमा ज्या (वि+भु) =त्रि यदार्थात्र भुजांश+विषुवांश=९० भवेत्तदैवोदयान्तरस्य परमत्वम् । तथा सति

$\frac{\text{त्रि ज्याजिउ}}{\text{त्रि}+\text{पद्यु}}$=परमोदयान्तरज्या ।

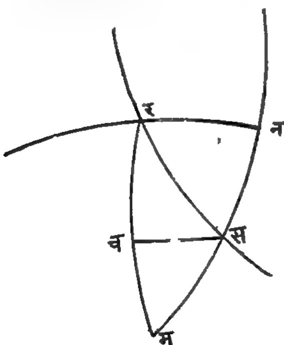
अस्याश्चाप परमोदयान्तरम् । तत सङ्क्रमणगणितेन

$\frac{\text{९०}+\text{परमोदयान्तर}}{\text{२}}=\text{४५}+\frac{\text{परमोदयान्तर}}{\text{२}}$=परमोदयान्तरकालीनभुजाशा ।

तथा $\frac{\text{९०}-\text{परमोदयातन्र}}{\text{२}}=\text{४५}-\frac{\text{परमोदयान्तर}}{\text{२}}$=परमोदयान्तर-

कालीनविषुवाशा ।

अन्यथा वा परमोदयान्तरकालीन भुजाशज्ञानम् ।



क्रान्तिवृत्ते र=रवि । स=नाडी क्रान्तिवृत्तसम्पात सर=भुजाशा । सन=विषुवाशा । नाडीवृत्ते सर भुजाशतुल्य सम दान दत्वा मर वृत्तकार्यं रसम कोणार्धकारि सच वृत्त कार्य तदा सच चाप मर चापोपरि लम्वरूप भवेत् । <रसन=
=जिनाश।
१८०—जिनाश=<रसम,
<रसच=<मसच
$=\frac{\text{१८०}-\text{जिनाश}}{\text{२}}$
$=\text{९०}-\frac{\text{जिनाश}}{\text{२}}$=जिनार्ध-
कोटि ।

चित्र न ११

अथ यदोदयान्तर परम भवेत्तदा भुजाश+विषुवाश=९० तेन परमोदयान्तरकाले मनचाप =भुजाश+विषुवाश=९० अतो नमर चापीय जात्ये नमकोटिचापस्य नवत्यशत्वात्कर्णचाप (रम) मपि नवत्यशतुल्य भवेत् । तेन चर=चम=४५ तदा रचस चापीयजात्येऽनुपात $\frac{\text{ज्या ४५} \angle \text{त्रि}}{\text{ज्या }(\text{९०}-\frac{\text{जिनाश}}{\text{२}})}$=$\frac{\text{परमोदयान्तर}}{\text{कालीन भुजज्या}}$ ।

अस्याश्चाप तदा परमोदयान्तरकालीन भुजाशा भवेयुरिति । एतेन
"त्रिज्येषु वेदाशगुणेन ताडिता जिनार्ध कोट्युत्थगुणेन भाजिता ।
तदीयचापेन समा भुजाशका यदा तदा तत्र परोदयान्तरम्" ॥
इत्युपपद्यते ।

'एतद्बलेनैकस्य "परमोदयान्तरज्ञानेनाहर्गणज्ञानं कथं भवेत्") प्रश्नस्योत्तरं सत्वरमेव भवेद्यथा परमोदयान्तरज्ञानेन पूर्वप्रतिपादितरीत्या तत्कालीन भुजाशज्ञान भवेत्ततो "निरग्रचक्रादपि कुट्टकेनैतद्विलोमेन" ऽहर्गणज्ञान भवेदेवेति ॥

कमलाकरेणोदयान्तरं न स्वीक्रियते प्रत्युत भास्करोक्तोदयान्तरस्य खण्डन क्रियते। कमलाकरेण भास्करोक्तोदयान्तरानयने "मध्यार्कभुक्ता असवो निरक्षे ये ये च मध्यार्ककलासमाना." इत्यादौ निरयणमध्यमरवेर्गतिकलातुल्या असवः सायनरवेर्गतिकलोत्पन्ना सर्वोहि गृहीता अतस्तयोरन्तरे कृतेऽयनांशस्य परमत्वसमये परमायनांशमितमेवोदयान्तरम् । ततोऽनुपात. क्रियते यद्यहोरात्रासुभिरर्कगतिकलास्तदाऽयनांश कलातुल्यो दयान्तरासुभिः का जाता रविचालनकलास्तत्स्वरूपम् = $\frac{\text{रगक} \times \text{अयनांशकला}}{\text{अहोरात्रासु}}$

परमायनांश.=२७° एतत्कला =२७×६०=१६२०, रविमध्यम गतिः=५९'। ८"
अहोरात्रासवः=२१६०० ततो रवेश्चालनकला.= $\frac{(५९' । ८') \times १६२०}{२१६००}$ =

४' स्वल्पान्तरात्

तथा चन्द्रमगति =७९०'। ३५" ततश्चन्द्रचालनकलाः= $\frac{(७९०' । ३५'') \times १६२०}{२१६००}$

=५९' स्वल्पान्तरात्

ततो "भक्ता व्यर्कविधोर्लवा यमकुभिरित्यादिना" गततिथि =०।४। एव योगादावपि एतावता कमलाकरेण कथ्यते यदुदयान्तरस्वीकरणे भास्करकथितमार्गेण परमायनांशकाले पूर्वोक्तरीत्या तिथ्यादौ घटी चतुष्टयमन्तर भवत्यतस्तदुदयान्तर न तथ्यम् । पर कमलाकर-खण्डनमिद न शोभनं, भास्करेण तु सायनमध्यमरवेरेव गतिकलातुल्यासवो गतिकलोत्पन्नासवश्च गृहीतास्तेन तयोरन्तरकरणेनायनांशस्य नाशो भवेत्तदाऽयनांशसम्बन्धेन यत्खण्डन कृत तन्न युक्तम्। भास्करोक्तो दयान्तरस्य कमलाकरकृत खण्डनान्तरमपि वर्त्तते परमेकमपि खण्डनं युक्तियुक्त नहि वर्त्तते, ये उदयान्तर न स्वीकुर्वन्ति तेषामेव तद्दूषणम् । भास्करेणोदयान्तरं स्वीकृत्याऽतीव स्वबुद्धिमत्ता प्रदर्शितेति ॥ १ ॥

हि. भा —यहां प्रसङ्गवश उदयान्तर के सम्बन्ध मे विचार करते हैं।

अहर्गण से अनुपात द्वारा जो ग्रह आते हैं सो मध्यम सायनान्त बिन्दु मे (अर्थात् गोलसन्धि से रवि भुजांश व्यासार्धवृत्त नाडीवृत्त मे जहां लगता है उस बिन्दु मे) रवि के ऊपर ध्रुवप्रोत करने से वह वृत्त नाडीवृत्त मे जहां लगता है वहां से भुजांशवृत्त नाडीवृत्त के सम्पात तक उदयान्तरासु हैं, उदयान्तरासुसम्बन्धिनी ग्रहगतिकला प्रमाण अनुपात से लाते हैं।

यदि अहोरात्रासु मे ग्रहगतिकला पाते हैं तो उदयान्तरासु में क्या इस अनुपात से उदयान्तरासु सम्बन्धी ग्रहगति आई $\frac{\text{ग्रहगतिकला} \times \text{उदयान्तरासु}}{\text{अहोरात्रासु}}$ = उदयान्तरकला

इस फल को यदि अहर्गणानीत ग्रह में (मध्यम सावनान्त कालिक ग्रह म) संस्कार करते हैं तब रव्युपरिगत ध्रुवप्रोतवृत्त नाडीवृत्त के सम्पात विन्दु मे ग्रह होते है। उदयान्तरासु प्रमाण भुजाश विषुवांश के अन्तर हैं, नाडीवृत्त क्रान्तिवृत्त के सम्पात विन्दु मे मध्यम रवि के रहने पर विषुवाश भुजाश के अभाव के कारण से उदयान्तराभाव होता है। तथा अयनसन्धि में मध्यम रवि के रहने पर भुजाश=विषुवाश इस लिये वहा भी (अयनसन्धि म भी) उदयान्तराभाव हुआ, इन दोनो (गोलसन्धि और अयनसन्धि) के बीच मे मध्यम रवि के रहने से उदयान्तर होता है। पहले अनुपात से जो उदयान्तरफल आया है सो ठीक नहीं है क्योकि उदयान्तरासु के मध्य मे भी ग्रह की कुछ गति होगी उसका ग्रहण नही किया गया है। इस लिये पूर्वानीत उदयान्तरफल संस्कृतमध्यमसावनान्त कालिकग्रह (अहर्गणानीतग्रह) मध्यमार्कोदयकालिक (निरक्षक्षितिजोदयकालिक) नही होंगे। इसलिए वास्तव उदयान्तर प्रमाण=य मानकर उदयान्तरासु मध्य मे जो ग्रहगति होती है तज्जनित असुप्रमाण करके यदि पूर्वोक्त उदयान्तर को संस्कार करते हैं तो वास्तव उदयान्तर प्रमाण होगा। वास्तव उदयान्तर काल म ग्रहगति = $\frac{\text{ग्रहगतिक} \times \text{य}}{\text{अहोरात्रासु}}$ एतत्सम्बन्धी असुप्रमाण जानने के लिये अनुपात करते है यदि राशिकला १८०० मे निरक्षोदयासु पाते है तो उदयान्तरकला मे क्या इस अनुपात से तत्सम्बन्धी असुप्रमाण आया = $\frac{\text{ग्रगक य निरक्षोदयासु}}{\text{अहोरात्रासु} \times १८००}$, यहा $\frac{\text{ग्रगक}}{\text{अहोरात्रासु}}$ = १असुजग और $\frac{\text{निरक्षोदयासु}}{१८००}$ = १ कलोत्पन्नासु

इसलिये १ असुजगति × १ कलोत्पन्नासु य=उदयान्तकलासअसु, इसको पूर्वोक्त उदयान्तर मे संस्कार कर देने से वास्तव उदयान्तर होगा।

पूर्वकथित उदयान्तर ± १ असुजगति × १ कलोत्पन्नासु य=य समशोधन करने से

पूर्वकथित उदयान्तर =य ∓१ असुजग × १ कलोत्पन्नासु य

=य(१±१असुजग × १ कलोत्पन्नासु)

अत $\frac{\text{पूर्वकथित उदयान्तर}}{१ \mp १ \text{ असुजग} \times १ \text{ कलोत्पन्नासु}}$ = य।

इससे म म प श्री सुधाकर द्विवेदी का सूत्र उपपन्न हुआ।

एकासुजातगतिसङ्गुणितैकलिसो इत्यादि।

प्राचीनोक्त उदयान्तर कर्म मे जो त्रुटि है वैसी ही त्रुटि भुजान्तर कर्म, और चरकर्म मे भी है, वास्तवानयन भी एक ही तरह के है। उपर्युक्त वास्तव उदयान्तर स्वरूप मे जो हर है वही हर वास्तवभुजान्तर और वास्तवचर मे भी होगा, भाज्य मे पूर्वकथित भुजान्तर, पूर्वकथित चर होगा इति

अथवा दूसरे प्रकार से वास्तव उदयान्तर साधन।

भुजाश—विषुवाश=उदयान्तर। चापयोरिष्टयोर्दोर्ज्ये इत्यादि से

$$\frac{\text{ज्याभु कोज्यावि—कोज्याभु ज्यावि}}{\text{त्रि}} = \text{उदयान्तरज्या।}$$

$$\text{परन्तु } \frac{\text{पद्यु ज्याभु}}{\text{द्यु}} = \text{ज्यावि}$$

$$\frac{\text{कोज्याभु त्रि}}{\text{द्यु}} = \text{कोज्यावि}$$

तब उत्थापन देने से $\frac{\text{ज्याभु कोज्याभु त्रि—कोज्याभु ज्याभु पद्यु}}{\text{त्रि द्यु}} = \text{उदयान्तरज्या।}$

$$= \frac{\text{ज्याभु कोज्याभु (त्रि—पद्यु)}}{\text{त्रि द्यु}} = \frac{\text{ज्याभु कोज्याभु ज्याजिउ}}{\text{त्रि द्यु}}$$

यहा त्रि—पद्यु=जिनाशोत्क्रमज्या

हर और भाज्य को 'त्रि+पद्यु' इससे गुणने से

$$\frac{(\text{त्रि+पद्यु})(\text{ज्याभु कोज्याभु ज्याजिउ})}{(\text{त्रि+पद्यु}) \text{ त्रि द्यु}} = \frac{\text{त्रि ज्याभु कोज्याभु}}{(\text{त्रि+पद्यु}) \text{ त्रि द्यु}} + \frac{\text{ज्याभु कोज्याभु पद्यु}}{(\text{त्रि+पद्यु}) \text{ त्रि द्यु}}$$

$$= \frac{\text{ज्याजिउ (कोज्यावि ज्याभु+ज्यावि कोज्याभु)}}{\text{त्रि (त्रि+पद्यु)}} = \frac{\text{ज्याजिउ} \times \text{ज्या (वि+भु)}}{\text{त्रि+पद्यु}} = \text{उदयान्तरज्या}$$

इससे

विषुवाश भुजाशयोगजीवा जिनभागोत्क्रमजीवया विनिघ्नी।
परमाल्प द्युज्यया विभक्ता त्रिभजीवायुतयोदयान्तरज्या॥

यह विशेषोक्त सूत्र उपपन्न हुआ।

पूर्वानीत उदयान्तरज्या $= \frac{\text{ज्याजिउ} \times \text{ज्या (वि+भु)}}{\text{त्रि+पद्यु}}$, इसमे ज्याजिउ, तथा त्रि+पद्यु ये दोनो स्थिर है तब जहा पर ज्या (वि+भु) इसका परमत्व होगा वही पर उदयान्तर का भी परमत्व होगा। परन्तु कोई भी ज्या त्रिज्या से अधिक नही होती है इसलिये जहा ज्या(वि+भु)=त्रि अर्थात् वि+भु=९० वही पर उदयान्तर का परमत्व होगा।

अत $\frac{\text{ज्याजिउ त्रि}}{\text{त्रि+पद्यु}}$ = परमोदयान्तरज्या। इसका चाप=परमोदयान्तर

तब सक्रमणगणित से $\frac{\text{९०+परमोदयान्तर}}{\text{२}} = \text{४५} + \frac{\text{परमोदयान्तर}}{\text{२}} = \text{परमोदयान्तर}$

कालीन भुजांश

तथा $\frac{९०—परमोदयान्तर}{२} = ४५ — \frac{परमोदयान्तर}{२}$ = परमोदयान्तरकालीन विषुवांश।

अथवा परमोदयान्तरकालीन भुजांशानयन।

यहा क्षेत्र (न० ११) देखिये, क्रान्तिवृत्त मे र=रवि। स=नाडीवृत्त और क्रान्तिवृत्त के सम्पात
सर=रविभुजांश। सन=विषुवांश। नाडीवृत्त मे मर भुजांश तुल्य सम दान देकर मर वृत्त कर दीजिये। रम म कोण के अर्धकारिवृत्त कर दीजिये तब स च चाप मर चाप के ऊपर लम्ब होगा। स च= कोणार्धकारिवृत्त चाप।

<रसन=जिनांश, १८०—जिनांश=<रसम, <रमच=<मसच= $\frac{१८०—जिनांश}{२}$

$= ९० — \frac{जिनांश}{२}$ = जिनार्ध कोटि

जब उदयान्तर का मान परम होता है तब भुजांश+विषुवांश=९० इसलिये परमोदयान्तर काल मे मन चाप=भुजांश+विषुवांश=९० इसलिये नमर चापीय जात्यत्रिभुज मे नम कोटि चाप के नवत्यंश के बराबर होने से रम कर्णचाप भी नवत्यंश तुल्य होगा, अत चर=चम=४५ तब रचम चापीय जात्य त्रिभुज मे अनुपात से $\frac{ज्या\ ४५ + नि}{ज्या\ (९० — \frac{जि}{२})}$ = परमोदयान्तर कालीन भुजज्या। चाप करने से परमोदयान्तर कालीन भुजांश प्रमाण होगा।

इससे अधोलिखित सूत्र उत्पन्न हुआ।

त्रिज्येषु वेदांशगुणेन ताडिता जिनार्धकोट्युत्थगुणेन भाजिता।
तदीयचापेन समा भुजांशका यदा तदा तत्र परोदयान्तरम्॥

इसके बल से "परमोदयान्तर ज्ञान से अहर्गणानयन कैसे होगा" इस प्रश्न का उत्तर बहुत लाघव से हो जायगा परमोदयान्तर ज्ञान से पूर्व प्रतिपादितरीति से तत्कालीन भुजांश ज्ञान हो जायगा, उस पर से "निरग्रचक्रादपि कुट्टकेन" इत्यादि के विलोम से अहर्गणज्ञान हो जायगा।

कमलाकर उदयान्तर नही मानते है बल्कि भास्कर कथित उदयान्तर का खण्डन करते हैं भास्करोक्तोदयान्तरानयन मे "मध्यार्क भुक्ता असवो निरक्षे ये ये च मध्यार्ककला-समाना" इत्यादि मे कमलाकर ने निरयणमध्यम रवि की गति कला तुल्यासु और सायन-मध्यमरवि की गति कलोत्पन्नासु लेकर भास्करोक्तोदयान्तर का खण्डन करते है। जैसे कमलाकर कल्पना के अनुसार दोनो के (निरयण मध्यमरवि गतिकला तुल्यासु और सायन रविगति-कलोत्पन्नासु) अन्तर करने से अयनांशतुल्य उदयान्तर रहता है। इस परसे परमायनांश काल में अयनांशकला सम्बन्धी रवि और चन्द्र की चालनकला लाते हैं। यथा यदि अहोरात्रासु मे

रविगति कला पाते हैं तो अयनांशकलातुल्य उदयान्तरासु में क्या आ जायगा अयनांशकला सम्बन्धी रवि चालनफल $=\frac{\text{रविगतिकला} \times \text{अयनांशकला}}{\text{अहोरात्रासु}}$, रविमध्यगतिकला $=५९' । ८''$,

परमायनांश $=२७°$

एतत्सम्बन्धी कला $=२७ \times ६० = १६२०$, अहोरात्रासु $=२१६००$

∴ परमायनांशकला सम्बन्धी रविचालनकला $=\frac{(५९' । ८'') \times १६२०}{२१६००} = ४'$

स्वल्पान्तर से ।

इसी तरह परमायनांशकला सम्बन्धी चन्द्रचालनकला $=\frac{(७९०' । ३५'') \times १६२०}{२१६००}$

$=५९'$ स्वल्पान्तर से अब "भुक्त्याभ्यर्कविधोर्लवा यमगुणैर्भक्ता तिथि इत्यादि से तिथिमान
घटी
०। ४। ० इसी तरह योगादियों में भी ।

इससे कमलाकर ने दिखलाया है कि यदि उदयान्तर स्वीकार करते हैं तो भास्करकथित रीति से परमायनांशकाल में पूर्व प्रदर्शित युक्ति से तिथियोगादि में चारघटी अन्तर पड़ता है अतः भास्करोक्तोदयान्तर ठीक नहीं है। लेकिन कमलाकरोक्त यह खण्डन ठीक नहीं है भास्कराचार्य तो सायनमध्यमरवि की गतिकला तुल्यासु तथा सायन मध्यमरवि की गतिकलोत्पन्नासु के अन्तर रूप उदयान्तर कहते हैं उन दोनों के अन्तर करने से अयनांश नष्ट हो जायगा। कमलाकर अपने मन से निरयण मध्यमरवि की गतिकलासु लेकर खण्डन किया है भास्कराचार्य के पद्य "युक्तायनांशस्य तु मध्यमस्य" इत्यादि देखने से साफ हो जाता है कि कमलाकर मनगढ़न्त निरयणरवि की गतिकलासु लेकर तत्सम्बन्ध में खण्डन किया है जो कि बिलकुल ठीक नहीं है। भास्करोक्तोदयान्तर का खण्डन कमलाकर ने दूसरे ढङ्ग से भी किया है, लेकिन वह भी ठीक नहीं है, जो उदयान्तर को नहीं स्वीकार करते हैं उनमें यह दोष है। उदयान्तर संस्कार स्वीकार कर भास्कर ने अपनी बुद्धिमत्ता का परिचय दिया है॥ १ ॥

अथ लघ्वहर्गणतो मध्यमरविज्ञानमाह

लघुदिवागणतोऽब्द विवर्जिताद्रविचतुर्युगपर्यय ताडितात् ।
खरसपञ्च नगैक शिवाहृतं विरहिताद् गत भास्करपर्ययैः ॥ २ ॥
खगुणचन्द्र गुणाङ्क समुद्रकु त्रिदशैर्भजितादिनभादि तत् ।

वि भा—अब्दविवर्जितात् (गतवर्षरहितात्) लघुदिवागणात (लघ्वहर्गणात) रविचतुर्युग पर्ययताडितात् (युगपठित रविभगणगुणितात्) खरसपञ्च नगैक शिवाहृतं (१११७५६० एतद्गुणितं) गतभास्करपर्ययैः (गतरविभगणैः) विरहितात् (हीनात्) खगुणचन्द्र गुणाङ्क समुद्रकु त्रिदशैभि (१३१४९३१३० एतन्मितैरङ्कैः) भजितात् (भक्तात्) फल यत्तत् इनभादि (राश्यादिकरवि) भवेदिति ॥

हि. भा—लघ्वहर्गण मे गतवर्ष घटाकर जो हो उसको रवि के पठित युग भगण से गुण देना १११७५६० एतद्गुणितगतरविभगण घटा देना शेष को १३१४९३१३० इतने से भाग देने से राश्यादिक रवि होते हैं। २३ ॥

अत्रोपपत्तिः ।

यदियुगकुदिनैर्युगरविभगणा लभ्यन्ते तदालघ्वहर्गणेन किमित्यनुपातेन लघ्व हर्गणसम्बन्धिभगणादिको रविः $= \frac{\text{युगरविभगण} \times \text{लघ्वहर्गण}}{\text{युकुदि}} =$

$\frac{\text{युरविभगण}}{\text{युगकुदि}} \left(\frac{\text{३६४ गव} + \text{गव} \times \text{४५३१३}}{\text{३६०००}} \right)$

अत्र लघ्वहर्गणे यत्प्रथमखण्ड गतवर्षसम्बन्धि वर्त्तते तत्र गतवर्षरहितमेव लघ्वहर्गणं स्वीकृत्य रव्यानयनं क्रियते ।

$$\frac{\text{युगरविभगण} \times (\text{लघ्वहर्गण} - \text{गव})}{\text{युगकुदिन}} = \text{गतरविभगण} + \frac{\text{शे}}{\text{युकुदिन}}$$

$$\frac{\text{युगरविभगण (लघ्वहर्गण} - \text{गव}}{\text{युगकु}} - \text{गतरविभगण} = \frac{\text{शे}}{\text{युकु}}$$

$$= \frac{\text{युगरविभगण (लघ्वहर्गण} - \text{गव}) - \text{गतरविभगण} \times \text{युकु}}{\text{युकु}} = \frac{\text{शे}}{\text{युकु}}$$

राश्यात्मक करणेन राश्यादिको रवि =

$$\text{१२} \times \left\{ \frac{\text{युगरविभगण(लघ्रहर्गण} - \text{गव}) - \text{गतरविभगण} \times \text{युकु}}{\text{युकु}} \right\} = \frac{\text{१२ शे}}{\text{युकु}}$$

$$= \frac{\text{युगरविभगण (लघ्रहर्गण} - \text{गव}) - \text{गुणाङ्क} \times \text{गतरविभगण}}{\frac{\text{युकु}}{\text{१२}}} = \frac{\text{शे}}{\frac{\text{युकु}}{\text{१२}}}$$

$$= \frac{\text{युगरविभगण (लघ्रहर्गण} - \text{गव}) - \text{गुणाङ्क} \times \text{गतरविभ}}{\text{पठितहर}} = \frac{\text{शे}}{\text{पठितहर}} =$$

राश्यादिको रवि । स्वल्पान्तरात् अत उपपन्नम् ।

उपपत्ति

युगकुदिन मे युगरविभगण पाते हैं तो लघ्वहर्गण मे क्या इस अनुपात से लघ्वहर्गण सम्बन्धी भगणादि रवि आ जायगे, $\frac{\text{युगरविभगण} \times \text{लघ्वहर्गण}}{\text{युकु}} = \text{भगणादिरवि}$ पूर्वानीत लघ्वहर्गणस्वरूप मे गतवर्ष सम्बन्धी जो फल है उसमे केवल गतवर्ष को लघ्वहर्गण मे घटाकर जो शेष रहता है तत्सम्बन्धी मध्यम रवि लाते हैं $\frac{\text{युगरविभगण} \times (\text{लघ्वहर्गण} - \text{गव})}{\text{युकुदिन}}$

$$= \text{गरविभ} + \frac{\text{शे}}{\text{युकु}}$$

$$\therefore \frac{\text{युगरविभगण(लघ्वहर्गण} - \text{गव})}{\text{युकुदि}} - \text{गरविभगण} = \frac{\text{शे}}{\text{युकु}} =$$

$$\frac{\text{युगरविभगण (लब्धहर्गण—गव)—गरविभगण} \times \text{युकुदिन}}{\text{युकुदि}} = \frac{\text{दो}}{\text{युकुदि}}$$ इसको राश्यात्मक

करने से $$\left\{ \frac{\text{युरविभगण (लब्धहर्गण—गव)—गरविभगण} \times \text{युकु}}{\text{युकु}} \right\} \times १२ = \frac{१२ \text{ दो}}{\text{युकु}}$$

$$= \frac{\text{युगरविभगण(लब्धहर्गण—गव)—गतरविभगण} \times \text{युकु}}{\frac{\text{युकु}}{१२}} = \frac{\text{दो}}{\frac{\text{युकु}}{१२}}$$

$$= \frac{\text{युगरविभगण (लब्धहर्गण—गव)—गुणवाङ्क} \times \text{गतरविभगण}}{\text{पठितहर}} = \frac{\text{दो}}{\text{पठितहार}}$$

= राश्यादिरवि स्वल्पान्तर मे

इससे आचार्योक्त पद्य उपपन्न हुआ ॥ २½ ॥

मध्यमचन्द्रानयनमाह

शशिचतुर्युग पर्यय ताडिताज्जिनखषड् गजदोर्नव खेषुभिः ॥ ३ ॥
विनिहतैर्गतवत्सरकैर्युताद्रवि चतुर्युगसावन भूदिनैः ।
विभजिताद्भगणादिशशो भवेत्त्रिकुहतेन समासहितं च तत् ॥४॥

वि. भा —शशिचतुर्युग पर्यय ताडितात् (चन्द्रपठित युगभगण गुणिताहर्गणात्) जिनखषड्गजदोर्नवखेषुभि (५०९२८६०२४) विनिहतै (गुणितै) गतवत्सरकै (गतवर्षै) युतात् (सहितात्) रविचतुर्युगसावनभूदिनै (रवियुगकुदिनै) विभजितात् (भक्तात्) भगणादिशशी (भगणादिकश्चन्द्र) भवेत् । इति चन्द्रप्रमाण त्रिकुहतेन समासहित (त्रयोदशगुणितवर्षयुत) तदा वास्तव शशी भवेत् ॥३-४॥

हि भा —अहर्गण का चन्द्र के पठित युगभगण से गुण देना ५०९२८६०२४ एतद्गुणित गतवर्ष जोड देना रवि के युग सावन (युगकुदिन) म भाग देने से भगणादिक चन्द्र होते हैं । इनमे तेरह गुणित गतवर्ष जोडने पर वास्तव चन्द्र होते है ॥३-४॥

अत्रोपपत्ति

अत्र लब्धहर्गणस्वरूपम् $= ३६४ \text{ गव} + \text{गव} \times \frac{४५३१३}{३६०००} = १३ \text{ गव} + ३५१ \text{ गव}$
$+ \text{गव} \times \frac{४५३१३}{३६०००}$ अत्र $३५१ \text{ गव} + \text{गव} \times \frac{४५३१३}{३६०००} =$ एतदेव लब्धहर्गण मत्वा तत्सम्बन्धि भगणादि चन्द्रमानीय १३ गव योजनेन वास्तव भगणादिचन्द्रो भवेत् ।

$$\frac{(३५१ \text{ गव} + \text{गव} \times \frac{४५३१३}{३६०००})\text{युगचन्द्रभगण}}{\text{युकुदि}} = \frac{\text{गव}(३५१ + \frac{४५३१३}{३६०००}) \times \text{युचभ}}{\text{युकुदि}}$$

$$= \frac{\text{गव} \times १२६८१३१३ \times \text{युगचभगण}}{\text{युकुदिन}} = \frac{\text{लब्धहर्ग} \times \text{युचाभगण}}{\text{युकुदिन}}$$

एतन्मान १३ गव योजित तदा वास्तवश्चन्द्रो भवेदिति । अत्र "जिनखषड्गज-दोर्नव खेषुभिरित्यारभ्य युतादित्यन्तमसङ्गतमिव प्रतिभाति ॥३-४॥

उपपत्ति

पूर्वानीत लघ्वहर्गण का स्वरूप $=$ ३६४ गव $+$ गव $\times \frac{४५३१३}{३६०००}$ इसमे १३ गव छोड कर बाकी को अर्थात् ३५१ गव $+$ गव $\times \frac{४५३१३}{३६०००} =$ गव $\times \frac{१२६८१३१३}{३६०००}$ इसको लघ्वहर्गण मानकर अनुपात से जो भगणादि चन्द्र आवेंगे उनमे १३ गव जोडने से वास्तविक भगणादि चन्द्र होंगे। यहा पर "जिन खपड्गजदोर्नवखेषुभि" इत्यादि से "युतात्" यहा तक निरर्थक मालूम पडता है ॥३-४॥

वेदर्त्तु गुणे द्यु गणे परिकल्पित इष्टभगणसगुणिते ।
भूदिनभक्ते शेषं यत्तद्गतवर्षसंगुण क्षिपेत् ॥५॥

वि भा—द्यु गणे (अहर्गणे) वेदर्त्तु गुणे (६४ एभिर्हते) परिकल्पिते, इष्ट भगण सगुणिते (इष्टग्रहयुगभगणसख्या गुणिते) भूदिनभक्ते (युग कुदिन भक्ते) शेष यत्तत् गत सौरवर्षसगुणित तत्र क्षिपेत्तदा मध्यमग्रह स्यादिति ॥५॥

हि भा—अहर्गण को चौसठ से गुणा कर जो हो उसको एक विशिष्ट अहर्गण मानना, उस कल्पित विशिष्ट अहर्गण को इष्टग्रह के युगभगण से गुण देना, युगकुदिन से भाग देकर जो शेष रहे उसको गत सौरवर्ष से गुणकर जोड देने से मध्यमग्रह होता है ॥ ५ ॥

अत्रोपपत्ति

लअहर्गण $\times$ ६४ $=$ विशिष्टाहर्गण तदाऽनुपातेन $\frac{\text{युगग्रहभगण} \times \text{विशिष्टाहर्ग}}{\text{युकुदिन}} =$ भगणादिग्र $+ \frac{\text{शे}}{\text{युकुदि}}$ अत्र शेष गतवर्षगुण योज्य तदा मध्यमग्रहो भवेदिति ॥१॥

भास्करोक्त लघ्वहर्गण स्वरूपम् $=$ शोशुचा $- \frac{\left(\text{शोशुचा} + \frac{\text{शोशुचा}}{७०२} + \text{क्षेपदिन}\right)}{६४}$

$$६४ \times \text{लघ्वहर्गण} = ६४\ \text{शोशुचा} - \left(\text{शोशुचा} + \frac{\text{शोशुचा}}{७०२} + \text{क्षे दि}\right)$$

इत्येव (६४ $\times$ लघ्वहर्गण) विशिष्टमहर्गण प्रकल्प्यानुपातेन यो हि भगणादिक ग्रहो भवेत्स च लघ्वहर्गणगुणकाङ्केन भजनीयो यश्चाग्रिमश्लोके वर्णितोऽस्ति ॥५॥

उपपत्ति

लअहर्गण $\times$ ६४ $=$ कल्पित अहर्गण इस पर से अनुपात करते हैं कि

$\frac{\text{युगग्रहभगण} \times \text{कल्पित अहर्गण}}{\text{युकुदि}} =$ भगणादिग्र $+ \frac{\text{शे}}{\text{युकुदि}}$ यहा शेष को गतवर्ष से गुण कर जोड देना चाहिए तब वास्तव मध्यमग्रह होता है ॥२॥

$$\text{शोशुचा} - \frac{\left(\text{शोशुचा} + \frac{\text{शोशुचा}}{७०२} + \text{क्षेपदिन}\right)}{६४} = \text{भास्करोक्त लघ्वहर्गण}$$

$\therefore$ ६४ × लघ्वहर्गण = ६४ × द्योचुचा — (द्योचुचा + $\frac{\text{द्योचुचा}}{\text{७०२}}$ + क्षेपदि)

६४ × लघ्वहर्गण इसको एक विशिष्ट ग्रहर्गण मानकर अनुपात से जो भगणादिग्रह होंगे उनको लघ्वहर्गण के गुणवाङ्क में अपवर्त्तन करना जिस बात को अग्रिम श्लोक को कहते हैं ॥ ५ ॥

लघुदिन भगणाभिहतौ कुदिनाप्तमतः खगो भचक्रादिः ।
परिकल्पिताहवाप्तं गतवर्षगुणं विनिक्षिपेत्तत्र ॥६॥

वि. भा—लघुदिन भगणाभिहतौ (लघ्वहर्गण युगग्रहगभणघाते) कुदिनाप्त (युगकुदिनभक्त यल्लब्ध) भचक्रादि (भगणादिक) खग (ग्रह) भवेत् । परिकल्पितात् (पूर्वकल्पितादहर्गणात्) यत्फल तद्गतवर्षगुण (गतसौरवर्षसंख्यया गुणित) तत्र ग्रहे योग्य तदा वास्तवो मध्यग्रह स्यादिति ॥६॥

हि भा—लघ्वहर्गण युगग्रह भगण के घात में युगकुदिन से भाग देने में भगणादि ग्रह होते हैं । इसमें पूर्वकल्पित ग्रहर्गण में जो फल हो उसको गतवर्ष संख्या में गुणाकर जोड़ देना चाहिए तब वास्तविक मध्यमग्रह होता है ॥६॥

अत्रोपपत्ति पूर्ववदेव बोध्येति ।

इदानीमेकस्य भगणादिग्रहस्य ज्ञानेनाभीष्टद्वितीयग्रहसाधनमाह

इष्टग्रहभगणगुणो ग्रहः सभगणः स्वपर्ययैर्भक्तः ।
भगणाद्यभीष्ट खचर कुदिनैरेवं दिनगणः स्यात् ॥ ७ ॥

वि भा—सभगण (भगणसहित) ग्रह (ज्ञातग्रह) अर्थाज्ज्ञात-भगणादि-ग्रह । इष्टग्रहभगणगुण (साध्येष्टग्रहभगणगुण) स्वपर्ययै (निजभगणैरर्थाज्ज्ञात ग्रहभगणै) भक्त (भाजित) तदा भगणाद्यभीष्ट खचर (भगणादिक इष्टग्रह) भवेत् । एव कुदिनै (युगकुदिनै) विलोमेन दिनगण (अहर्गण) स्यात् ।

हि भा—ज्ञातभगणादि ग्रह को इष्टग्रह (साध्यग्रह) भगण से गुण देना, अपने युगभगण (ज्ञातग्रह) के युगभगण से भाग देने से भगणादिक अभीष्टग्रह होता है । इसी तरह युगकुदिन द्वारा विलोम विधि से अहर्गण होता है ॥

उपपत्ति

यदि युगकुदिनैर्ज्ञातग्रहभगणा लभ्यन्ते तदाऽहर्गणेन किमित्यनुपातेन भगणादिको ज्ञातग्रह —

(१)

$\frac{\text{ज्ञातग्रहयुगभगण} \times \text{अहर्गण}}{\text{युकुदिन}}$ = भगणादिज्ञातग्रह । एवमेव युगकुदिनैर्यदेष्टग्रह युगभगणा लभ्यन्ते तदाऽहर्गणेन किमित्यनुपातेन भगणादिक इष्टग्रह =

$\frac{\text{इष्टग्रहयुगभगण} \times \text{अहर्गण}}{\text{युगकुदिन}}$ (२) अत (१) अस्मिन् (२) अनेन भक्ते

तदा $\frac{\text{ज्ञातग्रहयुगभगण}}{\text{इष्टग्रहयुगभगण}} = \frac{\text{भगणादिज्ञातग्रह}}{\text{भगणादिइष्टग्रह}}$ पक्षौ "भगणादि इष्टग्रह"

गुणितौ तदा $\frac{\text{ज्ञातग्रह युगभगण} \times \text{भगणादिइष्टग्रह}}{\text{इष्टग्रहयुगभगण}}$ = भगणादि ज्ञातग्रह ।

∴ $\frac{\text{भगणादिज्ञातग्रह} \times \text{इष्टग्रहयुगभगण}}{\text{ज्ञातग्रहयुगभगण}}$ = भगणादि इष्टग्रह ।

ग्रहादहर्गणज्ञानार्थं विलोमविधिर्यथा $\frac{\text{युगग्रहभगण} \times \text{अहर्गण}}{\text{युगकुदिन}}$ = भगणादिग्रह

∴ $\frac{\text{भगणादिग्रह} \times \text{युगकुदिन}}{\text{युगग्रहभगण}}$ = अहर्गणश्च त आचार्योक्तमुपपन्नम् ।

उपपत्ति

यदि युगकुदिन में ज्ञातग्रह युगभगण पाते हैं तो अहर्गण में क्या इस अनुपात में भगणादि ज्ञातग्रह = $\frac{\text{ज्ञातग्रह युगभगण} \times \text{अहर्गण}}{\text{युकु}}$, इसी तरह $\frac{\text{इष्टग्रहयुगभगण} \times \text{अहर्गण}}{\text{युगकुदिन}}$ = भगणादि इष्टग्रह

अत $\frac{\text{भगणादि इष्टग्रह}}{\text{भगणादिज्ञातग्रह}} = \frac{\text{इष्टग्रह युगभगण}}{\text{ज्ञातग्रहयुगभगण}}$ दोनो पक्षों को "भगणादि ज्ञातग्रह"

गुण देने से भगणादि इष्टग्रह = $\frac{\text{इष्टग्रहयुगभगण} \times \text{भगणादिज्ञातग्रह}}{\text{ज्ञातग्रहयुगभगण}}$, इसी तरह ग्रह पर से विलोम विधि से अहर्गण का ज्ञान होता है जैसे

$\frac{\text{युगग्रहभगण} \times \text{अहर्गण}}{\text{युकु}}$ = भगणादिग्रह युगग्रहभगण × अहर्गण = युकु × भगणादिग्रह

$\frac{\text{युकु} \times \text{भगणादिग्र}}{\text{युगग्रहभगण}}$ = अहर्गण इसमे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥ ७ ॥

अथाधिमासावमशेषाभ्या चन्द्रार्कानयन म म सुधाकरोक्त प्रदर्श्यते ।

कल्पसौर तिथिघात सयुता स्वस्वभुक्त्यवमशेषसहृति ।
हीनिताऽप्यधिकमासशेषकै सहृता च यद्वाप्तले दिने ॥
चन्द्रार्कैर्भवति तत्स्वभुक्तिज भागमानमिनचन्द्रयो किल ।
चन्द्रमानमवधेहि सयुत द्वादशघ्नतिथिभि स्फुट बुधा ॥
रवीन्द्वोर्दिनसख्याया कल्पे चेत्कल्प्यते समा ।
मद्विधौ भास्करस्येन्दुरव्यो स्वल्पान्तरगन्मिति ॥

अत्रोपपत्ति

रव्यब्दान्तादिष्ट तिथ्यन्त यावच्चान्द्राहा = चं गति $-\frac{\text{वर्षान्ताधिशे} \times ३०}{\text{कसौ}}$ =

$\frac{\text{चंगति} \times \text{कसौ} - \text{वर्षान्ताधिशे} \times ३०}{\text{कसौ}}$ = इष्टचान्द्राहा, एतत्सम्वन्धि सौर । व तिथ्य-

न्तेऽंशात्मको रविर्वर्षान्ते भगण पूर्तित्वात्। अतस्तिथ्यन्ते रवि $=\frac{\text{कसौ}\times\text{इचा}}{\text{कचा}}=$

$\frac{(\text{चैगति}\times\text{कसौ}-\text{वर्षान्ताधिशे}\times ३०)}{\text{कचा}\times\text{कसौ}}=\frac{\text{चैगति}\times\text{कसौ}-\text{वर्षान्ताधिशे}\times ३०}{\text{कचा}}$, अत-

स्तिथ्यन्ते चन्द्र $=\text{र}+१२\text{चैगति}=\frac{\text{चैगति}\times\text{कसौ}-\text{वर्षान्ताधिशे}\times ३०}{\text{कचा}}+१२\text{चैगति}$,

अथ तिथ्यन्तसूर्योदययोरन्तर सावनात्मकम् $=\frac{\text{क्षशे}}{\text{कचा}}$ एतत्सम्बन्धि चालन

रवे $=\frac{\text{रगक}\times\text{क्षशे}}{१\ \text{सादि}\times\text{कचा}}$

तथा चन्द्रस्य $\frac{\text{चग}\times\text{क्षशे}}{१\ \text{सादि}\times\text{कचा}}$ अत सूर्योदयकालिको रवीन्दू

$\frac{\text{चैगति}\times\text{कसौ}-\text{वर्षान्ताधिशे}\times ३०}{\text{कचा}}+\frac{\text{रगक}\times\text{क्षशे}}{\text{कचा}}=$ रवि ।

$\frac{\text{चैगति}\times\text{कसौ}-\text{वर्षान्ताधिशे}\times ३०}{\text{कचा}}+\frac{\text{चग}\times\text{क्षशे}}{\text{कचा}}+१२\ \text{चैगति}=\text{चन्द्र}$

एतेन कल्पसौर तिथि घात समुतेत्याद्यारम्य स्फुट बुधा इत्यन्त सुधाकरोक्त-सूत्रमुपपद्यते ॥

अत्र यदि स्वल्पान्तरात् कसौ=कचा तदा रविचन्द्रौ समौ, वर्षान्ताधिशे= तिथ्यन्त कालिकाधिशे

तदा रवि $=\text{चैगति}-\frac{\text{वर्षान्ताधिशे}\times ३०}{\text{कचा}}+\frac{\text{रग}\times\text{क्षशे}}{\text{कचा}}=\text{चैगति}+\frac{\text{क्षशे}}{\frac{\text{कचा}}{\text{रग}}}-\frac{\text{वर्षान्ताधिशे}}{\frac{\text{कचा}}{३०}}$

$=\text{चैगति}+\frac{\text{क्षशे}}{\text{पठितहार}}-\frac{\text{वर्षान्ताधिशे}}{\text{कचामा}}=\text{चैगति}+\text{रविधनक}-\frac{\text{वर्षान्ताधिशे}}{\text{कचामा}}=$

यत $\frac{\text{क्षशे}}{\text{पठितहा}}=$ रविधफ । सूर्योदयकालिक रवि . (१)

सूर्योदयकालिकचन्द्र $=१३\ \text{चैगति}+\frac{\text{चग}\times\text{क्षशे}}{\text{कचा}}-\frac{\text{वर्षान्ताधिशे}\times ३०}{\text{कचा}}=$

$१३\ \text{चैगति}+\frac{\text{क्षशे}\times\text{चग}}{\frac{\text{रग}}{\frac{\text{कचा}}{\text{रग}}}}-\frac{\text{वर्षान्ताधिशे}}{\frac{\text{कचा}}{३०}}$ –

$$=\text{१३ चंगति}+\frac{\text{क्षशे}\times\left(\text{१३}\times\frac{\text{१३}}{\text{३५}}\right)}{\text{पठितहार}}-\frac{\text{वर्षान्ताधिशे}}{\text{कचामास}}\text{। यत }\frac{\text{चग}}{\text{रग}}=\text{१३}+\frac{\text{१३}}{\text{३५}}$$

$$=\text{१३ चंगति}+\text{रविघफ}\times\left(\text{१३}\times\frac{\text{१३}}{\text{३५}}\right)-\frac{\text{वर्षान्ताधिशे}}{\text{कचामास}}=$$

$$\text{१३ चंगति}+\text{चन्द्रधनफ}-\frac{\text{वर्षान्ताधिशे}}{\text{कचामा}}=\text{सूर्योदयकालिकचन्द्र}\text{---}(२)$$

(१) (२) एतद्दर्शनेन 'कोष्ट्याहतैर्यद्भवभैरित्यादि' भास्करोक्तमुपपद्यत इति ।।

उपपत्ति

$$\text{वर्षान्त से इष्ट तिथ्यन्त पर्यन्त चान्द्र दिन}=\text{चंगति}-\frac{\text{वर्षान्ताधिशे}\times\text{३०}}{\text{कसौ}}$$

$=\dfrac{\text{चंगति}\times\text{कसौ}-\text{वर्षान्ताधिशे}\times\text{३०}}{\text{कसौ}}=$ इष्टचान्द्रदिन, एतत्सम्बन्धी सौरदिन ही तिथ्यन्तम भशात्मक रवि होते है क्योंकि वर्षान्त मे रवि के भगण पूरा हो जाता है, इसलिए तिथ्यन्त मे

$$\text{रवि}=\frac{\text{कसौ}\times\text{इचा}}{\text{कचा}}=\frac{\text{कसौ}\left(\text{चंगति}\times\text{कसौ}-\text{वर्षान्ताधिशे}\times\text{३०}\right)}{\text{कचा}\times\text{कसौ}}=$$

$\dfrac{\text{चंगति}\times\text{कसौ}-\text{वर्षान्ताधिशे}\times\text{३०}}{\text{कचा}}$ अतस्तिथ्यन्त मे चन्द्र $=\text{र}+\text{१२ चंगति}=$

$\dfrac{\text{चंगति}\times\text{कसौ}-\text{वर्षान्ताधिशे}\times\text{३०}}{\text{कचा}}+\text{१२}\times\text{चंगति}$ तिथ्यन्त और सूर्योदय के अन्तर मानना

$\text{रगक}=\dfrac{\text{क्षशे}}{\text{कचा}}$ एतत्सम्बन्धी रवि के चालन $=\dfrac{\text{रगक}\times\text{क्षशे}}{\text{१ सादि}\times\text{कचा}}$ और चन्द्र के चालन $=$

$\dfrac{\text{चग}\times\text{क्षशे}}{\text{१ सादि}\times\text{कचा}}$, इसलिए सूर्योदय कालिक रवि

$$\left.\begin{aligned}&=\frac{\text{चंगति}\times\text{कसौ}-\text{वर्षान्ताधिशे}\times\text{३०}}{\text{कचा}}+\frac{\text{रगक}\times\text{क्षशे}}{\text{कचा}}=\\&\frac{\text{चंगति}\times\text{कसौ}-\text{वर्षान्ताधिशे}\times\text{३०}+\text{रगक}\times\text{क्षशे}}{\text{कचा}},\ \text{इसी तरह चन्द्र}=\\&\frac{\text{चंगति}\times\text{कसौ}-\text{वर्षान्ताधिशे}\times\text{३०}+\text{चगक}\times\text{क्षशे}}{\text{कचा}}+\text{१२ चंगति}\end{aligned}\right\}\ (१)$$

यहा स्वल्पान्तर मे यदि कसौ=कचा तब रवि और चन्द्र बराबर होगे, वर्षान्ताधिशेष=

$$\text{तिथ्यन्तकालिकाधिशे, रवि}=\text{चंगति}-\frac{\text{वर्षान्ताधिशे}\times\text{३०}}{\text{कचा}}+\frac{\text{रग}\times\text{क्षशे}}{\text{कचा}}$$

$$\text{तथा चन्द्र} = \text{१३ चैगति} - \frac{\text{वर्षान्ताधिशे} \times \text{३०}}{\text{कचा}} + \frac{\text{चग} \times \text{क्षशे}}{\text{कचा}}$$

$$\text{अथवा रवि} = \text{चैगति} + \frac{\text{क्षशे}}{\frac{\text{कचा}}{\text{रग}}} - \frac{\text{वर्षान्ताधिशे}}{\frac{\text{कचा}}{\text{३०}}}$$

$$\text{यहां } \frac{\text{कचा}}{\text{रग}} = \text{२७११००००००} = \text{हा}$$

$$\text{तथा चन्द्र} = \text{१३} \times \text{चैगति} + \frac{\text{क्षशे} \times \frac{\text{चग}}{\text{रग}}}{\frac{\text{कचा}}{\text{रग}}} - \frac{\text{वर्षान्ताधिशे}}{\frac{\text{कचा}}{\text{३०}}}, \quad \frac{\text{चग}}{\text{रग}} = \text{१३} + \frac{\text{१३}}{\text{३५}}$$

$$\frac{\text{क्षशे}}{\text{हा}} = \text{रविधनफल, तथा } \frac{\text{क्षशे} \times \frac{\text{चग}}{\text{रग}}}{\text{हा}} = \text{चन्द्रधनफ} = \text{रविधफ } \left(\text{१३} + \frac{\text{१३}}{\text{३५}}\right)$$

$$\left.\begin{array}{l} \text{इसलिए चैगति} + \text{रविधनफल} - \frac{\text{वर्षान्ताधिशे}}{\text{कचामा}} = \text{सूर्योदयकालिकरवि} \\ \text{तथा १३} \times \text{चैगति} + \text{रविधफ } \left(\text{१३} + \frac{\text{१३}}{\text{३५}}\right) - \frac{\text{वर्षान्ताधिशे}}{\text{कचामा}} = \text{सूर्योदयकालिकचन्द्र} \end{array}\right\} \text{(२)}$$

(१) इससे "कल्पभौरतिथिघातसयुता' इत्यादि म म सुधाकरोक्त सूत्र उपपन्न हुआ ।

(२) इससे 'कोट्याहतैर्यद्भवभै' इत्यादि भास्करोक्त भी उपपन्न होता है । इति ॥

इदानीमधिमासावमशेषाभ्यां चन्द्रार्कानयनम् ।

अवमावशेषगुणिता युगाधिमासाः कुवासरविभक्ताः ।
लब्धयुतोऽधिकशेषः शशिमासहृतो दिनादिफलम् ॥८॥
कुदिनहृतमवमशेषं दिनादितद्वर्षमासदिनयोगः ।
पृथगभ्यस्तौ विश्वै रधिकफलोनावुभाविनेन्दू वा ॥९॥

वि भा —युगाधिमासा (युगपठिताधिमासा) अवमावशेषगुणिता (क्षयशेषैर्गुणिता) कुवासरविभक्ता (युगकुदिनहृता) लब्धयुत (लब्धफलेन सहित) अधिकशेष, शशिमासहृत (युगचान्द्रमासभक्त) फल दिनादि ज्ञेयम् । अवमशेष (क्षयशेष) कुदिनहृत (युगकुदिनभक्त) फल दिनाद्यात्मकम् । तद्वर्षमासदिनयोग पृथक् स्थाप्य. । विश्वै (त्रयोदशभि) अभ्यस्त (गुणित) उभौ (त्रयोदशगुणितौ पृथक् स्थापित पृथक् स्थापितौ) अधिकफलोनौ अवमावशेषगुणिता इत्यादिनाऽनीतेनाधिफलेन हीनौ) तदा इनेन्दू (सूर्यचन्द्रौ) भवेतामिति ॥८९॥

अत्रोपपत्ति ।

अथाहर्गणानयने सौरात्मक क्षयशेष $= \frac{\text{क्षयशे}}{\text{युचा}}$ एतस्य चान्द्रात्मक करणेन

$$\frac{\text{युचा} \times \frac{\text{क्षयशे}}{\text{युचा}}}{\text{युकुदिन}} = \text{क्षयशेपसम्बन्धिचान्द्र} = \frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}$$ । अत सूर्योदयकालिक

तिथि $= \text{चैगति} + \frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}$ ततोऽनुपातेन $\frac{\text{युअमा} \times \frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}}{\text{युसौ}}$ = क्षयशेपान्त पाति

मासात्मकाधिशेषवृद्धि ।

तिथ्यन्तकालिकोऽधिशेष $= \frac{\text{अमाशे}}{\text{युसौ}}$ अतो मासात्मको वास्तवाधिमासावयव सूर्यो-

दये $\frac{\text{अमाशे}}{\text{युसौ}} + \frac{\text{युअमा} \times \frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}}{\text{युसौ}}$ एतत्सम्बन्धिसौरदिनानि =

$$\frac{\text{युसौ}\left(\text{अमाशे} + \text{युअमा} \times \frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}\right)}{\text{युचा} \times \text{युसौ}} = \frac{\text{अमाशे} + \text{युअमा} \times \frac{\text{क्षशे}}{\text{युकुदि}}}{\text{युचा}}$$

पर सूर्योदय कालिकतिथिसख्यक सौरे तात्कालिकाधिमासशेषोने तदा सूर्योदये रव्यशा, यत सौरान्ते रव्यशा $= \text{चैगति} + \frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}$ अत सूर्योदयेऽशात्मको रवि =

$$\text{चैगति} + \frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}} - \frac{\left(\text{अमाशे} + \text{युअमा} \times \frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}\right)}{\text{युचा}} = \text{चैगति} + \frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}} - \text{अधिशेफल}$$

पर पूर्वप्रदर्शित सूर्योदयकालिक तिथि $= \text{चैगति} + \frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}$ द्वादश गुणिता तदा

रविचन्द्रान्तरांशा $= १२ \left(\text{चैगति} + \frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}\right)$ अतश्चन्द्र =

$$१२\left(\text{चैगति} + \frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}\right) + \text{रवि} = १२\left(\text{चैगति} + \frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}\right) + \left[\text{चैगति} \times \frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}} - \left(\text{अमाशे} + \text{युअमा} \times \frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}\right)\right]$$

$$=१३ \left(\text{चैगति}+\frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}\right)-\left(\text{अमाशे}+\text{युअमा}\times\frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}\right)=\text{चन्द्र}$$

$$=१३ \left(\text{चैगति}+\frac{\text{क्षशे}}{\text{कंकु}}\right.-\text{अधिशेफ}$$ अत आचार्योक्तमुपपन्नम् ॥८-९॥

अथवा म. म. प सुधाकरद्विवेदिकृतोपपत्ति

चैत्रादेर्यावन्तश्चान्द्रमासा गतास्तावन्त सौरमासा रविराशयो यावन्ति च चान्द्रदिनानि तावन्तो रविभागा कल्पितास्तत्रावमशेष सावनावयवाधश्चान्द्रदिनावयवस्तत्समो रविभागश्चौदयिकार्थं योजित । चान्द्रदिनावयवार्थमनुपातो यदि युगकुदिनैर्युगचान्द्रदिनानि लभ्यन्ते तदाऽवमशेषावयवेना $\frac{\text{अवशे}}{\text{युचादि}}$ नेन किं लब्धश्चान्द्रदिनावयव $=\frac{\text{अवशे}}{\text{युकुदि}}$ अथ दिनादिश्च आदिगतमासदिनादौ योजित स रवि कल्पित ।

अथ रविश्च तत्स्थचान्द्रसौरान्तरेणाधिशेषोत्पन्न रविराश्यादि चालनेनाधिको जातोऽतस्तच्छोधनेन वास्तवो मध्यमरवि स्यात्। अथ गणितागत चान्द्रमधिशेषमवमशेषोत्थ चान्द्रदिन समसौरदिनावयवोत्थेनाधिशेषेण युत तदा वास्तवाधिशेष भवति तत्र पूर्वागतावमशेषसम्बन्धी चान्द्रदिनावयव $=\frac{\text{अवशे}}{\text{युकु}}$ अथ युगाधिमासैर्गुणितो युगसौरदिनैर्भक्तो लब्ध तज्जनितमधिशेषम् $=\frac{\text{युअमा अवशे}}{\text{युसौदि युकुदि}}$

$$=\frac{\frac{\text{युअमा अवशे}}{\text{युकु}}}{\text{युसौदि}}=\frac{\text{फ}}{\text{युसौदि}}$$ पूर्वगणितागतमधिशेष च $=\frac{\text{अधिशे}}{\text{युसौदि}}$ द्वयोर्योगेन वास्तवाधिशेषम् $=\frac{\text{अधिशे}+\text{फ}}{\text{युसौदि}}$ एतत्सम्बन्धिसौर राश्यादि (यदि युगचान्द्रमासैर्युगसौरदिनानि लभ्यन्ते तदेष्टाधिशेष समचान्द्रमासे किं लब्धानि सौरदिनानि $=\frac{\text{अधिशे}+\text{फ}}{\text{युचामा}}$ एतानि त्रिंशद्भिर्भक्तानि तदा राश्यादि $=\frac{\text{अधिशे}+\text{फ}}{३० \text{ युमाचा}}=$

$=\frac{\text{अधिशे}+\text{फ}}{\text{युचादि}}=$ अधिशेफ अनेन पूर्वकल्पितो रविर्हीनस्तदौदयिको रविर्भवति स च तत्स्थ चान्द्रावयवेन कल्पित रविसमेन द्वादशगुणेन सहितश्चन्द्रो भवति चान्द्रदिने रविचन्द्रयोर्द्वादशभागान्तरत्वादत उपपन्नम्।

इत्येव सिद्धान्तशेखरे श्रीपतिनाऽपि कथ्यते, तद्वाक्य च

यत्ताधिमासगुणितादवमावशेषात् क्ष्माहोद्धृतात्फलयुत ह्यधिमासशेषम्।
मासादिक फलमत शशिवासरे स्यात्क्ष्माहे हृते दिवसाद्यवमावशेषात् ॥

चत्रादितो विगतमासदिनैर्युत तत्कृत्वा दिनाद्यथ पृथक् गुणित च विश्वै . ।
मासादिना विरहिते विहिते क्रमेण यद्वा दिवाकरतुषारकरौ भवेताम् ।।

हि. भा —युग के अधिमास सख्या को अवमशेष से गुण कर युगकुदिन से भाग देना जो फल हो उससे अधिशेष को जोडना उसमे युगचान्द्र माम मे भाग देना, फल दिनादि समझना । अवशेष को युगकुदिन से भाग देना फलदिनादि होता है अब उन सब का (वर्ष, मास, दिनादि) योग करना, इसका नाम योग रखना, इसको दो स्थान मे रखना, एक स्थान मे उसको तेरह से गुण देना, दोनो मे (एक स्थान मे योगफ, दूसरे स्थान मे १३ गुणित योगफल) अधिकफल "अवमावशेषगुणिता इत्यादि से शशिमासहृत तक" को घटा देना तब रवि और चन्द्र होते हैं ।

उपपत्ति

गहर्गण साधन मे सौरात्मक क्षय शेष$=\frac{\text{क्षयशे}}{\text{युचा}}$ इसको चान्द्रात्मक करते है ।

$$\frac{\text{युचा}\times\frac{\text{क्षशे}}{\text{युचा}}}{\text{युकु}}=\frac{\text{क्षयशे}}{\text{युकु}}=\text{क्षयशेस चान्द्र, अत सूर्योदयकालिक तिथि}=\text{चैगति}+\frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}$$

तब अनुपात से $\frac{\text{युअमा}\times\frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}}{\text{युसौ}}=$ क्षयशेषान्त पाति मासात्मक अधिशेष वृद्धि

तिथ्यन्तकालिक अधिशेष$=\frac{\text{अमाशे}}{\text{युसौ}}$ इसलिये सूर्योदयकालिक मासात्मक वास्तवाधिशेषावयव

$$=\frac{\text{अमाशे}}{\text{युसौ}}+\frac{\text{युअमा}\times\frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}}{\text{युसौ}}\ \text{एतत्सम्बन्धिसौरदिन}=\frac{\text{युसौ}\left(\text{अमाशे}+\text{युअमा}\times\frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}\right)}{\text{युचा}\times\text{युसौ}}$$

$$=\frac{\text{अमाशे}+\text{युअमा}\times\frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}}{\text{युचा}}=\text{अधिशेफल}$$

परन्तु सूर्योदय कालिक तिथि सम्बन्ध सौरदिन मे तात्कालिक अधिशेष घटाने से सूर्योदय काल मे अशात्मक रवि होगे, ∵ सौरान्त मे अशात्मक रवि$=\text{चैगति}+\frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}$ अत

$$\text{सूर्योदय काल मे अशात्मक रवि}=\text{चैगति}+\frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}-\frac{\left(\text{अमाशे}+\text{युअमा}\times\frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}\right)}{\text{युचा}}$$

$$=\text{चैति}+\frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}-\text{अधिशेफ}$$

लेकिन पहले कही हुई सूर्योदय कालिक तिथि $=$ चैगति $+\frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}$ बारह से गुणने पर रविचन्द्र के अन्तराश $=$ १२ $\left(\text{चैगति}+\frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}\right)$

$$\therefore \text{चन्द्र} = \text{अन्तराश} + \text{रवि} = \text{रवि} + १२\left(\text{चैगति}+\frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}\right)$$

$$= \frac{\text{चैगति}+\frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}} - \left(\text{प्रमाशे}+\text{युप्रमा}\times\frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}\right)}{\text{युचा}} + १२\left(\text{चैगति}+\frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}\right)$$

$$= १३\left(\text{चैगति}+\frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}\right) - \frac{\left(\text{प्रमाशे}+\text{युप्रमा}\times\text{क्षशे}\right)}{\text{युचा}} = \text{चन्द्र}_\circ ।$$

$$= १३\left(\text{चैगति}+\frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}\right) - \text{अधिशेषफल}$$

इससे आचार्य का पद्य उपपन्न हुआ।

अथवा म म सुधाकर द्विवेदीकृत उपपत्ति

चैत्रादि से जितने चान्द्रमासगत है उतने सौरमास (रविराशि) और जितने चान्द्रदिन उतने रवि का अंश मान लिये वहा सावनावयव अवमशेष चान्द्रदिनावयव है औदयिकार्थ तत्तुल्यरव्यंश जोडिये। चान्द्रदिनावयव के लिये अनुपात करते हैं यदि युगकुदिन में युगचान्द्र दिन तो अवमशेषावयव में क्या आ जायगा चान्द्रदिनावयव $=\frac{\text{अवशे}\times\text{युचादि}}{\text{युचादि}\times\text{युकु}}=\frac{\text{अवशे}}{\text{युकुदि}}$

इस दिनादि को चैत्रादिगतमास दिनादि में जोडकर जो होता है उसको रविकल्पना कीजिये। यह रवि भी वहा के चान्द्र सौर के अन्तररूप अधिशेषोत्पन्न रविराश्यादि चालन करके अधिक हो गया है इसलिए उसको घटा देने से वास्तव मध्यम रवि होते हैं। गणितागत चान्द्राधिशे को अवमशेषजनित चान्द्रदिन तुल्य सौरदिनावयव जनित अधिशेष करके जोड़ने से वास्तवाधिशेष होता है। पूर्वागत अवमशेषसम्बन्धी चान्द्रदिनावयव $=\frac{\text{अवशे}}{\text{युकु}}$ इसको युगाधिमास से गुणकर युगसौरदिन से भाग देने से तज्जनित अधिशेष प्रमाण हुआ $\frac{\text{युअमा}\ \text{अवशे}}{\text{युसौदि}\ \text{युकु}}=$

$$\frac{\text{युअमा}\ \text{अवशे}}{\frac{\text{युकु}}{\text{युसौदि}}}=\frac{\text{फ}}{\text{युसौदि}}$$

पूर्व के गणितागत अधिशेष $=\frac{\text{अधिशे}}{\text{युसौदि}}$ दोनो के योग करने से वास्तवाधिशेष हुआ $\frac{\text{अधिशे}+\text{फ}}{\text{युसौदि}}$ $=$ वास्तवाधिशे, अब अनुपात करते हैं, युगचान्द्रमास में युगसौरदिन पाते हैं तो इष्टाधिशेष-

तुल्य चान्द्रमास मे क्या इस अनुपात से सौरदिन प्रमाण $=\frac{\text{अधिशे}+\text{फ}}{\text{युचामा}}$ तीस से भाग देने से राश्यादि $=\frac{\text{अधिशे}+\text{फ}}{३०\ \text{युचामा}}=\frac{\text{अधिशे}+\text{फ}}{\text{युचादि}}=$ अधिशेष फल इसको पूर्वकल्पित रवि मे घटाने से औदयिक रवि होते है इसमे वहा के द्वादशगुणित रवि के बराबर चान्द्रावयव को जोडने से चन्द्र होते है इससे उपपन्न हुआ ॥

सिद्धान्तशेखर मे श्रीपति भी इस तरह कहते है उनके पद्य निम्नलिखित है—
भूपाधिमासगुणिताद्यमावशेषादित्यादि ।

अथाधिशेषात्सूर्यचन्द्रयोरानयनमाह ।

अधिकफलमर्कगुणितं चन्द्रांशेभ्यो विशोध्य विश्वांशः ।
सूर्यो विश्वैर्गुणितः समन्वितः शीतगुर्वा स्यात् ॥१०॥

वि भा —अधिकफल (८-९ श्लोकोपपत्तिप्रदर्शितमधिशेषफल) अर्कगुणित (द्वादशगुणित) चन्द्रांशेभ्य (अंशात्मकचन्द्रेभ्य) विशोध्य (ऊनीकृत्य) अस्य विश्वांश (त्रयोदशांश) सूर्य (रवि) स्यात् । सूर्यो (रवि) विश्वैर्गुणित (त्रयोदशभिर्गुणित , तेन फलेनार्थात् द्वादशगुणिताधिशेषफलेन समन्वित (युक्त) तदा शीतगुश्चन्द्रो भवेत् ।

हि भा —अधिक फल (८-९ श्लोको की उपपत्ति मे प्रदर्शित अधिशेष फल) को बारह से गुणकर अंशादि चन्द्रमा मे घटाने से और तेरह से भाग देने से सूर्य का प्रमाण होता है । सूर्य को तेरह से गुणकर उस फल (बारहगुणित अधिशेष फल) करके जोडने से चन्द्र के प्रमाण होता है ।

उपपत्ति

८-९ श्लोकोपपत्तिवलेन सूर्योदयकालिकोऽशात्मकरवि $=$ चंगति $+\frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}-$
अधिशेफल

तथा $१२\left(\text{चंगति}+\frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}\right)-$अधिशेफल $=$ अंशादिकश्चन्द्र । अत्र यद्यंशात्मक चन्द्र द्वादशगुणितमधिशेषफल विशोध्यते तदा $१२\left(\text{चंगति}+\frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}\right)-$अधिशेफल
$-१२\times$अधिशेफ
$१३\times\left\{\left(\text{चंगति}+\frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}\right)-\text{अधिशेफ}\right\}$ अस्य त्रयोदशांश
चंगति $+\frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}-$अधिशेफ इति प्रत्यक्षमेवांशात्मक रविप्रमाणतुल्य दृश्यते ।

तथा सूर्यस्त्रयोदशगुणितस्तदा $१३\left(\text{चंगति}+\frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}\right)-१३$ अधिशेषफल

अत्र यदि द्वादशगुणिताधिशेष फल योज्यते तदा १३ $\left\{\left(\text{चंगति}+\frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}\right)-\text{अधिशेषफल}\right.$

इति प्रत्यक्षमेवोपरिलिखित चन्द्रतुल्य दृश्यते तेनाचार्योक्त युक्ति-युक्तमिति ॥ १० ॥

उपपत्ति

(८-९) श्लोकों की उपपत्ति से अशात्मक रवि $=\text{चंगति}+\frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}$ — अधिशेफ और

१३$\left(\text{चंगति}+\frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}\right)$ — अधिशेफ = अशात्मकचन्द्र । यहाँ यदि चन्द्र मे १२ बारह गुणित अधिशेप फल को घटा देते है तो १३ $\left(\text{चंगति}+\frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}\right)$ — १३ अधिशेफ = १३ $\left\{\left(\text{चंगति}+\frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}\right)\right.$

— अधिशेफल $\Big\}$ इसको तेरह से भाग देने से चंगति $+\frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}$ — अधिशेफ यह प्रत्यक्ष ही सूर्य के बराबर होता है । और इस सूर्य प्रमाण को तेरह से गुणने पर १३$\left(\text{चंगति}+\frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}\right)$

— १३ अधिशेफ हुआ इसम यदि बारह गुणित अधिशेष फल जोड देते हैं तो

१३ $\left(\text{चंगति}+\frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}\right)$ — अधिशेषफल यह उपरिलिखित चन्द्र के बराबर हो गया इसलिये आचार्य का कथन ठीक है ॥ १० ॥

गततिथि युतावमाद्य द्वादश गुणित च भागपूर्व स्यात् ।
तेन विहीनश्चन्द्रोऽर्को युक्तो विधुर्वा स्यात् ॥११॥

वि भा —गततिथियुतावमाद्य (चैत्रादिगततिथिसहितमवमशेष) द्वादशगुणित तदा फल भागपूर्व (अशादिक) भवेत् । तेन फलेनानीतेन विहीन (विशोधित) चन्द्रोऽर्को (रवि) भवेत् । तथा तेन फलेन युक्त (सहित) अर्क (रवि) वा विधु (चन्द्र) स्यादिति ॥११॥

हि भा —चैत्रादि गततिथि करके युत अवमशेष को बारह से गुण देने से फल अशात्मक होते है । उस फल को चन्द्रमा मे घटाने से रवि होते हैं और रवि मे उस फल को जोडने से चन्द्र होते हैं ॥११॥

अत्रोपपत्ति

अथ क्षयशेष $=\frac{\text{क्षयशे}}{\text{वचा}}$ अय सावनात्मकोऽतश्चान्द्रात्मकार्थमनुपात

$\frac{\text{वचा}}{\text{ककु}}\times\frac{\text{क्षशे}}{\text{वचा}}=\frac{\text{क्षशे}}{\text{ककु}}$ = क्षयशेषान्त पातिचान्द्र, अत्र गततिथियोजनेनाहर्गणान्त

यावत्तिथिप्रमाणम् = गतिथि $\frac{+\text{क्षशे}}{\text{ककु}}$ = चैत्रामान्तादहर्गणान्त यावत्तिथि:

यत च—र=१२° तदैकातिथिरसोऽनुपातेन १२$\left(\text{गतति}+\frac{\text{क्षशे}}{\text{ककु}}\right)$ =

अहर्गणान्ते रविचन्द्रान्तराशा ।

∴ चन्द्र = रवि + अन्तराश = रवि + १२ $\left(\frac{\text{गतति}+\text{क्षयशे}}{\text{ककु}}\right)$

तथा रवि चन्द्र—१२ $\left(\frac{\text{गतति}+\text{क्षयशे}}{\text{ककु}}\right)$ अत्र सर्वत्र ककु स्थाने मुकु बोध्यम् ।

एतेनोपपन्नमाचार्योक्तम् ।

भास्करेण रवि + १२$\left(\text{गतति}+\frac{\text{क्षयशे}}{\text{ककु}}\right)$ = रवि + १२ गतति + $\frac{\text{क्षयशे}}{\text{ककु}}$ =

रवि + १२ गतति + $\frac{\text{क्षयशे}}{१३११४९३०३७५००}$ पर "१३११४९३०३७५००" मिति स्थले

१३११४९००००००० हारो गृहीतो यत्सम्बन्धे स्वभाष्ये "आद्येषु सप्तसु स्थानेषु शून्यान्येव कृत्वा भागहार पठित । यतस्तथाकृत एकापि विकलान्तर भवति, लिखित परमिनि समीचीन नास्ति, एतदुपपत्ति सिद्धान्तशिरोमणिवासनाया या लिखिताऽस्ति साऽपि समीचीना नास्तीत्येतदर्थं मल्लिखितोपपत्तिरत्रैव विलोक्या वटेश्वराचार्येणैतद्विषये नहि कोऽपि विचार कृत । केवल भास्करेणैव भाष्ये हारसम्बन्धे लिखितो यश्च न समीचीन इति ॥

वस्तुतस्तु परमक्षयाहशेप = कचा — १, तदा वास्तव परमक्षेप = $\frac{\text{कचा}-१}{\text{हा}}$,

अवास्तव परमक्षे = $\frac{\text{कचा}-१}{\text{अवास्तवह}}$ अनयोरन्तरम् । हा > अवास्तवहार = अहा ।

$$\text{अतोऽन्तरम्} = \frac{\text{कचा}\times\text{हा}-\text{हा}-\text{कचा}\times\text{अहा}+\text{हा}}{\text{हा}\times\text{अहा}}$$

$$=\frac{\text{कचा }(\text{हा}-\text{अहा})-(\text{हा}-\text{अहा})}{\text{हा}\times\text{अहा}}$$

$$=\frac{(\text{हा}-\text{अहा})\ (\text{कचा}-१)}{\text{हा}\times\text{अहा}}\quad ....(१)\quad \text{अत्र } \frac{\text{ककु}}{१२}=\text{हा}=१३११४९३०३७५००$$

$$\text{तथा } \frac{\text{क्षशे}}{\text{हा}}=\text{क्षेप:}$$

वास्तवहारादल्पे हारे यथ भास्करेण ज्ञात य १३११४९००००००० दोहगहार ग्रहणेनैवापि विकलान्तर भवति तदर्थमुपाय. ।

अथ (१) स्वरूपम् $=\frac{\text{(हा—अवाहा) (कचा—१)}}{\text{हा अहा}}$ कल्प्यतेऽत्र अहा=य

तदाऽन्तरम् $=\frac{\text{(हा—य) (कचा—१)}}{\text{हा—य}}=\frac{\text{हा (कचा—१)—य (कचा—१)}}{\text{हा—य}}$

विकलीकृतमेतत्

$\frac{\text{३६००हा (कचा—१)—३६००य (कचा—१)}}{\text{हा—य}}$ एतद्रूपाल्प स्वीकृत्य विषमीकरणं

$\frac{\text{३६०० हा (कचा—१)—३६००य (कचा—१)}}{\text{हा—य}}<\text{१}$

$\because$ ३६००हा (कचा—१)—३६०० य (कचा—१) <हा य तत समयोजनेन

३६००हा (कचा—१) <हा×य+३६००य (कचा—१) वा

३६००हा (कचा—१)<य $\left\{\text{हा+३६०० (कचा—१)}\right\}$

$\therefore \frac{\text{३६००हा (कचा—१)}}{\text{हा+३६००(कचा—१)}}<\text{य}$ उत्थापनार्थं मानानि लिख्यन्त

३६००×हा=४७३३७४९३५००००००

३६००×हा (कचा—१)=७५८८१६५४७४२६५६१६२५०६५००००००

३६०० (कचा—१)=५७७०७९६३९९९९६४००

हा=१३१४९३०३७५००

३६०० (कचा—१)+हा=५७७०९२७८९३०३३९००

तत उत्थापनेन

$\frac{\text{३६००हा (कचा—१)}}{\text{हा+३६००(कचा—१)}}=\frac{\text{७५८८१६५४७४२६५६१६२५०६५००००००}}{\text{५७७०९२७८९३०३३९००}}$

$=$ १३१४९००४१३७५ <य×१३१४९३०३७५००

किन्तु १, २ सत्ययोरन्तर्वर्तिन्य सख्या य मानम् । पर भास्करेण (१३१४९००४१३७५) अस्मादपि न्यूनो हार स्वीकृतोऽत्र एतावताऽपि श्री भास्कर स्वीकृतोना "१३१४९००००००" नेन हारेण क्षयाहशेषाधिवये कदाचिद्विकलास्थान मान्तर स्यादित्यनुमित भवति । अतो १३१४९००४१३७५ ऽस्मादधिक उक्तगणिते गणितलाघवार्थं खाभ्र खाभ्र शरखाभ्र नन्दशक्र विश्वमितो १३१४९००५०००० वा लक्षाहतेन्दु खनन्दशक्र विश्वमितो १३१४९०१००००० ऽथवा प्रयुतघ्नेव नन्दशक्र विश्वमितो १३१४९१०००००० हारश्चेद्गृहीतो भवेत्तदैकाऽपि विकलानान्तर भवतीति सिद्ध्यति ।

परमक्षयाहशेपे भास्करोक्त व्यभिचरतीति ॥

यद्यप्यस्य लेखस्याऽत्राऽऽवश्यकता नाऽऽसीत्किन्तु सिद्धान्तशिरोमणेर्वासनाया येनापि भास्करोक्तभाष्यस्या "लाघवार्थमाद्ये पुस्तसु स्थानेषु शून्यान्येव धृत्वा

भागहार. पठित । यतस्तथाकृतएकाऽपि विकलानान्तर भवति" स्योपपत्तिरभिहिता साच मन्मते न समीचीनेति प्रौढगणकैर्निष्पक्षपातबुद्धया निर्णेतव्येति ॥११॥

उपपत्ति

$\text{क्षयशे} = \frac{\text{क्षयशे}}{\text{कचा}}$ यह सावनात्मक है इसको चन्द्रात्मक करने के लिए अनुपात करते हैं

$\frac{\text{कचा}\ \text{क्षशे}}{\text{चकु}\ \text{कचा}} = \frac{\text{क्षयशे}}{\text{चकु}}$ = क्षयशेषान्त पातिचान्द्र यहां गत तिथि जोड़ने से अहर्गणान्तपर्यन्त तिथि प्रमाण होगा

$\text{गतति} + \frac{\text{क्षयशे}}{\text{चकु}}$ = चैत्रामान्त से अहर्गणान्त तक तिथि

$\therefore \frac{\text{चन्द्र} - \text{रवि}}{१२} = \text{तिथि} \therefore \text{चन्द्र} - \text{रवि} = १२\ \text{ति} = १२\left(\text{गतति} + \frac{\text{क्षयशे}}{\text{चकु}}\right)$

= अहर्गणान्त में रवि चन्द्रान्तराश

अत $\text{चन्द्र} = \text{रवि} + १२\left(\text{गतति} + \frac{\text{क्षशे}}{\text{चकु}}\right)$

तथा $\text{रवि} = \text{चन्द्र} - १२ \times \left(\text{गतति} + \frac{\text{क्षशे}}{\text{चकु}}\right)$ यहां सब जगह चकु के स्थान में युकु समझना चाहिए। इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ।

यहां भास्कराचार्य ने $\text{रवि} + १२\ \text{गतति} + \frac{१२\text{क्षयशे}}{\text{चकु}} =$

$\text{रवि} + १२\ \text{गति} + \frac{\text{क्षयशे}}{\frac{\text{चकु}}{१२}} = \text{रवि} + १२\ \text{गति} + \frac{\text{क्षयशे}}{१३१४६३०३७५००}$

ऐसा किये हैं और १३१४६३०३७५०० इसके स्थान पर १३१४६०००००० यह हार लिये हैं इसके विषय में अपने भाष्य में "आद्येषु शतसु स्थानेषु शून्यान्येव कृत्वा भागहार पठित । यतस्तथाकृत एकाऽपि विकलानान्तर भवति" लिखे हैं। परन्तु यह समीचीन नहीं है। इस भाष्य की उपपत्ति सिद्धान्तशिरोमणि की वासना में जो लिखी गई है वह भी ठीक नहीं है इसके लिए मेरी लिखी हुई उपपत्ति यहीं देखिये। वटेश्वराचार्य हार के विषय में कुछ भी नहीं कहते हैं, केवल भास्कराचार्य ने ही हार के विषय में लिखा है जो ठीक नहीं है॥

वस्तुत परमक्षयाहर्गे = कचा — १। तब वास्तव $\text{परमशे} = \frac{\text{कचा} - १}{\text{हा}}$,

$\text{अवास्तव परमशे} = \frac{\text{कचा} - १}{\text{अवास्तव हा}}$, हा > अवास्तवहा = यहा

शोधयेत्, अन्तर करने से $\frac{\text{कचा}\ \text{हा} - \text{हा} - \text{कचा}\ \text{यहा} + \text{हा}}{\text{हा}.\ \text{यहा}} = \text{अन्तर} \ldots (१)$

यहा $\frac{\text{कव}}{\text{१२}}$ = १३१४९२०३७५०० = हा । $\frac{\text{क्षयगं}}{\text{हा}}$ = शेष ।

वास्तव हर मे अल्पहर म भास्कर न कंमे समझा कि १३१४९०००००००० इसने हर लेने मे एक विकला का भी अन्तर नही होता है। इसके लिए विचार करते हैं।

(१) इसके स्वरूप = $\frac{\text{कचा हा—हा—कचा अहा+हा}}{\text{हा अहा}}$ = अन्तर । यहा कल्पना करते हैं अहा = य

$$= \frac{\text{कचा (हा—अहा)—(हा—अहा)}}{\text{हा अहा}}$$

$$\frac{\text{(हा—अहा) (कचा—१)}}{\text{हा अहा}} = \frac{\text{(हा—य) (कचा—१)}}{\text{हा य}}$$

$$= \frac{\text{हा (कचा—१)—य(कचा—१)}}{\text{हा य}}$$ विकलात्मक करने से

$$\frac{\text{३६०० हा (कचा—१)—३६००य (कचा—१)}}{\text{हा य}}$$ इसका स्वाल्प स्वीकार कर विषमीकरण करने से

$$\frac{\text{३६०० हा (कचा—१)—३६०० य (कचा—१)}}{\text{हा य}} < १$$

∴ ३६०० हा (कचा—१)—३६०० य (कचा—१) < हा य समयोजन मे

३६०० हा (कचा—१) < हा य + (कचा—१) ३६०० य वा

३६०० हा (कचा—१) < य {हा + ३६०० (कचा—१)}

∴ $\frac{\text{३६०० हा (कचा—१)}}{\text{हा + ३६०० (कचा—१)}}$ < य उत्थापन के लिए मान लिखते है।

३६०० हा = ४७३३७४९३५००००००

३६०० हा (कचा—१) = ७५८८१६५४७४२९५६१६२४०६५००००००

३६०० (कचा—१) = ५७७०७९९३९९९९९४०० । हा = १३१४९२०३७५००

३६०० (कचा—१) + हा = ५७७०९२७८९२०३३९००

उत्थापन देने मे

$$\frac{\text{३६०० हा (कचा—१)}}{\text{हा + ३६०० (कचा—१)}} = \frac{\text{७४८८१६५४७४२९५६१६२४०६५००००००}}{\text{५७७०९२७८९२०३३९००}}$$

= १३१४९००४१२७५ < य < १३१४९२०३७५००

किन्तु १, २ दोनो सख्याओ के अन्तर्वर्ती य का मान है लेकिन भास्कराचार्य १३१४६००४१३७५ इससे भी कम हार स्वीकार करते है, लेकिन भास्कर स्वीकृत इस हर १३१४६०००००० से भी क्षयाहशेष के माधिक्य मे कदाचित् विकला स्थान सान्तर (अन्तर सहित) होता है। इसलिए १३१४६००४१३७५ इससे अधिक १३१४६००५०००० वा १३१४६०१००००० अथवा १३१४६१००००० इस तरह का हर यदि स्वीकार किया जाय तब "एकापि विकला नान्तर भवति" यह सिद्ध होता है। लेकिन परमक्षयाहशेष मे भास्करोक्त का व्यभिचार होता है॥ यद्यपि यहा इस लेख की आवश्यकता नही थी किन्तु सिद्धान्तशिरोमणि की वासना मे किसी ने भास्करभाष्य "लाघवार्थमाद्येषु सप्तसु स्थानेषु शून्यान्येव कृत्वा भागहार पठित, यतस्तथाकृत एकापि विकलान्तर भवति" की उपपत्ति लिखी है जो हमारे मत मे ठीक नही है इसको प्रौढ ज्योतिषी लोग निष्पक्ष होकर विचार करें ॥११॥

अथवाऽधिमासावमशेषाभ्या चान्द्रार्कनियनम्

अर्केन्द्वोर्गति गुणितमवमशेषं विधुदिनस्थिता लिप्ता ।
मासाहानि भभागा रविर्विधुर्विश्वसंगुणितः ॥१२॥
अधिमास शेषकाद्यः शशाङ्कमासैरवाप्यतेंऽशादिः ।
तेनोभावपि हीनौ गृहादिकौ वा रवीन्दू स्तः ॥ १३ ॥

वि भा —अवमशेष (क्षयशेष) अर्केन्द्वो (सूर्याचन्द्रमसो) गतिगुणित (गत्या गुणित) विधुदिन स्थितालिप्ता (युगचान्द्रैर्भजनेन यत्फल तत्कलादिकम्) मासाहानि भभागा (गतमासतुल्यो राशिस्तथा दिनतुल्या अ शा) इत्थ राश्यादिको रविर्भवति । स (रवि) विश्वसगुणित (त्रयोदशगुणित) तदा विधु (चन्द्र स्यात्) अधिमासशेषकात्-शशाङ्कमासै (युगचान्द्रमासैर्हृतात्) योऽशादि, अवाप्यते (लभ्यते) तेन फलेन, उभावपि (सूर्यचन्द्रौ) हीनौ तदा गृहादिकौ (राश्यादिकौ) रवीन्दू (सूर्यचन्द्रौ) स्त (भवत) इति ॥ १२-१३ ।

हि भा —अवमशेष को रवि और चन्द्र की गति से गुणाकर युगचान्द्र से भाग देने पर फल कलादि समझना, गतमास तुल्य राशि और गतदिन (तिथि) तुल्य अ श समझना इस तरह राश्यादि सूर्य होते हैं। और सूर्य को तेरह से गुणने से चन्द्र होते है। अधिमास शेष मे युग चान्द्रमास से भाग देने मे जो अशादिफल होता है उसको ऊपर साधित सूर्य और चन्द्र मे घटाने से तिथ्यन्तकालिक सूर्य और चन्द्र होते है॥ १२-१३॥

अत्रोपपत्ति ।

अत्र चैत्रादित इष्टतिथ्यन्त यावच्चान्द्राह तुल्ये सौरे कल्पितेऽभीष्टसौरान्त-बिन्दावशात्मको मध्यमरविर्भवेदित्यहर्गणानयनोपपत्तिदर्शनेन स्फुटमेवास्तोऽत्रा-

त्मको मध्यमरवि सौरान्ते=चैत्रादिगतितिथिससौर तथा चाधिशेषप्रमाण तिथ्यन्तसौरान्तर्गत यच्चान्द्रात्मकमहर्गणानयने समागत तत्सम्बन्धि सौरान्तकमानीय सौरान्तबिन्दुकेऽशात्मके मध्यमरवौ विशोध्य तदा तिथ्यन्ते मध्यमरविर्भवेद्यथा $\frac{३० \times \text{अधिशे}}{\text{युसौदि}}$=चान्द्रात्मकमधिशेषम् तत सौरात्मकाऽधिशेषज्ञानार्थमनुपातो यदि युगचान्द्रदिनैर्युग सौरदिनानि लभ्यन्ते तदा चान्द्रात्मकाधिशेषे किं समागच्छन्ति सौरात्मकमधिशेषम्=

$$\frac{\text{युसौ} \times ३० \times \text{अधिशे}}{\text{युसौ} \times \text{युचादि}} = \frac{३० \times \text{अधिशे}}{\text{युचादि}} = \frac{\text{अधिशे}}{\frac{\text{युचादि}}{३०}} = \frac{\text{अधिशे}}{\text{युचामा}}$$, सौरान्त विन्दुकेंऽशा

एव मध्यमरवावेतस्य शोधनेन तिथ्यन्ते मध्यमरवि = चैगतिससौ$-\frac{\text{अशे}}{\text{युचामा}}$

परन्तु १२×चैगति ससौ=तिथ्यन्ते रवि चन्द्रान्तरांशा, अत १२×चैगतिससौ +तिथ्यन्तकालिकरवि=तिथ्यन्तकालिक चन्द्र

=१२×चैगतिससौ+चैगतिससौ$-\frac{\text{अधिशे}}{\text{युचामा}}$=१३×चैगतिससौ$-\frac{\text{अधिशे}}{\text{युचामा}}$=

तिथ्यन्तकालिक चन्द्र ।

तयोस्तिथ्यन्तकालिक रविचन्द्रयो सूर्योदयकालिकज्ञानार्थमवमशेष सम्बन्धि तयोर्गतिकलमानीयते, यथा युचैकेन दिनेन रविगतिर्लभ्यते तदाऽवमशेषे किमित्यनुपातेनावमशेष सम्बन्धि रविगतिकला=

रग× $\frac{\text{अवशे}}{\text{युचा}}$=रविकलासंज्ञका । एव $\frac{\text{चग} \times \text{अवशे}}{\text{युचा}}$=अवमशेसचग=

चन्द्रकला, तिथ्यन्तकालिक रविचन्द्रौ क्रमशो रविकला चन्द्रकलाभ्या सहितौ तदा सूर्योदयकालिकौ भवेतामिति ।।

आचार्योक्तपद्ये 'अर्केन्द्वोर्गतिगुणितमवमशेष विधुदिन-स्थिता लिप्ता" अस्मिन् विधुदिनस्थिता लिप्ता इत्यशुद्ध प्रतिभातीति ।।१०-१३

उपपत्ति

चैत्रादि से इष्ट तिथ्यन्त पर्यन्त जितने चान्द्रदिन हैं तत्तुल्य सौरदिन मानने से इष्टसौरान्त बिन्दु में मध्यम रवि होते हैं यह बात अहर्गणानयन की उपपत्ति देखने से साफ है इसलिए सौरान्त मध्यमात्मक रवि=चैत्रादि गततिथि मध्यमसौर, तथा तिथ्यन्त सौर

सौरान्त के अन्तर्गत जो चान्द्रात्मक अधिशेष है अहर्गणानयन में तत्सम्बन्धी सौरात्मक अधिशेष लाकर सौरान्त विन्दुक अंशात्मक मध्यम रवि में घटाने से तिथ्यन्त में मध्यमरवि होते हैं। जैसे $\frac{३० \times \text{अधिशे}}{\text{युसौ}}$ = चान्द्रात्मक अधिशे। इसको सौरात्मक करने के लिए अनुपात करते हैं यदि युग चान्द्रदिन में युगसौरदिन पाते हैं तो चान्द्रात्मक अधिशेष में क्या, इस अनुपात से सौरात्मक अधिशेष प्रमाण आया।

$$\frac{\text{युसौ} \times ३० \times \text{अधिशे}}{\text{युसौ} \times \text{युचादि}} = \frac{३० \times \text{अधिशे}}{\text{युचादि}} = \frac{\text{अधिशे}}{\frac{\text{युचादि}}{३०}} = \frac{\text{अधिशे}}{\text{युचामा}} = \text{सौरात्मक अधिशेष}$$

अत. सौरान्त विन्दुक अंशात्मक मध्यम रवि में उसको घटाने से तिथ्यन्त में मध्यमरवि होते हैं चैगति ससौ $-\frac{\text{अधिशे}}{\text{युचामा}}$ = तिथ्यन्तकालिकरवि। परन्तु १२ × चैगतिससौ = तिथ्यन्तकालिक-रविचन्द्रान्तरांश

इसलिये १२ × चैगति ससौ + तिथ्यन्तकालिक रवि = तिथ्यन्तकालिकचन्द्र

$$= १२ \times \text{चैगतिससौ} + \text{चैगतिससौ} - \frac{\text{अधिशे}}{\text{युचामा}} = १३ \times \text{चैगतिससौ} - \frac{\text{अधिशे}}{\text{युचामा}}$$

इन तिथ्यन्तकालिक रवि और चन्द्र को सूर्योदयकालिक लाने के लिए अवमशेष सम्बन्धी उन दोनों के गतिकला लाते हैं जैसे रग × $\frac{\text{अवशे}}{\text{युवा}}$ = अवमशेषरग = रविकला।

चग × $\frac{\text{अवशे}}{\text{युवा}}$ = अवशेषचग = चन्द्रकला

तिथ्यन्तकालिक रवि में रविकला को और तिथ्यन्तकालिक चन्द्र में चन्द्रकला को जोड़ने से उदयकालिक रवि और चन्द्र होते हैं॥ आचार्योक्त 'अर्केन्द्वोर्गति गुणितमवमशेष विधुदिनस्थिता लिप्ता' इस पद्य में विधुदिन-स्थिता लिप्ता यह अशुद्ध मालूम होता है॥ १२-१३

पुन प्रकारान्तरेणाह।

वार्कघ्ना वमशेषा द्विश्वघ्न युगावमाप्तमर्ककलाः।
इन्दोर्वेदसुरघ्ना द्युगावमैर्वा हृतैरवमशेषात्॥१४॥
कुत्रिद्वीभदिगृक्षेलेगकुरसभखाद्रिवभिस्त्ववमशेषात्।
लब्धं कलारवीन्द्वोरुक्तवदेतौ द्युमासभागगृहैः॥१५॥

वि. भा.—वा (अथवा) अर्कघ्नावशेषात् (द्वादशगुणितअवमशेषात्) विश्वघ्न-

युगावमाप्त (त्रयोदशगुणितयुगावमभक्तलब्ध) अर्ककला (अवमशेषसम्बन्धिकलात्मक रविगति) वेदसुरघ्नात् (३३४ एतद्गुणितात्) अवमशेषात् (क्षयावशिष्टात्) युगावमं (युगक्षयं) हृतं (भक्तं) वा इन्दो (चन्द्रस्य) कला अर्थादवमशेष सम्बन्धिचन्द्रगतिकला, अथवा—अवमशेषात् कुत्रिद्वीभदिगृक्षं (२७१०८२३१) नगवसुरसभखाश्विभि (२०२७६१७) क्रमशोभक्ताल्लब्ध रवीन्द्वो (सूर्यचन्द्रयो) कला, द्युमासभागगृहे [गतदिन (तिथिश्च) अंश (भाग) गतमास राशि ज्ञात्वा] उक्तवत् (पूर्ववत्) एतौ (रविचन्द्रौ) ज्ञातव्याविति ॥१४-१५॥

हि भा—बारहगुणित अवमशेष को तेरह गुणित युगावम से भाग देने पर लब्धि अर्ककला (क्षयशेषसम्बन्धी रविगतिकला) होती है। और अवमशेष को ३३४ गुणा कर युगावम से भाग देने से लब्धि चन्द्रमा की कला (अवमशेष सम्बन्धी चन्द्रगतिकला) होती है या अवम शेष को क्रमशः २७१०८२३१, २०२७६१७ भाग देने से रवि और चन्द्र की कला होती है और गतदिन (तिथि) को अंश, गतमास को राशि समझकर पूर्ववत् रवि और चन्द्र समझना चाहिये ॥१४-१५॥

अत्रोपपत्ति ।

अथावमशेषमानम् $=\frac{\text{अवशे}}{\text{युचा}}$ एतत्सम्बन्धि रविगति $\frac{\text{रग}\times\text{अवशे}}{\text{युचा}}=\frac{\text{अवशे}}{\frac{\text{युचा}}{\text{रग}}}$ हरभाज्य-

द्वादशभिर्गुण्यते तदा $\frac{\text{अवशे}\times 12}{\frac{\text{युचा}\times 12}{\text{रग}}}=\frac{\text{अवशे}\times 12}{13 \text{ युगावम}}$ $\quad \frac{\text{युचा}\times 12}{\text{रग}}=13$ युगावम

$=$रविफलम् ।

एवमवमशेषसम्बन्धि चन्द्रगति $=\frac{\text{चग}\times\text{अवशे}}{\text{युचा}}=\frac{\text{चग}}{\text{रग}}\times\frac{\text{अवशे}}{\frac{\text{युचा}}{\text{रग}}}=$

$$=13\times\frac{\text{अवशे}\times 12}{\frac{\text{युचा}\times 12}{\text{रग}}}=\frac{13\times\text{अवशे}\times 12}{13\times\text{युगावम}}=\frac{\text{अवशे}\times 12}{\text{युगावम}}=\text{चफलम्}।$$

अथवा $\frac{\text{अवशे}}{\frac{\text{युचा}}{\text{रग}}}=\frac{\text{अवशे}}{\text{पठिताङ्क}}=$रविफलम् । तथा

$\frac{\text{अवशे}\times १२}{\text{युगावम}}$ = चन्द्रफल = $\frac{\text{अवशे}}{\frac{\text{युगावम}}{१२}}$ = $\frac{\text{अवशे}}{\text{पठिताङ्क}}$ चन्द्रफलसाधने

इन्दोर्वेदमुरघ्नादिति स्थले "इन्दोर्द्वीन्दु परिघ्नादिति पाठ समीचीन प्रतिभाति" अत उपपन्नमाचार्योक्तम् ॥१४-१५॥

उपपत्ति ।

अवमशेषमान = $\frac{\text{अवशे}}{\text{युचा}}$ एतत्सम्बन्धी रविगति = $\frac{\text{रग}\times\text{अवशे}}{\text{युचा}}$ =

$\frac{\text{अवशे}}{\frac{\text{युचा}}{\text{रग}}}$ हरभाज्य को बारह से गुणने से $\frac{\text{अवशे}\times १२}{\frac{\text{युचा}\times १२}{\text{रग}}}$ = $\frac{\text{अवशे}\times १२}{१३\ \text{युगावम}}$ = रविकला

$\therefore \frac{\text{युचा}\times १२}{\text{रग}}$ = १३ युगावम, इसी तरह अवमशेष सम्बन्धी चन्द्रगति

= $\text{चग}\times\frac{\text{अवशे}}{\text{युचा}} = \frac{\text{चग}}{\text{रग}}\times\frac{\text{अवशे}}{\frac{\text{युचा}}{\text{रग}}} = \frac{१३\times\text{अवशे}\times १२}{\frac{\text{युचा}\times १२}{\text{रग}}}$ =

$\frac{१३\times\text{अवशे}\times १२}{१३\ \text{युगावम}} = \frac{\text{अवशे}\times १२}{\text{युगावम}}$ = चन्द्रफल । अथवा

$\frac{\text{अवशे}\times १२}{१३\ \text{युगावम}}$ = रविफल = $\frac{\text{अवशे}}{\frac{१३\ \text{युगावम}}{१२}}$ = $\frac{\text{अवशे}}{\text{पठितहर}}$ = रविफल ।

एव $\frac{\text{अवशे}\times १२}{\text{युगावम}}$ = चन्द्रफल = $\frac{\text{अवशे}}{\frac{\text{युगावम}}{१२}}$ = $\frac{\text{अवशे}}{\text{पठितहर}}$ = चन्द्रफल

इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥१४-१५॥

अथ सूर्यकलातो रविचन्द्रयोरानयनमाह

द्विरसघ्नाः सूर्यकला बाणविभक्ता रविघ्नतिथिभागैः ।
युक्ता विधोर्विशोध्याः सूर्यः सूर्योनितश्चन्द्रः ॥१६॥

वि भा —सूर्यकला (१४ श्लोकोक्ता) द्विरसघ्ना (६२ एभिर्गुणिता) बाणविभक्ता (पञ्चभक्ता) रविघ्नतिथिभागैः (द्वादशगुणिततिथिभि) युक्ता (सहिता) विधो (चन्द्रात्) विशोध्या (हीना) तदा सूर्यो भवेत् । सूर्योन्वित

(सूर्ययुक्त.) चन्द्रो भवेदिति ॥१६॥

हि. भा—सूर्यकला (१४ श्लोक में साधित सूर्यकला) को बासठ से गुणाकर पाँच से भाग देने पर जो फल हो उसे बारह गुणित तिथि में जोड देना, चन्द्रमा में घटा देने से सूर्य होते हैं। उसी में सूर्य को जोडने से चन्द्र होते हैं ॥१६॥

अत्रोपपत्ति.

अवमशेषसम्बन्धि सूर्यगतेर्नाम सूर्यकला, एतत्सम्बन्धि घट्यात्मकमानम्=

$\frac{६० \times सूर्यकला}{रविगतिकला}$ = घट्यात्मकफलम्। तिथौ योजनेन सूर्योदय कालिक-

तिथिमानम् $= ति + \frac{६० \times सूकला}{रविगतिक} = \frac{चन्द्र - रवि}{१२}$ द्वादशभिर्गुणनेन

$$१२ति + \frac{६० \times सूकला \times १२}{रविगक} = १२ति + \frac{६० \times सूकला}{\frac{रविगक}{१२}} = १२ ति + \frac{६० \times सूकला}{५}$$

स्वल्पान्तरात्

तथा च (६०) स्थाने स्वल्पान्तरात् ६२ गृहीतम् तदा $१२ति + \frac{६२ सूकला}{५}$

$= चन्द्र - रवि$

$$\therefore १२ ति + \frac{६२ सूकला}{५} + रवि = चन्द्र$$

वा. $रवि = चन्द्र - \left(१२ ति + \frac{६२ सूकला}{५}\right)$ अत उपपन्नम् ॥१६॥

उपपत्ति

अवम शेष सम्बन्धी रविगति को सूर्यकला कहते हैं। सूर्यकला को घट्यात्मक करने के लिए अनुपात करते है। यदि रविगतिकला में साठ घटी तो सूर्य कला में क्या इस अनुपात से घट्यात्मक फल आया। $\frac{६० \times सूकला}{रविगकला}$ = घट्यात्मक सूकला,

इसको तिथि में जोडने से सूर्योदय कालिक तिथि प्रमाण होगा।

$ति + \frac{६० \times सूकला}{रविगतिकला}$ = औदयिकतिथि $= \frac{चन्द्र - रवि}{१२}$ बारह से गुणने से

$$१२ति + \frac{६० \times सूकला \times १२}{रविगतिक} = १२ति + \frac{६० \times सूकला}{\frac{रविगक}{१२}} =$$

$१२ति + \frac{६० \times सूकला}{५} = १२ति + \frac{६२ \; सूकला}{५}$ स्वल्पान्तर से

$\therefore र + १२ति + \frac{६२ \; सूकला}{५} =$ चन्द्र । तथा चन्द्र $- \left(१२ति + \frac{६२ \; सूकला}{५}\right)$

$=$ रवि . सिद्ध हुआ ॥२६॥

अथ चन्द्रकलातश्चन्द्ररव्योरानयनमाह ।

खखकृतनवत्रिकोनाः शशिलिप्तास्तिथिहतार्कभागयुताः ।
क्षेप्याः सवितरि चन्द्रश्चन्द्रात्संशोधितः सूर्यः ॥१७॥

वि. भा — शशिलिप्ता. (पूर्वसाधितचन्द्रकला.) खखकृतनवत्रिकोना (३९४०० एभी रहिता) तिथिहतार्कभागयुता (द्वादशगुणिततिथियुक्ता) सवितरि (सूर्ये) क्षेप्या (योज्या) चन्द्रो भवेत्, चन्द्रात्मशोधित (खखकृतनवेत्यादि नाऽनीतसंस्कारश्चन्द्राद्रहित) तदा सूर्यो भवेदिति ॥

अत्रोपपत्ति ।

अवमशेषसम्बन्धि चन्द्रगतेर्नाम चन्द्रकला, एतत्सम्बन्धि घट्यात्मकमानम् $= \frac{६० \times चन्द्रकला}{चन्द्रगक}$ तिथौ योजनेन सूर्योदयकालिकतिथि $=$ ति $+ \frac{६० \times चन्द्रकला}{चगक}$

$= \frac{चन्द्र - रवि}{१२}$ द्वादशभिर्गुणनेन १२ ति $+ \frac{१२ \times ६० \times चन्द्रकला}{चगक} = १२$ ति $+$

चद्रक $=$ चन्द्र $-$ सूर्य अत उदयकालिकश्चचन्द्र $=$

१२ ति $+$ चन्द्रकला $+$ सूर्य $=$ चन्द्र वा चन्द्र $-$ (१२ ति $+$ चकला) $=$ सूर्य उदयकालिकायाम् अत्र चन्द्रकलाया ३९४०० इति यद्विशोधितमाचार्येण तत्तथ्य न प्रतिभाति मन्यत्सर्वं समीचीनमिति ॥१७॥

हि भा.—पूर्वसाधित चन्द्रकला मे ३९४०० घटाकर बारह गुणित तिथि को जोड देना तब जो हो उसको सूर्य मे जोडने से चन्द्र होते हैं । चन्द्र मे घटाने से सूर्य होते है ।

अवमशेष सम्बन्धी चन्द्रगति का नाम चन्द्रकला है । एतत्सम्बन्धी घट्यात्मक मान

$= \frac{६० \times चन्द्रकला}{चगक}$ इसको तिथि मे जोडने से उदयकालिक तिथि होगी

ति $+ \frac{६० \times चन्द्रकला}{चगक} =$ उदयकालिकतिथि $= \frac{चन्द्र - रवि}{१२}$ बारह से

गुण देने से १२ ति $+ \frac{१२ \times ६० \times चन्द्रकला}{चगक} = १२$ ति $+ \frac{७२० \times चगक}{३६० । ३५}$

$= १२$ ति $+$ चगक $=$ चन्द्र $-$ रवि (स्वल्पान्तर से)

अत १२ ति + चगक + रवि = सूर्योदयकालिक चन्द्र, सूर्योदयच — (१२ ति + चगक) = सूर्योदयकालिकरवि ।

यहा पर चन्द्रकला म ३६४०० इतना घटाकर जो आगे की क्रिया की गई है सो ठीक नही मालूम पडती है ॥१७॥

पुनश्चन्द्ररव्योरानयनमाह ।

त्रिखकुहुताशन विकला गोघ्नावमहृता कला गतैस्तिथिभि ।
सूर्यघ्नैरशयुता सार्कश्चन्द्रो विधुस्तदूनोऽर्क ॥१८॥

वि भा —त्रिखकुहुताशनविकला (३१०३ एतावत्यो विकला) गोघ्नावमहृता (नवगुणितावमभक्ता) तदा कला स्यु । सूर्यघ्नैर्गततिथिभि (द्वादशगुणित गततिथिभि), युता (सहिता) सार्का (रविसहिता) चन्द्रो भवेत् । तदून (तद्रहित) विधु (चन्द्र) अर्क (सूर्य) भवेदिति ॥१८॥

अत्रोपपत्तिस्तु सुगमैव ।

हि भा —३१०३ इतनी विकला को नव गुणित अवम से भाग देने पर कला होती है । उसम बारहगुणित गततिथि जोड देना इसम रवि के जोडने से चन्द्र होते हैं । चन्द्र म घटाने से रवि होते हैं ॥१८॥

इसकी उपपत्ति सुगम ही है ।

अथाधिमासावमशेषाभ्या सूय ज्ञात्वा चन्द्रानयनम् ।

नगगुणतिथिगोकुभुजै शशिमासैश्च क्षयाधिशेषाभ्याम् ।
लब्धकला विविराशो रविगुणतिथिभिश्च सयुत सविता ॥ १९ ॥
भवति शशी, शीतांशुर्विवर्जितो वा सहस्रांशु ॥ १९½ ॥

वि भा—क्षयाधिशेषाभ्या (अवमाधिक शेषाभ्या) क्रमशो नगगुणतिथिगो कुभुजै (२१९१५३१९) शशिमासै (चान्द्रमासै) विभाजिताभ्या लब्धकलाविवराग (लब्धकलान्तरांश) रविगुणतिथिभिश्च (द्वादशगुणितगततिथिभिश्च) सयुत (सहित) सविता (सूय) शशी (चन्द्र) भवति । शीतांशु (चन्द्र) द्वादशगुणित तिथिभिर्विवर्जित (रहित) तदा सहस्रांशु (सूर्य) भवेदिति । अत्र लब्धकला-विवरांशैरिति पाठ साधु प्रतिभाति ॥

हि भा —क्षयशेष और अधिशेष म क्रमस २१९१५३१९ इसमे तथा चान्द्रमास स भाग देने से फलान्तर को रवि म जोड देना और बारह गुणित गततिथि को भी रवि म जोडना सब चन्द्र होते हैं । यदि चन्द्रमा म बारह गुणित तिथि घटा देते हैं तो रवि होते हैं ॥ १९ ॥

अत्रोपपत्ति ।

मासान्तत इष्टतिथ्यन्तावधि यास्तिथयस्तत्तुल्ये सौरप्रमाणे—इष्टमास

सौरान्त बिन्दावशात्मको मध्यमरविर्भवति। तेन सौरान्तेऽशात्मको रवि = ति। तथा सौरान्ततिथ्यन्तयोरन्तर्गतमधिशेषप्रमाणं चान्द्रात्मकं यदस्ति तत्सम्बन्धि सौरान् समानीय सौरान्तबिन्दुकाशात्मकरवौ शोधनेन तिथ्यन्तकालिको मध्यमरविर्भवति। अत्र सौरात्मकाधिशेषज्ञानार्थमनुपात क्रियते यदि युगचान्द्रै युगसौरदिनानि लभ्यन्ते तदा चान्द्रात्मकाधिशेषे. किं जात फल सौरात्मकमधिशेषम्

$= \frac{३० \text{ अशे}}{\text{युसौ}} \times \frac{\text{युसौ}}{\text{युचा}} = \frac{३० \text{ अशे}}{\text{युचा}} = \frac{\text{अधिशे}}{\text{युचा}}$ एतस्य तिथौ शोधनेन तिथ्यन्तकालिक

रवि. $=$ ति $- \frac{\text{अधिशे}}{\text{युचा}}$। अथ चैकस्मिन् दिने यदि रविगतिर्लभ्यते तदाऽवमशेषे

कुदिनात्मकं. किं जाता तत्सम्बन्धि रविगति $= \frac{\text{रविग} \times \text{अवशे}}{\text{युचा}}$ (१)

$\because$ ति $= \frac{\text{च} - \text{र}}{१२}$ $\therefore$ १२ति $=$ च $-$ र $\because$ र $+$ १२ ति $=$ चन्द्रस्तिथ्यन्तकालिक

सूर्योदयकालिक रवि $+$ १२ ति $=$ सूर्योदयकालिकचन्द्र।

पर तिथ्यन्तकालिक रवि $+$ अवमशेष सरविगति $=$ सूर्योदयकालिकरवि

$=$ रवि $+ \frac{\text{रविगति} \times \text{अवशे}}{\text{युचा}} =$ सूर्योदयकालिकरवि

$=$ ति $- \frac{\text{अधिशे}}{\text{युचा}} + \frac{\text{रविगति} \times \text{अवशे}}{\text{युचा}} =$ ति $- \frac{\text{अधिशे}}{\text{युचा}} + \frac{\text{अवशे}}{\frac{\text{युचा}}{\text{रग}}} =$

$=$ ति $- \frac{\text{अधिशे}}{\text{युचा}} + \frac{\text{अवशे}}{\text{हर}} =$ ति $+ \frac{\text{अवशे}}{\text{हर}} - \frac{\text{अधिशे}}{\text{युचा}} =$ सूर्योदय रवि।

सूर्योदयकालिक $+$ १२ ति $=$ सूर्योदयचन्द्र $=$ १३ ति $+ \frac{\text{अवशे}}{\text{पठिताङ्क}} - \frac{\text{अधिशे}}{\text{युचा}}$

अत सूर्योदय च $-$ १२ ति $=$ सूर्योदय कालिक रवि

अत उपपन्नम्॥ १६३॥

हि. भा —चैत्रामान्त मे इष्टतिथ्यन्त तक जो तिथि है तत्तुल्यसौर प्रमाण रहने से इष्टमास के सौरान्त विन्दु मे अंशात्मकरवि होते हैं। इसलिये सौरान्त मे अंशात्मकरवि $=$ ति। और सौरान्त तिथ्यन्त के अन्तर्गत जो चान्द्रात्मक अधिशेष है तत्सम्बन्धी सौर से लाकर सौरान्त विन्दु के अंशात्मक रवि मे घटाने से तिथ्यन्त कालिक मध्यमरवि होते हैं। यहा सौरात्मक अधिशेष ज्ञान के लिये अनुपात करते हैं। यदि युगचान्द्र मे युगसौर दिन पाते हैं तो चान्द्रात्मक अधिशेष मे क्या फल सौरात्मक अधिशेष आया,। $\frac{३० \text{ अधिशे}}{\text{युसौ}} \times \frac{\text{युसौ}}{\text{युचा}} = \frac{३० \text{ अधिशे}}{\text{युचा}}$

$= \frac{\text{अधिशे}}{\text{युचा}}$ तिथि मे इसको घटाने से तिथ्यन्तकालिकरवि $=$ ति $- \frac{\text{अधिशे}}{\text{युचा}}$। अब यदि एक

दिन में रविगति पाते हैं तो कुदिनात्मक अवम शेष में क्या इस अनुपात से अवमशेष सम्बन्धी रविगति =

$\text{रविग} \times \frac{\text{अवशे}}{\text{युचा}}$ । परन्तु १२ ति = च—र ∴ र + १२ ति = चद्र = तिथ्यन्त का चन्द्र

सूर्योदयकालिक र + १२ ति = सूर्योदय कालिकचन्द्र

लेकिन तिथ्यन्तकालिकरवि + अवमशेष रविगति = सूर्योदयकालिकरवि

$$= \text{रवि} + \frac{\text{रविग} \times \text{अवशे}}{\text{युचा}} = \text{ति} - \frac{\text{अधिशे}}{\text{युचा}} + \frac{\text{रग} \times \text{अवमशे}}{\text{युचा}} =$$

$$\text{ति} - \frac{\text{अधिशे}}{\text{युचा}} + \frac{\text{अवशे}}{\frac{\text{युचा}}{\text{रग}}} = \text{ति} - \frac{\text{अधिशे}}{\text{युचा}} + \frac{\text{अवशे}}{\text{पठितहर}}$$

$$= \text{ति} + \frac{\text{अवशे}}{\text{पठितहर}} - \frac{\text{अधिशे}}{\text{युचा}} = \text{सूर्योदयकालिक रवि}$$

पर सूर्योदयकालिकरवि + १२ ति = सूर्योदयकालिकचन्द्र

$$\therefore \text{ १२ ति} + \frac{\text{अवशे}}{\text{पठितह}} - \frac{\text{अधिशे}}{\text{युचा}} = \text{सूर्योदयकालिकचन्द्र}$$

तथा सूर्योदयकालिक चन्द्र—१२ ति = सूर्योदयकालिक रवि

इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥ १८-१९½ ॥

फलविवरं मध्यमतिथिः शेषकला द्वादशोद्धृता नाड्यः ॥ २० ॥

वि. भा —फलविवरं (रविचन्द्रान्तरांश) द्वादशोद्धृत मध्यमतिथिर्भवति । शेषकला द्वादशोद्धृतास्तदा नाड्य (घटिका) स्यु ॥ इति ॥

हि. भा —रवि चन्द्रान्तरांश को बारह से भाग देने से मध्यमतिथि होती है । शेषकला को बारह से भाग देने से घटी होती है ॥ २० ॥

अत्रोपपत्तिः ।

यदि द्वादशांशैरेका तिथिस्तदाशेषांशै किमिति तत्स्वरूपम् $= \frac{\text{१ ति} \times \text{शेषांश}}{\text{१२}} =$

$\frac{\text{६० घटी} \times \text{शेषांश}}{\text{१२}} = \frac{\text{शेषकला}}{\text{१२}} =$ घट्यात्मक फलम् । अत शेषकला द्वादशोद्धृता नाड्य इति तथ्यमुक्तम् ॥ २० ॥

यदि बारह अंश में एक तिथि (६० घटी) तो शेषांश में क्या इस अनुपात से शेषांश सम्बन्धी घट्यात्मक फल आता है । ∴ $\frac{\text{१ ति} \times \text{शेषांश}}{\text{१२}} = \frac{\text{६० घटी} \times \text{शेषांश}}{\text{१२}} =$

$\frac{\text{शेषकला}}{\text{१२}} =$ घो सघट्यात्मक फल । ∴ उपपन्न हुआ ॥ २० ॥

अथावमशेषघट्यानयनमाह

खरसघ्नात् कुदिनाप्तावम शेषात्तिथेर्नाड्यः ॥

वि. भा.—खरसघ्नात् (षष्टिगुणितात्) कुदिनाप्तावमशेषात् (कुदिनभक्तावमशेषात्) तिथेर्नाड्य (क्षयघटिकाः स्यु)।

हि भा—कुदिन से भाग लिया हुआ अवमशेष को साठ मे गुणने से घट्यात्मक होता है।

उपपत्ति.।

अथावमशेषप्रमाणम् चान्द्रात्मकम् $=\frac{\text{अवशेष}}{\text{युकुदिन}}$, अत्रानुपातो यद्येकतिथौ षष्टिघटिकास्तदाऽवमशेषे किं जातमवमशेषमान घट्यात्मकम् $=$

$\frac{६० \times \text{अवशे}}{\text{युकुदिन}}$ = अवमशेष घटी।

चान्द्रात्मक अवमशेष $=\frac{\text{अवशे}}{\text{युगादिन}}$। अब अनुपात करते हैं कि यदि एकतिथि मे साठ दण्ड पाते हैं तो अवमशेष में क्या इस अनुपात से घट्यात्मक अवमशेष प्रमाण आया।
$\frac{६० \times \text{अवशे}}{\text{युकुदि}}$ = अवमशे घटी। इससे आचार्योक्त सिद्ध हुआ॥

अथ रविचन्द्रयोरानयनमाह

द्विगुणतिथिलिप्तिकाभ्यो नगतुं लब्धाधिकाप्तरविहतयुक्।
तद्युगिनो विश्वगुणो विधुस्तदूनस्त्रयोदशहृदर्कः ॥ २१ ॥

वि भा—द्विगुणतिथिलिप्तिकाभ्य (द्विगुणतिथिकलाभ्य) नगतुं लब्धाऽधिकाप्तरविहतयुक् (६७ एलद्धूक्ता सन्तो यानि लब्धान्यधिकफलानि तैर्द्वादशगुणिततिथि र्योज्या) तद्युक् (तत्सहित) विश्वगुण (त्रयोदशगुणित) इन (सूर्य) विधु (चन्द्र) भवेत्, विधुस्तदून (चन्द्रस्तत्फलरहित) त्रयोदशहृत् (त्रयोदशभक्त) तदा अर्क (सूर्य) भवेदिति ॥ २१ ॥

अत्रोपपत्ति रधिकाप्त फलेऽर्कगुणे इत्यादिवदेव बोध्येति ॥२१॥

हि भा,—द्विगुण तिथिकला मे ६७ से भाग देने से जो फल होता है उसको बारह गुणित अधिक फल मे जोड देना उसमे तेरह गुणित सूर्य को जोडने से चन्द्र होते हैं। चन्द्र मे उसको घटाकर तेरह से भाग देने से रवि होते हैं ॥ २१ ॥

इसकी उपपत्ति "अधिकाप्तफलेऽर्कगुणे" इत्यादि की उपपत्ति की तरह समझना ॥२१॥

पुना रविचन्द्रानयनमाह

अधिकाप्तहतो द्युगणः कुदिनहृतः पर्ययादिफललब्धिः।
शशिवर्षैरप्येवं फलान्तरं विश्वहृद्वाऽर्कः ॥ २२ ॥
समाफलेनाशीतगोरिना हतेन चन्द्रमाः।
विवर्जितः सहस्रगुः सहस्रगुर्युतः शशी ॥ २३ ॥

वि. भा.—द्युगण (अहर्गण) अधिकाम्रहत (अधिकफलगुणित) कुदिनहृत (युगकुदिनभक्त) पर्ययादि फललब्धि (भगणादिलब्धफल) भवेत्। शशिपर्ये (युगचन्द्रभगणे) अपि एव फल साध्य, फलान्तर विश्वहृत् (त्रयोदशभक्त) अथवार्क (सूर्य) भवेत्। अशीतगो (सूर्यस्य) इनाहतेन (द्वादशगुणितेन) समाफलेन (भगणफलेन) विवर्जित (हीन) चन्द्रमा (चन्द्र) सहस्रगु (सूर्य) भवेत्। तेन फलेन युत सहस्रगु (सूर्य) शशी (चन्द्र) भवेदिति ॥२२-२३॥

अत्रोपपत्ति

यदि युगकुदिनैर्युगाधिमासा लभ्यन्ते तदाऽहर्गणेन किमित्यनुपातेन लब्धा-गताधिमासा । $\frac{\text{युगाधिमा} \times \text{अहर्गण}}{\text{युकु}}$ = गताधिमास, एव युगाधिमासैर्युगचन्द्रभगणा लभ्यन्ते तदा गताधिमासै कि लब्ध भगणादिकम् = $\frac{\text{युचभ} \times \text{गताधिमा}}{\text{युगाधिमास}}$

पर $\frac{\text{युगचभगण}}{\text{युगरविभगण}}$ = १२ युचभगण = १३ × युगरविभगण

अतोऽधिकफलसम्बन्धि यद्रवि भगणादि फल तत् त्रयोदशगुणित यद्यधिकफले योज्यते तदाऽधिकफल सम्बन्धि भगणादि चन्द्रो भवेत्। यदि चाधिकफल चन्द्र विशोध्यते त्रयोदशभिर्भज्यते तदा रविर्भवेदिति । अत श्लोकोक्तौ 'समाफलेनाशीतगोरिनाहतेन चन्द्रमा इति स्थले ' समागतेनाशीतगोर्विश्वहतेन चन्द्रमा" इति पाठ साधु प्रतीयते तथा शशिपर्येरित्यत्र पर्ययशब्देन भगणो बोध्य इति । ॥२२-२३॥

हि भा.—अहर्गण को अधिक फल से गुणकर युग कुदिन से भाग देने से भगणादि फल होता है। इसी तरह चन्द्र भगण म भी फल लाना, दोनो फलो के अन्तर करने से जो हो उसको तेरह से भाग देने से रवि होते हैं अर्थात् चन्द्रमा म अधिक फल को घटाने से जो हो उसको तरह से भाग देने पर रवि होने हैं और तेरह गुणित रवि में अधिक फल जोडने से चन्द्र होते हैं ॥२२ २३॥

उपपत्ति

यदि युगकुदिन म युगाधिमास तो अहर्गण में क्या इस अनुपात से जो फल आता है वही अधिक फल है। अधिक फल सम्बन्धी चन्द्रभगणादिफल लाइये अथवा युगाधिमास, युगकुदिन, युगचन्द्रभगण पर से अनुपात स भगणादि चन्द्र आते हैं उसम अधिक फल को घटाने से तेरह गुणित रवि होते हैं क्योंकि $\frac{\text{युचभगण}}{\text{युगरभगण}}$ = १३

तथा युचभगण—१३ युगरविभगण = युगाधिमास

अत अधिकफल सम्बन्धिचन्द्र—अधिकफल = १३ रवि $\frac{\text{अधिकफलसचन्द्र} - \text{अधिकफ}}{१३}$ = रवि ॥२२ २३॥

पुनस्तदानयनमाह ।

अधिकाप्तफलेऽर्कगुणे विश्वाहत भानुसंयुते चन्द्रः ।
चन्द्रो वा तद्धीनो विश्वहृतो मध्यमः सविता ॥२४॥

वि. भा.—अधिकाप्तफले (अधिकमाससम्भूतफले) अर्कगुणे (द्वादशगुणिते) विश्वाहतभानुसयुते (त्रयोदशगुणितरविसहिते) तदा चन्द्रो भवेत् । तद्धीन. (तेन फलेन रहितः) चन्द्रः विश्वहृतः (त्रयोदशभक्त.) तदा मध्यम. सविता (मध्यमसूर्यो) भवेदिति ॥

अत्रोपपत्तिः

अधिकफलमर्कगुणितं चन्द्राशेभ्यो विशोध्य विश्वाश इत्यादिना स्पष्टमेव । तत्र यत्कथित तत. किञ्चिदप्यधिकमत्र न कथ्यतेऽतोऽत्रापि वासना तथैव ज्ञेयेति—केवलमधिकफलेऽन्तरमस्ति, तावता न काचिद्धानिरधिकफलस्थानेऽत्रात्रत्यमधिक फल ग्रहीतव्यमिति ॥२४॥

हि. भा—अधिकफल को बारह से गुणकर तेरह गुणित रवि में जोडने से चन्द्र होते हैं । और चन्द्र मे उस फल को (बारहगुणित अधिकफल को) घटाकर तेरह मे भाग देने से मध्यम सूर्य होते है ।

उपपत्ति

"अधिकफलमर्कगुणित चन्द्राशेभ्यो विशोध्य विश्वाश" इत्यादि श्लोक की उपपत्ति जिस तरह की गई है उसी तरह यहा भी उपपत्ति करनी चाहिए । उसमें यहा कुछ भी विशेष बातें नही है केवल अधिक फल मे अन्तर है इसलिए उपपत्ति करने मे यहा का अधिक फल लेना चाहिए । अधिकफलमर्कगुणितमित्यादि श्लोकोपपत्ति मे वहा का अधिकफल ग्रहण करना चाहिए ॥इति॥२४॥

युगभोदयाहते वा युगकुदिनोद्धृते च भगणादि ।
सवितृग्रहादिकं यद्भगणाश्च गतर्क्षपरिवर्ताः ॥२५॥

वि भा.—अहर्गणे युगभोदयाहते (युगपठित भोदयगुणिते) युगकुदिनोद्धृते (युगकुदिनभक्ते) भगणादिफल भवेत् तत सवितृग्रहादिक (रविराश्यादिक) भवेत् भगणाश्च (अनुपातागता गतभगणा) गतर्क्षपरिवर्ता (नक्षत्रगतभगणाः स्यु ॥इति॥

उपपत्ति

अहर्गणतोऽनुपातेन यथा भगणादिग्रहानयनं तथात्रापि कार्यमर्थात्

$$\frac{\text{युगभोदय} \times \text{अहर्ग}}{\text{युकु}} = \frac{(\text{युकु}+\text{युरभ})\text{अह}}{\text{युकु}} = \text{अह} + \frac{\text{युरभ} \times \text{अह}}{\text{युकु}} = \text{अह} + \text{भगणादिर}$$

अत्राहर्गणे शोधिते भगणादि रविस्ततो राश्यादिरविज्ञान भवेत् ।

हि भा —अहर्गण को युगभोदय से गुण कर युगकुदिन से भाग देने से भगणादि फल होता है। अनुपात से जो गतभगण आता है वह नक्षत्रगत भगण है ॥२५॥

उपपत्ति

अहर्गण से अनुपात द्वारा जैसे भगणादि ग्रहानयन होता है यहां भी उसी तरह करना चाहिये अर्थात् $\frac{\text{युभोदय} \times \text{अह}}{\text{युकु}} = \frac{(\text{युकु} + \text{युरभ})\ \text{अह}}{\text{युकु}} = \text{अ} + \text{रवि}$, अहर्गण को घटाने से शेष मध्यम रवि होंगे ॥२५॥

पुनश्चन्द्रार्कयोरानयनमाह

अधिमास हतो द्युगण. कुदिनहृत· पर्ययादि तद्युक्त ।
विश्वघ्नोऽर्कश्चन्द्रोहीनस्त्रयोदशहृदर्कः ॥ २६ ॥

वि भा —द्युगण (अहर्गण) अधिमासहत (युगाधिमासगुणित) कुदिन-हृत (युगकुदिनभक्त) पर्ययादि (भगणादिफलं यत्) तद्युक्त (तेन भगणादिफलेन सहित) विश्वघ्नोऽर्क (त्रयोदशगुणितरवि) तदा चन्द्रो भवेत्। चन्द्रस्तेन फलेन हीन (आनीतेन फलेन रहितश्चन्द्र) त्रयोदशहृत् (त्रयोदशभक्त) तदाऽर्क (रवि) भवेदिति ॥२६॥

अत्रोपपत्ति ।

इन्दुमण्डलगुणेन्दु सगुणप्रध्नचक्रविवरेऽधिमासका इत्युक्तेर्युगाधिमास-स्वरूपम्=युच भगण—१३ युरविभगण=युगाधिमास एतत्स्वरूपदर्शनेनैव स्पष्ट-मवसीयते यदहर्गणादनुपातेन यद्युगाधिमास सम्बन्धी भगणादिफल तत्र यदि त्रयो-दशगुणित रवि भगणादिफल योज्यते तदा भगणादिकश्चन्द्रो भवेत्। यदि तदेवाधि-मास सम्बन्धि भगणादि फल चन्द्रे विशोध्यते त्रयोदशभिर्हृते च रविर्भवे-देवेति ॥ २६ ॥

हि भा —अहर्गण को युगाधिमास से गुणकर युगकुदिन से भाग देने से जो भग-णादि फल हो उसको तेरह गुणित रवि म जोड़ने से चन्द्र होते हैं। और उसी फल को चन्द्र में घटा कर तेरह से भाग देने से रवि होते हैं ॥२६॥

उपपत्ति

इन्दुमण्डल गुणेन्दुम गुणब्रध्न चक्र विवरेऽधिमासका, इस उक्ति से युगचभगण – १३ युगरविभगण=युगाधिमास, इसको देखने से स्पष्ट है कि अहर्गण से अनुपात द्वारा जो युगाधिमास सम्बन्धी भगणादि फल हो उसमें यदि तेरह गुणित रवि भगणादि फल को जोड़ देंगे तो भगणादिक चन्द्र होते हैं। यदि उसी अधिमास सम्बन्धी फल को चन्द्र में घटा कर तेरह से भाग देते हैं तो रवि होते हैं ॥ इति ॥ २६ ॥

अथचन्द्रपातेन रविचन्द्रयोरानयनमाह ।

शशिपातैर्वा द्यु गणे निहते कुदिनोद्धृते च भगणादि ।
तत्सहितो रविरिन्दुर्विधुविहीनोऽथ घर्मांशुः ॥२७॥

वि भा—द्युगणे (अहर्गणे) शशिपातैं (युगपठितचन्द्रपातभगणैं) निहते (गुणिते) कुदिनोद्धृते (युगकुदिनभक्ते) भगणादिफल भवेत् । तत्सहितो रवि (तत्फलयुक्तोरवि) इन्दु (चन्द्र) भवेत् विधु (चन्द्र) विहीन (तेन फलेन रहित) तदा घर्मांशु (सूर्य) भवेदिति ॥२७॥

अत्रोपपत्ति

युगचान्द्रपातभगणैरनुपातेना "युगकुदिनैर्युगचन्द्रपातभगणा लभ्यते तदाहर्गणेन किमिति" नेन यत्फलमागच्छति तद्यदि रवौ योज्यते तदा चन्द्रो भवेत् । चन्द्रे च तत्फल विशोध्यते तदा सूर्यो भवेदेवेति ॥ सूर्यस्य पाताभावाच्चन्द्रपातयुगभगणेनानुपातागतफल क्रमशो रविचन्द्रे धनर्ण तदा तौ भवत इति ॥२७॥

हि भा—अहर्गण को युगपठित चन्द्रपात भगण से गुणकर युगकुदिन से भाग देने मे जो भगणादिफल होता है उसको रवि मे जोडने से चन्द्र होते है यदि चन्द्र मे उस फल को घटा देते हैं तो रवि होते हैं ॥ २७ ॥

उपपत्ति

युगचन्द्रपातभगण से अनुपात "युगकुदिन मे युगचन्द्रपात भगण पाते है तो अहर्गण म क्या" से जो भगणादिफल आता है उसको यदि रवि म जोडते हैं तो चन्द्र होते हैं । यदि उस फल को चन्द्र मे घटा देंगे तो रवि हो जायेंगे । रवि को अपना पात नहीं हैं, चन्द्रपात युगभगण से जो अनुपात द्वारा भगणादिफल होता है उसको रवि मे जोडने से चन्द्र होते हैं । और चन्द्र म घटाने से रवि होते हैं । स्पष्ट ही बात है ॥२७॥ *

युगव्यतीपातहतादहर्गणाद्यु गक्षमावासरलब्धमब्धितम् ।
क्षपाकरोन भगणादि भास्करो विवस्वतोन रजनीकरो वा ॥२८॥

वि भा—अहर्गणात्—युगव्यतीपातहतात् (युगपठितव्यतीपातभगण गुणात्) युगक्षमावासरलब्ध (युगकुदिनभक्त यत्फल) तदब्धित (द्वादशभक्त) यत्फल क्षपाकरोन (चन्द्ररहित) तदा भगणादिभास्कर (भगणादिसूर्या भवेत्) विवस्तोन (तत्रैव फले सूर्यहीन) तदा रजनीकर (चन्द्र) भवेदिति ॥२८॥

अत्रोपपत्ति पूर्ववदेव बोध्येति

हि. भा—अहर्गण को युगपठित व्यतीपात भगण मे गुणकर युगकुदिन म भाग दन से जो फल होता है उसको बारह से भाग दीजिए, इसम चन्द्रमा मे घटाने म सूर्य होते हैं और उसी फल मे सूर्य को घटाते है तो चन्द्र होते हैं ॥

उपपत्ति पूर्ववत् समझनी चाहिये ॥२८॥

प्रकारान्तरेण रविचन्द्रयोरानयनम् ।

शशाङ्कमासाप्तफलोनसंयुतं पृथक् तमर्धीकृतमर्कशीतगू ।

वि भा —शशाङ्कमासाप्तफलोनसयुत (अहर्गणसम्वन्धि यच्चान्द्रमासफल तद्रहित युत) पृथक् (स्थानद्वये स्थापित) त (रविचन्द्रयोग) अर्धीकृत (द्वाभ्या भक्त) तदाऽर्कशीतगू (सूर्याचन्द्रमसौ) भवेतामिति ॥ सिद्धान्तशेखरे श्रीपतिनैत-द्विषयेऽतिस्पष्ट सुन्दर प्रतिपादितमस्तीति ॥

अस्योपपत्ति

यदि युगकुदिनैर्युगचान्द्रमासा लभ्यन्ते तदाऽहर्गणेन किमित्यनुपातेनाहर्गण सम्बन्धि चान्द्रमासफलम् $= \frac{\text{युचामा} \times \text{अह}}{\text{युकु}} = \frac{(\text{युचभ}-\text{युरभ})\ \text{अह}}{\text{युकु}} =$

$\frac{\text{युचभ} \times \text{अह}}{\text{युकु}} - \frac{\text{युरभ} \times \text{अह}}{\text{युकु}} =$ भगणादिच—भगणादिरवि=अन्तरम्

रविचन्द्रयोग =योग

अत $\frac{\text{यो}-\text{अन्तर}}{२} =$ र । $\frac{\text{योग}+\text{अन्तर}}{२} =$ चन्द्र ।

अत उपपन्नम् ।

हि भा —चान्द्रमास सम्बन्धी फल को दो जगहों मे रखे हुए रविचन्द्र योग मे घटाना और जोड़ना, आधा करना तब क्रमश रवि और चन्द्र होते हैं ।

सिद्धान्तशेखर म श्रीपति ने इस विषय म बहुत अच्छा प्रतिपादन किया है ।

उपपत्ति

यदि युगकुदिन मे युगचान्द्र मास पाते हैं तो अहर्गण म क्या इस अनुपात मे चान्द्र-मास सम्बन्धी फल आया, $\frac{\text{युचामा} \times \text{अहर्गण}}{\text{युकु}} = \frac{(\text{युचभ} - \text{युरभ})\ \text{अहर्गण}}{\text{युकु}}$

$= \frac{\text{युचभ} \times \text{अहर्गण}}{\text{युकु}} - \frac{\text{युरभ} \times \text{अहर्गण}}{\text{युकु}} =$ भगणादिच—भगणादिरवि = अन्तर

रवि और चन्द्र के योग = यो

तब $\frac{\text{यो}-\text{अन्तर}}{२} =$ रवि । $\frac{\text{यो}+\text{अन्तर}}{२} =$ चन्द्र, अत उपपन्न हुआ ।

अधिमासाप्तफलेन वर्जितश्चतुर्दशाप्तः सविताऽथवा भवेत् ॥२६॥

वि भा —अधिमासाप्तफलेन (अहर्गणसम्बन्ध्यधिमासफलेन) वर्जित (हीनस्तयोश्चन्द्ररव्योर्योग) चतुर्दशाप्त (चतुर्दशभक्त) अथवा सविता (सूर्य) भवेदिति ॥२६॥

अस्योपपत्ति ।

यदि युगकुदिनैर्युगाधिमासा लभ्यन्ते तदाऽहर्गणेन किमित्यनुपातेनाहर्गण-सम्बन्ध्यधिमासफलम् $= \frac{\text{युगाधिमा} \times \text{अह}}{\text{युकु}} =$

$\frac{(\text{युचभ}-१३\ \text{युरभ})\ \text{अह}}{\text{युकु}} = \frac{\text{युचभ} \times \text{अह}}{\text{युकु}} - \frac{१३\ \text{युरभ} \times \text{अह}}{\text{युकु}} =$ भगणादिच — १३ भगणादिर = अन्तर कल्पितम् = च — १३ र

रविचन्द्रयोर्योग = यो = च + र

. यो — अन्तर = च + र — च + १३ र = १४ र

$\therefore \frac{\text{यो}-\text{अन्तर}}{१४} =$ रवि । अत सिद्धम् ॥

हि भा — अधिमाससम्बन्धी फल को रविचन्द्र के योग म घटाकर चौदह से भाग देने से रवि होते हैं ।

उपपत्ति

यदि युगकुदिन मे युगाधिमास पाते हैं तो अहर्गण मे क्या इस अनुपात से अहर्गण सम्बन्धी अधिमास फल आया । $\frac{\text{युअमा} \times \text{अहर्ग}}{\text{युकु}} = \frac{(\text{युचभ}-१३\ \text{युरभ})\ \text{अहर्गण}}{\text{युकु}}$

$= \frac{\text{युचभ} \times \text{अहर्गण}}{\text{युकु}} - \frac{१३\ \text{युरभ} \times \text{अहर्गण}}{\text{युकु}} =$ भगणादिच — १३ भगणादिर.

= च — १३ र = अन्तर मान लिया ।

रवि और चन्द्र के योग = च + र = यो

अत योग — अन्तर = १४ र $\frac{\text{यो}-\text{अन्तर}}{१४} =$ र

$= \frac{\text{यो}-\text{अधिमासफल}}{१४} =$ र

अत आचार्योक्त सिद्ध हुआ ॥२९॥

प्रकारान्तरेण रविचन्द्रयोरानयनम् ।

युगावमघ्नो द्युगणः ककहोद्धृतो वासरादिसहिताद्दिनौघत ।
प्रोक्तवद्रविरनुष्णदीधितिर्वा भवेद्विकलमंशकादिक ॥३०॥

वि. भा — द्युगण. (अहर्गण) युगावमघ्न (युगक्षयदिनगुणित) ककहोद्धृत. (युगकुदिनभक्त) वासरादि (दिनादि) फल दिनौघत (अहर्गणात्)

सहितात् (युक्तात्) तत प्रोक्तवत् (पूर्वकथितरीतिवत्) अंशकादिक (भागादिक) रवि (सूर्य) अनुष्णादीधिति (चन्द्र) वा (अथवा) भवेदिति ॥३०॥

हि भा —अहर्गण को युगावमदिन से गुण कर युगकुदिन से भाग देना दिनादि फल को अहर्गण में जोड देना उनसे पूर्वकथित रीति से अंशादिक रवि और चन्द्र होते हैं ॥३०॥

उपपत्ति

(१) यदि युगकुदिनैर्युगचान्द्रदिनानि लभ्यन्ते तदाऽहर्गणेन किमित्यनुपातेनाहर्गणसम्बन्धीनि चान्द्रदिनानि तत्स्वरूपम् =

$$\frac{\text{युचा} \times \text{अहर्गण}}{\text{युकु}} = \frac{(\text{युकु}+\text{युअवम})\ \text{अहर्गण}}{\text{युकु}} = \frac{\text{युकु} \times \text{अहर्गण}}{\text{युकु}}$$

$$+ \frac{\text{युअव}\ \ \text{अहर्गण}}{\text{युकु}} = \text{अहर्गण} + \frac{\text{युअव}\ \ \text{अहर्गण}}{\text{युकु}}$$ एतद्वशतो रविचन्द्रौ माध्याविति ।

उपपत्ति

(२) यदि युगकुदिन में युगचान्द्रदिन पाते हैं तो अहर्गण में क्या इस अनुपात से अहर्गण सम्बन्धी चान्द्रदिन आते हैं।

$$\frac{\text{युचा} \times \text{अहर्गण}}{\text{युकु}} = \frac{(\text{युकु}+\text{युअवम})\ \text{अहर्गण}}{\text{युकु}} =$$

$$\frac{\text{युकु} \times \text{अहर्गण}}{\text{युकु}} + \frac{\text{युअवम}\ \ \text{अहर्गण}}{\text{युकु}} = \text{अहर्गण} + \frac{\text{युअवम}\ \ \text{अहर्गण}}{\text{युकु}}$$

इसके वश से रवि और चन्द्र के साधन करना ॥३०॥

वियोगराशिर्युगणेन ताडित क्षहैरवाप्त भगणादि तद्युत ।
ग्रहोऽल्पभुक्तिर्हि भवेद्बृहद्गतिर्बृहद्गतिर्वा वियुतोऽल्पभुक्तिक ॥३१॥

वि भा — वियोगराशि (द्युगीयग्रहान्तर समूह) द्युगणेन (अहर्गणेन) ताडित (गुणित) क्षहैरवाप्त (युगकुदिन भक्त) फल भगणादिक यत्तद्युत (तेन सहित) अल्पभुक्तिग्रह (मन्दगतिग्रह) तदा बृहद्गति (शीघ्रगतिग्रहो भवेत्) बृहद्गतिर्ग्रह, वियुत (तेन फलेन रहित) तदाऽल्पभुक्तिको ग्रह (मन्दगतिग्रह) भवेदिति ॥३१॥

अत्रोपपत्ति ।

यदि युगकुदिनैर्युगीय शीघ्रमन्दगतिग्रहयोरन्तर लभ्यते तदाऽहर्गणेन किमित्यनुपातेन फलम् = $\frac{(\text{युगशीघ्रगतिग्र}-\text{युगमन्दगतिग्र})\ \text{अहर्गण}}{\text{युगकुदिन}}$ एतत्फल यदि मन्दगति

ग्रहे योज्यते तदा शीघ्रगतिग्रहो भवेद्यदि च शीघ्रगतिग्रहे विशोध्यते तदा मन्दगति-ग्रहो भवेदिति ॥ ३१ ॥

हि भा —दो ग्रहों के अन्तर को अहर्गण से गुणकर युगकुदिन से जो फल हो उसको मन्दगतिग्रह में जोडने से शीघ्रगतिग्रह होते है। उसफल को शीघ्रगति ग्रह घटाने से मन्दगति ग्रह होते हैं ॥३१॥

उपपत्ति

यदि युगकुदिन में युगीय शीघ्रगतिग्रह मन्दगतिग्रह का अन्तर पाते है तो अहर्गण में क्या इस अनुपात से जो फल आता है उसको मन्दगतिग्रह में जोडने से शीघ्रगतिग्रह होंगे और उस फल को यदि शीघ्रगतिग्रह में घटा देंगे तो मन्दगतिग्रह होते हैं ॥३१॥

स्वपर्ययैक्याहतवासरौघत क्षितिद्यु लब्धं भगणादिकं द्विधा ।
वियोगलब्धोनयुतं तथाधितं वियत्सदौ वा भवतोऽत्र मध्यमौ ॥३२॥

वि. भा —स्वपर्ययैक्याहतवासरौघत (निजभगणयोगगुणिताहर्गणात्) क्षितिद्यु लब्ध (युगकुदिनभक्तात्फल) भगणादिक यत्तद् द्विधा (स्थानद्वये) वियोग-लब्धोनयुत (युगभगणान्तरजनितफलेन हीन युत) अर्धित (द्विभक्त) तदा मध्यमौ वियत्सदौ (मध्यमौ ग्रहौ) भवत इति ।

अत्रोपपत्ति

शीघ्रग्रहभगण + मन्दगतिग्रहभगण = भगणयोग

शीघ्रग्रहभगण — मन्दगतिग्रहभगण = भगणान्तर

ततोऽनुपातो यदि युगकुदिनैर्भगणयोगो लभ्यते तदाऽहर्गणेन किमित्यनुपातेन फलम् =

$\frac{\text{भगणयोग} \times \text{अहर्गण}}{\text{युकु}} = \frac{(\text{शीग्रभ} + \text{मग्रभ})\ \text{अहर्गण}}{\text{युकु}} =$ भगणादिशीग्र + भगणादिमग्र = भगणयोगजग्रह

एवमेव $\frac{\text{भगणान्तर} \times \text{अहर्गण}}{\text{युकु}} = \frac{(\text{शीग्रभ} - \text{मग्रभ})\ \text{अहर्गण}}{\text{युकु}} =$ भगणादिशीग्र — भगणादि मग्र = भगणान्तरजग्रह

अनयोर्योग

भगणादिशीग्र + भगणादिमग्र + भगणादिशीग्र — भगणादिमग्र = २ भगणादिशीग्र

= भगणयोगजग्र + भगणान्तर ज ग्रह = २ भगणादिशीग्र

अत. $\frac{\text{भगणयोगजग्र} + \text{भगणान्तर जग्रह}}{२} =$ भगणादिशीग्र

तथा तयोरेवान्तरेण भगणादिशीग्र + भगणादिमग्र — (भगणादिशीग्र — भगणादिमग्र)

= २ भगणादिमग्र = भगणयोगजग्र — भगणान्तरजग

$$\frac{\text{भगणयोगजग्र}-\text{भगणान्तरजग्र}}{२} = \text{भगणादिमग्र}।$$

यर्योर्ग्रहयोर्भगणयोगेन भगणान्तरेण च तदानयन कृतम्।
तयोरेव शीघ्रगतिग्रहोऽन्यो मन्दगतिग्रह इति, अत उपपन्नम् ॥ ३२ ॥

हि भा —दो ग्रहो के भगण योग से ग्रहगण को गुणाकर युगकुदिन से भाग देना जो भाग फल हो उसको दो जगहो मे भगणान्तर पर म जो फल हो इस फल करके एक जगह हीन करना, दूसरी जगह जोड देना, दोनो को दो मे भाग देने म दोनो मध्यम ग्रह (शीघ्रगति ग्रह, मन्दगति ग्रह) होते हैं ॥ ३२ ॥

उपपत्ति

दो ग्रहो के भगण योग भगणान्तर से उनके साधन करते है। दोनो ग्रहो मे एक शीघ्रगति ग्रह है दूसरे मन्दगति ग्रह हैं।

शीघ्रभगण + मन्दग्रभगण = भगणयोग

शीघ्रभगण — मन्दग्रभ = भगणान्तर

तब अनुपात स $\frac{(\text{शीग्रभ} + \text{मग्रभ})\ \text{ग्रहगण}}{\text{युकु}} = \text{भगणादिशीग्र} + \text{भगणादिमग्र}$

$= \text{भगणयोगजग्र}$

इसी तरह $\frac{(\text{शीग्रभ} - \text{मग्रभ})\ \text{ग्रहगण}}{\text{युकु}} = \text{भगणादिशीग्र} - \text{भगणादिमग्र} = \text{भगणान्तरजग्र}$

दोना के योग करने से भगणयोजग्रह + भगणान्तरजग्र = २ भगणादि शीग्र

उन्ही दानो के अन्तर करने से भगणयोग्रह — भगणान्तरजग्र = २ भगणादिमग्र

अत $\frac{\text{भगणयोगजग्र} + \text{भगणान्तरजग्र}}{२} = \text{२ भगणादिशग्र}$

$\frac{\text{भगणयोगजग्र} - \text{भगणान्तरजग्र}}{२} = \text{भगणादिमग्र}$

इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥३२॥

तदूनभुक्तिना हीन खेचरेण बृहद्गति.।
शीघ्रभुक्तिग्रहेणोन मृदुभुक्तिग्रहो भवेत् ॥३३॥

वि भा —ऊनभुक्तिना खेचरेण (मन्दगतिग्रहेण) तत्फल (भगणयोगजफल) हीन (रहित) तदा बृहद्गति (शीघ्रगति) ग्रहो भवेत्, तदेव फल शीघ्रभुक्तिग्रहेण (शीघ्रगतिग्रहेण) ऊन (रहित) तदा मृदुभुक्तिग्रह (मन्दगतिग्रह) भवेदिति ॥ ३३ ॥

अस्योपपत्तिस्तु ३२ श्लोकोपपत्त्यैव सिद्धा यतस्तदुपपत्तौ
भगणयोगजग्रह = भगणादिशीग्र + भगणादिमग्र

भगणयोगजग्र—भगणादिमग्र = भगणादिशीग्र
तथा भगणयोगजग्र—भगणादिशीग्र = भगणादिमग्र

अत सिद्धम् ॥ ३३ ॥

हि भा —भगणयोगजफल म मन्दगतिग्रह को घटा देने से शीघ्रगतिग्रह होते है तथा उसी म शीघ्रगति ग्रह को घटाने मे मन्दगतिग्रह होते हैं ॥३३॥

इसकी उपपत्ति ता ३२ श्लोक की उपपत्ति से ही सिद्ध है। क्योकि उसकी उपपत्ति स भगणयोग्र = भगणादिशीग्र + भमग्र

भगणयोग्र—भमग्र = भगणादिशीग्र

तथा भगणयोग्र—भगणादिशीग्र = भमग्र

अत सिद्ध हो गया ॥३३॥

प्रकारान्तरेण ग्रहानयनमाह ।

ग्रहोदयघ्नो द्युगण स्वकुहोद्धृतो गतोदयो भाद्यवशेषकाद् गृहे ।
क्षयस्वमर्काद् बृहदल्पभुक्तिग्रहे ग्रहोऽप्येवमिनोऽथवा भवेत् ॥ ३४ ॥

वि भा —द्युगण (अहर्गण) ग्रहोदयघ्न (युगग्रहसावनगुणित) स्वकुहोद्धृत (युगकुदिनभक्त) तदा गतोदय (गतस्वसावनतुल्य भगणादिग्रह) अवशेषकात् (शिष्टात्) यद्भादिफल (राश्यादिफल) तत् अर्कात् (रवित) बृहदल्पभुक्तिग्रहे सति (अधिकगतिग्रहेऽल्पगतिग्रहे च सति) गृहे (रविराश्यादिके) क्षयस्व (ऋण धन) कार्य तदा ग्रहो भवेत्। अथ वा इन (सूर्य) भवेदिति ॥ ३४ ॥

अत्रोपपत्ति

$\frac{\text{युग्रभ} \times \text{अहर्गण}}{\text{युकु}} =$ भगणादिग्रह ।

पर युभभ्रम—युग्रभ = युग्रकुदिन
युभभ्रम—युग्रकुदि = युग्रभ

उत्थापनम

$\frac{(\text{युभभ्रम—युग्रकुदि}) \text{ अहर्गण}}{\text{युकु}} = \frac{(\text{युकुदि} + \text{युरभ—युग्रकुदि}) \text{ अहर्गण}}{\text{युकु}} =$

$\text{अहर्गण} + \frac{\text{युरभ अहर्गण}}{\text{युकु}} - \frac{\text{युग्रकुदि अहर्गण}}{\text{युकु}} =$

= अहर्गण + गरभगण + र राश्यादि— (गतस्वसावनतुल्यभ + राश्यादि)
= अहर्गण + गरभ + र राश्यादि—गतस्वसावन तुल्यभगण—राश्यादि

भगणाना प्रयोजनाभावाद् गतभगणास्त्यक्तास्तदा
रविराश्यादि—राश्यादि = ग्रहराश्यादि

$\frac{\text{युग्रहकु} \times \text{ग्रहगंण}}{\text{युकु}}$ = गतस्वसावनतुभ + $\frac{\text{शे}}{\text{युकु}}$, अत्र $\frac{\text{शे}}{\text{युकु}}$—तत्सम्बन्धि राश्यादिः

= $\frac{१२ \times \text{शे}}{\text{युकु}}$ = राश्यादि = $\frac{\text{शे}}{\frac{\text{युकु}}{१२}}$ = $\frac{\text{शे}}{\text{हर}}$

एतावताऽऽचार्योक्तमुपपन्नम् । यदि च युगकुदिनादिस्थाने कल्पीय कुदिनादि प्रमाण गृह्येत तदाऽनेनैव "अर्कसावनदिवागणो हत. स्वस्वसावनदिनैस्तु कल्पजै-" रित्यादि भास्करोक्तमप्युपपद्यते इति ॥ ३४ ॥

हि भा—अहर्गण को युग ग्रह सावनदिन से गुणकर युगकुदिन से भाग देने से गत स्वसावनतुल्यभगण आदि ग्रह होते हैं शेष में जो राश्यादि फल होता है उसको रवि से अधिक गतिग्रह और अल्पगतिग्रह रहने पर रवि राश्यादि में धन ऋण करने से राश्यादिग्रह होते है, अथवा इसी तरह रवि होते हैं ॥ ३४ ॥

उपपत्ति

$\frac{\text{युग्रभ} \times \text{अहर्गण}}{\text{युकु}}$ = भगणादिग्रह । लेकिन युभग्र—युग्रकुदि = युग्रभ

उत्थापन देने से

$\frac{(\text{युभग्रम}-\text{युग्रकुदि})\ \text{अहर्गण}}{\text{युकु}} = \frac{(\text{युकुदि}+\text{युरभ}-\text{युग्रकुदि})\ \text{अहर्गण}}{\text{युकु}}$ =

अहर्गण + $\frac{\text{युरभ अहर्गण}}{\text{युकु}} - \frac{\text{युग्रकुदि अहर्गण}}{\text{युकु}}$ =

= अहर्गण + गतरभगण + र राश्यादि—(ग स्वसावन तुल्य भ + राश्यादि)

= अहर्गण + गत र भगण + र राश्यादि— ग स्वसावन तुल्य भ—राश्यादि

यहा भगणो के प्रयोजनाभाव से छोड देते हैं,

तब रवि राश्यादि—राश्यादि = ग्रहराश्यादि

$\frac{\text{युग्रकुदि अहर्गण}}{\text{युकु}}$ = गत स्वसावन तुल्यभगण + $\frac{\text{शे}}{\text{युकु}}$ यहा $\frac{\text{शे}}{\text{युकु}}$—एतत्सम्बन्धी राश्यादिकफल

= $\frac{१२\ \text{शे}}{\text{युकु}} = \frac{\text{शे}}{\frac{\text{युकु}}{१२}}$ = राश्यादि = $\frac{\text{शे}}{\text{हर}}$

आचार्योक्त पद्य उपपन्न हुआ, यदि युगकुदिनादि के स्थान पर कल्प कुदिनादि प्रमाण ग्रहण किया जाय तब "अर्कसावनदिवागणो हत स्वस्वसावनदिनैस्तु कल्पजै" इत्यादि भास्करोक्त भी उपपन्न होता है ॥ ३४ ॥

अर्कवत्खचरभोदयैर्गताः स्वोदयास्तदुदयावधिर्ग्रहः ।
प्रोक्तवद्रविविधूत्वनेकधा स्वावमाप्तिविकलोक्तकर्मणा ॥३५॥

वि. भा —अर्कवत् (यथा युगरविसावनदिनैर्भोदयैश्च रव्यानयन तथैव) खचरभोदयै (युगग्रहसावनदिनैर्भोदयैश्च) गता स्वोदया (गतभगणादिका ग्रहा भवन्ति) ग्रहस्तदुदयावधि (यस्य भगणैर्यो ग्रह आनीयते स तस्यैवोदयकालिको भवति) प्रोक्तवत् स्वावमाप्तिविकलोक्तकर्मणा (अवमफल-शेषकथित पद्धत्या) अनेकधा रविविधू (सूर्याचन्द्रमसौ) भवत इति ॥३५॥

अत्रोपपत्ति ।

यदि युगकुदिनै युगस्वोदया लभ्यन्ते तदाऽहर्गणेन किमित्यनुपातेन गत-स्वोदया. समागता । ततो यदि युगकुदिनैर्युगनक्षत्रभवा ग्रहा लभ्यन्ते तदाहर्गणेन किमिति समागतागतनक्षत्रभगणभवग्रहा , ततो यदि युग नक्षत्र भगणभवग्रहे युगस्वोदयशोधनेन युगग्रहभगणालभ्यन्ते तदेष्टनक्षत्रभगणभवग्रहे इष्टग्रहस्वोदय शोधनेन क इतीष्टग्रहो लभ्यते इति ॥३५॥

अथवा

$$\frac{\text{युगग्रहकुदि} \times \text{ग्रह}}{\text{युकु}} = \frac{(\text{युभोदय}-\text{युग्रभ})\text{ग्रहर्गण}}{\text{युकु}} =$$

$$\frac{\text{युभोदय ग्रहर्गण}}{\text{युकु}} - \frac{\text{युग्रभ. ग्रहर्गण}}{\text{युकु}} = \text{गत नक्षत्र भगणभवग्रह}-$$

$$\text{भगणादिग्र} = \text{इष्टग्रह} \quad ॥३५॥$$

हि. भा —रवि साधन के सदृश (जैसे युग रवि सावन दिन और युग रविभोदय से रवि का साधन होता है उसी प्रकार) युग ग्रह सावन दिन और भोदय पर से ग्रह का साधन करना वह ग्रह अपने सावनान्त कालिक होते हैं अपने अवमफल और शेष से कथित रीति के द्वारा अनेक प्रकार के रवि और चन्द्र होते हैं ॥३५॥

उपपत्ति

यदि युग कुदिन मे युग स्वोदय पाते है तो अहर्गण में क्या इस अनुपात से गत स्वोदय आते हैं । फिर अनुपात करते हैं यदि युग कुदिन मे युग नक्षत्र भगण जनित ग्रह पाते हैं तो अहर्गण म क्या इस अनुपात से गत नक्षत्र भगणोत्पन्न ग्रह आते हैं। तब युग नक्षत्र भगण जनित ग्रह म युग स्वोदय घटाने मे युग ग्रह भगण पाते हैं तो इष्टनक्षत्रभगण जनितग्रह में इष्ट ग्रह स्वोदय घटाने मे क्या आ जायगा इष्ट ग्रह प्रमाण इति ।

अथवा

$$\frac{\text{युग ग्रकुदि} \times \text{अहर्गण}}{\text{युकुदि}} = \frac{(\text{युग भोदय}-\text{युग ग्रह भगण})\ \text{अहर्गण}}{\text{युकु}}$$

$$= \frac{\text{युभोदय} \times \text{अहर्गण}}{\text{युकु}} - \frac{\text{युग्रह भगण अहर्गण}}{\text{युकु}} =$$

गत नक्षत्र भगण जनितग्र—भगणादिग्र=इष्टग्रह ॥३५॥

इदानीमनुलोमगतीन् ग्रहान् विलोमान् विलोमाश्चानुलोमान् कर्तुमुपायद्वयमाह।

द्युगणोन भूदिनघ्न पठित ग्रहपर्ययो महीद्युहृत ।
खगणादि विलोमगतिर्ग्रहोऽनुलोमश्च्युतश्चक्रात् ॥३६॥

वि भा—पठित ग्रहपर्यय (युगपठित ग्रहभगण) द्युगणोनभूदिनघ्न (ग्रहर्गण रहित युगकुदिन गुणित) महीद्युहृत (युगकुदिन भक्त) तदा भगणादि विलोमगति (भगणादिको विपरीतगतिको) ग्रहो भवेत्-चक्रात् (भगणात्) च्युत (शोधित) तदाऽनुलोमग (क्रमगतिको ग्रह) भवेदिति ॥३६॥

अत्रोपपत्ति ।

यदि युगकुदिनैर्युग ग्रहभगणा लभ्यन्ते तदाऽहर्गणोन युगकुदिनै किमित्यनुपातेन भगणादिको विलोमगतिको ग्रह समागतस्तत्स्वरूपम् $= \frac{\text{युग्रभ} \times (\text{युकु} - \text{अहर्गण})}{\text{युकु}}$

यत युकुदिन—अहर्गण इत्यहर्गणान्ताद्युगान्त यावद्दिनानि सन्ति, ततोऽनुपातेन पूर्वोक्तेन ये भगणादिका ग्रहा समागच्छेयुस्ते विलोमगतिका एव, एते एव विलोमगतिकग्रहा भगणाच्छुद्धास्तदाऽनुलोमगतिका ग्रहा भवन्तीति समुचितमेवेति ॥३६॥

यदि अहर्गण रहित युगकुदिन का युग ग्रह भगण स गुणा कर युग कुदिन स भाग देते हैं तो भगणादि विलोमगतिक ग्रह होते हैं भगण में विलोमगतिक ग्रह घटाने से अनुलोम (क्रमिक) गतिक ग्रह होते है ॥३६॥

उपपत्ति

हि भा—यदि युग कुदिन म युग ग्रह भगण पाते है तो अहर्गण रहित युग कुदिन में क्या इस अनुपात से भगणादि विलोमगतिक ग्रह आते हे उसका स्वरूप ऐसा है $\frac{\text{युग्रभ} \times (\text{युकु} - \text{अहगण})}{\text{युकु}}$ यत युकु—अहगण=ने वह अहगणान्त स युगान्त तक दिन समूह है इससे पूर्वोक्तानुपात द्वारा जो भगणादिक ग्रह आते हैं वे विलोमगतिक ही होंगे। इन्ही (विलोमगतिक ग्रह) को भगण मे घटाने स क्रमिक गतिग्रह (अनुलोम गतिक ग्रह) हो जायेंगे उचित ही हैं यह आचाय का कथन युक्ति युक्त है ॥ ३६ ॥

भूदिनै खगभगणोनैर्हते द्युराशौ युगक्ष्माद्युहृते।
भगणादिर्व्यस्तगतिर्भगणाच्छुद्धो ग्रहोऽनुलोमगति ॥ ३७ ॥

वि भा—द्युराशौ (अहगणे) खगभगणोनैर्भूदिनै (युगग्रहभगणरहितैर्युगकुदिनै) हते (गुणिते) युगक्ष्माद्युहृते (युगकुदिनभक्ते) फल भगणादि व्यस्तगति (विलोमगति) ग्रहो भवेत्। आनीतो विलोमगतिको ग्रहो भगणाच्छुद्धस्तदा अनुलोमगति (मार्गगति) ग्रहो भवेदिति ॥ ३७ ॥

अस्योपपत्ति ।

यदि युगकुदिनैर्युग ग्रहभगणोन कुदिन प्रमाण लभ्यते तदाऽहर्गणेन किमि-त्यनुपातेन भगणादि विलोमगतिक ग्रह समागतस्तत्स्वरूपम्=

$\frac{(\text{युकुदिन युगग्रहभगण})\ \text{अहर्गण}}{\text{युकु}}$ = भगणादि विलोमगतिग्रह । युकुदि-युग्र-भगण अस्मादनुपातेन यो ग्रह समागच्छति तस्य विलोमगतित्व समुचितमेव । क्रमिकगतिग्रहार्थं स एवानीतो विलोमगतिकग्रहो भगणाच्छुद्धस्तदाऽनुलोमगति-ग्रहो भवेदिति ॥ ३७ ॥

हि भा—अहर्गण को युग ग्रहभगण रहित युगकुदिन से गुणकर युगकुदिन से भाग देने से भगणादि विलोमगतिक ग्रह आते हैं। भगण म घटाने स क्रमिकगति ग्रह होते हैं ॥ ३७ ॥

उपपत्ति

यदि युगकुदिन म युगग्रहभगण रहित युगकुदिन पाते हैं तो अहर्गण म क्या इस अनुपात से भगणादि विलोमगतिक ग्रह आते है।

$\frac{(\text{युकु}-\text{ग्रभगण})\ \text{अह}}{\text{युकु}}$ = भगणादि व्यस्तगतिग्रह । युकु युग ग्रहभगण इस पर से अनुपात द्वारा जो ग्रह आते हैं उनम व्यस्तगतित्व होना समुचित ही है। मार्गगतिग्रह के लिये उन्ही व्यस्तगतिग्रह को भगण म घटा देना चाहिये तब मार्गगतिकग्रह होते हैं ॥ ३७ ॥

भावर्तभगणाद्य ग्रहोदयैश्चान्तरे तयोर्द्युचर ।
यस्य गतोदयसिद्ध भावर्तफल स एव सद्द्युचर ॥ ३८ ॥

वि भा—भावर्तै (युगनक्षत्रभगणै) ग्रहोदयैश्च (युगग्रह सावनदिनै) भगणाद्य फल यद्भवति तयोरन्तरे द्युचर (ग्रह) भवेत्। यस्य ग्रहस्य गतोदय-सिद्ध भावर्त फल स एव सद्द्युचर (शोभनग्रह) भवेदिति ॥

अस्योपपत्ति ३५ श्लोकोपपत्तिदर्शनेन स्फुटेति ॥३८॥

हि भा—युग नक्षत्र भगणो म और युगग्रह सावन स भगणादि फल जो होता है उन दोनो के अन्तर करने से ग्रह होते हैं अर्थात् भभ्रम जनितग्रह म सावनदिन जनितग्रह को घटाने स इष्ट मध्यमग्रह होते हैं। भावर्तफल (नक्षत्रभगण जनित फल) जिस ग्रह के उदय (सावनदिन म) सिद्ध होता है वही शोभनग्रह है ॥

इसकी उपपत्ति ३५ श्लोक की उपपत्ति म स्पष्ट है ॥ ३८ ॥

उदय समासाद ग्रहयोर्मौदयहीनात्तयैतयोरुदयं ।
भगणाद्यल्पग उदयस्तद्द्वियुजोऽन्योऽल्पगोऽथवाऽन्यस्य ॥ ३९ ॥

वि भा—ग्रहयो (द्वयोर्ग्रहयो) भोदयहीनात् (युगपठित भोदयरहितात्) उदयसमासात् (युगसावनदिनयोगात्) तथैतयो (ग्रहयो) उदयै (सावनदिनै) भगणादिफल यत् तद्वियुज (तद्रहित) अल्पग उदय (मन्दगतिग्रह सावनदिन निकर) तदाऽन्य (अन्यग्रहभगण) अथवा अन्यस्य सावनदिननिकरे यदि तद्भगणादिफल विशोध्यते तदाऽल्पगतिग्रहभगण स्यात्ततो ग्रहानयन सुगममिति ॥ ३९ ॥

अत्रोपपत्ति

युमन्दगतिग्रहसावनदि + युशीघ्रगतिग्रहसा—युभोदय = मन्दगतिग्रसा—शीघ्रग्रभ यदि मन्दगतिग्रह सावने तत्फल विशोध्यते तदा शीघ्रग्रहभगण तत शीघ्रगति ग्रहानयन सुगमम् । अथवा शीघ्रगतिग्रसा— मन्दगतिग्रभ इति यदि शीघ्रगतिग्रह सावने विशोध्यते तदा मन्दगतिग्रहभगणस्ततो मन्दगतिग्रहज्ञान सुगममिति ॥३९॥

हि भा —युगपठित भोदय करके हीन दो ग्रहो मे युग सावनदिन योग से तथा उन ग्रहो के युग सावन दिनो से भगण फल को मन्दगतिग्रह के सावन दिन मे घटाने से शीघ्रगति ग्रह का भगण होता है अथवा शीघ्रगतिग्रह सावनदिनो मे भगण फल को घटाते हैं तो मन्दगतिग्रह भगण होता है उस पर से ग्रहानयन सरल है ॥ ३९ ॥

उपपत्ति

युमन्दगतिग्रहसावन + युशीघ्रगतिग्रसा —युभोदय = युमन्दगतिग्रसा— युशीघ्रग्रभगण इसको युमन्दगतिग्रसावन में घटाने से युशीघ्रग्रह भगण होता है इस पर शीघ्रगतिग्रह ज्ञान हो जायगा । एव युमगग्रसा + युशीगग्रसा—युभोदय = शीगग्रसा—मगग्रभ इसको शीघ्रसावन मे घटाने से मन्दगतिग्रहभगण होगा, इस पर से मन्दगतिग्रह ज्ञान हो जायगा ॥ ३९ ॥

इदानीं स्वसावनदिनवशेन ग्रहाणामेव दिनगत्यानमाह।

निजभगणोदययोगो भावर्त्तास्तद्वियोगोनभगणैः ।
द्युकैरितराभ्युदयैर्मन्दग्रहशीघ्रग्रहाभ्युदये ॥४०॥
चक्र कलाघ्ना भगणा द्युभिरुदयैर्यस्य भाजितास्तस्य ।
एकदिनावच्छिन्ना गतिर्ग्रहस्योदयावधिका ॥४१॥

वि भा.—निजभगणोदययोग (स्वभगणसावनदिनयोग) भावर्त्ता (भोदया) तद्वियोगोनभगणै (ग्रहभगण सावनदिनान्तररहितग्रहभगणै) इतराभ्युदयैर्द्युकै (ग्रहसावनदिनै) मन्दग्रहशीघ्रग्रहाभ्युदये (मन्दगतिग्रहशीघ्रगतिग्रह सावनदिने) चक्रकलाघ्ना भगणा (चक्रकलागुणिता ग्रहयुगभगणा) यस्य ग्रहस्योपर्युक्तैरुदयैर्द्युभि (सावनदिनै) भाजिता (भक्ता) तस्य (ग्रहस्य) उदयावधिका (औदयिका) एकदिनावच्छिन्ना (एकदैनिका) गतिर्भवेदिति । ॥४० ४१॥

अत्रोपपत्ति ।

युगग्रहभगण + युगग्रहकुदिन = युगभभ्रम ।

तथा युगग्रहभगण—युगग्रहसावन = अन्तरम् ।
अत युगग्रहभगण—अन्तर = युगग्रहसावन

ततोऽनुपातो यद्येकग्रहभगणांशैश्चक्रकला लभ्यन्ते तदा ग्रहयुगभगणांशैः किमित्यनुपातेन समागच्छन्ति ग्रहभगणकलास्तत्स्वरूपम् =

$\frac{\text{चक्रकला} \times \text{ग्रहयुगभगण}}{१}$ = चक्र कला × ग्रहयुगभगण ततोऽनुपातो यदि ग्रहयुग कुदिनैर्ग्रहयुगभगणकला लभ्यन्ते तदैकेन दिनेन किमित्यनुपाते नैकदिनजा ग्रहगति-कला भवेत् $\frac{\text{ग्रहयुगभगणकला} \times १}{\text{ग्रहयुगकुदिन}} = \frac{\text{चक्रकला} \times \text{ग्रहयुगभगण}}{\text{ग्रहयुगकुदिन}}$ = एकदिनसम्ब-न्धिनी ग्रहकला । यद्यप्येतया ग्रहगत्या किमपि कार्यं न चलेद्यतो हि ग्रहगति स्वसाव-नान्तर्गता पठिता नास्ति, रविसावनान्तर्गता पठितास्ति, तथापि स्वसावनसम्बन्धेन कथ ग्रहाणा गतिरागच्छत्येतदर्थं ग्रन्थकारेण युक्ति प्रदर्शिता ।

एतावताऽऽचार्योक्तमुपपन्नम् ॥ ४०-४१ ॥

हि भा —अपने भगण और सावनदिन के योग भभ्रम होते है याने युगग्रहभगण और ग्रहयुग सावनदिन के योग युगभभ्रम है । युगग्रहभगण और ग्रहयुगसावनदिन के अन्तर करके रहित ग्रहयुगभगण ग्रहयुगसावन दिन होते हैं, मन्दगतिग्रह और शीघ्रगतिग्रह युगसावन दिनो से उनकी एक दिन सम्बन्धिनी गति लाते हैं । चक्रकलागुणित ग्रहयुगभगण को जिस ग्रह के उपर्युक्त युगसावन दिन से भाग देते है उनको एक दिन सम्बन्धी गतिकला प्रमाण आ जाता है जो कि औदयिक होती है ॥ ४०-४१ ॥

उपपत्ति

ग्रहयुगभगण + ग्रहयुगसावनदिन = युभभ्रम ।
ग्रहयुगभगण—ग्रहयुगसावनदि = अन्तरम् ।

अत ग्रहयुगभ—अन्तर = ग्रहयुगसावनदिन, इससे एक दिन सम्बन्धी ग्रहगति साधन करते हैं ।

यदि एक भगणाश मे चक्रकला पाते हैं तो ग्रहयुगभगणाश मे क्या इस अनुपात से ग्रहयुगभगण कला प्रमाण आया । $\frac{\text{चक्रकला} \times \text{ग्रहयुगभगण}}{१}$ = चक्रकला × ग्रहयुगभगण = ग्रहयुगभगणकला । इस पर से पुन अनुपात करते हैं ।

यदि ग्रहयुगसावन दिन मे ग्रहयुगभगणकला पाते हैं तो एक दिन मे क्या इस अनुपात से एक दिन सम्बन्धी ग्रहगतिकला आई ।

$\frac{\text{ग्रहयुगभगण} \times १}{\text{ग्र युगसावनदिन}} = \frac{\text{चक्रकला} \times \text{ग्रहयुगभगण}}{\text{ग्रहयुगसावन}}$ = एकदिनग्रहगति । यद्यपि

इस प्रदगति मे कोई काम नही होगा। क्योंकि रविसावनान्तर्गत ग्रहगति पठित है। स्व ाव-नान्तर्गत नही। तथापि अपने सावन दिन से केवल ग्रहगतिज्ञान होता है इसके निए आचार्य ने यह विधि दिखलाई है ॥४०-४१॥

अथैकग्रहज्ञानेन द्वितीयग्रहज्ञानमाह।

अन्यग्रहभगण गुणा इष्टग्रह मण्डलोद्धृताः खेटा.।
हारान्यगुणाभ्यस्ताद् द्युगुणादिष्टग्रहो भवति ॥४२॥

हि भा—खेटा (इष्टग्रहा) अन्यग्रहभगणगुणा (साध्यग्रहभगण गुणिता) इष्टग्रहमण्डलोद्धृता (सिद्धग्रहभगणभक्ता) हारान्यगुणाभ्यस्तात् (स्वकीयहारादन्यगुणगुणितात्) द्युगणात् (अहर्गणात्) इष्टग्रहो भवति ॥४२॥

अस्योपपत्ति

इष्टग्रह = सिद्धग्रह । अन्यग्रह = साध्यग्रह । सिद्धग्रहभगण = सिग्रभ साध्यग्रहभगण = साग्रभ । अथग्रहानयनरीत्या ।

$$\frac{\text{युगसिग्रभ} \times \text{अहर्गण}}{\text{युगकु}} = \text{सिद्धग्र। तथा } \frac{\text{युगसाग्रभ} \times \text{ग्रह}}{\text{युकु}} = \text{साध्यग्र}$$

$$\text{तदा } \frac{\text{सिद्धग्र}}{\text{साध्यग्र}} = \frac{\text{युगसिग्रभ}}{\text{युगसाग्रभ}} \text{ तत}$$

$$\text{सिग्र} \times \text{युसाग्रभ} = \text{साग्र} \times \text{युसिग्रभ} \qquad \frac{\text{सिग्र} \times \text{युसाग्रभ}}{\text{युसिग्रभ}} = \text{साग्र}$$

$$= \frac{\text{इष्टग्रह} \times \text{युअन्यग्रभ}}{\text{युइग्रभ}} = \text{अग्रह, एतेनाचार्योक्तमुपपन्नम् ।}$$

भास्कराचार्येणापि "साध्यस्य चक्रं गुणित प्रसिद्धो भक्तो निजैः स्यादथवा प्रसाध्य" इत्यादिना तदेव कथ्यते यदेनेन ग्रन्थकारेण "अन्यग्रह-भगणगुणा" इत्यादिना कथ्यते। सिद्धान्तशेखरे श्रीपतिनापि "विज्ञातकल्पभगणै-र्विहृतेषु साध्यचक्रेषु यद्भगणपूर्वकमित्यादिना" तदेवकथ्यते न कश्चिद्विशेष इति ॥४२॥

हि भा—इष्ट ग्रह को अन्यग्रह युगभगण से गुणकर युगइष्टग्रह भगण से भाग देने से अन्यग्रह होते हैं। अपना हार दूसरे के गुणक से गुणन से अहर्गण से इस तरह ग्रह होते हैं ॥४२॥

उपपत्ति

यहा इष्टग्रह = विदितग्रह = सिद्धग्रह। अन्यग्रह = अविदितग्रह = साध्यग्रह

$$\text{तब ग्रहानयनरीति से } \frac{\text{युसिग्रभ} \times \text{अहर्गण}}{\text{युकु}} = \text{सिग्र,}$$

तथा $\frac{\text{युगसाग्रभ} \times \text{ग्रहर्गण}}{\text{युकु}}$ = साग्रह

अत $\frac{\text{सिग्र}}{\text{साग्र}} = \frac{\text{युसिग्रभ}}{\text{युसाग्रभ}}$ छेदगम से सिग्र × युसाग्रभ = साग्र × युसिग्रभ

अत $\frac{\text{सिग्र} \times \text{युसाग्रभ}}{\text{युसिग्रभ}}$ = साग्र = $\frac{\text{इष्टग्र} \times \text{युग्रन्यग्रभ}}{\text{युइग्रभ}}$ = अग्रह

इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ।

सिद्धान्तशिरोमणि में भास्कराचार्य भी यही विषय कहते हैं, यथा

"साध्यस्य चक्रैर्गुणित प्रसिद्धो भक्तो निजै स्यादथवा प्रसाध्य।" इत्यादि, सिद्धान्तशेखर में श्रीपति भी यही विषय कहते हैं। जैसे—

"विज्ञातकल्पभगणैर्विहृतेषु साध्यचक्रेषु" इत्यादि ॥४२॥

इदानीमिष्टगुणगुणितग्रहयोर्ग्रहाणां वा योगोऽन्तरं वेष्टहरभक्तग्रहयोर्ग्रहाणां वा योगोऽन्तरं ज्ञात्वाऽभीष्टग्रहानयनार्थमाह ।

द्वयोर्बहूनामथवा यथेच्छया हतोद्धृतानां युतिरन्तरं तथा।
सपर्ययाणां हृतमिष्टपर्ययैर्ग्रहस्तथा भूत मसंघ भाजितम् ॥ ४३ ॥

वि. भा—द्वयोर्ग्रहयोर्भगणसहितयोरर्थाद्भगणादिग्रहयोर्यथेच्छया (स्वेच्छया) इष्टगुणगुणितयोर्युतिरुद्दिष्टा तथा तयोरेवान्तरमुद्दिष्टम् तथा द्वयोरिष्टहारकोद्धृतयोर्युतिरुद्दिष्टाऽन्तरं वोद्दिष्टम्। अथवा बहूनां ग्रहाणामिष्टगुणगुणितानां युतिरुद्दिष्टाऽन्तरं वोद्दिष्टम् तथा बहूनामिष्टहारकोद्धृतानां युतिरुद्दिष्टाऽन्तरं वोद्दिष्टम्। इष्टपर्ययैः (इष्टग्रहयुगभगणैः) पूर्वोक्तोद्दिष्टसमूहं हृतं (गुणितं) तथाभूतभसङ्घभाजितम् (इष्टगुणगुणितयोरिष्टहारभक्तयोर्वा ग्रहद्वयभगणयोर्योगेनान्तरेण वा तथेष्टगुणगुणितानामिष्टहरभक्तानां वा (बहूनां ग्रहाणां) भगणानां योगेनान्तरेण वा भक्तम् तदा ग्रह (इष्टग्रह) भवेदिति।

अत्रैतदुक्तं भवति द्वयोर्ग्रहयोर्भगणादिमानं यथा प्राप्तमेवादाय—एकरूपेष्टगुणकाराभ्यां संगुण्य संयुज्य स्थापयेत्। तत्र भगणादिविलिप्तान्ता पञ्चगुणकारा भवन्ति तैर्गुणकैरिष्टग्रहयुगभगणं पृथक् पृथक् संगुण्य स्वहरैर्भगणान्तमानीयेत्। ततो याभ्यां गुणकाराभ्यां गुणितौ ग्रहौ योजितौ ताभ्यामेव (गुणकाराभ्यां) गुणितौ तयोरेव भगणौ संयुज्य तेन योगरूपेण हारेण भजेत्तदेष्टमध्यमग्रहो भवेत्। तथेष्टगुणगुणितयोर्ग्रहयोरन्तरेणेष्टग्रहयुगभगणं पृथक् पृथक् भक्त्वोपर्यारोप्य ययोर्मध्यमग्रहाविष्टगुणकगुणितौ विश्लेषितौ तयोरेव तद्गुणगुणितयोर्भगणयोरन्तरेण भजेत्तदेष्टग्रहो भवेत्। एवं बहूनामपि ज्ञेयम् ॥४३॥

अत्रोपपत्ति.

यदीष्टगुणगुणितयोर्ग्रहभगणयोर्योगेनान्तरेण वेष्टग्रह युगभगणा लभ्यन्ते

तदा तद्गुण गुणितयोर्भगणादिविलिप्तान्तयोर्योगेनान्तरेण वा किमित्यनुपातेनेष्टग्रह समागच्छति, एव बहूना योगेऽन्तरेऽपि त्रैराशिकेनेष्टग्रहो भवेत्। तथेष्टहारभक्तयोर्भगणयोर्योगेनान्तरेणवेष्ट ग्रहयुगभगणा लभ्यन्ते तदेष्टहारभक्तयोभगणादिग्रहयोर्योगेनान्तरेण वा किमित्यनुपातेनेष्टग्रहो भवेत् । एव बहूनामपि ज्ञेयमिति ।। ४३ ।।

हि भा—इष्टगुण गुणित दो भगणादि ग्रहो का योग या अन्तर उद्दिष्ट हो तथा इष्टहर से भक्त दो भगणादि ग्रहो का योग या अन्तर उद्दिष्ट हो अथवा इष्टगुण गुणित बहुत भगणादिग्रहो का योग या अन्तर उद्दिष्ट हो तथा इष्टहर से विभक्त बहुत ग्रहो का योग या अन्तर उद्दिष्ट हो तो उन सब को इष्टग्रह (साध्यग्रह) के युगभगण से गुण देना और इष्ट गुणगुणित ग्रहद्वय के भगण योग वा अन्तर से भाग देना तथा इष्टहर भक्त ग्रहद्वय के भगण योग वा अन्तर से भाग देना इष्टगुणगुणित बहुत भगणादिग्रह के भगणयोग वा अन्तर से भाग देना तथा इष्टहर भक्त बहुत ग्रहभगणो के योग या अन्तर से भाग देना तब इष्टग्रह होता है ।

इष्टगुण गुणित ग्रहद्वय को योग करके स्थापन करना उस गुणक से इष्टग्रह के युग भगण को गुण देना, और इष्टगुणगुणित ग्रहद्वय के भगणयोग से भाग देने से इष्टग्रह होते हैं । इस तरह इष्टगुणगुणित ग्रहद्वय के अन्तर करके रखना उस इष्टगुणक से इष्टग्रह के युग भगण को गुण देना इष्टगुणगुणितग्रहद्वय के भगणान्तर से भाग देने से इष्टग्रह होता है । इसी तरह बहुत ग्रहो म भी जानना चाहिए ।

उपपत्ति

यदि इष्टगुणगुणित ग्रहद्वय भगण योग या अन्तर म इष्टग्रह युग भगण पाते है तो उस इष्टगुणक से गुणित ग्रहद्वय योग या अन्तर म क्या इस अनुपात से इष्टग्रह आते है । इस तरह बहुत ग्रहो के योग या अन्तर मे भी अनुपात से इष्टग्रह का साधन होता है । तथा इष्ट हार से विभक्त भगणद्वय के योग या अन्तर म इष्टग्रह युगभगण पाते है तो इष्टहार विभक्त ग्रहद्वय के योग या अन्तर मे क्या इस अनुपात से इष्टग्रह आते है । इस तरह बहुत ग्रहो मे जानना चाहिये ।। ४३ ।।

द्व्यादीनामिष्टं स्वं पृथगिष्टघ्नैर्युतोनित कार्यम्
इष्टाभिहत युतयोनितया द्व्यादिग्रहसख्यया भक्तम् ।। ४४ ।।
सर्वधन तत्तेपा भगणैक्यविभाजित पृथग्गुणयेत् ।
गुणैं स्वैस्स्वधनानि त्विष्टैरिष्टस्य वा भवति ।। ४५ ।।

वि भा—द्व्यादीना (द्व्यादिग्रहाणा) ऐक्यम् (युति) पृथक इष्टघ्नै (इष्टगुणित) तैरिष्टैग्रहैर्युतोनित कार्यम् । इष्टाभिहतयुतयोनितया (इष्टगुणक सहितया रहितया च) द्व्यादिग्रहसख्यया, भक्त (भाजित) तत्फल तेपा (ग्रहाणा) सर्वधन (योग) भवेत् । स्वं (स्वकीयै) गुणैं (इष्टगुणकै) पृथक गुणयेत् भग

एक्याविभाजित (भगणयोगेन भक्त) तदा अयनानि स्यु । वा इष्टैर्गुणकैरिष्टस्य भवतीति। पृथक् स्थिता ग्रहा न ज्ञायन्ते तदैक्य च न ज्ञायते किन्तु एतावत् ज्ञायते तस्मादैक्यादिष्टगुणगुणितो यदा प्रथमो ग्रहो योज्यते विशोध्यते वा तदेतावत्सस्य-मैक्य कार्यमूनाना वैक्य कार्यम् । ततो ग्रहसख्यया तदैक्य विभजेत्तदेष्टगुणकारो ग्रहसख्या च ज्ञायते ।

यदि गुणगुणितानामुद्दिष्टाना योगस्तदा गुणक-ग्रहसख्यायोगो हरः । तथा गुणगुणितै रहितानामुद्दिष्टाना योगस्तदा गुणकग्रहयोरन्तरेण भजेत्तदा ग्रहैक्य भवेत् । एतस्माद् ग्रहैक्याद् ग्रहज्ञान कार्यमिति ॥ ४४-४५ ॥

अत्रोपपत्ति

यदा ग्रहैक्य ग्रहसख्या स्थानगतमेकत्र क्रियते तदा ग्रहैक्य ग्रहसख्यया गुणित भवति यदीष्ट गुणितैर्ग्रहैरधिक पृथक् पृथगेकत्र क्रियते तदा तदैक्य गुण-ग्रहैक्याधिक भवति तेन ग्रहसख्यया गुणयुतया विभज्यते—यदा चेष्टगुणितैर्ग्रहै. पृथक् पृथगूनमेकत्र क्रियते तदा तदैक्य गुणगुणितग्रहैक्योन भवत्यतो गुणकोन-ग्रहसख्यया विभज्यते तदा सर्वग्रहयोगो भवति ततो ग्रहज्ञान स्वयमेव कार्य-मिति ॥ ४४-४५ ॥

हि भा—दो आदि ग्रहो के योग को पृथक् इष्टगुणित उन ग्रहो करके युत और हीन करना, इष्ट गुणक करके युत और हीन दो आदि ग्रहसख्या से भाग देने से फल उन ग्रहो का सर्वधन (योग) होता है । इस योग को गुणक से पृथक् गुण देना भगण योग स भाग देने स ग्रह होते है ॥ ४४-४५ ॥

अलग अलग स्थित ग्रह नही जानते है, और उनके योग भी नही जानते हैं, लेकिन इतना जानते हैं कि उस ग्रहैक्य म यदि गुणगुणित प्रथम ग्रह को जोडते है या घटाते है तो इतने सख्यक ग्रहो के ऐक्य करना, जितने ग्रह को घटाते है उनका भी योग करना, बाद मे ग्रहसख्या से ऐक्य का भाग देने से इष्ट गुणक और ग्रहसख्या विदित होती है यदि गुण-गुणित उद्दिष्टो का योग हो तो गुणक और ग्रहसख्या के योग हर होता है, यदि गुणगुणित उद्दिष्टो का अन्तर है ता गुणक और ग्रहसख्या के अन्तर हर होता है, इससे ग्रहैक्य आता है, इस पर से ग्रहज्ञान करना चाहिये ॥

उपपत्ति

यदि ग्रहैक्य को ग्रह सख्या स्थान मे रखकर जोडते हैं तो ग्रहैक्य ग्रहसख्या मे गुणित होता है, यदि ग्रहैक्य म इष्टगुणित ग्रहो को जोडते है तो ग्रहैक्य गुणक और ग्रहो के योग से युत होता है । इसलिय गुणक युत ग्रहसख्या मे भाग देते हैं, यदि ग्रहैक्य मे इष्टगुणित ग्रहो को घटाते है तो ग्रहैक्य गुणक और ग्रहो के योग करके हीन होता है इस

लिये वहा गुणकोन ग्रहसख्या मे भाग देते हैं। तब ग्रहैक्यहोता है। इस पर से ग्रहानयन करना चाहिये ॥ ४४-४५ ॥

इदानी ग्रहैक्यज्ञानेन पृथक् पृथग् ग्रहानयनमाह ।

पदस्वमिष्टसगुणैर्ग्रहैर्युतोनमुद्धृतं
पृथक् पृथग् निजैर्गुणैर्युतिस्ततो विभाजिता ।
पदप्रमाणरूपकैर्गुणैर्ग्रहैर्भुवायुतं
युतोनितः पदं भवेत्ततो विशेषमानयेत् ॥ ४६ ॥

वि भा—पदस्व (सर्वधन ग्रहैक्य वा) इष्टसगुणैर्ग्रहै (इष्टगुणगुणितग्रहै) युतोन पृथक् पृथक् निजैर्गुणैः (स्वगुणकाङ्कैः) उद्धृत (भक्त) तदा युतिर्भवेदर्थात् (एकमारभ्यानवान्ता यावन्तो ग्रहा जिज्ञासितास्तेषा तावता भगणाना मध्यमग्रहाणा वा यथाक्रममैक्य कृत्वा पृथक् स्थापयेत्। तानेव पृथक् स्थितान् यया कयाऽपीष्टसख्यया पृथक् पृथक् सङ्गुण्य प्रतिराश्येकत्र स्थितेषु ग्रहैक्य युक्त्वा तदपि प्रतिराश्येकत सर्वान् योजयेत्। सा युतिशब्दवाच्या) गुणैः (इष्टगुणाकैः) युतोनितै (सहितरहितै) पदप्रमाणरूपकैः (पदसख्यकग्रहै) सा (पूर्वानीता) युति, विभाजिता (भक्ता) पद (सर्वधन भगणैक्य वा) भवेत्ततो विशेष (ग्रह) मानयेत्। यदीष्टगुणगुणितग्रहायोजितास्तदा ग्रहस्थाने गुणक युक्त्वा तद्युति भाजयेत्। अन्यथा केवलमेकेन युक्तेन ग्रहस्थानेन भाजयेत्तदा ग्रहैक्य भगणैक्य वा समागच्छति, तस्मादैक्यात् यथा स्वमुद्दिष्टास्त्यक्त्वा शिष्ट पूर्वगुणकेन हरेत् योजिता ग्रहभगणास्तन्मध्यमग्रहा वा पृथक् पृथक् सिद्धयन्ति। अथवा इष्ट सख्यागुणितान् प्रतिराशि तद्ग्रहैक्यात्त्यक्त्वा शिष्ट प्रतिराश्येक स्थानगमुद्दिष्टत्वेन स्थापयेत्। अपरत्र स्थित यथाक्रम योजयेत् सा तद्युति। तामेव युति पूर्वगुणक हीनग्रहस्थानैर्भाजयेत्तदा ग्रहैक्य भवेत्। ततो ग्रहैक्योद्दिष्टयोर्विश्लेष गुणकेन हरेत् पृथक् पृथग् भगणा ग्रहा वा आगच्छन्तीति ॥ ४६ ॥

हि भा—सर्वधन या ग्रहयोग मे इष्टगुणितग्रह को जोडना या घटाना, अलग अलग अपने गुणाङ्को से भाग देना तब युति होती है अर्थात् एक से लेकर जितने ग्रह ज्ञातव्य हो उनमे उतने भगणो को या मध्यमग्रहो के यथाक्रम से योग कर अलग रखना चाहिये। उन्ही पृथक् स्थितो को जिस किसी इष्ट सख्या से पृथक् पृथक् गुणकर एकत्र स्थित प्रतिराशि मे ग्रहयोग को जोडकर उन सब को भी प्रतिराशि मे जोडना वही युति कहलाती है। पदसख्यक ग्रह मे इष्ट गुणक को जोडकर या घटाकर जो हो उससे पूर्वानीत युति मे भाग देने से सर्वधन या भगणयोग होता है उस पर से ग्रह को साधन करना।

यदि इष्टगुणगुणित ग्रह जोडते हैं तब ग्रहस्थान मे गुणक को जोडकर युति मे भाग देना चाहिये। अन्यथा ग्रहस्थान मे एक जोडकर भाग देना चाहिये। तब ग्रहयोग आता है। तब ग्रहयोग और उद्दिष्ट के अन्तर मे गुणक से भाग देने मे ग्रह होते हैं ॥४६॥

इदानी मिष्टगुणगुणितग्रहद्वयस्य ग्रहत्रयादेर्वेष्टहरभक्तग्रह द्वयस्य ग्रहत्रयादेर्वा योगान्तर ज्ञात्वेष्टग्रहानयनमाह।

इच्छाहतोद्धृताना ग्रहभगणाना युतिर्विशेषो वा।
कुदिनमन्वितो विहीन माध्यग्रहपर्यये कुदिनभक्त ॥४७॥

शेषवियुग्युतमस्मात्स्वमृण चेदन्यपर्ययैर्लब्धम् ।
इष्टभगणैर्युतोना इष्टघ्नहता· स्युरन्यभगणास्ते ॥४८॥

वि. भा —ग्रहभगणाना (ग्रहपर्ययाणा) इच्छाहतोद्धृताना (इष्टगुणगुणिताना भक्ताना वा) युति (योग) वा विशेष (अन्तर) कुदिनभक्त (युगकुदिनभाज्य) शेषवियुग्युत (शेषेण रहित सहित च) कुदिन कार्यं, अन्यपर्ययैर्लब्धम् (अन्यभगणफल) स्वमृण चेत् (यदि प्रश्नाधारेऽन्यभगणफल धन ऋण वा) तदा कुदिन शेपहीन, शेपयुत कुर्यात् । तादृशेषु कुदिनेषु साध्यग्रहपर्ययै (इष्टग्रहभगणै) अन्वित (सहित) विहीन (रहित) अन्यभगणफल प्रश्नाधारे चेद्धन तदेष्टग्रहभगणा अपि कुदिनेषु योज्या, अन्यभगणफलमृण चेत्कुदिनेषु इष्टग्रहभगणास्त्याज्या, इष्टगुणभक्तास्तदा ते अन्यभगणा जायन्ते ततोऽन्यग्रहानयन सुगममिति ॥४७-४८॥

अत्रोपपत्ति ।

यदि युगग्रहभगणा इष्टगुणकुदिनैर्युता वा हीनास्तदा तेभ्योऽपि राश्यादिकग्रह स एव भवति । यतस्तेऽहर्गणगुणा युगकुदिनैर्भक्तास्तदा इष्टसमभगणाधिकोना पूर्वभगणा भवन्ति । भगणशेपमपि पूर्वसममेव भवेत् । तेनेष्टगुणगुणिताना ग्रहभगणाना योगान्तर कुदिनाधिक चेत्कुदिनैर्भाज्य तदा शेषप्रमाणमेव ग्रहभगणा कल्पनीया । येभ्यो राश्यादिग्रह इष्टगुणगुणित ग्रहयोगान्तरसम एव भवेत् । यदाऽन्यभगणग्रहो धन तदाऽन्यभगणयुतशेप इष्टग्रहभगणसमस्तेन तदा शे + अन्यभगण = इष्टभगण समशोधनेन इभगण — शे = अन्यभगण = इभ — शे + युकुदि (यदा चान्यभगणोत्पन्नग्रहश्चर्णं तदा शे — अन्यभगण = इभगण शे — इभगण = अन्यभगण = शे — इभगण + युकुदि । अत उपपन्नम् ॥

हि भा —इष्ट गुणगुणित या भक्त ग्रहभगणो के योग या अन्तर को युगकुदिन से भाग देने से जो शेप हो उस करके हीन और युत कुदिन को करना चाहिये । यदि प्रश्न के आधार पर अन्यभगणफल धन हो तब तो कुदिन मे शेप घटा देना चाहिय, यदि प्रश्न के आधार पर अन्य भगणफल ऋण हो तो कुदिन म शेप को जोड देना चाहिय, शेप रहित सहित कुदिन म इष्टग्रहभगण को जोडना और घटाना चाहिये, अन्यभगणफल यदि प्रश्नाधार मे धन हो तब इष्टग्रहभगण को कुदिन मे जोडना, यदि अन्यभगणफल ऋण हो तब इष्टग्रह· भगण को कुदिन मे घटाना चाहिये, इष्टगुणक मे भाग देने से अन्यग्रह भगण होता है इस पर से अन्य ग्रह साधन सुलभ है ॥४७-४८॥

उपपत्ति ।

यदि इष्टगुणित कुदिन करके इष्टग्रह भगण को जोडते हैं या घटाते हैं तो उस पर से भी राश्यादि ग्रह वही होते है। क्योकि उसको अहर्गण से गुण कर युगकुदिन से भाग देने से इष्टतुल्य भगण करके अधिक और हीन पूर्वभगण होता है। भगणशेप भी पूर्व भगणशेप के बराबर होता है। इसलिए इष्टगुणगुणित ग्रहभगणो के योग या अन्तर कुदिन से अधिक रहने

से कुदिन से भाग देना चाहिये, शेष जो रह उसी को ग्रहभगण कल्पना करना जिससे रात्यादि-ग्रह इष्ट गुणगुणित ग्रहो के योगान्तर के बराबर हो, जब अन्य भगणग्रहधन है तब अन्य भगण-युत शेष इष्टग्रहभगण के बराबर होता है, इसलिये शेष+अन्यभगण=इभगण, समशोधन करने से अन्यभगण=इभगण—शे=इभगण—शे+युकुदिन । यदि अन्यभगणोत्पन्नग्रह ऋण है तब शेष—अन्यभगण=इभगण अत शे—इभगण=अभगण=शे—इभगण+युकु, अत आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥ ४८ ॥

अथ गतचान्द्रदिनान्तकालिकग्रहानयनमाह

गतचन्द्रवासरघ्ना ग्रहभगणायुगशशाङ्कदिनभक्ताः ।
भगणादि द्युचरः स्याद्रजनीकरवासरावधिकः ॥४९॥

वि भा—ग्रहभगणा (युगग्रह पठित भगणा) गतचन्द्रवासरघ्ना (गतचान्द्राहर्गणगुणिता) युगशशाङ्कदिनभक्ता (युगपठित चान्द्रदिनभाजिता) रजनीकरवासरावधिक (चन्द्रदिनान्तिक) भगणादिद्युचर स्यात् (भगणादिग्रह स्यात्) इति ॥४९॥

अत्रोपपत्ति.

यदि युगचान्द्रदिनैर्युगग्रहभगणा लभ्यन्ते तदा गतचान्द्रदिनै किमित्यनुपातेन भगणादिको ग्रह समागतस्तत्स्वरूपम् $=\frac{\text{युग्रभ}\times\text{गतचादि}}{\text{युचा}}$ परमय ग्रह गतचान्द्र दिनान्त कालिक इति स्पष्टमेवेति ॥ ४९ ॥

हि भा—युगग्रहभगण को गतचान्द्र दिन से गुण देना युगचान्द्र दिन से भाग देने से भगणादिग्रह होते है वे चान्द्रदिनान्त कालिक होते हैं ॥४९॥

उपपत्ति

यदि युगचान्द्र दिन मे युगग्रह भगण पाते है तो गतचान्द्र दिन मे क्या इस अनुपात से भगणादिग्रह आये उनका स्वरूप $=\frac{\text{युग्रभ}\times\text{गचादि}}{\text{युचा}}$ ये ग्रह चान्द्रदिनान्त कालिक होते है ॥४९॥

अथ गतसौरदिनान्तकालिकग्रहानयनमाह

सौरदिनैर्वा गुणिता ग्रहभगणा भाजिता युगार्कदिनैः ।
भगणादिफल द्युचरो दिनकरगतवासरस्यान्ते ॥५०॥

वि. भा—ग्रहभगणा (युगग्रहपठितभगणा) सौरदिनै (गतसौराहर्गणै) गुणिता, युगार्कदिनै (युगपठित सौरदिनै) भाजिता (भक्ता) फल दिनकरगतवासरस्यान्ते (गतसौरदिनावसाने) भगणादिद्युचर (भगणादिग्रह) भवेदिति ॥५०॥

अस्योपपत्ति

यदि युगसौरदिनैर्युगग्रहभगणा लभ्यन्ते तदा गतसौराहर्गणे किमित्यनुपातेन भगणादिको ग्रहस्तत्स्वरूपम् $= \frac{\text{युग्रहभगण} \times \text{गतसौराहर्गण}}{\text{युसौदि}}$ अथ ग्रहोऽनत्याहर्गणा (गतसौराहर्गण) न्तकालिको भवेदेवेति ॥५०॥

हि भा —ग्रह के युग पठित भगण को गतसौरदिन से गुणकर युगसौर्दिन म भाग देन से भगणादि ग्रह होने है ये गतसौर दिनान्तकालिक होने है ॥ ५० ॥

उपपत्ति ।

यदि युगसौर दिन मे युगग्रहभगण पाते है तो गतसौर दिन मे क्या इस अनुपात म भगणादिग्रह आये, $\frac{\text{युगग्रहभगण} \times \text{गतसौरदिन}}{\text{युगसौरदि}}$ = गतभगणादिग्रह । ये ग्रह गतसौर दिनान्त कालिक होते है । ग्रह अहर्गणान्तकालिक आते है, यहा अहर्गण गतसौरदिन है इसलिये ग्रह गतसौर दिनातकालिक होंगे ॥ ५० ॥

इदानी देवासुरयोरुदयास्तकालिकग्रहानयनमाह ।

याताकाब्दाभ्यस्ता द्युचरभसङ्घा युगार्कवर्षहृता ।
मण्डलपूर्व. खचरः सुरासुरार्कोदयास्तसमये स्यात् ॥ ५१ ॥

वि भा —द्युचरभसङ्घा (युगग्रहभगणा) याताकाब्दाभ्यस्ता (गतसौरवर्षगुणिता) युगार्कवर्षहृता (युगसौरवर्षभक्ता) तदा सुरासुरार्कोदयास्तसमये (देवराक्षसोदयास्तकाले) मण्डलपूर्वं खचर (भगणादिग्रह) भवेदिति ॥ ५१ ॥

अस्योपपत्ति ।

यदि युगसौरवर्षैर्युग ग्रह भगणा लभ्यन्ते तदा गतसौरवर्षे किमित्यनुपातेन गतभगणादिको ग्रहस्तत्स्वरूपम् $= \frac{\text{युग्रभगण} \times \text{गतसौवर्ष}}{\text{युसौव}}$ अथ ग्रहो गतसौरवर्षान्तकालिक (देवराक्षसाहोरात्रान्तकालिक) भवेदिति ॥ ५१ ॥

हि भा —ग्रह के युगभगण को गतसौर वर्ष से गुणाकर युगसौरवर्ष मे भाग देने से भगणादिग्रह गतसौरवर्षान्तकालिक (देव और राक्षस के अहोरात्रान्तकालिक) होते हैं ॥५१॥

उपपत्ति

यदि युगसौरवर्ष म युगग्रहभगण पाते हैं तो गतसौर वर्ष म क्या इस अनुपात मे गतसौरवर्षान्तकालिक ग्रह आते हैं $\frac{\text{युग्रभगण} \times \text{गसौव}}{\text{युसौव}}$ = भगणादि ग्रह ॥ ५१ ॥

इदानीं यार्हस्पत्यवर्षान्तकालिकग्रहानयनं ग्रह्मदिनादिकालिकग्रहानयनं चाह ।

गुरुगतवर्षभवा गुरुवर्षमुखे ग्रहाः कदिवसादौ ।
साध्या मृदूच्चपाता ग्रहाश्च मीनाजसन्धिस्थाः ॥ ५२ ॥

वि. भा.—गुरुगतवर्षभवा ग्रहाः (वृहस्पतिगतवर्षसम्बन्धिनो ग्रहाः) गुरुवर्षमुखे (वृहस्पतिवर्षादौ) भवन्ति । कदिवसादौ (ब्रह्मदिनादौ) मीनाजसन्धिस्थाः (अश्विन्यादौ रेवत्यन्ते वा) मृदूच्चपाताः (मन्दोच्चपातादयः) ग्रहाश्च साध्या इति ॥ ५२ ॥

हि. भा.—वृहस्पति के गत वर्ष सम्बन्धी ग्रह वृहस्पति के वर्षादि में होते हैं अर्थात् वृहस्पति के वर्षान्तकालिक होते हैं । ब्रह्मदिनादि में अश्विन्यादि या रेवत्यन्त में मन्दोच्च पातादि और ग्रहों के साधन करना चाहिये ॥ ५२ ॥

इदानीं कलियुगादौ ग्रहानयनमाह

स्वखहृतलब्धयुतभगणाः कल्पादौ ते ग्रहादयो नन्दाः ।
भगणघ्नाः खखखाभ्रेन्दु हृतलिप्तायुताः कलियुगादौ ॥५३॥

वि. भा.—स्वखहृतलब्धयुतभगणाः (स्वशून्यभक्तलब्धयुतभगणाः) कल्पादौ ते ग्रहादयः स्युः । नन्दा (नव) भगणघ्नाः (कल्पभगणगुणिताः) खखखाभ्रेन्दु (१००००) हृतलिप्तायुताः (१०००० भक्तकलासहिताः) तदा कलियुगादौ ग्रहादयो भवन्ति ॥५३॥

अस्योपपत्ति

द्वापरान्तकालिकग्रहाद्यानयनार्थं सत्ययु + त्रेतायु + द्वापर=३८८८००० कल्पवर्षाणि = ४३२०००००० तदोऽनुपातेन ॥ यदि कल्पवर्षै कल्पोक्तग्रहादि भगणा लभ्यन्ते तदै ३८८८००० भि किमित्यनुपातेन द्वापरान्तकालिका ग्रहाद्यास्तत्स्वरुपम् $= \frac{\text{ग्रहादिभगण} \times ३८८८०००}{४३२०००००००}$ अपवर्तनेन

$\frac{\text{ग्रहादिभगण} \times ६}{१००००}$ =द्वापरान्तकालिकग्रहा ध्रुवसंज्ञका । तथा अहर्गण— द्वापरान्तहर्गण अस्माद्ग्रहादिप्रमाणान्यानीय यदि द्वापरान्तग्रहे ध्रुवाख्ये योज्यते तदा कल्पादौ ग्रहाद्या भवन्तीति अत्र 'स्वखहृतलब्धयुतभगण' इत्ययुक्त प्रतिभाति ॥५३॥

हि. भा.—अपना शून्य भक्त फल करके युतभगण कल्पादि में ग्रहादि होते हैं ॥ नौ-गुणित भगण को १०००० इससे भाग देने से जो फल हो उसको उसमें जोड़ने से कलि-युगादि में ग्रहादि होते हैं ॥

उपपत्ति

सत्ययु+त्रेतायु+द्वापरयु=३८८८०००, कल्पवर्षप्रमाण=४३२०००००० इस पर से अनुपात करते हैं कि यदि कल्पवर्ष में कल्पग्रहादिभगण पाते हैं तो ३८८८००० इसमें क्या इस अनुपात से द्वापरान्त में ग्रहादि प्रमाण आया ।

$$\frac{\text{ग्रहादि भगण} \times ३९९९०००}{४३२०००००००} = \frac{\text{ग्रहादिभगण} \times ३९९९}{४३२००००} = \frac{\text{ग्रहादिभगण} \times ९}{१००००}$$

अथवा ग्रहर्गण-द्वापरान्ताहर्गण इस पर से ग्रहादि साधन कर द्वापरान्तकालिक ग्रहादि में जोडने से कलयुगादि में ग्रहादि होते हैं। अथवा पूर्वप्रदर्शित फल को कल्पादि ग्रहादि में जोडने से कलियुगादि में ग्रहादि होते है। यहां "स्वखहृतलब्ध युतभगणा" यह पाठ ठीक नहीं मालूम होता है ॥ ५३ ॥

इदानीं त्रैराशिकानीतपदार्थेषु लघुकरणं भाज्यभाजकयोर्दृढत्वलक्षणञ्चाह।

त्रैराशिकेन सर्वं ज्ञाताज्ज्ञेयं प्रसाधयेद्बहुना।
अपवर्तितैर्लघुः स्याद् गुणहारैरेतदेव पूर्वोक्तम् ॥५४॥
अन्योन्यभक्तशिष्ट्या तावपवर्त्यौ लघू दृढकसंज्ञौ।
कल्पादाविन्दूच्चे त्रिभं क्षिपेत्षड्गृहाणि शशिपाते ॥५५॥

वि भा —बहुना त्रैराशिकेन (अनेकत्रैराशिकद्वारा) ज्ञातात् (विदितविषयात्) ज्ञेय (ज्ञातव्य) सर्वं प्रसाधयेत् (आनयन कृत्वाऽऽनयेत्) अपवर्तितैः (समाङ्कभक्तं) (गुणकभाजकं) लघु स्यात् (तत्स्वरूपमल्प भवति) एतदेव पूर्वोक्तम्। अन्योन्य-भक्तशिष्ट्या (परस्परभजनावशेषेण) तौ लघू (गुणकहारौ) अपवर्त्यौ (भजनीयौ) तदा तौ दृढकसंज्ञौ भवत। कल्पादौ (सृष्ट्यादौ) इन्दूच्चे (चन्द्रमन्दोच्चे) त्रिभ (राशित्रय) क्षिपेत् (योजयेत्) शशिपाते (चन्द्रपाते) षड्गृहाणि (षड्राशय) क्षिपेयुरिति ॥५४-५५॥

हि. भा —अनेक त्रैराशिद्वारा विदित पदार्थ से ज्ञातव्य सब विषय का साधन करना, गुणक और हर में समाङ्क से भाग देने से उसका स्वरूप छोटा होता है। यही पहले कहा गया है। गुणक और हर इन दोनों में परस्पर भाग देने से जो शेष रहता है उससे लघु गुणक और लघु हर को भाग देने से जो होता है अर्थात् गुणक और हर में परस्पर भाग देने से जो शेष रहता है उससे भक्त गुणक और हर दृढ संज्ञक होते हैं। कल्पादि में चन्द्र-मन्दोच्च में तीन राशि जोडना चाहिये और चन्द्रपात में छ राशि जोडना, इति ॥५४-५५॥

इदानीं ग्रहादीनां क्षेपानाह।

द्वौ धृतिरेकशरा नगरामा क्षेप्या गृहादि रवितुङ्गे।
वेदाधयः खबाणा खशराः क्षेप्या गृहादि कुजमन्दे ॥५६॥
मुनयोऽष्ट द्विवेदाः कृतेषवो भादि चन्द्रजस्योच्चे।
विषया द्विदशोऽष्टकृता. कुगुणा राश्यादि जीवोच्चे ॥ ५७॥
यमलौ नखास्त्रयोदश यमलायोज्याः सितस्य भाद्युच्चे।
मुनयोऽक्षदिशोऽङ्कशरा देया शनेर्गृहाद्युच्चे ॥५८॥
ककुभो नखादिशोऽर्का राश्याद्यसृजः प्रयोजयेत्पाते।
रुद्रा दिशोऽङ्कचन्द्रा. कृतेषवो भादिबुधपाते ॥५९॥
अष्टौ नखाः खं वा निपाते भादिसंयोज्यम्।
काद्युभंव कुदिनाप्ताः कलिगतदिनपर्यया हतास्ते स्यु. ॥६०॥

इति सर्वतोभद्रश्चतुर्थः ॥

वि भा —द्वौ (२) धृति (१८) एकशरा (५१) नगरामा (३७) इति राश्या-दिका ग्रहादि रवितुङ्गे राश्यादि रविमन्दोच्चे) क्षेप्या (योज्या)। तथा

वेदा (४) यम (५) खबाणा (५०) खशरा (५०) ग्रहादिकुजमन्दे (राश्यादि मङ्गलमन्दोच्चे) क्षेप्या (योज्या) ॥ ५६ ॥

मुनय (७) अष्टय (१६) द्विवेदा (४२) कृतेषव (५४) भादिचन्द्रजस्योच्चे (राश्यादि बुधमन्दोच्चे) क्षेप्या (योज्या)।

विषया (५) द्विदृश (२२) अष्टकृता (४८) कुगुणा (३१) राश्यादिजी-वोच्चे (राश्यादि बृहस्पति मन्दोच्चे) योज्या । ५७ ॥

यमलौ (२) नखा (२०) त्रयोदश (१३) यमला (२) सितस्य (शुक्रस्य) भाद्युच्चे (राश्यादि मन्दोच्चे) योज्या ।

मुनय (७) अक्ष (५) दिश (१०) अङ्गशरा (५६) शनै (शनैश्चरस्य) ग्रहाद्युच्चे (राश्यादि मन्दोच्चे) देयाः (क्षेप्या) ॥ ५८ ॥

ककुभ (१०) नखा (२०) दिश (१०) अर्का (१२) इति राश्यादि, असृज पाते (कुजस्य पाते) प्रयोजयेत्।

रुद्रा (११) दिश (१०) अङ्कचन्द्रा (१६) कृतेषव (५४) भादिबुधपाते (राश्यादि बुधपाते) क्षेप्या ॥ ५९॥

वा अष्टौ (८) नखा (२०) ख (०) राश्यादिपाते याज्यम् । ते भगणा (ग्रहादिनादिग्रहादि भगणा) कलिगतदिनपर्ययाहता (कलिगतदिनभगणगुणा) ग्रहादिनो पन्नकुदिन भक्ता) तदा कलिगतदिनान्तिकाम्ने ग्रहाद्या भवन्तीति ॥६०॥

अत्र युक्तिस्तु स्पष्टैवास्ति ॥ यथा—

सौरवर्षान्ते ग्रहानयनाय कल्पगताहर्गणस्य खण्डद्वय (कल्पादित कल्यादि यावत्प्रथमखण्ड कलियुगादित इष्टवर्षपर्यन्त द्वितीय खण्ड प्रकल्प्यानुपात क्रियते यदि कल्पकुदिनैर्ग्रहभगणा लभ्यन्ते तदा कल्पगताहर्गणे किमित्यनुपातेनाभीष्टवर्षान्ते भगणादिग्रह =

$$\frac{\text{कल्पात्कल्यादि यावदहर्गण} \times \text{ग्रभ}}{\text{कु}} + \frac{\text{कलिगताहर्गण} \times \text{ग्रभ}}{\text{कु}}$$ अत्र प्रथमखण्डे

यद्भगणशेष तस्यैव नाम क्षेप । एतन्नियमेन सर्वेषा ग्रहादीना क्षेपा उत्पाद्या कलिगताहर्गणाना ग्रहभगणाना घातान् स्वस्वपठितक्षेपयुतात्कल्पकुदिनैर्भक्ताद् भगणादिफल रविमण्डलान्तिका ग्रहा भवन्ति, अत्र मेषादियुगणफलेन (लघ्वहर्ग-णोत्पन्नग्रहेण) योजनेनेष्टदिने ग्रहा भवन्ति, ग्रहानयनार्थमेव क्षेपाणा पाठ कृतो वर्ष-सम्बन्धेनाप्यनुपातेन भगणादिग्रहानयन भवितुमर्हति पूर्वमहर्गणेन यथाऽनुपा-ताऽभिहितस्तथैव वर्षेरप्यनुपात कार्यो यथा —

$$\frac{\text{कल्पात्कल्यादि यावद्वर्ष ग्रभ}}{\text{कल्पवर्ष}} + \frac{\text{कलेर्गतव} \times \text{ग्रभ}}{\text{कव}}$$ पूर्व कल्पगताहर्गणस्य खण्ड-द्वय कृतमत्र कल्पगतवर्षाणा खण्डद्वय कृतमन्यत्पूर्ववदिति ॥

इति श्रीवटेश्वरसिद्धान्ते मध्यमाधिकारे सर्वतोभद्रनामकश्चतुर्थोऽध्याय ।

हि भा — राश्यादि रवि मन्दोच्च मे २ । १८ । ५१ । ३७ ये राश्यादि जोडना चाहिये ।

,, मङ्गल मन्दोच्च मे	४	५	५०	५०	ये राश्यादि	जोडना	चाहिये ।
,, बुधमन्दोच्च मे	७	१६	४२	५४	,,	,,	,,
,, बृहस्पति मन्दोच्च मे	५	२२	४८	३१	,,	,,	,,
,, शुक्र मन्दोच्च में	२	२०	१३	२	,,	,,	,,
,, शनैश्चरमन्दोच्च मे	७	५	१०	५६	,,	,,	,,
,, मङ्गल पात मे	१०	२०	१०	१२	,,	,,	,,
,, बुधपात मे	११	१०	१९	५४	,,	,,	,,

अथवा ≡ । २० । ० राश्यादि पात मे जोडना चाहिये । ग्रहादिनादि मे ग्रहादि भगणो को कलिगत दिन भगण से गुणकर ग्रहादिनादिक कुदिन से भाग देने से कलिगत दिनान्त-कालिक ग्रहादि होते हैं ॥ ५६-६०

यहा युक्ति स्पष्ट है । जैसे —

सौर वर्षान्त मे ग्रहानयन के लिये कल्पगताहर्गण के दो खण्ड (कल्पादि से कल्यादि तक प्रथमखण्ड, कलियुगादि से इष्टवर्षपर्यन्त द्वितीय खण्ड) मानकर अनुपात करते है । यदि कल्पकुदिन मे ग्रहभगण पाते है तो कल्पगताहर्गण में क्या इस अनुपात मे इष्टवर्षान्त मे

भगणादिग्रह $= \frac{\text{कल्पादि से कल्यादि तक अहर्गणग्रभ}}{\text{ककु}} + \frac{\text{कलिगताहर्गण} \times \text{ग्रभ}}{\text{ककु}}$ यहा प्रथमखण्ड मे जो भगण शेष रहता है उसी के नाम क्षेप है । इस नियम से सब ग्रहादियो के क्षेप लाना चाहिये । वर्ष से भी अनुपात हो सकते हैं । जैसे —

$$\frac{\text{कल्पादि से कल्यादि तक वर्ष ग्रभ}}{\text{कव}} + \frac{\text{कलिगतव ग्रभ}}{\text{कव}}$$ पहले कल्पगताहर्गण के दो खण्ड किये थे । यहा कल्पगतवर्ष के दो खण्ड किये हैं । शेष बात पूर्ववत् ॥

इति श्री वटेश्वरसिद्धान्त मे मध्यम अधिकार मे सर्वतोभद्र नामक चौथा अध्याय समाप्त हुआ ।



पञ्चमोऽध्यायः

अथप्रत्यब्दशुद्धिः

इदानीमब्दादावधिदिनादि दिनादिक्षयाहादिमाधनमाह ।

शुद्धिशब्दस्य शोधनातिरिक्तैकत्रीकरणादयोऽर्था अपि सम्भवन्ति, तेष्वत्रैकत्री करणार्थ एवास्ति, तथाहि इष्टवर्षान्ते प्रत्यब्दसम्बन्धीनां सावनाद्यवमादीनामेकत्रीकरणं प्रत्यब्दशुद्धिः, ततो यस्मिन् कुदिनेऽब्दप्रवेशः स तदब्दपतिरिति परिभाषा हृदि सधार्य कुदिनानामेकत्रितानां सप्ततष्टितानां सप्ताल्पो यः सावयवो दिनगणोऽथ मशेषो वा पृथक् पृथक् सप्ततष्टितानामेवैकत्रितानां सम्भवे सति पुनः सप्ततष्टितानां तेषां योऽवशेषस्तत्र रव्यादिगणनया यो वारः सोऽब्दपतिरित्याचार्यो वदति ।

> वेदाग्नित्रिगुणैस्त्रिभूगुणविलैर्भूपक्षखाङ्काश्विभिः ।
> याताब्दा गुणिताः क्रमादपहृताः खाभ्राङ्कनन्दोन्मितैः ॥
> लब्धान्यध्यहवासरावमगणा याताः खखाङ्काङ्कैः ।
> शेषेभ्यो घटिकाः फलानि च भवेयुः शेषकेभ्योऽपि हि ॥ १ ॥

वि भा—याताब्दाः (गतसौरवत्सराः) वेदाग्नित्रिगुणैः (३३०४ एभिः) त्रिभूगुणविलैः (८३१३ एभिः) भूपक्षखाङ्काश्विभिः (२९०२१ एभिः) गुणिताः क्रमात् (क्रमशः) खाभ्राङ्कनन्दोन्मितैः (९६०० एभिः) अपहृताः (भक्ताः) लब्धानि (फलानि) याताः (गताः) अध्यहवासरावमगणाः (गताधिदिनादि सावनदिनादि क्षयदिनाद्याः) भवन्ति, पुनः खखाङ्काङ्कैः (९६०० एभिः) शेषेभ्यः फलानि घटिका भवेयुः, तच्छेषकेभ्योऽपि पूर्ववत्फलानि भवन्तीति ॥१॥

अत्रोपपत्तिः ।

एकस्मिन् सौरवर्षे पठित सावनदिनादि—क्षयदिनाद्यधिदिनादीनि ९६०० वर्षैराचार्यं पठिताधिदिनादि गुणका उत्पद्यन्ते, अथवा भास्करोक्त प्रत्यब्दशुद्धिस्थ दिनाद्यवमाद्यानयनवदत्रापि कार्यं किन्तु सर्वत्र (स्थानत्रये) खाभ्ररसनवभिः सवर्णनं कार्यमिति ॥ १ ॥

वि भा. —प्रत्यब्दशुद्धि नामक अध्याय को प्रारम्भ करते हैं ।

शुद्धि शब्द का अर्थ शोधन याने घटाना होता है किन्तु उसके अलावा एकत्रीकरण (एक जगह मिलाना) आदि अर्थ भी होते हैं। उन अर्थों में यहां एकत्रीकरण ही अर्थ है, इष्टवर्षान्त में प्रतिवर्ष सम्बन्धी सावनादि अवमादियों का एकत्रीकरण करने को 'प्रत्यब्दशुद्धि' कहते हैं। जिस दिन में वर्षप्रवेश होता है वही वर्षपति होता है यह परिभाषा है। इसको

अपने हृदय मे रखकर एकत्रित कुदिनो को सात से भाग देने से सात से अल्प अहर्गण या अवम शेष पृथक् पृथक् सात से विभक्त एकत्रित उन सब के जो शेष रहते हैं रवि आदि गणना से जो दिन आता है वही वर्षपति होता है ये बातें आचार्य लोग कहते हैं ।

गतसौरवर्ष को तीन जगह रखकर ३३३४, ८३१३, २६०२१ इसे गुणकर क्रमश ६६०० इतने से भाग देने से गताधिदिन, गतसावनदि, गतावमदिन होते हैं, शेष मे ६६०० इनसे जो फल होती है घटी होती है, पुन उसके शेष से पूर्ववत् ही पलादि फल होते हैं ॥१॥

उपपत्ति

एक वर्ष मे पठित सावन दिनादि, क्षयदिनादि, अधिदिनादियो ६६०० वर्षों मे आचार्य पठित गुणकाङ्क उत्पन्न होते हैं। अथवा भास्करकथित प्रत्यब्दशुद्धिस्थ दिनादि क्षयाहादि की तरह यहा भी करना चाहिये लेकिन तीनो स्थानो मे ६६०० इनसे सवर्णन करना चाहिये ॥१॥

इदानीमधिमासानयन शुद्धि चाह ।

हीनराशिदिनसंयुतिर्युता दिग्घ्नवत्सरगणेन भाजिता ।
खाग्निभिस्त्वधिकमासकाः फलं शुद्धिरत्र विकल दिनादिकम् ॥२॥

वि भा—हीनराशिदिनसयुति (क्षयाहादि दिनादियुति) दिग्घ्नवत्सर-गणेन (दशगुणित गतवर्षसमूहेन) युता (सहिता) खाग्निभि (त्रिंशद्भि) भाजिता (भक्ता) फल (लब्ध) अधिकमासका स्यु । विकल दिनादिक (दिनाद्य-वशिष्ट त्रिंशद्भक्तावशिष्ट वा) अत्र शुद्धि (शुद्धिसज्ञ दिन भवति) ॥२॥

अस्योपपत्ति

एकस्मिन् वर्षे सावनदिनाद्यम्=३६५ । १५ । ३० । २२ । ३०=३६५ +१ वर्ष सदिनाद्य

एकस्मिन् वर्षेऽवमानि=५ । ४८ । २२ । ७ । ३० =५+१ वर्षस अवमद्य

अत एकवर्षे चान्द्राहा =३७१ । ३ । ५२ । ३० । ०=३७०+१ वर्षसदि +१ वर्षस अवमदि

एकस्मिन् वर्षे सौराहा =३६० । =३६० ।

अनयोरन्तरेण

एकस्मिन् वर्षेऽधिदिनानि=११ । ३ । ५२ । ३० । ०=१०+१ वर्षस दिनादि +१ वर्षस अवम

ततोऽनुपातेन

$$\text{गताधिमासा.} = \frac{\text{१ वर्षस अधिदिन} \times \text{गतवर्ष}}{\text{१ वर्ष} \times \text{३०}}$$

पञ्चमोध्यायः

अथप्रत्यब्दशुद्धिः

इदानीमब्दादावधिदिनादि दिनादिक्षयाहादिमाधनमाह ।

शुद्धिशब्दस्य शोधनातिरिक्तैकत्रीकरणादयोऽर्था अपि सम्भवन्ति, तेष्वत्रैकत्रीकरणार्थ एवास्ति, तथाहि, इष्टवर्षान्ते प्रत्यब्दसम्बन्धीना सावनाद्यवमादीनामेकत्रीकरण प्रत्यब्दशुद्धि , ततो यस्मिन् कुदिनेऽब्दप्रवेश स तदब्दपतिरिति परिभाषा हृदि सधार्य कुदिनानामेकत्रिताना सप्ततष्टिताना सप्ताप्तो य सावयवो दिनगणोऽवमशेषो वा पृथक्-पृथक् सप्ततष्टितानामेवैकत्रिताना सम्भवे सति पुन सप्ततष्टिताना शेषा योऽवशेषस्तत्र रव्यादिगणनया यो वार सोऽब्दपतिरित्याचार्यो वदति ।

वेदाग्नित्रिगुणैस्त्रिभूगुणविलैर्भू पक्षखाङ्काश्विभि ।
याताब्दा गुणिता क्रमादपहृताः खाभ्राङ्कनन्दोन्मितैः ॥
लब्धान्यध्यहवासरावमगणा याताः खखाङ्काङ्ककैः ।
शेषेभ्यो घटिका फलानि च भवेयु शेषकेभ्योऽपि हि ॥ १ ॥

वि भा—याताब्दा (गतसौरवत्सरा) वेदाग्नित्रिगुणै (३३३४ एभि) त्रिभूगुणविलै (८३१३ एभि) भूपक्षखाङ्काश्विभि (२९०२१ एभि) गुणिता क्रमात् (क्रमश) खाभ्राङ्कनन्दोन्मितै (९६०० एभि) अपहृता (भक्ता) लब्धानि (फलानि) याता (गता) अध्यहवासरावमगणा (गताधिदिनादि सावनदिनादि-क्षयदिनाद्या) भवन्ति, पुन खखाङ्काङ्कके (९६०० एभि) शेषेभ्य फलानि घटिका भवेयुः, तच्छेषकेभ्योऽपि पूर्ववत्फलानि भवन्तीति ।।१।।

अत्रोपपत्ति ।

एकस्मिन् सौरवर्षे पठित सावनदिनादि—क्षयदिनाद्यधिदिनादीनि ९६०० वर्षैराचार्ये पठिताधिदिनादि गुणका उत्पद्यन्ते, अथवा भास्करोक्त प्रत्यब्दशुद्धिस्थ दिनाद्यवमाद्यानयनवदत्रापि कार्य किन्तु सर्वत्र (स्थानत्रये) खाभ्ररसनवभि सवर्णन कार्यमिति ॥ १ ॥

वि भा —प्रत्यब्दशुद्धि नाम के अध्याय को प्रारम्भ करते हैं ।

शुद्धि शब्द का अर्थ शोधन याने घटाना होता है किन्तु उसके अलावा एकत्रीकरण (एक जगह मिलाना) आदि अर्थ भी होते हैं। उन अर्थों में यहा एकत्रीकरण ही अर्थ है, इष्टवर्षान्त में प्रतिवर्ष सम्बन्धी सावनादि अवमादियो का एकत्रीकरण करने को "प्रत्यब्दशुद्धि" कहते हैं। जिस दिन में वर्षप्रवेश होता है वही वर्षपति होता है यह परिभाषा है। इसको

अपने हृदय मे रखकर एकत्रित कुदिनो को सात से भाग देने से सात से अल्प अहर्गण या अवम शेष पृथक् पृथक् सात से विभक्त एकत्रित उन सब के जो शेष रहते है रवि आदि गणना से जो दिन आता है वही वर्षपति होता है ये बाते आचार्य लोग कहते हैं।

गतसौरवर्ष को तीन जगह रखकर ३३३४, ८३१३, २९०२१ इसे गुणाकर क्रमश ९६०० इतने से भाग देने से गताधिदिन, गतसावनदि, गतावमदिन होते हैं, शेष मे ९६०० इनसे जो फल होती है घटी होती है, पुन उसके शेष से पूर्ववत् ही पलादि फल होते हैं ॥१॥

उपपत्ति

एक वर्ष मे पठित सावन दिनादि, क्षयदिनादि, अधिदिनादियो ९६०० वर्षों मे आचार्य पठित गुणकाङ्क उत्पन्न होते हैं। अथवा भास्करकथित प्रत्यब्दशुद्धिस्थ दिनादि क्षयाहादि की तरह यहा भी करना चाहिये लेकिन तीनो स्थानो मे ९६०० इनसे सवर्णन करना चाहिये ॥१॥

इदानीमधिमासानयन शुद्धि चाह।

हीनराशिदिनसयुतिर्युता दिग्घ्नवत्सरगणेन भाजिता।
खाग्निभिस्त्वधिकमासकाः फल शुद्धिरत्र विकल दिनादिकम् ॥२॥

वि भा—हीनराशिदिनसयुति (क्षयाहादि दिनादियुति) दिग्घ्नवत्सर गणेन (दशगुणित गतवर्षसमूहेन) युता (सहिता) खाग्निभि (त्रिंशद्भि) भाजिता (भक्ता) फल (लब्ध) अधिकमासका स्यु। विकल दिनादिक (दिनाद्यवशिष्ट त्रिंशद्भक्तावशिष्ट वा) अत्र शुद्धि (शुद्धिसज्ञ दिन भवति) ॥२॥

अस्योपपत्ति

एकस्मिन् वर्षे सावनदिनाद्यम्=३६५। १५। ३०। २२। ३०=३६५
+१ वर्षे सदिनाद्य

एकस्मिन् वर्षेऽवमानि=५। ४८। २२। ७। ३० =५+१ वर्षस अवमद्य

अत एकवर्षे चान्द्राहा =३७१। ३। ५२। ३०। ०=३७०+१ वर्षसदि
+१ वर्षस अवमदि

एकस्मिन् वर्षे सौराहा =३६०। =३६०।

अनयोरन्तरेण

एकस्मिन् वर्षेऽधिदिनानि=११। ३। ५२। ३०। ०=१०+१ वर्षस दिनादि
+१ वर्षस अवम

ततोऽनुपातेन

$$\text{गताधिमासा} = \frac{\text{१ वर्षस अधिदिन} \times \text{गतवर्ष}}{\text{१ वर्ष} \times \text{३०}}$$

पञ्चमोऽध्यायः

अथप्रत्यब्दशुद्धिः

इदानीमब्दादावधिदिनादि दिनादिक्षयाहादिसाधनमाह ।

शुद्धिशब्दस्य शोधनातिरिक्तैकत्रीकरणादयोऽर्था अपि सम्भवन्ति, तेष्वत्रैकत्रीकरणार्थ एवास्ति, तथाहि इष्टवर्षान्ते प्रत्यब्दसम्बन्धीना सावनाद्यवमादीनामेकत्रीकरण प्रत्यब्दशुद्धि ततो यस्मिन् कुदिनेऽब्दप्रवेश स तदब्दपतिरिति परिभाषा हृदि सधाय कुदिनानामेकत्रिताना सप्ततष्टिताना सप्ताल्पो य सावयवो दिनगणोऽव शेषो वा पृथक् पृथक् सप्ततष्टितानामेवैकत्रिताना सम्भवे सति पुन सप्ततष्टिताना तेषा योऽवशेपस्तत्र रव्यादिगणनया यो वार सोऽब्दपतिरित्याचार्यो वदति ।

वेदाग्नित्रिगुणैस्त्रिभूगुणबिलैर्भूपक्षखाङ्काश्विभि ।
याताब्दा गुणिता क्रमादपहृता खाभ्राङ्गनन्दोन्मितै ॥
लब्धान्यध्यहवासरावमगणा याता खखाङ्गाङ्कक ।
शेषेभ्यो घटिका फलानि च भवेयु शेषकेभ्योऽपि हि ॥ १ ॥

वि भा—याताब्दा (गतसौरवत्सरा) वेदाग्निनिगुणै (३३,४ एभि) त्रिभूगुणबिलै (८३१३ एभि) भूपक्षखाङ्काश्विभि (२९०२१ एभि) गुणिता क्रमात् (क्रमश) खाभ्राङ्गनन्दोन्मितै (९६०० एभि) अपहृता (भक्ता) लब्धानि (फलानि) याता (गता) अध्यहवासरावमगणा (गताधिदिनादि सावनदिनादि क्षयदिनाद्या) भवन्ति पुन खखाङ्गाङ्कके (९६०० एभि) शेषेभ्य फलानि घटिका भवेयु, तच्छेपकेभ्योऽपि पूर्ववत्फलानि भवन्तीति ॥१॥

अत्रोपपत्ति ।

एकस्मिन् सौरवर्षे पठित सावनदिनादि—क्षयदिनाद्यधिदिनादीनि ९६०० वर्षैराचार्यं पठिताधिदिनादि गुणका उत्पद्यन्ते, अथवा भास्करोक्त प्रत्यब्दशुद्धिस्थ दिनाद्यवमाद्यानयनवदत्रापि कार्यं किन्तु सर्वत्र (स्थानत्रये) खाभ्ररसनवभि सवर्णन कार्यमिति ॥ १ ॥

वि भा—प्रत्यब्दशुद्धि नाम क अध्याय को प्रारम्भ करते हैं ।

शुद्धि शब्द का अर्थ शोधन याने घटाना होता है किन्तु उसके अलावा एकत्रीकरण (एक जगह मिलाना) आदि अर्थ भी होते हैं। उन अर्थों मे यहा एकत्रीकरण ही अर्थ है, इष्टवर्षान्त मे प्रतिवर्ष सम्बन्धी सावनादि अवमादियो का एकत्रीकरण करने को 'प्रत्यब्दशुद्धि' कहते हैं। जिस दिन मे वर्षप्रवेश होता है वही वर्षपति होता है यह परिभाषा है। इसको

अपने हृदय मे रखकर एकत्रित कुदिनो को सात से भाग देने से सात से अल्प अहर्गण या अवम शेष पृथक् पृथक् सात से विभक्त एकत्रित उन सब के जो शेष रहते हैं रवि आदि गणना से जो दिन आता है वही वर्षपति होता है ये बातें आचार्य लोग कहते हैं।

गतसौरवर्ष को तीन जगह रखकर ३३३४, ८३१३, २९०२१ इसे गुणाकर क्रमश ९६०० इतने से भाग देने से गताधिदिन, गतसावनदि, गतावमदिन होते हैं, शेष मे ९६०० इनसे जो फल होती है घटी होती है, पुन उसके शेष से पूर्ववत् हो पलादि फल होते हैं ॥१॥

उपपत्ति

एक वर्ष मे पठित सावन दिनादि, क्षयदिनादि, अधिदिनादियो ९६०० वर्षों मे आचार्य पठित गुणकाङ्क उत्पन्न होते हैं। अथवा भास्करकथित प्रत्यब्दशुद्धिस्थ दिनादि क्षयाहादि की तरह यहा भी करना चाहिये लेकिन तीनो स्थानो मे ९६०० इनसे सवर्णन करना चाहिये ॥१॥

इदानीमधिमासानयन शुद्धि चाह।

हीनराशिदिनसंयुतिर्युता दिग्घ्नवत्सरगणेन भाजिता।
खाग्निभिस्त्वधिकमासकाः फलं शुद्धिरत्र विकलं दिनादिकम् ॥२॥

वि भा —हीनराशिदिनसयुति (क्षयाहादि दिनादियुति) दिग्घ्नवत्सरगणेन (दशगुणित गतवर्षसमूहेन) युता (सहिता) खाग्निभि (त्रिंशद्भि) भाजिता (भक्ता) फल (लब्ध) अधिकमासका स्यु। विकल दिनादिक (दिनाद्यवशिष्ट त्रिंशद्भक्तावशिष्ट वा) अत्र शुद्धि (शुद्धिसज्ञ दिन भवति) ॥२॥

अस्योपपत्ति

एकस्मिन् वर्षे सावनदिनाद्यम् = ३६५। १५। ३०। २२। ३० = ३६५ + १ वर्ष सदिनाद्य

एकस्मिन् वर्षेऽवमानि = ५। ४८। २२। ७। ३० = ५ + १ वर्षस अवमम

अत एकवर्षे चान्द्राहा = ३७१। ३। ५२। ३०। ० = ३७० + १ वर्षसदि + १ वर्षस अवमदि

एकस्मिन् वर्षे सौराहा = ३६०। = ३६०।

अनयोरन्तरेण

एकस्मिन् वर्षेऽधिदिनानि = ११। ३। ५२। ३०। ० = १० + १ वर्षस दिनादि + १ वर्षस अवम

ततोऽनुपातेन

$$\text{गताधिमासाः} = \frac{\text{१ वर्षस अधिदिन} \times \text{गतवर्ष}}{\text{१ वर्ष} \times \text{३०}}$$

$$= \frac{(१० + १\ वर्षसंदिनादि + १\ वर्षसंक्षयमादि)\ गव}{३०}$$

$$= \frac{१०\ गव + १वर्षसंदिनादि \times गव + १\ \ वर्षसंक्षयमादि \times गव}{३०}$$

$$= \frac{१० \cdot गव + गतवर्षसदिनादि + गतवर्षसंक्षयमादि}{३०}$$

अत्राधिशेषस्य शुद्धिसंज्ञा कृताऽऽचार्येणैतावताऽऽचार्योक्तमुपपद्यते। सिद्धान्त-शिरोमणौ भास्कराचार्येणाऽप्येतदनुरूप एव प्रकारोऽभिहित.। यथा, दिनादिक्षया-हादिदिग्घ्नाब्दयोग. खरामैर्हृता. स्यु प्रयाताधिमासाः। भवेच्छुद्धिसंज्ञं यदत्राव-शिष्टमित्यादि, सिद्धान्तशेखरे श्रीपतिनापि "दशगुणाब्ददिनावम संयुति. खदहनै• विहृता अधिमासकाः। भवति शुद्धचभिध खलु शेपकमित्यादि" वटेश्वराचार्योक्ता-नुरूपमेव कथ्यते इति ॥२॥

वि. भा.—क्षयाहादि और दिनादि के योग में दशगुणित गतवर्ष जोड कर तीस से भाग देने से अधिमास होता है, अवशेष शुद्धिसंज्ञक है ॥ २॥

उपपत्ति

एक वर्ष में सावनदिनादि=३६५। १५। ३०। २२। ३०=३६४+१ वर्षसदिनादि

एक वर्ष में अवम=५। ४८। २२। ७। ३०=५+१ वर्षसंक्षयाहादि

दोनो के योग करने से

एक वर्ष में चान्द्रदि=३७१। ३। ५२। ३०। ०=३७०+१ वर्षसदिनादि
+१ वर्षसक्षयाहादि

एक वर्ष में सौरदि=३६०। =३६०

दोनो के अन्तर करने से

एक वर्ष में अधिदिन=११। ३। ५२। ३०। ०=१०+१ वर्ष सदिनादि
+१ वर्षसक्षयाहादि

अब अनुपात से

$$गताधिमास = \frac{१\ वर्षअधिदिन \times गतवर्ष}{१\ वर्ष \times ३०}$$

$$= \frac{(१० + \ वर्षसदिनादि + १\ वर्षसंक्षयहादि)\ गव}{३०}$$

$$= \frac{१०\ गव + १\ वर्षसदिनादि \times गव + १\ वर्षसक्षयाहादि \times गव}{३०}$$

$$= \frac{१०\ गव + \ गतवर्षसदिनादि + गतवर्षसक्षयाहादि}{३०}$$ यहा आचार्य अधिशेष का नाम 'शुद्धि' रखा है। सिद्धान्तशिरोमणि मे भास्कराचार्य भी इसी तरह कहते हैं, जैसे—

"दिनादि क्षयाहादि दिग्घ्नाब्दयोग खरामैर्हृत रयु प्रयाताधिमासाः भवेच्छुद्धिसंज्ञ यदत्रावशिष्टमित्यादि" और सिद्धान्तशेखर में श्रीपति भी इसी तरह कहते हैं। जैसे—

"दश गुणाब्द दिनावम सयुति खदहनैर्विहृता अधिमासका। भवति शुद्ध्यभिधं खलु शेषकमित्यादि" श्रीपति के कथनानुसार ही वटेश्वराचार्य और भास्कराचार्य ने भी अधिमासानयन किया है, कुछ भी अन्तर नहीं है इति ॥२॥

इदानीं पुनरप्यधिमासानयनं शुद्धिं चाह।

अध्यहानिशिवनिघ्नहायनैरन्वितानि खदहनोद्धृतानि वा।
लभ्यतेऽधिकगणोऽवशिष्टकं शुद्धिभद्रमथवा दिनादि यत् ॥३॥

वि भा—अध्यहानि (अधिदिनानि) शिवनिघ्नहायनैः (एकादशगुणितगतवर्षैः) अन्वितानि (युक्तानि) खदहनोद्धृतानि (त्रिंशद्भक्तानि) वा (अथवा) अधिकगणः (अधिकमासगणः) लभ्यते (प्राप्यते) अवशिष्टकं (शेषं) दिनादि यत् (दिनाद्यवयवं यत्) शुद्धिभद्रम् (शुद्धिसंज्ञकम्) इति ॥ ३ ॥

अस्योपपत्तिः।

पूर्वश्लोकोपपत्तिप्रदर्शिताऽन्येकवर्षेऽधिदिनानि = ११ । ३ । ५२ । ३० । ०

ततोऽनुपातेन गताधिमासा = $\frac{(११ । ३ । ५२ । ३० । ०)\text{गव}}{१ \text{ वर्ष} \times ३०}$ =

= $\frac{११\text{गव} + (३ । ५२ । ३० । ० \text{ गव})}{३०} = \frac{११ \text{ गव} + \text{गतवर्ष स अधिदिन}}{३०}$ = गताधिमास

एतावताचार्योक्तमुपपन्नम् ॥ ३ ॥

हि भा.—अधिदिन को ग्यारह गुणित गतवर्ष में जोडकर तीस से भाग देने से अधिमास होता है। दिनादि शेष जो रहता है वह शुद्धिभद्र (शुद्धिसंज्ञक) है ॥

उपपत्ति।

पूर्व श्लोक की उपपत्ति में प्रदर्शित एक वर्ष में अधिदिन = ११ । ३ । ५२ ३० । ०

इससे अनुपात द्वारा गताधिमास = $\frac{(११ । ३ । ५२ । ३० । ० \text{ गव}}{१ \text{ वर्ष} \times ३०}$

= $\frac{११ \text{ गव} + (३ । ५२ । ३० । ०) \text{ गव}}{३०} = \frac{११ \text{ गव} \times \text{गतवर्ष स अधिदिन}}{३०}$

इससे आचार्योक्त सूत्र उपपन्न हुआ ॥ ३ ॥

इदानीं पुनस्तदेवाह।

गोवसु त्रिरसपड्हताः समाः खाभ्रखाभ्रधृति भाजिताः फलम्।
मासकाद्यधिकसंज्ञकं तथा शुद्धिसंज्ञमथवा दिनादिकम् ॥ ४ ॥

वि भा—समा (गताब्दा) गोवसुत्रिरसषड्हता (६६३८६ गुणिता.) खाभ्रखाभ्रधृतिभाजिता (१८०००० भक्ता) फल (लब्ध) मासकाद्यधिकसंज्ञं (अधिमासनामक) भवेत् । दिनादिकमवशिष्ट शुद्धिसंज्ञकमिति ॥ ४ ॥

अस्योपपत्ति ।

यदि युगरविभगणैर्युगाधिमासा लभ्यन्ते तदा गतवर्ष. किमित्यनुपातेन गताधिमासास्तत्स्वरूपम् $= \frac{\text{युगाधिमास} \times \text{गतवर्ष}}{\text{युगरविभगण}} = \frac{१५९३३३६ \times \text{गव}}{४३२००००}$

हरभाज्यौ चतुर्विंशत्यापवर्तितौ तदा $\frac{६६३८९ \times \text{गव}}{१८००००} = $ गताधिमासा. ।

एतावताऽऽचार्योक्तमुपपन्नम् ॥

हि भा—गतवर्ष को (६६३८६) इससे गुणकर १८०००० इतने से भाग देने से अधिमास होता है। दिनादिशेष का नाम शुद्धि है ॥

उपपत्ति

यदि युगरवि भगण मे युगाधिमास पाते हैं तो गतवर्ष मे क्या इस अनुपात से गताधिमास आता है, $\frac{\text{युगाधिमास} \times \text{गतवर्ष}}{\text{युरविभगण}} = \frac{१५९३३३६ \times \text{गव}}{\text{युगभगण} = ४३२००००}$ यहा हर और भाज्य को चौबीस (२४) से अपवर्तन देने से $\frac{६६३८६ \times \text{गव}}{१८००००} =$ गताधिमास, इससे आचार्योक्त पद्य उपपन्न हुआ ॥ ४ ॥

इदानी पुनरपि तदेवाह ।

रुद्रनिघ्न निजहार संयुतैरध्यहानि गुणकैः प्रसाधयेत् ।
तानि खाग्निभजिताधिमासका वाऽवशिष्टदिवसा विशुद्धय· ॥ ५ ॥

वि भा—अध्यहानि (अधिदिनानि) रुद्रनिघ्ननिजहारसयुतै (अधिदिनगुणहारै) प्रसाधयेत्, तानि (अधिदिनानि) खाग्निभजिताधिमासका (अधिदिनानि त्रिंशद्भक्तानि तदाऽधिमासका) भवन्ति, अवशिष्टदिवसा (शेषदिनानि) विशुद्धय (शुद्धिसंज्ञका) भवन्तीति ॥५॥

अत्रोपपत्तिस्तु अस्यैवाध्यायस्य तृतीयश्लोकोपपत्तिं हृदि निधाय बोध्याऽत्र किमपि विशेष वस्तु न कथयति ग्रन्थकार इति ॥ ५ ॥

हि भा—अधिदिन अपने गुणक हर आदि के द्वारा साधन करना, अधिदिन को तीस से भाग देने से अधिमास होता है। शेष दिन शुद्धिसंज्ञक है ॥५॥

उपपत्ति

इसकी उपपत्ति इसी अध्याय के तीसरे श्लोक की उपपत्ति को मन मे रखकर समझनी चाहिये। कुछ विशेष बातें ग्रन्थकार नही कहते हैं ॥ ५ ॥

अथ वर्षपतिज्ञानमाह ।

वत्सरान्वितदिनेषु सप्तभिर्भक्तशेषमिह वत्सराधिपः ।
स्युस्ततो रविभसंघकान्तिका मध्यमा दिविचराः सुखेन हि ॥ ६ ॥

वि. भा.—वत्सरान्वितदिनेषु (गताब्ददिनयोगेषु) सप्तभिर्भक्तं शेषं वत्सराधिपः (वर्षेशः) भवति । मध्यमादिविचराः (मध्यमग्रहाः) रविभसङ्घकान्तिकाः (रविभगणान्तकालिकाः) सुखेन स्युरिति ॥ ६ ॥

अत्रोपपत्तिः ।

अथकस्मिन् वर्षे सावनदिनाद्या=३६५ । १५ । ३१ । १५=३६५+दिनानि, तत इष्टवर्षान्ते सावनदिनाद्यम्=३६५×गव+गव×दिनादि,=कल्पादितोऽभीष्ट वर्षान्ते सावयवः सावनाहर्गणः, अत्र प्रथमखण्डे सप्तभक्ते यच्छेषं द्वितीय खण्डेऽपि सप्तभक्ते यच्छेष तयोरेकत्रीकरणं भवति, एतेन रव्यादि वारगणनया वर्षपतिज्ञानं सुखेनैव भवेदिति ॥ शेषस्य वासना सुगमैव यत. कल्पवर्षैः कल्पग्रह-भगणा लभ्यन्ते तदा गतवर्षैः किमित्यनुपातेन सौरभगणान्ते ग्रहा. समागच्छन्तीति ॥ ६ ॥

हि. भा—गतवर्ष और दिन के योग मे सात से भाग देने से जो शेष रहता है वह वर्षपति होता है । और रविभगणान्त मे मध्यमग्रह सुगम ही मे होने है ॥ ६ ॥

उपपत्ति ।

एक वर्ष मे सावनदिनादि=३६५ । १५ । ३१ । १५ । ०=३६५+दिनादि इस पर से इष्टवर्षान्त मे सावनदिनादि=३६५×गव+गव×दिनादि=कल्पादि मे इष्टवर्षान्त मे सावयव सावनाहर्गण, यहा प्रथमखण्ड मे सात से भाग देने से जो शेष रहता है और द्वितीय खण्ड मे सात मे भाग देने से जो शेष रहता है दोनो के समिश्रण हैं इससे रवि आदि वारगणना से वर्षपति ज्ञान सुगम ही है । अवशिष्ट की उपपत्ति सरल ही है क्योकि कल्पवर्ष मे कल्पग्रह-भगण पाते हैं तो गतवर्ष मे क्या इस अनुपात से रवि भगणान्त में मध्यमग्रह आते है ॥ ६ ॥

पुनस्तदेवाह ।

पञ्चवत्सरहतिर्युताऽवमैर्वर्जिताऽधिकदिनैर्नगैर्हृता ।
शेषसप्त विवर समाधिपो वा दिनाधिप समाधिपः स्फुटः ॥७॥

वि. भा—पञ्चवत्सरहति. (पञ्चगुणितगतवत्सरः) अवमैः (क्षयदिनैः) युता (सहिता) अधिकदिनैः (अधिकमासदिनै) विवर्जिता (रहिता) नगैः (सप्तभिः) हृता (भक्ता) शेषसप्तविवर समाधिपः (वर्षपतिः) अथवा दिनाधिप समाधिपः स्फुट. (दिनपतिर्वर्षपतिश्च) स्फुटः कथ्यतेऽग्रे इति ॥७॥

अस्योपपत्तिः ।

अथैकवर्षे क्षयाहाद्यम्=५ । ४८ । २२ । ७ । ३० ततो गतवर्षसम्बन्धि क्षयाहाद्यम्=गव (५ । ४८ । २२ । ७ । ३०) =५ गव+गव (० । ४८ । २२ । ७ । ३०)

तथैकवर्षेऽधिघटधात्मकम्=० । ३ । ५२ । ३० । ० गतवर्ष सम्बन्ध्यधिक घट्यात्मकम्=गव (० । ३ । ५२ । ३० । ०) अतोऽनयोरन्तरम्= गव (० । ४८ । २२ । ७ । ३०)—गव (० । ३ । ५२ । ३० । ०) = गतवस अवमघट्यादि—गतवसंअधिदिघ.

∴ ५ गव+गतवसअवमघट्यादि—गवसअधिदिघ. सप्तष्टिते शेषो रव्यादि-वारगणनया वर्षपतिर्भवेदिति ॥७॥

हि. भा.—गतवर्ष और पांच के घात मे क्षयदिन जोड देना अधिदिन घटाकर सात से भाग देने मे जो शेष रहे उसे सात मे घटाने से वर्षपति होना है। अथवा स्फुट दिनपति और वर्षपति के विचार आगे कहते हैं ॥७॥

उपपत्ति।

एक वर्ष मे क्षयहादि=५ । ४८ । २२ । ७ । ३० गतवर्षसम्बन्धिक्षयाहादि=गव (५ । ४८ । २२ । ७ । ३०) = ५ गव+गव (० । ४८ । २२ । ७ । ३०)
एक वर्ष मे अधिक दिन घट्यादि=० । ३ । ५२ । ३० । ०
गतवर्ष सम्बन्धी अधिकदिन घट्यादि=गव (० । ३ । ५२ । ३० । ०)
अत दोनो के अन्तर=गव (० । ४८ । २२ । ७ । ३०)—गव (० । ३ । ५२ । ३० । ०)

=गवस अवम घट्यादि—गवस अधिदिघ

∴ ५ गव+गतवस अवम घट्यादि—गवस अधिदिघ सात से भाग देने से शेष रवि आदि गणनाक्रम से वर्षपति होगा ॥७॥

इदानीमब्दपरयानयनमाह

द्विनिघ्नेवत्सरनिकरेऽधिकोनिते युतेऽवमनिकरेण हीनिता शुद्धिः।
स्वभागहार-युतगुणैर्यथोक्तवह्निनादितेष्वगहृतशेषमब्दपः ॥८॥

वि. भा.—वत्सरनिकरे (गतवर्षसमूहे) अधिकोनिते (अधिमासहीनिते) द्विनिघ्ने (द्विगुणिते) अवमनिकरेण (क्षयदिनसमूहेन) युते (सहिते) एतेन फलेन शुद्धि. हीनिता (रहिता) स्वभागहारयुतगुणैः पूर्ववर्ह्निनादिफलं तेषु अवहृतशेष (सप्तभक्तावशिष्ट) अब्दपः (वर्षपति.) भवेदिति ॥८॥

अस्योपपत्ति.।

३६०×गव=गतवर्ष सम्बन्धिसौदि, परगतवर्षसं अधिमादि=३० गवसंअ +अशे अतो गतवर्ष सचान्द्रदि=गवससौदि+गवसअमादि
=३६० गव+३० गवस अमादि+अशे

अतः गवससावन=गतवसचन्द्रदि — गतवर्षसम्बन्धिक्षयाहाः सावयवाः
=३६० गव+३० गवसअमा+अशे—(५ गव+क्षमदि+क्षशे)
=३६० गव+३० गवसअमा+अशे—५ गव—क्षदि—क्षशे

यथायोग्यं सप्ततष्टखण्डग्रहणेन

$\frac{\text{गतवससा}}{७}$ = गवससा$_१$ = ३ गव + २ गवसंग्रमा + ग्रशे — ५ गव — क्षदि — क्षशे

= ३ गव + २ गवसंग्रमा + (ग्रशे — क्षशे) — ५ गव — क्षदि

= ३ गव + २ गवसंग्रमा + शुद्धि — ५ गव — क्षदि

= शुद्धि — २ (गव — गवसंग्रमा) — क्षदि

= शु — $\{$ २ (गव — गवसग्रमा) + क्षदि $\}$

अयं सप्ततष्टः सन् रव्यादिगणनया वर्त्तमानवारबोधकोऽङ्को भवेदिति सुस्पष्टमेव । पर निरवयवशुद्धिः > २९ ईदृशी कदापि न स्यात् । गव — गग्रमा + क्षदि > २९ इति बहुधा सम्भाव्यते, अतः ऋणखण्डं प्रथमं सप्ततष्टितं कृत्वा शेषं शुद्धेर्विशोध्य पुनः सप्ततक्षणं विधेयमिति ॥८॥

हि. भा.—गतवर्ष में अधिकमास को घटाकर द्विगुणित करना क्षयदिन जोड देना तब जो फल हो उसको शुद्धि में घटा देना अपना भागहार जोड गुणक द्वारा पूर्ववत् दिनादि-फल जो हो उसमे सात से भाग देने में जो शेष रहे वह वर्षपति होता है ॥८॥

उपपत्ति

३६० × गव = गतवर्षससौरदि, पर गतवर्षसग्रमादि = ३० गवसग्रमा + ग्रशे
इसलिए गवसचांदि = गवस सौदि + गवसग्रमादि =
= ३६० गव + ३० गवसग्रमादि + ग्रशे

अतः गवससावन = गवसचांदि — गतवर्षसक्षयाहा सावयवा
= ३६० गव + ३० गवसग्रमा + ग्रशे — (५ गव + क्षदि + क्षशे)
= ३६० गव + ३० गवसग्रमा + ग्रशे — ५ गव — क्षदि — क्षशे
सात से भाग देने से

गतवससावन$_१$ = गवससावन = ३ गव + २ गवसग्रमा + ग्रशे — ५ गव — क्षदि — क्षशे
= ३ गव + २ गवसंग्रमा + (ग्रशे — क्षशे) — ५ गव — क्षदि
= ३ गव + २ गवसग्रमा + शुद्धि — ५ गव — क्षदि
= शुद्धि — २(गव — गवसग्रमा) — क्षदि
= शुद्धि — $\{$ २ (गव — गवसग्रमा) + क्षदि $\}$

इसको सात से भाग देने से रव्यादि गणना क्रम से वर्त्तमान वारबोधक अङ्क होता है। पर निरवयव शुद्धि > २९ ऐसी कदापि नहीं होती है। गव — गग्रमा + क्षदि > २९ यह बहुधा हो सकता है इसलिए ऋण खण्ड को पहले सात से भाग देकर जो शेष रहे उस को शुद्धि में घटाकर फिर सात से भाग देना चाहिए ॥८॥

इदानी चान्द्रवर्षसम्बन्धेन वर्षपतिज्ञानार्थमतिदिशति ।

इत्यब्दपोऽयमभिहितोऽधुना विधोः समापतिर्मधुसितपूर्ववासरे ।
समागणाद्दिननिकरं यथोक्तवत् प्रसाध्य चेह गतवत्सराधिपः ॥९॥

वि. भा. — इति (एव) अय (पूर्वोक्त.) अब्दपः (वर्षपतिः) अभिहितः (कथित) . अधुना (इदानी) विधोः (चन्द्रस्य) मधुसितपूर्ववासरे (चैत्रशुक्लादि-दिने) समापति· (वर्षपति- कथ्यते इति शेषः । यथोक्तवत् (पूर्वकथितवत्) समागणात् (वर्षसमूहात्) दिननिकर (अहर्गण) प्रसाध्य (साधन कृत्वा) गतवत्सराधिप (गतवर्षपति) बोध्य इति ॥ ९ ॥

हि भा — इस तरह पूर्वोक्त वर्षपति कहा गया है । इस समय चन्द का चैत्रशुक्ल प्रतिपदादि मे वर्षपति कहते हैं । पूर्ववत् गतवर्ष से अहर्गण साधन कर गतवर्षपति ज्ञान करना चाहिये ॥९॥

इदानी तदाह।

वाऽवमद्विकहतेः फलं च यत्प्रोज्झ्य वर्षशरघाततोऽब्दपः ।
शुद्धिहीनदिवसेषु वाऽब्दपो हीनरात्रघटिकाब्दसंयुतः ॥१०॥

वि भा — वा अवमद्विकहते फल यत् (द्विगुणितमवम यत्) वर्षशरघाततः (पञ्चगुणितगतवर्षत) प्रोज्झ्य (शोधयित्वा) शुद्धिहीनदिवसेषु (शुद्धिरूपाव-मदिनेषु) प्रोज्झ्याब्दपतिर्भवेत् । अथवा हीनरात्रघटिकाब्दसयुतः (अवमघटीरूप-शुद्धिदिनवर्षयोग) अब्दप. स्यात् । हीनरात्रघटिकाशब्देन शुद्धिदिनान्युच्यन्ते ।

अत्रोपपत्ति ।

कल्यादेरिष्ट सौरवर्षान्त सावनदिनानि=३६५ गव+दिनादि एभ्योऽमान्त-ऽब्दान्त मध्ये यानि सावनानि शुद्धि मितानि तानि विशोध्य तदा चैत्रादौ सावन दिनानि=३६५ गव+दिनादि—शुद्धि एतानि सप्तभिर्भक्तानि वर्तमानवारार्थं सैकानि तदा रवितो वार = गव+दिनानि—शुद्धि+१, कदाचिद्रूपयोगविनापि वारो जायते यदि शुद्धिः सशेषा भवेत्तदैव दिनाब्दयुतौ रूप योज्यमन्यथा (शेषरहितशुद्धौ) रूपयोजनस्यावश्यकता न भवेदिति ॥ १० ॥

हि. भा. — वा अवम और दो के घातफल जो हो उसको पञ्चगुणित गतवर्ष मे घटाकर या शुद्धि रहितदिनादि मे या अवमघटीरूपशुद्धिदिनवर्ष जोडने मे वर्षपति होते हैं ॥१०॥

उपपत्ति ।

पूर्वार्ध की उपपति सरल ही है ।

कल्यादि से इष्टसौरवर्षान्त तक सावनादि=३६५ गव+दिनादि इसमे अमान्त और सौरवर्षान्त के मध्य मे जो सावन शुद्धि हैं उनको घटा देने से चैत्रादि मे सावन दिन होते हैं ३६५ गव+दिनादि—शु इसको सात मे भाग देना और वर्तमान वार के लिए एक सहित करना तब रवि से वार होते हैं गव+दिनादि—शु+१ कभी कभी विना रूप जोड़ने से

भी वार हो जाते हैं यदि शुद्धि शेष (शेष सहित) हो तभी दिनादि और वष योग मे एक जोडना चाहिये अन्यथा नहीं ॥१०॥

इदानी चान्द्रवषपतिज्ञानार्थमाह् ।

एवमर्कभगणाब्द प्रेरितैरैन्दवस्य करणं प्रसाधनम् ।
हीनाह् नाडी वियुता विशुद्धचा नव्य शशाङ्काब्दपतिस्तु सौर ॥११।।
स नाडियुक्तोऽथवारूपयुक्त शुद्धचा विहीनो विधुवर्षप स्यात् ।

वि भा —एव (अनया वा रीत्या) अर्कभगणाब्दप्रेरितै (सूर्यभगणवर्षसञ्चालितै) करणै (क्रियाभि साधनैर्वा) ऐन्दवस्य (चान्द्रमस) प्रसाधन (वर्षपत्याद्यानयन) भवेत् । हीनाहनाडी (क्षयघटी) विशुद्धचा (पूर्वोक्तशुद्धिसज्ञकेन) वियुता (रहिता) कार्या तदा नव्य (नवीन) शशाङ्काब्दपति (चन्द्रवर्षपति) भवेत् । स सौर (अब्द) नाडियुक्त (दिनाद्येन युक्त) रूपयुक्त (एकसहित) शुद्धचा विहीन (शुद्धिरहित) तदा विधुवर्षप (चन्द्रवर्षपति) स्यादिति ॥ ११½ ॥

अत्रोपपत्ति ।

शुद्धिहीनदिवसेषु वाब्दप इत्याद्युपत्तिवदस्याप्युपपत्तिर्बोध्येति ॥११½॥

हि भा —इस तरह सूयभगण और वष से प्रेरित साधनो द्वारा चन्द्रवषपति आदि का साधन होता है । क्षयघटी म पूवकथित शुद्धि को घटाने से चन्द्र वषपति होते है । गतसौरवष मे दिनादि जोड देना एक जोडकर शुद्धि को घटाने से चन्द्र वषपति होते हैं ॥११½॥

उपपत्ति ।

शुद्धिहीनदिवसेषु वाब्दप इत्यादि की उपपत्ति की तरह इसकी भी उपपत्ति समझनी चाहिय ॥११½॥

इदानीमुपयुक्तान् ग्रहध्रुवकानाह ।

प्राग्वद्रविवर्षे सिद्धि खेचराणा सूर्याहतशुद्धिर्भागादिकशशी वा ॥१२॥

वि भा — प्राग्वत् (पूर्ववत्) रविवर्षे (सौरवर्षे) खेचराणा (ग्रहाणा) सिद्धि, वा सूर्याहतशुद्धि भागादिशशी (द्वादशगुणितशुद्धि सौरवर्षादौ) चन्द्रो भवेदथाद् भागाद्यश्चन्द्रस्य ध्रुवको भवेत् ॥१२॥

सर्वप्रथम सूर्यध्रुवककथनमवाचितमस्ति पर सौरवर्षादौ रवेर्न्यूनता-भावात्र कथ्यते ॥१२॥

अत्रोपपत्ति ।

रविचन्द्रयोर्द्वादशाशान्तरेणैका तिथिर्भवति तेन तिथयो द्वादशगुणितास्तदा रविचन्द्रयोरन्तराशा भवेयुस्ते सूर्ये योज्यास्तदा चन्द्र स्यात् । सौरवर्षादौ भुक्तास्तिथय शुद्धिमिता अता द्वादशगुणाशुद्धिरन्तराशा, पर सौरवर्षादौ रवेश्चक्र-पूर्तित्वाद्राश्यादिसूर्यस्य शून्यतुल्यत्वेन सूर्यध्रुवकाभावाद्रविचन्द्रान्तरांशा एव चन्द्रस्य भागादिका ध्रुवक इति ॥१२॥

हि भा —पूर्ववत् सौरवर्षों से ग्रहो की सिद्धि होती है या बारह से गुणित शुद्धि अशादिचन्द्र होते हैं अर्थात् अशादि चन्द्र ध्रुवक होते हैं ॥

उपपत्ति

यहा सबसे पहले सूर्य के ध्रुवक कहने चाहियें, पर सूर्य के ध्रुवक को नही कहते हैं इसका कारण यह है कि सौरवर्षादि मे रवि के ध्रुवक के अभाव होने से नही कहा गया, रवि और चन्द्र के बारह अश अन्तर होने से एक तिथि होती है। तिथि को बारह से गुणने से रवि और चन्द्र के अन्तराश होते हैं उसको रवि मे जोडने से चन्द्र होते हैं। सौर वर्षादि मे भुक्ततिथि शुद्धि के बराबर है इसलिये शुद्धि को बारह से गुणने से रवि और चन्द्र के अन्तराश हुए। लेकिन सौरवर्षादि मे रवि के भगण पूरा होने के कारण राश्यादि रवि के शून्य होने से सूर्य के ध्रुव का भाव हुआ अत रवि और चन्द्र के अन्तराश ही भागादिक चन्द्र ध्रुवक हुए ॥१२॥

अथ सौरवर्षादौ ग्रहादिध्रुवकानाह ।

चन्द्रोच्चपातावथ वर्षराशि व्योमाश्वमार्गो रजनीकरश्च ।
शीतांशुवेदैः कुभुजं कुचन्द्रैः पयोधिरामं खखपक्षभागैः ॥१३॥
भौम कुनन्देन्दुभिरिन्दुजस्य शीघ्रं तथा वेदशरैः सुरेज्य ।
व्योमाग्निभिस्तस्त्वयमं सितस्य शीघ्रं शनिर्भानुभिरब्दराशिम् ॥१४॥

वि. भा —स्पष्टार्थौ ।

ग्रहादीनामेकवर्षसम्बन्धीया, भागादि का ध्रुवका पठिता इति । ॥१३-१४॥

हि भा —इनके अर्थ स्पष्ट है।

ग्रहो के तथा चन्द्रपात और चन्द्रमन्दोच्च के एक सौरवर्ष के आदि मे भागात्मक ध्रुवक पठित हैं। चन्द्रोच्च का ४० । चन्द्रपात का १६, एव चन्द्रोच्च का ४१, पात का २१ । चन्द्रोच्च का ११, चन्द्रपात ३४, चन्द्रोच्च का २०० । चन्द्रपात=० । मङ्गल के ११९, बुधशीघ्रोच्च के ५४, गुरु के ३० शुक्रशीघ्रोच्च का २२५ । शनि के १२ ॥ १३-१४ ॥

ग्रह चन्द्रपातमन्दोच्चों के एक वर्ष सम्बन्धी ध्रुवक पठित किये गये हैं ॥१३-१४॥

पूर्वं चन्द्रानयनमुक्तमिदानीं कुजादीना तदानयनमाह ।
तत्रादौ कुजानयनम्

सप्तव्योमाक्षिवेदाग्निहतात्सूर्यात्फलं क्षिपेत् ।
तच्छून्यखखखाष्टाभ्रभूमिभिर्भूजो रवेर्दले ॥ १५ ॥

वि भा —सप्तव्योमाक्षिवेदाग्नि (३४२०७ एतैः) हतात् (गुणितात्) सूर्यात्, शून्यख-खखाष्टाभ्रभूमि (१०८००००) भजनाद्यत्फल तद्रवेर्दले (सूर्यार्द्धे) क्षिपेत्तदा भूज (कुजोऽर्थात्कुजो भवेत्) ॥ १५ ॥

अत्रोपपत्ति

कुजस्यैकवर्षभवान् ध्रुवकान् गतवर्षेण सगुणितान् कृत्वा गुणनभजना-

दिना तदीयमानमुपपद्यते सर्वेषां ग्रहादीनामेकवर्षभवध्रुवकं गतवर्षेः सगुणय गुणनभजनादिना ग्रहाद्या उपपद्यन्ते ॥ १५ ॥

हि भा—सूर्य को ३४२०७ इतने से गुणकर १०८०००० इनसे भाग देने से जो फल हो उसको रवि के आधे में जोड़ने से कुज के मान होते हैं।

कुज के एक वर्षसम्बन्धी पठित ध्रुवक को गतवर्ष से गुणकर गुणन-भजनादि से उनके ध्रुवक उपपन्न होते हैं। सब ग्रहों के लिये यही क्रम है हर एक ग्रह के पठित ध्रुवक को गतवर्ष से गुणकर गुणन भजनादि से उनके मान उपपन्न होते हैं॥ १५ ॥

इदानीं बुधशीघ्रोच्चानयनमाह ।

सुरपक्ष नखहताद्यल्लखाभ्र पञ्चाग्निशशिभिराप्तं यत् ।
क्षेप्यं वेदहतेतद् बुधशीघ्रं वा भवत्येवम् ॥ १६ ॥

वि. भा—गतवर्षात् सुरपक्ष नखहतात् (२०५३३ एतैर्गुणितात्) खखाभ्र-पञ्चाग्निशशिभि (१३५००० एतैर्भजनात्) यदाप्तं (यल्लब्धं तद्वेदहते) (चतुर्गुणिते) गतवर्षे क्षेप्यं तदा बुधशीघ्रं (बुधशीघ्रोच्चं) भवति ॥

उपपत्त्यर्थं कुजानयने प्रक्रिया प्रतिपादितैवेति ॥ १६ ॥

हि भा—गतवर्ष को २०५३३ इनसे गुणकर १३५००० इनसे भाग देकर जो फल हो उसको चार से गुणित गतवर्ष में जोड़ने से बुध शीघ्रोच्च होते हैं ॥ १६ ॥

इदानीं शुक्रशीघ्रोच्चानयनमाह ।

शिवतत्त्वगुणहतोनादयुतद्वयभाजितादाप्तं यत् ।
तद्भृगुपुत्रचलोच्चं भवतीह मुनीरितं वापि ॥ १७ ॥

वि भा—गतवर्षात्-शिवतत्त्वगुणहतोनादयुतद्वयभाजितात्—आप्तं भृगुपुत्रचलोच्चं (शुक्रशीघ्रकेन्द्र) भवति, इति मुनीरितं (मुनिकथितं) मस्तीति ।

$$\text{गव} \times ३२५११ - \frac{\text{गव} \times ३२५११}{२००००} = \text{शुक्रशीघ्रोच्चम्} ।$$

हि भा—गतवर्ष को ३२५११ इनसे गुणकर २०००० इनसे भाग लेकर जो हो उसको उसमें घटाने से बुध शीघ्रोच्च होता है $\text{गव} \times ३२५११ - \frac{\text{गव } ३२५११}{२००००} = \text{शुक्रशीघ्रोच्च}$ ।

इदानीं शनेरानयनमाह ।

रविसाम्यं योज्यं लब्धं नगखैकताडिताद्भानोः ।
सचतुष्टयाप्तशशिभिर्वा रविसूनुर्भवत्येवम् ॥ १८ ॥

वि. भा—रविसाम्यं (रवेस्त्रिशदंश) नगखैकताडिताद्भानो (१०७ एतद्-

गुणितसूर्यात्) खचतुष्टयाष्टशशिभिर्भक्ताद्यल्लब्ध (१८०००० एभिर्भक्ताद् यत्फल) तद्योज्य तदा रविसूनु (शनैश्चर) भवेदिति।

$$\frac{\text{रवि}}{३०}+\frac{१०७\ \text{रवि}}{१८००००}=\text{शनि} \quad ॥ १८ ॥$$

हि भा —रवि के तीसवें भाग में १०७ गुणित रवि में १८०००० इतने से भाग देकर जो फल हो उसको जोडने से शनि होते हैं ॥

$$\frac{\text{रवि}}{३०}+\frac{१०७\ \text{रवि}}{१८००००}=\text{शनि} \quad ॥ १८ ॥$$

इदानीं चन्द्रमन्दोच्चानयनमाह।

रविनवभागे योज्य नगैकचन्द्राष्टताडिताद्भानो ।
खचतुष्टयवेदेन्द्रैर्हिमगूच्चं वा भवत्येवम् ॥ १९ ॥

वि भा —रविनवभागे (रविनवांशे) नगैकचन्द्राष्टताडिताद्भानो (८११७ एतद्गुणितसूर्यात्) खचतुष्टयवेदेन्द्रै (१४४०००० एभि) एभिर्भाजिताद् यल्लब्ध तद्योज्य तदा हिमगूच्च (चन्द्रमन्दोच्च) भवेत् ॥

$$\frac{\text{रवि}}{९}+\frac{८११७\ \text{रवि}}{१४४००००}=\text{चन्द्रमन्दोच्चम्} \quad ॥ १९ ॥$$

हि भा —रवि के नवम भाग में ८११७ एतद्गुणित रवि को १४४०००० इनसे भाग देने से जो फल हो उसको जोडने से चन्द्रमन्दोच्च होता है ॥ १९ ॥

प्रकारान्तरेण तदानयनमाह।

सवितृनखांशे योज्य नगैकचन्द्राष्टताडिताद् भानो ।
खचतुष्टयवेदेन्द्रैर्हिमगूच्चं वा भवत्येवम् ॥ २० ॥

वि भा —सवितृनखांशे (सूर्यविंशत्यंशे) नगैकचन्द्राष्टताडिताद् भानो (८११७ एतद्गुणितसूर्यात्) खचतुष्टयवेदेन्द्रै (१४४००००) भक्ताद्यल्लब्धं तद्योज्य तदा चन्द्रमन्दोच्च भवेत् ॥ २० ॥

$$\frac{\text{रवि}}{२०}+\frac{८११७\ \text{रवि}}{१४४००००}=\text{चन्द्रमन्दोच्चम्}।$$

हि भा —रवि के बीसवें भाग में ८११७ एतद्गुणित रवि को १४४०००० इनसे भाग देकर जो फल हो उसको जोडने से चन्द्रमन्दोच्च होता है ॥ २० ॥

$$\frac{\text{रवि}}{२०}+\frac{\text{रवि}\ ८११७}{१४४००००}=\text{चन्द्रमन्दोच्च} \quad ॥ २० ॥$$

इदानीं चन्द्रपातानयनमाह

अयुतरसैकभुजैः शशधरपातोऽथवा लब्धम्।

वि भा —अयुतरसैकभुजै (२१६००००) एतैर्भक्ताद्रवेर्यल्लब्ध शशधरपात (चन्द्रपात) स्यादिति।

एतेषामुपपत्तयो मङ्गलानयनलिखितपद्धत्या कार्या ।

हि भा —२१६०००० इतने से गतवर्ष को भाग देने से चन्द्रपात प्रमाण होता है ॥ इन सब की उपपत्तिया कुजानयन मे लिखी हुई रीति से करनी चाहिये ॥

इदानी मध्यमरविमेषादिवस्य सावनाहर्गणस्यानयनमाह ।

चैत्रादिस्तिथिनिकर: शुद्धिविहीनः पृथग्गुणो रुद्रै· ॥२१॥

अवमघटीभ्यः षष्टचा लब्धयुतस्त्रिखनगहृताम्य ।

त्रिखनगहृतावमोनो द्युगणोऽब्दावमघटीसमेत· स्यात् ॥२२॥

वि भा —चैत्रादिस्तिथिनिकर (चैत्रशुक्लप्रतिपदादित इष्टदिनपर्यन्त तिथिसमूह) शुद्धिविहीन (पूर्वोक्तशुद्धिदिनादिना रहित) पृथक् (स्थानद्वये स्थापनीय) एकत्र रुद्रै (एकादशभि) गुण (गुणित) त्रिखनगहृताभ्योऽवम-घटीभ्य (७०३ गुणितावमघटीभ्य) षष्टचा लब्धयुत (षष्टचा भागे हृते यत्फल तेन सहित) त्रिखनगहृतावमोन (त्रिखनग ७०३ हृताप्तैरवमैर्दिनादिघटिकान्तै रहित उपरिस्थापितो राशि) अब्दावमघटीसमेत (वर्षान्तिक्षयघटीयुक्त) तदा द्युगण (अहर्गण) भवेदिति ॥२१-२२॥

अत्रोपपत्ति

चैत्र शुक्लाद्यास्तिथयो यदि शुद्धि सावनदिनैर्विशोध्यन्ते तदा चैत्राद्यवमशेष रव्युदयामावास्यान्तयोरन्तरे ते द्वे अप्येकत्रावमांशत्व भजत । अवमाशा अधिका शुद्धयूनास्तिथिषु द्रष्टव्या । यतश्चैत्रादितिथिभ्यो सौरवर्पान्तचैत्रशुक्लाद्योरन्तर चान्द्र शुद्ध भवति केवल सर्व समाशा अद्यापि न शुद्धयन्ते । ततोऽनुपातो यदि त्रिव्योमनग (७०३) तुल्यैश्चान्द्रदिनैरेकादशावमानि लभ्यन्ते तदा सौरवर्षान्तादगत तिथिभि किमित्यनुपातेन सौरवर्षान्ते यदवमशेष समागत तत्तत्रैव योज्यते । यत शुद्धिशोधनावसरे न शोधित तद्योज्यते तदेव शुध्यति । चान्द्रदिनान्युपरि शुद्धानि भवन्ति । अतोऽवमाशा ७०३ गुणिता सवर्णीभवन्ति, एव यदाप्तमेकादश गुणा तिथिषु यावदवमाशास्तेष्वेव तिथिष्वधिकास्तिष्ठन्ति । ते च तिथिभि सह एकादश-गुणा जाता । एव यत्फल समागत तदेकादशगुणिततिथिषु प्रयोज्यावम भवति । तत ७०३ विभज्य ऊनरात्रा लभ्यन्ते शेषमिष्टदिने सावन लब्धोनरात्राश्च सौर-वर्षान्ततिथिगणाद्विशोध्याहर्गणो भवतीति ॥२१-२२॥

हि भा —चैत्र शुक्ल प्रतिपदादि से इष्टदिन पर्यन्त जो तिथि समूह है उसम पूर्वोक्त शुद्धि दिन को घटाकर दो जगहो मे रखना, एक स्थान म ग्यारह स गुणा देना, ७०३ गुणित अवमघटी मे साठ से भाग लेने से जो लब्धि हो उसे जोड देना, ७०३ भक्त अवमफलकरके उपरि स्थापित राशि म घटा देना अवमघटी जोड देना तब अहर्गण होता है ॥२१-२२॥

उपपत्ति

चैत्रादि तिथि मे शुद्धि सावन दिन को घटा देते हैं तो सूर्योदयामान्त काल के अन्तर चैत्रादि अवमशेष रहता है शुद्धि रहित तिथि अवमाश होता है । चैत्रशुक्लादि तिथि से सौर-

वर्षान्त और चैत्रशुक्लादि का अन्तर शुद्धि चान्द्रतिथि है। अब अनुपात करते है, यदि ७०३ चान्द्रदिनो मे ११ ग्यारह अवम पाते हैं तो सौरवर्षान्त से गततिथि मे क्या इस अनुपात से वर्षान्त मे जोड अवमशेष आता है उसको वहीं पर जोडते हैं। चान्द्रदिन शुद्धि हैं इसलिए अवमाग को ७०३ गुणने से सवर्णन हो जाता हैं। इस तरह जो फल आता है उसको ग्यारह गुणित तिथि म जोड देने से अवम होता है। बाद में ७०३ से भाग देने से जो क्षय घटी शेष आती है उसको सौरवर्षान्तकालिक तिथिगण (चान्द्राहर्गण) म घटाने से सावनाहर्गण होता है ॥२१-२२॥

प्रकारान्तरेणाहर्गणानयनम्।

मध्वाद्यास्तिथयो वा सावननाड्योऽव्य शुद्धयूना.।
पृथगजनिघ्नास्तिथिभिर्हीनघटीभिस्त्रिखाद्रि गुणिताभि ॥२३॥
लब्धयुतास्त्रिखमुनिभिर्लब्धावमवर्जितो द्युगण ।

वि भा —वा मध्वाद्यास्तिथय (चैत्रशुक्ल प्रतिपदादितस्तिथिनिकर) सावननाड्य शुद्धयूना (शुद्धिदिनरहिता) पृथक् (स्थानद्वये स्थाप्या) अजनिघ्ना (एकादश गुणिता) त्रिखाद्रिगुणिताभि (७०३ एतैर्गुणिताभि) तिथिभिर्हीन घटीभि (क्षयशेपतिथिघटीभि) लब्धयुता (एकादशगुणित शुद्धिरहिततिथौ लब्धफल सहिता) त्रिखमुनिभिर्लब्धावमवर्जित (७०३ भजनेन यल्लब्धमवम तेन पृथक् स्थापित शुद्धिरहिततिथिनिकरो रहित) तदा द्युगण (अहर्गण.) भवेदिति ॥२३॥

अत्रोपपत्ति

लब्ध्वहर्गणेऽवमानयनार्थं त्रिखनगचान्द्रदिनैरेकादशमितान्यवमानि स्वल्पान्तरात्प्रकल्प्याऽनुपातो यदि ७०३ चान्द्रदिनैरेकादश तुल्यान्यवमानि लभ्यन्ते तदा शुद्धयूनतिथिभि किमित्यनुपातेन यत्फल तत्र वर्षान्तक्षयशेपयोजनेनावमानि भवन्ति

$$\frac{११ (\text{चैति}-\text{शुद्धि})}{७०३} + \text{क्षयशे} = \text{अवमानि}$$

$$= \frac{११ (\text{चैति}-\text{शुद्धि})}{७०३} + \frac{७०३ \text{ क्षयशे}}{७०३} = \frac{११ (\text{चैति}-\text{शु}) \; ७०३ \text{ क्षयशे}}{७०३}$$

एतान्येवावमानि शुद्धिरहिततिथौ रहितानितदाऽहर्गणो भवेदिति ॥

हि भा—चैत्रशुक्लादि तिथियो मे शुद्धि घटाकर जो हो उनको दो स्थानो म स्थापन करना, एक स्थान म ग्यारह से गुण देना ७०३ गुणित अवमशेष घटी जोड कर ७०३ इससे भाग देने से जो फल अवम हो उसको द्वितीय स्थान म रखे हुए शुद्धि रहित तिथि म घटाने से अहर्गण होना है ॥२३॥

उपपत्ति।

लब्धहर्गण मे अवमानयन के लिये ७०३ चान्द्रदिनो से ग्यारह अवम को स्वल्पान्तर से मानकर अनुपात करते हैं। यदि ७०३ चान्द्रदिनो मे ग्यारह अवम पाते हैं तो शुद्धिरहित तिथि मे क्या इस अनुपात से जो फल आवेगा उसमे क्षय शेष जोडने से अवम प्रमाण होंगे।

$$\frac{११ (\text{चैत}-\text{शु})}{७०३}+\text{क्षशे}=\text{अवम}=\frac{११ (\text{चैति}-\text{शु}+७०३ \text{ क्षशे})}{७०३}$$

इसको द्वितीय स्थान में रखे हुए शुद्धिरहित तिथि में घटाने से लब्धहर्गण प्रमाण होता है ॥ २३ ॥

पुनः प्रकारान्तरेणाहर्गणानयनमाह ।

शुद्ध्यूना वा तिथयश्चाद्यास्त्रिरधस्त्रिखस्वरैर्भक्ताः ॥ २४ ॥
मध्यफलेषु च युक्तास्त्रिख सप्तहृतावमघटीभ्यः ।
हीनाभ्योऽष्टकृति हृदवमोनोऽन्योऽवमनाड़िकायुतो द्युगणः ॥ २५ ॥

वि. भा.—वा शुद्ध्यूनाश्च्याद्यास्तिथयः (शुद्धिरहित चैत्रादितिथिनिकरः) त्रिः (स्थानत्रये स्थाप्याः) एकत्र त्रिखस्वरैः (७०३ एभिः) भक्ताः (विभाजिताः) मध्यफलेषु (द्वितीयस्थानस्थापित पूर्वोक्तेषु) योज्याः, त्रिखसप्तहृतावमघटीभ्यो हीनाभ्यः (७०३ एतद्विभक्तावमतिथिघटीभ्यो रहिताभ्यः) अष्टकृतिहृदवमोनः (अष्टवर्ग ६४ भजनेन यदाप्तमवमं तेन रहितः) अन्यः (तृतीयस्थानस्थापितः पूर्वोक्तः) अवमनाड़िकायुक्तस्तदा द्युगणः (अहर्गणो) भवेत् ॥ २४-२५॥

अत्रोपपत्तिः ।

वर्षान्तादिष्टदिनपर्यन्तं दिनसमूहो लब्ध्वहर्गणोऽर्थाद् वर्षान्तकालिकेष्टकालिकयोरहर्गणयोरन्तर लब्ध्वहर्गणः । एतस्यैवानयनं क्रियते ।

वर्षान्तकालिक-सावनाहर्गणः=गतचा+अधिशे−क्षयदि+दिघ.. (१)

अत्र गतचा=कल्पादितो युगादितो वा चैत्रमान्त यावच्चान्द्रदिनानि ।

दिघ=सूर्योदयतो वर्षान्तं यावद्दिनादिघट्यः ।

तथेष्टाहर्गणः= गतचा+ चैति−क्ष१दि .... (२)

(१) (२) अनयोरन्तरेण लब्ध्वहर्गणः=चैति−शुद्धि+क्षदि− क्ष१दि

=चैति−शु−(क्ष१दि−क्षदि)=चैति−शु−क्षयदिनान्तर...(क)

अथाऽधुना क्षयदिनान्तरानयनार्थमनुपातः क्रियते

$$\frac{\text{कल्पावम}\times\text{इचां}}{\text{कचा}}=\text{इष्टचान्द्रसम्बन्धीयावमानि ।}$$

इचां=वर्षान्तादिष्टतिथ्यन्त यावत् ।

एतानि वर्षान्तक्षयघटीभिरन्तरितानि (वर्षान्ते क्षयदिनपूर्तेरभावात्) अतएव क्षयघटी सम्बन्धिदिनैः सहितानि तान्यवमानि वास्तवमेवावमदिनपूर्तिस्थानात् (क) स्थितं सावनात्मकमवमदिनप्रमाणं भवेत् ।

$$\frac{\text{कअव}\times\text{इचा}}{\text{कचा}}+\frac{\text{क्षघ}}{६०}=\text{क्षयदिनान्तर}=\frac{\text{कअव}\times\text{इचां}\times६४}{\text{कचा}\times६४}+\frac{\text{क्षघ}\times६४}{६०\times६४}$$

$$=\frac{\text{कअव}\times६४}{\text{कचा}}\times\frac{\text{इचां}}{६४}+\frac{\text{क्षघ}\times६३}{६०\times६४}+\frac{\text{क्षघ}}{६०\times६४}$$

$$= \left(1+\frac{\text{शे}}{\text{कचा}}\right)\frac{\text{इचा}}{६४}+\frac{\text{क्षघ}}{६०\times६४}+\frac{\text{क्षघ}\times२१}{२०\times६४}$$

$$=\left(1+\frac{-१}{७०३}\right)\frac{\text{इचा}}{६४}+\frac{\text{क्षघ}}{६०\times६४}+\frac{\text{क्षघ}\times२१}{२०\times६४}$$

$$=\frac{\text{इचा}+\frac{\text{इचा}}{७०३}+\frac{\text{क्षघ}}{६०}+\text{क्षघ}}{६४}=\frac{\text{चैति}-\text{शु}+\frac{\text{इचा}}{७०३}+\text{क्षघ}}{६४}$$

$$=\frac{\text{चैति}-\text{शु}+\frac{\text{इचा}}{७०३}+\text{क्षघ}+\frac{\text{क्षघ}}{७०३\times६०}\quad\frac{\text{क्षघ}}{७०३\times६०}}{६४}$$

$$=\frac{\text{चैति}-\text{शु}+\frac{\text{चैति}-\text{शु}}{७०३}+\text{क्षघ}-\frac{\text{क्षघ}}{७०३\times६०}}{६४}$$

$\therefore$ चैति—शु—(क्षयदिनान्तर) .. (क) एतत्स्वरूपमुत्थापनेन

$$\text{चैति}-\text{शु}-\frac{\frac{\text{चैति}-\text{शु}}{७०३}+\text{क्षघ}-\frac{\text{क्षघ}}{७०३\times६०}}{६४}=\text{लब्धहर्गण}.$$

अत्र यास्त्रुटयस्ता उपपत्तिदर्शनेनैव स्पष्टा

$\therefore$ उपपन्नम् ॥ २४ २५॥

हि भा—चैत्रादि तिथि मे शुद्धि घटाकर जो हो उसको तीन स्थान में रखना, एक स्थान मे ७०३ इतने से भाग देकर जो फल हो उसको द्वितीय स्थान मे जोड देना क्षयघटी जोड़ना, क्षयघटी को ७०३ इतने से भाग देकर उसमे घटा देना, चौंसठ से भाग देकर जो फल हो उसको तृतीय स्थान में स्थापित पूर्वोक्त (शुद्धिरहित चैत्रादितिथि) में घटाने से लब्ध-हर्गण होता है।

उपपत्ति।

वर्षान्त से इष्टदिनपर्यन्त दिन समूह को लब्धहर्गण कहते हैं अर्थात् वर्षान्तकालिक अहर्गण इष्टकालिक अहर्गण के अन्तर लब्धहर्गण है। इसका आनयन करते हैं।

वर्षान्तकालिक सावनाहर्गण=गतचा+अधिदो—क्षयदि+दिघ · (१)

यहां गतचा=कल्पादि या युगादि से चैत्रामान्त तक चान्द्राहर्गण

दिघ=सूर्योदय से वर्षान्त तक दिनादि घटी

और इष्टाहर्गण=गतचा+चैति—क्ष, दि ···· (२)

(१) (२) इन दोनो के अन्तर करने से लब्धहर्गण=चैति—शुद्धि+क्षदि । क्ष, दि

$=$ चैति $-$ शु $-$ (क्ष$_1$ दि $-$ क्षदि) $=$ चैति $-$ शु $-$ क्षयदिनान्तर (क)

क्षयदिनान्तरानयन के लिये अनुपात करते हैं

$\frac{\text{कल्पावम} \times \text{इचा}}{\text{कचा}}$ $=$ इष्ट स अवम। यहां इचा $=$ वर्षान्त से इष्टतिथ्यन्त तक यह वर्षान्त क्षयघटी करके अन्तरित है (वर्षान्त में क्षयदिन पूर्ति के अभाव से) इसलिये दिनोक्त क्षयघटी करके उन अवम को जोड़ने से वास्तव ही अवमदिन पूर्तिस्थल से (क) स्थित सावनात्मक अवमदिन प्रमाण होते हैं।

$$\frac{\text{कअव} \times \text{इचा}}{\text{कचा}} + \frac{\text{क्षघ}}{६०} = \text{क्षयदिनान्तर} = \frac{\text{कअव} \times \text{इचा} \times ६४}{\text{कचा} \times ६४} + \frac{\text{क्षघ} \times ६४}{६० \times ६४}$$

$$= \frac{\text{कअव} \times ६४}{\text{कचा}} \times \frac{\text{इचा}}{६४} + \frac{\text{क्षघ} \times ६३}{६० \times ६४} + \frac{\text{क्षघ}}{६० \times ६४}$$

$$= \left(१ + \frac{\text{शे}}{\text{कचा}}\right) \frac{\text{इचा}}{६४} + \frac{\text{क्षघ}}{६० \times ६४} + \frac{\text{क्षघ} \times २१}{२० \times ६४}$$

$$= \left(१ + \frac{१}{७०३}\right) \frac{\text{इचा}}{६४} + \frac{\text{क्षघ}}{६० \times ६४} + \frac{\text{क्षघ} \times २१}{२० \times ६४}$$

$$= \frac{\text{इचा} + \frac{\text{इचा}}{७०३} + \frac{\text{क्षघ}}{६०} + \frac{\text{क्षघ} \times २१}{२०}}{६४} = \frac{\text{चैति} - \text{शु} + \frac{\text{इचा}}{७०३} + \frac{\text{क्षघ} \times २१}{२०}}{६४}$$

$$= \frac{\text{चैति} - \text{शु} + \frac{\text{इचा}}{७०३} + \text{क्षघ} + \frac{\text{क्षघ}}{६० \times ७०३} - \frac{\text{क्षघ}}{६० \times ७०३}}{६४}$$

$$= \frac{(\text{चैति} - \text{शु}) + \frac{(\text{चैति} - \text{शु})}{७०३} + \text{क्षघ} - \frac{\text{क्षघ}}{६० \times ७०३}}{६४} = \text{क्षयदिनान्तर}$$

अत (क) इसमे उत्थापन देने से

$$(\text{चैति} - \text{शु}) - \frac{(\text{चैति} - \text{शु}) + \frac{(\text{चैति} - \text{शु})}{७०३} + \text{क्षघ} - \frac{\text{क्षघ}}{६० \times ७०३}}{६४} = \text{लघ्वहगण}$$

इसमे क्या क्या त्रुटि हैं उपपत्ति देखने ही से स्पष्ट है।
इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥ २४-२५ ॥

पुन प्रकारान्तरेण लघ्वहर्गणानयनमाह।

अथवा तिथयश्चैत्राद्या शुद्धयूनितास्त्रिरघ ।

त्रिखनग हृतफलसहितो मध्यः कुभुजहतावमघटीभ्यः ॥ २६ ॥
खभुजाप्तयुगब्धिरसैर्लब्धावमवर्जितो द्युगण. ।

वि भा—अथवा चैत्राद्यास्तिथय (चैत्रशुक्लादि तिथिनिकरा) शुद्ध्यूनिता (शुद्धिरहिता.) त्रि (स्थानत्रये स्थाप्या) त्रिखनग हृतफलसहितो मध्य (एकत्र ७०३ एभिर्भजनेन यत्फल तेन सहितो द्वितीयस्थानस्थापित) कुभुजहतावमघटीभ्य: (२१ गुणितावमघटीभ्य) खभुजाप्तयुक् (विंशत्या भजनेन यत्फल तेन युक्) अब्धिरसैर्लब्धावमवर्जित. (६४ एभिर्भजनेन यल्लब्धमवम तेन तृतीयस्थानस्थापितो रहित) तदा द्युगण. (अहर्गण) भवेत् ॥ २६ ॥

अत्रोपपत्ति

अथ पूर्वश्लोकोपपत्तौ क्षयदिनान्तरम्=

$$\left(१+\frac{१}{७०३}\right)\frac{इचा}{६४}+\frac{क्षय}{६०\times६४}+\frac{क्षय\times२१}{२०\times६४}$$

$$=\frac{इचा+\frac{इचा}{७०३}+\frac{क्षय}{६०}+\frac{क्षय\times२१}{२०}}{६४}$$

$$=\frac{इचा+\frac{इचा}{७०३}+\frac{क्षय}{६०}+\frac{क्षय\times२१}{२०}}{६४}=\frac{(चैति-शु)+\frac{इचा}{७०३}+\frac{क्षय\times२१}{२०}}{६४}$$

$$(चैति-शु)-\frac{(चैति-शु)+\frac{इचा}{७०३}+\frac{क्षय\times२१}{२०}}{६४}=मध्यहर्गण$$

अत्रापि $\frac{चैति-शु}{७०३}=\frac{इचा}{७०३}$ इति तुल्य कल्पितमाचार्येणेति त्रुटि ।

$\frac{क्षय\times२१}{२०}$ एतस्यैव नाम भास्करेण क्षेपदिन मन्यते इति ।

एतावताऽऽचार्योक्तमुपपन्नम् ॥ २६ ॥

हि भा—अथवा चैत्रादि तिथि में शुद्धि घटा कर जो हो उसको तीन स्थान में स्थापित करना, एक स्थान में ७०३ इससे भाग देकर जो फल हो उसको द्वितीय स्थानमें जोड़ देना। अवमघटी को २१ इससे गुणा कर बीस से भाग देकर जो फल हो उसे उस में जोड़ना चौंसठ से भाग देकर जो लब्धावम हो उसको तृतीय स्थान में स्थापित फल में घटाने से अहर्गण होता है ॥२६॥

उपपत्ति

पहले श्लोक की उपपत्ति में क्षयदिनान्तर लाया गया है।

$$\left(१+\frac{१}{७०३}\right)\frac{इचा}{६४}+\frac{क्षय}{६०\times६४}+\frac{क्षय\times२१}{२०\times६४}=क्षयदिनान्तर$$

$$= \text{इचा} + \frac{\text{इचा}}{७०३\times६४} + \frac{\text{क्षघ}}{६०\times६४} + \frac{\text{क्षघ}\times२१}{२०\times६४}$$

$$= \frac{\text{इचा} + \frac{\text{इचा}}{७०३} + \frac{\text{क्षघ}}{६०} + \frac{\text{क्षघ}\times२१}{२०}}{६४} = \text{क्षयदिन}$$

अत (क) इसमे उत्थापन देने से लब्धहर्गण =

$$(\text{चैति}-\text{शु}) - \frac{\left(\text{इचा} + \frac{\text{इचा}}{७०३} + \frac{\text{क्षघ}}{६०} + \frac{\text{क्षघ}\times२१}{२०}\right)}{६४}$$

$$= (\text{चैति}-\text{शु}) - \left\{ \frac{(\text{चैति}-\text{शु}) + \frac{\text{इचा}}{७०३} + \frac{\text{क्षघ}\times२१}{२०}}{६४} \right\} = \text{लब्धहगरण}$$

यहा आचार्य $\frac{\text{इचा}}{७०३} = \frac{\text{चैति}-\text{शु}}{७०३}$ मानते हैं इसलिए यह आनयन भी ... नही है।

इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥२६॥

पुन प्रकारान्तरेणाहगणानयनम्।

शुद्ध्यूनस्तिथिनिकरश्चैत्राद्द्विष्ठो दिनाहतादयुक्त ॥२७॥
विश्वक्षणहतावमघटिकात खभुजलब्ध्या।
गोत्रिरसहृदवमोनो दिननिकरोऽवमघटीसमेतो वा ॥२८॥

सं भा —चैत्रादितिथिनिकर (चैत्रशुक्लादितिथिसमूह) शुद्धयून (शुद्धिरहित) द्विष्ठ (स्थानद्वये स्थाप्य) अवमघटीसमेत (अवमघट्या युक्त) दिनाहतात् (सप्तगुणितात्), विश्वक्षणहतावमघटिकात (२१३ एतद्गुणितावमघटीत) खभुजलब्ध्या (विंशत्या भजनेन या लब्धिस्तया) युक्त (सहित) गोत्रिरसहृदवमोन (६३९ एभिर्भजनेन यल्लब्धमवम तेनरहित पृथक् स्थापित पूर्वोक्त) तदादिननिकर (अहर्गण) भवेदिति ॥२७ २८॥

अस्योपपत्ति पूर्वश्लोकोपपत्तिपर्यालोचनया स्फुटेति।

हि भा —चैत्रादि से जो तिथिसमूह है उसमें शुद्धि को घटा कर दो स्थानो म रखना, एक स्थान मे उसमे अवमघटी जोड देना अवमघटी को सात से गुण कर बीस से भाग देकर उसमे जोडना तथा २१३ इससे गुणित अवमघटी को बीस से भाग देकर उसमे जोड देना ६३९ से भाग देकर जो अवम हो उसको पृथक स्थापित पूर्वोक्त (शुद्धिरहित चैत्रादितिथि) मे घटाने से अहगण होता है॥

इसकी उपपत्ति पूर्वश्लोको की उपपत्तियो से स्पष्ट है ॥२७ २८॥

प्रकारान्तरेण सम्वहगणानयनमाह।

वाऽवमघटिकायुक्तस्तिथिनिकरः शुद्धिहीनोऽथ ।
दिग्घ्नाऽवमघटिकाभ्यः खरसाप्तयुतोऽङ्कभुजरसहताभ्यः ॥२६॥
नवगुणरसैर्विभक्तः फलावमोनो भवेद्द्युगणः ।

वि भा—वा तिथिनिकरः (चैत्रादितिथिसमूहः) शुद्धिहीनः (शुद्धिरहितः) अथ (पृथक् स्थाप्यः) अवमघटिकायुक्तः, *दिग्घ्नाऽवमघटिकाभ्यः* (दशगुणिताऽवम-घटीभ्यः) तथा अङ्कभुजरसहताभ्योऽवमघटिकाभ्यः (६२६ गुणितावमघटिकाभ्यः) खरसाप्तयुतः (षष्ट्या भजनेन यल्लब्धं तेन युतः) नवगुणरसैर्विभक्तः (६३६ एभिर्भक्तः) फलावमोनः (लब्धावमेन पृथक् स्थापितो रहितः) तदा द्युगणः (अहर्गणः) भवेदिति ॥

अस्याप्युपपत्तिः पूर्ववदेव ज्ञेयेति।

हि भा—चत्रादितिथि म शुद्धि को घटाकर दो जगह रखना, एक जगह में अवमघटी जोड़ना। दशगुणित अवमघटी में तथा ६२६ गुणित अवमघटी म साठ से भाग देकर जो फल हो उसे उसमे जोड़ देना ६३६ इतने से भाग देने से जो लब्ध अवम हो उसको पूर्वोक्त पृथक् स्थापित (शुद्धिरहिततिथि) म घटाने से अहगण होता है।

इसकी भी उपपत्ति पूर्ववत् समझनी चाहिये ॥२६॥

अथ रविमासान्तेऽधिमासानयनम् ।

विश्वाग्निनन्दाष्टकुभिर्मूर्च्छनाभ्राङ्कखाक्षिभिः ॥ ३० ॥
रविमासा हता भक्ता खखाभ्रद्विग्रिसागरैः ।
दिनावमानि तद्योगः खाग्निभक्तोऽधिमासकाः ॥३१॥
शेषं दिनादिशुद्धिर्वा विकलं दिनशेषतः ।
दिग्घ्नमासस्य योगात्स्यात्स्फुटश्चाधिकमासकः ॥३२॥

वि भा—विश्वाग्निनन्दाष्टकुभिः (१८६३१३) मूर्च्छनाभ्राङ्कखाक्षिभिः (२०६०२१) रविमासाः (इष्टसौरमासाः) हताः (गुणिताः) खखाभ्रद्विग्रिसागरैः *(४३२०००) भक्ताः (भाजिताः) दिनावमानि स्युः (एकत्र दिनाद्य परत्रावमाद्यम्)* तद्योगः (तयोर्दिनादिकयोर्योगः) खाग्निभक्तः (त्रिंशद्भक्तः) तदाऽधिमासाः स्युः दिग्घ्नमासस्ययोगात् (दशगुणितसौरमासयोजना) स्फुटः (सूक्ष्मः) अधिमासको भवेत्। शेषं दिनादिशुद्धिः स्यात्।

अत्रोपपत्तिः ।

कलियुगदिनाद्यम् = १८६३१३। अवमाद्यम् = २०६०२१ तदाऽनुपातात्सौर-मान्तकालिकं दिनाद्यमवमाद्य चानेतव्यम्। यदि कल्यब्दे पूर्वंपठित दिनाद्यमवमाद्य च लभ्यते तदा रविमासे किमित्यनुपातेन रविमासान्तिकं दिनाद्यमवमाद्य भवेत्। अत्र सौरवर्षेणानुपात उचितः सौरमासान्तर्हि। ततो दिनादिकयाहादिग्घ्नाब्दयोग"

इत्यादिवत्सौरमाससम्बन्धेन गताधिमासा. सौरमासान्तिका समागमिष्यन्तीति ॥

हि. भा १—८६३१३, २०६०२१ इनको सौरमास से गुणकर ४३२००० इतने से भाग देने से दिनादि और अवमादि होते हैं। दोनो के योग मे तीस से भाग देने से अधिमास होता है। दशगुणितमास जोडने से स्फुट अधिमास होता है। शेष दिनादि शुद्धि होती है ॥३०-३२॥

उपपत्ति

कलियुग मे दिनादि=१८६३१३। अवमादि=२०६०२१ तब अनुपात से इष्ट सौरमासान्तकालिक दिनादि और अवमादि लानी चाहिये। यदि कलिवर्ष मे उपरिलिखित दिनादि और अवमादि पाते हैं तो इष्ट सौरमास मे क्या इस अनुपात से सौरमासान्तकालिक दिनादि और अवमादि का प्रमाण आजायगा। यहा सौरवर्ष पर से अनुपात करना उचित है। परन्तु सौरवर्ष से अनुपात करने से सौरवर्षान्तकालिक होगा तब दिनादि और अवमादि से "दिनादि क्षयाहादि दिग्घ्नाब्दयोग" इत्यादि के तरह इष्टसौरमास सम्बन्ध से सौरमासान्त कालिक अधिमास होता है ॥३०-३२॥

इदानी लब्धहर्गणानयनमाह ।

शुद्ध्यूना दिवसा मासादगताः शिवहताः पृथक् ।
अवमविकलाद्दिगोरसनिघ्नात्स्वच्छेदसंयुतात् ॥३३॥
त्रिखनगहतात्फलोनाद्द्युगणो मासाधिपस्ततो ज्ञेयः ।

वि भा—मासात् (गतसौरमासात्) गतदिवसा (गतसौरदिवसा) शुद्ध्यूना (शुद्धिदिनरहिता) शिवहता (एकादशगुणिता) पृथक् (स्थानद्वये स्थाप्या) अवमविकलात् (अवमशेषात्) द्विगोरस निघ्नात् (६६२ गुणितात्) स्वच्छेदसयुतात्, त्रिखनगहतात् (७०३ भक्तात्) फलोनात् (फलरहितात्) द्युगण (अहर्गण) भवेत्, ततोऽहर्गणान्मासाधिप (मासेश) ज्ञेय ॥३३॥

अस्योपपत्ति (२१-२२) श्लोकोपपत्तिवद्बोध्या, तत्र तिथिसम्बन्धेनोपपत्ति-रत्रगतसौरमासदिन सम्बन्धेनोपपत्ति कार्यैतावदेवान्तरमिति, तत्र यादृशी विदश-वर्णनशैली न तादृशी वर्त्ततेऽत्र किन्तु विषयस्त्वेक एव तत्र वर्षपतिविचारोऽत्र माम-पतेरिति ॥

हि भा—गतसौरमास सम्बन्धी दिनो (गतसौरदिनो मे) शुद्धिदिन को घटा कर ग्यारह से गुण देना उसको दो स्थानो मे रखना, अवमशेष को ६६२ मे गुणकर अपना हर जोडकर ७०३ से भाग देकर जो फल हो उसको घटाने मे अहर्गण होता है। उस पर से मास पति का ज्ञान करना चाहिए ॥३३॥

इनकी उपपत्ति (२१-२२) श्लोक की उपपत्ति की तरह समझनी चाहिए, वहा तिथि के सम्बन्ध से उपपत्ति की गई है यहा गतसौरदिनों से उपपत्ति करनी चाहिए यही अन्तर है लेकिन जिस तरह प्रतिपादन शैली वहा है यहाँ कुछ संकुचित रूप मे है। विषय

वही कहते हैं किन्तु कहने की रूपरेखा कुछ सकुचित है वहा वर्षपति का विचार है यहा मासपति का विचार है दोनों म महगण की जरूरत होती है इसलिये वहा भी महगण का ज्ञान किया गया है यहा भी अहगण का ज्ञान किया गया है ॥३३॥

द्विखेभैं कुगुणैर्नन्दजिनैर्बाणैर्नगाङ्कके ॥३४॥
द्वाभ्या तु सौराहर्गणं हन्याल्लिप्ता निशाकरात् ।

वि भा —द्विखेभै (८०२) कुगुणै (३१) नन्दजिनै (२४९) बाणै (५) नगाङ्कै (९७) द्वाभ्या सौराहर्गण हन्यात् (गुणयेत्) तदा निशाकरात् (चन्द्रादारभ्य सर्वेषा ग्रहाणा) लिप्ता (कला) स्युरिति ।

अत्र युक्ति ।

कल्पसौरदिनै कल्पग्रहभगणकला लभ्यन्ते तदा गतसौरदिनै किमित्यनुपातेन तेन सौरदिनान्तकालिका ग्रहा समागच्छन्ति , $\frac{\text{कल्पभगक} \times \text{गतसौदि}}{\text{कसौदि}}$ =ग्रहकला अत्र कल्पभगणकलाया कल्पसौरदिनैर्भजनेन श्लोकोक्ता गुणकाङ्का समागच्छन्ति तदा सौराहर्गण × गुणकाङ्क=चन्द्रादिग्रहकला, एते कलात्मकग्रहा सौराहगणान्तकालिका भवन्ति । अत सिद्धम् ॥३४॥

हि भा —८०२, ३१, २४९ ५, ९७, २ इन अकों से सौराहगण को गुणन से चन्द्रादिग्रहो की कला होती है अर्थात कलात्मक चन्द्रादिग्रह सौराहगणान्त कालिक होते हैं ॥३४॥

उपपत्ति ।

यदि कल्पसौरदिन मे कल्पग्रहभगण कला पाते हैं तो सौराहगण म क्या इस अनुपात से सौरदिनान्तकालिक ग्रहकला आती है , $\frac{\text{कल्पग्रहभगणक} \times \text{सौराहगण}}{\text{कसौरदि}}$ =ग्रहकला ।
यहा पर कल्पग्रहभगणकला म कल्पसौरदिन से भाग देने से क्रमश श्लोकोक्त चन्द्रादि ग्रहो के गुणकाङ्क होते हैं तब सौराहगण × गुणकाङ्क=चन्द्रादिग्रहकला सौराहगणान्तकालिक ।

इदानी सौरदिनान्तकालिकचन्द्रादिग्रहपातार्थमाह ।
वेदाग्नित्रिभुजै सप्तव्योमबाहुभि सैककै ॥३५॥
वेदाङ्गाक्षिभुजै पञ्च पञ्च व्योम निशाकरं ।
कृतनन्दशराङ्कैश्च द्विवेदार्गैद्विघास्यितं ॥३६॥
खसव्योमाष्टभिरुच्चपातार्थानिजसगुणं ।
शिवनेत्राङ्गविशिखैर्वेदाग्न्यक्षिशरसैककै ॥३७॥
खखखाक्षिनगार्थैर्वा दिनकृद्दिवसान्तिका ।

वि भा —वेदाग्नित्रिभुजै (२३३४) सप्तव्योमबाहुभि सैकै (एकसहित सप्तशून्यभुजै २०८) वेदाङ्गाक्षिभुजै (२२६४) पञ्चपञ्चव्योमनिशाकरै (१०५५)

कृतनन्दशराङ्क (६५६४) द्विवेदाङ्क (६४२) द्विधास्थितम् (स्थानद्वये स्थापितैर्यादुपरि प्रोक्तैश्चन्द्रादिग्रहगुणकाङ्कैरथ) प्रदर्शितैश्चन्द्रमन्दोच्चगतबुधपातशुक्रपात गुणकाङ्कै) खखव्योमाष्टभि (८०००) शिवनेनाङ्क विदिशैः (३६२११) वेदाग्न्यक्षिरसैककैः (१६२३४) खखखाक्षिनगांशैः (७२००० अंशैः) निजसङ्गुणैः (स्वगुणकाङ्कै) उच्चपातांशैः (चन्द्रमन्दोच्चपाताद्यशैः) दिनकृतदिवसान्तिका (सौराहर्गणान्तकालिका) चन्द्रादिग्रहमन्दोच्चपातादयो भवन्तीति ॥

अत्रोपपत्ति ।

यदि कल्पसौरदिनैः कल्पग्रहमन्दोच्चपातादि भगणांशा लभ्यन्ते तदा सौराहर्गणेन किमित्यनुपातेन सौराहर्गणान्तकालिकाश्चन्द्रादिग्रहास्तदुच्चपातादयोंशात्मका भवेयुरिति तत्स्वरूपम् $=\frac{\text{कल्पग्रहादि भगणांश} \times \text{सौराहर्गण}}{\text{कसौरदि}}$ चन्द्रादिग्रहमन्दोच्चपातभगणांशग्रहणेन गुणकाङ्क $\times$ सौराहर्गण $=$ चन्द्रादिग्रहमन्दो पातांशा सौराहर्गणान्ते, गुणकाङ्का सर्वेषां चन्द्रादिग्रहाणां मन्दोच्चपातानां स्वस्वभगणांश वशेन भिन्ना भिन्ना भवन्ति, ते च गुणकाङ्का श्लोकोक्ता सन्तीत्यत सिद्धम् ॥३५-३७॥

हि भा —२३३४, २०८, २२६४, १०५५, ६५६४, ६४२ चन्द्रादिग्रहों के लिये इन गुणकाङ्कों से और चन्द्रमन्दोच्चपातों के लिये (८०००) ३६२११, १६२३४, ७२०००, इन गुणकाङ्कों से ये ग्रह सौराहर्गणान्तकालिक होते हैं ॥

उपपत्ति

यदि कल्पसौरदिन में कल्पग्रहादिभगणांश पाते हैं तो सौराहर्गण में क्या इस अनुपात से सौराहर्गणान्तकालिक चन्द्रादिग्रहों वा तथा उनके मन्दोच्चपातों के अंशात्मक प्रमाण आता है। $\frac{\text{कल्पग्रहादिभगणांश} \times \text{सौराहर्गण}}{\text{कल्पसौदि}}$ $=$ ग्रहादि के अंशात्मक मान। यहां कल्पभगणांश के स्थान में चन्द्रादिग्रहों में से या मन्दोच्च पातों में से जिसका भगणांश ग्रहण करेंगे उनको अंशात्मक प्रमाण आते हैं। सौराहर्गण $\times$ गुणक $=$ अंशात्मक चन्द्रादिग्रह या पातमन्दोच्च, भगणांश के भिन्न भिन्न होने से गुणकाङ्क भी भिन्न भिन्न होता है, वे गुणकाङ्क श्लोक कथित हैं। इस तरह सौराहर्गणान्तकालिक सब ग्रह, चन्द्रमन्दोच्च पात, बुध और शुक्र के पात होते हैं ॥३५-३७॥

इदानीं चन्द्रवर्षपतिज्ञानार्थमहर्गणानयनार्थमवतरणमाह ।

प्राग्वद्रविदिवसेभ्यो गुणकेभ्य खाग्निसङ्गुणहरेण
दिवसावमात्र शुद्धिरिनदिवसयुतिर्दिनाधिपश्च तथा ॥३८॥

वि भा —प्राग्वत् (चैत्रादितिथिनिकर इत्यादिवत्) रविदिवसेभ्यो गुणकेभ्य (सौराहर्गण रूपाहर्गण गुणकादिभ्य) खाग्निसङ्गुणहरेण (त्रिंशद्गुणितहरेण) अत्र दिवसावमा (अवमदिन) शुद्धि (दिनादिशुद्धि) इनदिवसयुति (सौराहर्गण-

युति) अर्थाद्यथा चैत्रादितिथिनिकर इत्यादिनाऽहर्गणानयन विधाय दिनपतिज्ञान भवति तथैवाऽत्रापि सौराहर्गणान्ते दिनपतिज्ञान भवतीत्यहर्गणानयनयावतरण-रूपमस्ति, श्लोकेष्वग्रिमेष्वेतदनुसारमेवाहर्गणानयन क्रियते इति ॥३८॥

हि भा—पहले की तरह (चैत्रादितिथिनिकर इत्यादि की तरह) सौरदिनरूप अहर्गण के गुणक से और तीन गुणित हर स कार्य करना चाहिये यहा अवमदिन शुद्धि है। शुद्धि—सौरदिन के योग पर मे दिनपति का ज्ञान करना। कहने का अभिप्राय यह है कि "चैत्रादितिथिनिकर" इत्यादि मे अहर्गणानयन कर जिस तरह दिनपति-ज्ञान किया गया है उसी तरह यहाँ भी सौराहर्गणान्त म दिनपति ज्ञान करना चाहिये यह अहर्गणानयन के लिये अवतरण है आगे के श्लोको मे इसी के अनुसार अहर्गणानयन किया जाता है ॥३८॥

इदानी चन्द्रवर्षपतिज्ञानार्थमहर्गणानयनमाह ।

भादविभक्तदिनेभ्यो वर्षाण्यवमशेषत खगुणात् ॥३६॥
मासाश्च त्रसिताद्या शेषदिवसास्ततोऽभाष्टाः ।
दिवसशुद्धिविहीना कार्यास्तेभ्यो युगवमपि ॥४०॥
ऊनासावनशुद्धिर्भानोर्वर्षान्तजैर्दिनैस्त्वैः ।
शेष शोध्य द्युगणो वर्षपतेर्ज्ञानमस्माद्ध ॥४१॥

वि भा.—भादविभक्तदिनेभ्य (३६० विभक्तसौरदिनेभ्य) वर्षाणि (सौर-वर्षाणि) भवन्ति खगुणं (त्रिशद्भिर्गुणिनादिनि शेष) अवमशेषत (अवमशेषात्) चैत्रसिताद्या ये मासास्तदन्तर्गता दिवसास्तत शेषदिवसाश्चाभीष्टा दिवसा अर्थाच्चैत्र शुक्लप्रतिपदादित इष्टदिन यावदिष्टदिवसा, दिवसशुद्धिविहीना (शुद्धदिनरहिता) कार्या, तेभ्योऽवमपि (वर्षान्तकालिक दिनक्षयशेष) युक् (योज्यम्) ऊना (क्षयशेषा) सावनद्युशुद्धि (सावनदिनशुद्धि) भवति, भानोर्वर्षान्तजै (सूर्यस्य वर्षान्तकालिकै) ऊनै (दिनक्षयै) शोध्य (विहीन) शेष (अवशिष्ट) द्युगण (अहर्गण) भवेत्। अस्मात् (अहर्गणात्) वर्षपतेर्ज्ञान कार्यमिति ।

अत्रोपपत्ति

चैत्रशुक्लप्रतिपदादितो ये मासागतास्तत्सम्बन्धीनि यानि दिनानि तथा वर्तमानमासस्येष्टदिन यावत् यावन्ति दिनानि, इति मिलित्वेष्टदिनानि भवन्ति तेषु यदि शुद्धिदिनानि विशोध्यन्ते तदा चैत्राद्यवमशेष सूर्योदयामान्तयोरन्तर भवति तत्र वर्षान्तकालिकमवमशेष योज्यम्। यत शुद्धिदिनशोधनावसरे न शोधित तद्योज्यते तदेव शुध्यति, तथा तत्र वर्षान्तकालजावमदिनैर्विशोधनेनाहर्गणो भवेत्स च सप्तभक्ता-वशिष्टो वर्षपत्यादिरिति ॥३६-४१॥

हि भा—तीन सौ साठ से सौर दिनो म भाग देने से सौर वर्ष होते हैं। तीसगुणित अवम शेष म चैत्रशुक्लादि जो मास हैं तदन्तर्गत दिन और शेष दिन(वर्तमान मास का इष्टदिन तक दिन-सख्या) मिलकर अभीष्ट दिन है। अभीष्ट दिन सख्या म शुद्धि दिन को घटा देना उसमे

वर्षान्त कालिक क्षयशेष जोड देना, वर्षान्तकालिक क्षय दिन घटा देने से अहर्गण होता है। इस पर से वर्षपति का ज्ञान करना चाहिये ॥

उपपत्ति

चैत्र शुक्ल प्रतिपदादि से जो मास है (गतमास) सम्बन्धी दिनो म वर्तमान मास के इष्टदिन तक सख्या जोडने से जो दिन होते हैं वे इष्टदिन है। उनमे दिनशुद्धि को घटा देने से शेष चैत्राद्यवम शेष होता है। इसमे वर्षान्तकालिक अवमशेष को जोडना चाहिये क्योकि शुद्धिदिन घटाने के समय नही घटाया गया उसका जोडना वही घटाना होगा। उसमे वर्षान्त कालोत्पन्न दिनक्षय को घटा देने से अहर्गण होता है, इसमे सात से भाग देने से शेष वर्ष पत्यादि होते हैं ॥ ३६ ४१ ॥

इदानीमहर्गणानयने विशेषमाह।

द्विनवरसघ्नाद्भक्तात्स्वच्छेदेनावमाद् विशुद्धयति न चेत्।
शोध्य द्युगणाद्रूपे शुद्धे गुणखागसयुतात्छेद्या ॥ ४२ ॥
शेष तद्दिवसोत्थ विकल स्त्ववमस्य विज्ञेयम्।

वि भा—द्विनवरसघ्नात् (६९२ गुणितात्) स्वच्छेदेन विभक्तात् (स्वहरेण भक्तात्) अवमात् (क्षयदिनात्) चेद्यदि शुद्धि (दिनशुद्धि) न विशुद्धयति तदाऽवम शेषा गुणखाग (७०३) सयुता कार्यास्तत शुद्धि शोधयेत्। छेद्या (हरेण भाज्या) शेष तद्दिवसोत्थ (सौरदिनान्तकालिक) अवमस्य विकल (अवमशेष) विज्ञेयम्। एतस्मात्साधितात् द्यु गणात् (अहर्गणात्) रूपे शुद्धे (एकहीने) वास्तवोऽहर्गणो भवेदिति ॥

अत्रोपपत्तिस्तु यद्यपि 'चैत्रादिस्तिथिनिकर" इत्यादि पर्यालोचनया) स्फुटाऽस्ति तथापि किञ्चिदुच्यते। 'मासाश्चैत्रसिताद्या शेषदिवसास्ततोऽभीष्टा। दिवसशुद्धिविहीना" अत्रेष्टदिनसख्याया शुद्धिशोधन कृत्वा तदुपपत्ति प्रतिपादिता, यदि शुद्धिर्न शुध्यति तदा किं कार्यमित्येवात्र कथ्यते। चैत्रादिस्तिथिनिकर इत्यादेरुपपत्तौ "यदि शुद्धिसावनदिनैश्चैत्र शुक्ल प्रतिपदादितिथय ऊनीक्रियन्ते तदा चैत्राद्यवम शेष सूर्योदयाभान्तयोरन्तर भवति, अवमाशा अधिका शुद्ध पूना द्रष्टव्या। ततो यदि ७०३ सख्यकैश्चान्द्रदिनैरेकादशावमानि लभ्यन्ते तदा वर्षान्ताद् गततिथिभि विमित्यनुपातेन सशेषावम प्रमाणमायाति, वर्षान्ते यदवमशेष तत्त त्रैव योज्यते यत शुद्धिशोधनावसरे न शोधित तद्योज्यते तदेव शुध्यति, चन्द्रदिनान्युपरि शुद्धानि सन्ति, अतोऽवमाशा ७०३ गुणिता सवर्णीभवन्ति, एव यल्लब्धमेकादशगुणतिथिषु यावदवमाशास्तेष्वेव तिथिष्वधिकास्तिष्ठन्ति ते च तिथिभि सहैकादशगुणा भवन्ति यत ७०३ एभ्य एकादश विशोधनेन ६९२ एतावन्तोऽवमाशा जाता गुणका। स्वच्छेदो भागहार फलमेकादशगुणिततिथिषु योज्यमवम भवति" इति हृदि निधायात्र विचारकरणेन स्फुट भवति। द्विनवरघ्नात्स्वहरेण विभक्तादवमशेषाच्छुद्धिर्न शुध्यति तदा ७०३ युक्तादवमशेषाच्छोधयेत्। अर्थादवमशेषे ७०३

सयोज्य पश्चाच्छुद्धि शोधयेत् । शुद्धिशब्देनात्रावमदिनानि कथ्यन्ते । तत पूर्वोक्त-क्रियाकरणेन वर्षान्तावमशेष भवति । अत्र योऽहर्गण समागच्छति तत्राप्येकयोजन कार्यमिति ॥ ४२ ॥

हि.भा—यदि ६६२ से गुणित अपने हर से विभक्त अवमशेष मे शुद्धि नही घटे तो अवम-शेष मे ७०३ इतना जोडकर शुद्धि को घटाना उस पर से जो शेष रहे उसको अपने हर से भाग देना तब वर्षान्तकालिक अवम शेष होता है । इस पर से जो अहर्गण होता है उसमे एक जोडना चाहिये ॥

इसकी उपपत्ति यद्यपि "चैत्रादिस्तिथिनिकर" इत्यादि को देखने से साफ है तथापि कुछ कहते हैं "मासाश्चैत्रसिताद्या शेषदिवसास्ततोऽभीष्टा । दिवसशुद्धिविहीना" यहा इष्टदिन सख्या से शुद्धि को घटाकर उपपत्ति कही गई है। लेकिन यदि शुद्धि न घटे तब क्या करना चाहिये वही बात यहा कहते हैं । "चैत्रादिस्तिथिनिकर" इत्यादि की उपपत्ति में यदि चैत्र शुक्ल प्रतिपदादि तिथियो म शुद्धि सावन दिन को घटा देते हैं तो सूर्योदय और अमान्त के अन्तर्गत चैत्राद्यवम शेष रहता है । तब यदि ७०३ इतने चान्द्र दिनो म ११ अवम पाते हैं तो वर्षान्त से गततिथि मे क्या इस अनुपात से शेष सहित गतावम प्रमाण आता है । वर्षान्त म जो अवम है उसको वही जोडना चाहिये क्योंकि शुद्धि घटाते समय न घटाया गया उसका जोडना शोधन का काम करता है । चान्द्रदिन शुद्ध हैं । इसलिये अवमाद्य को ७०३ गुणने से सजातीय हो जाता है। इस तरह जो लब्ध होता है ग्यारह गुणित जो अवमाद्य हैं वे उन्ही तिथियो मे अधिक हैं वे तिथियो के साथ ग्यारह गुणित होते हैं क्योंकि ७०३ इनम ११ ग्यारह घटाने से ६६२ इतने अवमाद्य गुणक होते हैं । हर से भाग देने पर जो होता है उसको ग्यारह गुणित तिथि म जोडने से अवम होता है ।" इनको अपने हृदय म रख कर विचार करने से सब बातें साफ हो जाती हैं । यदि ६६२ से गुणित अपने हर से विभक्त अवम शेष म शुद्धि न घटे तो अवम शेष म ७०३ जोडकर शुद्धि को घटाना चाहिये । शुद्धि से यहा अवमदिन ली गयी है । इस पर से पूर्वोक्त क्रिया द्वारा वर्षान्तकालिक अवम-शेष होता है । इस पर से जो अहर्गण आवे उसम एक जोडना चाहिये ॥ ४२ ॥

इदानी चान्द्रमाससम्बन्धेन मासपतिज्ञानमाह ।

त्र्यग सप्तनभोऽब्धि निहता रजनीश मासका भक्ता ।
नन्दाष्टाग्नि रसाक्षि द्विभुजैर्मासाधिपो मासात् ॥ ४३ ॥

वि. भा—रजनीशमासका (गतचान्द्रमासा) त्र्यगसप्तनभोऽब्धिनिहता (३४०७७३ एतैर्गुणिता) नन्दाष्टाग्नि रसाक्षि द्विभुजैः (२२२६३८९ एभि) भक्ता (विभाजिता) तदा मासात् मासाधिपो भवेत् ॥

अत्रोपपत्ति ।

अत्रानुपात क्रियते यदि युगचान्द्रमासैर्युगसावनदिनानि लभ्यन्ते तदेष्ट-चान्द्रमासे किमित्यनुपातेनेष्टचान्द्रमाससम्बन्धिसावनदिनानि तत्स्वरूपम् = $\frac{\text{युकुदिन} \times \text{गतचान्द्रमास}}{\text{युचामा}}$ अत्र हरभाज्यस्थयोर्युगचान्द्रमास युगकुदिनयोरपवर्तनेन हरगुणावुत्पद्येते । ततो मासपतिज्ञान सुगममिति ॥

हि भा —गतचान्द्रमास को ३४०७७३ इतने से गुणकर २२२६३८९ इनसे भाग देने से जो फल होता है उससे मासपति होते हैं (अर्थात् मासपति का ज्ञान होता है) ॥ ४३ ॥

उपपत्ति

यहा अनुपात करते हैं यदि युग चान्द्रमास मे युभकुदिन पाते हैं तो गतचान्द्रमास मे क्या इस अनुपात मे गतचान्द्रमाससम्बन्धी सावन दिन प्रमाण आ जायेंगे ।

$\frac{\text{युकुदिन} \times \text{गतचान्द्रमास}}{\text{युचामा}}$ = गतचान्द्रमाससम्बन्धी कुदिन । यहाँ हर और गुणक का अपवर्त्तन देने से पठितहर और गुणक होते हैं, तब मासपति ज्ञान सुलभ है ॥ ४३ ॥

इदानी चान्द्रवर्षपतिदिनपत्योर्ज्ञानमाह ।

स्वच्छेदेन युगाधिमासनिहता मासा गता भास्करा
भानोर्मासगणोद्धृता फलयुतास्चान्द्रा शरैस्ताडितात् ।
शेषादङ्कशरेषु बाणखनवस्तम्बेरमाप्ताशर्क-
ऊनश्चैत्रसितादि मासकगणो रव्याद्यचन्द्रद्युपौ ॥ ४४ ॥

वि. भा —स्वच्छेदेनेत्यस्य पूर्वश्लोकेन सम्बन्ध । गता भास्करा मासा. (गतसौरदिवसा) युगाधिमासनिहता (युगपठिताधिमासगुणिता) भानोर्मास-गणोद्धृता (युगपठित सौरमासभाजिता) फलयुता गता भास्करा मासा (फल-सहिता गतसौरमासा) तदा चान्द्रा (इष्ट चान्द्रमासा) भवन्ति, शरै (पञ्चभि) ताडितात् (गुणितात्) शेषात्, अङ्कशरेषु बाणखनवस्तम्बेरमाप्ताशर्क (८९०५५५९ एभिर्भजनेन यत्फल) तेरून (वर्जित) चैत्रसितादिमासकगणो भवेत् । ततो रव्यादिकश्चान्द्रवर्षपतिर्दिनपतिश्च भवेदिति ॥ ४४ ॥

अत्रोपपत्ति ।

यदि युगसौरमासैर्युगाधिमासा लभ्यन्ते तदा गतसौरमासैः किमित्यागता गताधिमासा सशेषास्तत्स्वरूपम् = $\frac{\text{युअमा} \times \text{गतसौमा}}{\text{युसौमा}}$ = गअमा + $\frac{\text{अशे}}{\text{युसौमा}}$

गतसौरमासे गताधिमासयोजनेनेष्ट चान्द्रमासा भवन्ति । ततोऽनुपातो यदि ८९०५५५६ चान्द्रमासैः पञ्चक्षयमासा लभ्यन्ते तदाऽऽनीतचान्द्रमासैः किमित्यनुपातेन गतावम सशेषा समागच्छन्ति, एभिरूनिता पूर्वानीत चान्द्रमासा इष्टसावनमासा भवन्ति ततो दिनपत्यादिज्ञान सुगममिति ॥

हि भा —गत सौरमास को युगपठित अधिमास से गुणकर युगपठित सौरमास से भाग देने से जो फल हो उसको गतसौरमास मे जोडने से इष्टचान्द्रमास होते हैं। पञ्चगुणित शेष मे ८९०५५५६ से भाग देने पर जो फल हो उसको इष्टचान्द्रमास मे घटाने से इष्ट सावन मास होता है इस पर से रव्यादि चन्द्रवर्षपत्यादि होते हैं ॥ ४४ ॥

उपपत्ति

यदि युगसौरमास मे युगाधिमास पाते हैं तो गतसौरमास मे क्या इस अनुपात से सशेषगताधिमास प्रमाण आते हैं। $\frac{\text{युअम} \times \text{गसौमा}}{\text{युसौमा}}$ = गअमा + $\frac{\text{अशे}}{\text{युसौमा}}$ गतसौरमास मे गताधिमास जोडने से इष्टचान्द्रमास होते हैं। तब अनुपात करते हैं कि ८६०५५५६ चान्द्रमास मे ५ पाच क्षयमास पाते हैं तो आनीत चान्द्रमास म क्या इस अनुपात से सशेष गतावम प्रमाण आता है। इसको पूर्वानीत चान्द्रमास मे घटाने से इष्टसावनमास होते हैं। इस पर से रव्यादि वर्षपति दिनपति का ज्ञान सुलभ है ॥ ४४ ॥

इदानीं चन्द्रादिग्रहादीना प्रतिमासक्षेपानाह ।

तिथयोऽष्टदस्रो देया प्रतिमासमशकादिकुजे ॥
एव शशिसुतशीघ्रे खार्काः खशराः शरेषवो मासि ॥४५॥
पूर्ववदमरपतीज्ये वाह्नग्नि धिष्ण्यानि सनवकानि ॥
दानववन्दितशीघ्रे नगवेदा त्रीन्दवोऽब्धिकृताः ॥४६॥
लिप्तादिभास्करसुते नवविषया पञ्चशीतकरा ॥
शिशिरकरेऽशादौ शिखिनो विधृतिर्निशाकरकराश्च ॥४७॥
ग्रहणविचीर्ये पाते कलादि खगुणा खसागरा सूर्या ॥
भूदेवा रामशरा पाते गजमूर्च्छना हि लिप्तोना ॥४८॥

वि भा—तिथय (१५) अष्टदस्र (२८) प्रतिमास अशकादिकुजे (अशादि-मङ्गले) क्षेप्यमिति। एव खार्का (१२०) खशरा (५०) शरेषव (५५) मासि (प्रत्येकमासे) शशिसुतशीघ्रे (बुधशीघ्रोच्चे) क्षेप्या। पूर्ववत् अमरपतीज्ये (बृहस्पतौ) वाह्नग्नि (३२) धिष्ण्यानि (२७) सनवकानि (नवसहितानि तानि) प्रतिमास क्षेप्यानि, नगवेदा (४७) त्रीन्दव (१३) अब्धिकृता (४४) प्रतिमास दानव वन्दितशीघ्रे (शुक्रशीघ्रोच्चे) क्षेप्या। नवविषया (५६) पञ्चशीतकरा (१५) लिप्तादिभास्करसुते (कलादिशनैश्चरे) क्षेप्या। शिखिन (३) विधृति (१७) निशाकरकरा (२१) शिशिरकरेऽशादौ (चन्द्राशादौ) क्षेप्या। खगुणा (३०) खसागरा (४०) सूर्या (१२) ग्रहणविचीर्ये पाते (राहौ) कलादौ क्षेप्या। पाते भूदेवा (३३१) रामशरा (५३) गजमूर्च्छना (१०८) लिप्तोना (एतावन्तोऽङ्का कलादिषु हीना कार्या) इति ॥४५-४८॥

अत्रोपपत्ति।

यदि कल्पसौरमासै कल्पग्रहादिभगणाशा लभ्यन्ते तदैकेन सौरमासेन किमिति फलमेकमासम्बन्धि ग्रहाद्यशास्तत्स्वरूपम् = $\frac{\text{कल्पग्रहादिभगणाश} \times १}{\text{कल्पसौमा}}$

= $\frac{\text{कल्पग्रहादिभगणाश}}{\text{कल्पसौमा}}$ अत्र चन्द्रादिग्रहाणा पातस्य च कल्पपठितभगणाना

कल्पसौरमासप्रमाणस्य च मानग्रहणेनोपर्युक्ताना ग्रहाणा पातस्य च प्रतिमासक्षेपा समागमिष्यन्ति ये च श्लोकोक्ता सन्ति । युगसौरमासैर्युगग्रहभगणवशेनापि पूर्ववन्मासक्षेपप्रमाणानयन कार्यमिति ॥

हि. भा—१५, २८ प्रतिमास अंशादिमङ्गल मे जोडना, १२० । ५० । ५५ प्रत्येक मास मे बुधशीघ्रोच्च मे जोडना, बृहस्पति मे ३२ । २७ । ६ प्रतिमास जोडना, शुक्रशीघ्रोच्च म ४७ । १३ । ४४ प्रत्येक महीना जोडना, ५६ । १५ कलादि शनैश्चर मे जोडना । ३ । १७ । २१ अशादि चन्द्रमा मे जोडना, ३० । ४० । १२ कलादि राहु मे जोडना । ३३१ । ५३ । २१८ कलादिपात मे घटाना चाहिये ॥४५-४८॥

उपपत्ति

यदि कल्पसौरमास मे कल्प चन्द्रादिग्रह और पात के भगणाश पाते हैं तो एक सौरमास मे क्या इस अनुपात से एक सौरमास म उनके अशात्मक प्रमाण आ जायगे ।

$$\frac{\text{कल्पग्रहादिभगणाश} \times १}{\text{कल्पसौमा}} = \frac{\text{कल्पग्रहादिभगणाश}}{\text{कल्पसौमा}}$$ यहा चन्द्रादिग्रहो के और पात के पठित भगणो के मान और कल्पसौरमास से उत्थापन देने से चन्द्रादिग्रहा के और पात के प्रति मासक्षेप प्रमाण आ जायेंगे जो कि श्लोको मे कहे गये हैं । यहा युगपठित भगण और सौरमास से भी पूर्ववद् अनुपात द्वारा उक्त ग्रहादियों के प्रतिमासक्ष प आजायेंगे ॥ इति ॥ ॥४५-४७॥

इदानी कुजादीना ग्रहाणा प्रतिमासक्षेप (धनकला) कलासम्बन्धे तद्गतिज्ञानमाह ।

गोऽर्कैर्नागनखै पयोधिखसुरै पक्षाङ्घ्रिभिर्मासजा ।
त्रिद्व्यङ्कै शरधीकुभि सुरगजैर्भूजादिक स्वकला ॥
हानिर्जीवबुधार्कजेपु कलिका मासोपभोगा हृता ।
खाग्न्यार्शैरिनवासरे ग्रहगतिर्ज्ञेया तत सावना ॥ ४९ ॥

हि भा—गोऽर्कै (१२९) नागनखै (२०८) पयोधिखसुरै (३३०४) पक्षाङ्घ्रिभि (१६२) त्रिद्व्यङ्कै (९२३) शरधीकुभि (१५५) सुरगजै (८३३) मासजा (मासोत्पन्ना) भूजादिक स्वकला (कुजादिग्रहधनकला) भवन्ति । जीवबुधार्कजेपु (बृहस्पतिबुधशीघ्रोच्चशनैश्चरेपु) हानि (एतेपा कथितकला हीना कार्या) मासोपभोगा कलिका (मासभोग्यकला उपर्युक्ता) खाग्न्यार्शै (त्रिशद्भि) हृता (भवता) तदा इनवासरे (एकसौरदिने) ग्रहगति, तत सावना गतिर्ज्ञेयेति ॥

अस्योपपत्ति ।

इत पूर्व ग्रहादीना प्रतिमासक्षेपाशा आनीता । अधुना प्रतिमासक्षेपकला आनीयन्ते । पूर्ववत् ग्रहादिपठित भगणकलाभि पठितसौरमासैश्चानुपातेन प्रतिमासक्षेपकला आगच्छन्ति, एतासामेव नाम धनकला, ततोऽनुपातेनैकसौरदिनेतद्

$$\text{गति} = \frac{\text{पठितग्रहप्रतिमासक्षेपकला} \times १}{३० \text{ दिन}} = \frac{\text{पठितग्रहप्रतिमासक्षेपकला}}{३०}$$

ततः सावनदिने ग्रहगतिर्ज्ञेयेति ॥

इति वटेश्वरसिद्धान्ते मध्यमाधिकारे प्रत्यब्दशुद्धिः समाप्ता ।

हि. भा—१२६, २०८, ३३०४, १६२, ६२३, १५५, ८३३ ये मङ्गलादिग्रहों की मासिक धनकला (क्षेपकला) बृहस्पति बुधशीघ्रोच्च, शनैश्चर इन ग्रहों में इनकी क्षेपकलाओं को ऋण करना चाहिये। प्रतिमास क्षेपकलाओं को तीस से भाग देने से एक सौरदिन में ग्रहगति होती है उससे सावनदिन में ग्रहगति जाननी चाहिये ॥४६॥

उपपत्ति

इससे पहले ग्रहादियों के प्रतिमास क्षेपाद्य लाये गये हैं। यहां प्रतिमास क्षेपकला लाते हैं। पूर्ववत् ग्रहादि के पठित भगणकला और पठित सौरमास से अनुपात द्वारा प्रतिमासक्षेपकला आती है। इन्हीं का नाम धनकला है उस पर से अनुपात करने से एक सौरदिन में उनकी गति $= \frac{\text{ग्रहपठित प्रतिमासक्षेपकला} \times १}{\text{३० दिन}} = \frac{\text{ग्रहपठित प्रतिमासक्षेक}}{\text{३०}}$ इससे सावनदिन में ग्रहगति जानना ॥४६॥

इति वटेश्वरसिद्धान्त में मध्यमाधिकार में प्रत्यब्दशुद्धि नामक पांचवा अध्याय समाप्त हुआ ॥



षष्ठोऽध्यायः

अथ करणविधि

इदानीमहर्गणं विना रविचन्द्रयोरानयनाय करणविधिमाह ।

अधिमासाप्तविकल ग्रहमण्डलशेषकाणि चैत्रादौ ।
अधिमासावमभगणैः प्रोक्तैर्निजमुद्धरेद्दिनादिफलम् ॥१॥
रविचन्द्रभूमिदिवसा अधिकावमपर्ययोद्धृता हाराः ।
बहुतरशेषे स्वधिया गुणकं सञ्चिन्त्य गुणा हतं विभजेत् ॥२॥
देयं गुणा करवधे हारः क्षेप्यो गुणाहतं क्षेप्यम् ।
तद्भागहारशकलादधिकं शेषं तदा हरेद्वारात् ॥३॥
सैकश्छिन्नो हारैः शेषं च धनं क्षयाद्गुणितरं स्यात् ।
तद्भवताः क्षितिदिवसाः प्रोत्पन्नहरा हताः क्षयस्य गुणाः ॥४॥

वि. भा—अधिमासाप्तविकल ग्रहमण्डलशेषाणि (अधिमासात्प्राप्तग्रहभगणादि शेषाणि भवन्ति) प्रोक्तैः (कथितैः) अधिमासावमभगणैः (अधिमासावमशेषैः) निजमुद्धरेत् तदा चैत्रादौ दिनादिफलं भवेत् । रविचन्द्रभूमिदिवसाः (युगसौरदिन-युगचान्द्रदिन युगकुदिनानि) अधिकावमपर्ययोद्धृता (अधिकावमशेषभक्ताः) हाराः बहुतरशेषे (अनेकशेषे) स्वधिया (स्वबुद्धया) गुणकं सञ्चिन्त्य (विचार्य) गुणाहतं (गुणगुणित) हरेण विभजेत् देयं गुणाकरवधे इत्यादि स्पष्टम् ॥१-४॥

हि. भा.—अधिमास से प्राप्त ग्रहभगण शेष होते हैं कथित अधिमास अवमशेष से भाग देना तब चैत्रादि में दिनादिफल होता है। युगसौरदिन युगचान्द्रदिन, युगकुदिन को अधिशेष, अवमशेष से भाग देकर हार होता है। बहुतरशेष शेष में अपनी बुद्धि से विचार कर गुणक से गुण देना हार से भाग देना, आगे के श्लोकों के अर्थ साफ हैं ॥१-४॥

इदानीमधिमासावमशेषाभ्यां रविचन्द्रयोरानयनार्थं विधिमाह ।

अधिमासावमजाभ्यामेव गुणकाभ्यां हता रवीन्दुगतयः ।
भक्ता निजहाराद्वा विशोधयेच्छेषफलसंज्ञम् ॥५॥

वि. भा.—अधिमासावमजाभ्यामेव गुणकाभ्यां (अवमशेषाधिशेषाभ्यां)

रवीन्दुगतय (रविचन्द्रगतय) हता (गुणिता) निजहरात् (स्वकीयहरात्) भक्ता (विभाजिता) वा विशोधयेत् तदा शेषफलसज्ञ स्यात्।

यद्यप्यधिशेषावमशेषाभ्या रविचन्द्रयो रानयनेऽधिशेषेण रविचन्द्रयोर्गतेर्गुणन न भवति किन्त्वौदयिककार्यमधिशेषस्य प्रयोजन भवति, आचार्योक्तपद्यमत्राशुद्ध प्रति भातीति ॥५॥

हि भा —अधिमास शेष और अवमशेष रूपगुणक से रवि और चन्द्रगति को गुण कर अपने हर से भाग देना या हर म घटाना जो शेष रहता है वह शेषफल सज्ञक है ॥

यद्यपि अधिशेष और अवमशेष से रवि और चन्द्र के आनयन के लिये अधिशेष से रविगति और चन्द्रगति को नहीं गुणन किया जाता है रवि और चन्द्र को औदयिक करने के लिये उसकी जरूरत होती है। यहा आचार्योक्त पद्य अशुद्ध मालूम होता है ॥५॥

इदानीमेकाहर्गणेन सिद्धान् ग्रहानन्याहर्गणे समानीयते।

इष्टाब्ददिनसमूहा पृथग्गुणकताडिता द्विधा विभक्ता.।
क्षयधनगणेन लब्धा वियुतयुता मध्यमा भूय ॥ ६ ॥

वि भा —इष्टाब्ददिनसमूहा (इष्टवर्षीयाहर्गणा) पृथक् गुणकताडिता (स्वगुणेन गुणनीया) क्षयधनगणेन (ऋणाहर्गणेन धनाहर्गणेन च) विभक्ता (भाज्या) तदा भूयो द्विधा वियुतयुता (ऋणात्मका धनात्मकाश्च) मध्यमग्रहा भवन्तीति ॥६॥

हि भा —इष्टवर्ष सम्बन्धी अहर्गण को अलग अलग गुणक से गुण कर ऋणाहर्गण और धनाहगण से भाग देने से दो प्रकार के ऋण मध्यमग्रह और धनमध्यमग्रह होते हैं ॥६॥

एक अहगण से सिद्धग्रहो से द्वितीय अहगण सम्बन्धी लाने के लिय अनुपात किया जायगा $\frac{\text{सिद्धभगणादिग्र} \times \text{अहगण}}{\text{अहगण}}$ = अहगण सम्बन्धी भगणादिग्र इति ॥६॥

इदानीमहर्गणार्थ करणविधिमाह।

क्षेप्ययुता हीना वा शोध्येन विभाजिताश्च हारेण।
अधिमासा शशिदिवसैरवमान्येव तदूनिता द्युगण ॥७॥

वि भा —क्षेप्ययुता (क्षेपणयोग्यपदार्थो सहिता) शोध्येन (शोधनयोग्येन) हीना (रहिता) हारेण विभाजिता यथाऽधिमासा भवेयुस्तथा कार्य, एव शशिदिवसै (चान्द्रदिनै) यथाऽवमानि भवेयुस्तथा कार्यं तदा चान्द्रदिने तदूनिता (अवमरहिता सन्त) द्युगण (अहर्गण) भवेदिति ॥

पूर्वं "यातावमेन्दुदिनराशिचय स्वगिरिघ्ना युक्तोनितोऽवमहतो विधुवासरा वा। एव गताधिकगुणाश्च रविध्रुराशिरन्योऽन्यतोवमदिनानि गताधिमासा" इत्यत्र यथा कार्यकरणप्रक्रिया प्रतिपादिताऽस्ति तथैवाऽत्राप्यधिमासावमदिनयोर्ज्ञानार्थं कार्या ततोऽहर्गणसिद्धिर्भवेत् ॥७॥

हि भा —जोडने योग्य पदार्थ को जोडने से घटाने योग्य को घटाने से हर से भाग देने से जैसे *अधिमास* ज्ञान हो करना चाहिये। इस तरह चान्द्रदिन से अवमदिन के ज्ञान जैसे हो करना चाहिये, चान्द्रदिन में अवमदिन को घटाने से अहर्गण होता है ।।७।।

इदानीमहर्गणान्मध्यमग्रहानयनार्थं करणविधिमाह ।

द्युगणे गुणकाभ्यस्ते धनयुजि मध्योनितेऽथवा भक्ते ।
हारेण भगणपूर्वो ग्रहो द्युराशे क्षयस्वगणवृद्धया ।।८।।

वि भा —द्युगणे (अहर्गणे) गुणकाभ्यस्ते (यथायोग्यगुणकगुणिते) धनयुजि मध्योनिते (अर्थाद्विलोमगतिग्रहार्थमनुपातस्थ मध्यमफलेन ग्रहभगणेन हारे हीनिते) हारेण विभक्ते तदा द्युराशे (अहर्गणात्) क्षयस्वगणवृद्धया (ऋणाहर्गणधनाहर्गणवृद्धया) भगणपूर्वो ग्रह (भगणादिग्रह) भवेदिति ।। ग्रहानयने केपा केपा गुणहारादीनामावश्यकता भवन्तीत्येवानेन कथ्यतेऽऽचार्येणेति ।।८।।

हि भा.—अहर्गण को अपने गुणक से गुण देना विलोमगति ग्रहज्ञान के लिये हार में मध्यफल (ग्रहभगण) को घटाना, अपने हार से भाग देना तब ऋणात्मक और धनात्मक अहर्गण के वश से भगणादि ग्रह होते है ।।८।।

ग्रहानयन में किन किन गुण, हर और क्षेपकादि की जरूरत होती है वही यहा कहा है। यद्यपि इन सब की कहने की आवश्यकता नही है पर आचार्य ने इन सब के लिये एक अध्याय ही बनाया है ।।८।।

भगणादिकेनोनयुते मध्य· स्यादेवमेव द्युगणान्ते ।
विधिवत्केन्द्रफलानि तु कृत्वा द्युचरोऽनुपातत स्पष्टः ।।९।।

वि. भा.—एवमेव (अनेनैव पूर्वोक्तविधिना) भगणादिके फले ऊनयुते (ऋणधने) द्युगणान्ते (अहर्गणान्तेऽर्थादहर्गणादनुपातेन समागतो भगणादिमध्यमग्रहोऽहर्गणान्ते) मध्य स्यात् विधिवत् अनुपाततः (त्रैराशिकात्) केन्द्रफलानि (केन्द्रज्योत्पन्नानि मन्दफलशीघ्रफलादीनि) कृत्वा स्पष्ट (प्रत्यक्षीभूतः) द्युचर (ग्रहः) साध्य इति ।।

स्पष्टग्रहा कथमागच्छन्ति तदर्थमुपकरणानि कथ्यन्ते ग्रन्थकारेणेति ।।९।।

हि भा.—इसी तरह पूर्वोक्त नियम से भगणादिफल धन ऋण रहने पर अर्थात् धनाहर्गण और ऋणाहर्गण से साधित भगणादिग्रह के ऋण और धन रहने से वे अहर्गणान्त बिन्दु में ऋण और धन मध्यम ग्रह होते है उसके बाद विधिपुरस्सर अनुपात से केन्द्रज्योत्पन्न मन्दफलादि करके स्पष्टग्रह साधन करना, इति ।।९।।

इसमे स्पष्टग्रह साधन के लिये उपकरण कहते हैं ।।९।।

इदानीमुपसंहारमाह ।

युगाधिमासावमपर्ययाणां निरग्रतः यत्र युगे स्फुटानाम् ।
कार्यं सुसंक्षिप्तमनन्यदृष्टं सुसाध्यमेयं करणं जडानाम् ।।१०।।

वि. भा.—यत्र युगे स्फुटानां युगाधिमासावमपर्ययाणां (युगाधिमासभगणानां, क्षयमासभगणानां च) निरग्रता (निःशेषता) भवेत् तथा कार्यं, इति सुसंक्षिप्तं (अतिशयेन लघु) अनन्यदृष्टं (अन्यैराचार्यैर्नावलोकितम्) जडानां (कुण्ठधियां) सुखावमेयं (सुखपूर्वकवेद्ययोग्यं) करणं प्रोक्तं मयेति ॥१०॥

इति वटेश्वरसिद्धान्ते मध्यमाधिकारे करणविधिर्नामकः षष्ठोध्यायः समाप्तः ।

हि. भा.—जिस युग में युगाधिमास भगण और अवममास भगण की निःशेषता होती है उस तरह करना चाहिए। बहुत संक्षिप्त और जिसको अन्य आचार्यों ने नहीं देखा जड़ लोगों के सुगम तरह समझने के लायक करण (करणविधि नाम के अध्याय) को मैंने कहा ॥१०॥

इति वटेश्वरसिद्धान्त में मध्यमाधिकार में करणविधि नामक षष्ठ

अध्याय समाप्त हुआ ॥



सप्तमोऽध्यायः

अथ प्रमाणविधि

इदानीमण्वादिप्रमाणकथनपुरःसरं योजनप्रमाणं वदन् खकक्षाप्रमाणमाह ।

रवेर्गृहान्तः स्थितरश्मितोयः प्रकाश आयात्यणवोऽष्टभिस्तैः ।
कचाग्रमष्टौ खलु तानि लिक्षा ताभिश्च यूकाऽष्टभिरेवमुक्ता ॥१॥
यवोऽष्टयूकोऽङ्गुलमष्टभिस्तैरथाङ्गुलद्वादशभिर्वितस्तिः ।
वितस्तियुग्मेन करः करैर्धनुश्चतुर्भिरेको द्विसहस्रमुक्तः ॥ २ ॥
क्रोशस्तु तैर्बन्धुसमैर्हि योजनं तैर्व्योमवृत्तं कथयन्ति सन्तः ।
खव्योमपूर्णं तु नगेषु खाक्षि ग्रहाब्धि भूतत्त्वस्वपक्षचन्द्रैः ॥ ३ ॥

वि. भा.—रवेः (सूर्यस्य) गृहान्तः स्थितरश्मितः (गृहाभ्यन्तरस्थितकिरणतः) अथ प्रत्यक्षीभूतः प्रकाशः आयाति तत्र यद्रजः आलोक्यते, तैरष्टभिः (अष्टभी रजोभिः) अणवो भवन्ति, अष्टौ अणवः कचाग्रं (केशाग्रम्) तान्यष्टौ लिक्षा, अष्टभिस्ताभिः (अष्टलिक्षाभिः) यूका उक्ता, अष्टयूकः (अष्टसंख्यकयूकः) यवः कथितः, तैरष्टभिः (अष्टसंख्यकयवैः) अङ्गुलम्, अङ्गुलद्वादशभिः (द्वादशाङ्गुलैः) वितस्तिः, वितस्तियुग्मेन (वितस्तिद्वयेन) करः (हस्तः) चतुर्भिः करैः एकं धनुः। तद्द्विसहस्रं (धनुःसहस्रद्वयम्) एकः क्रोशः उक्तः (कथितः), तैः (क्रोशैः) बन्धुसमैः (चतुर्भिस्तुल्यैः) एकं योजनम्। तैर्योजनैः खव्योमपूर्णंर्तुनगेषु खाक्षि ग्रहाब्धिभूतत्त्व स्वपक्ष चन्द्रैः (१२२२५१४९२०५७६०००) व्योमवृत्तं (खकक्षावृत्तप्रमाणं) सन्तः (साधवः) कथयन्तीति ॥ सिद्धान्तशेखरे श्रीपतिनैतत्सम्बन्धे एवं कथ्यते। यथा

वेश्मान्तःपतितेषु भास्करकरेष्वालोक्यते यद्रजः,
स प्रोक्तः परमाणुरष्टगुणितैस्तैरेव रेणुर्भवेत्।
तैर्बालाग्रमथाष्टभिः कचमुखैर्लिक्षा च यूकाष्टभिः,
स्यात्ताभिश्च तदष्टकेन च यवोऽष्टाभिश्च तैरङ्गुलम् ॥
तैः स्याद् द्वादशभिर्वितस्तिरुदितो हस्तश्च द्वाभ्यां पुनश्चापः हस्तचतुष्टयेन धनुषां क्रोशः सहस्रद्वयम्।
एकः क्रोशचतुष्टयेन गदितं साम्वत्सरैर्योजनं
यैस्तैः भूग्रहधिष्ण्यबिम्बपरिधिव्यासादि सञ्चिन्तयेदिति ॥
अण्वादि प्रमाणार्थमाचार्यकथनमेव प्रमाणमिति १-३ ॥

हि. भा.—गृह के अन्दर पतित सूर्य किरणों में जो रज देखने में आता है, उस आठ रज के एक अणु प्रमाण होता है, आठ अणुओं से केश का अग्र होता है, आठ केशाग्र से एक लिक्षा (लीख) होती है, आठ लिक्षा से एक यूका (ढील) होती है, आठ यूका से एक यव (जौ) होता है, आठ यव के एक अङ्गुल होता है, बारह अङ्गुल के एक वितस्ति (बीता) होती है, दो वितस्ति से एक हाथ होता है, चार हाथ से एक धनुष होता है, दो हजार धनुष के एक कोश होता है, चार कोश से एक योजन होता है, उस योजन मान से १२२२५१४९२०५७६००० इतने व्योमवृत्त (खकक्षा) सज्जन लोग कहते हैं। सिद्धान्तशेखर में श्रीपति इस विषय में इस प्रकार कहते हैं। यथा

"वेश्मान्त पतितेषु भास्करकरेष्वालोक्यते यद्रज।" इत्यादि

अणु आदि के प्रमाणों के विषय में आचार्य कथन ही प्रमाण है ॥ १-२ ॥

खकक्षाप्रमाणार्थमुपपत्ति ॥

आकाशे यन्मिते भागे सूर्यकिरणाश्चतुर्दिक्षु गच्छन्ति स भागो वृत्ताकारको भवति तस्यैव नाम खकक्षा, एतस्या प्रमाणज्ञानार्थं कोऽप्येको गोलाकारको मणिर्गृहीतस्तस्य प्रकाश पृथिव्या चतुर्दिक्षु वृत्ताकारे गच्छति तस्य वृत्तस्य (मणिप्रकाशवृत्तस्य) व्यासार्धं परिधिप्रमाणञ्च मापनेन ज्ञातुं शक्यते गोलाकारमणेर्व्यासार्धमपि मापनेन विदितमस्ति, ततो यद्येतावति गोलाकारमणेर्व्यासार्धे एतावान् मणिगोलप्रकाशप्रसारो लभ्यते तदा सूर्यबिम्बव्यासार्धे किमित्यनुपातेन समागच्छति सूर्यबिम्ब-किरणप्रसारप्रमाणं खकक्षा (खमाकाशं कषति घर्षति ग्रहो यावत्कल्पे तन्मितमाकाशखण्ड खकक्षेत्यन्वर्थं नाम) सञ्ज्ञकमिति, परमेतदानयन तदैव समीचीन भवितुमर्हति यदा च मणिगोलप्रकाशसूर्यबिम्बप्रकाशयो साजात्य भवेत्तत्रापि व्यासार्धसम्बन्धेन योऽनुपातोऽभिहित स न समीचीनो यतो "वृत्तयो फलसम्बन्धो भवतीह सदा सम। तद्व्यासवर्गजातेन सम्बन्धेन विदा स्फुट" मित्युक्त्या व्यासार्धवर्गसम्बन्धेनानुपात कर्त्तव्यस्तदा समीचीन भवितुमर्हति, यदि च मणिगोलप्रकाशसूर्यबिम्बप्रकाशयोर्वैजात्य तदा व्यासार्धवर्गवशेनाप्यनुपातेन खकक्षाप्रमाण समीचीन न भवितुमर्हतीति ॥

अथ खकक्षाप्रमाण किमाकारकमिति निरूप्यते।

नव्यमतेनाऽऽकाशे रविकिरणद्वारा यावती तमोहानिस्तदाकार कीदृश इत्येतदर्थं विचार्यते। सूर्यो दीर्घवृत्ते भ्रमति खकक्षाकृतिरपि तादृश्येव भवितुमर्हति।

आचार्योक्तेन खकक्षाप्रमाणेन सूर्यकेन्द्रात्तमोहानिजनितवृत्तपर्यन्त यद्रेखाप्रमाण तस्मिन्. दीर्घवृत्तबृहद्व्यासप्रमाण योज्यमधोभागेऽपि, एव दीर्घवृत्तलघुव्यास प्रमाणमप्यूर्ध्वभागेऽधोभागेऽपि योजित यद्रेखाप्रमाण भवेदेतद्द्वय (दीर्घवृत्तबृहद्व्यासयोजनेन, तथा दीर्घवृत्तलघुव्यासयोजनेन च यद्रेखाद्वय) तद्बृहद्व्यास लघुव्यासञ्च स्वीकृत्य सन्निर्मितदीर्घवृत्त लक्षणस्य दीर्घवृत्त-

रचनाप्रकारेण यदि दीर्घवृत्तरचना क्रियते तदा रचितदीर्घवृत्ताकार एव तमोहानिजनितमार्गो (खकक्षा) भवेत्परन्त्वनन्तदूरे स्थितत्वात्तत्र दीर्घवृत्त वृत्तमिव प्रतिभात्यत: प्राचीनाचार्यैः खकक्षाऽऽकृतिर्वृत्ताकारैव स्वीकृतेति ।। भास्कराचार्येण "कोटिघ्नैर्नखनन्दषट्कनखभूभूभृद्भुजङ्गेन्दुभि—

ज्योति.शास्त्रविदो वदन्ति नभस. कक्षामिमा योजनै ।"

इत्यादिना खकक्षामान कथ्यते, चतुर्वेदाचार्येणापि "द्विच्छिद्रपट्के-त्यादिना" भिन्नमेव तत्प्रमाणमाचार्योक्तात्कथ्यते इति ।।१-३ ।।

हि. भा.—आकाश मे चारो ओर सूर्य का प्रकाश जितने भाग मे जाता है वह वृत्ताकार है उसी का नाम खकक्षा है, इस खकक्षा के मानज्ञान के लिये, एक गोलाकार मणि लेते है। उसका प्रकाश पृथ्वी पर चारो तरफ वृत्त के रूप मे फैलता है, मापन से उस वृत का व्यासार्ध और वृत्तपरिधिप्रमाण विदित हो जायगा, मणिगोल का भी व्यासार्ध मापनद्वारा विदित है, तब अनुपात करते हैं मणिगोल व्यासार्ध मे मणिगोल प्रकाश वृत्तपरिधिमान पाते हैं तो सूर्यबिम्बव्यासार्ध मे क्या इस अनुपात से सूर्यबिम्ब प्रकाशवृत्त (खकक्षा) का ज्ञान हो जायगा। परन्तु इस तरह खकक्षा ज्ञान तभी ठीक हो सकता है जबकि मणिगोल प्रकाश मे और सूर्यबिम्ब प्रकाश मे साजात्य होगा, यदि दोनो प्रकाशो मे साजात्य नही रहेगा तब उक्त नियम से खकक्षा ज्ञान नही हो सकता है। दोनो प्रकाशो मे सजातीयत्व मे भी व्यासार्ध पर से जो अनुपात किया गया है सो ठीक नही है क्योंकि दो वृत्तो के फलसम्बन्ध दोनो वृत्तो के व्यासवर्ग के सम्बन्ध के बराबर होता है इसलिये व्यासार्धवर्ग से अनुपात करना चाहिये तब खकक्षा प्रमाण ठीक आ सकता है अन्यथा नही। इति।

खकक्षा की आकृति (आकार) कैसी है इसके विषय मे विचार करते हैं।

नवीन मत से सूर्य किरण द्वारा आकाश के जितने भाग की तमोहानि होती है उसका आकार कैसा है इस पर विचार करना है। सूर्य दीर्घवृत्त मे भ्रमण करते हैं, खकक्षा का आकार भी उसी आकार का होना चाहिये। आचार्योक्त खकक्षा प्रमाण से सूर्यकेन्द्र से तमोहानि जनित वृत्त पर्यन्त जो रेखा है उसका ज्ञान है। उसमे दीर्घवृत्त बृहद्व्यास प्रमाण ऊर्ध्व और अधो भाग मे भी जोडने से जो रेखा होगी उसको बृहद्व्यास मान कर तथा दीर्घवृत्त के लघु व्यास को भी ऊर्ध्वभाग एव अधोभाग मे जोडने से जो रेखा होगी उसे लघुव्यास मान कर हमारी दीर्घवृत्तलक्षण पुस्तक की दीर्घवृत्त रचना प्रकार से जो दीर्घवृत्त होगा वही तमोहानि जनित मार्ग (खकक्षा) होगा, परन्तु अनन्त दूर मे रहने के कारण वहा दीर्घवृत्त-वृत्त के तरह मालूम होता है इसलिये प्राचीनाचार्य लोग खकक्षा को वृत्ताकार स्वीकार करते हैं ।।

भास्कराचार्य खकक्षा मान के विषय मे कहते हैं कि "कोटिघ्नैर्नख-नन्द-षट्कनखभू" इत्यादि वटेश्वराचार्योक्त से भिन्न है, चतुर्वेदाचार्य भी 'द्विच्छिद्रपट्' इत्यादि से आचार्योक्त खकक्षा मान से भिन्न कहते हैं ।। १-३ ।।

इदानीं तस्या एवाऽऽकाशकक्षाया स्वरूपप्रकारमाह ।

गगने गगनस्थावितयो वितयो नयत्प्रकुर्वन्ति ।
यावत्तावदिह नभोद्दीप्ता भानवो भानो ॥ ४ ॥

हि भा—यावत् (यत्पर्यन्त) गगने (आकाशे) गगनस्थावितय (आकाशस्थोल्कादय) वितय (दिग्दाहादय) नयत्प्रकुर्वन्ति (इतस्ततो भ्रमन्ति) तावत् (आकाशस्य तद्भाग यावत्) भानो (सूर्यस्य) भानव (किरणा) नभोद्दीप्ता आकाशोज्जलीभूता) भवन्ति अर्थादाकाशस्य यद्भागपर्यन्तमुल्कादिग्दाहादिक भवति तद्भागपर्यन्त सूर्यकिरणा गच्छन्ति, सूर्यकिरणा आकाशे चतुर्दिक्षु यद्भागपर्यन्त गच्छन्ति स एव भाग खकक्षेति । इत पूर्व खकक्षामान कथितमाचार्येण पर का नाम खकक्षेति कथ्यतेऽनेन श्लोकेन, श्रीपतिनापि खकक्षासम्बन्धे इत्थमेव कथ्यते । यथा

रविगभस्तिनिरस्ततमोनभ परिधियोजनमानमिद भवेत् ।
भास्करेणापीदमेव कथ्यते । यथा—
दिनकरकरनिकरनिहततमस स परिधिरुदितस्तैरिति ॥ ४ ॥

हि भा—जहा तक आकाश मे उल्का दिग्दाहादि परिभ्रमण होता है आकाश के उस भाग तक सूय की किरणे आकाश म उज्ज्वलीभूत होती है अर्थात् आकाश के जितने भाग तक उल्का दिग्दाहादि है उतने भाग तक सूय किरण जाती हैं, चारो तरफ आकाश मे सूयकिरणें जितनी दूर तक जाती हैं वही भाग खकक्षा है । इससे पहले श्लोक मे खकक्षामान कहा गया है। परन्तु खकक्षा क्या है सो इससे आचाय कहते है । खकक्षा के विषय म श्रीपति भी इसी तरह कहते हैं । जैसे—

रविगभस्तिनिरस्ततमोनभ इत्यादि ।
भास्कराचाय भी यही कहते हैं—
'दिनकरकरनिकरनिहत इत्यादि ॥ ४ ॥

इदानीं कक्षाप्रकारेण ग्रहानयन वक्तु खकक्षानयन ततो ग्रहकक्षानयन ब्रुवन् भकक्षानयन चाह ।

रविशशियुगघात खाक्षिभक्त खकक्ष्या शशिभगणहता वा दिग्घ्नचक्रस्य लिप्ता ।
निजभगणविभक्ता सा ग्रहस्य स्वकक्ष्या भवति खरसनिघ्न सूर्यकक्ष्या भकक्ष्या ॥५॥

वि भा—रविशशियुगघात खाक्षिभक्त (विंशतिहृत) खकक्ष्या भवति, वा (अथवा) दिग्घ्नचक्रस्य लिप्ता (दशगुणितस्वकक्षाकला) शशिभगणहता (चन्द्रभगणगुणिता) निजभगणविभक्ता (चन्द्रभगणभक्ता) तदा सा ग्रहस्य स्वकक्ष्या (ग्रहकक्षा) भवति, खरसनिघ्ना, (षष्टिगुणिता) सूर्यकक्ष्या, भकक्ष्या (नक्षत्रकक्ष्या) भवतीति । एतेनाऽऽचार्येण श्रीपतिनापि खकक्ष्या इत्यादि कथ्यते भास्करादिभि कक्ष्यास्थाने कक्षा कथ्यते यथा खकक्षा, भकक्षेत्यादि ॥ ५ ॥

अत्रोपपत्ति ।

अथ ३ चभगण = भकक्षा । तथा ६० × रविकक्षा = भकक्षा

$\therefore$ ३ चभगण $=$ ६० $\times$ रविकक्षा तत $\frac{\text{३ चभगण}}{\text{६०}} =$ रविकक्षा $= \frac{\text{चभगण}}{\text{२०}}$

पर खकक्षा $=$ रविकक्षा $\times$ रविभगण अत $\frac{\text{चभगण} \times \text{रविभगण}}{\text{२०}} =$ खकक्षा

अत्र रविशशियुगघात (रविचन्द्रयुगभगणघात) बोध्य ।

"ब्रह्माण्डमेतन्मितमस्तु नो वा कल्पे ग्रह क्रामति योजनानि । यावन्ति पूर्वैरिह तत्प्रमाण प्रोक्त खकक्षाख्यमिद मत न" इति भास्करोक्त्या ग्रहभगण $\times$ ग्रहकक्षा $=$ खकक्षा,

अत चन्द्रभगण $\times$ चन्द्रकक्षा $=$ खकक्षा, तेन ग्रहभ $\times$ ग्रहक $=$ चन्द्रभगण $\times$ चकक्षा

$\therefore$ $\frac{\text{चभगण} \times \text{चकक्षा}}{\text{ग्रहभगण}} =$ ग्रहकक्षा, अत १० चभगण $=$ चन्द्रकक्षा ।

तथा ६० $\times$ सूर्यकक्षा $=$ भकक्षा अत्रागम एव प्रमाणमत उपपन्नम् ॥५॥

हि भा —रविचन्द्रभगण घात को बीस से भाग देने से खकक्ष्या होती है । दसगुणित खकक्ष्या कला को चन्द्रभगण से गुणकर अपने भगण (ग्रहभगण) से भाग देने से ग्रहकक्ष्या होती है । सूर्यकक्ष्या को साठ से गुणने से भकक्ष्या होती है ॥

वटेश्वराचार्य और श्रीपति भी कक्ष्या कहते हैं, जैसे भकक्ष्या, खकक्ष्या इत्यादि, लेकिन भास्कराचार्यादि उसको कक्षा कहते हैं जैसे भकक्षा, खकक्षा इत्यादि ।

उपपत्ति ।

३ चभगण $=$ भकक्षा । तथा ६० रविकक्षा $=$ भकक्षा

$\therefore$ ३ चभगण $=$ ६० रविकक्षा इसलिये $\frac{\text{३ चभगण}}{\text{६०}} = \frac{\text{चभगण}}{\text{२०}} =$ रविकक्षा

परन्तु खकक्षा $=$ रविकक्षा $\times$ रविभगण इसलिये $\frac{\text{चभगण} + \text{रविभगण}}{\text{२०}} =$ खकक्षा

यहा रविशशि युग घात से रविचन्द्र के युग भगण का गुणनफल समझना चाहिये ।

ब्रह्माण्डमेतन्मितमस्तु नो वा कल्पे ग्रह क्रामति योजनानि । यावन्ति पूर्वैरिह तत्प्रमाण प्रोक्त खकक्षाख्यमिद मत न" इस भास्करोक्ति से ग्रहभगण $\times$ ग्रहकक्षा $=$ खकक्षा

एव चन्द्रभगण $\times$ चकक्षा $=$ खकक्षा $\therefore$ ग्रभ $\times$ ग्रकक्षा $=$ चभ $\times$ चकक्षा

इसलिये $\frac{\text{चभ} \times \text{चकक्षा}}{\text{ग्रभ}} =$ ग्रकक्षा, यहा १० चभगण $=$ चकक्षा

तथा ६० $\times$ सूर्यकक्षा $=$ भकक्षा इसमे आगम ही प्रमाण है ।

इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥५॥

इदानी भकक्ष्याम्बरकक्ष्यादिसम्बन्धे पुनरप्याह ।

खखनगमुनिभक्ता वा खकक्ष्या भकक्ष्या त्रिगुण विधुभसंघो योडुवृत्तं प्रदिष्टम् ।
नखहृतरविवर्यैश्चन्द्रकक्ष्या हिमांशोर्नखहृतपरिवर्तैर्भास्वतो धाम धाम ॥ ६ ॥

वि भा —अथवा खकक्ष्या खखनगमुनि (७७००) भक्ता (हृता) तदा भकक्ष्या भवति, वा त्रिगुणविधुभसङ्घ (त्रिगुणितचन्द्रभगण) उडुवृत्त (नक्षत्रवृत्त भकक्ष्या वा) प्रदिष्टम् (कथितम्) नखहृतरविवर्यै (विंशतिसूर्यभगणै) चन्द्रकक्ष्या भवति । हिमांशो (चन्द्रस्य) नखहृतपरिवर्तै (विंशतिगुणितभगणैः) भास्वत (सूर्यस्य) धाम धाम (किरणमन्दिर सूर्यकिरणावरणपरिधिर्वेति) ॥६॥

अस्योपपत्ति ।

$\frac{\text{खकक्षा}}{७७००}$ = भकक्षा । कक्षाप्रमाण पठितमेवास्ति तेन $\frac{\text{खकक्षा}}{\text{पठिताङ्क}}$ = भकक्षा ।

अथवा ३ × चभगण = भकक्षा । यत $\frac{\text{भकक्षा}}{\text{चभगण}}$ = ३ ।

$\frac{\text{रविभगण}}{२०}$ = चन्द्रकक्षा । २० × चन्द्रभगण = खकक्षा इति सर्वं परीक्षणीय वस्तु विद्यते, सर्वेषा पठिताङ्कान् सगृह्य द्रष्टव्य यदिति भवति नवेति ॥६॥

हि भा —अथवा खकक्षा को ७७०० इतने से भकक्ष्या होती है वा त्रिगुणित चन्द्रभगण भकक्ष्या होती है । बीस से भक्त रविभगण चन्द्रकक्षा होती है । बीस गुणितचन्द्रभगण सूर्य किरणावरणपरिधि (खकक्षा) प्रमाण होता है ।

उपपत्ति ।

$\frac{\text{खकक्षा}}{७७००}$ = भकक्षा । खकक्षा प्रमाण विदित है इसलिये $\frac{\text{खकक्षा}}{\text{पठिताङ्क}}$ = भकक्ष्या ।

अथवा ३ × चभगण = भकक्षा । यत $\frac{\text{भकक्षा}}{\text{चभगण}}$ = ३ ।

$\frac{\text{रविभगण}}{२०}$ = चकक्षा । २० × चभगण = खकक्षा, यहा चन्द्रभगणादि का मान लेकर गणित द्वारा इसको देखना चाहिये ॥ ६ ॥

इदानी ग्रहाणा कक्षा भकक्षा च निर्दिशति

पञ्चाशोननगाङ्कर्तुनगगजनागाक्षियोजनैर्भानो ।
कक्ष्या शशिनो दिग्घ्ना भगणा कलाधरणितनयस्य ॥७॥
नेत्रवसुरविहुताशनजलधिशरै षड्भुजङ्गैश्च ।
भूमिख यमाब्धि धराधरशाराशकैश्च शशधरसुतस्य ॥८॥
नेत्रागवेदसायकयमर्तुभिर्जित समुद्रशशिचन्द्रैः ।
सुरशरखाङ्काक्षिलवैर्हिरसुरगुरोर्योजनैः कक्ष्या ॥९॥
नवखेषु खतत्त्वद्वित्रिभिरर्णधराभ्रजलधियुगवर्गैः ।
शिवनेत्राष्टकुभार्गौजिनवेदागधरणिधरचन्द्रैः ॥१०॥

रविकुशरैः सप्ताग्नि स्तम्भेरम दिग्गवैर्भृगुसुतस्य ।
रविजस्य खनगचन्द्रशराशेषु गजैः खचन्द्रवसुचन्द्रैः ॥११॥
पर्वतदिग्रसमार्गैर्योजनसख्यामचक्रवृत्तस्य ।
वसुगगनाभ्रनभोग द्विव्यगचन्द्रैः समस्तस्य ॥१२॥

एषामर्था स्पष्टा एवेति ।

कथमेषा रव्यादीना ग्रहाणा नक्षत्रस्योपर्युक्तानि कक्षामानानि सन्ति तज्ज्ञानार्थं युक्ति स्पष्टैवास्ति, यत पूर्वं सर्वेषा भगणा पठिता सन्ति । -

. पठितभगणैः खकक्षामितानि योजनानि लभ्यन्ते तदैकेन भगणेन किं समागमिष्यति ग्रहकक्षामानम् $= \frac{\text{खकक्षा}}{\text{ग्रहभगण}}$ एतेनैव नियमेन सर्वेषा ग्रहाणा कक्षामानानि समानेतु शक्यन्ते यानि चोपरि लिखितानि सन्ति, परमेतमाचार्योक्तानि कक्षामानानि भास्करादिकथितग्रहकक्षामानेभ्यो भिन्नानि सन्तीति प्रत्यक्षमेवास्तीति ग्र कक्षायोजनमानपाठोऽपि समीचीनो न प्रतिभातीति ॥७-१२॥

हि भा —इन सब के अर्थ स्पष्ट ही हैं ।

रव्यादि ग्रहो की और नक्षत्र की क्यो इतनी कक्षामिति है इसके ज्ञान के लिये युक्ति सरल है । पहले सब के भगण पठित है, इसलिये पठितभगण मे खकक्षा योजन पाते हैं तो एक भगण मे क्या इस अनुपात से ग्रहकक्षमान आ जायेंगे $\frac{\text{खकक्षा}}{\text{ग्रहभगण}}$ =ग्रहकक्षा इस नियम से सब ग्रहो के कक्षामान तथा नक्षत्र कक्षामान आ सकते हैं जो कि ऊपर लिखित हैं। पर इनके पठित ग्रहकक्षामान तथा नक्षत्र कक्षामान भास्करादि पठित ग्रहादि कक्षामान से भिन्न है कक्षायोजन मानो का पाठ भी समीचीन नहीं मालूम पडता हैं ॥७-१२॥

इदानी ग्रहाणामेव दिनयोजनगत्यानयन गतयोजनानयन चाह ।

खवहैः खकक्ष्या विहृता ग्रहाणा गतिस्तदिष्टद्युगणाहतिः स्युः ।
ग्रहोपभुक्तानि तु योजनानि खवृत्तमानद्युगणाहतेर्वा ॥ १३ ॥

वि भा —खकक्षा (पूर्वोक्ता) खवहै (युगकुदिनै) विहृता (भक्ता) तदा-ग्रहाणा गति (योजनगति) स्यात् तदिष्टद्युगणाहति (योजनगत्यहर्गणघात) ग्रहोपभुक्तानि योजनानि (ग्रहगतयोजनानि) स्यु । वा (अथवा) खवृत्तमानद्युगणाहते (खकक्षाऽहर्गणघातात् खवहैर्भक्तात्) ग्रहगतयोजनानि स्युरिति ॥१३॥

अस्योपपत्ति. ।

यदि युगकुदिनैः खकक्षा योजनानि लभ्यन्ते तदैकेन दिनेन किमित्यनुपातेन समागच्छति गतियोजनम् $= \frac{\text{खकक्षा}}{\text{कुदि}}$, ततोऽनुपातो यद्येकेन दिनेनेः गतियोजन लभ्यते तदाऽहर्गणेन किमिति समागच्छति गतयोजनम् $= \frac{\text{गतियोजन} \times \text{अहर्ग}}{१}$

$$= \text{गतियोजन} \times \text{अहर्गण}, \text{ वा } \frac{\text{खकक्षा} \times \text{अहर्गण}}{\text{कुदि}} = \text{गतयोजन}$$

एतावताऽऽचार्योक्तमुपपन्नम् ॥

श्रीपतिनाप्येतदेव कथ्यते "कल्पभूदिनहताम्बरकक्षा स्याद् ग्रहस्य खलु योजनभुक्तिः। तद्गुणाद्दिनगणाद् द्युचराणां योजनानि हि गतानि भवन्ति।

खकक्षया वा निहतो द्युराशिः क्वहैर्विभक्तो गतयोजनानीति"

भास्करेणापि "कल्पोद्भवैः क्षितिदिनैर्गगनस्य कक्षा भक्ता भवेद्दिनगतिर्गगनेचरस्ये" त्यादिना तदेव कथ्यते। श्रीपतिना भास्करेण च कल्पसम्बन्धेन कथ्यन्ते एतेनाचार्येण (वटेश्वरेण) युगसम्बन्धेन कथ्यते। एतावदेवान्तरमिति ॥ १३ ॥

हि भा—खकक्षा को कुदिन से भाग देने से ग्रहों की योजन गति होती है। उसका और अहर्गण का घात करने से गतयोजन प्रमाण होता है। अथवा यह गतयोजनमान खकक्षा और अहर्गण के घात में कुदिन से भाग देने से होता है ॥ १३ ॥

उपपत्ति

यदि युगकुदिन में खकक्षा योजन पाते हैं तो एक दिन में क्या इस अनुपात से गति योजन प्रमाण आया, $\frac{\text{खकक्षा}}{\text{कुदि}} = \text{ग्रहगतियोजन}$। फिर अनुपात करते हैं। यदि एक दिन में यह गति योजन पाते हैं तो अहर्गण में क्या इस अनुपात से गतयोजन आया, $\frac{\text{गतियोजन} \times \text{अहर्गण}}{१} = \text{गतियो} \times \text{अहर्गण}$ वा $\frac{\text{खकक्षा} \times \text{अहर्गण}}{\text{कुदि}} = \text{गतयोजन}$। इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥

श्रीपति भी सिद्धान्तशेखर में ये ही बातें कहते हैं।

कल्पभूदिन हताम्बर कक्षा स्याद् ग्रहस्य खलु योजनभुक्ति। तद्गुणाद् दिनगणाद्द्युचराणा योजनानि हि गतानि भवन्ति ॥ खकक्षया वा निहतो द्युराशि . क्वहैर्विभक्तो गतयोजनानीति। भास्कराचार्य भी सिद्धान्तशिरोमणि में "कल्पोद्भवै क्षितिदिनैर्गगनस्य कक्षा भक्ता भवेद्दिनगतिर्गगनेचरस्येत्यादि" से उसी विषय को कहते हैं, श्रीपति और भास्कराचार्य कल्प सम्बन्ध से कहते हैं और वटेश्वराचार्य युगसम्बन्ध से कहते हैं, इतना ही अन्तर है ॥१३॥

इदानीं ग्रहाणामेकदिनयोजनगतिं सङ्ख्यया निर्दिशति

शरगुणशरेषु वसुरसखैरगधरैः खेनत्तं द्विनभोगैः।
शरखनवागैर्युक्तो योजनभुक्तिर्ग्रहस्य सर्वस्य ॥१४॥

हि. भा—ग्रहाणां योजनात्मकगतिप्रमाणं 'शरगुणशरेषु वसुरसखैरगधरैरि' यादिना,' कथ्यते, इयं योजनात्मकगतिः सर्वेषां ग्रहाणां तुल्यैव भवति, इति ॥१४॥

उपपत्तिः ।

पूर्वं योजनात्मकगतिप्रमाणमानीत $\frac{\text{खकक्षा}}{\text{कुदि}}$ = योजनात्मकगतिः = पठिताङ्क एतयोः स्थिरत्वात्सर्वेषां ग्रहाणां योजनात्मगतिः समैव भवितुमर्हति, कलात्मिका गति. सर्वेषां ग्रहाणामतुल्या भवति, श्रीपतिनापि "तुल्या गतिर्योजनवत्मनैषां लिप्ता प्रकृत्या मृदुशीघ्रभावः, सिद्धान्तशेखरे प्रतिपादितम् । भास्कराचार्येणापि "समागतिस्तु योजनैर्नभः सदा सदा भवेत् । कलादिकल्पनावशान्मृदु द्रुता च सा स्मृते" त्यादिना तदेव कथ्यते इति ॥१४॥

हि. भा.—भरगुणशरेषु इत्यादि से ग्रहो की योजनात्मकगति प्रमाण कहते है ॥१४॥

उपपत्ति

पहले योजनात्मकगति प्रमाण लाया गया है, $\frac{\text{खकक्षा}}{\text{कुदि}}$ = योजनात्मक गति = पठिताङ्क, इसमे खकक्षा, युकुदि इन दोनो के स्थिर रहने के कारण हर एक ग्रह की योजनात्मक गति प्रमाण बराबर होगा, हर एक ग्रह का योजनात्मकगति प्रमाण अनुपात से $\frac{\text{खकक्षा}}{\text{कुदि}}$ यही आता है

सिद्धान्तशेखर मे श्रीपति भी यही विषय कहते हैं —

तुल्या गतिर्योजनवर्त्मनैषा लिप्ता प्रकृत्या मृदुशीघ्रभाव. ।

भास्कराचार्य भी इस बात को कहते हैं । "समागतिस्तु योजनैर्नभ सदा सदा भवेत् । कलादि कल्पनावशादित्यादि" इति ॥१४॥

एव साधनान्यभिधाय कक्षाप्रकारेण मध्यग्रहानयनमाह

अभीष्टखेटपर्ययैरसूनि तानि भाजयेत् ।
खवृत्तियोजनैर्ग्रहः स एव पर्ययादिक ॥ १५ ॥

वि. भा —अभीष्टखेटपर्ययै. (इष्टग्रहभगणै) तानि असूनि भाजयेत्तदा यो हि ग्रहो भवति स एव खवृत्तियोजनै (खकक्षायोजनै) पर्ययादिक. (भगणादिक) ग्रहो भवेदिति ॥१५॥

अस्योपपत्तिः ।

यदि खकक्षायोजनैर्ग्रहभगणा लभ्यन्ते तदा गतयोजनैः किमित्यनुपातेन भगणादिमध्यमस्तत्स्वरूपम् = $\frac{\text{ग्रभ} \times \text{गतयो}}{\text{खक}}$,

$$= \frac{\text{गतयो}}{\frac{\text{खक}}{\text{ग्रभ}}} = \frac{\text{गतयो}}{\text{ग्रहकक्षा}} \quad \Big| \quad \text{यतः } \frac{\text{खक}}{\text{ग्रभ}} = \text{ग्रहकक्षा.}$$

एतावताऽऽचार्योक्तमुपपन्नम् ।

श्रीपतिनापि "स्वकक्षया वा गतयोजनानि हृतानि मध्या भगणादिका स्यु । इत्यादिना सिद्धान्तशेखरे तदेव प्रतिपादितम् ॥१५॥

हि भा —इष्ट ग्रह भगण मे गतयोजन मे भाग देना, उस पर से जो ग्रह आते हैं वही स्वकक्षा योजन से मध्यम ग्रह भगणादिक होते हैं ॥१५॥

उपपत्ति ।

यदि स्वकक्षा योजन मे ग्रह भगण पाते हैं तो गत योजन मे क्या इस अनुपात मे भगणादि मध्यमग्रह आते हैं $\frac{\text{ग्रभ} \times \text{गतयो}}{\text{स्वक}} = \frac{\text{गयो}}{\frac{\text{स्वक}}{\text{ग्रभ}}} = \frac{\text{गयो}}{\text{ग्रकक्षा}}$ ।

इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ।

सिद्धान्तशेखर मे 'स्वकक्षया वा गतयोजनानि हृतानि मध्या भगणादिका स्यु" इत्यादि से उसी विषय को कहते हैं ॥१५॥

पुनरपि ग्रहानयनमाह ।

योजनानि निजकक्ष्ययाऽथवा भाजितानि भगणादि खेचर ।
व्योमवृत्तगुणितद्युराशितो भाजिताद्धि कुदिनघ्नकक्ष्यया ॥१६॥

वि भा —अथवा योजनानि (गतयोजनानि) निजकक्ष्यया (स्वकक्षामित्या) भाजितानि (भक्तानि) तदा भगणादि खेचर (भगणादि ग्रह) भवेत् । व्योमवृत्तगुणितद्युराशित (स्वकक्षागुणिताहर्गणात्) कुदिनघ्नकक्ष्यया (कुदिनगुणितस्वकक्षया) भाजितात् (भक्तात्) वा भगणादिग्रहो भवेदिति ॥१६॥

अस्योपपत्ति ।

पूर्वमेव सिद्ध यत् $\frac{\text{गतयोजन}}{\text{ग्रहकक्षा}}$ = भगणादि मध्यमग्रह । पर $\frac{\text{स्वकक्षा} \times \text{ग्रह}}{\text{कुदि}}$ = गतयो

अत $\frac{\text{स्वकक्ष} \times \text{ग्रहर्गण}}{\text{कुदि} \times \text{ग्रहकक्षा}}$ = भगणादिमग्र । अत उपपन्नमाचार्योक्तम् ।

हि भा —अथवा गत योजन को अपनी कक्ष्या से भाग देने से भगणादिग्रह होते हैं । वा स्वकक्षा गुणित अहर्गण मे कुदिन गुणित ग्रहकक्षा से भाग देने से भगणादि ग्रह होते हैं ॥१६॥

उपपत्ति ।

पहले सिद्ध हुआ कि $\frac{\text{गतयोजन}}{\text{ग्रहकक्षा}}$ = भगणादिमध्यम ग्रह ।

परन्तु $\frac{\text{स्वकक्षा} \times \text{अहर्गण}}{\text{कुदि}}$ = गतयो $\therefore$ $\frac{\text{स्वकक्षा} \times \text{अहर्गण}}{\text{कुदि} \times \text{ग्रहक}}$ = भगणादिग्र ।

इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥१६॥

युगे ग्रहा कियन्ति योजनानि भ्रमन्तीत्याह ।

भवृत्ततुल्यानि हि योजनान्यमी व्रजन्ति पूर्वाभिमुखं स्ववृत्तगाः ।
इनात्मषष्ट्या समगा दिवौकसः खवृत्ततुल्यानि युगस्य वत्सरैः ।।१७।।

वि. भा.—स्ववृत्तगाः (स्वकक्षास्थिता.) अमी (ग्रहा.) पूर्वाभिमुख भवृत्ततुल्यानि (क्रान्तिवृत्तप्रमाणानि) योजनानि व्रजन्ति, इनात्मषष्ट्या (एकदिनेन) दिवौकसः (ग्रहा.) समगा. (समगतिकाः) भवन्ति, युगस्य वत्सरै. (युगवर्षै.) खवृत्ततुल्यानि योजनानि व्रजन्तीति । एतेनेदमेव कथ्यते यदेकभगणे योजन मानेन स्वकक्षाप्रमितं ग्रहचलन भवति, एकदिने च योजनात्मकगतिः सर्वेषां तुल्यै. भवति, युगवर्षे खकक्षायोजनमितं ग्रहचलनं भवतीति ।।१७।।

हि. भा.—अपनी कक्षा में पूर्वाभिमुख चलते हुए एक भगण पूरा होने पर अपनी कक्षास्थित योजन के बराबर चलते है । एक दिन मे ग्रहो के योजनमान से चलन (योजनात्मक गति) बराबर है । और युगवर्ष मे ग्रहो के चलन योजनमान से खकक्षा योजन के बराबर होता है ।।१७।।

बुधशुक्रयो. कक्षाविषये विशेषमाह ।

रविभगणहता बुधसितचलकक्ष्यायोजनैर्युगाब्दाः स्युः ।
बुधसितयोर्यत एवं लिप्ता भोगतोऽन्यथोः सौर. ।। १८ ।।

वि भा—बुधसितचलकक्ष्यायोजनै (बुधशुक्रशीघ्रोच्चकक्ष्यायोजनै) रवि भगणहता (रविभगणगुणिता) तदा युगाब्दा. स्यु (युगवर्षाणि स्यु) यतः (यस्मात् कारणात्) अनयोर्बुधसितयो (बुधशुक्रयो) चलकक्ष्याया (शीघ्रोच्चकक्षाया) भ्रमतो. एव सौर. (सूर्यसम्बन्धि) लिप्ता भोगतो भवत्यर्थाद् बुधशुक्रयो कलात्मकभोग शीघ्रोच्चकक्षाया रविगत्यैव भवतीति ।।१८।।

अस्योपपत्ति ।

बुधशुक्रयो. युग भगण × कक्षा > खकक्षा

तथा बुधशुक्रशीघ्रोच्चयो. युगभगण × कक्षा = स्वकक्षा

अन्यग्रहाणा शीघ्रोच्चाना तु युभ × कक्षा >< खकक्षा

अतोऽत्र $\frac{\text{खकक्षा}}{\text{युगभगण}}$ इति स्वकक्षासमं न भवति, तदोच्चाना शुद्धमानयन न भविष्यति । पर येषा कक्षा शुद्धाऽगता तेषा तच्छुद्धकक्षावलम्बेन यथा शुद्धमानयनं भवति तथाऽप्येतदशुद्धकक्षावलम्बेनैवैतेषामपि शुद्धमानयनं कर्त्तव्यमिति चेत्तदा कल्प्यता तावदशुद्धकक्षायामेव भ्रमण तदा $\frac{\text{खक} \times \text{अहर्गण}}{\text{युकु}}$ = अहर्गणसं खकक्षा, पुनरनुपातः

$\frac{\text{१ भगण} \times \text{अहर्गण सखक}}{\text{अशुद्धकक्षा}} = \frac{\text{खक} \times \text{अहर्गण} \times \text{१ भग}}{\text{युकु} \times \text{अशुद्धक}}$ = अहर्गणस खकक्षा जनित भगणादिग्रह

परन्तु अशुद्धोच्चकक्षा = $\frac{\text{खकक्षा}}{\text{युगोच्चभ}}$ उत्थापनेन

$\frac{\text{खकक्षा} \times \text{ग्रह} \times \text{युउभ} \times \text{१ भगण}}{\text{खकक्षा} \times \text{युबु}} = \frac{\text{ग्रह} \times \text{युउभ}}{\text{युकु}}$ = अहर्गणस उच्चभगणादिग्र

अत्राशुद्धमूलभूतखकक्षयोर्ईरगुणकयोर्नाशेऽन्तिमस्वरूपे दोषाभावाच्छुद्धमेवानयन जातम् । एव बुधशुक्रयोरप्यशुद्धावलम्बनमेव शरणम् ।

पर युरभ = युबुभ = युशुभ मर = मबु = मशु इति दर्शनात्

$\frac{\text{खकक्षा}}{\text{युबुभ}} = \frac{\text{खक}}{\text{युशुभ}} = \frac{\text{खक}}{\text{युरभ}}$ = बुकक्षा = शुक = रकक्षा इति ग्रहण कृत्वा पूर्वोक्त्या रव्यानयन कार्य तदा तत्तुल्यावेव मध्यमौ बुधशुक्रौ भवेताम् । पर वास्तवावेतावनन्तरोक्तरीत्याऽऽनेतव्यौ तदा स्वस्वशीघ्रोच्चकक्षाया रविगत्या तौ भ्रमत इति ॥१८॥

हि भा—बुध और शुक्रशीघ्रोच्च कक्षा योजन से रवि भगण को गुणने से युगवर्ष होते हैं क्योकि अपनी शीघ्रोच्च कक्षा म भ्रमण करते हुए बुध और शुक्र का कलात्मक भोग सूर्यसम्बन्धी है अर्थात् शीघ्रोच्च कक्षा म उनके भ्रमण रविगति से होता है ॥१८॥

उपपत्ति ।

बुध और शुक्र के युग भगण × कक्षा > खकक्षा तथा बुध को शीघ्रोच्च के युग भगण × कक्षा = खकक्षा अन्य ग्रहो के शीघ्रोच्च के युगभ × कक्षा >< खकक्षा इसलिये यहा $\frac{\text{खक}}{\text{युभगण}}$ यह स्वकक्षा के बराबर नही होता है। तब तो उनो का शुद्ध आनयन नही होगा, लेकिन जिनकी कक्षा शुद्ध आई है उन सब के शुद्ध कक्षावश जिस तरह शुद्ध आनयन होता है उसी तरह यहा भी अशुद्ध कक्षावश से इन सब का शुद्ध आनयन करना चाहिये, यह यदि आग्रह है तब तक अशुद्ध कक्षा ही मे भ्रमण स्वीकार कीजिये तब $\frac{\text{खक} \times \text{अहर्गण}}{\text{युकु}}$ = अहर्गणस खकक्षा, फिर अनुपात कीजिये

$\frac{\text{१ भगण} \times \text{अहर्गणस खकक्षा}}{\text{अशुद्धकक्षा}} = \frac{\text{खकक्षा} \times \text{अहर्ग} \times \text{१ भगण}}{\text{युकु} \times \text{अशुद्धक}}$ = अहर्गणस खकक्षा जनित भगणादिग्र

परन्तु $\frac{\text{खकक्षा}}{\text{युगोच्चभ}}$ = अशुद्ध उच्चकक्षा, उत्थापन देने से

$\frac{\text{खक} \times \text{ग्रह} \times \text{युउभ} \times \text{१ भगण}}{\text{खकक्षा} \times \text{युकु}} = \frac{\text{युउभ} \times \text{ग्रह}}{\text{युकु}}$ = अहर्गण म उच्च भगणादिग्र

इस तरह शुद्ध ही आनयन होगया । इस तरह बुध और शुक्र के लिये भी अशुद्ध का अवलम्बन करना ही शरण है।

परन्तु युरभ = युबुभ = युशुभ ∴ मर = मबु = मशु

अत $\frac{\text{सम}}{\text{युबुभ}} = \frac{\text{सश}}{\text{युशुभ}} = \frac{\text{सक}}{\text{युरभ}}$ = बुकक्षा = शुक्रकक्षा = रविकक्षा इस पर से रवि का आनयन करने से रवि ही मध्यम बुध और शुक्र होंगे । अर्थात् अपनी अपनी शीघ्रोच्च कक्षा में रविगति से भ्रमण करते हैं यह सिद्ध हुआ ॥ १८ ॥

इदानीं कुजगुरुशनीनां विशेषमाह ।

चलकक्ष्याया भ्रमतोः कुजगुरुशनैश्चराः कक्ष्याः ।
इतरभगणाहता अध्वा तच्छीघ्राणामतश्चार्कः ॥ १९ ॥

वि. भा—चलकक्ष्याया भ्रमतोरित्यस्य पूर्वश्लोकेन सम्बन्धः । कुजगुरुशनैश्चरा कक्ष्या (मङ्गलबृहस्पतिशनैश्चरकक्ष्या) इतरभगणाहता (भिन्नभगण-गुणिताः) तदा खकक्षामानं भवति, अतः कारणात् तच्छीघ्राणां (तेषां शीघ्रोच्चानां) अध्वा (मार्गः) अर्कः (रविः) भवतीति ॥

अस्योपपत्तिः पूर्वश्लोकोपपत्त्यन्तर्गता बोध्या ।

हि. भा—मङ्गल, बृहस्पति, शनैश्चर इन सब की कक्षा को दूसरे ग्रहभगण से गुणने से खकक्षा के मान होते हैं इसलिए उन सब की शीघ्रोच्चमार्ग रवि (रविकक्षा) है । इसकी उपपत्ति पूर्वश्लोक की उपपत्ति में दिखलाई गई है ॥ १९ ॥

शशिज्ञ-शुक्रार्क-महीसुताङ्गिरः शनैश्चरार्क्षाणि यथाक्रमं क्षितेः ।
ऊर्ध्वं परिव्याप्तसुरक्षसां पुरि भ्रमन्ति तिर्यक् क्षितरे हि भूतले ॥२०॥

वि. भा—शशिज्ञशुक्रार्कमहीसुताङ्गिरः शनैश्चरार्क्षाणि (चन्द्र बुध शुक्र रवि-कुजगुरुशनैश्चरनक्षत्राणि) यथाक्रमं क्षितेः (पृथिव्याः) उपरिस्थितानि सन्ति, अर्थात्पृथिवीत उपरि ऊर्ध्वक्रमेण स्वस्वकक्षायां पूर्वोक्तग्रहनक्षत्राणि सन्ति, ऊर्ध्वं परिव्याप्तसुरक्षसां पुरि (राक्षसव्याप्तलङ्कानगर्यां) क्षितरे भूतले (पृथिवीभिन्न-धरातले) तिर्यक् (तिर्यग्रूपेण) भ्रमन्तीति ॥ शशिज्ञशुक्रार्कादीनां कथमीदृग्रूपेण तदवस्थितिस्तत्कारणं मङ्गलश्लोक एव प्रतिपादितमतस्तत्रैव द्रष्टव्यमिति ॥२०॥

हि. भा—चन्द्र बुध शुक्र रवि मङ्गल बृहस्पति शनैश्चर और नक्षत्र ये सब पृथिवी से ऊपर पृथ्वी को चारों तरफ जिनकी कक्षा घेरे हुए हैं उनमें (कक्षावृत्तों में) स्थित हैं । जो ग्रह और नक्षत्र लङ्कापुरी में पृथिवी से भिन्न धरातलों में भ्रमण करते हैं ॥

चन्द्र बुध शुक्र रवि मङ्गलादि ग्रहों की स्थिति जिस क्रम में लिखी गई है उसमें क्या कारण है सो मङ्गलश्लोक ही में वर्णित है इसलिये ये बातें वहीं पर देखनी चाहियें ॥२०॥

इदानीं दिनपतिमासपतिवर्षपतिहोरापतिज्ञानार्थं विधिमाह

होरेश्वराः सप्त शनैश्चराद्या यथाक्रमं शीघ्रजवाश्चतुर्थः ।
दिनाधिपः सावनमासनाथः स्यात्सप्तमोऽब्दाधिपतिस्तृतीयः ॥ २१ ॥

**विधोर्ययोर्ध्वं द्युपतिस्तु पञ्चमो भवेच्च षष्ठोऽब्दपतिस्तु सावन ।
अनन्तरो मासपतिश्च सप्तमो भवेच्च होराधिपतिर्यथाक्रमम् ॥ २२ ॥**

वि भा —शनैश्चराद्या यथाक्रम शीघ्रजवा (कक्षाक्रमेण स्थिता शनैश्च रादि क्रमिकशीघ्रगतिका) सप्तग्रहा होरेश्वरा (होराधिपतय) स्यु । चतुर्थो दिनाधिपति (वारेश), सप्तम सावनमासनाथ (सावनमासपति) तृतीय अब्दाधिपति (वर्षपति) भवेत् । विधो (चन्द्रात्) ययोर्ध्वं (ऊर्ध्वक्रमेण) पञ्चमो द्युपति (दिनपति) षष्ठ सावनोऽब्दपति (सावनवर्षेश), अनन्तर (चन्द्राद्रूर्ध्व-क्रमिक) मासपति (मासेश) अत्र भवेच्च सप्तम होराधिपतिश्च यथाक्रम भवेदिति ॥ २१-२२ ॥

यथा

कक्षाक्रमेणापर्युपरिस्थिता चन्द्रादयो ग्रहा	शनैश्चरतोऽध क्रमेण, होरेशा	चन्द्रत उपरि क्रमेण सप्तम सप्तमो ग्रहो होरेश्वर
चन्द्र	शनि	चन्द्र
बुध	बृहस्पति (गुरु)	शनैश्चर
शुक्र	मङ्गल	गुरु
रवि	रवि	मङ्गल
मङ्गल	शुक्र	रवि
बृहस्पति (गुरु)	बुध	शुक्र
शनैश्चर ।	चन्द्र	बुध

शनैश्चरतोऽध क्रमेण चतुर्थश्चतुर्थो दिनपति	चन्द्रत उपरिक्रमेण पञ्चान्तरितग्रहा दिनपतय	शनैश्चरतोऽधोऽध क्रमेण सप्तम सप्तमो मासेश	सोमत उपरिक्रमेण ग्रहा मासेशा
शनि	सोम	शनि	सोम
रवि	मङ्गल	सोम	बुध
सोम	बुध	बुध	शुक्र
भुज	बृहस्पति (गुरु)	शुक्र	रवि
बुध	शुक्र	रवि	मङ्गल
गुरु	शनि	मङ्गल	गुरु
शुक्र ।	रवि ।	गुरु ।	शनैश्चर

शनैश्चरतोऽध क्रमेण तृतीयस्तृतीयो ग्रहो वर्षेश्वर ।	चन्द्रत उपरिक्रमेण षष्ठ षष्ठो ग्रहो वर्षेश ।
शनि	सोम
मङ्गल.	गुरु
शुक्र:	रवि:

सोम	बुध
गुरु	शनैश्चर
रवि	मङ्गल
बुध ।	शुक्र

एतेनाचार्येण होराधिपति मासपति वर्षपत्याद्यर्थं कथमीदृशी गणना कृता तत्र युक्ति वेदयथम्

अत्रोपपत्ति

राश्यर्धम्=होरा, तेन मेषादितो राशीना यादृश्यवस्थितिस्तादृश्येव होराणामपि भवेत् ग्रहकक्षास्थित्या यस्य ग्रहस्य कक्षा सर्वोर्ध्वगता स एव ग्रह प्रथमहोरेशो भवितुमर्हति तेन सर्वोर्ध्वकक्षाया शनैश्चरस्य स्थितत्वात्प्रथमहोरेश स एव भवेत्, द्वितीयादिहोरेशास्तु तस्मादधोऽध कक्षास्थग्रहा भवितुमर्हन्त्यत एतदनुसारेण शनि गुरु मङ्गल रवि शुक्र बुध चन्द्रा प्रथमादि होरेशा, सिद्धयन्त्यत होरेश्वरा सप्तशनैश्चराद्या यथाक्रम शीघ्रजवा, आचार्योक्तमिद युक्तियुक्तम् अथच होरामानम्=२½ घटी, मध्यममानेनाहोरात्रप्रमाणम्=६०, तेनाहोरात्रे होरासख्या =२४ होरेश ग्रह सख्या=७, तेन $\frac{\text{होरस}}{७}=\frac{२४}{७}$ अत्र भजनाच्छेषमानम्=३=गत होरेशा, तदग्रिमे दिने प्रथमहोराधिपतिश्चतुर्थग्रहो भवेत्स एव च दिनाधिपतिरपि प्रथमाधिकारपरिपूर्णत्वादत चतुर्थो दिनाधिप' आचार्योक्त युक्तिसङ्गतम् ।

वर्षेश विचारार्थं वर्षारम्भे यो दिनपति स एव वर्षपतिरपि भवति तेनैव सायनवर्षदिनसख्याया सप्तभक्ताया शेषम्=३, (एवमावनवर्षदिनसख्या = ३६० दि) अत प्रत्येक वर्षे गतदिनाधिपतयस्त्रय, तदग्रिमवर्षारम्भे गतवर्षेशाच्चतुर्थग्रहो दिनपतिर्भवति, अधो ध कक्षास्थितिवशात्स च चतुर्थग्रहस्तृतीया भवत्यत 'अब्दाधिपतिस्तृतीय' आचार्योक्तमिद तथ्यमिति ।

मासेश्वरविचारार्थम् 'मावनमासनाथ स्यात्सप्तम' इत्याचार्योक्त शोभन न प्रतिभाति ।

सूर्यसिद्धान्तेऽपि—'मन्दादध क्रमेण स्युश्चतुर्था दिवसाधिपा ।
वर्षाधिपतयस्तद्वत्तृतीया परिकीर्तिता ॥
ऊर्ध्वक्रमेण शशिनो मासानामधिपा स्मृता ।
होरेशा सूर्यतनयादधोऽध क्रमशस्तथा ॥

पूर्वकथितवर्षेश्वराचार्योक्त मासेश्वर ज्ञानविधि सूर्यसिद्धान्तोक्त तज्ज्ञानविधयो पार्थक्य स्पष्टमेवास्ति पर 'विधोर्यच्चोर्ध्व सूर्यतिथि' इत्यादौ मासेश्वरगणनक्रम सूर्यसिद्धान्तकारोक्तमहत्त एव। ''षष्ठो-ऽधस्तात्तु सावन—मासेश्वरो मासगतिश्च सप्तमो भवेत होराधिपतिर्यथाक्रम' मित्याचार्योक्तम्

क्रमेण यथाक्रममिति न सिद्धयति तथा च होरेशज्ञानार्थं चन्द्रादूर्ध्वक्रमेण सप्तम सप्तमो ग्रहो होरेशो भवतीत्याचार्येण यत्कथ्यते तत्र यदि चन्द्रादूर्ध्वस्थित सप्तमो ग्रह (शनि) प्रथमहोरेशस्तत सप्तमो द्वितीयहोरेश इत्यादि तदा 'होरेश्वरा सप्तशनैश्चराद्या यथाक्रम शीघ्रजवा, इत्येव सिद्धयति, यदि प्रथमहोरेशश्चन्द्रस्तत सप्तम शनिर्द्वितीयहोरेश इत्यादि गणनक्रमस्तदाऽय क्रमविलक्षण एव विज्ञैरिति विचार्य ज्ञेयम् ॥

सिद्धान्तशेखरे श्रीपतिना त्वेतद्भिन्नमेव कथ्यते यथा—
सावनाब्दपतिमत्र चतुर्थं मासनाथमपि विद्धि तृतीयम् ।
वासरेश्वरमनन्तरमर्कात् षष्ठमेव खलु होरिकमीशम् ॥

अत्र युक्ति । सावनवर्षप्रमाणे ३६० सप्तहृते च त्रीण्यवशिष्यन्ते ततश्चाद्यच्चतुर्थ सावनवर्षपति (रविवारे कल्पारम्भत्वात्) त्रयाणा गतत्वाद् वर्तमानस्य चतुर्थत्वात् । त्रिंशतो मासप्रमाणस्य सप्तभिर्हरणे द्वयमवशिष्यते तत्र द्वौ व्यतीतौ वर्त्तमानस्तृतीय मासाधिपति । तथा रविदिने प्रथम कालहोरेशो रविरेव द्वितीयो रविमारभ्य षष्ठस्तस्मात्षष्ठस्तृतीय इति, दिनान्तरे तु तत्तद्दिनाधिपतिरेव प्रथमहोरेशो द्वितीयस्तस्मात्षष्ठ इत्यादि चिन्त्यमिति ॥

त्रिचतुरनन्तरषष्ठा सावनमासाब्ददिवसहोरेशा इति ब्रह्मगुप्तोवितरपीति ॥ २१-२२ ॥

हि भा—कक्षाक्रम से स्थित शनैश्चरादि क्रमिक शीघ्रगति ग्रह होराधिपति होते हैं। चौथे चौथे ग्रह (शनैश्चर से अधोऽध क्रम से) दिनपति होते हैं। सातवें सातवें ग्रह सावनमासपति होते हैं, तीसरे तीसरे ग्रह वर्षपति होते हैं। चन्द्र से उपरिक्रम से पाचवें पाचवें ग्रह दिनपति होते हैं, छठे छठे ग्रह सावन वर्षपति होते हैं। चन्द्र से ऊर्ध्व क्रम से मासपति और सप्तम होराधिपति होते हैं ॥ २१-२२ ॥

यथा

कक्षा क्रम से उपर्युपरि स्थित चन्द्रादिग्रह ।	शनैश्चर से अधोऽध क्रम से होरेश	चन्द्र से उपरिक्रम से सातवें सातव ग्रह होरेश
१ चन्द्र	१ शनि	१ चन्द्र
२ बुध	२ गुरु	२. शनैश्चर
३. शुक्र	३ मङ्गल	३ गुरु
४. रवि	४. रवि	४ मङ्गल
५. मङ्गल	५ शुक्र	५. रवि
६. गुरु	६. बुध	६. शुक्र
७. शनि	७. चन्द्र	७ बुध

शनैश्चर से अधोऽध क्रम से चौथे चौथे ग्रह दिनपति	चन्द्र से उपरिक्रम से पाँचवें पाँचवें ग्रह दिनपति	शनैश्चर से अधोऽध क्रमसे सातवें सातवें ग्रह मासेश होते हैं	सोम से उपरि क्रमसे मासेश होते हैं।
१. शनि	१. सोम	१ शनि	१. सोम
२. रवि	२. मङ्गल	२. सोम	२. बुध
३. सोम	३. बुध	३. बुध	३. शुक्र
४. मङ्गल	४. बृहस्पति	४. शुक्र	४. रवि
५. बुध	५ शुक्र	५. रवि	५. मङ्गल
६. बृहस्पति	६. शनि	६ मङ्गल	६. गुरु
७. शुक्र	७. रवि	७ गुरु	७. शनि

शनैश्चर से अधः क्रमसे तीसरे तीसरे ग्रह वर्षेश होते हैं।	चन्द्र से उपरि क्रम से छठे छठे ग्रह [illegible] होते हैं।
१. शनि	१. सोम
२. मङ्गल	२. गुरु
३ शुक्र	३. रवि
४. सोम	४. बुध
५ बृहस्पति	५. शनि
६. रवि	६. मङ्गल
७. बुध	७ शुक्र

वटेश्वराचार्य ने होराधिपति ज्ञान के लिये क्यों इस तरह की गणना की है इसमें क्या युक्ति है उसके लिए

उपपत्ति

तात्पर्य=होरा इसलिये मेषादि राशियों की ऊर्ध्वाधर स्थिति के अनुसार ही होराओं की भी स्थिति होगी, ग्रहकक्षा स्थिति के अनुसार शनैश्चर की कक्षा सब ग्रहों की कक्षाओं से ऊपर हैं इसलिये प्रथम होराधिपति शनैश्चर हुए, द्वितीयादि होराधिपति शनैश्चर से अधोऽध कक्षा स्थित ग्रह होते हैं इसलिए इसके अनुसार शनैश्चर, गुरु, मङ्गल, रवि, शुक्र, बुध, चन्द्र ये ग्रह प्रथमादि होरेश सिद्ध हुए। अत 'होरेश्वरा मन्द शनैश्चराद्या यथाक्रमं शीघ्रगया " यह आचार्योक्त युक्तियुक्त है।

होरामान=२½ घटी. मध्यम मान से अहोरात्र मान=६० घ, इसलिए अहोरात्र में होरा संख्या=२४ होरेशग्रहसंख्या=७ अत होरा संख्या में सात से भाग देने से शेष =३=गत होरेश, अगले दिन में प्रथम होराधिपति चौथे ग्रह होते हैं वही प्रथमाधिकार में दिनाधिपति होते हैं इसलिये 'चतुर्थो दिनाधिप' यह आचार्योक्त ठीक है।

वर्षेश के लिये वर्षारम्भ में जो दिनपति है वही वर्षपति भी होते हैं इसलिए एक सावनवर्ष दिनसंख्या ३६० में सात से भाग देने से शेष=३ अत हर एक वर्ष में गत दिनाधिपति=३, इससे अगले वर्षारम्भ में गतवर्षेश से चौथा ग्रह दिनराज होता है, अधोऽध:

कक्षास्थितिवश से यह चौथा ग्रह तीसरा होता है अत 'अब्दाधिपतिस्तृतीय यह आचार्योक्त सिद्ध हुआ।

मासेश्वर विचार के लिये 'सावनमासनाथ स्यात्सप्तम, यह आचार्योक्त ठीक नहीं मालूम पड़ता है।

सूर्यसिद्धान्त में भी 'मन्दादध क्रमेण स्युश्चतुर्था दिवसाधिपा ।
वर्षाधिपतयस्तद्वत्तृतीया परिकीर्तिता ॥
ऊर्ध्वक्रमेण शशिनो मासानामधिपा स्मृता ।
होरेशा सूर्यतनयादधोऽध क्रमशस्तथा ॥'

पूर्वकथित वटेश्वराचार्योक्त मासेश्वर ज्ञानविधि और सूर्यसिद्धान्तोक्त मासेश्वर ज्ञानविधियो में अन्तर स्पष्ट है। लेकिन 'विधोर्यथोर्ध्वं द्युपति' इत्यादि म मासेश्वर गणना-क्रम सूर्यसिद्धान्तोक्तानुसार ही है 'षष्ठोऽब्दपतिस्तु सावन, अनन्तरो मासपतिश्च सप्तमो भवेच्च होराधिपतिर्यथाक्रमम्, इस आचार्योक्त गणनाक्रम से यथाक्रम जो कहने हैं उसकी सिद्धि नही होती है और होरेश ज्ञान के लिए चन्द्र से ऊर्ध्वक्रम से सप्तम-सप्तम ग्रह होरेश होते हैं इस आचार्योक्ति में यदि चन्द्र से ऊर्ध्वस्थित सातवें ग्रह (शनि) प्रथम होरेश उससे सातवें ग्रह (गुरु) इत्यादि गणना क्रम हो तब तो 'होरेश्वरा सप्तदर्शचरायथाक्रम दीप्रजवा' यह सिद्ध होता है, यदि प्रथम होरेश चन्द्र होते हैं द्वितीय होरेश उससे सातवें ग्रह (शनि) होते हैं इत्यादि गणनाक्रम रक्खा जायगा तब एक विलक्षण ही गणनाक्रम होगा, इसको विज्ञ लोग विचार कर समझें ॥

सिद्धान्तशेखर में श्रीपति इनसे भिन्न ही कहते हैं। जैसे,

सावनाब्दपतिमत्र चतुर्थं मासनाथमपि विद्धि तृतीयम् ।
मासरेश्वरमनन्तरमर्कात् षष्ठमेव खलु होरिकमीशम् ॥

इसकी युक्ति यह है कि सावन वर्ष प्रमाण को ३६० सात से भाग देने से तीन शेष रहता है इसलिये रवि से चौथे ग्रह सावनवर्षपति होते हैं। (कल्पारम्भ में रविवार होने के कारण रवि से गणना करते हैं), तीस दिन के मास होते हैं इसलिये उसमे सात से भाग देने से दो शेष रहता है, उसमे दो गत है वर्तमान तृतीयमासाधिपति होते हैं। तथा रविदिन मे प्रथम काल होरेश रवि ही होते हैं द्वितीय काल होरेश रवि से छठे ग्रह होते हैं, इसी तरह छठे ग्रहकाल होरेश होते हैं। दूसरे दिन मे वही दिन प्रथमकाल होरेश होता है। उससे छठे छठे ग्रह द्वितीयादि काल होरेश होते हैं।

ब्रह्मगुप्त भी इसी बात को कहते हैं यथा

त्रिचतुरनन्तरषष्ठा सावनमासाब्ददिवसहोरेशा ॥ इति ॥

इदानीं ग्रहाणां गतावतुल्यत्वे कारणमाह ।

अल्पे हि वृत्ते तु भचक्रलिप्ता स्वल्पा महत्यो महतीन्दुरस्मात् ।
अल्पेन कालेन लघु स्ववृत्त भ्रमत्यनल्पं महतार्कसूनुः ॥ २३ ॥

प्राग्गेन लिप्तामसुदेति पूर्वे भूजे हरेऽस्त व्रजति ग्रहश्च।
स्वभुक्तिलिप्तायुतचक्रलिप्ता भोगैस्सम तेन यतो जवत्वम् ॥ २४ ॥

वि भा —हि (यत) अल्पे वृत्ते (लघुनि वृत्ते) भचक्रलिप्ता (भचक्रकला) स्वल्पा (लघ्व्य) महति वृत्ते (वृहद्वृत्ते) महत्य कला सन्ति। अस्मात् कारणात् इन्दु (चन्द्र) अल्पेन कालेन (अल्पीयसा समयेन) लघु स्ववृत्त (लघु स्वकक्षावृत्त) भ्रमति, अर्कसूनु (शनैश्चर) महता कालेन अनल्प (महत्स्वकक्षावृत्त) भ्रमति। लिप्ताभ (कलादिनक्षत्रविम्व) पूर्वे भूजे (पूर्वक्षितिजे) उदेति (उदय गच्छति) परे भूजे (पश्चिमक्षितिजे) अस्त व्रजति, (अस्त प्राप्नोति), ग्रहश्च स्वभुक्तिलिप्तायुतचक्रलिप्ताभोगै (स्वगतिकलायुतचक्रकलातुल्यभोगै) तेन नक्षत्रेण सम (सार्ध) पूर्वे भूजे व्रजति, यतो जवत्वम् (गतित्व) अस्ति, एतावताऽनेन कथ्यते यत्केन चिन्नक्षत्रेण सह ग्रह पूर्वक्षितिजे उदित, नक्षत्रतु नाक्षत्रघटीना षष्ट्या पुनस्तत्रैवोदय गच्छति, पर ग्रहस्य स्वगतिरस्तीरयतो नक्षत्रोदयानन्तर गतिकलोत्पन्नासुभि र्ग्रहोदयो भवति तेन ग्रहस्पष्टसावनम्

=चक्रकला+ग्रहगतिकलोत्पन्नासु=अहोरात्रासु+गतिकलोत्पन्नासु

यत चक्रकला=२१६००=चक्रासु।

६० घटी+ग्रहगतिकला अथवा तुल्यास=मध्यमसावनम्

६०+ग्रहगतिकलोत्पन्नासु=स्पष्टसावनम्।

अल्पे हि वृत्ते तु भचक्रलिप्ता इत्यादिना कलात्मकगतौ न्यूनाधिकत्व सावनमानेष्वपि न्यूनाधिकत्व प्रदर्शयत्याचार्य। योजनात्मकगति सर्वेषा ग्रहाणा तुल्यैवास्ति किन्तु कलात्मकगतिर्भिन्ना भिन्ना भवति तद्वशेनैव ग्रहेषु शीघ्रगतित्व मन्द गतित्व च भवतीति। भास्कराचार्येणाप्येतदेव कथ्यते—

समागतिस्तु योजनैर्नभ सदा सदा भवेत्।
कलादि कल्पनावशान्मृदु द्रुता च सा स्मृता ॥
'यथा सर्वा अपि द्विविपदा चक्रलिप्ताङ्किताःस्ता
वृत्ते लघ्व्यो लघुनि महति स्युर्महत्यश्च लिप्ता।
तस्मादेते शशिज भृगुजादित्यभौमेज्यमन्दा
मन्दाक्रान्ता इव शशधराद्भान्ति यान्त क्रमेण ॥ २३-२४ ॥

इति वटेश्वरसिद्धान्ते मध्यमाधिकारे कक्ष्याविधानग्रहानयनविधि सप्तमोऽध्याय समाप्त ॥

हि भा —छोटे वृत्त म भचक्र कला छोटी है और बडे वृत्त मे भचक्रकला बडी है इसलिये चन्द्रमा अपना छोटा वृत्त का भ्रमण स्वल्प ही काल म करते हैं और शनैश्चर अपना बडे वृत्त (अपनी बडी कक्षा) का भ्रमण बहुत अधिक काल मे करते हैं।

नक्षत्र पूर्व क्षितिज मे उदित होता है और पश्चिम क्षितिज मे अस्तंगत होता है, ग्रह अपनी गतिकला युत भचक्रकला करके पूर्व क्षितिज मे उदित होते हैं अर्थात् किसी नक्षत्र के साथ ग्रह पूर्व क्षितिज मे उदित हुए द्वितीय उदय पहले नक्षत्र का होगा (क्योंकि नक्षत्र को गति नहीं है,) बाद मे ग्रह का उदय ग्रहगतिकलोत्पन्नासु करके होगा इसलिये भचक्रकला + ग्रहगतिकलोत्पन्नासु = ग्रहस्पष्टसावन और ग्रह मध्यम सावन = ६० + ग्रहगतिकलातुल्यासु ।

'अल्पे हि वृत्ते तु भचक्रलिप्ता' इत्यादि से कलात्मक गतियो मे न्यूनाधिकत्व दिखलाते हैं, ग्रहो की योजनात्मक गति बराबर है किन्तु कलात्मक गति बराबर नही है इसी कारण से ग्रहो मे शीघ्र गतित्व और मन्दगतित्व होता है । इस विषय मे भास्कराचार्य भी यही बात कहते हैं । यथा—

"समागतिस्तु योजनैर्नभ सदा सदा भवेत् ।" इत्यादि

इति वटेश्वरसिद्धान्त मे मध्यमाधिकार मे कक्ष्याविधान ग्रहानयनविधि सप्तम अध्याय समाप्त हुआ ॥



अष्टमोऽध्यायः

अथ देशान्तरविधिः

अधुना लङ्कामारभ्य मेरुपर्यन्तसमरेखास्थितान् प्रसिद्धदेशानाह।

लङ्का कुमारी तु ततस्तु काञ्ची पानाटमर्यास्य पुरी महीष्मती।
श्वेतोऽचलोऽस्मादपि वत्स गुल्मं पू. स्यादवन्ती त्वनु गर्गराटम् ॥१॥
आश्रमं पतनमालवनगरे पट्टशिवमेव पुरोहितकम्।
स्याण्वीश्वरस्तु हिमवान् हिमेरुर्लेखाध्वकर्मणि नास्त्यपरम् ॥२॥

वि. भा.—अर्यास्यपुरी (स्वामिकार्त्तिकस्थानम्) महिष्मती (माहिष्मती) श्वेतोऽचलः (सितपर्वतः) अत्र लेखाशब्देन रेखा बोध्या, श्लोकद्वयस्यार्थो रेखास्थित-देशप्रसिद्ध नाम विषयत्वान्नोच्यते ॥१-२॥

हि. भा.—उपर्युक्तश्लोकद्वय में रेखास्थित देशों का वर्णन है, जिन देशों के नाम प्रसिद्ध हैं। इसलिये श्लोकों के अर्थ नहीं लिखते हैं ॥१-२॥

अधुना देशान्तरसस्कार वक्तु तदुपयोगिनौ भूपरिधिव्यासावाह।

कृतनगदिग्भिर्भूमेर्व्यासः स्याद्योजनैर्भगोऽग्निहतः।
खशरार्कहृतः परिधिः स्पष्टोऽसौ दशकरणिका स्यात् ॥३॥

वि. भा.—कृतनगदिग्भि. (१०७४) समः, योजनै. (योजनमानै) भूमेर्व्यास. (पृथिव्या विस्तृति.) स्यात् व्यासः भगीऽग्निहत· (३९२७ गुणित) खशरार्कहृतः (१२५० भक्त) तदा परिधि· (भूपरिधि.) भवेत्, अतः दशकरणिका. (दशमूलं) स्पष्टः परिधिरिति ॥३॥

अस्योपपत्तिः

भूव्यासज्ञानं मङ्गलश्लोके ग्रहकक्षास्थितिनिर्णयावसरे प्रदर्शितमेव तता भूपरिध्यानयनं "व्यासे भनन्दाग्निहते विभक्ते खबाणसूर्यै" रित्यादिना स्फुटमेव।

अत्र व्यासः=१०७४ तत उक्तरीत्या भूपरिधिः= $\frac{\text{भूव्या} \times ३९२७}{१२५०}$

$= \frac{१०७४ \times ३९२७}{१२५०} = \frac{५३७ \times ३९२७}{६२५} = \frac{२१०८७९९}{६२५} = ३३७४ + \frac{४९}{६२५}$ अत्र

शेषं त्यज्यते तदा भूपरिधिः=३३७४ ∴ $\frac{\text{भूपरि}}{\text{भूव्या}} = \frac{३३७४}{१०७४} = ३ + \frac{१५२}{१०७४}$

$\frac{\text{भूप}^2}{\text{भूव्या}^2} = \left(३ + \frac{१५२}{१०७४} \right)^2 = १०$ स्वल्पान्तरात्

भूप^2=भूव्या^{2}×१० ततो मूलेन भूप=भूव्या $\sqrt{१०}$ यदि भूव्या=१ तदा भूप=$\sqrt{१०}$ अत स्पष्टोऽतो दशकरणिका स्यादियुक्तम्। परमाचार्योक्तव्यासे भूप=व्या$\sqrt{१०}$ सूर्यसिद्धान्ते तद्वर्गतो दशगुणादित्यादिना यद् भूपरिध्यानयन कृत तदप्युपपन्नम्। पर $\left(३+\frac{१५२}{१२५०} \right)^2$<१० अत सूर्यसिद्धान्तस्य सुधावर्षिण्या टीकाया "तद्वर्गतोऽदशगुणा" दित्यादि पाठ समुचित इति म म. पण्डित सुधाकर-द्विवेदिना लिखित। तत्र "अदशगुणादर्थात्किञ्चिन्यूनदशगुणादि" त्यर्थ कर्त्तव्य" इति।

व्यासात्परिध्यानयन परिधेर्वा व्यासानयन समीचीन न भवितुमर्हति। यथा चापम् > ज्या < स्पर्शरेखा

$\frac{\text{परिधि}}{१२}$ > ज्या ३० ∵ परिधि > ज्या ३०×१२ वा परिधि>$\frac{\text{त्रि}}{२}$×१२

वा परिधि > त्रि×६ वा परिधि>$\frac{\text{व्या}}{२}$×६

$\therefore \frac{\text{परिधि}}{\text{व्यास}} > ३$

तथा $\frac{\text{परिधि}}{८}$<स्प ४५ परिधि <स्प ४५×८ वा परि<त्रि×८

वा परिधि < $\frac{\text{व्या}}{२}$×४८ वा परि<व्या×४

$\therefore \frac{\text{परिधि}}{\text{व्यास}} < ४$

अत $\frac{\text{परिधि}}{\text{व्यास}}$ > ३ < ४ इति दर्शनासिद्ध यत्परिधिव्यासयो सम्बन्धस्या स्थिरत्वानियतव्यासान्नियतपरिधिज्ञान भवितुमर्हतीति व्यासमानमनेन श्रीपत्यादिव्यासमानाद्भिन्न कल्पितमिति ॥३॥

हि भा —१०७४ इतना योजन भूव्यास है, भूव्यास को ३९२७ इतने से गुण कर १२५० इससे भाग देने से भूपरिधि प्रमाण होता है। अत दश से मूल स्पष्ट भूपरिधि प्रमाण है ॥३॥

उपपत्ति

भूव्यास ज्ञान मङ्गलश्लोक मे ग्रहकक्षा स्थिति क्रम के निरूपणावसर मे लिखना चुके हैं। भूव्यास से भूपरिधि ज्ञान 'व्यासे भनन्दाग्निहते' इत्यादि रीति से स्पष्ट है यथा यहा भूव्यास=१०७४ तब उक्त रीति से

$$\frac{\text{भव्या} \times ३९२७}{१२५०} = \frac{१०७४ \times ३९२७}{१२५०} = \frac{५३७ \times ३९२७}{६२५} = \frac{२१०८७९९}{१२५०} = ३३७४ + \frac{४९}{१२५०}$$

शेष के त्याग करने से भूप $= ३३७४$ $\therefore \frac{\text{भूप}}{\text{भूव्या}} = \frac{३३७४}{१०७४} = ३ + \frac{१५२}{१०७४}$

तब $\frac{\text{भूप}^२}{\text{भूव्या}^२} = \left(३ + \frac{१५२}{१०९४}\right)^२ = १०$ स्वल्पान्तरात् $\therefore$ भूप$^२ =$ भूव्या$^२ \times १०$

यदि भूव्या $= १$ तदा भूप$^२ = १०$ $\therefore$ भूप $= \sqrt{१०}$ पर आचार्योक्त व्यास मे

भूप $=$ व्या$\sqrt{१०}$, तद्वर्गतो दशगुणादित्यादि सूर्यसिद्धान्तोक्त भूपरिध्यानयन भी उपपन्न हुआ। लेकिन $\left(३ + \frac{१५२}{१२५०}\right)^२ < १०$ इस लिये सूर्यसिद्धान्त की सुधावर्षिणी टीका मे "तद्वर्गतोऽदशगुणादित्यादि" पाठ समुचित है, म म पण्डित सुधाकर द्विवेदी ने लिखा है वहां "अदशगुणात् अर्थात्किञ्चिन्न्यून दस से गुणना "इत्यादि अर्थ करना चाहिये।

व्यास पर से परिधि का आनयन वा परिधि से व्यास का आनयन ठीक नही हो सकता है यथा चा $>$ ज्या $<$ स्पर्शरे

$\frac{\text{परिधि}}{१२} >$ ज्या ३० $\therefore$ परिधि $>$ ज्या ३० $\times १२$ वा परिधि $> \frac{\text{त्रि}}{२} \times १२$

वा परिधि $>$ त्रि $\times ६$ वा परिधि $> \frac{\text{व्या}}{२} \times ६$

$$\therefore \frac{\text{परिधि}}{\text{व्यास}} > ३$$

और $\frac{\text{परिधि}}{८} <$ स्प ४५ $\therefore$ परिधि $<$ स्प ४५ $\times ८$ वा परिधि $<$ त्रि $\times ८$

वा परिधि $< \frac{\text{व्या}}{२} \times ८$ वा परिधि $<$ व्या $\times ४$

$\therefore \frac{\text{परिधि}}{\text{व्यास}} < ४$, अत. $\frac{\text{परि}}{\text{व्यास}} > ३ < ४$ इससे सिद्ध होता है कि परिधि और व्यास के सम्बन्ध की अस्थिरता के कारण नियत व्यास से नियत परिधि नही आ सक्ती या परिधि से व्यास भी ठीक नही आ सक्ता है ॥३॥

इदानी पुरान्तरयोजनज्ञानमाह।

तिर्यक् लेखा पत्तनपलनिजपलयोर्विशेषशेषांशैः।
क्षितिपरिणाहो निघ्नश्चक्रांशहृदध्ववाहः स्यात् ॥४॥

वि. भा —तिर्यग्लेखा पत्तनपल निजपलयोर्विशेषशेषांशै (तिर्यक् स्थित-रेखादेशाक्षांश स्वदेशाक्षांशयोरन्तरजनितशेषांशै) क्षितिपरिणाह (भूपरिधि.) निघ्न (गुणित) चक्रांशहृत् (३६० भक्त) तदा अध्ववाह (रेखापुर-स्वपुरान्तर-योजन) स्यादिति ॥ ४ ॥

अत्रोपपत्तिः ।

रेखापुरस्वपुरयोरक्षांशान्तरैरनुपात, यदि भांशैर्भूपरिधि-योजनानि लभ्यन्ते तदाऽक्षांशान्तरांशैः किमित्यनुपातेन तयोः पुरयोरन्तरयोजनानि तत्स्वरूपम् = $\frac{\text{भूपरिधियोजन} \times \text{अक्षांशान्तर}}{३६०}$ = पुरान्तरयोजनम् ।

अत उपपन्नम् ॥ ४ ॥

हि भा—रेखापुर और अपने पुर के जो अक्षांश है दोनो के अन्तर से भूपरिधि को गुणकर ३६० अंश से भाग देने से दोनो पुरो के अन्तर योजन होता है ॥ ४ ॥

उपपत्ति ।

रेखापुर स्वपुर के अक्षांशान्तर = अक्षांशान्तर तब अनुपात करते हैं कि यदि भांश में भूपरिधि योजन पाते हैं तो अक्षांशान्तरांश में क्या इस अनुपात से पुरान्तर योजन प्रमाण आता है । $\frac{\text{भूपरिधियो} \times \text{अक्षांशान्तर}}{३६०}$ = पुरान्तरयोजन ∴ सिद्ध हो गया ॥ ४ ॥

इदानीं देशान्तरसंस्कारमनुभाषते

लेखा स्वपुरान्तर्योजनसंख्या श्रुतिस्तु लोकोक्ता ।
तद्दो: कृतिविवरपदं कोटिर्देशान्तरं प्रोक्तम् ॥ ५ ॥
देशान्तरगतिघातात् कुवृत्तलब्धं विशोधयेत् पुरतः ।
देयं कलादिपश्चाल्लेखायाः मध्यमे द्युचरे ॥ ६ ॥

वि भा—लेखा स्वपुरान्तर्योजनसंख्या (समरेखास्थितनगरतिर्यक्स्थितस्वनगरयोरन्तरयोजनसंख्या) लोकोक्ता (लोककथिता) श्रुति. (कर्ण) अर्थादस्मदीयदेशात्समरेखा स्थितास्मदेकदेशस्थनगरस्येयन्ति योजनानीति लोककथनेन ज्ञातानि, इति कर्ण, तद्दो: कृतिविवरपद (कर्णवर्ग-पुरान्तरयोजनरूपभुजवर्गान्तरमूल) कोटिर्देशान्तर प्रोक्तम् (आत्मदेशरेखास्यदेशयोरन्तरे ऋज्वीभूनयोजनमान कथितम्) ॥

देशान्तरगतिघातात् (आनीतदेशान्तरग्रहगतिगुणनफलत) कुवृत्तलब्ध (स्फुटभूपरिधिभजनाप्तफल) कलादिकं रेखाया पुरत (रेखात. पूर्वदेशे) मध्यमे द्युचरे (मध्यमग्रहे) विशोधयेत्, पश्चात् (रेखात. पश्चिमदेशे) मध्यमे द्युचरे देय (योज्य) तदा स्वदेशमध्यमग्रह उन्मण्डले भवतीति ज्ञेयम् ॥

अस्योपपत्ति ।

स्वदेशेन सह तुल्याक्षो समरेखास्थितो यो देशस्तस्याभीष्टरेखास्थस्य ज्ञाताक्षस्य देशस्य चान्तरे कियन्ति योजनानीति जिज्ञासितम् । तन्नानुपातो यदि भांशैर्भूपरिधियोजनानि लभ्यन्ते तदा स्वदेशेन सह तुल्याक्षसमरेखास्थितदेशस्य

लोकप्रसिद्धसमरेखास्थितदेशस्य चान्तरे कियन्ति योजनानि फलं दक्षिणोत्तर-योजनात्मिका भुजा रेखान्तस्य देशस्वदेशयोरन्तरं तत्र स्वदेशस्य ज्ञाताक्षरेखास्थ देशस्य चान्तरं कर्णं । तत्कृत्योरन्तरमूलं योजनात्मिका पूर्वापरा स्वदेशेन सह तुल्याक्षस्य समरेखास्थितदेशस्य स्वदेशस्य चान्तरात्मिका कोटिरिति ॥

अथ स्फुटपरिधियोजनैर्ग्रहगतिर्लभ्यते तदा देशान्तरयोजनैः किमित्यनुपातेन कलादिकं फलं समरेखायाः प्राग्देशेषु ग्रहमध्ये शोध्यं यतो रेखातः पूर्वे यो द्रष्टा स रेखास्थद्रष्टुः सकाशात्पूर्वमेवोद्यन्तं रविं पश्यत्यतो देशान्तरफलं विशोध्यते । पश्चात्तु दीयते तत्रत्यानां तावति भुक्ते रवेर्दर्शनात्तदा स्वदेशोदयकालीनमध्यग्रहः स्यादिति ॥ उक्तोपपत्तौ स्पष्टभूपरिधिवशेन देशान्तरयोजनसम्बन्धिग्रहगतिकलाप्रमाणमानीतं परं स्पष्टभूपरिधिज्ञानं कथं भवेत्तदर्थं विचार्यते ।

भूकेन्द्राल्लम्बांशवृत्ताधारा सूची कार्या, तत्सूचीकर्णा भूगोले यत्र यत्र लगन्ति तदाकृतिर्वृत्ताकारा भवति तस्यैव नाम स्पष्टभूपरिधिः । तन्निष्ठयोजनं स्पष्टभूपरिधियोजनम् । भूपृष्ठस्थानाद् ध्रुवयष्ट्युपरि यो लम्बस्तदेव स्पष्टभूपरिधिव्यासार्धम् । भूव्यासार्धमेको भुजः । स्पष्टभूपरिधिव्यासार्धं द्वितीयो भुजः । ध्रुवयष्टिखण्डं तृतीयो भुजः । अत्र त्रिभुजे भूकेन्द्रलग्नकोणः = लम्बांशः । स्पष्टभूपरिधिव्यासार्धमूलबिन्दुलग्नकोणः = ९०, तदा यदि त्रिज्यया भूव्यासार्धं लभ्यते तदा लम्बज्यया किमिति कोणानुपातेन समागतं स्पष्टभूपरिधिव्यासार्धम्

$= \frac{\text{भूव्या} \frac{1}{2} \times \text{लम्बज्या}}{\text{त्रि}}$ ततोभूव्यासार्धेन भूपरिधिमानं लभ्यते तदा स्पष्टभूपरिधिव्यासार्धेन किं समागच्छति स्पष्टभूपरिधिप्रमाणं तत्स्वरूपम्

$= \frac{\text{भूपरिधि} \times \text{स्पष्टभूपरिधि व्या} \frac{1}{2}}{\text{भूव्या} \frac{1}{2}}$

$= \frac{\text{भूपरिधि} \times \text{भूव्या} \frac{1}{2} \times \text{लम्बज्या}}{\text{त्रि} \times \text{भूव्या} \frac{1}{2}} = \frac{\text{भूपरिधि} \times \text{लम्बज्या}}{\text{त्रि}}$ एतेन स्पष्टभूपरिधिप्रमाणं विदितं जातं, सूर्यसिद्धान्ते "लम्बज्याघ्नस्त्रिजीवाप्तः स्फुटो भूपरिधिः" रित्यादिना सिद्धान्तशिरोमणौ "लम्बज्या गुणितो भवेत्कुपरिधिः" रित्यादिना भास्करेणापि तदेवानीतमिति ॥ ५-६ ॥

हि. भा. —समरेखा स्थित नगर तिर्यक् स्थित स्वनगर की अन्तर योजन सस्वाक्षांश विदित वर्ण है, पुरान्तर योजन रूप भुज है, दोनों के वर्गान्तर मूल कोटि देशान्तर कथित है, देशान्तर योजन और ग्रहगति के घात में स्पष्ट भूपरिधियोजन से भाग देने से जो फल होता है उसको रेखा से स्वदेश के पूर्व तरफ रहने से मध्यमग्रह में घटाने से रेखा से स्वदेश के पश्चिम रहने पर मध्यम ग्रह में जोड़ने से स्वदेशोदय कालीन मध्यम ग्रह होते हैं ॥ ५-६ ॥

उपपत्ति ।

अपने देश के अक्षांश के बराबर अक्षांश वाला समरेखा स्थित जो देश है उसका अभीष्ट रेखास्थित विदित अक्षांश वाले देश के अन्तर में कितने योजन हैं सो जानना

है। वहां अनुपात करते हैं कि यदि भांश (३६०) में भूपरिधि योजन पाते हैं तो स्वदेशांश तुल्य-अक्षांश वाले समरेखास्थित देश और लोकप्रसिद्ध समरेखास्थित देश के अन्तर में क्या इस अनुपात से फल दक्षिणोत्तर योजनात्मक भुज आया, रेखादेश स्वदेश का अन्तर वहां अपने देश और विदिताध्वरेखा देश के अन्तर कर्ण है, दोनों के वर्गान्तर मूल पूर्वापर देशान्तर (कोटिदेशान्तर) कोटि प्रमाण हुआ। अब अनुपात करते हैं कि स्फुटपरिधि योजन में ग्रहगतिकला पाते हैं तो देशान्तर योजन में क्या इस अनुपात से जो कलादि फल आता है रेखा से स्वदेश के पूर्व रहने पर स्वरेखोदयकालिक मध्यमग्रह में घटाने से रेखा से स्वदेश के पश्चिम रहने से स्वरेखोदयकालिक मध्यमग्रह में जोड़ने से स्वदेशोदयकालिक मध्यमग्रह होते हैं॥

इस उपपत्ति में स्पष्ट भूपरिधि योजन पर से देशान्तर योजन सम्बन्धी ग्रहगतिकला प्रमाण लाया गया है पर स्पष्टभूपरिधि योजन का ज्ञान कैसे होता है इसके लिये विचार करते हैं। भूकेन्द्र से लम्बांश वृत्त के प्रतिबिन्दु में रेखायें लाने से लम्बांश वृत्त के आधार पर एक सूची बन जायगी, सूचीकर्ण (भूकेन्द्र से लम्बांश वृत्त के प्रति बिन्दु में लाई हुई रेखायें) सब भूपृष्ठ में जहां जहां लगता है उसका आकार वृत्ताकार होता है, उसी वृत्त का नाम स्पष्ट भूपरिधि है। भूपृष्ठ स्थान से ध्रुवयष्टि के ऊपर जो लम्ब होता है वही स्पष्टभूपरिधि व्यासार्ध है। यहां एक जात्य त्रिभुज बनता है, भूव्यासार्ध कर्ण, स्पष्ट भूपरिधिव्यासार्ध कोटि, ध्रुव सूत्र का खण्ड भुज, इस त्रिभुज में भूकेन्द्र लग्नकोण=लम्बांश, स्पष्ट भूपरिधिव्यासार्ध मूल बिन्दु लग्न कोण=९० तब उक्त त्रिभुज में कोणानुपात करते हैं, यदि त्रिज्या में भूव्यासार्ध पाते हैं तो लम्बज्या में क्या इस अनुपात से स्पष्टभूपरिधिव्यासार्ध प्रमाण आया $\frac{\text{भूव्या}\frac{1}{2}\times\text{लज्या}}{\text{त्रि}}$=स्पष्टभूपरिधि व्या $\frac{1}{2}$। तथा भूव्यासार्ध में यदि भूपरिधि पाते हैं तो स्पष्ट भूपरिधिव्यासार्ध में क्या आ गया स्पष्ट भूपरिधि प्रमाण

$$\frac{\text{भूपरिधि}\times\text{स्पष्टभूपरिधि व्या}\frac{1}{2}}{\text{भूव्या}\frac{1}{2}}=\frac{\text{भूपरिधि}\times\text{भूव्या}\frac{1}{2}\times\text{लज्या}}{\text{त्रि}\times\text{भूव्या}\frac{1}{2}}=\frac{\text{भूपरिधि}\times\text{लज्या}}{\text{त्रि}}$$

इससे स्पष्ट भूपरिधि प्रमाण विदित हो गया, सूर्यसिद्धान्त में "लम्बज्याघ्नस्त्रिजीवाप्तः स्फुटो भूपरिधिः स्वकः" इत्यादि से तथा सिद्धान्तशिरोमणि में "लम्बज्यागुणितो भवेत्कुपरिधिः स्पष्टस्त्रिभज्याहृतः" इत्यादि से भास्कराचार्य भी उसी विषय को कहते हैं॥ ५-६॥

इदानीं प्रथमपक्षोक्तदूषणं प्रदर्शयन् पूर्वपक्षान्तरमनुभाषते

श्रुतियोजनास्फुटत्वाद् वक्रत्वात्कुपरिधेश्च नेष्टमिदम्।
स्वपदांश्च वर्जितान् केचिच्छ्रवणे देशान्तरं जगुः प्रोक्तम्॥ ७॥
पलयोजनं तथान्ये भावशतो हि घर्मांशो.।
कोटिलघुत्वात्पूर्वं मिथ्यापद्विशेषतोऽन्यत्॥ ८॥

वि भा—श्रुतियोजनास्फुटत्वात् (लोकोक्तश्रुतियोजनानिश्चयत्वात्) पूर्वं भुजकोटिकर्णयोजनसम्बन्धेन यद्देशान्तरानयनं कृतं तत्स्फुटं न भवतीत्यर्थः,

तत्र कारणमाह कुपरिधे (भूपरिधे) वक्रत्वात्, नहि सुनिपुणमतिरपि कश्चित् हस्तेन दण्डरज्ज्वा वा लोकप्रसिद्धानि योजनानि निर्णीतवान् तस्माज्जनप्रसिद्धेरनैश्चित्यत्वात्, इद मत नेष्ट (शोभन नास्तीति भाव)। केचित् (आचार्या) स्वपदान् (अपसारयोजनमार्गान्) वर्जितान्। श्रवणे (पूर्वोक्तकर्णे) प्रोक्त देशान्तर (कथितदेशान्तर) जगु (कथितवन्त) अ ये (आचार्या) घर्मांशो (सूर्यस्य) भावशत (छायासम्बन्धत) पलयोजन (देशान्तरयोजन कृतवन्त) पूर्वं (पूर्वकथित श्रुतियोजनादित्यादिनाऽभिहित) अन्यत् (भिन्न सूर्यच्छाया सम्बन्धेन कथित) कोटिलघुत्वात् आर्षाद्विशेषत . (आर्षग्रन्थान्तरादर्थादार्षग्रन्थविरोधात्) मिथ्या (निरर्थकमिति)

अनेनदुक्त भवति। जलसमीकृतभूमौ मध्याह्नकाले छाया यथावदवगम्य तच्छायया 'छायातोऽर्कानयनविधिना" रविमानयेत्। तथा वक्ष्यमाणविधिना समरेखानिवासिना मध्याह्नकाले स्फुट रविं कुर्यात्। तयो रव्योर्यदन्तर तद्देशान्तरप्रमाणम्। ततो रव्यन्तराशप्रमाणेनानुपातेन देशान्तरयोजनज्ञान सुगमम्। उपर्युक्तयो पक्षयो स्थौल्य प्रदर्शयत्याचार्य। भुजकोटिकर्णत्वेन कल्पितानि देशान्तरयोजनानि स्थूलानि तथैव छायावशतोऽपि देशान्तरयोजनानि स्थूलानीति। कोटिलघुत्वादित्यत्र कोटिशब्देन यदि क्रान्तिग्रहण क्रियेत तदा श्रीपत्युक्तेन सहाऽस्याचार्योक्तस्य समाञ्जस्य भवेद्यथा श्रीपत्युक्तम्।

मध्यप्रभागतरवेर्गणितागतस्य स्यादन्तर यदिह तत् क्षितिवेष्टनघ्नम्।
भक्त लवेन विषयान्तरयोजनानि स्थूलानि तान्यपि भवन्त्यपमाल्पकत्वात्॥

कुतश्चिद्देशात् समपूर्वापरेऽन्यस्मिन् देशे द्विना देशान्तरघटिकास्तावतीभिरपि घटिकाभिरिहापक्रमस्य न वृद्धिर्नापि ह्रास। यत्र तु पञ्चदशघटिका परमदेशान्तर यमकोटिलङ्कादौ तत्राप्यपक्रमस्य वृद्धिर्ह्रासो वा षट्कला। तत्र भैगणिक यदि त्रिज्यया परमक्रान्तिर्लभ्यते। तदा पञ्चदशघटिकाभि किं समागच्छन्ति षट्कला तावतीभिरपक्रमलिप्ताभिर्नैव छायागतो विशेष उपलभ्यते। अतश्छायार्कगणितागतार्कयोरन्तर न भवति तेन देशान्तरयोजनानयन गगनग्रास कल्पमिति॥ ७-८॥

हि भा—लोकप्रसिद्ध श्रुतयोजन के अनिश्चितत्व से भूपरिधि की वक्रता के कारण से भुजकोटि कर्ण सम्बन्ध से देशान्तर योजनानयन ठीक नहीं है। क्योंकि कोई भी निपुण बुद्धि वाला आदमी हाथ से दण्ड (लग्गा) से या रस्सी से लोकप्रसिद्ध योजन का निर्णय नहीं किया है। कोई कोई आचार्य अपसार योजन को वर्जित कर कर्ण ही को देशान्तर कहते हैं। अन्य आचार्य सूर्य की छाया सम्बन्ध से देशान्तर कहते हैं। कोटि अपक्रम के लघुत्व के कारण पहले का देशान्तर और आर्ष के साथ अन्तर होने से दूसरा देशान्तर भी व्यर्थ है॥

यहां इस तरह कहा गया है कि जल से समान की हुई पृथ्वी पर मध्याह्नकाल में छाया जान कर उस पर से वक्ष्यमाण विधि (आगे कही हुई रीति) से रवि का साधन करना

और वक्ष्यमाण विधि से समरेखावासियों के मध्यान्ह काल में रवि का साधन करना, दोनों रवियों के अन्तर करने से देशान्तर प्रमाण होता है। उस रवि के अन्तरांश पर से अनुपात द्वारा देशान्तर योजन ज्ञान सुगम है। भुज कोटि और वर्ण योजन पर से कल्पित देशान्तर योजन स्थूल है उसी तरह छायावश से देशान्तर योजन स्थूल है। कोटिलवात् इत्यादि में यदि कोटि शब्द से अपक्रम (क्रान्ति) का ग्रहण किया जाय तब श्रीपतिकथित विषयों के साथ वटेश्वराचार्य-कथित उपर्युक्त विषयों का सामञ्जस्य हो जायगा।

श्रीपति इस विषय में इस तरह कहते हैं जैसे—

मध्यप्रभागतरवेर्गणितागतस्य स्यादन्तरं यदिह तद् क्षितिवेष्टनिघ्नम्।
भक्तं लवैः विषयान्तरयोजनानि स्थूलानि तान्यपि भवन्त्यपमाल्पकत्वात्॥

किसी देश से भिन्न समपूर्वापर देश में दो तीन देशान्तर घटी लेने से उतनी ही घटी में अपक्रम (क्रान्ति) में न कुछ ह्रास या वृद्धि होती है। जहां पर पन्द्रह घटी परम देशान्तर है यमकोटि या लङ्का आदि में, वहां भी क्रान्ति की वृद्धियां ह्रास ६ कला है वहां अनुपात कीजिये कि यदि त्रिज्या में परमक्रान्ति पाते हैं तो पन्द्रह घटी में क्या इस अनुपात में छ कला आती है इतनी क्रान्ति कला में छायागति में कोई विशेषता नहीं उपलब्ध होती है। इसलिये छायार्क और गणितागतार्क का अन्तर नहीं है इसलिये देशान्तर योजनानय सग्रास कल्प के बराबर है। इति ॥ ७८ ॥

इदानीं स्वाभिमत देशान्तर प्रतिपाद्यग्रहेषु तत्फल (देशान्तरफल) संस्कार ज्ञानमाह।

गणितागतशीतांशोः प्रग्रहकालं प्रसाध्य निजविषये।
प्रत्यक्षेण तदन्तरकालो देशान्तरं स्पष्टम् ॥ ९ ॥
तत्खेचरगतिघातात् षष्ट्याप्तकलोनसंयुतः प्राग्वत्।
खचरः स्वधाम्नि मध्या मध्यमतिथिनाडिकास्वेवम् ॥१०॥

वि भा—निजविषये (स्वदेशे) गणितागतशीतांशोः प्रग्रहकालं (चन्द्र-गणितागत स्पर्शकालं) प्रसाध्य (साधयित्वा) प्रत्यक्षेण (दृष्टया वेधेन वा) प्रग्रह-कालोऽवलोकनीयः, तदन्तरकाल (गणितागतस्पर्शकालवेधागतस्पर्शकालान्तरकालः) स्पष्टं देशान्तरं भवति (दोषरहितं देशान्तरं भवति)।

तत्खेचरगतिघातात् (स्पष्टदेशान्तरग्रहगतिवधात्) षष्ट्याप्तकलोन-संयुतः (षष्ट्या विभक्तालब्धं यत्कलादिफलं तेन रहितः सहितश्च) प्राग्वत् (रेखातः पूर्वपश्चिमक्रमेण) खचरः (ग्रहः) कार्यस्तदा स्वधाम्नि मध्या ग्रहा भवन्ति। एवं मध्यतिथिनाडिकासु फलं (देशान्तरयोजनघटीफलं) संस्कर्त्तव्यमिति ॥९-१०॥

अत्रोपपत्तिः।

गणितेन चन्द्रस्य स्पर्शकालं साध्यं। यदि गणितसाधितस्पर्शकालान्तरं वेधेन स्पर्शकालो दृष्टस्तदा द्रष्टा रेखातः पूर्वदिशि भवेद्यतो द्रष्टा रेखातः पूर्वदिशि यथा यथा गच्छति तथा तथा रेखोदयात्पूर्वमेव रव्युदयं पश्यति। इतोऽन्यथात्वे

द्रष्टा पश्चिमदिशि भवेत्। दृग्ग्रहणकालयोरन्तरमर्थाद् गणितागतस्पर्शकालवेधागत-स्पर्शकालयोरन्तर, देशान्तरघटिका।

ततोऽनुपातो यदि घटीषष्ट्या ग्रहगतिर्लभ्यते तदा देशान्तरघटीभि किं समागता ,देशान्तरघटीसम्बन्धि ग्रहगतिकला, फलमेतत्पूर्ववद्रेखात प्रागृण पश्चाद्धनमिति ॥

तथाच यदि स्पष्ट-भूपरिधियोजनै षष्टिघटिका लभ्यन्ते तदा देशान्तरयोजनै किमित्यनुपातागतफल कर्मयोग्यासु तिथिषु ऋण धन वा कार्यमिति ॥९-१०॥

हि भा—अपने देश मे चन्द्रमा के गणित द्वारा स्पर्शकाल साधन करना और वेध मे भी स्पर्शकाल लाना दोनो कालो के अन्तर स्पष्ट देशान्तर होता है। देशान्तर और ग्रहगति के घात के साठ से भाग देकर जो फल हो उसको पूर्ववत् ग्रह मे ऋण धन करने से स्वदेशोदयकालिक मध्यम ग्रह होते है। मध्यम तिथि मे भी देशान्तर योजन सम्बन्धी घटी फल सस्कार करना चाहिए ॥९-१०॥

उपपत्ति

गणित से चन्द्रमा के स्पर्शकाल साधन करना, यदि गणितागत स्पर्शकाल के बाद वेध से स्पर्शकाल देखने मे आवे तब द्रष्टा रेखादेश से पूर्व दिशा मे होता है। क्योकि द्रष्टा रेखा से पूर्व दिशा मे ज्यो ज्यो जाता है त्यो त्यो रेखोदय से पहले ही रवि को उदित देखता है, इससे अन्यथा द्रष्टा रेखा से पश्चिम मे होता है। गणितागत स्पर्शकाल वेधागत स्पर्शकाल का अन्तर देशान्तर घटी है। अब इस पर से अनुपात करते है यदि साठ घटी मे ग्रह गतिकला पाते है तो देशान्तर घटी मे क्या इस अनुपात से जो कलात्मक फल आता है उसको पूर्ववत् ग्रह मे ऋण और धन करने से स्वदेशोदयकालिक ग्रह होते है। और यदि स्पष्ट भूपरिधि योजन मे साठ घटी पाते है तो देशान्तर योजन मे क्या " $\frac{६ \times \text{देशान्तरयो}}{\text{स्पभूपयो}}$ = देशान्तरयो सघटी' इस अनुपात से जो घट्यादि फल आता है उसको मध्यम तिथिघटी मे सस्कार करना चाहिये ॥९-१०॥

इदानी स्पष्टदेशान्तरफलसस्कारमुक्त्वा वारप्रवृत्तिज्ञानमाह

षष्टिहृतः क्षितिपरिधिर्देशान्तरनाडिकाहतः स्पष्टा।
योजनसंख्याऽध्वमितौ फलमस्याः पूर्ववत्खचरे ॥११॥
षष्ट्यभ्यधिकोने संख्यागतकाले रेखापरपूर्वे द्रष्टा।
क्षितिजे देशान्तरघटिकाभिः प्राग्लेखाया इनोदये पश्चात् ॥१२॥
वारप्रवृत्तिरुक्ता पश्चात्स्वार्कोदयात्पूर्वम्।

वि. भा.—क्षितिपरिधि (स्पष्टभूपरिधि) देशान्तरनाडिकाहत (देशान्तर-घटीगुणित:) षष्टिहृत (षष्टिभक्त) तदा फल स्पष्टा योजनसख्या अध्वमितौ (देशान्तरघटिकाया) भवत्यर्थात्स्पष्टदेशान्तरयोजनसख्या भवतीति। स्पष्ट-

देशान्तरकथनस्येद तात्पर्यं यत्पूर्वं "तद्गो कृतिविवरपद कोटिदेशान्तर प्रोक्त'-मित्यादिनाऽऽनीत देशान्तर स्थूल तेनैवात्र स्पष्टा देशान्तरयोजनसख्या कथ्यते। अस्या (देशान्तरयोजनसख्यात) आनीत फल कलात्मक खचरे (ग्रहे) पूर्ववदृण धन विधेयम्।

सख्यागतकाले (देशान्तरघटीमिते) षष्ट्यभ्यधिकोने (षष्टितोऽधिकेऽल्पे च) द्रष्टा रेखापरपूर्वे (रेखात पश्चिमाया पूर्वस्या च) भवति।

लेखाया प्राग्देशे (रेखात पूर्वदेशे) क्षितिजे देशान्तरघटिकाभि, इनोदय (सूर्योदय) प्राग्भवति, वारप्रवृत्ति पश्चाद् भवति, लेखाया पश्चात् सूर्योदयो देशान्तरघटीभि पश्चाद्भवति, वारप्रवृत्ति स्वार्कोदयात्पूर्वं भवतीति ॥११-१२॥

अत्र युक्ति स्पष्टैवास्ति ॥

हि भा —स्पष्ट भूपरिधि का देशान्तर घटी से गुणकर साठ से भाग देने से जो फल होता है वह स्पष्ट देशान्तर योजनसख्या है यहा स्पष्ट शब्द देने का तात्पर्य यह है कि पहले जो 'तद्गो कृतिविवरपद कोटिदेशान्तर प्रोक्तम् इत्यादि से जो देशान्तरानयन किया गया है वह स्थूल है, यहा स्पष्ट शब्द सूक्ष्मत्वसूचक है इस देशान्तर योजन पर से जो ग्रहगति फल होता है उसको पूर्ववत् ग्रह मे ऋण और धन करना चाहिए। देशान्तर घटी साठ से अधिक और न्यून रहने से द्रष्टा क्रमश रेखा से पश्चिम और पूर्व होता है। रेखा से पूर्व देश मे देशान्तर घटी काल करके सूर्योदय पहले होता है वारप्रवृत्ति पश्चात् होती है रेखा से पश्चिम देश मे देशान्तर घटी करके सूर्योदय पीछे होता है वारप्रवृत्ति पूर्व होती है॥ ११ १२॥

यहा युक्ति स्पष्ट ही है।

वारादिज्ञानमेवाह।

दक्षिणगोले पूर्वं लेखायाश्चरदलेन वारादि ॥१३॥
उत्तरगोले पश्चाद्दिनोदयाच्चरदलेनैव।

वि भा —दक्षिणगोले चरदलेन (चरखण्डकालेन) लेखाया पूर्व वारादिरर्थाद्रेखा सूर्योदयात्पूर्व चरखण्डकालेन दिनवारप्रवृत्ति भवति। सूर्योदय पश्चाद्दिनवारप्रवृत्ति पूर्वमित्यर्थ" उत्तरगोले चरदलेनैव (चरखण्डकालेनैव) सूर्योदयात्पश्चाद्दिनवारप्रवृत्ति, सूर्योदय पूर्व दिनप्रवृत्ति पश्चादित्यर्थ' ॥ १३ ॥

अत्रोपपत्ति।

पूर्वश्लोके कथित यत्प्राच्या देशान्तरघटीभिर्दिनवारप्रवृत्ति सूर्योदयादूर्ध्वं भवति, प्रतीच्या ततोऽधो यतो लङ्कोदये वारादि। अतएवोत्तरगोलगे रवौ चरखण्ड घटीभिरूर्ध्वं वारप्रवृत्ति यतस्तदोन्मण्डल क्षितिजादूर्ध्वम्। दक्षिणे त्वधस्तत्रोदयादधो वारप्रवृत्तिरिति।

सिद्धान्तशेखरे श्रीपतिनाप्येवमेव कथ्यते यथा—

लङ्कोदयाम्यसूत्रात् प्रथममपरत पूर्वदेशे च पश्चा-
दध्वोत्थाभिर्वटोभि सवितुरुदयतो वासरेशप्रवृत्ति ।
ज्ञेया सूर्योदयात् प्राक् चरशकलभवैश्चासुभिर्याम्यगोले
पश्चात्तं सौम्यगोले युतिवियुतिवशाच्चोभयो स्पष्टकाल इति ।

सिद्धान्तशिरोमणौ भास्करेणापीत्थमेव कथ्यते—

अर्कोदयादूर्ध्वमधश्च ताभि प्राच्या प्रतीच्या दिनपप्रवृत्ति ।
ऊर्ध्वं तथाऽधश्चरनाडिकाभी रवावुदग्दक्षिणगोलसंस्थे ॥ इति ॥ १३½ ॥

हि भा —दक्षिण गोल म रेखा से पूर्व रेखा सूर्योदय में पहले ही चरखण्ड घटी करके दिन वार प्रवृत्ति होती है। (सूर्योदय पीछे और दिन वार प्रवृत्ति पहले होती है), उत्तर गोल म उसी चरखण्ड घटी करके सूर्योदय से पीछे दिन वार प्रवृत्ति होती है (सूर्योदय पहले और दिनवार प्रवृत्ति पीछे होती है) ॥ १३½ ॥

उपपत्ति

पहले श्लोक म कहा गया है कि रेखा से पूर्व म देशान्तर घटी करके दिनवार प्रवृत्ति होती है, पश्चिम देश म पीछे दिनवार प्रवृत्ति होती है। इसलिये उत्तर गोल म रवि के रहने से चरखण्ड घटी करके पहले दिनप्रवृत्ति होती है जिसलिये वहां अपने क्षितिज से उन्मण्डल ऊपर है। दक्षिण गोल मे विपरीत स्थिति होती है ॥

सिद्धान्तशेखर म श्रीपति भी इसी तरह कहते हैं। यथा—

"लङ्कोदयाम्यसूत्रात् प्रथममपरत " इत्यादि ।

सिद्धान्तशिरोमणि म भास्कराचार्य भी इसी तरह कहते हैं —

अर्कोदयादूर्ध्वमधश्च ताभि इत्यादि ।

इदानीं ग्रहाणां दिनगतिमानमाह ।

भूदिवसैर्भगणेभ्य कलादिलब्धिस्तु वारभोगोऽस्मात् ॥ १४ ॥

वि भा —भूदिवसै (युगकुदिनै कल्पकुदिनैर्वा) भगणेभ्य (युगपठितभगणेभ्य कल्पभगणेभ्यो वा) कलादिलब्धि (कलादिफल) वारभोग (ग्रहगति) भवेदिति । अस्मादित्यस्याग्रिमश्लोकेन सम्बन्ध इति ॥ १४ ॥

अत्रोपपत्ति ।

यदि युगकुदिनैर्युगग्रहभगणा लभ्यन्ते तदैकेन दिनेन किमित्यागतैर्दिनज ग्रहगतिस्तत्स्वरूपम् $= \frac{\text{युग्रभ} \times १}{\text{युकु}} = \frac{\text{युग्रभ}}{\text{युकु}} =$ ग्रहगति ॥ अत आचार्योक्तमुपपन्नम् ॥ १४ ॥

हि. भा.—युग कुदिन या कल्पकुदिन से तथा ग्रहभगण में कलादिक जो फल होता है वह ग्रहभोग याने ग्रहगति होती है 'तस्मात्' इसको अगले श्लोक से सम्बन्ध है ॥१४॥

उपपत्ति ।

यदि युगकुदिन में युगग्रह भगण पाते हैं तो एक दिन में क्या इस अनुपात से एक दिन की ग्रहगति आती है, $\frac{\text{युग्रभ} \times १}{\text{युकु}} = \frac{\text{युग्रभ}}{\text{युकु}} =$ ग्रहगति इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥ १४ ॥

इदानीं भुजान्तरफलादिसंस्कारं प्रतिपाद्य वर्षाधिपनिर्णयमाह ।

ग्रहवद् भुजान्तरफलं देशान्तरचरदलेनापि ॥
कार्यं कल्पगतेभ्यो द्युगणेभ्यः खरसाग्निभाजितात्लब्धम् ॥१५॥
त्रिघ्नमगभक्तशेषं सावनसमाधिपः सैकम् । १५½ ।

वि. भा.—देशान्तरचरदलेनापि (देशान्तर चरदलेन संस्कृतेनापि) अस्माद् ग्रहाद् भुजान्तरफलं ग्रहवत्कार्यं, देशान्तरचरदलसंस्कृतग्रहे भुजान्तरफलं संस्करणीयमित्यर्थः । कल्पगतेभ्यो द्युगणेभ्यः (कल्पगताहर्गणेभ्यः) खरसाग्निभाजितात्लब्धं (३६० भजनात्फलं) त्रिघ्नं (त्रिगुणितं) अगभक्तशेषं (सप्तभक्तावशिष्टं) सैकं (रूपसहितं) तदा सावनसमाधिपः (सावनवर्षपतिः) भवेदिति ॥ १५½ ॥

अथ भुजान्तरकर्मोपपत्तिः ।

मध्यमार्कोदयिका ग्रहा येन कर्मणा स्पष्टार्कोदयिका भवेयुस्तस्यैव नाम भुजान्तरम् । मध्यमस्पष्टरव्योरन्तरं मन्दफलम् । अतो रविमन्दफलकला सम्बन्ध्यसुप्रमाणमानीयते तत्रानुपातो यदि राशिकलाभिर्निरक्षोदयासवो लभ्यन्ते तदा रविमन्दफलकलाभिः किमित्यनुपातेनागता रविमन्दफलासवस्तत्स्वरूपम् $=$

$\frac{\text{निरक्षोदयासु} \times \text{रमफकला}}{१८००}$ तत एतत्सम्बन्धि ग्रहगतिकलाप्रमाणमानीयते यद्यहोरात्रासुभिर्ग्रहगतिकला लभ्यन्ते तदा रविमन्दफलासुभिः किमित्यनुपातेन रविमन्दफलासु सम्बन्धि ग्रहगतिः $= \frac{\text{ग्रहगतिकला} \times \text{रविमन्दफलासु}}{\text{अहोरात्रासु}}$

$= \frac{\text{निरक्षोदयासु} \times \text{रविमफकला} \times \text{ग्रगतिक}}{१८०० \times \text{अहोरात्रासु}}$ एतत्फलं यदि मध्यमार्कोदयकालिकग्रहे संस्क्रियते तदा स्फुटार्कोदयकालिका ग्रहा भवन्तीति ।

अथ मन्दफलासुमध्येऽपि ग्रहाणां काचिद् गतिर्भवति सा च न गृहीताऽत पूर्वोक्तमानयनं न समीचीनमतो वास्तवानयनम् ।

अथ वास्तवभुजान्तरप्रमाणम् = य

तदानुपातेन $\frac{\text{ग्रग} \times \text{य}}{\text{ग्रहोरात्रासु}}$ = १ असुजगति × य तथा

$\frac{\text{निरक्षोदयासु} \times \text{य}}{१८००}$ = १ कलोत्पन्नासु × य = फलकलासु तत·

$\frac{\text{ग्रग} \times \text{फलासु}}{\text{ग्रहोरात्रासु}} = \frac{\text{ग्रग} \times \text{निरक्षोदयासु} \times \text{य}}{१८०० \times \text{ग्रहोरात्रासु}}$ = १ असुजगति × १ कलोत्पन्नासु × य

एतत्फलं यदि पूर्वानीतभुजान्तरफले संस्क्रियते तदा वास्तवभुजान्तर भवेत्।
पूर्वानीतभुजान्तर ± १ असुजगति × १कलोत्पन्नासु × य = य समशोधनेन
पूर्वानीत भुजान्तर = य ∓ १ असुजग × १ कलोत्पन्नासु × य
= य (१ ∓ १ असुजगति × १ कलोत्पन्नासु)

∴ $\frac{\text{पूर्वानीत भुजान्तर}}{१ \mp १ \text{ असुजगति} \times १ \text{ कलोत्पन्नासु}}$ = य = वास्तवभुजान्तरम् ॥

आचार्येण भुजान्तर फलसाधन स्पष्टाधिकारे कृतमत्र प्रसङ्गवशात्स्थौल्य प्रदर्श्य वास्तवानयनमपि प्रदर्शित मयेति। अथ कल्पगताहर्गण ३६० एभिर्विभक्त यदि शेषाणि स्युस्तदा रूपाधिक त्रिगुणित लब्ध कर्त्तव्य नान्यथा। तत. सप्त-भक्ते शेष रविमारभ्य सावनवर्षपतिर्भवेत्। शेषदिनानि च वर्षाधिपते प्रवृत्तस्य च गतानि दिनानि तान्येव ३६० एभ्यो विशोध्य गम्यदिनानि, त्रिगुण तल्लब्ध क्रियते यतो ३६० अत्र सप्तभक्ते त्रीण्यवशिष्यन्ते, अतश्चतुर्थश्चतुर्थो वर्षपतिर्भवति, वर्षाधिपतिरागमप्रामाण्याद् भवतीति ॥ १५½ ॥

हि भा —देशान्तर चर खण्ड संस्कार करने पर भी उस ग्रह में भुजान्तर फल संस्कार करना चाहिये, कल्पगताहर्गण को ३६० से भाग देने से जो फल हो उसको तीन से गुणा कर सात से भाग देने से जो शेष हो उसमे एक जोड देना चाहिये तब सावन वर्षपति होते है ॥ १५½ ॥

भुजान्तर कर्म की उपपत्ति।

मध्यमार्कोदय कालिक ग्रह मे जितना संस्कार करने से स्पष्टार्कोदयकालिक ग्रह होते हैं उसी का नाम भुजान्तर है। मध्यमार्क और स्पष्टार्क का अन्तर रविमन्दफल है। इसलिये रवि मन्दफल कलासम्बन्धी असु प्रमाण लाते है। यदि १८०० कला मे (एक राशिकला मे) निरक्षोदयासु पाते हैं तो रवि मन्द फल कला मे क्या इस अनुपात से रविमन्दफलकलासु-प्रमाण आया, $\frac{\text{निरक्षोदयासु} \times \text{रमफ}}{१८००}$ = रविमन्दफलासु। इस पर से फिर अनुपात करते हैं, यदि अहोरात्रासु मे ग्रहगति कला पाते हैं तो रवि मन्दफलासु मे क्या आ जायगा रविमन्द-फलासु सम्बन्धी ग्रहगति प्रमाण, $\frac{\text{ग्रग} \times \text{मन्दफलासु}}{\text{अहोरात्रासु}}$ = रविमन्दफलासु में ग्रहगति

$= \frac{\text{निरक्षोदयासु} \times \text{स्पफ} \times \text{ग्रग}}{१८०० \times \text{ग्रहोरात्रासु}}$ इस फल को यदि मध्यमार्कोदय कालिक ग्रह मे संस्कार करते है तब स्पष्टार्कोदय कालिक ग्रह होते हैं। लेकिन यहा मन्दफलासु के भीतर जो ग्रहगति है उसका ग्रहण नहीं किया गया है इसलिये यह आनयन ठीक नही है इसलिये वास्तवानयन करते है।

कल्पना करते है वास्तव भुजान्तर प्रमाण = य

तब अनुपात से $\frac{\text{निरक्षोदयासु} \times \text{य}}{१८००}$ = १ कलोत्पन्नासु × य, फिर अनुपात से = फलासु

$\frac{\text{ग्रग} \times \text{फलासु}}{\text{ग्रहोरात्रासु}} = \frac{\text{ग्रग} \times \text{निरक्षोदयासु} \times \text{य}}{१८०० \times \text{ग्रहोरात्रासु}}$ = १ असुजगति × १ कलोत्पन्नासु × य

इसको पूर्वानीत भुजान्तर म संस्कार करने से वास्तव भुजान्तर प्रमाण होगा।

पूर्वानीत भुजान्तर ± १ असुजग × १ कलोत्पन्नासु × य = य समशोधन करने से

पूर्वानीत भुजान्तर = य ∓ १ असुजग × १ कलोत्पन्नासु × य

= य (१∓१ असुजगति × १ कलोत्पन्नासु)

∴ $\frac{\text{पूर्वानीत भुजान्तर}}{१ \pm १ \text{ असुजग} \times १ \text{ कलोत्पन्नासु}}$ = य।

अत सिद्ध हो गया॥

आचार्य ने भुजान्तर फल साधन स्पष्टाधिकार मे किया है, यहा प्रसङ्गवश उस साधन मे स्थूलता दिखा कर वास्तवानयन भी हमने दिखलाया है।

कल्पगताहर्गण को ३६० से भाग देने से यदि शेष रहे तो उसमे एक जोडकर त्रिगुणित कर देना चाहिये यदि शेष नही रहे तब नही, बाद म सात से भाग देने से शेष रवि से लेकर सावन वर्षपति होते हैं। शेष दिन वर्षाधिपति और प्रवृत्त का भी गतदिन होते हैं उन्हीं को ३६० म घटाने से गम्य दिन होते है। लब्धि को तीन से इसलिये गुणते हैं क्योकि ३६० म सात से भाग देने से तीन शेष रहता है, इसलिये चौथे चौथे वर्षपति होते हैं। वर्षाधिपति आगमप्रामाण्य से होते हैं॥ १५½॥

इदानीं सावनमासपतिज्ञानार्थमाह

क्रमशो हि भास्कराद्यो मासाधिपति खहव्यभुग्भक्ता ॥१६॥
द्युगणा फल द्विनिघ्न सैक नगभक्तविफल स्यात् ॥१६½॥

वि भा.—क्रमशो हि भास्कराद्य एतस्य पूर्वश्लोकेनैतन श्लोकेनापि सम्बन्ध। पूर्वश्लोके त्रिघ्नमगभक्तशेष सैक क्रमशो भास्कराद्य सावनसमाधिप इत्यन्वय कार्य॥

द्युगणा (कल्पगताहर्गण) खहव्यभुग्भक्त (त्रिशद्विभाजित) फल द्विनिघ्न कार्य (द्विगुणित) कार्य त्रिंशताहृते यदि शेषाणि भवन्ति तर्हि द्विनिघ्न सैक

लब्ध कार्य नान्यथा ततो नगभक्तविकल (सप्तभक्तावशिष्ट) क्रमशो भास्कराद्य (सूर्यादिक) मासाधिपतिर्भवेत् । शेषदिनानि च मासाधिपते प्रवृत्तस्य च गतानि तान्येव त्रिंशतो विशोध्य गम्यदिनानि, तस्यैव मासाधिपतेर्भवन्ति, द्विगुण च लब्ध क्रियते यत सप्तभिस्त्रिंशतो हृते द्वयमवशिष्यते, तृतीयस्तृतीयो मासपतिरागम प्रामाण्याद्भवतीति ॥१६½॥

हि भा —अहर्गण को तीस स भाग देने से जो फल हो उसको दो से गुण देना चाहिये, तीस से भाग देने से यदि शेष रहे तो लब्धि को दो से गुण कर एक जोडना चाहिये, अन्यथा नही । सात से भाग देन से जो शेष रहता है सूर्यादिमासाधिपति होत है । शेष मासाधिपति प्रवृत्त का गत दिन है, उसी को तीस म घटा देने स गम्य दिन होते हैं । लब्धि को दो से इसलिए गुणने है कि तीस म सात से भाग देने से दो शेष रहता है । तीसरे तीसरे मासपति आगम प्रमाण से होत है ॥ १६½ ॥

इदानी कालहोरेशज्ञानमुक्त्वा वर्षमासहोरेशाना क्रमप्रदर्शनमाह ।

ऊर्ध्वं वारप्रवृत्तेर्दिनगतघटिका द्व्याहति पञ्चभक्ता
होरेशा सैकमाप्त नगहृतविकल वासरेशाच्च षष्ठा ।
पञ्चाभ्यस्त फल वा हिमकरसहित स्यात्क्रमेण द्युनाथो
मासेश स्यात्तृतीयोऽब्दपतिदिनपतिस्तच्चतुर्थो द्वितीय ॥१७½॥

वि भा —वारप्रवृत्तरूर्ध्वं (वारप्रवृत्तितोऽनन्तर) दिनगतघटिका द्व्याहति (द्विगुणितदिनगतघटिका) पञ्चाहृता) आप्त (लब्ध) सैक (रूपसहित) नगहृत विकल (सप्तभक्तावशिष्ट) षष्ठा (षष्ठषष्ठक्रमिका) वासरेशात् (वारेश्वरात्) होरेशा भवन्ति । अथवा फल (पूर्वलब्ध) पञ्चाभ्यस्त (पञ्चगुणित) हिमकर-सहित (रूपयुक्त) क्रमेण द्युनाथ (वारेश) भवति । तृतीय (तृतीयस्तृतीय) मासेश (मासाधिपति) अब्दपतिदिनपति (वर्षपति सूर्य) द्वितीय (द्वितीय-वर्षपति) तच्चतुर्थ (सूर्याच्चतुर्थ) इति । १७½॥

अत्रोपपत्ति ।

अहोरात्रमध्ये चतुर्विंशत्य कालहोरा भवन्ति अहोरात्रप्रमाणम् = ६० घटी । तदाऽनुपातो यदि षष्टिघटिकाभिश्चतुर्विंशत्य कालहोरा लभ्यन्त तदा वारादिदिनगतघटिकाभि किमित्यनुपातेन सशेषा गतकालहोरास्तत्स्वरूपम् =

$$\frac{२४ \times \text{वारादिदिनगतघ}}{६०} = \frac{२ \times \text{वारादिदिनगतघ}}{५} = \text{गतकालहोरा} + \frac{\text{शे}}{५}$$

अत्र शेषस्य शोधनेन $\frac{२ \times \text{वारादिदिनगतघ} - \text{शे}}{५}$ = गतकालहो, गतद्गतकालहोरा-प्रमाण सैक सप्तभक्त शेषप्रमित वारेशात् षष्ठ षष्ठ कालहोरेश्वरो भवति । अत्र $\frac{२ \times \text{वारादिदिनगघ}}{५} = \text{गतकालहो} + \frac{\text{शे}}{५}$ आचार्येण $\frac{\text{शे}}{५}$ ऽत्र न गृहीत ।

अथवैककालहोराया पञ्चान्तरितग्रह. कालहोरेशो भवति तदा गतकालहोराया निमित्यनुपातेन गतकालहोरा सम्बन्धि कालहोरेश समागच्छति वर्त्तमानकालहोरेशार्थं तत्र सैव कार्यः।

तृतीयस्तृतीयो मासपति, रविवर्षपतिः, द्वितीयो वर्षपती रवितश्चतुर्थ'। तृतीयो वर्षपतिस्तस्माच्चतुर्थ इत्यादि "त्रिचतुरनन्तरषष्ठा सावनमासाब्ददिवसहोरेशा" इति ब्रह्मगुप्तोक्त" सावनमासवर्षादिपतिज्ञानार्थं गणनक्रम आचार्योक्तसदृश एव वर्षपतिमासपत्यादिगणनसम्बन्धे सिद्धान्तशेखरे श्रीपतिनाप्येतदेव कथ्यते।

"सावनाब्दपतिमत्र चतुर्थं मासनाथमपि विद्धि तृतीयम्।
वासरेश्वरमनन्तरमर्कात् षष्ठमेव खलु होरिकमीशम्॥ इति ॥१७½॥

हि. भा—वार प्रवृत्ति के बाद दिनगत घटी को दो से गुण कर पाच से भाग देने से जो फल हो उसमें एक जोडकर सात से भाग देन से जो शेष रहता है वह वारेश से छठे छठे क्रम से होरेश होते हैं। अथवा पूर्वानीत फल को पाच से गुणकर एक जोडने से क्रम से वारेश होते है। तीसरे तीसरे मासेश होते हैं, वर्षपति सूर्य होते है, द्वितीय वर्षपति उनसे चौथे ग्रह होत हैं तृतीय वर्षपति उनसे चौथे ग्रह होते हैं, इत्यादि॥ १७½ ॥

उपपत्ति।

अहोरात्र मे चौबीस काल होरा होती हैं, अहोरात्र का मान ६० दण्ड है तब अनुपात करते है यदि साठ घटी मे चौबीस काल होरा पाते हैं तो वारादि दिनगत घटी मे क्या इस अनुपात से सशेष गतकाल होरा प्रमाण आया, $\frac{२४ \times \text{वारादि दिनगघ}}{६०}$

$$= \frac{२ \times \text{वारादि दिनगघ}}{५} = \text{गतकाल होरा} + \frac{\text{शे}}{५} \text{ दोनों पक्षो मे } \frac{\text{शे}}{५} \text{ घटाने से}$$

$$= \frac{२ \times \text{वारादिग्रघ}}{५} - \frac{\text{शे}}{५} = \text{गतकाल हो, इस गतकाल होरा मे एक जोडकर}$$

सात से भाग देने से शेष तुल्य 'प्रथम काल होरेश (वारेश) से छठे छठे ग्रहकाल होरेश होते है। $\frac{२ \times \text{वारादि दिनगघ}}{५} = \text{गतकाल हो} + \frac{\text{शे}}{५}$ यहा आचार्य $\frac{\text{शे}}{५}$ इसका ग्रहण नही करते हैं। अथवा एक काल होरा मे पाच अन्तरित ग्रहकाल होरेश होते हैं तो गतकाल होरा मे क्या इस अनुपात से गतकाल होरा सम्बन्धी काल होरेश आते है वर्तमान काल होरेश के ज्ञानार्थ उसमे एक जोड देना चाहिये सात स अधिक रहने पर सात से भाग देना चाहिये तब वर्त्तमानकाल होरेश ज्ञान हो जायगा।

तृतीय तृतीय ग्रह मासपति होते है, रवि प्रथम वर्षपति होते हैं, द्वितीय वर्षपति रवि से चौथे ग्रह होते है, तृतीय वर्षपति उनसे चौथे ग्रह होते हैं इत्यादि, 'त्रिचतुरनन्तरषष्ठा. सावन मासाब्द दिवस होरेशा" यह ब्रह्मगुप्त कथित सावन मासेश वर्षेश आदि ज्ञान के लिए गणना क्रम वटेश्वराचार्योक्त सदृश ही है।

वर्षपतिमासपत्यादि के गणना विषय में सिद्धान्तशेखर में श्रीपति भी यही बातें कहते हैं—

सावनाब्दपतिमत्र चतुर्थं मासनाथमपि विद्धि तृतीयम् ।
वासरेश्वरमनन्तरमर्कान् षष्ठमेव खलु होरिकमीशम् ॥ १७½ ॥

इदानीं पुनरपि होरेशज्ञानमाह

सूर्योदयलग्ने होरा द्विघ्ना पञ्चगुणाः पर्वतोद्धृता ।
शेषा सैक दिवसाधिपतिक्रमेण होरापतिः षष्ठः ॥ १८½ ॥

वि. भा—यस्मिन्निष्टकाले कालहोरा ज्ञातुमिच्छति तस्मिन् काले तात्कालिक लग्न कार्यं तस्मात्तात्कालिकरविं विशोध्य शिष्टानि ग्रहाणि द्विघ्नानि सन्ति होरा भवन्ति, शेषा. सैका (रूपयुक्ता) पञ्चगुणा रूपयुक्ता कार्या, शेषाभावे पञ्चगुणासु होरासु रूप न योजयेत् । ते सप्तभक्ता अवशेषाङ्कसम दिवसाधिपतिक्रमेण होराधिपतिर्भवति ॥

सूर्योनलग्नस्य राशीन् भागीकृत्याधस्तनभागं संयुज्य पञ्चदशभिर्हरेत्, यत्फल ता होरा इत्युच्यन्ते । यदि पञ्चदशभिर्हृते शेषमस्ति तदा लब्ध पञ्चगुणं कृत्वा रूप योज्यम् । शेषाभावे रूप न योजयेत् । तस्मात्सप्तभक्तावशिष्टाङ्कसमो दिनपतिक्रमेण होराधिपतिर्भवति ।

अत्रोपपत्ति ।

क्रान्तिवृत्ते यत्र रविस्तस्माल्लग्न यावत्क्रान्तिवृत्ते यावन्तोऽशास्तावन्त पञ्चदशभक्ताहोरात्व व्रजन्ति, यतो राश्यर्धेनैना होरा भवन्ति, लब्धाश्च पञ्चगुणा क्रियन्ते । यत षष्ठ षष्ठ कालहोरेशो भवति तेन द्वयोर्होरेशयोरन्तर पञ्च, अतो होरा पञ्च गुणा सर्वे वारा भवन्ति, अत्रागमप्रामाण्याद्दिनपादिगणना । यदि लब्धहोरा सशेषा भवेयुस्तदा तत्र वर्त्तमानार्थ रूप योज्यते इति ।

सिद्धान्तशेखरे श्रीपतिनाप्येव कथ्यते—

अर्कोनलग्नस्य गृहाणि होरा द्विघ्नानि ता पञ्चगुणा सशेषा ।
चेद्रूपयुक्ता दिनपादयस्ते होराधिनाथा क्रमशो भवेयु ॥ १८½ ॥

इति वटेश्वरसिद्धान्ते मध्यमाधिकारे देशान्तरविधिरष्टमोऽध्याय समाप्त ।

हि भा—जिस काल में कालहोराज्ञान करना है उस काल में लग्नानयन प्रकार से तात्कालिक लग्न साधन करना उसमें तात्कालिक रवि को घटा कर शेष राशि द्विगुणित होरा है, शेष सहित रहने से एक जोड़कर पाँच से गुणा देना रूप जोड़ देना चाहिये, शेषाभाव में पञ्चगुणित होरा में एक नहीं जोड़ना चाहिये, उसको सात से भाग देने से शेषाङ्कतुल्य दिनपति क्रम से होराधिपति होते हैं । सूर्य रहित लग्न में जो राशि है उसको अंशात्मक बना कर नीचे के अंश को जोड़कर पन्द्रह से भाग देना, जो फल होता है वह होरा है । पन्द्रह से भाग देने से यदि शेष रहता है तब लब्धि को पाँच से गुणा कर रूप जोड़ देना

चाहिये। शेष के अभाव में रूप नहीं जोड़ना चाहिये। उसमें सात से भाग देने से जो शेष रहता है तत्तुल्य दिनपति क्रम से होराधिपति होते हैं ॥ १८३ ॥

उपपत्ति।

क्रान्तिवृत्त में जहां रवि है वहां से लग्न तक जितने अंश हैं उतने को पन्द्रह से भाग देने से होरा होती है, क्योंकि राशि के आधे को होरा कहते हैं। लब्धि को पांच से गुणते हैं क्योंकि छठे छठे ग्रहकाल होरेश होते हैं। इसलिये दो काल होरेश का अन्तर पांच होता है, अतः होरा को पांच से गुणने से सब दिन हो जायेंगे। यहां दिनपति क्रमगणना में आगम प्रमाण ही है। यदि लब्ध होरा सशेष हो तो वर्तमान के लिये उसमें एक जोड़ देना चाहिये।

सिद्धान्तशेखर में श्रीपति भी इसी तरह कहते हैं—

सर्वोनलग्नस्य गृहाणि होरा इत्यादि ॥ १८३ ॥

इति वटेश्वरसिद्धान्त में मध्यमाधिकार में देशान्तरविधि नामक अष्टम अध्याय समाप्त हुआ ॥



नवमोऽध्यायः

अथ प्रश्नविधिः

तत्रादौ तदारम्भ प्रयोजनमाह ।

आकर्ण्य कुतन्त्रविदः प्रश्नान् ग्लानिमुपयान्ति नष्टशिरसः ।
यस्मादतः स्वधीभिः प्रश्नाध्यायं समुच्यते वक्तुम् ॥ १ ॥

वि भा—यस्मात्कारणात् कुतन्त्रविद (अधमज्योतिःशास्त्रज्ञा) प्रश्नान् (विविधप्रश्नकदम्बकान्) आकर्ण्य (श्रुत्वा) नष्टशिरस (मस्तिष्कशून्या) ग्लानि (लज्जा) उपयान्ति (प्राप्नुवन्ति) अतोऽस्मात्कारणात् स्वधीभि (निजबुद्धिभि) प्रश्नाध्याय (प्रश्नप्रकरण) वक्तुम् (कथयितु) समुच्यते (कथ्यते) मयेति ॥ १ ॥

हि भा—जिस कारण से अल्पज्ञ ज्योतिषी लोग नाना प्रकार के प्रश्नों को सुनकर मस्तिष्कशून्य होकर लज्जा को पाते हैं, इस कारण अपनी बुद्धि के अनुसार प्रश्नाध्याय को हम कहते है ॥ १ ॥

इदानी प्रश्नमाह ।

आनयति यो द्युराशिं विनाधिमासैस्तथा तिथिप्रलयं ।
रविदिवसेभ्योऽस्माद् द्युचराद्य सो हि तन्त्रज्ञ ॥२॥

वि भा—यो व्यक्तिविशेष अधिमासैर्विना तथा तिथिप्रलयं (क्षयदिनं) विना रविदिवसेभ्य (सौरदिनेभ्य) द्युराशि (अहर्गण) आनयति (साधयति) अस्मात् (अहर्गणात्) द्युचराद्य (ग्रहाद्य) आनयति स तन्त्रज्ञ (गणक) अस्तीति ॥२॥

अस्योत्तरार्थमुपपत्ति ।

अथैकस्मिन् सौरवर्षे सावनदिनाद्यम्=३६५। १५।३१।१५।०

अत्रावयवान् १५।३१।१५ त्यक्त्वा ३६५ केवलमित्येव गृहीतानि । ततोऽनुपातेन गतवर्षसम्बन्धिदिनादि=३६५×गव । अथ युगसौरवर्षैर्युगसौरसावन दिनान्तराणि लभ्यन्ते तदैकेन सौरवर्षेण किमित्यनुपातेनैकस्मिन् सौरवर्षे सौरसावनदिनान्तराणि समागतानि ततोऽनुपातो यद्येकवर्षे इदमन्तर तदा गतवर्षे किमित्यनुपातेन यत्फल मागच्छेत्तत्पूर्वफले ३६५ गव योज्य तदाऽहर्गणो भवेत् । ततो ग्रहज्ञान सुलभमिति ।

हि भा —जो व्यक्ति अधिमास और अवम को छोड़ कर सौरदिन से अहर्गण साधन करता है वह तन्त्रज्ञ (ज्योतिषी) है।

इस प्रश्न के उत्तर के लिए उपपत्ति

एक सौर वर्ष में सावनदिनादि = ३६५।१५।३१।१५।० यहां १५।३१।१५ इनको छोड कर केवल ३६५ दिन ग्रहण करते हैं तब अनुपात से गतवर्ष सम्बन्धी सावनदिन = ३६५ × गतवर्ष। अब युगसौर वर्ष में यदि युग सौरदिन और सावन दिन का अन्तर पाते हैं तो एक सौरवर्ष में क्या इस अनुपात से एक सौर वर्ष में सौरदिन और सावनदिन के अन्तर आ गये। तब अनुपात करते हैं कि यदि एक सौरवर्ष में यह अन्तर पाते हैं तो गतवर्ष में क्या इस अनुपात से जो फल होगा उसको पूर्वानीत "३६५ गव' फल में जोड़ने से अहर्गण प्रमाण आजायेंगे। इस पर से ग्रहानयन सुगम है। इति ॥३॥

इदानीमन्यप्रश्नमाह।

अधिमासैः शशिमासैरवमैः कुदिनैर्विनाऽन्यैर्य आनयति।
द्युगणं रविदिवसेभ्यो वेत्ति प्रकटं स मध्यगतिम् ॥३॥

वि भा —यः (व्यक्तिविशेषः) अधिमासैः (प्रसिद्धैर्मलमासैः) शशिमासैः (चान्द्रमासैः) अवमैः (तिथिक्षयैः) कुदिनैः (प्रसिद्धैः सावनदिनैः) विना रविदिवसेभ्यः (सौरदिनेभ्यः) द्युगणं (अहर्गणं) आनयति (साधयति) स प्रकटं मध्यगतिं वेत्तीति ॥३॥

अस्योत्तरार्थमुपपत्तिस्तु द्वितीयश्लोकोपपत्त्यैव स्फुटेति ॥

हि भा —जो व्यक्ति विशेष अधिमास, चान्द्रमास, अवम और कुदिन इन सब के बिना अहर्गण साधन करता है वह मध्यगति को जानता है ॥३॥

इसके उत्तर के लिए उपपत्ति द्वितीयश्लोक की उपपत्ति से साफ है ॥३॥

इदानीमन्यान् प्रश्नानाह।

कुदिनैः शशिदिवसैश्च खराशुदिवसान् करोति तर्भाहान्।
अधिकं सविकलैरवमसमवमैरधिकमानयति यः स तन्त्रज्ञः ॥४॥

वि भा —यः कुदिनैः, शशिदिवसैः (चान्द्रदिनैः) खराशुदिवसान् (सूर्यवासरान्) करोति (आनयति) तर्भाहान् (नक्षत्रदिवसान्) आनयति, तथा अधिकं सविकलं (सशेषाधिकमासैः) अवम सशेषैः अवमैश्चाधिकं य आनयति स तन्त्रज्ञोऽस्तीति ॥४॥

अत्र प्रथमप्रश्नस्य द्वितीयप्रश्नस्य चोत्तरं स्फुटमेव। तृतीयचतुर्थप्रश्नयोरुत्तरार्थमुपपत्तिः।

गतावमतस्तच्छेषाच्चानुपातेन गतचान्द्राहानयनस्य स्फुटा युक्तिः। सौर-

दिनेभ्यश्चान्द्रदिनेभ्यश्च गताधिमासा समा एव लभ्यन्ते तच्छेषमपि सममेकत्र युग-सौरदिनहरोऽन्यत्र युगचान्द्रदिनहर इति सर्व सौरेभ्य साधितास्ते चेदधिमासास्तदैन्दवा " इत्यादि भास्करोक्तेन स्फुटम् । ततश्चान्द्राहत आगतैर्गताधिमासैर्दिनीकृतैश्चान्द्राहा विहीना गतसौराहा भवन्ति तेभ्य पुनर्गताधिमासाहर्गणेनेष्टग्रहाद्य मुखेन ज्ञायते गतसौरदिनेभ्यो गताधिमासशेषत समीकरणम् ।

गसौदि युअमा = युसौदि गअमा + अधिशे, पक्षयो ३० युअमा गअमा योजनेन युअधिमा (गसौदि + गअधिमादि) = गचादि युअमा ।
= गअधिमा (युसौदि + युअधिमादि) + अधिशे
= युचादि गअधिमा + अधिशे

अत सौरचान्द्रेभ्य समागताधिमासा लभ्यन्तेऽधिशेष च सममिति ।।४।।

हि भा —जो व्यक्ति विशेष युगकुदिन और युग चान्द्र दिन से सौर दिन के आनयन करते हैं और उस पर से नाक्षत्र दिन के साधन करते हैं तथा सशेष अधिमास से अवम और सशेष अवम से अधिमास के आनयन करते हैं वे तन्त्रज्ञ हैं ।।४।।

यहा प्रथम और द्वितीय प्रश्न के उत्तर सरल ही हैं ।

तृतीय और चतुर्थ प्रश्नो के उत्तर के लिए उपपत्ति

गतावम से और उसके शेष से अनुपात द्वारा गतचान्द्र दिनानयन स्पष्ट ही है । सौर-दिन और चान्द्रदिन से गताधिमास बराबर ही आते हैं उसके शेष भी बराबर होते हैं । एक स्थान में युगसौरदिन हर होते हैं द्वितीय स्थान में युगचान्द्रदिन हर होते हैं । ये सब बात "सौरेभ्य साधितास्ते चेदधिमासास्तदैन्दवा " इत्यादि भास्कर कथित से स्पष्ट है । चान्द्रदिन से जो गताधिमास दिन आये उसे चान्द्र दिन म घटाने से गतसौर दिन होते हैं उससे फिर गताधिमासाहर्गण से इष्टग्रहादि का ज्ञान सुलभ ही हो जायगा ।

गतसौरदिन और गताधिमास शेष से समीकरण
गसौदि युअधिमा = युसौदि गअमा + अधिशे दोनो पक्षो म ३० युअमा गअमा जोडने म
युअधिमा (गसौदि + गअधिमादि) = गचादि युअमा
= गअधिमा (युसौदि + युअधिमादि) + अधिशे
= युचादि गअधिमा + अधिशे
इसलिये सौर और चान्द्र से तुल्य ही गताधिमास और अधिशेष आये ।। ४ ।।

इदानीमन्यान् प्रश्नानाह ।

द्युगणाहते रवीन्दू ताभ्यामिष्ट ग्रहं चान्यम् ।
बहुधा य: शशिन इनं रवेरिन्दुं करोति गणकः स ।। ५ ।।

वि भा —द्युगणाहते (अहर्गणगुणिते) रवीन्दू (सूर्याचन्द्रमसौ) उद्दिष्टौ वर्त्तेते, ताभ्या (अहर्गणगुणित-रविचन्द्राभ्या) य (व्यक्तिविशेष) अन्य (भिन्न)

इष्ट ग्रह करोति तथा शशिन (चन्द्रात्) इन (सूर्यं) रवे (सूर्यात्) इन्दु (चन्द्र) यो बहुधा करोति स गणकोऽस्तीति ॥ ५ ॥

एतेषा प्रश्नानामुत्तरार्थमुपपत्तय ।

रवि × अहर्गण । चन्द्र × अहर्गण आभ्या पृथक् पृथक् चन्द्ररव्योर्ज्ञान क्रियते यथा प्रथम तयोर्योग कार्यस्तदा रवि × अहर्गण + चन्द्र × अहर्गण = अहर्गण (रवि + चन्द्र) तथा च अहर्गण × युगरविभगण + अहर्गण × युचभगण = अह (युरभ + युचभ) ततोऽनुपातेन अह (युरभ + युचभ)एभिर्युगचन्द्रभ . . . लभ्यन्ते तदा अह (रवि + चन्द्र) अनेन किमिति समागतश्चन्द्र = $\frac{\text{अह (रवि + चन्द्र)} \times \text{युचभ}}{\text{अह (युरभ + युचभ)}}$

$$= \frac{(\text{अह} \times \text{रवि} + \text{अह} \times \text{चन्द्र})\ \text{युचभ}}{\text{अह} \times \text{युरभ} + \text{अह} \times \text{युचभ}} = \text{चन्द्र}$$

$$\text{वा}\ \frac{\text{अह (रवि + चन्द्र) युरभ}}{\text{अह (युरभ + युचभ)}} = \text{रवि} = \frac{(\text{अह} \times \text{रवि} + \text{अह} \times \text{चन्द्र})\ \text{युरभ}}{\text{अह} \times \text{युरभ} + \text{अह} \times \text{युचभ}}$$

एतेन रविचन्द्रयोर्ज्ञान जातम् । ततो रविचन्द्रयोर्मध्ये एक सिद्धग्रह साध्यग्रहमिष्टग्रह मत्वा "साध्यस्य चक्रं गुणित प्रसिद्धो भक्तो निजै "इत्यादिनाऽन्यस्येष्टग्रहस्य ज्ञान सुकरमिति ॥ ५ ॥

हि भा —अहर्गण गुणित रवि और चन्द्र उद्दिष्ट है इन दोनो से जो (व्यक्तिविशेष) अन्य ग्रह के साधन करते है । चन्द्र से रवि, और रवि से चन्द्र के साधन अनेक प्रकार से करते है वे ज्योतिषी हैं ॥५ ॥

इन प्रश्नो के उत्तर के लिये उपपत्ति

अहर्गण × रवि । अहर्गण × चन्द्र ये दोनो विदित है तब इन दोनो पर से पृथक्-पृथक् रवि और चन्द्र के ज्ञान करते है ।

अहर्गण × रवि + अहर्गण × चन्द्र = योग । तथा अहर्गण × युरविभगण + अह युचभगण तब अनुपात करते हैं कि यदि अह युरभ + अह युचभ इसमे = यो, युग चन्द्रभगण पाते हैं तो अह.रवि + अह.चन्द्र इसमे क्या इस अनुपात से चन्द्र के मान आ जायगे ।

$$\frac{(\text{अह रवि} + \text{अह चन्द्र})\ \text{चभगण}}{\text{अह युरभ} + \text{अह युचभ}} = \text{चन्द्र}$$ । इसी तरह अनुपात से

$$\frac{(\text{अह रवि} + \text{अह चन्द्र})\ \text{युरभगण}}{\text{अह युरभ} + \text{अह युचभ}} = \text{रवि}$$ । इस तरह रवि और चन्द्र के ज्ञान हो गये है । तब इन दोनो म से किसी एक को सिद्ध ग्रह और साध्यग्रह को इष्टग्रह मानकर 'साध्यस्य चक्रं गुणित प्रसिद्धो भक्ता निजै " इत्यादि भास्करोक्त से इष्टग्रह के ज्ञान हो जायेंगे ॥ ५ ॥

इदानीमन्यौ प्रश्नावाह

अश्विन्यौदयिकानथवेष्टदिवौकसाम्युदयकाले ।
साधयति दिविचरान् यो गणको मुख्य. स तन्त्रविदाम् ।।६।।

वि भा —यो गणक (ज्योतिषिक) अश्विन्यौदयिकान् (अश्विन्युदयकालिकान्) दिविचरान् (ग्रहान्) अथवेष्टदिवौकसाम्युदयकाले (इष्टग्रहोदयकाले) दिविचरान् साधयति (आनयति) स तन्त्रविदा (तन्त्रज्ञाना ज्योतिर्विदा वा) मुख्य (प्रधान) अस्तीति ।।६।।

अत्रोपपत्ति

ग्रहभगणोनानि भदिनानि ग्रहसावनदिनानि भवन्ति । तत स्वसावनैरिष्टाश्विन्यौदयिका मध्यमग्रहा भवन्त्यर्थाद् यदीष्टग्रहोदयिका ग्रहा साध्यास्तदेष्टग्रहसावनाहर्गणातो यद्यश्विन्यौदयिकास्तदेष्टभदिनतो मध्यमा ग्रहा पूर्ववत्साध्या 'भभ्रमास्तु भगणैर्विवर्जिता यस्य तस्य कुदिनानि तानि वा' इत्यादि भास्करोक्तमेतदनुरूपमेवेति । ब्राह्मस्फुटसिद्धान्ते ब्रह्मगुप्तोक्तमप्येतत्सदृशमेव, यथा ब्रह्मगुप्तोक्तवाक्यम्—

"भदिनानि ग्रहभगणैरूनानि भवन्ति सावनदिनानि ।
इष्टाश्विन्यौदयिका स्वसावनै पूर्ववन्मध्या ॥ इति ।।६।।

हि भा —जो ज्योतिषी अश्विनी के उदयकालिक ग्रहो को अथवा इष्टग्रहोदय कालिक ग्रहा क साधन करते हैं वे ज्योतिषियो मे प्रधान है।।६।।

इसके उत्तर के लिये उपपत्ति

भदिन म ग्रहभगण को घटाने से ग्रह सावन दिन होते हैं। तब अपन सावन से पूर्ववत् अर्थात् यदि इष्ट ग्रहोदयकालिक ग्रह साधन करना हो तो इष्ट ग्रह सावनाहर्गण पर से यदि अश्विनी क उदयकालिक ग्रह साधन करना हो तो इष्ट भदिन पर से मध्यम ग्रह पूर्ववत् साधन करना । 'भभ्रमास्तु भगणैर्विवर्जिता यस्य तस्य कुदिनानि तानि वा इत्यादि भास्करोक्त इसके अनुरूप ही है । ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त म ब्रह्मगुप्तोक्त भी इसी के सदृश है । उनका वचन निम्नलिखित है—

"भदिनानि ग्रहभगणैरूनानि भवन्ति सावनदिनानि ।
इष्टाश्विन्यौदयिका स्वसावनै पूर्ववन्मध्या ॥ इति ।।६।।

इदानीमन्यान् प्रश्नानाह ।

वार वलोमविधिना स्पष्टतमाद्य करोति सक्षेपात् ।
द्युसदा च विलोमगति मध्यगति च विमलाशम् ।।७।।
महदल्पगती द्युचरावन्योऽन्य य प्रसाधयेद् बहुधा ।
ग्रहमर्कमर्कमथवा करोति खचर स तन्त्रज्ञ. ।।८।।

वि भा —य (व्यक्तिविशेष) स्पष्टमान् (अतिशयस्पष्टान्) सक्षेपात् (सक्षेपेस) विलोमविधिना (उत्क्रमपद्धत्या) वार (दिन) प्रसाधयेदित्येक प्रश्न । द्युसदा (ग्रहाणा) विलोमगति (अनुलोमगनिग्रह विलोमगति) य प्रसाधयेदिति द्वितीय प्रश्न । ग्रहाणा मध्यगति विमलाश (स्पष्टगति) य प्रसाधयेदिति तृतीयचतुर्थप्रश्नौ । मद्रदल्पगती द्युचरौ (शीघ्रमन्दग्रहौ) अन्योऽन्य (परस्पर) य प्रसाधयेदिति पञ्चम प्रश्न ।

ग्रहम् अर्क (रवि) वा अर्क खचर (ग्रह) य करोति (इति षष्ठ प्रश्न) स तन्त्रज्ञ *(ज्योतिर्विज्ञ) अस्तीति । ७ ८॥*

प्रथमप्रश्नस्योत्तरार्थमुपपत्ति

अहर्गणे सप्तभक्ते यदि शेषप्रमाणम्=शे, तथा सप्तभक्त '७ कुदि—अहर्गण' अय शेषमान यदि शे कल्प्यते तदा ७—शे, =शे । अत —शे, अस्माद् या रवित क्रमगणना सैव ७ —शे, अस्मात् सन्यादेर्विपरीतगणना भवेद्यथा—

यदि शे, =१ तदा क्रमगणनया वर्तमानवार सोमो भवेत्तथा शे=६

अस्मात् रवि । शनि । शुक्र । गुरु । बुध । कुज । इति विपरीतगणनया वर्तमानवार सोम एव जातोऽत सिद्धम् ॥

हि भा —जो व्यक्ति सक्षेप मे अतिशय स्फुट विलोम रीति म दिन साधन करत है यह एक प्रश्न हुआ । ग्रहो की विलोम गति (क्रमिक गति ग्रह को विलोमगति करना) के साधन जो करत हैं यह दूसरा प्रश्न हुआ । ग्रहो की मध्यम गति और स्पष्ट गति के साधन जो करत है य तृतीय और चतुर्थ प्रश्न हैं । शीघ्रगति ग्रह और मन्दगति ग्रह के परस्पर साधने (शीघ्रगति ग्रह स मन्द गति ग्रह और मन्द गति ग्रह से शीघ्र गति ग्रह) जा करते है यह ५वा प्रश्न है ।

ग्रह को रवि और रवि को ग्रह जा करते है वे तन्त्रज्ञ (ज्योतिषी) हैं ॥७ ८॥

यहा प्रथम प्रश्न क उत्तर के लिए उपपत्ति

अहगण म सात से भाग देन म जो शेष रहता है उसका नाम श, और '७ कुदि—अहगण' इसम सात से भाग देने म शेष का नाम श रखत हैं तब ७—श, =श इसलिए—श, इससे जा रव्यादि स क्रम गणना होती है वही ७—श, *इस पर स सन्यादि स विपरीत गणना होती है । जैस—*

यदि श, =१ तब क्रमगणना म वर्तमान वार सोम आया । और श=६ इस पर स रवि । शनि । शुक्र । गुरु । बुध । कुज विपरीत गणना मे भी वर्तमान वार सोम ही आया । इति ॥

द्युसदा च विलोमगतिमित्यस्योत्तरार्थमुपपत्ति

इष्टग्रहयुगभगणोनेभ्यो युगकुदिनेभ्यो ये शेषास्तत्सम्बन्धियुगभगणैरहर्गणादनुपातेन यो मध्यमग्रह स्यात्स यद्यनुलोमगस्तदा विलोमो भवेद्विलोमगो वा

ऽनुलोमगतिर्भवतीति ॥ यथा युकुदि—इग्रयुगभगण एतेऽहर्गणगुणा युगकुदिनभक्ता लब्धभगणादिके भगणानपास्य राश्यादिको ग्रह क्रियते तदेष्टग्रहश्चक्रशुद्धो भवत्यतो ऽनुलोमगो विलोमो भवतीति ॥

अथवा

अहर्गणोनाना युगकुदिनाना यानि दोषाणि तै. शेषैर्गम्याहर्गणैर्ग्र हयुगभगणै-श्चानुपातेन पूर्ववत्कृतोऽनुलोमगो ग्रहो विलोमगतिर्भवति विलोमश्चानुलोमगो मध्यो वा भवतीति यथा यदि गम्याहर्गुणेनानेन 'युकुदि—अहर्गण' भगणात्मको ग्रह साध्यते तदा $\frac{\text{ग्रहयुभगण (युकुदि—अहर्गण)}}{\text{युकुदि}}$ = ग्रयुभगण — $\frac{\text{ग्रयुभ} \times \text{अहर्गण}}{\text{युकुदि}}$ = ग्रह

अत्रापि भगणाना त्यागाद्राश्यादिको ग्रहश्चक्रशुद्ध उत्पद्यतेऽनोऽनुलोमगो विलोमगो विलोमगश्चानुलोमगो भवतीति ।

ब्रह्मगुप्तोप्येवमेव कथयति । यथा—
"इष्टभगणेन भूदिनशेषैर्भगणं कृतो मध्य ।
अनुलोमगो विलोमो विलोमगो वाऽनुलोमगति ॥"
सिद्धान्तशेखरे श्रीपतिनाप्येवमेव कथ्यते । यथा च तद्वाक्यम्—
"चक्रोनितक्षितिदिनप्रकरावशेषैश्चक्रं कृतोऽयमनुलोमगतिर्विलोम ।
प्राग्वद्विलोमगतिरप्यनुलोमग स्याद् यद्वा द्यु राशिरहिते कुदिने स्वचक्रं ॥"

"द्युमदा च विलोमगति" इस प्रश्न के उत्तर के लिये उत्पत्ति ।

युग कुदिन मे इष्ट ग्रह युग भगण को घटाने से जो शेष रहता है तत्तुल्य युग भगण से अहर्गण द्वारा अनुपात से मध्यम ग्रह होता है वह यदि क्रमिकगतिक है तो विलोमगतिक होता है और यदि विलोमगतिक है तो क्रमिकगतिक होता है ॥

जैसे युकुदि—इग्रयुभगण इसको अहर्गण से गुण कर युग कुदिन मे भाग देने से जो भगण विफल होता है उसमें भगण को घटाकर राश्यादिक ग्रह करते हैं तब इष्टग्रह चक्र शुद्ध होते हैं। इसलिए अनुलोमग ग्रह विलोमग होते हैं।

अथवा

युग कुदिन मे अहर्गण को घटा कर जो शेष (गम्याहर्गण) रहते हैं उसने और ग्रह युग भगण से अनुपात द्वारा पूर्ववत् किये हुये क्रमिक गति ग्रह विलोमगतिक होते हैं और विलोमगतिक मध्यम ग्रह क्रमिकगति ग्रह होते हैं। यथा—

युकुदिन — अहर्गण इस गम्याहर्गण से मध्यम ग्रह साधन करते हैं—

$\frac{\text{ग्रयुभगण} \times \text{(युकुदि—अहर्गण)}}{\text{युकुदि}}$ = ग्रयुभगण — $\frac{\text{ग्रयुभगण} \times \text{अहर्गण}}{\text{युकुदि}}$ = ग्रह ।

यहा भी भगणो के छोडने से राश्यादिक ग्रहचक्र शुद्ध होते हैं। इसलिये अनुलोमग ग्रह विलोमग और विलोमग ग्रह अनुलोमग होते हैं।

ब्रह्मगुप्त भी इसी तरह कहते हैं।

"इष्टभगणोन भूदिनशेषैर्भगणैः कृतो मध्य ।
अनुलोमगो विलोमो विलोमगोवाऽनुलोमगति ॥"

सिद्धान्तशेखर मे श्रीपति भी इसी तरह कहते हैं। यथा—

"चक्रोनितक्षितिदिनप्रकारावशेषैर्वक्रे " इत्यादि।

अथ मध्यगति च विमलाशमित्यस्योत्तरार्थमुपपत्ति.।

अथ रविचन्द्रानयनप्रकारेण सूर्योदयेऽभीष्टदिने चैत्रादित: सावयव चान्द्र-मासादि.=मा+दि+क्षयशेल । रवि=मा+दि+क्षशेल—अधिमाल

चन्द्र=१३ (मा+दि+क्षयशेल)—अधिमाल । अधिमाल=अधिमासफल तत स्वफलसस्कृत रवि स्वफलसस्कृतचान्द्राद्विशोध्य स्पष्टरविचन्द्रान्तरं साधितं तद्द्वादशभक्तं चान्द्र मासादि स्यात्। एव द्वादशभक्त रविमन्दफल व्यस्त द्वादशभक्तं चन्द्रफल च दिनादि यथागत मध्यमचान्द्रमसादिकेऽस्मिन् 'मा+दि+क्षशेल' सस्कृत भवति। एव तिथेर्भुक्त घट्यात्मक लङ्कायां चान्द्रात्मक जातम्। सावन-घट्यर्थमेकस्मिन् सावनदिने रविचन्द्रगत्यन्तर द्वादशभक्त फल चान्द्र प्रसाध्यानुपातो यद्येतच्चान्द्रावयवेन सावना षष्टिघटिका लभ्यन्ते तदा तिथिविकलेन कि लब्धा लङ्कायां स्फुटास्तिथिभुक्तघटिकास्तत्र देशान्तरचरसस्कारेण स्वदेशे स्फुटार्कोदये स्फुटास्तिथिभुक्ता घटिका भवन्तीति। अत्रोपरिलिखित मध्यमरवि चन्द्रवशेन मध्यमतिथिज्ञान सुगममेव। प्रश्ने "विमलाशम्" वर्तते—विमलाशशब्देन यदि स्पष्टान्तराशास्तदाऽप्युपर्युक्तोपपत्त्यैव सर्वं स्फुटमिति॥

अथ महदल्पगती ग्रुचरावन्योन्य च प्रसाधयेदित्युत्तरार्थमुपपत्ति

शीघ्रग्रहभगण + मन्दग्रहभगण = भगणयोग = योग

शीघ्रग्रहभगण — मन्दग्रभगण = भगणान्तर = अन्तर

तत सक्रमणेन $\frac{\text{यो} + \text{अ}}{२}$ = शीघ्रग्रहभगण ततोऽनुपातेन

$$\text{शीघ्रगतिग्रह} = \frac{(\text{यो} + \text{अ})\ \text{अहर्गण}}{२ \times \text{युकुदि}} = \frac{\text{यो} \times \text{अहर्गण}}{२\ \text{युकु}} + \frac{\text{अ} \times \text{अहर्गण}}{२\ \text{युकु}} =$$

$$\frac{\text{योगजग्रह}}{२} + \frac{\text{अन्तरजग्रह}}{२} = \text{शीघ्रगतिग्रह}\ ।$$

एवमेव $\frac{\text{यो} - \text{अ}}{२}$ = मन्दगतिग्रहभगण ततोऽनुपातेन

$$\text{मदगतिग्रह} = \frac{(\text{यो} - \text{अ})\ \text{अहर्गण}}{२ \times \text{युकु}} = \frac{\text{यो} \times \text{अहर्गण}}{२\ \text{युकु}} - \frac{\text{अ} \times \text{अहर्गण}}{२\ \text{युकु}} =$$

$$\frac{\text{योगजग्रह}}{२} - \frac{\text{अन्तरजग्रह}}{२} = \text{मन्दगतिग्रह}\ ।$$

यदि शीघ्रगतिग्र—अन्तरजग्र=मन्दगतिग्र। मन्दगति+अन्तरजग्र=शीघ्रग्रह।

ग्रहमर्कमर्कमथवा खचरमिति प्रश्नस्योत्तरमपि पूर्वोक्तोपपत्तिबलेनैव जात यत शीघ्रमन्दगतिग्रहयोरेक ग्रहम-य रविं प्रकल्प्य पूर्ववदेवोपपत्ति कार्येति ॥ ७८ ॥

"मध्यमतिं च विमलाप्ताम्" इस प्रश्न के उत्तर के लिये उपपत्ति ।

रवि और चन्द्र के आनयन प्रकार से अभीष्ट दिन म सूर्योदयकाल मे चैत्रादि से सावयव चान्द्रमासादि = मा + दि + क्षयशेल । रवि = मा + दि + क्षयशेल — अधिमाल । अमाल = अधिफल चन्द्र = १३ (मा + दि + क्षयशेल) — अधिमासफल । अपने मन्दफल

संस्कृत रवि को अपने मन्दफल संस्कृत चन्द्र मे घटाकर स्पष्ट रवि और स्पष्ट चन्द्र के अन्तर साधन कर बारह से भाग देने से चान्द्रमासादि होता है । इस तरह बारह से भक्त रविमन्द फल व्यस्त द्वादशभक्त च द्रमन्दफल पूर्वागत मध्यम चान्द्रमासादि (मा + दि + क्षशेल) में संस्कृत होता है । इस तरह तिथिभुक्त घट्यात्मक लङ्का मे चान्द्रात्मक हुआ । सावन घटी के लिये एक सावन दिन मे रविच-द्रगत्यन्तर को बारह से भाग देने से जो चान्द्र फल होता है उस पर से अनुपात करते है यदि इस चान्द्रावयव मे सावन साठ घटी पाते है तो तिथि शेष म क्या फल लङ्का मे स्पष्टतिथि भुक्त घटी प्रमाण होता है इसम देशान्तर-भुजान्तर-चर कर्म संस्कार करने से अपने देश मे स्पष्ट रव्युदयकाल मे स्पष्ट तिथिभुक्त घटी होती है । उपरिलिखित मध्यम रवि और मध्यमचन्द्रवश मध्यमतिथि ज्ञान सुलभ ही है । तथा प्रश्न मे 'विमलाप्ताम्" इससे यदि स्पष्टान्तराश लेते है तो भी उपर्युक्त उपपत्ति से उसका ज्ञान सुलभ ही है ॥

५ वे प्रश्न के लिये उपपत्ति ।

शीघ्रग्रहभगण + मन्दग्रहभ = भगणयोग = यो

शीघ्रग्रहभगण — मन्दग्रहभ = भगणान्तर = अ

तब सक्रमण से $\frac{\text{यो} + \text{अ}}{२}$ = शीघ्रग्रभ । तथा $\frac{\text{यो} - \text{अ}}{२}$ = मन्दग्रभगण

$$\text{अब अनुपात से } \frac{(\text{यो} + \text{अ})\,\text{अहर्ग}}{२ \times \text{युकु}} = \frac{\text{शीघ्रग्रभ} \times \text{अहर्गण}}{\text{युकु}} = \frac{\text{यो} \times \text{अहर्गण}}{२\ \text{युकु}} + \frac{\text{अ} \times \text{अहर्गण}}{२\ \text{युकु}}$$

$$= \frac{\text{योगजग्रह}}{२} + \frac{\text{अन्तरजग्र}}{२} = \text{शीघ्रग्रह}$$

$$\text{तथा} \frac{\text{मन्दग्रहभगण} \times \text{अहर्गण}}{\text{युकु}} = \frac{(\text{यो} - \text{अ})\ \text{अहर्गण}}{२\ \text{युकु}} = \frac{\text{यो} \times \text{अहर्गण}}{२\ \text{युकु}} - \frac{\text{अ} \times \text{अहर्गण}}{२\ \text{युकु}}$$

$$= \frac{\text{योगजग्रह}}{२} - \frac{\text{अन्तरजग्र}}{२} = \text{मन्दगतिग्रह}$$

यदि शीघ्रगतिग्रह — अन्तरजग्रह = मन्दगतिग्रह

मन्दगतिग्रह + अन्तरजग्रह = शीघ्रगतिग्रह ।

छठे प्रश्न का उत्तर ५ व प्रश्न की उपपत्ति से ही हो जायगा क्योंकि शीघ्रगतिग्रह और मन्दगतिग्रह मे एक को ग्रह और दूसरे को रवि मानकर ५ व श्लोक की उपपत्ति केवल से ग्रह और रवि के ज्ञान हो जायगे ॥ ७८ ॥

ब्रह्मगुप्त भी इसी तरह कहते हैं।

"इष्टभगणोन भूदिनशेषैर्भगणैः कृतो मध्य ।
अनुलोमगो विलोमो विलोमगावाऽनुलोमगति ॥"

सिद्धान्तशेखर मे श्रीपति भी इसी तरह कहते हैं। यथा—

"चक्रोनितक्षितिदिनप्रनाराववोर्पदचक्रं " इत्यादि।

अथ मध्यगतिं च विमलाशमित्यस्योत्तरार्थमुपपत्ति ।

अथ रविचन्द्रानयनप्रकारेण सूर्योदयेऽभीष्टदिने चैत्रादित सावयव चान्द्र-मासादि = मा + दि + क्षयशेल । रवि = मा + दि + क्षशेल − अधिमाल

चन्द्र = १३ (मा + दि + क्षयशेल) − अधिमाल । अधिमाल = अधिमासफल तत स्वफलसस्कृत रवि स्वफलसस्कृतचान्द्राद्विशोध्य स्पष्टरविचन्द्रान्तरं साधित तद्द्वादशभक्तं चान्द्र मासादि स्यात्। एव द्वादशभक्त रविमन्दफल व्यस्त द्वादशभक्त चन्द्रफल च दिनादि यथागत मध्यमचान्द्रमसादिकेऽस्मिन् 'मा + दि + क्षशेल' सस्कृत भवति। एव तिथेर्भुक्त घट्यात्मक लङ्कायां चान्द्रात्मक जातम् । सावन-घट्यर्थमेकस्मिन् सावनदिने रविचन्द्रगत्यन्तर द्वादशभक्त फल चान्द्र प्रसाध्यानुपातो यद्येतच्चान्द्रावयवेन सावना षष्टिघटिका लभ्यन्ते तदा तिथिविकलेन किं लब्धा लङ्कायां स्फुटास्तिथिमुक्तघटिकास्तत देशान्तरचरसस्कारेण स्वदेशे स्फुटार्कोदये स्फुटास्तिथिमुक्ता घटिका भवन्तीति । अत्रोपरिलिखित मध्यमरवि चन्द्रवशेन मध्यमतिथिज्ञान सुगममेव । प्रश्ने "विमलाशम्" वर्तते—विमलाशशब्देन यदि स्पष्टान्तराशास्तदाऽप्युपर्युक्तोपपत्त्यैव सर्वं स्फुटमिति ॥

अथ महदल्पगती द्युचरावन्योन्य य प्रसाधयेदित्युत्तरार्थमुपपत्ति

शीघ्रग्रहभगण + मन्दग्रहभगण = भगणयोग = योग

शीघ्रग्रहभगण — मन्दग्रभगण = भगणान्तर = अन्तर

तत सक्रमणेन $\frac{\text{यो} + \text{अ}}{२}$ = शीघ्रग्रहभगण ततोऽनुपातेन

$$\text{शीघ्रगतिग्रह} = \frac{(\text{यो} + \text{अ})\ \text{अहर्गण}}{२ \times \text{युकुदि}} = \frac{\text{या} \times \text{अहर्गण}}{२\ \text{युकु}} + \frac{\text{अ} \times \text{अहर्गण}}{२\ \text{युकु}} =$$

$$\frac{\text{योगजग्रह}}{२} + \frac{\text{अन्तरजग्रह}}{२} = \text{शीघ्रगतिग्रह}\ ।$$

एवमेव $\frac{\text{यो} - \text{अ}}{२}$ = मन्दगतिग्रहभगण ततोऽनुपातेन

$$\text{मदगतिग्रह} = \frac{(\text{यो} - \text{अ})\ \text{अहर्गण}}{२ \times \text{युकु}} = \frac{\text{यो} \times \text{अहर्गण}}{२\ \text{युकु}} - \frac{\text{अ} \times \text{अहर्गण}}{२\ \text{युकु}} =$$

$$\frac{\text{योगजग्रह}}{२} - \frac{\text{अन्तरजग्रह}}{२} = \text{मन्दगतिग्रह}\ ।$$

यदि शीघ्रगतिग्र — अन्तरजग्र = मन्दगतिग्र । मन्दगति + अन्तरजग्र = शीघ्रग्रह ।

ग्रहमर्कमर्कमथवा खचरमिति प्रश्नस्योत्तरमपि पूर्वोक्तोपपत्तिवलेनैव जातं यतः शीघ्रमन्दगतिग्रहयोरेकं ग्रहमन्यं रविं प्रकल्प्य पूर्ववदेवोपपत्तिः कार्येति ॥ ७-८ ॥

"मध्यगतिं च विमलाशम्" इस प्रश्न के उत्तर के लिये उपपत्ति।

रवि और चन्द्र के आनयन प्रकार से अभीष्ट दिन में सूर्योदयकाल में चैत्रादि से सावयव चान्द्रमासादि = मा + दि + क्षयशेल। रवि = मा + दि + क्षयशेल — अधिमास। अमाल = अधिफल चन्द्र = १३ (मा + दि + क्षयशेल) — अधिमाफल। अपने मन्दफल

संस्कृत रवि को अपने मन्दफल संस्कृत चन्द्र में घटाकर स्पष्ट रवि और स्पष्ट चन्द्र के अन्तर साधन कर बारह से भाग देने से चान्द्रमासादि होता है। इस तरह बारह से भक्त रविमन्द फल व्यस्त द्वादशभक्त चन्द्रमन्दफल पूर्वागत मध्यम चान्द्रमासादि (मा + दि + क्षशेल) में संस्कृत होता है। इस तरह तिथिभुक्त घट्यात्मक लङ्का में चान्द्रात्मक हुआ। सावन घटी के लिये एक सावन दिन में रविचन्द्रगत्यन्तर को बारह से भाग देने से जो चान्द्र फल होता है उस पर से अनुपात करते है यदि इस चान्द्रावयव में सावन साठ घटी पाते है तो तिथि शेष में क्या फल लङ्का में स्पष्टतिथि भुक्त घटी प्रमाण होता है इसमें देशान्तर-भुजान्तर-चर कर्म संस्कार करने से अपने देश में स्पष्ट ग्न्युदयकाल में स्पष्ट तिथिभुक्त घटी होती है। उपरिलिखित मध्यम रवि और मध्यमचन्द्रवश मध्यमतिथि ज्ञान सुलभ ही है। तथा प्रश्न में 'विमलाशम्" इससे यदि स्पष्टान्तराश लेते है तो भी उपर्युक्त उपपत्ति से उसका ज्ञान सुलभ ही है॥

५ वें प्रश्न के लिये उपपत्ति।

शीघ्रग्रहभगण + मन्दग्रहभ = भगणयोग = यो

शीघ्रग्रहभगण — मन्दग्रहभ = भगणान्तर = अ

तब सक्रमण से $\frac{\text{यो} + \text{अ}}{२}$ = शीघ्रग्रभ। तथा $\frac{\text{यो} - \text{अ}}{२}$ = मन्दग्रभगण

अब अनुपात से $\frac{(\text{यो} + \text{अ})\,\text{अहर्ग}}{२ \times \text{युकु}} = \frac{\text{शीघ्रग्रभ} \times \text{अहर्गण}}{\text{युकु}} = \frac{\text{यो} \times \text{अहर्गण}}{२\ \text{युकु}} + \frac{\text{अ} \times \text{अहर्गण}}{२\ \text{युकु}}$

$= \frac{\text{योगजग्रह}}{२} + \frac{\text{अन्तरजग्र}}{२}$ = शीघ्रग्रह

तथा $\frac{\text{मन्दग्रहभगण} \times \text{अहर्गण}}{\text{युकु}} = \frac{(\text{यो} - \text{अ})\ \text{अहर्गण}}{२\ \text{युकु}} = \frac{\text{यो} \times \text{अहर्गण}}{२\ \text{युकु}} - \frac{\text{अ} \times \text{अहर्गण}}{२\ \text{युकु}}$

$= \frac{\text{योगजग्रह}}{२} - \frac{\text{अन्तरजग्र}}{२}$ = मन्दगतिग्रह।

यदि शीघ्रगतिग्रह — अन्तरजग्रह = मन्दगतिग्रह

मन्दगतिग्रह + अन्तरजग्रह = शीघ्रगतिग्रह।

छठे प्रश्न का उत्तर ५ वें प्रश्न की उपपत्ति से ही हो जायगा क्योंकि शीघ्रगतिग्रह और मन्दगतिग्रह में एक को ग्रह और दूसरे को रवि मानकर ५ वें श्लोक की उपपत्ति केवल से ग्रह और रवि के ज्ञान हो जायगे॥ ७-८ ॥

इदानीमन्यान् प्रश्नानाह

प्रत्युदयं प्रतिपादं ग्रहभुक्तिं वेत्ति यो ग्रहाभ्युदयात् ।
बहुधा करोति तेभ्यो भावर्त्ताद्यं स तन्त्रज्ञः ॥ ९ ॥

वि भा—य. ग्रहाभ्युदयात् (ग्रहसावनात्) प्रत्युदयं प्रतिपाद ग्रहभुक्ति (ग्रहगति) वेत्ति (जानाति) तेभ्यो भावर्त्ताद्य (नक्षत्रभगणाद्यम्) बहुधा करोति स तन्त्रज्ञोऽस्तीति ॥ ९ ॥

अस्योत्तरार्थमुपपत्ति ।

अथ यदि युगकुदिनैर्युगग्रहसावनदिनानि लभ्यन्ते तदाऽहर्गणेन किमित्यनुपातेन समागतानि गतसावनदिनानि, भभ्रमोत्पन्नग्रह एतेनानीतेन फलेन हीनः कार्यस्तदा मध्यमग्रहो भवति । यस्य भगणैर्यो ग्रह आनीयते स तस्यैवोदयकालिको भवति, नक्षत्रपरिवर्त्तैरानीतो नक्षत्रौदयिककालिको भवति । तथा स इत्यश्विनीनक्षत्राणा प्रथम तदुदयकालिको ग्रहो भवति, अस्मादश्विन्यौदयिकाद् भगणात् यस्योदया शोध्यन्ते शिष्टस्तस्यैव मध्यमो भवति ततस्तद्गतिज्ञान नक्षत्रभगणादिज्ञान सुलभमिति ॥९ ॥

हि भा—जो व्यक्ति विशेष ग्रहसावन दिन से प्रत्युदय और प्रतिपद में ग्रहगति को जानते हैं और उनसे अनेक प्रकार नक्षत्र भगणादि को लाते हैं वे ज्योतिषी हैं ॥९॥

इसके उत्तर के लिये उपपत्ति ।

यदि युगकुदिन में युगग्रह सावनदिन पाते है तो अहर्गण म क्या इस अनुपात से गतसावनदिन आते है । इसको भभ्रम से जायमान ग्रह में घटाने से मध्यम ग्रह होते हैं । जिसके भगणों द्वारा जो ग्रह साधित होते हैं वे उन्ही के उदयकालिक होते हैं, नक्षत्रपरिवर्त्त (नक्षत्रभगण) से साधितग्रह नक्षत्र के उदयकालिक होते है, इस तरह अश्विनी नक्षत्रोदय कालिक ग्रह होते हैं । इस अश्विनी के उदयकालिक भगण में जिसके उदय (सावन) को घटाते हैं शेष उसी का मध्यम होता है इस पर से इस गति और नक्षत्र भगणादि ज्ञान सुलभ है ॥ ९ ॥

इदानीमन्य प्रश्नमाह ।

अन्यभगण-गुणाद्द्युगणात्प्रश्नाक्षराहतादथवा ।
कुरुते यो ग्रहमिष्टं सच्छेदगुणापवर्त्तज्ञ ॥ १० ॥

वि भा.—य (व्यक्तिविशेष) अन्यभगणगुणात् (साध्यग्रहेतरभगणगुणितात्) द्युगणात् (अहर्गणात्) अथवा प्रश्नाक्षराहतात् (प्रश्नकथितगुणकगुणितात् द्युगणात्) इष्ट (साध्य) ग्रह कुरुते स छेदगुणापवर्त्तज्ञ (हरगुणभजनपण्डित) अस्तीति ॥ १० ॥

उपपत्ति

साध्यग्रह =इग्र । अन्यग्रह =अग्र, अन्यभगण × अहर्गण एतस्मादिष्टग्रहानयन कर्त्तव्यमस्ति ।

अथ युगकुदिनैरन्यग्रहभगणा लभ्यन्ते तदाऽहर्गणेन किमित्यनुपातेनान्यग्रह-स्तत्स्वरूपम् $= \frac{\text{अग्रभ} \times \text{अहर्गण}}{\text{युकु}}$, तथा यद्यन्यग्रहभगणैरन्यग्रहो लभ्यन्ते तदेष्टग्रह-भगणैः किं समागत इष्टग्रह $= \frac{\text{अन्यग्र} \times \text{इग्रभ}}{\text{अग्रभ}}$ अत्रान्यग्रहस्वरूपेणोत्थापनात्

$$\frac{\text{अग्रभ} \times \text{इग्रभ} \times \text{अहर्गण}}{\text{युकु} \times \text{अग्रभ}} = \text{इग्र छेदगमेन}$$

अग्रभ × इग्रभ × अहर्गण = युकु × अग्रभ × इग्र पक्षौ इग्रभ भक्तौ तदा

$$\text{अग्रभ} \times \text{अहर्गण} = \frac{\text{युकु} \times \text{अग्रभ} \times \text{इग्र}}{\text{इग्रभ}} = \text{हर} \times \text{इग्र} \text{ । } \frac{\text{युकु} \times \text{अग्रभ}}{\text{इग्रभ}} = \text{हर}$$

$$\text{ततः } \frac{\text{अग्रभ} \times \text{अहर्गण}}{\text{हर}} = \text{इग्र} \therefore \text{ सिद्धम् ।।}$$

हि. भा —जो व्यक्तिविशेष अन्यभगण गुणित अहर्गण से अथवा प्रश्न कथित गुणकगुणित अहर्गण से इष्टग्रह के साधन करते हैं वे गुणक और हार के अपवर्त्तन में पण्डित हैं ।। १० ।।

इसके उत्तर के लिये उपपत्ति ।

साध्यग्रह = इग्र । अन्यग्रह = अग्र । अन्यभगण × अहर्गण इस पर से इष्टग्रहानयन करना है ।

यदि युग कुदिन में अन्यग्रहभगण पाते हैं तो अहर्गण में क्या इस अनुपात से अन्य ग्रह आते हैं, $\frac{\text{अग्रभ.अहर्गण}}{\text{युकु}} = \text{अग्र}$ । तथा यदि अन्यग्रहभगण में अन्यग्रह पाते हैं तो इष्टग्रह-भगण में क्या आ गये इष्टग्रह $= \frac{\text{अग्र} \times \text{इग्रभ}}{\text{अग्रभ}}$ इसमें अन्यग्रह स्वरूप को उत्थापन देने से

$\frac{\text{अग्रभ इग्रभ अहर्गण}}{\text{युकु} \times \text{अग्रभ}} = \text{इग्र}$, छेदगम से अग्रभ इग्रभ अहर्गण = युकु अग्रभ इग्र दोनो पक्षों को इग्रभ से भाग देने से अग्रभ × अहर्गण $= \frac{\text{युकु अग्रभ इग्र}}{\text{इग्रभ}} = \text{हर} \times \text{इग्र}$ । $\frac{\text{युकु अग्रभ}}{\text{इग्रभ}} = \text{हर}$

$$\text{अत } \frac{\text{अग्रभ} \times \text{अहर्गण}}{\text{हर}} = \text{इग्र}$$

∴ सिद्ध हो गया ।। १० ।।

इदानीमन्यान् प्रश्नानाह

इष्टग्रहावमेभ्यो मध्यतिथिं तद्दिवौकसाभ्युदयात् ।
रविशीतगू च बहुधा यो वेत्ति स वेत्ति मध्यगतिम् ।। ११ ।।

वि भा—य इष्टग्रहावमेभ्य (इष्टग्रहाद्यवमाच्च) तद्दिवौकसाभ्युदयात् (तद्ग्रहोदयकालात्) मध्यतिथिं वेत्ति (जानाति) तथा रविशीतगू (सूर्याचन्द्रमसौ) वेत्ति स मध्यगतिं वेत्तीत्यहं मन्ये ।। ११ ।।

अत्रोत्तरार्थमुपपत्तिः ।

यथा रविज्ञानेनावमेन च चन्द्र ज्ञानं भवति स चन्द्रः सूर्योदयकालिको भवति तथैव ग्रहज्ञानेनावमज्ञानेन च चन्द्रानयनं कार्यं परमयं चन्द्रो ग्रहोदयकालिको भवेत् । तद्ग्रहज्ञानेनैव "साध्यस्य चक्रैर्गुणितः प्रसिद्धो भक्तो निजैः स्यादथवा प्रसाध्य" अनेन विधिना रविज्ञानं कृत्वा ततस्तिथिज्ञानं कार्यमिति ॥ ११ ॥

हि भा—इष्टग्रह और अवम से उस ग्रह के उदयकाल स (ग्रहोदयकाल म) जो मध्यम तिथि को जानता है और रवि, चन्द्र को जानता है वह मध्यगति को जानता है ॥११॥

इसके उत्तर के लिये उपपत्ति ।

जैसे रवि और अवम से चन्द्रज्ञान होता है पर यह चन्द्र सूर्योदयकालिक होते हैं। उसी तरह इष्टग्रह और अवम से चन्द्रज्ञान करना चाहिये पर यह चन्द्रग्रहोदयकालिक होंगे । उस ग्रह से 'साध्यस्य चक्रैर्गुणितः प्रसिद्धो भक्तो निजैः स्यादथवा प्रसाध्य' इस नियम से रवि ज्ञान करके तिथिज्ञान करना चाहिये ॥ ११ ॥

इदानीमन्यान् प्रश्नानाह ।

अपवर्त्तितगुणहारे यो द्युगणादीन् करोति संक्षेपात् ।
कल्पाब्जजन्मनो वा कृतात्कलेर्वा स तन्त्रज्ञः ॥ १२ ॥

सि भा—यो (व्यक्तिविशेषः) अपवर्त्तितगुणहारे संक्षेपात् कल्पाब्जजन्मनः (ब्रह्मदिनादितः) वा कृतात् (सत्ययुगादितः) वा कलेः (कलियुगादितः) द्युगणादीन् (अहर्गणादीन्) करोति (साधयति) स तन्त्रज्ञोऽस्तीति ॥ १२ ॥

अत्रोत्तरार्थमुपपत्तिः ।

आचार्येण स्वयमेव पूर्वं कल्पादितः कल्यादिं यावदहर्गणानयनं कृत्वा तत्र कल्यादितः इष्टदिनपर्यन्तमहर्गणमानीय संयोज्य कल्पादितः इष्टदिनपर्यन्तमहर्गणानयनं कृतमस्ति । कलियुगादितः कृतयुगादितो वाऽहर्गणज्ञानं सुगममेवेति ॥ १२ ॥

हि भा—जो व्यक्ति विशेष अपवर्त्तित गुण और अपवर्त्तित हर से ब्रह्मदिनादि स या सत्ययुगादि से वा कलियुगादि से संक्षेप से अहर्गण साधन करते हैं वे तन्त्रज्ञ हैं ॥१२॥

इसके उत्तर के लिये उपपत्ति ।

आचार्य स्वयं पहले कल्पादि से कलियुगादि तक अहर्गण साधन कर उसमें कलियुगादि से इष्टदिन तक अहर्गण साधन कर जोड़कर इष्टदिन तक अहर्गण लाये हैं । कृतयुगादि से या कलियुगादि से अहर्गणानयन सुलभ होंगे ॥ १२ ॥

इदानीमन्यं प्रश्नमाह ।

द्वित्रिगुणयो रवीन्द्वोर्योगादष्टोद्धृताज्ज्ञहीनाद्यात् ।
आनयतीष्टद्युचरं करामलकवत्स वेत्ति मध्यगतिम् ॥ १३ ॥

वि. भा.—द्वित्रिगुणयो रवीन्द्वो. (द्वाभ्यां त्रिभिर्गुणितयो सूर्याचन्द्रमसो) योगात्, ज्ञहीनाढ्यात् (बुधरहिताद्युक्तात्) अष्टभक्तात् य इष्टद्युचर (इष्टग्रह) आनयति (साध्यति) स करामलकवत् (हस्तस्थधात्रीफलवत्) मध्यगतिं वेत्तीत्यहं मन्ये ॥ १३ ॥

एतत्प्रश्नोत्तरार्थमुपपत्तिर्द्वयोर्वहूनामथवेत्याद्यनुसारेण कार्येति ।

हि. भा.—द्विगुणित रवि और त्रिगुणित चन्द्र के योग मे बुध को हीन या युत करके आठ से भाग फल से जो (व्यक्तिविशेष) इष्टग्रह के साधन करते हैं वे हाथ मे रखे हुये धात्रीफल की तरह मध्यगति को जानते है ॥ १३ ॥

इसके उत्तर के लिये उपपत्ति "द्वयोर्वहूनामथवा" इत्यादि के अनुसार करनी चाहिये ॥ १३ ॥

इदानीमन्यप्रश्नमाह ।

नवधो गोहत भूमिज गुरुशनि योगाद् दिगीशगुणिताभ्याम् ।
ज्ञसिताभ्यां युक्ताद् यो वेत्तीष्टखगं स तन्त्रज्ञः ॥ १४ ॥

वि भा.—नवधी गोहत भूमिज गुरुशनियोगात् (नव पञ्चनव-गुणित-कुज-गुरु-शनियोगात्) दिगीशगुणिताभ्या ज्ञसिताभ्या (दशैकादशगुणित बुधशुक्राभ्या) युक्ताद्य इष्टग्रह वेत्ति स तन्त्रज्ञोऽस्तीति ॥

एतस्योपपत्तिरपि "द्वयोर्वहूनामथवे" त्याद्यनुसारेण कार्येति ॥

हि भा.—नव पाच नव गुणित कुज, गुरु और शनि के योग से दश और ग्यारह गुणित बुध, शुक्र जोड़न से जो होता है उस पर से इष्टग्रह को जो जानते हैं वे ज्योतिषी हैं ॥ १४ ॥

इसके उत्तर के लिये उपपत्ति "द्वयोर्वहूनामथवा" इत्यादि के अनुसार करनी चाहिये ॥१४॥

इदानीमन्य प्रश्नमाह ।

रवि शशि कुज बुधयोगः पृथक् पृथक् त्रिगुणितैश्च तैर्हीनः ।
युक्तो वा तद्योगात् स्वधनगुरुं वेत्ति यः स तन्त्रज्ञः ॥ १५ ॥

वि भा.—रवि शशि कुजबुधयोग (रवि चन्द्र मङ्गल बुध योग) पृथक् पृथक् त्रिगुणितैस्तैर्हीनो युक्तो वा तदा स्वधनगुरु (बृहस्पति) पृथक् पृथक् ग्रहान् वा यो वेत्ति (जानाति) स तन्त्रज्ञोऽस्तीति ॥ १५ ॥

अस्योत्तरार्थं मुपपत्ति ।

रवि + चन्द्र + म + बुध + ३ रवि + ३ चन्द्र + ३ म + ३ बु = ४ रवि + ४ च + ४ म + ४ बु = यो

तथा ४ रगुभगण + ४ चयुभ + ४यु = म भगण + ४ बुयुभगण = यो$_1$

ततोऽनुपातो यद्यै "यो$_1$" भिर्गुरयुगभगणा लभ्यन्ते तदा योऽनेन किमि-

त्यनुपातेन समागतो गुरु $= \frac{\text{यो} \times \text{युगुभगण}}{\text{यो}_1}$

$= \frac{(४ \text{ रवि} + ४ \text{ च} + ४ \text{ म} + ४ \text{ बु}) \text{ युगुभगण}}{४ \text{ रयुभ} + ४ \text{ चयुभ} + ४\text{युमभ} + ४\text{युबुभ}} = \text{गुरु}$ ।

तथा चैतेन नियमेनैव रव्यादीना प्रश्नोक्तानामपि ज्ञान भवितुमर्हति। एवमेव त्रिगुणितैश्च तैर्हीन इनि प्रश्नस्याप्युत्तरमिति ॥ १५ ॥

अथ रवि शशि कुजबुध योग इत्यादेरुत्तरार्थमुपपत्ति ।

सर्वेषामेकजातीयानामिष्टग्रहाणा योग सर्वधनसञ्ज्ञकम्। इष्टगुणगुणित-प्रथमग्रहो यदि सर्वधने विशोध्यते योज्यते वा यो भवनि स ज्ञायते। तेनैवेष्टगुणेन गुणितो द्वितीयग्रहो यदि सर्वधने विशोध्यते योज्यते वा यो भवति सोऽपि ज्ञायते। एवमेवाभीष्टान् सर्वान् ग्रहान् तेनैव गुणेन गुणितान् सर्वधनाद्विशोध्य सयोज्य वा या या सख्या भवन्ति तास्ता पृथक् पृथक् ज्ञायन्ते, धनानि पृथक् पृथक् ग्रह-मानानि, यावन्त इष्टा ग्रहास्तत्पद गच्छमान वा, एतेनेद प्रतिफलति गच्छधनमिष्ट-गुणितैर्धनैर्ग्रहैर्युतोन सदृशक्तमस्ति पृथक् पृथक् तत्सहित कार्यं गुणकेन गुण ग्रहमान सर्वधने युतोन कृत तेन गुणवैन युतोन पद कार्य तेन हृत लब्ध सर्वधन भवति, अतोऽस्मादवशेषाणि पृथक् पृथक् ग्रहमानानि ज्ञायन्ते।

कल्प्यन्ते ग्रहमानानि $\text{ग्र}_1, \text{ग्र}_2, \text{ग्र}_3, \text{ग्र}_4$, इष्टगुण = इ, सर्वधनम् = स युतोने कृते सख्या $\text{ह}_1, \text{ह}_2$

तदा $\text{स} \pm \text{इ } \text{ग्र}_1 = \text{ह}_1, \text{स} = \text{इ } \text{ग्र}_2 = \text{ह}_2, \text{स} \pm \text{इ } \text{ग्र}_3 = \text{ह}_3$

सर्वयोगेन

$$\text{ह}_1 + \text{ह}_2 + \text{ह}_3 = \text{प स} \pm \text{इ } (\text{ग्र}_1 + \text{ग्र}_2 + \text{ग्र}_3 + \quad)$$

$$= \text{प स} \pm \text{इ स} = \text{स } (\text{ह} \pm \text{इ})$$

अत $\frac{\text{ह}_1 + \text{ह}_2 + \text{ह}_3}{\text{प} \pm \text{इ}} = \text{स}$ सिद्धम्।

यत $\text{स} \pm \text{इ } \text{ग्र}_1 = \text{ह}_1 \therefore \text{ग्र}_1 = \frac{\text{स} \sim \text{ह}_1}{\text{इ}}$ एव सर्वेषा ग्रहाणा मानानि स्यु ॥१५॥

हि भा — रवि, चन्द्र, मङ्गल, और बुध इनके योग मे त्रिगुणित उन्ही को पृथक् पृथक् जोडने और घटाने से जो होता है उससे गुरु (बृहस्पति) या अलग अलग ग्रहो के मान जो जानते हैं वे ज्योतिषी हैं ॥

इस प्रश्न के उत्तर के लिये उपपत्ति ।

यथा प्रश्नोक्ति से

रवि+चन्द्र+म+बु+३ र+३ च+३ म+३ बु=४ र+४ च+४ म+४ बु=यो

तथा ४ रयुभ+४ चयुभ+४ म युभ+४ बुयुभ=यो$_1$

तब अनुपात करते हैं कि यदि यो$_1$ इसमें गुरु के युगभगण पाते हैं तो यो इनमें क्या इस अनुपात से गुरु के प्रमाण आ जायगे ।

$$\frac{\text{यो}\times\text{युगुभगण}}{\text{यो}_1}=\frac{(४\ \text{रवि}+४\ \text{च}+४\ \text{म}+४\ \text{बु})\ \text{युगुभगण}}{४\ \text{रयुभ}+४\ \text{युचभ}+४\ \text{म युभ}+४\ \text{बुयुभ}}=\text{गुरु}$$

इसी तरह प्रश्नोक्त रवि आदि ग्रहों के ज्ञान भी हो जायगे। और हीन पक्ष में भी इसी तरह उपपत्ति करनी चाहिये ॥

रवि शशि मंगल बुध योग इत्यादि के उत्तर के लिए उपपत्ति

एक जातीय सब ग्रहों के योग सर्वधनसंज्ञक हैं । यदि सर्वधन में इष्टगुण गुणित प्रथम ग्रह को घटाते हैं या जोडते है तब जो होता है सो जानते हैं। उसी गुणक से गुणित द्वितीय ग्रह को यदि सर्वधन मे घटाते है या जोडते हैं तब जो होता है वह भी जानते हैं। इस तरह उसी गुणक से गुणित सब इष्टग्रहों को सर्वधन में घटाने से या जोडने से जो जो संख्या होती है वे सब जानते है, अत सब पृथक् पृथक् ग्रहमान है । जितने इष्टग्रह हैं वे पद या गच्छमान है। इससे यह सूचित होता है कि गच्छधन में जिस इष्ट गुणितग्रह को युत या हीन करने से व्यक्त है अलग अलग उसको जोडना चाहिए। ग्रहमान को इष्ट गुणक से गुण कर सर्व धन मे युत और हीन करते हैं तो उस गुणक करके पद को युत और ऊन कीजिये उससे भाग देने से लब्धिमान सर्वधन होते है । इस पर से शेषो के मान पृथक् पृथक् ग्रहमान होते है।

कल्पना करते हैं ग्रहो के मान ग$_1$, ग$_2$, ग$_3$, ग$_4$ [इष्टगुण=इ] सर्वधन=स

युत ऊन करने पर संख्या मे ह$_1$, ह$_2$

तब स$\pm$इ, ग$_1$=ह$_1$ । स$\pm$इ ग$_2$=ह$_2$ । स$\pm$इ ग$_3$=ह$_3$

सब के योग करने से

ह$_1$+ह$_2$+ह$_3$+ =प स$\pm$इ (ग$_1$+ग$_2$+ग$_3$+)

=प स इ स=स (प$\pm$इ)

अत $\frac{\text{ह}_1+\text{ह}_2+\text{ह}_3}{\text{प}\pm\text{इ}}$ =स ।

क्योंकि स$\pm$इ ग$_1$=ह$_1$ अत $\frac{\text{स}\sim\text{ह}_1}{\text{इ}}$ =ग$_1$ इस तरह सब ग्रहो के मान होते हैं ॥१५॥

इदानीमन्य प्रश्नमाह ।

सर्वग्रहयोगो वा सप्तगुणैस्तैः पृथक् पृथग्युक्तः ।
हीनो वा तद्योगात् के सर्वे स्वधनगुरवः ॥ १६ ॥

वि भा —वा सर्वग्रहयोग सप्तगुणैस्तैरेव सर्वग्रहै पृथक् पृथक् युक्तो हीनो वा तदा मर्वे स्वधनगुरव के इति प्रश्न ।

अस्योपपत्ति पूर्ववदेव स्फुटेति ।। १६ ।

हि भा — सब ग्रहो के योग मे सप्तगुणित उन ग्रहों को पृथक् पृथक् जोडने या घटाने मे जो होता है उसमे उन ग्रहो के मान क्या हैं यह प्रश्न है ।

इसके उत्तर के लिये उपपत्ति पूर्ववत् स्पष्ट है ।। १६ ।।

इदानीमन्य प्रश्नमाह ।

दशगुणित: शीतांशुस्त्रिगुणेन युतोऽन्यपर्ययाप्तेन ।
विदाहतेन मिश्र. शनिविहीनोऽथवान्यभगणाः के ।। १७ ।।

वि भा —शीताशु (चन्द्र) दशगुणित, त्रिगुणेनान्यभगणफलेन युत, विदाहतेन (बुधगणितेन) मिश्र (युक्त) शनि विहीनस्तदाऽन्यभगणा के? ।।१७।।

अस्योत्तरार्धमुपपत्ति ।

यदि युगग्रहभगणा इष्टगुणकुदिनैर्युता वा हीनास्तदा तेभ्योऽपि राश्यादिको ग्रह स एव भवति यतस्तेऽहर्गणगुणा कुदिनैर्भक्ता इष्टसमभगणाधिकोना पूर्वभगणा भवन्ति भगणशेष तु पूर्वसममेव । अतोऽभीष्टगुणगुणाना ग्रहभगणानामैक्यान्तर कुदिनाधिक तदा कुदिनैर्भक्तशेषमेव ग्रहभगणा कल्प्या येभ्यो राश्यादिग्रहोऽभीष्टगुणगुणग्रहयोगान्तसम एवोपपद्यते । अथान्यभगणग्रहो यदा धन सदाऽन्यभगणयुत शेषो इष्टग्रहभगणसमोऽस्तस्तदा शे+अभे=इभ. अभ=इभ —शे=इभ+युकुदि—शे । एव यदाऽन्यभगणभवोग्रहश्चर्णं तदा शे– अभ=इभ अभ=शे—इभ=शे+युकुदि—इभ ।

एतेनैव यथोत्तर कार्यमिति ।।

हि भा —चन्द्र को दश से गुणकर त्रिगुणित अन्य भगण फल करके जोडना, बुधगुणित जोडना शनि को घटा देना तब अन्य भगण क्या होता है ।। १७ ।।

इसके उत्तर के लिये उपपत्ति ।

यदि युगग्रहभगण म इष्टगुणगुणित कुदिन जोडने या घटाने से जो होता है उस पर से राश्यादिग्रह वही होता है क्योंकि उनको (युगग्रहभगण को) अहर्गण से गुणकर युगकुदिन से भाग देने से इष्टसमभगण करके युक्तहीन पूर्व भगण होते हैं और भगण शेष भी पूर्वतुल्य ही होता है। इसलिये यहा इष्टगुणगुणित ग्रह भगणो के योग या अन्तर कुदिन से अधिक हो तो कुदिन से भाग देना, शेष ही को ग्रहभगण मानना जिसमे राश्यादिकग्रह अभीष्टगुणगुणित ग्रहयोग या अन्तर ही उपपन्न हो, यदि अन्य भगणग्रह धन है तो अन्यभगण युत शेष इष्टग्रह-

भगण तुल्य होता है इसलिये शे+ग्रभ=इभ ∴ ग्रभ=इभ—शे=इभ+युकुदि—शे। ऐसे ही जब अन्यभगणोत्पन्न ग्रह ऋण है तब शे—ग्रभ=इभ

∴ ग्रभ=शे—इभ=शे+युकुदि—इभ इसी तरह उत्तर करना चाहिये ॥ १७ ॥

इदानीमन्यं प्रश्नमाह ।

भौमस्त्रिभुजाभ्यस्तस्त्रिगुणगुरूनोऽन्यभगणलब्धेन।
हीनो रविः समतो मन्दो वाऽन्यग्रहभगणाः के ॥१८॥

वि. भा.—भौमः (कुज.) त्रिभुजाभ्यस्तः (२३ गुणित) त्रिगुणगुरून. त्रिगुणितबृहस्पतिहीन) अन्यभगणलब्धेन हीन , रविः समेत (युक्तः) वा मन्दः (शनैश्वरः) समेतस्तदाऽन्यग्रहभगणा. के ॥१८॥

अस्योत्तरार्थमुपपत्ति १७ श्लोकोपपत्तिदर्शनेन स्फुटेति ।

हि. भा—मङ्गल को २३ गुणा देना, त्रिगुणित गुरु को घटा देना, अन्य भगणफल को घटाना रवि या शनैश्वर को जोड देना तब इस पर से अन्य ग्रहो के भगण क्या होंगे ॥१८॥

इसके उत्तर के लिये १७ श्लोक की उपपत्ति देखनी चाहिए ॥१८॥

इदानीमन्यान् प्रश्नानाह ।

सम्वत्सरादिशुद्धिं करोति बहुधा ततश्च दिनराशिम् ।
द्युगणाद्रविं च बहुधा दिवसक्षयशेषकाच्च रजनीशम् ॥१९॥

वि भा—सम्वत्सरादिशुद्धिं ततो दिनराशिं (अहर्गण) द्युगणात् (अहर्गणात्) रविं, ततः दिवसक्षयशेपकाच्च (अवमशेषाच्च) रजनीशम् (चन्द्र) य करोति स तन्त्रज्ञोऽस्तीति ।

एतस्योत्तरार्थमुपपत्ति

शुद्धिदिनज्ञान तु पूर्वकृतमेव ततो लघ्वहर्गणज्ञानम् कार्यं यथा

लघ्वहर्गणेऽवमानयनार्थं ७०३ चान्द्रदिनैरुद्र ११ मितान्यवमानि स्वल्पान्तरतः प्रकल्प्यानुपात कृतस्तद्यथा—

वर्षादिगततिथय = इति—अधिशेति एता रुद्रगुणा ७०३ भक्ता वर्षादिक्षयशेष-युतास्तदाऽवमानि $= \frac{११\ (\text{इष्टति—अधिशेति})}{७०३} + \frac{\text{वक्षशे}}{९६००}$

$$= \frac{११(\text{इति—अधिशेति}) + \frac{७०३\ \text{वक्षशे}}{९६००}}{७०३}$$

$$= \frac{११\ (\text{इति—अधिशेति}) + \frac{११\ \text{वक्षशे}}{९६००} + \frac{६९२\ \text{वक्षशे}}{९६००}}{७०३}$$

$$=\frac{११\left\{इति-\left(अधिशेति-\frac{वक्षशे}{६६००}\right)\right\}+६६२\ वक्षशे}{७०३}$$

$$=\frac{११\ (इति-शु)+\frac{६६२\ वक्षशे}{६६००}}{७०३}$$ इत्येव शोधितचान्द्रे (शुद्ध्यून चान्द्रे)

विशोध्यते तदा लघ्वहर्गणो भवेत् । एतद्वशतो रविज्ञान कार्यम् ।

ततो मध्यमरवितोऽवमशेषाच्च मध्यमचन्द्रानयनम् । यथा

इष्टदिने सूर्योदये सावयवाश्चान्द्राहः $=$ इति $+\frac{क्षयशे}{युक्ष्दि}$ एते द्वादशगुणास्तदा रविचन्द्रान्तराशा भवन्ति ते रवौ क्षिप्यन्ते तदा चन्द्रो भवतीति ॥

हि भा —वर्षादि शुद्धिज्ञान उस पर से अहर्गणज्ञान, अहर्गण मे रविज्ञान, रवि और क्षयशेष से चन्द्रज्ञान जो करते है वे तत्वज्ञ हैं ॥

इसके उत्तर के लिए उपपत्ति

शुद्धिदिनज्ञान तो पहले किया जा चुका है । इससे (शुद्धिदिन से) लघ्वहर्गण ज्ञान करते है ।

लघ्वहर्गण मे अवम के लिये ७०३ चान्द्र दिनो मे ११ अवम स्वल्पान्तर से मानकर अनुपात करते हैं यथा वर्षादिगतति = इष्टति — अधिशेति इसको ग्यारह से गुणकर ७०३ से भाग देकर जो हो उसमे वर्षादि क्षयशेष जोडने से अवम होता है ।

$$\frac{११\ (इष्टति-अधिशेति)}{७०३}+\frac{वक्षशे}{६६००}=अवम$$

$$=\frac{११\ (इति-अधिशेति)+\frac{७०३\ वक्षशे}{६६००}}{७०३}$$

$$=\frac{११\ (इति-अधिशेति)+\frac{वक्षशे\times ११}{६६००}+\frac{६६२\ वक्षशे}{६६००}}{७०३}$$

$$=\frac{११\left\{इति-\left(अधिशेति-\frac{वक्षशे}{६६००}\right)\right\}+\frac{वक्षशे\ ६६२}{६६००}}{७०३}$$

$$=\frac{११\ (इति-शुद्धि)+\frac{वक्षशे\ ६६२}{६६००}}{७०३}$$ इसको शोधित चान्द्र (शुद्धिरहित चान्द्र) मे

घटाने से लघ्वहर्गण होता है । इस पर से रविज्ञान सुलभ ही है ।

अब मध्यम रवि और क्षय शेष से मध्यम चन्द्रानयन करते है। इष्ट दिन के सूर्योदय काल मे सावयव चान्द्रदिन = इति + $\frac{\text{क्षयशे}}{\text{युकुदि}}$ इसको बारह से गुणने से रवि और चन्द्र के अन्तरांश होते हैं, इसको रवि मे जोड़ने से मध्यम चन्द्र होते है ॥१६॥

इदानीमन्यान् प्रश्नानाह

द्युगणाद् ग्रहा दिनाद् वा समाधिपसावनद्युमासेशौ ।
यः सो गणको होरेशं वारादि वेत्ति निजविषये ॥२०॥

स्पष्टार्थम् ।

एतेषामुत्तरार्थमुपपत्तय ।

दिनैस्त्रिंशतैक सावनमासो भवति । अतोऽहर्गणस्त्रिंशद्भक्तस्तदा लब्धा गता सावनमासास्ते द्विगुणिता कार्या यतस्त्रिंशद्दिनात्मके सावनमासे सप्तभक्ते द्वयमवशिष्यते वर्त्तमानमासेशार्थं सैका कार्यास्तत सप्तभक्ते रव्यादिमासमाधिपतिर्भवति, यत कल्यादौ मासपतिरर्क एवाऽऽसीदतो रव्यादितो गणना समुचितेति । तथा च ३६० दिनैरेक सावनवत्सर कल्पित प्राचीनैस्ततस्तैर्दिनैर्भक्तोऽहर्गणो लब्धा गतवत्सरास्ते त्रिगुणिता यत ३६० दिनात्मके एकस्मिन् सावनवर्षे सप्तभक्ते त्रयमवशिष्यते वर्त्तमानवर्षपत्यर्थं त्रिसगुणा सैकाश्च कार्या इति ।

होरेशज्ञानार्थम्

प्रथमा होरा दिनपतेर्द्वितीया दिनपते षष्ठस्यैव षष्ठ षष्ठ कालहोरेशो भवति, अतो द्वयोर्होरेशयोरन्तर पञ्च तेन होरा पञ्चगुणा सर्वे वारा भवन्ति यदि होरा सावयवास्तदा वर्त्तमानहोरेशानयनार्थं ते पञ्च गुणा सैका कार्यास्तत. सप्तभक्ते दिनपाद् होरेशो भवतीति । अत्र चतुर्वेदाचार्येणार्कोनलग्नभागा पञ्चदशभक्ता होरा भवन्तीति काललवान् सार्धद्विघटीभवान् पञ्चदशलवान् प्रकल्प्य क्षेत्रांशान्तरैरर्कलग्नान्तरभागैरनुपात कृत स च गणितयुक्तितो न युक्त इति शेष स्पष्टमिति ॥ २० ॥

हि भा —श्लोक का अर्थ स्पष्ट है ।

इन प्रश्नो के लिए उपपत्ति ।

तीस दिनो का एक सावन मास होता है इसलिए अहर्गण को तीस से भाग देन से लब्ध *गत सावन मास* होता है, उनको (*गत सावन मास को*) दो से गुण देना चाहिए क्योंकि तीस दिनात्मक सावन मास मे सात से भाग देने से दो शेष रहता है । वर्तमान मासपति के लिए उसमे एक जोडकर *सात* से भाग देने मे रवि आदि मासाधिपति होते हैं । कल्यादि मे मासपति रवि थे इसलिए रवि आदि गणना समुचित है ।

तथा ३६० दिनो के एक सावन वर्ष प्राचीनो ने माना है इसलिए उन दिनो से

अहर्गण म भाग देने से लब्ध गतवर्ष होते हैं इनको तीन से गुणना चाहिए क्योंकि ३६० दिनात्मक एक वर्ष म सात से भाग देने से शेष तीन रहता है। वर्त्तमान वर्षपति के ज्ञान के लिए तीन से गुण कर एक जोड़ना चाहिए।

होरेश ज्ञान के लिए विधि

प्रथम होरा दिनपति की होती है। द्वितीय होरा दिनपति म छठे ग्रह की होती है इस तरह छठे छठे ग्रह काल होरेश होते हैं इसलिए दो काल होरेश के अन्तर पाच है। अत होरा को पाच से गुणने से सब वार होते हैं यदि होरा सावयव होता हो तो वर्त्तमान होरेश के लिए उसको पाच से गुणा कर एक जोड़ देना चाहिए तब सात से भाग देने से दिनपति क्रम से होरेश होते हैं। यहा चतुर्वेदाचार्य रवि और लग्न के अन्तरांश का पन्द्रह से भाग देकर होरा कहते हैं। अढाई दण्ड से उत्पन्न कालांश को पन्द्रह अंश मानकर लग्न और रवि के अन्तरांश स अनुपात किया है जो गणित युक्ति से ठीक नहीं है। शेष विषय स्पष्ट है ॥ २० ॥

इदानीमन्यौ प्रश्नावाह ।

प्रतिकक्ष्यात खचरान् तस्माद्देशान्तर स्फुट वेत्ति ।
य. सोऽब्धिमेखलाया भुवि तन्त्रविदा भवेन्मुख्यः ॥ २१ ॥

वि भा—य प्रतिकक्ष्यात (कक्ष्याप्रकारात्) खचरान् (ग्रहान्) स्फुट देशान्तर वेत्ति (जानाति) स अब्धिमेखलाया भुवि (समुद्रवेष्टितपृथिव्या) तन्त्रविदा (ज्योति शास्त्रज्ञाना) मुख्य (प्रधान) भवेदिति ॥ २१ ॥

अत्रोक्तरार्थमुपपत्ति ।

यदि कुदिनै खकक्षा योजनानि लभ्यन्ते तदैकेन दिनेन किमित्यनुपातेन योजनात्मिका ग्रहगतिस्तत्स्वरूपम् $= \frac{\text{खकक्षा}}{\text{कुदि}}$ ततोऽनुपातो यद्येकदिनेनेय योजनात्मिका ग्रहगतिस्तदाऽहर्गणेन किमित्यनुपातेनागतानि गतयोजनानि

$= \frac{\text{योजनात्मकग्रग} \times \text{अहर्गण}}{१}$ अत्र योजनात्मकग्रहगतेरुत्थापनेन

$\frac{\text{खकक्षा} \times \text{अहर्गण}}{\text{कुदि}} = \text{गतयोजन}$

तदा $\frac{\text{ग्रहभगण} \times \text{गतयो}}{\text{खकक्षा}} = \text{भगणादि मध्यमग्रह}$ ।

$\frac{\text{गतयोजन}}{\frac{\text{खकक्षा}}{\text{गहभगण}}} = \frac{\text{गतयोजन}}{\text{ग्रहकक्षा}}$ भगणादि मध्यमग्रह ।

ततो ग्रहज्ञानेन देशान्तरज्ञान सुलभमेवेति ॥ २१ ॥

इति वटेश्वरसिद्धान्ते मध्यमाधिकारे प्रश्नविधिर्नामको नवमोध्याय समाप्त ॥

हि. भा —जो कक्षा प्रकार से ग्रहों को जानता है उस पर से (ग्रह पर से) स्पष्ट देशान्तर को जानता है। वह समुद्रवेष्टित पृथिवी में ज्योतिषियों में प्रधान है ॥ २१ ॥

इसके उत्तर के लिए उपपत्ति ।

यदि कुदिन में खकक्षा योजन पाते तो एक दिन में क्या इस अनुपात से एक दिन की ग्रह योजनात्मकगति आयी, $\frac{\text{खकक्षा}}{\text{कुदि}}$ = योजनात्मकगति । अब इस पर से अनुपात करते हैं कि यदि एक दिन में ग्रह योजनात्मक गति पाते हैं तो अहर्गण में क्या इस अनुपात से गत योजन प्रमाण आई, $\frac{\text{योजनात्मग्रग} \times \text{अहर्गण}}{१}$ = गतयोजन = $\frac{\text{खकक्षा} \times \text{अहर्गण}}{\text{कुदि}}$ तब अनुपात करते हैं कि यदि खकक्षा योजन में ग्रहभगण पाते हैं तो गतयोजन में इस अनुपात से भगणादि मध्यम ग्रह आते हैं।

$$\frac{\text{ग्रभगण} \times \text{गतयो}}{\text{खकक्षा}} = \text{भगणादि मध्यमग्रह} = \frac{\text{गतयो}}{\frac{\text{खक}}{\text{ग्रभगण}}} = \frac{\text{गतयोजन}}{\text{ग्रहकक्षा}}$$

ग्रह से देशान्तर ज्ञान सुलभ है ॥ २१ ॥

इति वटेश्वरसिद्धान्त में मध्यमाधिकार में प्रश्नविधि नामक नवम अध्याय समाप्त हुआ ॥



दशमोऽध्यायः

अथ दूषणानि

इदानीं ब्रह्मगुप्तोक्तिदूषणकथनार्थमवतरणमाह ।

दिव्यशास्त्रमपहाय यदन्यत्प्राह जिष्णुतनयो निजबुद्धया ।
तस्य शास्त्रलवमधीततयोऽहं दूषणानि कतिचित्कथयामि ॥१॥

वि भा—जिष्णुतनय (ब्रह्मगुप्त) दिव्यशास्त्र (देवादिप्रणीत शास्त्र) अपहाय (त्यक्त्वा) निजबुद्धया (स्वबुद्धया) अन्यद्यच्छास्त्र (भिन्न यच्छास्त्र) प्राह (कथितवान्) तस्य (ब्रह्मगुप्तस्य) शास्त्रलव (शास्त्रांश) अधीततया (अध्ययनत्वेन) अहं (वटेश्वर) कतिचिद्दूषणानि कथयामि (ब्रह्मगुप्तप्रणीतग्रन्थस्यांशमध्ययनत्वे-नाहं तत्रत्यानि कियन्ति दूषणानि कथयिष्ये) ॥१॥

हि भा—ब्रह्मगुप्त दिव्यशास्त्र (देव मुनि प्रणीत शास्त्र) को छोड कर अपनी बुद्धि से जो भिन्न शास्त्र कहा है उस शास्त्र के कुछ अंश को पढने के कारण मैं कुछ दोषों को कहता हूँ ॥१॥

इदानीं ब्रह्मगुप्तोक्तयुगचरणखण्डनं निर्दिशति

जिष्णुपुत्रकथितैर्युगाङ्घ्रिभिः खेचरा नहि यतः स्वपर्ययैः ।
भुञ्जते सममतो युगाङ्घ्रयः श्रीमदार्यभटकीर्तितः स्फुटाः ॥२॥

वि भा—यत (यस्मात्कारणात्) जिष्णुपुत्रकथितैः (ब्रह्मगुप्तोक्तैः) युगाङ्घ्रिभिः (युगचरणैः) खेचराः (ग्रहाः) स्वपर्ययैः समं (स्वभगणैस्तुल्यं) नहि भुञ्जते (नहि भोगं कुर्वते) अतः (अस्मात्कारणात्) श्रीमदार्यभटकीर्तिताः (श्रीमदार्यभटकथिताः) युगाङ्घ्रयः (युगपादाः) स्फुटाः (सूक्ष्माः) अत्र ग्रन्थे गृह्यन्ते ॥२॥

ब्रह्मस्फुटसिद्धान्ते ब्रह्मगुप्तोक्तयुगपदा अधोलिखिता सन्ति

युगदशभागो गुणितः कृतं चतुर्भिस्त्रिभिर्गुणस्त्रेता ।
द्विगुणो द्वापरमेकेन सङ्गुणः कलियुगं भवति ॥

एतदनुसारेण कृतयुगपाद =१७२८००० त्रेतायुगपाद =१२९६०००, द्वापर-युगपाद =८६४०००, कलियुगपाद =४३२००० एते युगपादाः सौरवर्षमानेन पठिताः सन्ति ।

ब्रह्मसिद्धान्ते ब्रह्मणा युगपादा अधोलिखितक्रमेण कथिता —

दिव्याब्दाना सहस्राणि द्वादशैव चतुर्युगम् ।
युगस्य दशमो भागश्चतुस्त्रिद्व्येकसङ्गुण ।
क्रमात्कृतयुगादीना पष्ठाश सन्धय स्वका ।

एतदनुसारेण चतुर्युगमानम्=१२००० दिव्यवर्षाणि
कृतयुगचरणमानम्= ४८०० दिव्यवर्षाणि
त्रेतायुगचरणमानम्= ३६०० "
द्वापर " " " = २४०० "
कलि " " " = १२०० "

यदि दिव्यवर्षाणि ३६० एभिर्गुण्यन्ते तदा सौरवर्षाणि भवन्ति तथाकृते सौरवर्षात्मकानि कृतादियुगचरणमानानि

कृतयुगचरणमानम्=४२०० × ३६० = १७२८००० सौरवर्षाणि
त्रेतायुगचरणमानम्=३६०० × ३६० = १२९६००० "
द्वापर " " " = २४०० × ३६० = ८६४००० "
कलि " " " = १२०० × ३६० = ४३२००० "

ब्रह्मगुप्तेन भास्कराचार्येण चेमान्येव युगचरणमानानि स्वस्वसिद्धान्ते कथितानि । ब्रह्मगुप्तोक्तानि युगचरणमानानि, भास्कराचार्योक्तयुगचरणमानार्थं निम्नलिखितानि पद्यानि सन्ति । यथा—

'खखाभ्रदन्तसागरैर्युगाग्नियुग्मभूगुणै क्रमेण सूर्यवत्सरै कृतादयो युगाङ्घ्रय । इत्यादि ब्रह्मगुप्तेन भास्कराचार्येण च सौरवर्षमानेन युगचरणमानानि कथितानि ब्रह्मणा दिव्यवर्षमानेन सर्वेषु सामञ्जस्यमस्ति न कश्चिद्दोष । सूर्यसिद्धान्तेऽपि ब्रह्मकथितसदृशान्यव दिव्यमानेन युगचरणमानानि कथितानि सन्ति । यथा—

तद्द्वादशसहस्राणि चतुर्युगमुदाहृतम् ।
सूर्याब्दसख्यया द्वित्रिसागरैरयुताहतै ।
सन्ध्यासन्ध्याशसहित विज्ञेय तच्चतुर्युगम् ।
कृतादीना व्यवस्थेय धर्मपादव्यवस्थया ॥

मनुस्मृतावपि दिव्यमानेन युगचरणानि पठितानि सन्ति । यथा—

चत्वार्याहु सहस्राणि वर्षाणा च कृत युगम् ।
तस्य तावच्छती सन्ध्या सन्ध्याशश्च तथाविध ।
इतरेषु ससन्ध्येषु ससन्ध्याशेषु च त्रिषु ॥

ब्रह्मसिद्धान्तोक्तयुगचरणमानान्येव सूर्यसिद्धान्तोक्तानि मनुस्मृत्युक्तानि च युगचरणमानानि सन्ति तानि दिव्यवर्षमानेन कथितानि सन्ति, ब्रह्मगुप्तकथितानि भास्करकथितानि च युगचरणमानानि सौरवर्षमानेनैतावता ब्रह्मगुप्तोक्तौ न कश्चिद्दोष सर्वेषु सामञ्जस्यमेवास्ति, मन्मते ब्रह्मगुप्तोक्त समीचीनमेवास्तीति ॥

युगचरणसम्बन्धे यस्यार्यभटस्य मत स्वीकृत्य ग्रन्थकारो ब्रह्मगुप्तमतं खण्डयति, तस्यैवार्यभटमतस्य खण्डनं ब्रह्मगुप्तेनेत्थ कृतं, यथा—

युगपादानार्यभटश्चत्वारि समानि कृतयुगादीनि।
यदभिहितवान् न तेषां स्मृत्युक्तसमानमेकमपि॥

महायुगस्य चतुर्थांशतुल्यानि कृतयुगादीनि चत्वारि युगचरणमानानि कथ्यन्ते आर्यभटेन, तेषु युगचरणेष्वेकमपि स्मृत्युक्तयुगचरणसम नास्ति, मनुस्मृत्यादौ कृतादयो युगपादा समानाः, अत आर्यभटोक्ताः समा युगपादा. स्मृतिविरुद्धा, तथा चार्यभट 'युगपादा ग ३ च' इति पौलिशसिद्धान्ते च दिव्यमानेन कृतादीनामब्दा मनुस्मृत्यादिवत्पठिताः।

तद्वाक्य च—

अष्टाचत्वारिंशत् पादविहीना क्रमात्कृतादीनाम्।
अब्दास्ते शतगुणिता ग्रहतुल्ययुग तदेकत्वम्॥

ब्रह्मगुप्तमतस्य खण्डन वटेश्वरेण यत्कृत तद्दुराग्रहपूर्णमिति॥

हि. भा.—जिस कारण से ब्रह्मगुप्तकथित युगचरणवश अपने अपने भगण को पूरा भोग नहीं करते हैं इसलिये आर्यभट कथित स्पष्ट युगचरण मैं ग्रहण करता हूँ।

उपपत्ति

ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त मे ब्रह्मगुप्त कथित युगचरण अधोलिखित है—

युगदशभागो गुणित. कृत चतुर्भिस्त्रिभिर्गुणस्त्रेता।
द्विगुणो द्वापरमेकेन सङ्गुणः कलियुग भवति॥

इसके अनुसार कृतयुगचरण मान=१७२८०००, त्रेतायु=१२९६०००, द्वापरयु=८६४०००, कलियुग=४३२०००, ये सौरवर्षमान से पठित हैं। ब्रह्मसिद्धान्त मे ब्रह्मा दिव्यवर्षमान के युगचरणो को कहते हैं। जैसे—

दिव्याब्दाना सहस्राणि द्वादशैव चतुर्युगम्। इत्यादि

इस नियम से चतुर्युगमान=१२००० दिव्यवर्ष

कृतयुगचरण=४८००, त्रेतायुच=३६००, द्वायुच=२४००, कयुच=१२०० यदि दिव्यवर्ष को ३६० इससे गुणते हैं तो सौरवर्ष हो जाते हैं अत सौरवर्षमान से कृतयुच=४८००×३६० = १७२८०००, त्रेयुच=१२९६०००, द्वायुच = २४००×३६०=८६४०००, कलियुच= १२००×३६०=४३२०००

ब्रह्मगुप्त और भास्कराचार्य ने अपने अपने सिद्धान्त मे ये ही युगचरणमान पठित किये हैं। ब्रह्मगुप्त कथित युगचरणमान पहले ही कहे जा चुके हैं। भास्कराचार्य लिखित युगचरणमान निम्नलिखित हैं।

'खखाभ्रदन्तसागरैर्युगाग्नियुग्मभूगुणैः। क्रमेण सूर्यवत्सरैः कृतादयो युगाङ्घ्रयः।'

इत्यादि ब्रह्मगुप्त और भास्कराचार्य ने सौरवर्षमान से युगचरण कहे हैं और ब्रह्मा दिव्यमान से इससे कुछ भी दोष नही है। सब मे सामञ्जस्य है।

सूर्यसिद्धान्त मे भी ब्रह्मकथित के सदृश ही है। यथा—

"तद्द्वादश सहस्राणि चतुर्युगमुदाहृतम्।" इत्यादि

मनुस्मृति मे भी दिव्यमान से युगचरणमान कहे गये हैं। यथा—

"चत्वार्याहु सहस्राणि वर्षाणा च कृत युगम्।" इत्यादि

युग चरण के विषय मे जिन आर्यभट के मत को स्वीकार कर ग्रन्थकार ब्रह्मगुप्त मत के खण्डन करते हैं उन्ही आर्यभट मत का खण्डन ब्रह्मगुप्त इस प्रकार करते हैं। यथा—

"युगपादानार्यभटश्चत्वारि समानि कृतयुगादीनि।" इत्यादि

महायुग के चतुर्थांश के बराबर कृतयुगादि चारो युगचरण के मान बराबर आर्यभट कहते हैं उनके कथित युगचरणों मे एक भी स्मृतिकथित युगचरण के तुल्य नही है, मनुस्मृति आदि ग्रन्थो म सब युग चरण समान नही हैं इसलिये आर्यभटोक्त समान चारो युगचरण स्मृति के विरुद्ध है। जैसे आर्यभट का वाक्य है—'युगपादा ग ३ च' इति।

पौलिशसिद्धान्त मे दिव्यमान से कृतादि युगचरणो के वर्ष मनुस्मृति आदि की तरह पठित हैं उनके वाक्य ये हैं।

"अष्टाचत्वारिंशत् पादविहीना क्रमात्कृतादीनाम्। इत्यादि

ब्रह्मगुप्त मत का खण्डन चटेश्वर जो करते हैं वह दुराग्रहपूर्ण है॥

इदानी ब्रह्मगुप्तोक्तयुग खण्डयते।

स्मार्तमस्य युगमेव चेत्कथ नो रवेरुपरि शीतदीधिति।
तत्स्मृत्युक्तवदिहापि नेष्यते हन्त! सापि युगकल्पना मृषा॥ ३॥
कल्पमेव युगमुच्यते त्वया तत्कथ युगमपेशल न ते।
प्राप्यते युगमिद स्वयंव नो त्वत्कृत मुनिगणैरसतत॥ ४॥

वि भा—चेत् (यदि) अस्य (ब्रह्मगुप्तस्य) युग (महायुग) स्मार्तम् (स्मृत्युक्त) तदैतन्मते शीतदीधिति (चन्द्र) रवेरुपरि (सूर्यादुपरि) कथ नो? "स्मृतिकारै सूर्यादुपरि चन्द्रोऽस्तीति कथ्यते, स्मृत्युक्तयुगमानस्वीकरणे ब्रह्मगुप्तमतेऽपि सूर्यादुपरि चन्द्रो भवितुमर्हति पर तथा तत्कृतग्रन्थे नास्तीति दोष" यदि स्मृत्युक्तवत् (स्मृत्युक्तानुसारम्) इह (अस्मिन् ब्रह्मगुप्तग्रन्थे) नेष्यते (न कथ्यते) तदा हन्त! (खेदे) सापि पूर्वोक्तापि युगकल्पना मृषा (व्यर्था) जाता यदि त्वया (ब्रह्मगुप्तेन) कल्पमेव युग (महायुग) उच्यते (कथ्यते) तदा ते (तव) तत् युग (कथितमहायुग) अपेशल (अतथ्य) कथ न, इद युग स्वयंव प्राप्यते (लभ्यते)

त्वत्कृत ग्रहभगणादिक मुनिगणै नो प्राप्यते तत (तस्मात् कारणात्) त्वत्कृतं असत् (अशोभनम्) इति ॥ ४ ॥

हि भा —यदि ब्रह्मगुप्त कथित युगमान स्मृति कथित युगमान है तब ब्रह्मगुप्त के मत से चन्द्रमा सूय से ऊपर क्यो नही है अर्थात् स्मृतिकार चन्द्रमा को सूर्य से ऊपर मानते हैं । स्मृति कथित युगमान स्वीकार करने से ब्रह्मगुप्त के मत म भी सूय से चन्द्रमा को ऊपर होना चाहिये पर वैसा ब्रह्मगुप्तकृत ग्रन्थ मे नही है, यह दोष है यदि इस ग्रथ (ब्रह्मसिद्धान्त) स्मृतिकथित युगमान नही कथित हैं तब तो युगकल्पना ही करना मिथ्या है । यदि कल्प ही को आप युग कहते हैं तब तो आपका युग अतथ्य क्यो नही है । इस युग को आप ही प्राप्त करते हैं मुनिगण इसको नही प्राप्त करते हैं अर्थात् मुनिगण इस युग को नही लेते हैं, जिसको आप लेते हैं इसलिये मुनिगणो के साथ विरोध होने के कारण आपका युग असत् है ॥ ४ ॥

पुनरपि ब्रह्मगुप्तोक्तयुगचरणान् निराकरोति

पुलिश रोमक सूर्य पितामह प्रकथितैर्मृतकल्पयुगाङ्घ्रिभि ।
नहि समा खलु जिष्णुसुतेरिता कथमपीह यतो न तत स्फुटा ॥ ५ ॥

वि भा —यत (यस्मात्) पुलिश रोमक सूर्य पितामहप्रकथितै (पुलिश-रोमकादिग्रन्थकारप्रोक्तै) मृतकल्पयुगाङ्घ्रिभि (मृतप्राययुगचरणै) समा (तुल्या) जिष्णुसुतेरिता (ब्रह्मगुप्तकथिता युगाङ्घ्रय) कथमपि नहि सन्ति तत (तस्मात् कारणात्) स्फुटा (सूक्ष्मा) नेति । अर्थाद्यद्यपि पुलिशरोमकसूर्यादिकथिता युगाङ्घ्रयो मृतप्राया सन्ति तथापि तत्तुल्या अपि ब्रह्मगुप्तोक्तयुगाङ्घ्रयो न सन्ति तेनैव कारणेन ब्रह्मगुप्तोक्तयुगाङ्घ्रय सूक्ष्मा न सन्ति । यदि पुलिशरोमकादि-कथितयुगाङ्घ्रयो मृतकल्पा सन्ति तदा तत्तुल्यब्रह्मगुप्तोक्त युगचरणेऽपि तत्र सूक्ष्मताभावोऽत्र आचार्यकथनमिति शोभन न प्रतिभाति । सूर्यकथितयुगचरण एव ब्रह्मगुप्तेन स्वीकृतास्तदा कथ सूयकथितयुगचरणतुल्या ब्रह्मगुप्तोक्ता युगचरणा न सन्तीत्याचार्येण कथ्यन्ते । पितामहसिद्धान्तेनापि न कश्चिद्विरोधोऽस्तीति ॥ ५ ॥

हि भा —जिस हेतु से पुलिश रोमक सूर्य पितामह ग्रथकारो ने जिन मृतप्राय (मुर्दा के बराबर) युग चरणो को कहे हैं उनके बराबर ब्रह्मगुप्त कथित युगचरण नही है, इस कारण से उनके कथित युगचरण स्पष्ट (सूक्ष्म) कथमपि नही हैं अर्थात् यद्यपि पुलिशरोमक सूर्यादि कथित युगचरण मुर्दा के बराबर हैं तथापि उनके बराबर भी ब्रह्मगुप्तोक्त युगचरण नही है इसलिये सूक्ष्म नही है । यहा मुझे कहना है कि जब पुलिश रोमकादि आचाय कथित युगचरण मृतप्राय है तब तो ब्रह्मगुप्तोक्त युगचरण उनके बराबर होने पर भी सूक्ष्म नही हो सकता, इसलिये मुझे आचाय का यह कथन ठीक नही मालूम पडता है सूय कथित युगचरणो को ही ब्रह्मगुप्त ने अपने ग्रथ म लिखा है तब वटेश्वराचाय क्यों कहते है कि सूर्योक्त युग चरण के बराबर ब्रह्मगुप्तोक्त युगचरण नही है । पितामहसिद्धान्त से भी ब्रह्मगुप्तोक्ति मे कोई विरोध होना है ॥ ५ ॥

ब्रह्मगुप्तोक्तसन्ध्यामानं खण्डयति

मनुरपि यदि सन्ध्ययैकया स्याद् द्वितयमसद् द्वयमेव चेन्न चैका ।
निजमतिपरिकल्पितयाऽत्र सन्ध्या न च मनुना पुलिशेन वा स्मृतास्ता ॥६॥

वि. भा.—यदि मनुरपि (मनुप्रमाणमपि) एकया सन्ध्यया सिद्धोऽस्ति भवन्मते तदा द्वितयं (युगचरणप्रमाणं मनुप्रमाणं च) असत् (अशोभनम्) द्वयमेव चेच्छोभनं तदैका सन्ध्या न शोभना अर्थात्सन्ध्याद्वयं भवति तत्र भवद्भिर्ब्रह्मगुप्तैः "युगस्य दशमो भागश्चतुस्त्रिद्वयेकसङ्गुणः । क्रमात्कृतयुगादीनां षष्ठांशः सन्धयः स्वकाः" इत्यादिना सन्ध्याद्वयस्य ग्रहणं न कृतं केवलमेकस्या एव सन्ध्याया ग्रहणं क्रियते, युगचरणेषु मन्वन्तरादिषु सन्ध्याद्वयप्रमाणं योज्यते, एकस्याः सन्ध्याया ग्रहणे दोष इति, चेद्भवन्मते द्वयमपि "युगचरणमानं मनुमानञ्च" शोभनं तदैकसन्ध्याग्रहणं न युक्तं सन्ध्याद्वयमानयोजनेन तन्मानस्य समीचीनत्वात् । निजमतिपरिकल्पिता या सन्ध्या (स्वबुद्धिकल्पिता या सन्ध्या) ता मनुना पुलिशेन वा स्मृता (कथिता) अर्थादिता सन्ध्या भवत्कल्पिता एव नान्यैर्मन्वादिभिः कथिता इति ॥६॥

हि. भा.—यदि मनु का प्रमाण एक सन्ध्या से आपके मत से सिद्ध है तब दोनों (युग चरण और मनुप्रमाण ठीक नहीं है । यदि दोनों (युगचरण और मनुमान) ठीक है तो एक सन्ध्यामान स्वीकार करना ठीक नहीं है । सन्ध्या दो होती हैं । परन्तु युगस्य दशमो भागश्च-तुस्त्रिद्वयेकसङ्गुणः । क्रमात्कृतयुगादीनां षष्ठांशः सन्धयः स्वकाः' इत्यादि से आप (ब्रह्मगुप्त) ने दोनों सन्ध्यामान नहीं ग्रहण किया, केवल एक ही सन्ध्यामान ग्रहण किया है । परन्तु युग चरणों में और मनु प्रमाण में दोनों सन्ध्यामान जोड़ा जाता है, एक सन्ध्यामान जोड़ने से दोष होता है, यदि आपके मत से दोनों (युगचरणमान और मनुमान) ठीक है तो एक सन्ध्याग्रहण करना ठीक नहीं है । आप अपनी बुद्धि से जिस सन्ध्यामान की कल्पना करते हैं वह सन्ध्यामान न मनु से कहा गया है और न पुलिशाचार्य से कहा गया है अतः आपसे कथित सन्ध्यामान ठीक नहीं है ॥ ६ ॥

इदानीं पुनरपि युगचरणान् निराकरोति ।

चरणश्चतुरंशकः स्मृतो यो बत लोकेन दशांशकः क्वचित् ।
युगकल्पसमानवाच्यतानयतस्तत्स्फुटताभितः कृता ॥ ७ ॥

वि. भा.—चतुरंशकः (चतुर्थांशः) चरणो यः स्मृतः (कथितः) बत (अहो !) लोकेन (केनापि जनेन) क्वचित् (कुत्रचित्स्थले) दशांशकः (दशमांशः) कथितः । युगकल्पसमानवाच्यतानयतः (युगकल्पयोस्तुल्यत्वस्वीकारजनितदोषन्यायेन) अभितः (सर्वतोभावेन) तत्स्फुटता कृता (तत्सूक्ष्मता कृतेति) अर्थाद्यु-गस्य दशमो भागः इत्यादिना महायुगदशांशवशेन यानि युगचरणान्यभिहितानि तैर्युगकल्पतुल्यता स्वीकारजनितदोषस्य स्पष्टीकरणं कृतं तेन ब्रह्म-गुप्तेन । एकस्य दोषस्य युगकल्पयोस्तुल्यतास्वीकरणजनितस्य दोषान्तरेण महायुग-

दशाशवशेन कथितयुगचरणजनितदोषेण परिमार्जनं कृतमिति ब्रह्मगुप्तो पर्याक्षेप । वटेश्वराचार्येण कथ्यते यन्महायुगस्य चतुर्थांशतुल्यान्येव युगचरणानि भवितुमर्हन्ति तत्र ब्रह्मगुप्तेन दशाशवशेन युगचरणान्यभिहितानि इति तन्मते दोष एतेन दोषान्तरेण युगकल्पयोस्तुल्यत्वकल्पनाजनितदोषस्य स्पष्टीकरण ब्रह्मगुप्तेन क्रियते इत्याक्षिपतीति ब्रह्मगुप्तेन यस्यार्यभटमतस्य खण्डन "युगपादानार्यभटश्चत्वारि समानिष्टकृतयुगादीनि' यदभिहितवान्न तेषा स्मृत्युक्तसमानमेकमपि" श्लोकेनानेन क्रियते तदेवार्यभटमत स्वीकृत्य वटेश्वरेण ब्रह्मगुप्तमत खण्ड्यते महदाश्चर्यमिति ॥

हि भा—चतुर्थांश चरण को कहते हैं। युग चरण याने युग चतुर्थांश इसको कही पर दशांश कहा गया है इससे युग और कल्प के तुल्यता स्वीकार करने मे जो दोष था उसका स्पष्टीकरण किया गया है ब्रह्मगुप्त से, अर्थात् युगचरण महायुग का चतुर्थांश होना चाहिये परन्तु 'युगस्य दशमो भाग' इत्यादि से ब्रह्मगुप्त ने जो युगचरणमान कहे हैं ठीक नही है। एक दोष तो ब्रह्मगुप्त मे यह था कि युगमान और कल्पमान मे तुल्यता स्वीकार करना, दूसरे दोष 'युगस्य दशमो भाग इत्यादि से 'युगचरणो का मान स्वीकार करना" द्वारा उस दोष का स्पष्टीकरण करते हैं अर्थात् एक दोष का स्पष्टीकरण दूसरे दोष द्वारा ब्रह्मगुप्त ने किया है यह ब्रह्मगुप्त के ऊपर आक्षेप है। ब्रह्मगुप्त जिस आर्यभटमत का खण्डन 'युगपादानार्यभटश्चत्वारि समानिष्टकृतयुगादीनि। यदभिहितवान्न तेषा स्मृत्युक्तसमानमेकमपि' इस श्लोक द्वारा करते हैं उसी आर्यभटमत को स्वीकार कर वटेश्वराचार्य ब्रह्मगुप्त मत का खण्डन करते हैं यह बहुत आश्चर्य है ॥ ७ ॥

इदानी ब्रह्मोक्तसृष्टिप्रलयौ न समीचीनाविति निर्दिशति

जगदुत्पत्तिप्रलयौ कमलजनित उवाच यत्तदसत् ।
वेदाना नित्यत्वाच्छ्रुति वाक्याना गतिर्भवति ॥ ८ ॥

वि भा—कमलजनित (ब्रह्मगुप्त) जगदुत्पत्तिप्रलयौ यदुवाच (यत्कथितवान्) तदसत् (तदशोभनम्) वेदाना नित्यत्वात् (अपौरुषेयत्वात्) श्रुतिवाक्याना (वेदोक्तवचनाना) गतिर्भवति (आस्था भवति) वेदा पुरुषकृता न सन्ति तेन वेदोक्तवचनेषु लोकानामास्था भवतीति ।

उपपत्ति

"ग्रहर्क्ष देवदैत्यादि प्रतिकल्प चराचरम् । कृताद्रिवेदैर्दिव्याब्दै शतघ्नं सृज्यते मया" इत्यादि ब्रह्मोक्तस्य खण्डन क्रियतेऽनेन वटेश्वराचार्येण, सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयदि" त्यादि वेदोक्तवाक्यमाश्रित्याऽऽचार्येण कथ्यते यद्ब्रह्मदिनादावेव सर्वेषा भूस्थानामाकाशस्थाना जीवाना सृष्टिर्भवति तथा तद्दिनान्ते लयश्च भवति, ब्रह्मणा कथ्यते यद्ब्रह्मदिनाद्यनन्तर ४७४०० दिव्याब्देषु व्यतीतेषु ग्रहादीनामाकाशस्थाना सृष्टिर्भवति । वेदवाक्ये इति तु लिखित न वर्त्तते यद्ब्रह्मदिनादावेव ब्रह्मद्वारा ग्रहादिसृष्टिर्भवति । ब्रह्मणा यत्कथ्यते सूर्यसिद्धान्तेऽपि तथैवास्ति । यथा

"ग्रहर्क्ष देवदैत्यादि सृजतोऽस्य चराचरम् ।
कृताद्रिवेदा दिव्याब्दा शतघ्ना वेधसो गता ॥

मन्मते तु ब्रह्मकथनं समीचीनमेवास्ति वेदोक्तवचनस्य चर्चाऽऽचार्येण या कृता ब्रह्मोक्तौ तावता न काचिदापत्तिरिति विज्ञैर्विवेचनीयमिति ॥ ८ ॥

हि. भा.—ब्रह्मा ने संसार की उत्पत्ति और प्रलय जो कहा है वह ठीक नहीं है, वेदों के नित्यत्व के कारण वेद कथित वाक्यों में गति (आस्था) होती है ॥ ८ ॥

उपपत्ति

वटेश्वराचार्य "ग्रहर्क्षं देव दैत्यादि प्रतिकल्पं चराचरम् । कृताद्रिवेदैर्दिव्याब्दैः शतघ्नैः सृज्यते मया" इत्यादि ब्रह्मोक्त का खण्डन करते हैं। आचार्य का कहना है कि "सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्" इत्यादि वेदोक्त वचन से ब्रह्मदिनादि में भूस्थित और आकाशस्थित ग्रहादियों की सृष्टि होती है और ब्रह्मदिनान्त में उन सब का लय होता है" ब्रह्मा का कहना है कि ब्रह्मदिनादि के बाद ४७४०० इतने दिव्य वर्ष बीतने पर ग्रहादि की सृष्टि होती है, वेदवाक्य में यह तो लिखा हुआ नहीं है कि ब्रह्मदिनादि में ग्रहादि सृष्टि होती है। ब्रह्मा जो कहते हैं सूर्यसिद्धान्त में भी वैसा ही है। यथा—

ग्रहर्क्ष देवदैत्यादि-सृज्यतेऽस्य चराचरम् ।
कृताद्रिवेदा दिव्याब्दा. शतघ्ना वेधसो गताः ॥

हमारे विचार से ब्रह्मोक्त सृष्टि प्रलय ठीक ही है, वेदोक्त वचन से उसमें कुछ भी दोष नहीं आता है इस विषय को विज्ञ लोग स्वयं भी विचार करें ॥ ८ ॥

इदानीं ब्रह्मोक्तदिनमासवर्षहोरापतीन् खण्डयति

शीघ्रक्रमान्निरुक्ता होरादिनमासवर्षपा धात्रा ।
मन्ददिनार्कादिर्वेत्ति नवा तत्स्वरूपमपि ॥ ९ ॥

वि. भा.—धात्रा (ब्रह्मणा) मन्ददिनार्कादिः (मन्दगतिग्रहरव्यादिः) शीघ्रक्रमात् (शीघ्रगतिग्रहक्रमेण) होरादिनमासवर्षपाः (होरेशदिनेशमासेशवर्षेशा) निरुक्ता (कथिता.) तत्स्वरूपमपि (होरादीनां स्वरूपमपि) न वेत्ति (न जानाति) ॥९॥

उपपत्तिः

ब्रह्मसिद्धान्ते होरेशादि ज्ञानार्थमाचार्यकथित (शीघ्रक्रमादित्यादि) क्रमो न दृश्यते किन्त्वार्यभटीये आर्यभटेन होरेशादि ज्ञानार्थमयं क्रमोऽङ्गीकृतो यथा तद्वाक्यम् ।

सप्तैते होरेशाः शनैश्चराद्या यथाक्रमं शीघ्राः ।
शीघ्रक्रमाच्चतुर्था भवन्ति सूर्योदयाद् दिनपाः ॥

शीघ्रक्रमः कालहोरायामपि । शीघ्रक्रमाच्चतुर्था एव दिनपाः । तच्च कालहोरानुसारेणैव दिनाधिपत्यं, यतोऽहोरात्रे चतुर्विंशतिः कालहोराः तासु सप्तभिः क्षपितासु तिस्र एवावशिष्यन्ते ततश्चतुर्विंशत्याः परायाः परेद्युरादिभूताया आधिपत्यं शीघ्रक्रमाच्चतुर्थस्यैव हि युज्यत इति, आदिकालहोराधिपतेरेव दिनाधिपत्याच्चतुर्थ एव दिनाधिपतिः परेद्युः । एवं मासाधिपत्यमपि, वर्त्तमानसावनमासे य आद्यः कालहोराधिपः (तस्यैव) । एवमब्दाधिपतिश्च ।

अतएवाह सूर्यसिद्धान्ते

"लब्धोनरात्ररहिता लङ्कायामार्धरात्रिक ।
सावनो द्युगण- सूर्याद् दिनमासाब्दपास्तत ॥
सप्तभि क्षयित. शेष: सूर्याद्यो वासरेश्वर ।
मासाब्ददिनसख्याप्त द्वित्रिघ्न रूपसंयुतम् ।
सप्तोद्धृतावशेषौ तु विज्ञेयौ मासवर्षपौ ॥

यो हि विषयो ब्रह्मसिद्धान्ते नास्ति तत्खण्डनमाचार्येण क्रियते परन्तु तेषामेव (शीघ्रक्रमाद्धोरेशादीना) आर्यभटोक्ताना खण्डन न क्रियते इति महदाश्चर्यम् ॥६॥

हि. भा —मन्ददिन रव्यादि से शीघ्रगतिग्रह क्रम से होरेश, दिनेश, वर्षेश ग्रहा मे जो कहा गया है वे उनके स्वरूप को भी नही जानते हैं ॥ ९ ॥

उपपत्ति

ब्रह्मसिद्धान्त मे होरेशादि ज्ञान के लिये 'शीघ्रक्रमादित्यादि' क्रम नही देखते हैं किन्तु आर्यभटीय मे आर्यभट ने होरेशादि ज्ञान के लिये इस क्रम को स्वीकार किया है। जैसा कि उनका वाक्य है —'सप्तैते होरेशा' इत्यादि ।

काल होरा मे भी शीघ्र क्रम है। शीघ्र क्रम से चौथे ही दिनपति होते हैं। कालहोरा के अनुसार ही उसका दिनाधिपतित्व होता है। क्योकि अहोरात्र मे चौबीस काल होराए होती हैं। उनमे सात से भाग देने पर तीन ही शेष रहता है। इसलिये चौबीसवी होरा के बाद दूसरे दिन मे प्रथम होरा के आधिपत्य शीघ्रक्रम से चौथे ही उपयुक्त है। आदिकाल होराधिपति दिनाधिपति ही से दूसरे दिन मे चौथे ग्रह दिनाधिपति होते हैं। इसी तरह मासाधिपति और वर्षपति के लिये भी विचार करना।

अत सूर्यसिद्धान्त मे कहते हैं—

"लब्धोनरात्ररहिता" इत्यादि ।

ब्रह्मसिद्धान्त मे जो विषय नही कहा गया है उसका खण्डन आचार्य (वटेश्वर) करते हैं परन्तु शीघ्र क्रम से होरेशादि ज्ञान के लिये आर्यभटोक्त कथन के खण्डन नही करते हैं यह बहुत ही आश्चर्य का विषय है ॥ ९ ॥

इदानी कल्प खण्डयति ।

कल्पादौ यद्यर्क. कल्पान्ते भास्करि कथं न भवेत् ।
निजवचनव्याघातात्स्वबुद्धिकल्पः कृतः कल्पः ॥ १० ॥

वि भा.—कल्पादौ यदि अर्क (सूर्य) तदा कल्पान्ते भास्करि (शनैश्चर) कथं न भवेत्। इति निजवचनव्याघात् स्वबुद्धिकल्प (स्वबुद्धयनुसारकल्पित-कल्प) कल्प कृतस्तेनेति ॥ १० ॥

उपपत्ति-

कल्पान्ते सर्वे ग्रहा पातमन्दोच्चादय एकस्मिन्नेव सूत्रे प्रोता मणय इवोर्ध्वाधरक्रमेण स्थिता भवन्ति कल्पान्ते शनैश्चरो भवत्येव तावता कल्पे को दोष आगच्छतीति ग्रन्थकार (वटेश्वर) एव ज्ञातु शक्नोति खण्डनमिति वाग्वलमात्रमिति ॥

आर्यभटोऽपि मनुसन्धिसम युग कथयति यतस्तन्मते शखयुग एकमनु । अर्थात् द्विसप्ततियुगैस्तन्मते एको मनुर्भवति, वर्गाक्षराणि वर्गे, इत्याद्यार्यभटसङ्केतेन श=७०। ख=२ द्वयोर्योगेन शख=७२, आर्यभटेन द्विनगै ७२ युगैरेको मनु स्वीकृतोऽतस्तन्मते मनुसन्धिर्युगसमफलितार्थ इत्यनुमीयते ।

तन्मतेऽप्येकस्मिन् कल्पे चतुर्दश मनवोऽतस्तन्मतेनैककल्पमानम्=७२ यु × १४=१००८ यु आर्यभटोक्तवाक्य च ।

दिव्य वर्षसहस्र ग्रहसामान्य युग द्विषट्कगुणम् ।
अष्टोत्तर सहस्र ब्राह्मो दिवसो ग्रहयुगानाम् ॥ (कालक्रिया पा ८ श्लो)

अन्येपा ब्रह्म ब्रह्मगुप्तादीना मतेनैककल्पमान्=१४ मनव =१४×७१ यु=९९४ यु अत्र मनुसन्धिमान ६ यु योजनेन ९९४ यु+६ यु=१००० यु=१ कल्प=ब्रह्मदिनम् ।

इत्येव स्मृतिपुराणादावपि "चतुर्युगसहस्रेण ब्रह्मणो दिनमुच्यते" कथितमस्ति । अनयोर्मतयोर्मध्ये कतर मत समीचीनमित्येतस्य निर्णयोऽतीव कठिनोऽस्ति, तर्हि ग्रन्थकारेण (वटेश्वरेण) कल्पादौ यद्यर्क कल्पान्ते भास्करि" रित्यादिना यत्खण्ड्यते तन्मह्य न रोचते ॥ १० ॥

हि भा —कल्पादि म यदि रवि है तो कल्पान्त मे शनैश्वर क्या न होगे यह अपने वचन व्याघात से अपनी बुद्धि के अनुसार कल्प माना गया है ॥ १० ॥

उपपत्ति

कल्पान्त मे सब ग्रह और पात मदोच्चादि एक ही सूत्र मे ऊर्ध्वाध क्रम से स्थित रहते हैं । कल्पान्त म शनैश्वर भी रहते ही हैं इससे कल्प कल्पना म क्या दोष आता है इस विषय को वटेश्वराचार्य ही जान सकते हैं । यह खण्डन वाग्बल से है ।

आर्यभट भी युगसमान ही मनुसन्धि कहते हैं, क्योकि उनके मत म 'शख युग एक मनु' अर्थात् ७२ युग का एक मनु होता है 'वर्गाक्षराणि वर्गे' इत्यादि आर्यभट के सङ्केत से श=७०, ख=२ दोनो के योग करने से श ख=७२,

७२ युगा से आर्यभट एक मनु मानते हैं । ब्रह्मगुप्तादि आचार्य ७१ युग के एक मनु मानते है अत आर्यभटमत से एक कल्प के मान=१४×७२ यु=१००८ यु । आर्यभट भी एक कल्प मे चौदह मनु मानते हैं ।

आर्यभट के वचन हैं—

दिव्य वर्षसहस्र ग्रहसामान्य युग द्विषट्कगुणम् । इत्यादि

ब्रह्म-ब्रह्मगुप्त आदि आचार्यों के मत मे एक कल्पमान=७१ युग=१४ मनु
=१४×७१ यु=९९४ यु

इसमे मनुसन्धिमान ६ यु जोड देने से ९९४ यु+६ यु=१००० यु=१ कल्प= ब्रह्मदिन यही स्मृति और पुराणादि म भी 'चतुर्युगसहस्रेण ब्रह्मणो दिनमुच्यते' कथित हैं। इन दोनो मतो म कौन मत ठीक है यह कहना बहुत कठिन है। तत्र ग्रथकार (वटेश्वर) 'कल्पादौ यद्यर्कं कल्पान्ते भास्करि कथ न भवेत्।' इत्यादि से जो खण्डन करते हैं वह मेरे मत से ठीक नही है ॥ १० ॥

इदानीम् आर्यभटमतेन कल्पादौ वारो न समीचीन इत्येतत्समाधान करोति।

ओकारो दिनवारे ह्यतीतकल्पसद्युयुताद् द्युगणात्।
नासौ घटते यस्मादोङ्कारो विस्तरस्तस्मात् ॥११॥

वि भा—यस्मात्कारणात् अतीतकल्पद्युसयुताद् द्युगणात् (गतकल्पादिन-युतादहर्गणात्) दिनवारे (कल्पाद्यौदयिक गुरुदिने) असौ ओङ्कार (स्वीकार) न घटते तस्मादोङ्कारो विस्तर इति ॥११॥

उपपत्ति

आर्यभटेन स्वतन्त्रे 'गुरुदिवसात् भारतात् पूर्वं' मित्यनेन कल्पादौ गुरवार स्वीकृतस्तत्खण्डन ब्राह्मस्फुटसिद्धान्ते ब्रह्मगुप्तेन निम्नलिखितश्लोकेन कृतम्।

ओङ्कारो दिनवारो गुरुरौदयिकोऽस्य भवति कल्पादौ।
न भवत्यर्को यस्मादोङ्कारो विस्तरस्तस्मात् ॥

यस्मादस्यार्यभटस्योङ्कार (स्वीकार) कल्पादावौदयिको दिनवारो गुरुर्भवति रविर्न भवति तस्मादस्योङ्कार स्वीकारो विस्तर आधाररहितोऽर्थाद-प्रामाणिक (स्तर स्तरणमास्तरणम् विगत स्तरो यस्य स विस्तर इति)।

आर्यभटमतेन कलियुगारम्भात्पूर्व वर्त्तमानकल्पे ६ मनवो व्यतीता युगपादत्रय च। तन्मते ७२ युगैरेको मनु कृतादयश्च युगपादा सर्वे समा अतस्तन्मतेन कल्पादौ गतयुगानि=७२×६+३/४=४३२ ३/४=द्वापरान्ते कल्पाद् गतयुगानि, एतानि युगसावनदिवसै १५७७९१७५०० गुणितानि जात सावनाहर्गण।

४३२×१५७७९१७५०० + ३९४४७९३७५ × ३ अय सप्ततष्टो जातो द्वापरान्ते वार =५×५+३×३=२५+९=३४ पुन सप्ततष्टिते शेषम्=६ अय सैक कलियुगादौ वार =७=० अतो यदि गुरुवाराद् गणनारऽभ्यते तदा कलियुगादौ गतवार =० वर्त्तमानो गुरुरेव सिध्यत्यत आर्यभटमतेन कल्पादौ गुरुवार आयाति।

ग्रन्थकारेणाऽर्यभटमतस्य समाधान क्रियते परमेतत्समाधान न समीचीन। वस्तुत आर्यभटस्य मत न समीचीन ब्रह्मगुप्तेन यत् खड्यते तत्तथ्यमेवेति ॥११॥

हि भा—जिस कारण से गतकल्पादिनयुत अहर्गण से कल्पादि म औदयिक गुरुदिन

मे जो ओङ्कार (स्वीकार) कहा गया है सो नही घटता है इसलिए बहुत विस्तर ओङ्कार (स्वीकार) समझना चाहिये ॥११॥

उपपत्ति

आर्यभट ने अपने सिद्धान्त मे 'गुरुदिवसात् भारतात् पूर्वम्' इस युक्ति से कल्पादि मे गुरुवार किया है उसका खण्डन ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त मे ब्रह्मगुप्त ने निम्नलिखित श्लोक द्वारा किया है। "ओङ्कारो दिनवारो" इत्यादि ।

जिस कारण से आर्यभट का स्वीकार कल्पादि मे औदयिक दिन वार गुरु होते हैं रवि नही होते हैं इस कारण से इनका स्वीकार विस्तर (आधाररहित अर्थात् अप्रामाणिक) है ।

ब्रगुप्त अधोलिखित युक्ति से खण्डन करते हैं ।

आर्यभटमत से कलियुगारम्भ से पहले वर्त्तमान कल्प मे ६ मनु बीत गये हैं और तीन युगचरण और उनके मत से ७२ युग के एक मनु होते हैं, सब युग चरण बराबर होते हैं इसलिए उसके मत से कलि के आदि मे गतयुगमान $=७२\times६+\frac{३}{४}=४३२\frac{३}{४}=$ द्वापरान्त मे कल्प से गतयुग इनको युग सावन दिन से गुणने से सावनाहर्गण होते हैं ।

$$४३२\times१५७७९१७५००+\frac{१५७७९१७५००\times३}{४}=४३२\times१५७७९१७५००$$

$+३९४४७९३७५\times३$ इसको सात से भाग देने से द्वापरान्त मे वार होते हैं $५\times५+$ $१\times३=२५+९=३४$ इसको फिर सात से भाग देने से शेष $=६$ इसमे एक जोडने से कलियुगादि मे वार $=७=०$ इसलिए गुरुवार से गणना प्रारम्भ करते हैं तो कलियुगादि मे गतवार $=०$, वर्त्तमान वार गुरु ही सिद्ध होते हैं इसलिए आर्यभटमत से कल्पादि मे गुरुवार आते हैं यही ब्रह्मगुप्त का खण्डन है ।

वटेश्वराचार्य (ग्रन्थकार) आर्यभट मत का समाधान करते हैं पर वह समाधान ठीक नही है, वस्तुत आर्यभट मत ठीक नही है, ब्रह्मगुप्तकृत खण्डन ठीक ही है ॥११॥

इदानीं ब्रह्मगुप्त दूषयति ।

तिथिकरणधिष्ण्ययोगा ग्रहणादौ व्यभिचरन्ति दृष्टेन ।
रविशशिनोरज्ञानात्तिथेर्न पञ्चाङ्गमपि वेत्ति ॥ १२ ॥

वि. भा —रविशशिनो (सूर्याचन्द्रमसो.) ग्रहणादौ तिथिकरणधिष्ण्ययोगाः (साधिततिथिकरणनक्षत्रयोगा) दृष्टेन (प्रत्यक्षेण) व्यभिचरन्ति, तिथेरज्ञानात् (तिथिज्ञानाभावात्) स (ब्रह्मगुप्त)पञ्चाङ्गमपि(तिथिपत्रमपि)न वेत्ति (न जानाति) ब्रह्मगुप्तेन चन्द्रसूर्ययोर्ग्रहणकालिकतिथिस्पष्टीकरण सूर्यचन्द्रयोश्च तात्कालिकीकरण स्वसिद्धान्ते कृतमेव गणितागततिथ्यादीना वेधागतै. सह को भेदो भवति वटेश्वरेण न कथ्यते केवलमित्येव कथ्यते यद्वेधेन तत्रान्तरं पतति तिथ्यादितात्कालिकीकरण यथाऽन्यै· (सूर्यादिभि.) कृत तथैव ब्रह्मगुप्तेनापि कृत तदाऽन्यकृत-

तिथ्यादिषु दोषो नास्ति, केवल ब्रह्मगुप्तकृततिथ्यादावेव दोष. कथं भवतीत्यत्रा-ऽऽचार्योक्तकथनमेव प्रमाणं नान्यत्कारणं वक्तुं शक्यतेऽस्माभिरिति ॥ १२ ॥

हि भा —सूर्य और चन्द्र का ग्रहणादि मे तिथि, करण, नक्षत्र, योग प्रत्यक्ष के साथ व्यभिचरित होते हैं। तिथि के अज्ञान के कारण से ब्रह्मगुप्त पञ्चाङ्ग (तिथिपत्र) को भी नहीं जानते हैं। ब्रह्मगुप्त ने ग्रहणकाल म सूर्य और चन्द्र के तात्कालिकीकरण अपने सिद्धान्त मे लिखा है तात्कालिक रवि और चन्द्रवश से तिथ्यादि का भी स्पष्ट ज्ञान हो जाता है। तब वेधागत उनके मानो से गणितागत मानो मे क्या अन्तर पड़ता है यह विषय वटेश्वराचार्य नहीं कहते हैं, केवल इतना ही कहते हैं कि तिथ्यादि ग्रहण म व्यभिचरित होती है। जैसे सूर्यसिद्धान्तकारादि ने अपने अपने ग्रन्थ में ग्रहणकालिक रवि और चन्द्र के लिये तात्कालिकीकरण किया है वैसे ही ब्रह्मगुप्त न भी किया है, तब ब्रह्मगुप्त ही के मत का खण्डन क्यों करते हैं और इनके तिथ्यादि म क्या दोष है इसमे केवल वटेश्वराचार्य का कहना ही प्रमाण है कोई दूसरा कारण नहीं कह सकते हैं ॥

इदानीं पुनरपि ब्रह्मगुप्तस्य युगादि दूषयति ।

खब्रह्मोक्त्या घटते न जिष्णुसुतोक्तं युगादि किञ्चिदपि।
यस्मान्मृषैव तस्माद् ब्रह्मोक्तमिति यत्चकार तदसत् ॥ १३॥

वि भा —यस्मात्कारणात् जिष्णुसुतोक्त (ब्रह्मगुप्तोक्त) किञ्चिदपि युगादि (युगचरणमानादि) खब्रह्मोक्त्या (आकाशस्थस्य ब्रह्मणः कथनेन) न घटते अर्थादेकमपि युगचरणादिमानं ब्रह्मगुप्तोक्त ब्रह्मकथित युगादिमानैः सह न मिलति कस्मात्कारणात् मृषैव (मिथ्यैव) ब्रह्मोक्त (ब्रह्मकथित) इत्येव यत्चकार (युगचरणादिमान कृतवान्) तदसत् (तदशोभनम्) वटेश्वरेण कथ्यते यद ब्रह्मगुप्तेन यद्युगचरणादिमानमभिहित तद् ब्रह्मोक्त नहि ब्रह्मोक्तेन सहैकमपि न मिलति तेन ब्रह्मगुप्तोक्त युगादिमान न शोभनमिति ।

— उपपत्ति

युगचरणसम्बन्धे ब्रह्मगुप्तोक्त ब्रह्मोक्तवचनानि क्रमशो निम्नलिखितानि सन्ति—

खचतुष्टयरदवेदा रविवर्षाणां चतुर्युगं भवति ।
सन्ध्या सन्ध्यांशैः सह चत्वारि पृथक्कृतादीनि ॥
युगदशभागो गुणितः कृत चतुर्भिस्त्रिभिर्द्विगुणेनैव ।
द्विगुणो द्वापरमेकेन सङ्गुणं कलियुगं भवति ॥

तथा च ब्रह्मोक्तवचनम् —

दिव्याब्दानां सहस्राणि द्वादशैव चतुर्युगम् ।
युगस्य दशमो भागश्चतुस्त्रिद्व्येकसङ्गुणः ।
क्रमात् कृतयुगादीनां षष्ठांशः सन्धयः स्वकाः ॥

ब्रह्मगुप्तेन सौरवर्षमानेन युगचरणानि कथ्यन्ते ब्रह्मणा दिव्यवर्षप्रमाणेनैतावता ब्रह्मगुप्तोक्तौ न कश्चिद्दोष इति वटेश्वरेण व्यर्थमेव खण्ड्यते ॥ १३ ॥

हि भा—जिस कारण से ब्रह्मगुप्तकथित युगचरणादि मान कुछ भी ब्रह्मकथित युगचरणादि के साथ नहीं मेल खाता है, इसलिये ब्रह्मोक्त को जो कहते हैं वह मिथ्या (झूठ) है और वह ठीक नहीं है।

आचार्य (वटेश्वर) कहते हैं कि ब्रह्मगुप्त ने जो युगचरणादि मान कहा है वह ब्रह्म-कथित युगचरणादि मानों के साथ कुछ भी नहीं मेल खाता है इसलिये ब्रह्मगुप्त के कथन झूठ है और ठीक नहीं हैं।

उपपत्ति

युगचरणों के विषय में निम्नलिखित ब्रह्मगुप्त के वचन हैं। 'खचतुष्टयरदवेदा" इत्यादि।

निम्नलिखित ब्रह्मोक्त वचन है। 'दिव्याब्दाना सहस्राणि" इत्यादि।

ब्रह्मगुप्त सौरवर्षमान से युगचरण कहते हैं और दिव्यवर्षमान से ब्रह्मा जी कहते हैं इसले ब्रह्मगुप्त कथन में कोई दोष नहीं आता है, वटेश्वराचार्य व्यर्थ ही खण्डन करते हैं ॥ १३ ॥

इदानीं कलियुगादौ ब्रह्मगुप्तोक्तगतयुगचरणान् खण्डयति

युगपादान् जिष्णुसुतस्त्रीन् यातानाह कलियुगादौ यत्।
तस्य द्वापरपादो युगगतये वै स्फुटो नात ॥ १४ ॥

वि भा—जिष्णुसत (ब्रह्मगुप्त) कलियुगादौ (कलियुगचरणप्रारम्भे) यातान् (गतान्) त्रीन् युगपादान् (कृतत्रेताद्वापरयुगचरणान्) यत्प्राह (कथितवान्) तस्य (युगत्रयचरणस्य) द्वापरपाद (द्वापरयुगचरण) युगगतये (युगगत्यर्थमस्ति तेन तद्गणना न भवति) अतो ब्रह्मगुप्तस्याय पक्ष स्फुटो नेति।

उपपत्ति

आचार्येण कथ्यते यत्कलियुगादौ युगचरणत्रय व्यतीतमासीदिति ब्रह्मगुप्तेन यत्कथ्यते तच्छोभन नास्ति, यतो द्वापरयुगचरणकलियुगस्य गत्यर्थमस्ति, कले-रेक एव चरण। एकेन चरणेन कोऽपि चलितु न शक्नुयादतो द्वापरचरणस्य सतयुगचरणे गणना न भवितुमर्हति तेन ब्रह्मगुप्तकथन न समीचीनमिति। पर वटेश्वरेणापि पूर्वं लिखित यत्—

"कजन्मोऽष्टौ सदला समाययुस्तथा समामा मनवो दिनस्य षट्।
युगत्रिवृन्द सहदाद्रयस्त्रय कलेर्नवाग्निगुणा शकावधे ॥"

कलियुगादौ युगचरणत्रय व्यतीतमित्यनेन "वटेश्वरेण" अपि पूर्वं स्वीकृत-मेव तर्हि अ ब्रह्मगुप्तमतखण्डन कथ क्रियते इत्यादि ज्ञातु न शक्यते ॥

ब्राह्मस्फुटसिद्धान्ते ब्रह्मगुप्तेनार्योनिरितपद्धत्यार्यभटमत खण्ड्यते तत्प-क्षपातिना (आर्यभटपक्षपातिना) वटेश्वरेण तस्मिन्नेव विषये ब्रह्मगुप्तमत खण्ड्यते।

आर्यभटो युगपादास्त्रीन् यातानाह कलियुगादौ यत् ।
तस्य कृतान्तयंस्मात् स्वयुगाद्यन्तौ न तत् तस्मात् ॥

आर्यभट. कलियुगादौ त्रीन् युगपादान् यातान् कथितवान् । यच्च प्रसि तद्ग्रन्थतः । यस्मात् कारणात् तन्मते तस्य स्वयुगाद्यन्तौ तदेकस्यादिरन्यस्यान्त इति द्वौ कृतान्तः कृतयुगमध्ये भवतस्तस्मात् तद्युग न सत् ।

आर्यभटमतेन एकयुगान्तादन्यस्यारम्भात् कलियुगादिपर्यन्त त्रयोयुगपादाः

$$= \frac{३ \times ४३२००००}{४} = ३२४००००, \text{ आचार्य (ब्रह्मगुप्तमते च)}$$

$$\text{कृ} + \text{त्रे} + \text{द्वा} = \frac{४३२०००० \times ९}{१०} = ३८८८००० \text{ द्वयोरन्तरे वर्षाणि } ६४८०००$$

एतानि चाचार्यमतेन सस्याधिकत्वात् कृतयुगमध्येऽन्त आर्यभटोक्तयुगाद्यन्तौ कृतयुगान्त । इहाचार्येण स्वकृतयुगमध्ये आर्यभटोक्तौ युगाद्यन्तौ प्रतिपादितौ । तत्र यदि आचार्योक्तयुगादौ ग्रहाणा मेषमुखे स्थिति. स्यात् तदेदं खण्डनं युक्तियुक्तमन्यथा वाग्वलमेतदिति ज्योतिर्विदा स्फुटमेव ।

उभयोर्ब्रह्मगुप्तकृतखण्डनवटेश्वरकृत - ब्रह्मगुप्तमतखण्डनयोस्तुलना कृत्वा कस्य कथन समीचीनमिति सुधियो विभावयन्तु । मन्मते तु ब्रह्मगुप्तमतमत्र विषये समीचीन वटेश्वरेण विद्वेषबुद्धया खण्डयते ॥ १४ ॥

हि भा —ब्रह्मगुप्त ने कलियुगादि मे 'तीन युग चरण बीत गया था' यह जो कहा है सो ठीक नही है क्योंकि उन गत तीन युग चरणो मे द्वापर चरण युगगति के लिये है इसलिये द्वापरचरण की गणना उसमे नही होनी चाहिये ।

उपपत्ति

आचार्य का कहना है कि कलि के एक चरण होने के कारण वह चल नही सकता है क्योकि एक चरण से कोई भी नही चल सकता है । द्वापर युग चरण उसके दूसरे चरण का काम करता है, इसलिये व्यतीत युग चरणत्रय मे द्वापर की गणना नही होनी चाहिये । अत ब्रह्मगुप्त का मत ठीक नही है । लेकिन पहले वटेश्वराचार्य भी इस बात को स्वीकार कर चुके हैं । यथा "कजत्योऽष्टौ सदला." इत्यादि

यहा ब्रह्मगुप्तमत के खण्डन का कारण नही मालूम होता है ॥

ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त मे अधोलिखित क्रम से ब्रह्मगुप्त आर्यभटमत का खण्डन करते हैं; आर्यभट के पक्षपाती वटेश्वराचार्य उसी विषय मे उल्टे ब्रह्मगुप्त मत का खण्डन करते हैं । "आर्यभटो युगपादास्त्रीन्" इत्यादि ।

आर्यभट ने कलियुगादि तीन गत युग चरणो को कहा है । जो उनके ग्रन्थ से प्रसिद्ध है । जिस कारण उनके मत मे एक के आरम्भ से दूसरे का अन्त ये दोनो कृत युग के मध्य ही मे होता है, इसलिये वह युग ठीक नही है ॥

आर्यभटमत से एक युग के अन्त से द्वितीय के प्रारम्भ से कलियुगादि पर्यन्त तीन युगचरण $= \frac{४३२००००\times३}{४} =$ ३२४००००, ब्रह्मगुप्त के मत से

$$कृ + त्रे + द्वा = \frac{४३२००००\times९}{१०} = ३८८८००० \text{ दोनों के अन्तर में वर्ष} = ६४८०००$$

इतने वर्ष ब्रह्मगुप्त के मत में कृतयुग के मध्य में है, इसलिये आर्यभटोक्त युगाद्यन्त कृतयुगान्त है। यहा ब्रह्मगुप्त ने स्वकृत युगमध्य में आर्यभट कथित युगाद्यन्त को कहा है। यदि ब्रह्मगुप्त कथित युगादि में मेषादि में ग्रहों की स्थिति हो तब तो ब्रह्मगुप्तकृत खण्डन ठीक है अथवा नही।

आर्यभट मत के ब्रह्मगुप्तकृत खण्डन और ब्रह्मगुप्त मत के वटेश्वराचार्य द्वारा खण्डन इन दोनो में क्या ठीक है इसको पण्डित लोग विचार करें। मेरे विचार से इस विषय में ब्रह्मगुप्त मत ठीक है। वटेश्वर द्वेषबुद्धि से उनके मत का खण्डन करते हैं ॥ १४ ॥

लङ्कासमयाम्योत्तररेखायां भास्करोदये मध्याः।
जिष्णुसुतेनोक्तं यत्तत्स्फुटं विषुवतोऽन्यत्र ॥ १५ ॥
दिनवारादिप्रवृत्तिः पश्चादुज्जयिनी दक्षिणोत्तरायाः प्राक्।
चरदलसंस्कारवशान्न तत्स्फुटं गोलबाह्यस्य ॥ १६ ॥

वि. भा.—लङ्का समयाम्योत्तररेखाया भास्करोदये मध्या इति जिष्णुसुतेन (ब्रह्मगुप्तेन) यदुक्तं (यत्कथित) तत् विषुवत (विषुवद्देशात्) अन्यत्र (भिन्नस्थले) स्फुट भवेत्। उज्जयिनी दक्षिणोत्तराया (अवन्तिसमरेखासूत्रात्) पश्चात् (पश्चिमदेशे) प्राक् (पूर्वदेशे) चरदलसंस्कारवशात् दिनवारादिप्रवृत्तिर्गोलबाह्यस्य (गोलबहिर्भूतस्य गोलानभिज्ञस्य वा मते) भवति तत्स्फुटं (सूक्ष्म) नेति।

उपपत्ति.

अथ लङ्का समरेखातः पश्चिमे देशे देशान्तरघटीभिः पूर्वं वारप्रवृत्तिर्भवति, सूर्योदयः पश्चाद्भवति, पूर्वदेशे देशान्तरघटीभिर्वारप्रवृत्तिः पश्चाद्भवति; सूर्योदयः पूर्वं भवति। दक्षिणगोले चरखण्डासुभिः प्राक् दिनवारप्रवृत्तिरर्थात् सूर्योदयः पश्चाद्दिनवारप्रवृत्तिः पूर्वं भवति। उत्तरगोले चरखण्डासुभिः पश्चाद्दिनवारप्रवृत्तिः, सूर्योदयः पूर्वं भवत्यर्थाच्चरखण्डदेशान्तरघटीभिर्युतिवियुतिवशाद्दिनतदीशयोः स्पष्टकालो भवतीति।

एतेनाचार्येणापि पूर्वं "द्रष्टा क्षितिजे देशान्तरघटिकाभिरित्यारभ्योत्तरगोले पश्चाद्दिनोदयादित्याद्यन्त यावत्" विषयोऽयमेवाभिहितः। परमत्र ब्रह्मगुप्तकथितस्य तस्यैव (वटेश्वरेणापि स्वीकृतस्य) खण्डनं क्रियते। अत्र तु केवलमित्येव कथ्यते यत् "न तत्स्फुटं गोलबाह्यस्य", कारणमग्रिमश्लोके कथ्यते इति।

अत्र विषये ब्राह्मस्फुटसिद्धान्ते ब्रह्मगुप्तवाक्यम्—

लङ्कासमयाम्योत्तररेखाया भास्करोदये मध्या. ।
देशान्तरोनयुक्ता रेखाया प्रागपरदेशेषु ॥

लङ्कासमयाम्योत्तररेखायामर्थाल्लङ्कायाम्योत्तररेखाया ये तिष्ठन्ति तेषा भास्करोदये मध्यमरव्युदयकाले मध्यमा ग्रहा अहर्गणेन भवन्तीत्यर्थ । रेखाया प्रागपरदेशेषु च गणिता गताग्रहा देशान्तरफलेन क्रमेणोनयुतास्तदा स्वनिरक्षौदयकालिका भवन्ति । अत्रोदयान्तरसस्कारेण वास्तवा स्वनिरक्षोदये ग्रहा भवन्तीति भास्करेणोदयान्तरसस्कार आनीत इति । आर्यभटेन ग्रन्थद्वय रचित तत्र प्रथमग्रन्थेनौदयिको ग्रहो य आगच्छति तस्माद् द्वितीयग्रन्थागत आर्धरात्रिको ग्रहो दिनगतिचतुर्थांशेनोनो भवति, अर्थाद् द्वयोर्ग्रहयोरन्तरे ग्रहगतिचतुर्थांशकला भवन्ति यतोऽनयो कतर वास्तवमित्यार्यभटेन न निश्चितमतस्तन्मतेनैकमपि न स्फुटमिति ब्रह्मगुप्तेनार्यभटमत खण्डित तद्विरुद्धे वटेश्वरेण ब्रह्मगुप्तमत खण्ड्यते ॥ १५ ॥

हि भा—"लङ्कासमयाम्योत्तररेखाया भास्करोदये मध्या" इत्यादि ब्रह्मगुप्त ने जो कहा है वह विषुवत् रेखा से भिन्न स्थान मे स्फुट होता है, उज्जयिनी समरेखा सूत्र से पश्चिम देश मे और पूर्व देश म चर खण्ड सस्कारवश से जो दिनवार प्रवृत्ति कही गई है वह गोल शून्यो के मत मे है, वह सूक्ष्म नही है ।

उपपत्ति

लङ्का समरेखा से पश्चिम देश में देशान्तर घटी करके पहले वारप्रवृत्ति होती है, सूर्योदय पश्चात् होता है । पूर्वदेश मे देशान्तर घटी करके पीछे वारप्रवृत्ति होती है, सूर्योदय पहले होता है । दक्षिणगोल मे चरखण्ड काल करके पहले दिनवार प्रवृत्ति होती है, सूर्योदय पीछे होता है । उत्तरगोल मे चर खण्ड काल करके पश्चात् दिनवार प्रवृत्ति होती है सूर्योदय पहले होता है । अर्थात् चर देशान्तर घटी योग वियोगवश से दिन दिनपति का स्पष्टकाल होता है ।

वटेश्वराचार्य भी पहले "प्रष्टा क्षितिजे देशान्तरघटिकाभि" इत्यादि से "उत्तरगोले पश्चादिनोदयात्" इत्यादि तक यही बातें कही हैं लेकिन ब्रह्मगुप्त कथित उसी विषय का खण्डन यहा पर करते हैं । यहा केवल इतना ही कहते हैं कि "न तत्स्फुट गोलबाह्यस्य' इसका कारण आगे के श्लोकों मे कहते हैं ।

लङ्कासमयाम्योत्तर रेखा मे अर्थात् लङ्का याम्योत्तर रेखा म जो लोग रहते हैं उनके रव्युदयकाल म मध्यमग्रह अहर्गण से आते हैं । रेखा से पूर्व और पश्चिम देश में गणितागत ग्रह मे देशान्तर फल क्रम से उन और सहित करने से वास्तव अपने निरक्षोदयकालिक ग्रह होते हैं । इसम उदयान्तर सस्कार से अपने निरक्षोदय म वास्तव ग्रह होते हैं इसीलिये भास्कराचार्य उदयान्तर सस्कार लाये हैं ॥

आर्यभट ने दो ग्रन्थ बनाये प्रथमग्रन्थ से औदयिक ग्रह जो आते हैं उससे द्वितीय ग्रन्थागत

अर्धरात्रि का ग्रह दिनगति चतुर्थांश करके हीन आते हैं अर्थात् दोनों ग्रहों के अन्तर करने से ग्रहगति के चतुर्थांश कला होती है । इन दोनों ग्रहों (ग्रन्थद्वयानीत ग्रहों) में कौन ग्रह वास्तव है इसका निश्चय आर्यभट ने नहीं किया इसलिये उनके मत से एक भी ग्रह ठीक नहीं है—यह ब्रह्मगुप्त ने अपने सिद्धान्त में आर्यभट मत का खण्डन किया है । जिसके उत्तर में ग्रन्थकार (वटेश्वर) यहाँ ब्रह्मगुप्त मत के खण्डन करते हैं, यह खण्डन विद्वेष बुद्धि वश किया जाता है ।। १५ ।।

आर्यभटस्य वारादि दूषयति ब्रह्मगुप्त —
सूर्यादयश्चतुर्था दिनवारा यदुवाच तदसदार्यभट ।
लङ्कोदये यतोऽर्कस्यास्तमय प्राह सिद्धपुरे ।।

आर्यभटेन 'शीघ्रक्रमाच्चतुर्था भवन्ति सूर्योदयो दिनपा." इति स्वतन्त्रे लिखितम् च[१], बु[२], शु[३], र[४], कु[५], गु[६], श[७] । कक्षाक्रमेण ग्रहाणा संस्था ।

तत्र शीघ्रक्रमात् सूर्यादयो ग्रहा र, च, म, बु, गु, शु, श उपरिष्टा ग्रहा मन्दगतयोऽध स्था शीघ्रगतयो भवन्ति, ते च रवित शीघ्रक्रमादध स्थ ग्रहगणनया (विपरीतगणनया) रवेरनन्तर बुध इत्यादि गणनयेति स्फुटम् ।

अथ गोलपादे च तेनैवार्यभटेन 'उदये यो लङ्काया सोऽस्तमय सवितुरेव सिद्धपुरे' इत्युक्तम् । तेनायमर्थ सूर्यादयश्चतुर्था दिनवारा दिनपा भवन्तीति यदार्यभट उवाच तदसत् । यत स एव लङ्कोदये सिद्धपुरेऽर्कस्यास्तमय प्राह । अर्थाद्यदि लङ्कोदये वारादिस्तदा सिद्धपुरेऽपि कथ न स एव वारादिरत आर्यभटोक्तवारगणना न स्थिरा अथ चार्यभटरचितग्रन्थद्वये एकस्मिन् युगसावनदिनानि=१५७७९१७५०० लङ्कायामर्कोदये सृष्टि । अन्यस्मिन् युगसावनदिनानि=१५७७९१७८०० लङ्कायामर्धरात्रे सृष्टि । ग्रन्थद्वयतो वारगणनायामेक दिनमन्तर पतत्यत आर्यभटोक्तवारादिर्न समीचीन इति ब्रह्मगुप्तेन तन्मत खण्डितम् ।

आर्यभटपक्षपातिना वटेश्वरेण वारादिसम्बन्धे ब्रह्मगुप्तमत खण्डयते । वारादिसम्बन्धे ब्रह्मगुप्तमत समीचीनमेवेति सुधियो विभावयन्तु ।। १६ ।।

आर्य भटोक्त वारादि का ब्रह्मगुप्त खण्डन करते हैं—

सूर्यादयश्चतुर्था दिनवारा यदुवाच तदसदार्यभट ।
लङ्कोदये यतोऽर्कस्यास्तमय प्राह सिद्धपुरे ।।

आर्यभट ने 'शीघ्रक्रमाच्चतुर्था भवन्ति सूर्यादयो दिनपा' अपने सिद्धान्त में लिखा है—कक्षा क्रम से ग्रहस्थिति इस प्रकार है च, बु, शु, र, कु, गु, श शीघ्र क्रम से सूर्यादिग्रह र, सो, म, बु, गु, शु, श, उपरिस्थित ग्रह मन्दगतिग्रह, और अध स्थ ग्रह शीघ्रगति होते हैं । वे रवि से शीघ्र क्रम से अध स्थ ग्रह गणना के अनुसार रवि के बाद शुक्र उनके बाद बुध इत्यादि गणना क्रम से होते हैं । गोलपाद में उन्हीं आर्यभट ने 'उदये यो लङ्कायां

सोऽस्तमय सवितु सिद्धपुरे इस तरह कहा है। इसलिये सूर्यादि चतुर्थ दिनवार दिनपति होते हैं—यह जो आर्यभट ने कहा है सो ठीक नहीं है। क्योंकि उन्हीं आर्यभट ने लङ्कोदय में सिद्धपुर में अस्त कहा है। अर्थात् यदि लङ्कोदय में वारादि है तो सिद्धपुर में क्यों नहीं वारादि नहीं होगा इसलिये आर्यभटोक्त वार गणना ठीक नहीं है। आर्यभटरचित ग्रन्थद्वय में एक में युगसावनदिन=१५७७९१७५००, लङ्का सूर्योदयकाल में सृष्टि। दूसरे ग्रन्थ में युगसावन दिन=१५७७९१७८००, लङ्कार्ध रात्रिकाल में सृष्टि, ग्रन्थद्वय से वारगणना में एक दिन का अन्तर पड़ता है। इसलिये आर्यभटोक्त वारादि ठीक नहीं है। आर्यभट पक्षपाती ग्रन्थकार (वटेश्वर) यहा ब्रह्मगुप्त मत का खण्डन करते हैं। वस्तुत ब्रह्मगुप्तमत ठीक ही है। दुराग्रहवश खण्डन किया जाता है ॥ १६ ॥

इदानी ब्रह्मगुप्तोक्तसृष्ट्यादिकाल खण्डयति

तत्कालायनचलन भगणविशेषे प्रकल्पितं सवितु ।
तत्राशाश्चन्द्रादिग्रहे प्रदेयास्तत स्फुटा. सर्वे ॥ १७ ॥
अतएव विनष्टमति प्रागुदये भास्करस्य मेषादौ ।
कथयति शास्त्राज्ञानात्तत्रायनचलनमभिहित मुनिभि ॥ १८ ॥

वि भा—सवितु (सूर्यस्य) भगणविशेषे अयनचलन (अयनगति) प्रकल्पितम्, तत्र अशा (अयनाशा) चन्द्रादिग्रहे प्रदेया (अर्थादयनगतिना सर्वे चन्द्रादयो ग्रहा युक्ता कार्या) तदा सर्वे ग्रहा स्फुटा स्यु। अतएव विनष्टमति (भ्रष्ट बुद्धिको ब्रह्मगुप्त) भास्करस्य (सूर्यस्य) मेषादौ प्रागुदये शास्त्राज्ञानात् कथयति, तत्र (तस्मिन् स्थले) मुनिभि अयनचलन (अयनगति) अभिहित (कथितम्)।

आचार्येण (वटेश्वरेण) कथ्यते यद्ब्रह्मगुप्तेन "लङ्कासमयाम्योत्तररेखाया भास्करोदये मध्या" इत्यादि यत्कथ्यते तत्रायनगतिसस्कृतरव्युदये कथनमुचितमासीत् यतस्तत्र काप्ययनगतिस्तु भवेदेव तद्ग्रहण ब्रह्मगुप्तेन न कृतमतस्तन्मत न युक्तमिति। एतस्यैतत्कथन समीचीन प्रतिभातीति ॥१७-१८॥

हि भा—सूर्य के भगणविशेष में अयनगति कल्पित की गई है। वहा पर अयनाश चन्द्रादिग्रह में जोडने से वे सब ग्रह स्पष्ट होते हैं। इसलिए नष्ट बुद्धि वाले ब्रह्मगुप्त ने 'प्रागुदय भास्करस्य मेषादौ' यह शास्त्र के न जानने के कारण कहा है, वहा पर मुनियों से अयनगति कही गई है। वटेश्वराचार्य कहते हैं कि ब्रह्मगुप्त ने "लङ्कासमयाम्योत्तररेखाया भास्करोदये मध्या" यह जो कहा है। वहा अयनगति सस्कृत रव्युदय कहना उचित था, क्योंकि वहा पर कुछ भी तो अयनगति होगी, परन्तु वे उसका ग्रहण नहीं किए इसलिए उनका मत ठीक नहीं है। इनका यह कथन ठीक मालूम पडता है। वहा पर अयनगति अनिर्वाच्य रही होगी जिसका ग्रहण करना अतीव दुर्घट था इसलिए वहा पर अयनगति सस्कार नहीं किये मुझ को तो यही मालूम होता है ॥१७-१८॥

इदानी ब्रह्मगुप्तोक्तकल्पगत गतयुगचरणादच खण्डयति

न समा युगकल्पा कल्पादिगत कृतादियातश्च ।
ब्रह्मोक्तं जिष्णुसुतो नातो जानाति मध्यगतिम् ॥१९॥

वि भा.—युगकल्पा कल्पादिगत (कल्पगतवर्षमान) कृतादियात (सत्ययुगादि गतयुगचरणमान) ब्रह्मोक्तैः (ब्रह्मकथितैः) समा (तुल्या) न सन्ति, अतोऽस्मात् कारणात् जिष्णुसुत (ब्रह्मगुप्त) मध्यगति न जानातीति। वटेश्वराचार्येण कथ्यते ब्रह्मगुप्तकथित युगकल्प-कल्पगत-गतयुगचरणमानानि, ब्रह्मकथितैस्तैस्तुल्यानि न सन्ति तेन ब्रह्मगुप्तमत न शोभनम्।

उपपत्ति

ब्रह्मणा सृष्टिकाल (४७४०० दिव्यवर्षाणि) कथितोऽस्ति, ब्रह्मगुप्तेन सृष्टिकालो नाभिहितोऽत कल्पगतवर्षे तु पार्थक्य भवेदेव। ब्रह्मगुप्तेन युगमानानि सौरवर्षमानैर्ब्रह्मणा दिव्यवर्षमानैः कथ्यन्ते तयो सामञ्जस्य भवेदेव। ब्रह्मणा कियन्ति युगचरणानि गतानि तत्र स्पष्टीकरण न क्रियते, ब्रह्मगुप्तेन त्रीणि कृतादियुगचरणानि गतानीति कथ्यन्ते। ब्रह्मोक्तस्य सूर्यसिद्धान्तोक्तेन सहैक्य वर्तते। वटेश्वराचार्यकथन कियत्स्वंशेषु तथ्य कियत्स्वंशेषु चातथ्यमिति विवेचनीय विवेचकैरिति ॥१६॥

हि भा—युगमान, कल्पमान, कल्पादिगतवर्ष, सत्ययुगादि युगचरण ब्रह्मगुप्त ने जो कहा है वे ब्रह्मकथित युग-कल्पादि मानो के साथ मेल नही खाते हैं याने दोनो (ब्रह्म ब्रह्मगुप्त) से कथित युगादिमानो म अन्तर पडते हैं इसलिये ब्रह्मगुप्त मध्यगति को नही जानते हैं ॥१६॥

उपपत्ति

ब्रह्मा ने सृष्टिकाल (४७४०० दिव्यवर्ष) कहा है, ब्रह्मगुप्त ने नही कहा है इसलिए कल्पगतवर्ष म अन्तर अवश्य होगा। युगमान ब्रह्मगुप्त सौर वर्षमान से कहते हैं और ब्रह्मा दिव्यवर्षमान से कहते हैं। इसलिये ब्रह्मगुप्त कथित युगमान म दोष नही कहा जा सकता है। *गत युगचरण के सम्बन्ध म ब्रह्मा स्पष्टीकरण नही किया है लेकिन ब्रह्मगुप्त साफ कहते हैं* कि कृतादि तीन युगचरण बीत चुके हैं, सूर्यसिद्धान्तोक्त के साथ ब्रह्मोक्त का ऐक्य है। इनमे कितने अंश म वटेश्वराचार्य का कथन ठीक है कितने अंश म नही ठीक है। इस बात के *ऊपर स्वय बुद्धिमानो को विचार करना चाहिए ॥१६॥*

इदानीं ब्रह्मगुप्तोक्तग्रहभगणान् खण्डयति

वास्तवभगणैर्द्युचरो यादृक् तादृङ् न कल्पितैर्भवति।
कल्पितभगणैर्द्युचर स्याद्यादृगस्तथैव स्यात् ॥२०॥

वि भा—द्युचर (ग्रह) वास्तवभगणैर्यादृक् (वास्तवयुगभगणैर्यादृशो भवति) कल्पितैर्भगणै (अवास्तवभगणै) तादृक् न भवति (तादृशो न भवति) कल्पितभगणै (अवास्तवभगणै) यादृशो ग्रह स्यात् तथैव स्यादर्थादवास्तवभगणैर्यादृशोऽवास्तवग्रहो भवितुमर्हति, तथैव भवतीति ॥२०॥

अत्रोपपत्ति।

आचार्यकथनस्य तात्पर्यमिदमस्ति यद्युगमानस्यासमीचीनत्वाद्युगपठितग्रहभगणा अपि समीचीना न भवितुमर्हन्ति तदाऽसमीचीन भगणद्वारा साधिता ग्रहा अपि न वास्तवा, अवास्तवभगणद्वारा ये ग्रहा आगच्छेयुस्तेऽवास्तवा

एवातो ब्रह्मगुप्तोक्तताऽवास्तवभगणसाधितग्रहाणामवास्तवत्वात्तन्मत न समीचीनमिति ॥२०॥

हि भा.—वास्तव भगण से जैसे ग्रह होते हैं अवास्तव भगण से वैसे नहीं होते हैं, अवास्तव भगण (कल्पित भगण) से जैसा ग्रह होना चाहिए वैसा ही होता है ॥२०॥

उपपत्ति

आचार्य (वटेश्वर) के कहने का तात्पर्य यह है कि युगमान के ठीक नहीं रहने से युगपठित ग्रह भगण भी ठीक नहीं हो सकता है। तब अशुद्ध भगण द्वारा जो साधित ग्रह होंगे वे भी अशुद्ध ही होंगे। अतः ब्रह्मगुप्त कथित कल्पित भगण (अवास्तव भगण) से साधित ग्रह के अवास्तवत्व होने के कारण उनका (ब्रह्मगुप्त का) मत ठीक है ॥२०॥

इदानीं कुजस्य भगणचतुष्टयकल्पनं खण्डयति

भगणाद्यं चतुष्कं कुजस्य भगणेपुदृगृक्षधियः।
शरगुणरसपञ्चाथवा द्वीपुशरागा द्विगो द्विनन्दा वा ॥२१॥
अनया दिशाऽसृजोऽन्ये भगणाः कल्प्याः सहस्रशोऽन्यस्य।
द्युचरस्योच्चस्य तथा परमार्था नात्र केचित्स्युः ॥२२॥

वि भा—कुजस्य (मङ्गलस्य) भगणेपुदृगृक्षधिय (५२७२) शरगुणरसपञ्च (५६३५) अथवा द्वीपुशरागा (७५५२) वा द्विगोद्विनन्दा. (९२९२) इति चतुष्क भगणाद्य जिष्णुसुतेन कल्पितम्। अनया दिशा (कथितपद्धत्या) असृजः (कुजात्) अन्यस्य द्युचरस्य (भिन्नग्रहस्य तथोच्चस्य) सहस्रशोऽन्ये भगणा. कल्प्या. (अर्थाद्यथा कुजस्य भगणचतुष्टय कल्पित तथैव कुजातिरिक्तान्यग्रहस्योच्चस्य वा सहस्रशो भगणा कल्पनीया) अत्र केचित् परमार्था न स्यु (अत्र किमपि परमतत्त्व नास्ति) इति ॥२१-२२॥

अत्रोपपत्ति

ब्राह्मस्फुटसिद्धान्ते मङ्गलस्य भगणचतुष्टय पठित नास्ति यथाऽऽचार्येण कथ्यते तर्हि केनाऽऽधारेण ग्रन्थकारणोक्तयुक्तभगणचतुष्टयमान कथयित्वा खण्ड्यते ब्रह्मगुप्तमतमिति वटेश्वराचार्य एव ज्ञातु शक्नोतीति ॥२१ २२॥

हि भा—मंगल के ५२७२ या ५६३५, अथवा ७५५२ वा ९२९२ ये चार तरह के भगण ब्रह्मगुप्त ने कहा है इस तरह मंगल से भिन्न ग्रह अथवा उच्च के हजारों भगण की कल्पना हो सकती है। इस तरह की भगण कल्पना मे कोई तत्व नहीं है ॥ २१-२२ ॥

उपपत्ति

ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त मे मंगल के चार तरह के भगण पठित नहीं देखने मे आते हैं। जैसे कि वटेश्वराचार्य कहते हैं। तब किस आधार पर आचार्य पूर्वकथित भगण चतुष्टय मान लिख कर खण्डन करते हैं, ये बातें वटेश्वर ही जान सकते हैं।

यह समझ मे नही आती है कि जिस विषय का उल्लेख ब्रह्मगुप्तसिद्धात म नही है उसका भी खण्डन किया जाता है। बहुत आश्चर्य की बात है ॥ २१ २२ ॥

इदानी ब्रह्मगुप्तोक्तदेशान्तरयोजन खण्डयति।

भूपरिधिः खखखशरा स्थूल· स्थाण्वीश्वरोज्जयिन्यासु।
अक्षान्तरेण सिद्धा योजनसंख्या न सम्यगत ॥२३॥

वि भा —खखखशरा (५०००) स्थूल (अवास्तव) भूपरिधि (भूगोल-परिधि) अतोऽस्मात्कारणात् स्थाण्वीश्वरोज्जयिन्यासु (एतेषु पूर्वोक्तप्रसिद्ध-नगरेषु) अक्षान्तरेण (अक्षांशान्तरेण) सिद्धा (साधिता) योजनसख्या सम्यक् (शोभना) नास्तीति।

उपपत्ति

अत्राचार्येण कथ्यते यद्ब्रह्मगुप्तेन स्थूल भूपरिधिमान ५००० योजनमित स्वीकृत्य चक्रांशे (३६०) भूपरिधियोजनानि लभ्यन्ते तदाऽक्षांशान्तरेण किमित्यनुपातेन यानि योजनान्यागच्छन्ति तानि न शोभनानि तेन ब्रह्मगुप्तमत न शोभनमिति, भूगोलपरिधियोजनमान तु सर्वेषा मते स्थूलमेव भवितुमर्हति तेन भूगोलपरिधिवशेन खण्डनमिद शोभन नास्तीति ॥२३॥

हि भा —भूपरिधिमान ५००० स्थूल है। इसलिये स्थाण्वीश्वर और उज्जयिनी नगरो म अक्षांशान्तर से सिद्ध जो योजनसख्या (देशान्तर योजनसख्या) ठीक नही है।

उपपत्ति

बटेश्वराचार्य कहते हैं कि ब्रह्मगुप्त भूगोलपरिधि का मान ५००० योजन स्थूल स्वीकार कर तीन सौ साठ (३६०) मे भूपरिधि योजन तो अक्षांशान्तर म क्या इससे योजनात्मक मान (देशान्तर योजन) आता है सो ठीक नही है क्योकि भूगोल परिधिमान स्थूल है। अत· ब्रह्मगुप्त मत ठीक नही है। भूगोल योजनमान प्रत्येक आचार्य के मत म स्थूल ही हो सकता है। इसलिये भूगोल परिधि सम्बन्ध से खण्डन करना ठीक नही मालूम पडता है।

इदानी ब्रह्मगुप्त दूषयति

भूपरिधेरज्ञानाद् व्यर्थं देशान्तरं तदज्ञानात्।
न स्फुटतिथ्यन्तज्ञान तन्नाशाद्ग्रहणयोर्नाश ॥२४॥
भूपरिधिखण्डवर्गैर्देशान्तरयोजनं· कृत तेन।
तदतीव गणितजाड्य प्रदर्शित जिष्णुतनयेन ॥२५॥

वि भा —भूपरिधे (स्पष्टभूपरिधे) अज्ञानात् (अविदितत्वात्) देशान्तरम्-(देशान्तरकलादिफल) व्यर्थं (निरर्थकम्) तदज्ञानात (देशान्तरकलादिफला-ज्ञानात्) स्फुटतिथ्यन्तज्ञान) न भवेत् तन्नाशात् (स्पष्टतिथ्यन्ताज्ञानात्) ग्रहणयो (सूर्यचन्द्रग्रहणयो) नाशो भवेदर्थाद् ग्रहणयोर्ज्ञान न भवेदिति ॥

स्पष्टभूपरिज्ञानाभावाद्देशान्तरफलस्य "स्पष्टभूपरिधियोजनैर्ग्रहगति-कला लभ्यन्ते तदा देशान्तरयोजनै किमित्यनुपातागतदेशान्तरसम्बन्धिकलात्मक-

फलस्य" ज्ञानमसम्भवम् । देशान्तरसम्बन्धिकलात्मकफलाज्ञानात्स्पष्टतिथ्यन्त ज्ञान न भवितुमर्हति । स्पष्टतिथ्यन्ताज्ञानाद् ग्रहणयो (सूर्यचन्द्रग्रहणयो) इतरेषा ग्रहणोपयोगिपदार्थाना ज्ञान न भवेदतो ब्रह्मगुप्तमत न युक्तमित्याचार्यकृतखण्डन समीचीनमस्ति ॥ २४ ॥

तेन (ब्रह्मगुप्तेन) भूपरिधिखण्डवर्गे (भूगोलपरिध्यर्धवर्गे) देशान्तरयोजनैश्च कृत (देशान्तरकलाफलमानीतम्) तदतीव गणितजाड्य (अत्यन्तगणितजडत्व) जिष्णुतनयेन (ब्रह्मगुप्तेन) प्रदर्शितम् ॥

उपपत्ति

ब्रह्मगुप्तेनाधोलिखितयुक्तया देशान्तरफलानयन कृत यथा—

भूपरिधि खखखशरा रेखा स्वाक्षान्तराग्रसङ्गुणिता ।
भगणाशहृता फलकृतहीना देशान्तरस्य कृति ।
शेषपदगुणितभुक्तिर्भूपरिधिहृता कलादिलब्धमृणम् ।
उज्जयिनी याम्योत्तररेखाया प्राग्धन पश्चात् ॥

उपर्युक्तपद्येन देशान्तरयोजनानयनस्यासमीचीनत्वात्ततो भूपरिधिवशेन देशान्तरकलाफलस्यासमीचीनत्वाच्च "उज्जयिनीयाम्योत्तरेखाया प्राग्धन" मित्यादिना य स्वदेशोदयकालिको ग्रहो भवेत्तस्याप्यसमीचीनत्वमेवातो ब्रह्मगुप्तमत न तथ्यम् ब्रह्मगुप्तेन स्पष्टभूपरिधिज्ञानमन्तरैव भूपरिधिवशेन देशान्तरकलाफल साधितमिति महती त्रुटि कृता तेन, वटेश्वराचार्येण युक्तियुक्तमेव खण्ड्यते इति ॥ २५ ॥

हि भा—स्पष्ट भूपरिधि के अज्ञान से देशान्तर कलादि फल निरर्थक है, देशान्तर कलादिफल के निरर्थक होने से (देशान्तर कलादिफल के अज्ञान से) स्पष्टतिथ्यन्त ज्ञान नही होता है । स्पष्टतिथ्यन्त के ज्ञान न होने से ग्रहण (सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहण) का ज्ञान नही हो सकता है अर्थात् दोनो ग्रहण नष्ट हो जायगा ॥

स्पष्ट भूपरिधि के अज्ञान से 'स्पष्ट भूपरिधि योजन मे ग्रहगति कला पाते हैं तो देशान्तर योजन से क्या" इस अनुपात से देशान्तर योजन सम्बन्धी कलात्मक फल का ज्ञान असम्भव है । देशान्तर कलात्मक फल के ज्ञान न रहने से स्पष्ट तिथ्यन्त का ज्ञान नही हो सकता । स्पष्टतिथ्यन्त के ज्ञान न होने से और जो ग्रहणोपयोगी विषय हैं उनका ज्ञान नही हो सकता है । तब तो ग्रहण का ज्ञान (स्पर्शादि का ज्ञान) हो ही नही सकता है । इसलिये ब्रह्मगुप्त का मत ठीक नही है । यह आचार्यकृत खण्डन ठीक है ॥२४॥

भूपरिध्यर्ध वर्ग से और देशान्तर योजन से देशान्तर कलात्मक फल ब्रह्मगुप्त से लाया गया है यह अत्यन्त गणित जडता उन्होने दिखलायी है ।

उपपत्ति

निम्नलिखित युक्तिया द्वारा ब्रह्मगुप्त ने देशान्तर फलानयन किया है—

"भूपरिधि; खखखशरा रेखा स्वाक्षान्तराग्र सङ्गुणिता ।" इत्यादि ।

उपरिलिखित पद्यो से देशान्तर योजनानयन के असमीचीनता के कारण उस पर से भूपरिधि योजनवश से देशान्तर कलात्मक फल की असमीचीनता के कारण "उज्जयिनी-

याम्योत्तररेखाया प्राग्यत" इससे जो स्वदेशोदयकालिक होता है वह भी ठीक नहीं होता है इसलिए ब्रह्मगुप्तमत ठीक नहीं है। ब्रह्मगुप्त ने बिना स्पष्ट भूपरिधि के भूपरिधि से देशान्तर फलानयन किया है यह बड़ी त्रुटि उन्होंने की है। वटेश्वराचार्य का यह खण्डन बहुत ठीक है ॥२५॥

इदानीं ब्रह्मगुप्तस्य सूर्यसंक्रान्तिं दूषयति

संक्रान्तिर्घर्मांशोः समस्तसिद्धान्ततन्त्रबाह्या हि ।
कुदिनानामज्ञानान्मन्दोच्चस्य स्फुटो नार्कः ॥२६॥

वि. भा.—घर्मांशोः (सूर्यस्य) संक्रान्तिः (संक्रान्तिकालः) समस्तसिद्धान्ततन्त्रबाह्या (सम्पूर्णसिद्धान्तग्रन्थतन्त्रग्रन्थबहिर्भूता) कथमिति चेत्तदाह। मन्दोच्चस्य कुदिनानां (युगकुदिनानां) अज्ञानात् (अविदितत्वात्) स्फुटोऽर्कः (स्पष्टसूर्यः) न भवति। अर्थाद्रविमन्दोच्चज्ञानं रवियुगपठितकुदिनेभ्यः कृतमुचितं तु युगपठितमन्दोच्चकुदिनेभ्यस्तज्ज्ञानं, तदा रविपठितयुगकुदिनेभ्यः साधितरविमन्दोच्चवशेन यद्रविमन्दफलं तदवास्तवं तेन संस्कृतो मध्यमरविः स्फुटरविरप्यवास्तव एव, एतदस्फुटरविवशेन च संक्रान्तिकालः सोऽप्यवास्तव एवेत्याचार्यकृतखण्डनम्। परमत्र विचारणीयं वस्त्विदं वर्त्तते यत्सिद्धान्तादिग्रन्थेषु सर्वत्रैव "पठितरवियुगकुदिनवशेनैव यत्र यत्र पठितयुगकुदिनस्यावश्यकता भवति तत्र तत्र" कार्याणि क्रियन्ते ग्रहादीनां स्वस्वकुदिनवशेन कार्याणि न क्रियन्तेऽतः पूर्वोक्तदोषो बहुषु स्थलेषु समागच्छति तर्हि केवलं रविसंक्रान्तावेव कथं दोषो दीयते। यदि ब्रह्मगुप्तकथितयुगस्याचार्यमतेऽसमीचीनत्वाद् युगमन्दोच्चकुदिनादीनामप्यसमीचीनत्वमतस्तत्साधितस्य मन्दोच्चस्यासमीचीनत्वात्स्फुटरविरप्यवास्तव एवागमिष्यति तेन तत्संक्रान्तिकालोऽप्यवास्तव एव। अयमपि दोषः सर्वत्रैव समागमिष्यति आचार्योक्तमिदं समीचीनं न प्रतिभातीति ॥२६॥

हि. भा.—सूर्य का संक्रान्तिकाल सम्पूर्ण सिद्धान्त और तन्त्रग्रन्थ से बहिर्भूत है क्योंकि रवि मन्दोच्च के कुदिन (युगकुदिन) के अज्ञान के कारण स्पष्ट रवि के ज्ञान नहीं होता है। वटेश्वराचार्य के कहने का अभिप्राय यह है कि रवि मन्दोच्च का ज्ञान रवि के युग पठित कुदिनों से किया गया है। लेकिन उचित तो है कि युगपठित मन्दोच्च कुदिन पर से उसका ज्ञान किया जाय, परन्तु सो नहीं किया जाता है। तब तो रविपठित युग कुदिन से साधित रवि मन्दोच्च से जो रवि मन्दफल होगा वह अवास्तव होगा, उससे मध्यम रवि के संस्कार करने से जो स्पष्ट रवि होते हैं वह भी अवास्तव ज्ञान हैं यही आचार्य खण्डन करते हैं परन्तु यहां विचारणीय विषय यह है कि सिद्धान्तादि ग्रन्थों में जहां जहां पठित युग कुदिन की आवश्यकता हुई है वहां वहां पठित रवि युग कुदिन ही से सब काम किए गये हैं। इसलिए पूर्वकथित दोष बहुत जगहों में आ सकता है तब केवल रविसंक्रान्ति ही में क्यों दोष होते हैं। यदि ब्रह्मगुप्तोक्त युगमान आचार्य के मत में असमीचीन रहता है तब तो मन्दोच्च युग कुदिनादि के ठीक होने के कारण उन पर से साधित मन्दोच्च की असमीचीनता के कारण

स्पष्ट रवि ठीक नहीं होते हैं इसलिए रविसंक्रान्ति काल भी ठीक नहीं है। यह दोष भी बहुत जगहों में होगा इसलिए आचार्य का कथन ठीक नहीं मालूम होता है ॥२६॥

पुनर्ब्रह्मगुप्तमतं खण्डयति

कल्पितभगणैश्चरः कल्पितकुदिनैः प्रकल्पितैश्च युगैः।
परिधीनामज्ञानाद् दृष्टिविरोधात्स्फुटा नातः ॥२७॥

वि. भा.—कल्पितभगणैः (अशुद्धभगणैः) कल्पितकुदिनैः (अशुद्धकुदिनैः) प्रकल्पितैश्च युगैः (अशुद्धयुगमानैः) युचराः (ग्रहाः) अतोऽस्मात् कारणात्स्फुटा न परिधीनां (स्पष्टभूपरिध्यादीनां) अज्ञानात् (अविदितत्वात्) दृष्टिविरोधात् (दर्शनायोगत्वात्)। अत्र स्पष्टभूपरिधिज्ञानं ब्रह्मगुप्तेन कृतमेव नहि। मध्यमभूपरिधिरपि ५००० योजनमितः स्थूल एव गृहीतो वास्तवमध्यमभूपरिधिरप्यविदित एवात. (परिधीनाम्) कथ्यते। यद्येतद् (वटेश्वर) मते ब्रह्मगुप्तोक्तं युगमानमवास्तवं तदा युगकुदिन, युगभगणमानान्यवास्तवमेवातस्तत्साधितग्रहा अप्यवास्तवा एव, परं ब्रह्मगुप्तकथितं युगमानमवास्तवमिति वटेश्वरेणैव कथ्यते नान्यैरिति ॥२७॥

हि. भा.—कल्पित भगणों (अशुद्ध भगणों) से कल्पित कुदिनों (अशुद्ध कुदिनों) से प्रकल्पित युगों (अशुद्ध युगों) से साधित ग्रह स्पष्ट नहीं होते हैं। क्योंकि परिधि (स्पष्ट भूपरिधि मध्यम परिधि) के अज्ञान के कारण और प्रत्यक्ष से विरोध होने के कारण स्पष्ट ग्रह नहीं होते ॥२७॥

स्पष्ट भूपरिधि का ज्ञान ब्रह्मगुप्त ने किया ही नहीं, मध्यम भूपरिधि भी ५००० योजन स्थूल ही ग्रहण की है इसलिए वास्तव मध्यम भूपरिधि भी अविदित ही है। यदि वटेश्वराचार्य के मत में ब्रह्मगुप्तोक्त युगमान अवास्तव है तब युग कुदिन, युग ग्रह भगण मान भी अवास्तव होगा इसलिए उन पर से साधित ग्रह भी अवास्तविक होंगे। लेकिन ब्रह्मगुप्तोक्त युगमान अवास्तविक है यह बात वटेश्वराचार्य ही कहते हैं, अन्य आचार्य नहीं कहते ॥२७॥

इदानीं ब्रह्मगुप्तोक्त-भूव्यासार्धं खण्डयति

त्यक्ते भूव्यासार्धे सहस्रप्रसंमिते गणितसौक्ष्म्यात्।
कर्त्तव्यं व्यासार्धं खनवमुनिरतस्त्वतिगणितजाड्यमिदम् ॥२८॥

वि. भा.—गणितसौक्ष्म्यात् (गणितसूक्ष्मत्वात्) सहस्रप्रसमिते (१००० तुल्ये) भूव्यासार्धे (भूव्यासखण्डे) त्यक्ते खनवमुनिः (७९०) व्यासार्धं कर्त्तव्यमर्थात् १००० एतत्तुल्ये भूव्यासार्धस्वीकरणे गणितसूक्ष्मत्वं विहाय किं ७९० व्यासार्धस्वीकरणमेव स्वत्कर्त्तव्यं भवेत्। अतोऽस्मात्कारणात् इदं (७९० एतत्तुल्यभूव्यासार्धं स्वीकरणम्। अतिगणितजाड्यम् (अतिशयगणितजड़त्व) अस्तीति, १००० एतत्तुल्यमेव भूव्यासार्धस्वीकरणं गणितसूक्ष्मत्वदृष्टितो ग्रहणमुचितमासीत्। तदपहाय ७९० एतत्तुल्यं यत्स्वीकृतं तद् भवद्गणितजाड्यमस्तीति ॥२८॥

हि. भा—एक हजार तुल्य भूव्यासार्धमान त्याग करने से गणितसूक्ष्मता के कारण ७६० एतत्तुल्य भूव्यासार्ध स्वीकार करना ही आपका कर्त्तव्य है यह तो अत्यन्त गणित-जड़ता है। अर्थात् १००० इतना भूव्यासार्ध गणितसूक्ष्मता को ख्याल से लेना चाहता था, उसको छोड कर ७६० इतना भूव्यासार्ध जो स्वीकार किया है यह तो आपकी गणित-जड़ता है ॥२८॥

इदानीं ब्रह्मगुप्तोक्तज्यानयनखण्डनमाह

जिनजीवासंग्रहः स्याद्रसाङ्कभागो भमण्डलस्य समः ।
यदभिहितवान् न तच्छरस्तत्र तत्स्फुटं मुनिसमस्तस्य ॥ २६ ॥
भमण्डलसमभागं परपुरुषवदाख्यात तत्र ।
याति यत समन्दो द्वितयं विबुध कथ भवति ॥ ३० ॥
नातोऽस्ति ज्यानियमः शरसौक्ष्म्यादन्तिवर्तनं युक्तम् ।
सप्तकशरे निवृत्तिर्जिष्णुसुतस्यैव युक्ततमा ॥ ३१ ॥

वि भा —भमण्डलस्य (क्रान्तिवृत्तस्य) रसाङ्कभाग (६६ अ श) जिन-जीवासग्रह (अर्थात् चक्रकलाया षण्णवतिभाग २२५ प्रथमचापमेतत्तुल्यचतु-र्विंशतिप्रमितचापाना तत्सम्यकज्याना सग्रह स्यात्) यदभिहितवान् (कथित-वान्) तत्र तच्छर (तेषा चापानामुत्क्रमज्यासग्रहो न स्यात्) तत् मुनिसमस्तस्य (मुनिकदम्बकस्य) स्फुट मतमस्त्यर्थादुत्क्रमज्यासग्रहोऽपि कार्य । तत्र (तस्मिन् स्थले) भमण्डलसमभाग (क्रान्तिवृत्तसमानखण्ड) परपुरुषवत् आख्यात (कथितम्) यतो समन्द (मन्दबुद्धियुक्त) द्वितय (मार्गद्वय) यात्यर्थादेकत्र भमण्डलस्य ६६ एतत्प्रमिता समाना कथिता द्वितीयस्थले भमण्डलस्य समविभागा एव कथिता इति भिन्ना भिन्नामुक्ति विलोक्याल्पज्ञ सन्देहमुपयाति, विबुध (पण्डित) कथ द्वितय (मार्गद्वयाश्रयण) भवति, अर्थात्पण्डितस्त्वेकमेव मार्गावलम्बी भवति। अतो ज्यानियमो न शरसौक्ष्म्यात् (उत्क्रमज्यासूक्ष्मत्वात्) तदन्तिवर्त्त न (ज्याव्यवहार-कार्यं) युक्तम् (तथ्यम्) सप्तकशरे (प्रथमचापत सप्तमचापपर्यन्तमुत्क्रम-ज्याया) निवृत्तिर्जिष्णुसुतस्यैव (ब्रह्मगुप्तस्यैव) युक्ततमेति ॥

उपपत्ति

ब्राह्मस्फुटसिद्धान्ते यत्र चतुर्विंशज्ज्याखण्डानि पठितानि तत्रोत्क्रमज्या-खण्डान्यपि पठितानि सन्ति, तत्र ये दोषा सर्वेषामाचार्याणा ग्रन्थे सन्ति तेऽत्रापि वर्त्तन्ते, वटेश्वरेण भिन्ना भिन्ना कल्पना मनसि कृत्वा निरर्थकमेव ब्रह्मगुप्तमत खण्ड्यते । ब्राह्मस्फुटसिद्धान्तदर्शनेनैतत्कथनमेकमपि न मिलति । नाऽतोऽस्ति ज्यानियम इत्यादि यत्कथ्यते तदन्येषामप्याचार्याणा जीवाविषये भवितुमर्हति । मन्मते तु निरर्थकमेव खण्ड्यतेऽनेन। न किमपि ब्रह्मगुप्तकथितादन्येषु कथनेषु वैलक्षण्यमिति ॥ २६-३१ ॥

हि भा—क्रान्तिवृत्त के छियानवे भाग करने से अर्थात् भचक्रकला को ६६ से भाग देने से जो लब्धि होती है वह प्रथम चाप है। ऐसे ऐसे चौबीस चापों की ज्याओं के सग्रह को ब्रह्म-

स्पष्ट रवि ठीक नहीं होते हैं इसलिए रविसङ्क्रान्ति काल भी ठीक नहीं है। यह दोष भी बहुत जगहों में होगा इसलिए आचार्य का कथन ठीक नहीं मालूम होता है ॥२६॥

पुनर्ब्रह्मगुप्तमतं खण्डयति

कल्पितभगणैर्द्युचरः कल्पितकुदिनैः प्रकल्पितैश्च युगैः ।
परिधीनामज्ञानाद् दृष्टिविरोधात्स्फुटा नातः ॥२७॥

वि भा—कल्पितभगणैः (अशुद्धभगणैः) कल्पितकुदिनैः (अशुद्धकुदिनैः) प्रकल्पितैश्च युगैः (अशुद्धयुगमानैः) द्युचराः (ग्रहाः) अतोऽस्मात् कारणात्स्फुटा न परिधीनां (स्पष्टभूपरिध्यादीनां) अज्ञानात् (अविदितत्वात्) दृष्टिविरोधात् (दर्शनायोगत्वात्)। अत्र स्पष्टभूपरिधिज्ञानं ब्रह्मगुप्तेन कृतमेव नहि। मध्यम-भूपरिधिरपि ५००० योजनमितः स्थूल एव गृहीतो वास्तवमध्यमभूपरिधिरप्यविदित एवात (परिधीनाम्) कथ्यते। यद्येतद् (वटेश्वर) मते ब्रह्मगुप्तोक्त युगमानमवास्तवं तदा युगकुदिन, युगभगणमानान्यवास्तवमेवातस्तत्साधितग्रहा अप्यवास्तवा एव, परं ब्रह्मगुप्तकथित, युगमानमवास्तवमिति वटेश्वरेणैव कथ्यते नान्यैरिति ॥२७॥

हि भा—कल्पित भगणों (अशुद्ध भगणों) से कल्पित कुदिनों (अशुद्ध कुदिनों) से प्रकल्पित युगों (अशुद्ध युगों) से साधित ग्रह स्पष्ट नहीं होते हैं। क्योंकि परिधि (स्पष्ट भूपरिधि मध्यम परिधि) के अज्ञान के कारण और प्रत्यक्ष से विरोध होने के कारण स्पष्ट ग्रह नहीं होते ॥२७॥

स्पष्ट भूपरिधि का ज्ञान ब्रह्मगुप्त ने किया ही नहीं, मध्यम भूपरिधि भी ५००० योजन स्थूल ही ग्रहण की है इसलिए वास्तव मध्यम भूपरिधि भी अविदित ही है। यदि वटे-श्वराचार्य के मत में ब्रह्मगुप्तोक्त युगमान अवास्तव है तब युग कुदिन, युग ग्रह भगण मान भी अवास्तव होगा इसलिए उन पर से साधित ग्रह भी अवास्तविक होंगे। लेकिन ब्रह्मगुप्तोक्त युगमान अवास्तविक है यह बात वटेश्वराचार्य ही कहते हैं, अन्य आचार्य नहीं कहते ॥२७॥

इदानीं ब्रह्मगुप्तोक्त-भूव्यासार्धं खण्डयति

त्यक्ते भूव्यासार्धे सहस्रप्रसमिते गणितसौक्ष्म्यात् ।
कर्तव्यं व्यासार्धं खनवमुनिरतस्त्वतिगणितजाड्यमिदम् ॥२८॥

वि भा—गणितसौक्ष्म्यात् (गणितसूक्ष्मत्वात्) सहस्रप्रसमिते (१००० तुल्ये) भूव्यासार्धे (भूव्यासखण्डे) त्यक्ते खनवमुनि (७९०) व्यासार्धं कर्त्तव्य-मर्थात् १००० एतत्तुल्ये भूव्यासार्धस्वीकरणे गणितसूक्ष्मत्वं विहाय किं ७९० व्यासार्धस्वीकरणमेव त्वत्कर्तव्यं भवेत्। अतोऽस्मात्कारणात् इदं (७९० एतत्तुल्य-भूव्यासार्धं स्वीकरणम्। अतिगणितजाड्यम् (अतिशयगणितजडत्वं) अस्तीति, १००० एतत्तुल्यमेव भूव्यासार्धस्वीकरणं गणितसूक्ष्मत्वदृष्टितो ग्रहणमुचितमासीत्। तदपहाय ७९० एतत्तुल्यं यत्स्वीकृतं तद् भवद्गणितजाड्यमस्तीति ॥२८॥

हि भा—एक हजार तुल्य भूव्यासार्धमान त्याग करने से गणितसूक्ष्मता के कारण ७९० एतत्तुल्य भूव्यासार्ध स्वीकार करना ही आपका कर्त्तव्य है यह तो अत्यन्त गणित-जडता है। अर्थात् १००० इतना भूव्यासार्ध गणितसूक्ष्मता को ख्याल से लेना चाहता था, उसको छोड कर ७९० इतना भूव्यासार्ध जो स्वीकार किया है यह तो आपकी गणित-जडता है ॥२८॥

इदानी ब्रह्मगुप्तोक्तज्यानयनखण्डनमाह

जिनजीवासग्रह स्याद्रसाङ्कभागो भमण्डलस्य सम ।
यदभिहितवान् न तच्छ्ररस्तत्र तत्स्फुटं मुनिसमस्तस्य ॥ २९ ॥
भमण्डलसमभागं परपुरुषवदाख्यात तत्र ।
यातिं यत. समन्दो द्वितय विबुध कथ भवति ॥ ३० ॥
नातोऽस्ति ज्यानियम शरसौक्ष्म्यादन्तिवर्तनं युक्तम् ।
सप्तकशरे निवृत्तिजिष्णुसुतस्यैव युक्ततमा ॥ ३१ ॥

वि भा—भमण्डलस्य (क्रान्तिवृत्तस्य) रसाङ्कभाग (९६ अश) जिन-जीवासग्रह (अर्थात् चक्रकलाया पण्णवतिभाग २२५ प्रथमचापमेतत्तुल्यचतुर्विंशतिप्रमितचापाना तत्सम्बन्धज्याना सग्रह स्यात्) यदभिहितवान् (कथितवान्) तन्न तच्छर (तेषा चापानामुत्क्रमज्यासग्रहो न स्यात्) तत् मुनिसमस्तस्य (मुनिकदम्बकस्य) स्फुट मतमस्त्यर्थादुत्क्रमज्यासग्रहोऽपि कार्य । तत्र (तस्मिन् स्थले) भमण्डलसमभाग (क्रान्तिवृत्तसमानखण्ड) परपुरुषवत् आख्यात (कथितम्) यतो समन्द (मन्दबुद्धियुक्त) द्वितय (मार्गद्वय) यात्यर्थादिकत्र भमण्डलस्य ९६ एतत्प्रमिता समाना कथिता द्वितीयस्थले भमण्डलस्य समविभागा एव कथिता इति भिन्ना भिन्नामुक्ति विलोक्यात्पज्ञ सन्देहमुपयाति, विबुध (पण्डित) कथ द्वितय (मार्गद्वयाश्रयण) भवति, अर्थात्पण्डितस्त्वेकमेव मार्गावलम्बी भवति। अतो ज्यानियमो न शरसौक्ष्म्यात् (उत्क्रमज्यासूक्ष्मत्वात्) तदन्तिवर्त्त न (ज्याव्यवहार-कार्यं) युक्तम् (तथ्यम्) सप्तकशरे (प्रथमचापत सप्तमचापपर्यन्तमुत्क्रम-ज्याया) निवृत्तिजिष्णुसुतस्यैव (ब्रह्मगुप्तस्यैव) युक्ततमेति ॥

उपपत्ति

ब्राह्मस्फुटसिद्धान्ते यत्र चतुर्विंशज्ज्याखण्डानि पठितानि तत्रोत्क्रमज्या-खण्डान्यपि पठितानि सन्ति, तत्र ये दोषा सर्वेषामाचार्याणा ग्रन्थे सन्ति तेऽत्रापि वर्त्तन्ते, वटेश्वरेण भिन्ना भिन्ना कल्पना मनसि कृत्वा निरर्थकमेव ब्रह्मगुप्तमत खण्ड्यते । ब्राह्मस्फुटसिद्धान्तदर्शनेनैतत्कथनमेकमपि न मिलति । नाऽतोऽस्ति ज्यानियम इत्यादि यत्कथ्यते तदन्येषामप्याचार्याणा जीवाविषये भवितुमर्हति। मन्मते तु निरर्थकमेव खण्ड्यतेऽनेन। न किमपि ब्रह्मगुप्तकथितादन्येषु कथनेषु वैलक्षण्यमिति ॥ २९-३१ ॥

हि भा—क्रान्तिवृत्त के छियानवे भाग करने से अर्थात् भचक्रकला को ९६ से भाग देने से जो लब्धि होती है वह प्रथम चाप है। ऐसे ऐसे चौबीस चापो की ज्याओ के सग्रह को ब्रह्म

गुप्त ने जो कहा है वहां शर (उन चापों की उत्क्रमज्यायें) नहीं कहा है। वहां उत्क्रमज्या भी कहनी चाहिये ये बातें हर एक मुनि के विचार सम्मत हैं। वहां पर क्रान्तिवृत्त के समभाग पर पुरुष की तरह जो कहा गया है उसमें मन्दबुद्धि लोग दो तरह के मार्ग में जाते हैं यानें एक जगह क्रान्तिवृत्त के ९६ से भाग देकर जो होता है उसी को प्रथम चाप कहते हैं ऐसे ऐसे चौबीस चापों की ज्याओं के संग्रह कहे गये हैं। दूसरी जगह केवल क्रान्तिवृत्त के समभाग कहे गये हैं इन दोनों के देखने से दो तरह की कल्पना मन में आती है। परन्तु पण्डित तो वैसे नहीं कर सकते, वे क्यों वैसे करेंगे। इसलिये ब्रह्मगुप्त के सिद्धान्त में ज्याओं के लिये कोई नियम नहीं है। उत्क्रमज्याओं की सूक्ष्मता से ज्याओं का व्यवहार हो सकता है। प्रथम चाप से सप्तम चाप में निवृत्ति ब्रह्मगुप्त ही के लिये ठीक हो सकती है ॥ २६ ३१ ॥

उपपत्ति

ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त में भचक्रकला २१६०० को छियानवे से भाग देने से २२५ लब्धि आती है यही प्रथम चाप है। वृत्तपरिधि के चतुर्थांश = ९० अंश है। इसकी कला ५४०० है इसमें २२५ से भाग देने से २४ आता है अर्थात् नवत्यंश कला में २२५ कला तुल्य चौबीस चाप होंगे अर्थात् प्रथम चाप = २२५, द्वितीय चाप = २२५ × २, तृतीय चाप = २२५ × ३ इत्यादि इन चापों की ज्याखण्डायें और उत्क्रमज्याखण्डायें ब्रह्मगुप्त ने लिखी हैं। वटेश्वराचार्य कहते हैं कि वहां न उत्क्रमज्या खण्डा और न उत्क्रमज्या की सूक्ष्मता कही गई है। पर ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त में जहां पर ज्याखण्ड पठित है वहीं उत्क्रम खण्ड भी पठित है। और सिद्धान्तों में जिस तरह ज्याखण्डाओं के साथ उत्क्रमज्या खण्डायें रहती हैं इसमें भी उसी तरह हैं। उत्क्रम खण्ड की जरूरत जहां होगी वहां इन खण्डाओं से काम लिये जाते हैं। उनकी सूक्ष्मता की जरूरत वहां नहीं है वटेश्वराचार्य अपने मन में नयी नयी बातें कल्पना कर ब्रह्मगुप्त के नाम पर खण्डन करते हैं। ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त देखने से इनकी कही हुई एक भी बात नहीं मिलती। जिन बातों को ब्रह्मगुप्त ने नहीं कहा है उन बातों को भी, उनके नाम से कह कर अर्थात् यह ब्रह्मगुप्तकथित है, खण्डन करते हैं। ब्रह्मगुप्त के विषय में जो बातें कहते हैं वे अन्य आचार्यों के विषय में भी लागू हो सकती है, किन्तु दूसरों के नाम से खण्डन नहीं करते हैं। हमारे मत में वटेश्वर के खण्डन निरर्थक हैं ॥ २६ ३१ ॥

इदानीं ब्रह्मगुप्तमतं खण्डयति

लम्बाक्षज्यानयनेऽतो नतज्या प्रकारवचनं यत् ।
प्रोवाच क्षेत्रफलं जिनजीवासङ्गुतं तदसत् ॥ ३२ ॥
पूर्वाचार्यस्पष्टीकरणमदृष्टं यतस्तेन ।
न भवति दृग्गणितैक्यं गणितसमं गोलबाह्यस्य ॥ ३३ ॥

वि भा —लम्बाक्षज्यानयने (लम्बज्याक्षज्ययो साधने) अतोऽग्रे नतज्याप्रकारवचनं यत् तथा जिनजीवासङ्गुतं (चतुर्विंशज्यासम्बद्धं) क्षेत्रफलं यत्प्रोवाच (कथितवान्) तदसत् (तच्छोभनं न) तथा यत (यस्मात्कारणात्) तेन (ब्रह्मगुप्तेन) पूर्वाचार्यस्पष्टीकरण (प्राचीनाचार्यकृतग्रहादिस्पष्टीकरणं) अदृष्टं (न दृष्टम्) तस्माद् गोलबाह्यस्य (गोलबहिर्भूतस्य गोलानभिज्ञस्य वा) गणितसमं (गणितागतग्रहतुल्यं) दृग्गणितैक्यं न भवतीति ॥ ३२ ३३ ॥

उपपत्तिः

ब्रह्मगुप्तकृत ब्रह्मस्फुटसिद्धान्ते लम्बाक्षज्ययो साधनावसरे नहि कस्या अपि नतज्यायास्तत्साधनस्य वा चर्चाऽस्ति तथा च चतुर्विंशतिमस्यक ज्यासम्बन्धेनापि तत्र पुस्तके क्षेत्रफलसाधन नास्ति ब्रह्मगुप्तकृत स्पष्टीकरणे प्राचीनोक्तस्पष्टीकरणापेक्षया का त्रुटि विलोक्य वटेश्वरेण कथ्यते यत्पूर्वाचार्योक्तस्पष्टीकरण ब्रह्मगुप्तेन नहि दृष्ट तेन तत्कृतग्रहादिगणितेन दृग्गणितैक्य न भवति। ब्रह्मगुप्तेनापि स्वत प्राचीनस्याऽऽर्यभटस्य बहुषु स्थलेषु खण्डन कृत्वा कथ्यते यदेतस्य दोषस्य पारावारो नास्ति तर्हि ब्रह्मगुप्तेन स्वत कस्य पूर्वाचार्यस्य स्पष्टीकरण नावलोकितम्। यद्यपि ब्रह्मगुप्तेन बहुन स्थले व्यर्थमेवाऽऽर्यभटमतस्य खण्डन कृत तथैव वटेश्वरेणापि व्यर्थमेव दुराग्रहवशात्तो ब्रह्मगुप्तमत खण्डयते। येषा विषयाणा ब्रह्मस्फुटसिद्धान्ते चर्चाऽपि नास्ति तानपि विषयान् तदुक्तान् (ब्रह्मगुप्तकथितान्) कथयित्वा खण्ड्यते। उपर्युक्तश्लोकयोर्येषा विषयाणा खण्डन वटेश्वरेण क्रियते तेष्वेकोऽपि विषयो ब्रह्मस्फुटसिद्धान्ते नास्ति ब्राह्मस्फुटसिद्धान्तावलोकनेन सर्वं स्फुट भवतीति ॥ ३२-३३ ॥

हि भा —लम्बज्या और अक्षज्या के साधन म आगे नतज्या प्रकार वचन जो है तथा चौबीस सख्यक जीवा के सम्बन्ध मे क्षेत्रफल जो कहा गया है सो असत् है। जिस कारण से ब्रह्मगुप्तने पूर्वाचार्यों के स्पष्टीकरण को नहीं देखा है अत उनके गणित से दृग्गणितैक्य नही होता है याने वेधागत ग्रहादियो म और ब्रह्मगुप्त गणित द्वारा ग्रहादियो म समता नही होती है अत ब्रह्मगुप्तकृत गणित ठीक नही है। ब्रह्मगुप्त मत के खण्डन वटेश्वराचार्य करते हैं॥ ३२-३३ ॥

उपपत्ति

ब्रह्मगुप्तकृत ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त म लम्बज्या और अक्षज्या के साधन स्थल म नतज्या या उसके साधन की चर्चा नही की गई है। और चौबीस सख्यक ज्यासम्बन्ध से भी क्षेत्रफल उस पुस्तक मे नही है। ब्रह्मगुप्त कृत ग्रहादि स्पष्टीकरण म प्राचीनोक्त स्पष्टीकरण की अपेक्षया क्या त्रुटि को देखकर वटेश्वराचार्य कहते हैं कि ब्रह्मगुप्त न पूर्वाचार्यों के स्पष्टीकरण को नहीं देखा, इसलिये ब्रह्मगुप्त गणित द्वारा जो ग्रहादि आते हैं उनम दृक् तुल्यता नही होती है याने वेधागत ग्रहादियो के साथ ब्रह्मगुप्तकृत गणित से आए हुये ग्रहादियो की समता नही होती है। ब्रह्मगुप्त भी अपने से प्राचीन आर्यभट मत के खण्डन मे कहते हैं कि आर्यभट के दोषो का पारावार नही है। तब ब्रह्मगुप्त न किन पूर्वाचार्यों के स्पष्टीकरण को नही देखा यद्यपि जिस तरह बहुत स्थलो मे ब्रह्मगुप्त ने व्यर्थ आर्यभट मत का खण्डन किया है उसी तरह वटेश्वर ने भी निरर्थक बहुत स्थलो म ब्रह्मगुप्त मत का खण्डन किया है। ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त म जिन विषयों का उल्लेख नहीं है उन विषयों को ब्रह्मगुप्तोक्त कह कर खण्डन करते हैं। उपर्युक्त श्लोको मे जिन विषयो को लेकर वटेश्वराचार्य खण्डन करते हैं उनम से एक भी विषय ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त म प्रतिपादित नहीं है। ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त देखने से स्पष्ट है ॥ ३२-३३ ॥

इदानीं ब्रह्मगुप्तोक्तभौमशीघ्रपरिधिभागस्फुटीकरणखण्डनमाह ।

यदि मन्ये संस्कारश्चलपरिधौ भूसुतस्य किं न तथा ।
चन्द्रसितादेः कस्मादागमभासात् स्फुटा नातः ॥३४॥

वि भा.—यदि भूसुतस्य (कुजस्य) चलपरिधौ (शीघ्रपरिधौ) संस्कार इत्यहं मन्ये तदा तथा (तादृशः संस्कारः) कस्मादागमभासात् (कस्मात्कल्पितागमात्) चन्द्रसितादेः किं नार्थाद्यादृशेनागमेन कुजचयपरिधौ ब्रह्मगुप्तेन संस्कारोऽभिहितस्तादृशेनैवागमेन चन्द्रशुक्रादिग्रहचलपरिधौ कथं न संस्कारोऽभिहितोऽस्तद्वशेन साधिता स्फुटा गतिः स्फुटा नेति ॥३४॥

उपपत्ति

कुजस्य शीघ्रकेन्द्रं यस्मिन् पदे स्यात्तत्र गतगम्ययोर्येऽल्पा भागास्तेषां ज्या कार्या सा त्रिभागोनैः सप्तभिरशैर्गुणिता पञ्चवेदभागज्यया भक्ता लब्धांशैर्मृगकर्क्यादिशीघ्रकेन्द्रे कुजमन्दोच्चं क्रमेणाधिको हीनश्च कार्यस्तदा स्पष्टीकरणोपयोगि कुजमन्दोच्चं स्फुटं भवति। भौमस्य मन्दपरिधिभागा = ७० । व्यशोना वेदजिना २४३°।४० भागा मन्दोच्चसंस्कारार्थं ये पूर्वमाप्ता भागास्तैः सर्वदा ऊनास्तदा भौमस्य स्फुटः शीघ्रपरिधिः स्यात् ततोऽग्रोलिखितक्रमेण तत् स्फुटीकरणं भवति। गणितागते मध्यमभौमे प्रथमं मन्दफलार्धं यथागतं धनं वा ऋणं देयम्। ततोऽर्धमन्दफलसंस्कृतमध्यमभौमेऽर्धमन्दफलसंस्कृतान्मध्यमभौमाद्यच्छीघ्रफलं तदर्धं यथागतं धनमृणं वा देयम्। पुनरर्धफलद्वयसंस्कृतान्मध्याद्यन्मन्दफलं तत्संस्कृतान्मध्याद् यच्छीघ्रफलं च ते सम्पूर्णे गणितागते भौमे देये यथा बुधगुर्वादीनां कृतेऽसकृत्कर्मकरणं भवति तथाऽत्रापि कार्यमेव भौमः स्पष्टो भवति। ततः स्फुटा गतिश्च ग्रहवत्साध्येति ।

ग्रन्थकारेण कथ्यते यद्यादृशः संस्कारः कुजचलपरिधौ ब्रह्मगुप्तेन कृतस्तादृश एव संस्कारोऽन्येषां बुधादीनां चलपरिधौ कथं न कृतस्तत्र काऽपि तादृशी युक्तिर्न मिलति येन तदुक्तिः स्वीकार्या, केवलं ब्रह्मगुप्तेन कथ्यते यदागमप्रामाण्यादेव क्रियते। यादृशमागमप्रामाण्यं कुजस्य कृते तादृशं बुधादीनां कथं न मिलत्यतस्तत्कल्पितमागमप्रमाणस्यासमीचीनत्वाद्ब्रह्मगुप्तस्फुटीकृतचलपरिधिवशतः साधिता स्पष्टगतिः स्फुटा नेत्यतस्तन्मतं न समीचीनम्। वस्तुतो ब्रह्मगुप्तकथनं समीचीनं वटेश्वराचार्यकथनं वेति कथनमतीव दुर्घटं, यत्र युक्तिर्न मिलति तत्र त्वागममेवाऽऽश्रयणीयं भवति। तदागमप्रमाणं मान्यामान्यं वेति विवेचकाः स्वयमेव विचारयन्त्विति ॥ चन्द्रसितादेरिति पाठोऽसमीचीनः प्रतिभाति चन्द्रस्य शीघ्रपरिधेरभावादिति ॥३४॥

हि भा.—यदि मंगल की शीघ्र परिधि में संस्कार को मानते हैं तो किस कल्पित आगम प्रमाण से चन्द्र, शुक्र आदि ग्रहों की चल परिधि में उस तरह का संस्कार नहीं किया गया। अतः उस पर से साधित ग्रह की स्पष्ट गति ठीक नहीं है ॥३४॥

उपपत्ति

मगल के शीघ्र केन्द्र जिस पद मे हैं वहा गत और गम्य म जो भाग अल्प है उसकी ज्या करनी चाहिये उसको ६°।४०′ इसकी ज्या से गुण कर ४०° पंतालीस अश के ज्या से भाग देना, जो भागफल अशात्मक हो उसे मृगादि और कर्कादि केन्द्र मे शीघ्र केन्द्र रहने पर कुज मन्दोच्च मे युत और हीन करना तब स्पष्टीकरणोपयुक्त कुज मन्दोच्च स्फुट होता है। मगल के मन्दपरिध्यश=७०, त्र्यशोन २४४° अश अर्थात् २४३°।४५′ अश मन्दोच्च सस्कार के वास्ते जो पहले प्राप्त अश हैं उस करके हीन करने से मगल की स्फुट शीघ्र परिधि होती है इस पर से मगल का स्पष्टीकरण इस तरह होता है। गणितागत मध्यम मगल म यथागत धन या ऋण मन्द फल के आधा सस्कार करना तब अर्ध मन्द फल सस्कृत मध्यम मगल पर से जो शीघ्र फल हो उसके आधे को यथागत धन या ऋण को अर्ध मन्द फल सस्कृत मध्यम मगल मे सस्कार करना। फिर अर्ध फलद्वय सस्कृत मध्यम से जो मन्द फल साधिक हो तत्सस्कृत मध्यम पर से जो शीघ्र फल हो वे दोनो फल (मन्दफल और शीघ्रफल) सम्पूर्ण गणितागत मध्यम मगल मे देना। उसके बाद बुध, गुरु, शनि की तरह असकृत्कर्म करने से स्पष्ट मगल होते हैं। स्पष्टगति ग्रहवत् साधन करना। अर्थात् दिनान्तर स्पष्ट खमान्तर ही उस समय के अन्तर मे स्पष्टगति होती है।

ग्रन्थकार कहते हैं कि मगल की शीघ्र परिधि म ब्रह्मगुप्त ने जैसा सस्कार किया है वैसा ही अन्य ग्रहो (बुधादि) की शीघ्र परिधि मे क्यों नहीं किया गया। ब्रह्मगुप्त का कहना है कि आगम प्रमाण से इस तरह के सस्कार करते हैं। जिस तरह के आगम प्रमाण मगल के लिए है उसी तरह के बुधादिग्रहो के लिए क्यो नही है इसलिये ब्रह्मगुप्त-स्वीकृत कल्पित आगम प्रमाण के असमीचीनत्व से ब्रह्मगुप्तकथन ठीक नही है। वस्तुत' ब्रह्मगुप्तकथन ठीक है या वटेश्वराचार्य कथन, यह कहना बहुत कठिन है। जहा युक्ति नही मिलती है वहा आगम प्रमाण ही का आश्रयण करना होता है। आगमप्रमाण मान्य है या नही इस विषय को विवेचक लोग स्वय विचार करें। 'चन्द्रसितादे यह पाठ ठीक नही मालूम होता है क्योंकि चन्द्रमा की शीघ्र परिधि नही होती है ॥३४॥

इदानी ब्रह्मगुप्तोक्त वृत्त छायाभ्रमण खण्डयति।

दृङ्मात्रमेव कथिता छायासिद्धिर्हि मन्दान्वितोघधिया।
प्रज्ञाज्वरप्रचलित छायात्रितयाद्धि यदभ्रमणम् ॥३५॥
अस्तावेधादन्यज्जिष्णोस्तनयस्य भाभ्रमणम्।
वलये तद्धिनशोभनमिति नहि तुच्छबुद्धिमिहेष्टम् ॥३६॥
जिष्णुसुतैर्नान्यत्र तुसोतो जानाति तदभ्रमणम्।
अस्तावेधादन्यान्जिष्णोस्तनयस्य भाविनी भापि ॥३७॥

वि भा—मन्दान्वितोघधिया (मन्दयुक्तदूषितबुद्ध्या) दृङ्मात्रमेव छाया सिद्धि कथिता। प्रज्ञाज्वरप्रचलित (बुद्धिप्रयुक्तज्वरचलित) छायात्रितयाद् भ्रमण यत् (कालत्रयजनितच्छायात्रयाग्रभ्रमण यत्) तदभाभ्रमणमर्थातत् छायात्रयाग्र यत्र भ्रमति तदेव भाभ्रमणम्। जिष्णोस्तनयस्य (ब्रह्मगुप्तस्य)

अस्तावेधात् (मेरो) अन्यद्वलये (वृत्ते) तत् (छायाभ्रमण) शोभन न (समीचीन नास्ति) इति तुच्छबुद्धिभि (अल्पबुद्धिभिर्ब्रह्मगुप्तं) न दृष्टम्। अतोऽन्यत्र (मेरोभिन्नस्थले) स (ब्रह्मगुप्त) तद्भ्रमण (छायाभ्रमण) न जानाति, जिष्णोस्तनयस्य (ब्रह्मगुप्तस्य) भाविनी भापि (आगामिनी छायाऽपि) अस्तावेधात् (मेरो) अन्येति ॥ ३५-३७ ॥

अत्रोपपत्ति

ब्राह्मस्फुटसिद्धान्ते ब्रह्मगुप्तेन वृत्ताकारभाभ्रमरेखासम्बन्धेन दिग्ज्ञान कृतमस्ति यथा।

त्रिच्छायाग्रजमत्स्यद्वयमध्यगसूत्रयोर्युतिर्यत्र।
सोत्तरगोले याम्या शङ्कुतलाद्दक्षिणे सौम्या॥
छायाग्रभ्रमरेखा सूत्रयुतेर्वृत्तपरिधिरग्रस्पृक्।
मध्यच्छायान्तरमुदगितरद्वा शङ्कुमण्डलयो ॥

इष्टदिने दिग्मध्यस्थशङ्कोश्छायात्रय ज्ञात्वा तदग्रैर्मत्स्यद्वयमुत्पाद्य तन्मुखपुच्छमध्यगरेखयोर्यत्र युतिस्ततो यो वृत्तपरिधि सोऽग्रस्पृक् भवति। अत परिधिरेखैव छायाग्रभ्रमरेखा भाभ्रमरेखा भवति।

वटेश्वराचार्येणापि वृत्त एवच्छायाभ्रमण स्वीक्रियते तर्हि ब्रह्मगुप्तोक्तस्य खण्डन स्वोक्तस्यापि खण्डन भवेदिति खण्डनेनालम्। वस्तुतश्छायाभ्रमणमार्ग कुत्र कुत्र कीदृश इति प्रदर्श्यते।

रविकेन्द्राच्छङ्कवग्रगता रेखा पृष्ठक्षितिजधरातले यत्र लगति तत शङ्कुमूल यावत् छाया। एकस्मिन् दिने रविक्रान्तिर्यदि स्थिरा कल्प्यतेऽर्थादिकमेवाहोरात्रवृत्त कल्प्यते तदा तदहोरात्रवृत्तस्थप्रतिरविकेन्द्रबिन्दुत शङ्क्वग्रगता रेखा यत्र-यत्र पृष्ठक्षितिजधरातले लगन्ति तत शङ्कुमूल यावत् छाया। छाया स्वरूपदर्शनेन सिध्यति यच्छङ्क्वग्रादहोरात्रवृत्ताधारा सूची कार्या सा विषमसूची। पृष्ठक्षितिजधरातलेन छिन्ना यादृश वक्रमुत्पादयति तादृश एव च्छाया भ्रमणमार्ग।

अथ मेरौ छायाभ्रमणमार्ग कीदृश इति विचार्यते। शङ्क्वग्र ध्रुवसूत्रेऽस्ति, शङ्क्वग्रादहोरात्रवृत्ताधारा विषमसूची पृष्ठक्षितिजधरातलेन (नाडीवृत्तधरातलसमानान्तरधरातलेन) छिन्ना सती छेदितप्रदेशो वृत्ताकार एव भवति (मेरुवासिना क्षितिज नाडीवृत्तम्)। नाडीवृत्तधरातलाहोरात्रवृत्तधरातलयो समानान्तरत्वादहोरात्रवृत्ताधारविषयसूची आधारवृत्तधरातल (अहोरात्रवृत्तधरातल) समानान्तरधरातलेन पृष्ठक्षितिजधरातलेन (नाडीवृत्तधरातलसमानान्तरधरातलेन) छिन्ना सती छेदितप्रदेशो वृत्ताकार एव भवितुमर्हति, प्रतिभावोधकयुक्त्या, अत सिद्ध मेरौ सदैव भाभ्रममार्गो वृत्ताकार एव भवेत्। साक्षदेशे न्यूनाधिकशङ्कुवशेन रेखा, वृत्तम्, दीर्घवृत्तम्, परवलयम्, अतिपरवलयम्' इति पञ्चधा छायाभ्रमणमार्गो भवति। निरक्षेविषुवद्दिने छायाभ्रमणमार्गो रेखाकारो भवति। ग्रन्थकारेण (वटेश्वरेण) यत्खण्डयते तत्समीचीनमेव। सूर्यसिद्धान्तेऽपि 'इष्टेऽह्निमध्ये प्राक्

पश्चाद्धृते बाहुनयान्तरे। मत्स्यद्वयान्तरयुतेस्त्रिस्पृक्सूत्रेण भाभ्रम । वचनेनानेन च्छायाभ्रमणमार्गो वृत्ताकार एव सूर्येण स्वीकृत यत्खण्डन सिद्धान्तशिरोमणौ भास्करेण 'भात्रितयाद् भाभ्रमण' मित्यादिना कृतम्। छायाभ्रमणसम्बन्धे विशेषार्थं भाभ्रमरेखानिरूपण द्रष्टव्यमिति।

हि. भा.—मन्दयुक्त दूषित बुद्धि से छायासिद्धि कही गई है। बुद्धि प्रयुक्त ज्वर से प्रचलित तीनकालिक छायाग्रभ्रमण जहा होता है वही भाभ्रमण (छायाभ्रमण) है। ब्रह्मगुप्त के छायाभ्रमण मेरु से भिन्न स्थल मे वृत्त में ठीक नही है (अर्थात् ब्रह्मगुप्त जो वृत्ताकार छायाभ्रमण मार्ग मानते हैं सो मेरु में ठीक है। मेरु से भिन्न स्थल मे ठीक नही है) इस विषय को तुच्छ बुद्धि वाले ब्रह्मगुप्त नही देखते। इसलिये मेरु से भिन्न स्थल मे छायाभ्रमण को ब्रह्मगुप्त नही जानते हैं। उनकी भागे की छाया भी मेरु से भिन्न-स्थान ही के लिए है ॥३५-३७॥

उपपत्ति

ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त मे ब्रह्मगुप्त ने वृत्ताकार भाभ्रम रेखा सम्बन्ध से दिए का ज्ञान किया है जो अधोलिखित है।

"त्रिच्छायाग्रजमत्स्यद्वयमध्यगमूत्रयोयु तिर्यत्र" । इत्यादि

इष्ट दिन मे दिग्मध्यस्थशङ्कु के छायात्रय जानकर उनके अग्रो से मत्स्यद्वय (दो मछली के आकार) बनाकर उनके मुख पुच्छ मध्यगत रेखाद्वय का जहा योग होता है वहा से जो वृत्तपरिधि होती है यह छायाग्रगत होती है। अत वृत्तपरिधि रेखा ही छायाभ्रम रेखा होती है। ब्रह्मगुप्त तीन कालिक छायाओ के परस्पर अग्रगत रेखाओ से जो त्रिभुज बनता है तदुपरिगत जो वृत्त होता है उसी को छाया भ्रमण मार्ग कहते हैं। आचार्य (बटेश्वर) इसका खण्डन करते है। तब बहुत अच्छा समझा जाता यदि य स्वय वृत्ताकार छायाभ्रमण नही मानते। वस्तुत छाया भ्रमण मार्ग कहा कहा कैसा होता है सो मैं दिखलाता हू।

रवि केन्द्र से शङ्कु के अग्रगत रेखा पृष्ठक्षितिज धरातल म जहा लगती है वहा से शङ्कुमूल तक रेखाछाया है। एक दिन मे यदि रवि की क्रान्ति स्थिर मानी जाय याने एक दिन म एक ही अहोरात्र वृत्त माना जाय तब अहोरात्र वृत्त के प्रति बिन्दुस्थ रवि केन्द्र से शङ्कु के अग्रगत रेखायें पृष्ठ क्षितिज धरातल में जहा-जहा लगती है वहा वहा से शङ्कु मूल तक छाया मे हैं। छाया के स्वरूप देखने से सिद्ध होता है कि शङ्क्वग्र से अहोरात्रवृत्त के आधार पर जो विषमसूची होगी उसको पृष्ठ क्षितिज धरातल मे काटने पर जैसी उसकी आकृति होगी वैसा ही छायाभ्रमण मार्ग होगा। मेरु मे छायाभ्रमण मार्ग के लिए विचार करते हैं। मेरुवासियो के क्षितिज वृत्त नाडीवृत्त है। नाडीवृत्त और अहोरात्र वृत्त समानान्तर है इसलिए शङ्क्वग्र से अहोरात्र वृत्ताधारा विषमसूची को पृष्ठ क्षितिज धरातल (नाडीवृत्त धरातल के समानान्तर धरातल) से काटने से कटित प्रदेश वृत्ताकार होगा (प्रतिभाबोधक की युक्ति से) अत मेरु में सर्वदा छायाभ्रमण मार्गवृत्ताकार ही होगा, यह सिद्धान्त हुआ। साक्ष देश म न्यूनाधिक अक्षवश से रेखा, वृत्त, दीर्घवृत्त, परवलय, अतिपरवलय,

ये पाच तरह के छायाभ्रमण मार्ग होते हैं, निरक्ष देश में विषुवद्दिन में छायाभ्रमण मार्ग रेखाकार होता है। आचार्य (वटेश्वर) का खण्डन ठीक है। सूर्यसिद्धांत में "इष्टेऽह्नि मध्ये प्राक् पश्चाद्धृते बाहुत्रयान्तरे। मत्स्यद्वयान्तरयुतेस्त्रिस्पृक्सूत्रेण भाभ्रम" इससे सूर्य भगवान् (सूर्यांशपुरुष) ने भी छायाभ्रमणमार्ग वृत्ताकार ही कहा है। लल्ल आदि आचार्य ने भी इसी तरह कहा है जिनका खण्डन सिद्धांतशिरोमणि में भास्कराचार्य "भात्रितयाद्भाभ्रमणम्" इत्यादि से किया है। छायाभ्रमण के सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिए "भाभ्रमरेखा निरूपण" पुस्तक देखनी चाहिये ॥३५-३७ ॥

इदानीं ब्रह्मगुप्तोक्त-चन्द्रभा खण्डयति।

अन्यद्योजनबिम्बंनिरागमंश्चेन्दुभा कुवद्या सा।
निजकर्णे यातीति ग्रहणे प्रतिवेत्ति नो किञ्चित् ॥३८॥
नावगतो वा गोलो ग्रहादिकस्थानमपि नो क्षेत्रम्।
नापि रविग्रहहृदयं जिष्णुसुतो गोलबाह्योऽयम् ॥३९॥

वि. भा.—निरागमं (अप्रामाणिकं) अन्यद्योजनबिम्बं कुवत् (पृथिवी-सदृशी, अर्थाद्यथा पृथिव्या छाया (भूभा) भवति तथैव) येन्दुभा (या चन्द्रच्छाया) सा ग्रहणे निजकर्णे (चन्द्रभाकर्णे) याति, इति हेतोर्जिष्णुसुत (ब्रह्मगुप्त) किंचिद् नो प्रतिवेत्ति (जानाति)। गोलो नावगत (न विदित) ग्रहादिकस्थानमपि (ग्रह-मन्दोच्चशीघ्रोच्चादिस्थानमपि) न वेत्ति, तथा क्षेत्रम् (तत्तद्विषयसाधनार्थमुपयुक्त क्षेत्रम्) रविग्रहहृदयम् (सूर्यमध्यग्रहणादिकमपि) जिष्णुसुतो ब्रह्मगुप्तो नो वेत्त्यतोऽयं ब्रह्मगुप्त, गोलबाह्य (गोलज्ञानबहिर्भूत) अस्तीति ॥३८-३९॥

उपपत्ति

ब्राह्मस्फुटसिद्धान्ते ब्रह्मगुप्तेन चन्द्रभासम्बन्धेन किमलिखितमस्ति किन्तु ब्रह्मसिद्धान्ते ब्रह्मणा यत्र भूभानयनमस्ति तत्रैव चन्द्रभाकर्णसाधनमपि कृतमस्ति यथा तद्वाक्यानि।

भूच्छायेलागतस्याथ तरणिभ्रमणे विधो।
सूचीमध्यमकक्षाया कियतीति महीश्रव ॥
स्फुटसूर्येन्दुभक्तिघ्नो भक्तो मध्यमया फलम्।
स्फुटार्कचन्द्रकर्णाप्त फलमर्कमृगाकयो ॥
मानेच्छमध्यकर्णास्तु प्राऽभय सूच्यापि भाश्रव।
तिथ्य कलाया सन्त्येवमेतदर्धं विधो श्रव ॥

एतत्पद्यदर्शनेन "निजकर्णे यातीत्यादि" वटेश्वरकथन न सिध्यति। चन्द्रभाकर्णसाधन ब्रह्मणा कृत तावता तस्य को दोष, ब्रह्मगुप्तेन तु चन्द्रभायाश्चर्चा कुत्रापि न कृता आचार्यकथनमिद तथ्यहीनमिति ॥३८-३९॥

हि. भा.—अप्रामाणिक दूसरे योजन बिम्ब से पृथिवी की तरह अर्थात् जैसी पृथिवी की छाया उसी तरह चन्द्रभा होती है। वह चन्द्रभा ग्रहण में अपने कर्ण (चन्द्रभाकर्ण) में जाती है। ब्रह्मगुप्त कुछ भी नहीं जानते हैं।

ब्रह्मगुप्त गोल नही जानते हैं, ग्रह आदि मन्दोच्च शीघ्रोच्च और पातो के स्थान नही जानते हैं। क्षेत्र को (उन उन विषयो के साधन के लिए उपयुक्त क्षेत्र) नही जानते हैं। सूर्य के मध्य ग्रहणादि को भी नही जानते हैं। वे (ब्रह्मगुप्त) गोलज्ञान से बहिर्भूत हैं ॥३८--३९॥

उपपत्ति

ब्राह्मस्फुटसिद्धात मे ब्रह्मगुप्त ने चन्द्रमा के सम्बन्ध मे कुछ भी नही कहा है। चन्द्रमा के विषय मे ब्रह्मसिद्धात मे ब्रह्मा ने लिखा है जो अधोलिखित है—

"भूच्छायेला गतस्याथ तरणिभ्रमणे विधो।" इत्यादि

इन पद्यो के देखने से "निजकर्णे यातीत्यादि" इससे जो वटेश्वराचार्य खण्डन करते हैं वह ठीक नही मालूम पडता है। ब्राह्मस्फुटसिद्धात मे उपर्युक्त विषय की कही भी चर्चा नही है, इसलिये यह आचार्य का खण्डन स्वकपोलकल्पित कहना चाहिये ॥३८ ३९॥

इदानी राहुकृतग्रहण भवतीत्याह।

खण्डयति तमोऽर्धेन क्षमाकरं विधुदलेन तिग्मांशुम्।
राहुकृतं च ग्रहणं प्राहुस्ते समस्त आचार्याः ॥४०॥

वि भा—तम (राहु) अर्धेन क्षपाकर (चन्द्र) खण्डयति विधुदलेन (चन्द्रबिम्बप्रविष्टेन राहुणा चन्द्रबिम्बार्धेन) तिग्मांशुम् (सूर्यं) खण्डयति, ते समस्त आचार्या (सर्वे आचार्या) राहुकृत ग्रहण प्राहु (कथितवन्त) ॥४०॥

उपपत्ति

चन्द्रग्रहणे पूर्वत. स्पर्श पश्चिमतो मोक्ष। सूर्यग्रहणे चैतद्विपरीतम्। राहोर्गतेरनिश्चयात् (राहो कस्या दिशि गतिर्यथाऽन्येषा सूर्यादीना ग्रहाणा पूर्वाभिमुख गतिस्तथा राहोर्नास्ति) सूर्याचन्द्रमसोर्ग्रहणे स्पर्शमोक्षदिशोर्निश्चयत्वाद्राहुकृत ग्रहण न भवतीति सिद्धान्तम्। पुराणादौ राहुकृतग्रहणस्य वर्णनमस्ति तेनैव हेतुना भास्करेण सिद्धान्तशिरोमणौ केनापि रूपेण ज्योतिषमतयो समन्वय कृतस्तद्वाक्य यथा—

राहु कुभा मण्डलग शशाङ्क शशाङ्कगश्छादयतीनबिम्बम्।
तमोमय शम्भुवरप्रदानात्सर्वागमानामविरुद्धमेतत् ॥

वस्तुतो ग्रहणेन सह राहोर्न कोऽपि सम्बन्ध। सूर्यबिम्बभूबिम्बयो क्रमस्पर्शरेखा यत्र यत्र चन्द्रकक्षाया लगन्ति तज्जनितमार्गो वृत्ताकारो भवति तदेव भूभावृत्तम्, वर्धितरविकर्णश्चन्द्रकक्षाया यत्र लगति तत्र तद्वृत्तकेन्द्र भवति, पूर्णान्ते रवित षड्भान्तरे चन्द्रो भवति रवित षड्भान्तरे सदैव भूभाकेन्द्रम्। तेन यस्या पूर्णिमाया मानैक्यार्धाद्न्यून शरो भवति तस्या ग्रहण भवति, मानैक्यार्धतुल्ये शरे यदि स्पर्शो भवति छाद्यच्छादकबिम्बयोश्चन्द्रबिम्बभूभाबिम्बयो अतश्चन्द्रग्रहणे चन्द्रश्छाद्यो भूभा छादिका, दर्श सूर्येन्दुसगम इत्युक्तेरमाया सूर्याचन्द्रमसो-

रेकसूत्रे ऊर्ध्वाध क्रमेण स्थितत्वाद् यस्याममाया तयोर्मानैक्यार्धतुल्यश्चन्द्रशरो भवेत्तस्या तयोर्विम्बयोर्हि स्पर्शो भवति मानैक्यार्धान्न्यूने शरे ग्रहण भवति, सूर्यग्रहणे चन्द्रश्छादक सूर्यश्छाद्यो भवत्येतत्प्रसगे भास्करेण कथ्यते । यथा—

"पश्चाद्भागाज्जलदवदध सस्थितोऽभ्येत्यचन्द्रो
भानोर्विम्ब स्फुटदसितया छादयत्यात्ममूर्त्या ।
पश्चात्स्पर्शो हरिदिशि ततो मुक्तिरस्याथ एव
क्वापि च्छन्न क्वचिदविहितो नैष कक्षान्तरत्वात् ॥"

सूर्यचन्द्रग्रहणयो स्पर्शमोक्षादिस्थितिविलोकनेन राहुकृत ग्रहण न भवतीति सिद्धान्तितम् । ब्राह्मस्फुटसिद्धान्ते ब्रह्मगुप्तेन ।

आर्यभटो जानाति ग्रहाष्टगति यदुक्तवास्तदसत् ।
राहुकृत न ग्रहण तस्मातो नाष्टमो राहु ॥

इत्यादिनाऽऽर्यभटीयराहुकृतग्रहणस्य खण्डन क्रियते । आर्यभटेन राहुकृत नोक्त ब्रह्मगुप्तवाग्वलमेतत् । तथा च तद्वाक्यम् ।

छादयति शशी सूर्यं शशिन महती च भूछाया । (गोल पा. श्लो २७)

राहुकृतग्रहणस्य तु वहूनि खण्डनानि सन्ति, वटेश्वराचार्येणापि राहुकृत सूर्याचन्द्रमसोर्ग्रहण स्वीक्रियते कथ्यते च यदत्र समस्तानामाचार्याणा सम्मतिरस्ति, मन्मते तु कोऽपि सिद्धान्तग्रन्थप्रणेताऽऽचार्य स्वसिद्धान्ते राहुक ग्रहण लिखितवान् । वस्तुतो राहुकृत ग्रहणमयुक्तमिति ॥४०॥

हि भा.—राहु आधे बिम्ब से चन्द्रविम्ब को खण्डित करता है, चन्द्रबिम्बार्ध से सूर्य को खण्डित करता है । राहुकृत (राहु द्वारा) ग्रहण को सब आचार्य कहते हैं ॥४०॥

उपपत्ति

चन्द्रग्रहण मे पूरव से स्पर्श और पश्चिम से मोक्ष होता है, सूर्यग्रहण मे इसके विपरीत होता है । जैसे सूर्य आदि ग्रहो की गति पूर्वाभिमुख है वैसे राहुगति का कोई निश्चय नहीं है इसलिये राहुकृत ग्रहण नही होता है । लेकिन पुराणादि मे राहुकृत ग्रहण के वर्णन है इसलिये पुराणादि कथित ग्रहण और ज्योतिष म कथित ग्रहण के समन्वय के लिये भास्कराचार्य सिद्धान्तशिरोमणि मे कहते हैं—

"राहु कुभामण्डलग शशाङ्क शशाङ्कगश्छादयतीनविम्बम् । इत्यादि ।

अर्थात् शकर जी के वरप्रदान से अन्धकारमय राहु भूभाविम्ब मे प्रवेश कर चन्द्रमा को ढकता है और सूर्यग्रहण के समय चन्द्रविम्ब मे प्रवेश कर राहु सूयविम्ब को ढकता है । इस तरह किसी को ग्रहण मे कुछ कहने का अवसर नही होगा । लेकिन यदि ठीक से देखा तो ग्रहण के साथ राहु का कुछ भी सम्बन्ध नही है । सूर्यबिम्ब और भूविम्ब की क्रमस्पर्शरेखायें चन्द्रकक्षा मे जहा-जहा लगती हैं वह प्रदेश वृत्ताकारहोता है उसी को भूभावृत्त कहते हैं । वर्धित रविकर्ण चन्द्रकक्षा मे जहा लगता है वही बिंदु उस वृत्त का केन्द्र

(भूभा केन्द्र) होता है। पूर्णिमा मे सूर्य से ६ राशि पर चन्द्र रहते हैं और सूर्य से बराबर भूभा केन्द्र ६ राशि पर रहता है। इसलिए पूर्णान्त में चन्द्रबिम्ब और भूभाबिम्ब के एक जगह रहने के कारण ग्रहण की सम्भावना हो सकती है। तब प्रत्येक पूर्णिमा मे चन्द्रग्रहण क्यो नही होता ? इसका कारण यह है चन्द्रबिम्ब और भूभाबिम्ब का मानैक्यार्ध (व्यासार्धयोग) चन्द्रशर के बराबर जब होता है। तब दोनो बिम्बो का बहिःस्पर्श होता है। मानैक्यार्ध से चन्द्रशरके न्यून रहने से ग्रहण होता है यह स्थिति प्रत्येक पूर्णिमा मे नही होती है। जिस पूर्णिमा मे वैसी स्थिति होती है उसमे ग्रहण होता है। चन्द्रग्रहण मे चन्द्र छाद्य और भूभा छादिका है।

सूर्यग्रहण मे सूर्य छाद्य और चन्द्र छादक होते हैं, इस प्रसग मे भास्कराचार्य कहते हैं—

"पश्चाद्भागांजलदवद् संस्थितोऽभ्येत्य" इत्यादि।

सूर्य और चन्द्र के ग्रहण मे स्पर्श और मोक्षादिस्थिति देखने से साफ मालूम होता है कि राहुकृत ग्रहण नही होता है। ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त में ब्रह्मगुप्त

'आर्यभटो जानाति ग्रहाग्रगतिम्" इत्यादि।

इससे आर्यभटीय राहुकृत ग्रहण का खण्डन करते हैं, ब्रह्मगुप्त का यह व्यर्थ खण्डन है। आर्यभट ने राहुकृत ग्रहण नही कहा है जैसा कि उनका वचन है—

' छादयति शशी सूर्यं शशिनं महती च भूछाया।" (गोलपाद श्लो ३७)

राहुकृत ग्रहण का बहुत खण्डन है। ग्रन्थकार वटेश्वर भी राहुकृत सूर्य और चन्द्र के ग्रहण मानते हैं और कहते हैं कि इस विषय को सब आचार्य कहते हैं। लेकिन मेरा विचार है कि ज्योति सिद्धान्त ग्रन्थ के रचयिता किसी भी आचार्य ने अपने सिद्धान्त मे राहुकृत ग्रहण को नही लिखा होगा। अगर किसी ग्रन्थ मे लिखा भी होगा तो वह अयुक्त समझना चाहिये। वस्तुत राहुकृत ग्रहण अयुक्त है॥ ४० ॥

इदानी ब्रह्मगुप्तोक्तवित्रिभलग्ननतांश खण्डयति

वित्रिभलग्नापक्रमपलांश योगान्तरं त्रिभोनलग्नस्य।
नरभागास्तदयुक्तं दृक्क्षेपं वित्रिभस्य यतः॥ ४१॥

वि. भा.—वित्रिभ लग्नापक्रम पलांशयोगान्तर (वित्रिभलग्नक्रान्त्यक्षयो-र्योगान्तरं) त्रिभोनलग्नस्य (वित्रिभलग्नस्य) नतभागाः (नतांशाः) इति यदुक्तं तदयुक्त (तन्न तथ्यम्) यतस्तद्वित्रिभस्य दृक्क्षेपमस्तीति॥ ४१॥

उपपत्तिः

अनेन ब्रह्मगुप्तोक्तस्याधोलिखितस्य खण्डनं क्रियते—

तस्य क्रान्तिज्योदक् यदाऽक्षजीवा समा न तदा॥
अवनतिरनोऽन्यथा भवति सम्भवे तदुदयैर्विलग्नसमम्।
कृत्वा तदुदितघटिकास्तच्छङ्कुस्तच्चरप्राणैः॥

अवनतेरानयस्य दृक्क्षेपाधीनत्वाद्यदा दृक्क्षेपाभावस्तदाऽवनतेरभावः। आचार्येण (ब्रह्मगुप्तेन) स्वल्पाक्षदेशे याम्योत्तरवृत्त एव स्वल्पान्तराद्वित्रिभस्थिति प्रकल्प्य तस्य दिनार्धवत् क्रान्त्यक्षसंस्कारेण नतांशप्रमाणमानीत तत्समीचीन नास्तीति प्रत्यक्षमेव दृश्यते वटेश्वरेण यत्खण्ड्यते तत्समीचीन पर तत्र कीदृगेन भाव्यमिति न कथ्यत इति ॥ ४१ ॥

हि भा—वित्रिभलग्न की क्रान्ति और अक्षांश मे योग और अन्तर करके वित्रिभ-लग्न नतांश प्रमाण जो कहा गया है सो ठीक नहीं है। क्योंकि वह वित्रिभ का दृक्क्षेप है।

उपपत्ति

इससे पूर्वोलिखित ब्रह्मगुप्तोक्त का खण्डन करते हैं—

'तस्य क्रान्तिज्योदक् यदाऽक्षजीवा समान तदा।" इत्यादि

नति के आनयन दृक्क्षेप के अधीन है इसलिये जब दृक्क्षेप का अभाव होगा तब नति का अभाव होगा। ब्रह्मगुप्त स्वल्पाक्ष देश मे याम्योत्तर वृत्त ही मे स्वल्पान्तर से वित्रिभ स्थिति को मान कर दिनार्ध काल की तरह वित्रिभ क्रान्ति और अक्षांश के संस्कार करके नतांश प्रमाण लाये हैं। अक्षांश क्रान्ति के समत्व मे वित्रिभनतांशाभाव होगा। वित्रिभ नतांशा-नयन ठीक नहीं है यह प्रत्यक्ष ही देखते हैं। ग्रन्थकार (वटेश्वराचार्य) जो खण्डन करते हैं वह ठीक है, परन्तु वहा क्या होना चाहिये सो नहीं कहते हैं॥ ४१॥

इदानीं ब्रह्मगुप्तोक्तदृक्कर्मसंस्कृतग्रह समीचीनो नेति खण्ड्यते।

उदयास्तमयभानोरिष्टे काले ग्रहस्य दृक्कर्म।
कृतवान् जिष्णुसुतो यस्त्वौदयिके सुगणितजाड्यं तत्॥ ४२॥

वि भा—इष्टे काले (इष्टसमये) उदयास्तसमयभानो (सूर्योदयास्त कालयो) ग्रहस्य दृक्कर्म औदयिके ग्रहे जिष्णुसुत (ब्रह्मगुप्त) यत्कृतवान् तत् सुगणितजाड्यमस्तीति॥ ४२॥

उपपत्ति

ब्रह्मगुप्तेनाप्ययनदृक्कर्मानयन कृत्वा तत्संस्कृतग्रह कृत्वा पश्चादक्षजदृक्कर्म-साधन कृतम्। तत्र उत्तरे शरेऽक्षजदृक्कर्मकलाभिरूनो दक्षिणे शरे युत कृतायन-दृक्कर्मफलो ग्रह उदयाख्यलग्न भवति। अस्तलग्नसाधने तु उत्तरे शरेऽक्षज दृक्कर्मकलासहितो दक्षिणे रहित सषड्भ कृतायनफल खेटो ग्रहे पश्चिम-क्षितिजेऽस्त गते पूर्वक्षितिजे यल्लग्न तदस्तलग्न भास्करमते। अत्र ब्रह्मगुप्तेन तस्मात् षड्राशि विशोध्य पश्चिमक्षितिजे ग्रहेऽस्तगते यदस्तलग्न तदेव ग्रहास्त-लग्न कल्पितम्।

ब्रह्मगुप्तोक्तमायनदृक्कर्म साधनम्—

विक्षेप सत्रिराशि क्रान्तिवधो व्यासदलहृतो लिप्ता।
शोध्यास्तयो समदिशोयन्यदिशोस्तयो क्षेप्या॥

अक्षजदृक्कर्मसाधनम्—

विषुवच्छाया गुणिताद्विक्षेपाद् द्वादशोद्धृतात्सौम्यात् ।
फलमृणधन धनमृणं याम्यादुदयास्तमयलग्ने ॥

दृक्कर्मानयने किं स्थौल्यमिति न प्रतिपादितं ग्रन्थकारेण (वटेश्वरेण) किन्तु तत्संस्कृतग्रहे दोषो दीयते तत्र किं भवेदित्यपि न कथ्यते इति। आर्यभटोक्तायनाक्षदृक्कर्मणो. खण्डनं ब्रह्मगुप्तेन यत्कृतं तत्समाधानं तत्पक्षपातिनाऽनेन ग्रन्थकारेण न क्रियते केवलं तदुक्तं (ब्रह्मगुप्तोक्तं) खण्ड्यते तत्र स्वमतं प्रतिपाद्यते नहि, दृक्कर्मसंस्कारे ब्रह्मगुप्तेन यदभिहितं तद्भिन्नक्रियाकरणे न क्वापि युक्तिरिति ॥ ४२ ॥

हि. भा—इष्ट समय में सूर्योदय और सूर्यास्तकाल में औदयिक ग्रह में ग्रह के दृक्कर्म-संस्कार ब्रह्मगुप्त ने जो किया है सो ठीक नहीं है ॥

उपपत्ति

ब्रह्मगुप्त ने पहले आयन दृक्कर्म साधन करके ग्रह में उसके संस्कार कर पीछे अक्षज दृक्कर्म साधन किये हैं। उत्तरशर में आयनदृक्कर्म संस्कृतग्रह में अक्षज दृक्कर्मकला को घटाने से दक्षिण शर में जोड़ने से उदयलग्न होता है। अस्त लग्न साधन में उत्तरशर में आयनदृक्कर्म संस्कृत ग्रह में अक्षज दृक्कर्म कला को जोड़ने से दक्षिण शर में घटाने से और सपड्भ (६ राशि जोड़ने से) ग्रह पश्चिम क्षितिज में अस्त रहने पर पूर्व क्षितिज में जो लग्न होता है वह भास्कर के मत में अस्त लग्न है। यहां ब्रह्मगुप्त ने उसमें ६ राशि घटाकर पश्चिम क्षितिज में ग्रहास्त रहने पर जो लग्न होता है उसी को ग्रहास्त लग्न माना है। यहां पर ब्रह्मगुप्तोक्त आयन दृक्कर्म साधन अधोलिखित है—

"विक्षेपसत्रिराशि क्रान्तिवधो व्यासदलहृतो लिप्ताः।" इत्यादि

अक्षज दृक्कर्म साधन—

"विषुवच्छाया गणिताद् विक्षेपाद् द्वादशोद्धृतात्सौम्यात्।" इत्यादि

दृक्कर्म साधन में क्या त्रुटि है इस बात को वटेश्वर नहीं कहते किन्तु दृक्कर्म संस्कृत ग्रह में दोष देते हैं वहां क्या होना चाहिये सो भी नहीं कहते हैं। आर्यभटोक्त आयन दृक्कर्म और अक्षज दृक्कर्म का खण्डन ब्रह्मगुप्त ने जो किया है उसका समाधान आर्यभट पक्षपाती वटेश्वराचार्य ने नहीं किया केवल खण्डन करते हैं। अपना मत कुछ भी नहीं कहते हैं। दृक्कर्म-संस्कार के विषय में ब्रह्मगुप्त ने जो कहा है उसके सिवाय दूसरा क्या हो सकता है ॥ ४२ ॥

इदानीं चन्द्रशृङ्गोन्नतौ ब्रह्मगुप्तोक्तस्पष्टभुजं खण्डयति

भानुभुजादियोगाच्चन्द्रे शुक्ले प्रकल्पितं तेन ।
नो लग्नभुजानुगतं वेत्ति न शुक्लं सुतो जिष्णोः ॥ ४३ ॥

वि. भा.—भानुभुजादियोगात् (रविभुजचन्द्रभुजयोः संस्काररूपात्स्पष्टभुजात्) तेन (ब्रह्मगुप्तेन) चन्द्रे शुक्लं प्रकल्पितं, लग्नभुजानुगतं (लग्नभुजसम्ब-

ृघत) नो ग्रतो जिष्णो सुत (जिष्णुपुत्रो ब्रह्मगुप्त) शुक्ल (शुक्लाङ्गुल) न वेत्तीति ।। ४३ ।।

उपपत्ति

प्रथममेतदर्थं ब्रह्मगुप्तमत प्रतिपाद्यते । ब्राह्मस्फुटसिद्धान्ते तदुक्तवाक्यम्—

पृथगन्तरसयोगो भुजो यतोऽर्कात् शशी समान्यदिशो ।
दृग्ज्यावर्गात् स्वात् पृथक् स्ववर्गं विशोध्य पदे ॥
वियुतसहिते रवीन्द्वोरेकान्यकपाल सस्ययो राद्य ।
रविशशिदृक्शङ्क्वन्तरमन्योऽद्यू दृग्यशङ्क्वैक्यम् ॥
आद्यान्यवर्गयोर्युतिमूल पूर्वापरा भुजात्कोटि ।
भुजकोटिकृतियुतिपद तिर्यक् कर्णोऽस्य चन्द्रोऽग्रे ॥

रविचन्द्रयोर्भुजयो समान्यदिशोरन्तरसयोगो क्रमश स्पष्टभुजो भवेत् । रवितो यद्दिशि चन्द्र सैव स्पष्टभुजदिग् ज्ञेया। स्वस्वदृग्ज्यावर्गे स्वस्वभुजवर्ग-विहीने पदे तदा पूर्वापररेखाया तयो रवीन्द्वो कोटी भवत । एकान्यकपाल-सस्थयो रवीन्द्वो कोटयोर्वियुतसहिते ये भवत स ग्राद्य । रविचन्द्रदृक्शङ्क्वन्तर मन्यसज्ञक । अर्थाद् यदि रविचन्द्रौ क्षितिजादुपरि भवेता तदा तयोर्दृक्शङ्कू एक-जातीयौ भवतोऽतस्तयोरन्तरमन्यसज्ञ भवति । यद्येक क्षितिजादुपरि, ग्रन्य क्षिति-जादधस्तदाऽध स्थस्यादृक्शङ्कुरूर्ध्वस्थस्य दृक्शङ्कू । ग्रोतऽनयोरैक्य तदाऽन्यो भवति । भुजकोटिवर्गयोगपद तियक् कर्ण । कर्णाग्रे चन्द्रबिम्बमस्तीति ।।

अत्र कस्मिन् गोले रविचन्द्रौ प्रकल्पबिम्बान्तरसूत्ररूप कर्ण साध्यते । रविकेन्द्राच्चन्द्रशङ्कूपरि यो लम्बस्तन्मूलाच्चन्द्रबिम्बकेन्द्रपर्यन्तमन्यसज्ञम् । लम्बमूलात्पूर्वापररेखाया समानन्तरा या रेखा तदुपरि रविकेन्द्रात्कृतो यो द्वितीयो लम्बस्तन्मूलात्प्रथमलम्बमूलपर्यन्तमेवाऽद्यसज्ञा । तयोराद्यान्ययोर्वर्गयुते पद द्वितीयलम्बमूलाच्चन्द्रबिम्बकेन्द्रपर्यन्त रेखा द्वितीयलम्बोपरि लम्बरूपा भवेद् (रे० ११ अ० युक्तया) द्वितीयलम्बश्च पूर्वसाधितस्पष्टभुजसम । तयोर्वर्गयोग-पदमेकगोलीय-रविचन्द्रयोर्बिम्बान्तरसूत्र कर्णो भवति। एवमत्र भुजकोटिकर्णा यस्मिन् धरातले तत् क्षितिजधरातले समप्रोतधरातलवत्र लम्बरूपमतो द्रष्टु समुखे नेद क्षेत्र मादर्शवत् । अतएवाऽस्यक्षेत्रस्य स्वशृङ्गोन्नतो भास्करेण खण्डन कृतम् । शृङ्गोन्नत्युत्तराधिकारे ब्रह्मगुप्तेन—

'स्यर्केन्द्वर्धभुजज्या द्विगुणाऽर्केन्द्वन्तर भवति कर्ण ।
तद्वर्गान्तरपदमिदमिन्दुभुजाग्रान्तर कोटि ॥'

इत्यनेन प्रकारान्तर प्रदर्शितम् । इत्यपि समीचीन नास्ति । भास्करब्रह्म-गुप्तयो प्रकारेण शृङ्गोन्नतिर्न समीचीनेति कमलाकरेण सिद्धान्ततत्त्वविवेके

स्पष्टं प्रतिपादितम् । एकगोलस्थरविचन्द्राभ्या यत्सर्वं कार्यं कृतं तन्न युक्त स्वस्वगोलस्थिताभ्यामेव ताभ्या सर्वं कार्य (परिलेखादिक) समीचीन भवेत् वटेश्वराचार्यकथनमत्र समीचीनमिति पूर्वोपपत्तिदर्शनेव स्फुटमिति ॥

हि भा —रवि और चन्द्र के भुजसस्कार रूप स्पष्ट भुज से चन्द्र मे जो शुक्लाङ्गुल की कल्पना ब्रह्मगुप्त ने की है लम्बभुज का अनुसरण नही किया गया अत ब्रह्मगुप्त शुक्ल को नही जानते हैं ॥

उपपत्ति

पहले इसके लिये ब्रह्मगुप्त मत का प्रतिपादन करते हैं। इसके सम्बन्ध मे उनका निम्नलिखित वाक्य है—

"पृथगन्तरसयोगौ भुजो यतोऽर्कात् शशी सामान्यदिशो" इत्यादि ।

रवि और चन्द्र के भुजो के एक दिशा मे अन्तर भिन्न दिशा मे योग करने से स्पष्ट भुज होता है। रवि से जिधर चन्द्र रहते है वही स्पष्टभुज की दिशा है। अपने अपने दृग्ज्या वर्ग मे अपने अपने भुजवर्ग को घटाकर मूल लेने से पूर्वापर रेखा मे रवि और चन्द्र की कोटि होती है। एक कपाल मे रवि और चन्द्र के रहने से कोटि के अन्तर भिन्न कपाल मे योग करने से जो होते है वह आद्य सज्ञक हैं। रवि और चन्द्र के दृक्शङ्क्वन्तर अन्य सज्ञक है। अर्थात् यदि रवि और चन्द्र दोनो क्षितिज से ऊपर हैं तो दोनो दृक्शङ्कु एकजातीय होते हैं इसलिये उन दोनो का अन्तर अन्य सज्ञक होता है। यदि रवि और चन्द्र मे एक क्षितिज से ऊपर और दूसरे क्षितिज से नीचे हैं तब नीचे वाले के अदृक्शङ्कु और ऊपर वाले के दृक्शङ्कु होते हैं। इसलिये दोनो के योग यहा अन्य होता है। आद्य और अन्य के वर्ग योग मूल पूर्वापर कोटि होती है। भुज और कोटि के वर्गयोग मूल तिर्यक्रूप कर्ण होता है। इस कर्ण के अग्र मे चन्द्रबिम्ब केन्द्र है ॥

एक गोल मे रवि और चन्द्र को मान कर बिम्बान्तर सूत्ररूप कर्ण साधन करते है। रवि केन्द्र चन्द्रशङ्कु के ऊपर जो लम्ब होता है उसके मूल से चन्द्रबिम्ब केन्द्र तक अन्य सज्ञक है। लम्बमूल से पूर्वापर रेखा की जो समानान्तर रेखा होती है रविकेन्द्र से उससे ऊपर जो द्वितीय लम्ब होता है उसके मूल से प्रथम लम्बमूल पर्यन्त रेखा आद्य सज्ञक है (रेखा गणित युक्ति से) आद्य और अन्य के वर्ग योगमूल द्वितीय लम्ब मूल से चन्द्र बिम्ब केन्द्र पर्यन्त रेखा द्वितीय लम्ब के ऊपर लम्ब रूप होती है (रे० ११ अ० युक्ति से) और द्वितीय लम्ब स्पष्ट भुज के बराबर है।

दोनो के वर्ग योगमूल एकधरातलीय रवि चन्द्र का बिम्बान्तर सूत्र कर्ण होता है। यहां भुजकोटि और कर्ण जिस धरातल मे है वह क्षितिज धरातल मे सम प्रोत धरातल की

तरह लम्ब रूप नही है। इसलिये दर्शक के सामने यह क्षेत्र ऐनक की तरह नहीं होता है। इसलिये इस क्षेत्र का खण्डन भास्कराचार्य ने सिद्धान्तशिरोमणि मे किया है। शृङ्गोन्नति के उत्तराधिकार मे ब्रह्मगुप्त ने—

"व्यर्केन्द्वर्घभुजज्या द्विगुणार्केन्द्वन्तर भवति कर्ण।" इत्यादि

इससे प्रकारान्तर दिखलाया है। परन्तु यह भी ठीक नही है। भास्कर और ब्रह्मगुप्त के प्रकार से शृङ्गोन्नति ठीक नही होती है। ये बात सिद्धान्ततत्त्वविवेक मे कमलाकर ने स्पष्ट कही हैं। एक गोलस्थ रवि और चन्द्र से सब काम किये गये हैं उचित तो था स्वस्व-गोलस्थ रवि और चन्द्र पर से परिलेखोपयुक्त उपकरण का साधन करना पर ऐसा नही किया गया है। यहा पर ग्रन्थकार (वटेश्वर) का खण्डन ठीक है। यद्यपि वे कारण नही बतलाते हैं तथापि उनका कथन ठीक है ॥ ४३ ॥

इदानी ब्रह्मगुप्त दूषयति

जिष्णुसुतदूषणाना सख्या वक्तु न शक्यते यस्मात्।
तस्मादयमुद्देशो बुद्धिमताऽन्यानि योज्यानि ॥ ४४ ॥
एकमपि न वेत्ति यतो जिष्णुसुतो गणितगोलानाम्।
न मया प्रोक्तानि तत पृथक् पृथक् दूषणान्येषाम् ॥ ४५ ॥

वि भा—यस्मात् कारणात् जिष्णुसुतदूषणाना (ब्रह्मगुप्तदोषाणा) सख्या (परिमिति) वक्तु (कथयितु) मया न शक्यते, तस्मात् कारणात् अय पूर्वप्रतिपादितो दोषोच्चय उद्देश उदाहरणरूप एव ज्ञेय, तदुदाहरणबलेन बुद्धिमताऽन्यानि दूषणानि योज्यानि। जिष्णुसुत (ब्रह्मगुप्त) यतः (यस्मात्कारणात्) गणितगोलानाम् (गणिताना गोलाना च) एकमपि विषय न वेत्ति (जानाति) तत (तस्मात् कारणात्) एषा (ब्रह्मगुप्ताना) पृथक् पृथक् दूषणानि (दोषकदम्बकानि) मया न प्रोक्तानि (न कथितानि) ॥ ४४—४५ ॥

हि भा—जिस कारण से ब्रह्मगुप्त के दोषो की सख्या हम नही कह सकते हैं इसलिये बुद्धिमान लोग दूसरे उपदेशो की योजना करें ॥ ४४ ॥

जिस कारण से ब्रह्मगुप्त गणित और गोल के एक विषय को भी नही जानते हैं इसलिये इनके दोषों को हमने अलग अलग नहीं कहा है ॥ ४५ ॥

इदानी पुनर्ब्रह्मगुप्त दूषयति

नो कालविधि गोल नो तद्भ्रमणं न चाऽपि प्रत्यक्षम्।
गोलानुगतं सर्व भ्रमणाज्ञानाद्धेयमीदृशो ह्यस्य ॥ ४६ ॥

वि. भा.—जिष्णुसुतः कालविधि (कालगणनादिकं) नो वेत्ति, गोलं नो वेत्ति तद्भ्रमण (गोलभ्रमण) प्रत्यक्षमपि न किमपि वेत्ति सर्वं वस्तु पूर्वप्रतिपादित कालविन्यादिक गोलानुगतं (गोधीन) अस्ति, भ्रमणाज्ञानात् (गोलभ्रमणाज्ञानात्) अस्य (ब्रह्मगुप्तस्य) इयमीदृशी दशा (वस्त्वनभिज्ञता) अस्तीति ॥४६॥

इति श्रीमदानन्दपुरीयमहदत्तसुतवटेश्वरविरचिते स्वनामसञ्ज्ञिते स्फुटसिद्धान्ते मध्यगति. प्रथमोऽधिकार समाप्त ॥

इति दशमोऽध्याय.

हि. भा —ब्रह्मगुप्त कालविधि को नही जानते हैं और गोल को तथा गोलभ्रमण को नही जानते हैं और प्रत्यक्ष (ग्रहणादि) को भी नही जानते हैं। सर्वविषय गोलाधीन है गोल के अज्ञान के कारण ब्रह्मगुप्त की इस तरह की दशा (हर एक विषय की अनभिज्ञता) है ॥

इति श्रीमदानन्दपुरीय महदत्त सुत वटेश्वर-विरचित अपने नाम वाले स्फुट-सिद्धान्त (वटेश्वरसिद्धान्त) मे मध्यगति नामक प्रथम अधिकार समाप्त हुआ ॥

दसवा अध्याय समाप्त



वटेष्वर सिद्धान्तः

स्पष्टाधिकार

वटेश्वर सिद्धान्तः

स्पष्टाधिकारः

तत्रादौ स्फुटीकरणस्य प्रयोजनमाह ।

नीचोच्चवशाद् द्युचरः कक्ष्यायां दृश्यते न मध्यसमः ।
यस्मादतः स्फुटत्वं नीचोच्चविधानतो वक्ष्ये ॥१॥

वि. भा.—यस्मात्कारणात् नीचोच्चवशात् (नीचोच्चाकर्षणवशात्) द्युचरः (स्पष्टग्रहः) कक्ष्यायां (कक्षावृत्ते) मध्यसमः (मध्यग्रहतुल्य) न दृश्यतेऽतो नीचोच्चविधानत (नीचोच्चनियमत) स्फुटत्व (स्पष्टीकरण) वक्ष्ये ॥

अत्र तदुक्त भवति कक्षावृत्ते मध्यमग्रह परिकल्पित । न च कक्षावृत्ते पारमार्थिको ग्रहो मध्यमगत्या प्रतिवृत्ते भ्रमति, किन्तु स्पष्टगत्या प्रतिवृत्ते परिभ्रमन् कक्षावृत्ते दृश्यते, अतोऽह तादृश स्पष्टीकरण वक्ष्ये येन प्रतिवृत्तस्थो ग्रहः कक्षावृत्ते दृक्तुल्यो भवेदिति ॥१॥

हि भा—अब स्फुटगति अध्याय आरम्भ किया जाता है इसमे पहले स्पष्टीकरण के प्रयोजन कहते हैं ।

जिस कारण नीच और उच्च के वश से स्पष्टग्रह कक्षावृत्त मे मध्यमग्रह के बराबर नही देखे जाते है इसलिए नीच और उच्च के नियम से स्फुटीकरण को मैं कहता हूं ॥१॥

कक्षावृत्तस्थ स्पष्ट ग्रह मध्यमगति से प्रतिवृत्त मे भ्रमण करते हैं, किन्तु स्फुटगति से प्रतिवृत्त मे भ्रमण करते हुए ग्रह कक्षावृत्त मे देखे जाते हैं इसलिए मैं उस तरह के स्पष्टीकरण को कहता हू जिससे प्रतिवृत्त स्थितग्रह कक्षा वृत्त में दृक्तुल्य हो ॥१॥

इदानी स्पष्टीकरणादि-सर्वग्रहगणितस्य ज्यामूलक [illegible]

अर्धज्या रसबाणः करशशिशशिनो गजाङ्क[illegible] ।
वेदोत्कृत्यो व्योमस्तम्बेरम बाहवो रसाब्धि[illegible] ॥२॥

नेत्र नवहुतभुजो गजजलधिकृताः [illegible] ।
नन्दशिलीमुखबाणाः शरशरयुनवः [illegible] ॥३॥

तत्त्वागाः खाष्टनगाः शराग्निनागा [illegible] ।
रामाग्न्यङ्का अगगजनन्दाः कुवेद [illegible] ॥४॥

शररसशिवा. स्तम्बेरम [illegible] ।
सप्तत्तुं सप्त शशिन स्थिर[illegible] ॥५॥

नवखाङ्क भुवो रस शर नव चन्द्राः करखशून्य कराः ।
नगकृत खकरा द्विनव व्योम भुजाः सप्त विश्व नेत्राणि ॥ ६ ॥

खधृति यमा वेद भुजा द्विभुजा रसषड् भुजाक्षीणि ।
वसुखाग्नि यमाः खशरत्रिभुजा आकाश नन्द गुणयमलाः ॥ ७ ॥

खगुण जिनाः खागजिना नवाभ्रतत्त्वाग्न्यगाब्धि तत्वानि ।
वेदाष्टेषुयमाः शशिद्वयङ्कभुजा नगेषु रस यमलाः ॥ ८ ॥

द्विनव रस यमाः सप्तद्विनग भुजाश्चन्द्र षट् नगाक्षीणि ।
वेदाङ्क भानि रस यमवसु नेत्राण्यष्ट पक्ष वसु यमलाः ॥ ९ ॥

नख वस्वष्ट भुजा नवशशि नन्द यमा गजाब्धि नवदस्राः ।
नग सप्ताङ्क भुजाः कृत खखरामाः शशि गुणाभ्रहव्यभुजः ॥ १० ॥

सप्त विशिखा भ्ररामास्त्रिनाग खगुणा नवाभ्रशशिरामाः ।
भूगुण भूगुणा भ्रष्टाब्ध्येकगुणा रसधरा धरैकगुणाः ॥ ११ ॥

विशिख विशिख बाह्वग्नयो बाहु धरित्री धराक्षि हव्यभुजः ।
क्रमपरिपाट्या जीवाश्छिद्रस्तम्बेरम द्विगुणाः ॥ १२ ॥

शर खसुरा नखवेदा वेद त्रिसुरा नगाब्धि गुण रामाः ।
खाङ्क त्रिगुणा भूनग नाकगृहा नेत्र नाग गुण रामाः ॥ १३ ॥

शशिनन्दाग्निगुणा भूखाब्धिगुणा रसकराब्धिहव्यभुजः ।
खाग्नि समुद्र हुताशीस्त्रिरूपब्धिगुणाः शराग्नि गुण रामाः ॥ १४ ॥

रसवह्निवेदरामा पर्वत वडवानलाब्धि हुतभुजः ।
सप्त गुण वेदरामा नग गुण वेदाग्नयो लिप्ताः ॥ १५ ॥

आसा विकलास्तिथयो नन्दभुजः ववस्थयः पयोदशराः ।
रस विशिखाः सप्तशरा अग्निशरान्धिकृता शराक्षीणि ॥१६॥

नवविशिखाः पञ्चयमाः खकृता पञ्चाब्धयो द्विरदरामाः
धृतिरिपु वेदा मङ्गल विशिखा पक्षे पवङ्खुरङ्गगुणाः ॥१७॥

भूबाणरसबाणास्तत्त्वानि जलाग्नयः कुभुजः ।
नगवेदा नन्दकृता वसुनेत्राण्यग्नि जलधयो दन्दाः ॥ १८ ॥

विशिख शरा नेत्रशराः कुभुजा द्वियमा हुताशनावेदे- ।
पवोऽनलनेत्राण्यब्धियमा द्वीपचो रससमुद्राः ॥ १९ ॥

अङ्गान्यग्नि पृथेवका वेदा नव वह्न्योऽङ्गागुणाः ।
रूप सायकवेदा कुशरा गजभूमय शराः सूर्याः ॥२०

गजरामा नेत्रयमास्तत्त्वानि कृताब्धयः कुनेत्राणि ।
विश्वे भुजा सायकनिगमा गुणबाहवस्तिथयः ॥२१ ॥

खभुजा नन्दगुणा दश त्रिशरा नन्दाऽब्धयोऽक्षशराः ।
विश्वे कुधृता अतिधृतिरङ्गानि गुण अब्धिनेत्राणि ॥ २२ ॥

सप्ताध्वर्यो धृतिर्नगविशिखा गुणसागराः शरगुणाश्च ।
दन्ता रामा रामकृता रामेषवो वासराः कुकृताः ॥ २३ ॥

सूर्यानन्द समुद्रा रदा नखा वह्नि चन्द्रमसः ।
ईशा मनवोऽग्निभुजा रसाग्नयो वेदसायका विधृतिः ॥ २४ ॥

वेदकृता वियदिषवः खं सूर्वेदा नगा रुद्राः ।
अष्टिर्नेत्रभुजा नव नेत्राण्यगवह्नयो विशिखवेदाः ॥ २५ ॥

पञ्चशराः षड्तवो नग मुनयो नन्द कुञ्जरास्त्रिदशाः ।
नगरुद्रा रदचन्द्रा वसु मनवो वेदरस चन्द्राः ॥ २६ ॥

द्वयष्टभुवः शून्य नखाः खाक्षिभुजा खाब्धिनेत्राणि ।
कृतकृतयस्त्र्यष्टभुजा रसखगुणा व्योमगीर्वाणाः ॥ २७ ॥

वेदेषुगुणा नवनगरामाः शराब्धयो रससमुद्राः ।
खाङ्काब्धयोऽङ्क कुञ्जरवेदा धृतिसायका गजाब्धिशरा. ॥ २८ ॥

नवनग विशिखा जलधर शरधृतवो गुणकृताऽङ्गानि ।
रसनगरसाः खशशधरनागाः पृषत्काब्धिधरणिधरः ॥ २९ ॥

खाब्धिनागा रसकुनगास्त्रिशरगजा जलदनन्द वसवश्च ।
वसुभुज नन्दा नगरसविलानि रसखाभ्र हरिणाङ्कः ॥ ३० ॥

ऋत्वब्धिदिशो भगाष्टय भुवोऽङ्कनेत्र शशिचन्द्रमसः ।
कुनग शिवा विश्वार्का रसतत्त्वभुवः खखाग्निरूपाणि ॥ ३१ ॥

वेदकृताग्नि शशाङ्का नवाष्टविश्वे शराग्निकृत चन्द्राः ।
वसष्टु मनवो मतिययोऽब्ध्यग शरचन्द्रा द्विबाहुरस चन्द्राः ॥ ३२ ॥

खना गरस भुवो भूमुनग शशिनो रसाग नग चन्द्रमस ।
भगशशिधृतयोऽगरसद्विप शशिनोऽगैकनन्दरजनीशाः ॥ ३३ ॥

सप्ताङ्गाङ्कभुवोऽष्टकुखभुजा व्योमागशून्यनेत्राणि ।
द्वीनभुजाः कृतनग शशिनेत्राण्यङ्गाक्षिबाहुनेत्राणि ॥ ३४ ॥

अङ्गागाक्षि भुजा रदरामभुजा रस पञ्चाग्नि नयनानि ।
नवरामजिना गुणनव सिद्धा सप्ताब्धितत्त्वानि ॥ ३५ ॥

द्वयघ्न्युगुरुकृतयः पर्वतशराङ्क नेत्राणि रुद्रभानीह ।
सप्ताङ्गभानि यमयम नागभुजा नगनगाष्टकरा ॥ ३६ ॥

सुरनव भुजा नवाष्ट छिद्राक्षोण्यब्धि जलधि शून्यगुणाः ।
एग कुगुणा रसपञ्चबाह्वग्नयश्चन्द्रराम गुणरामाः ॥ ३७ ॥

नग गुणवेद हुताशा विकला सन्ति स्थिताः पृथक् चैषाम् ।
वसव कुभुजाः खगुणाः स्यु· कुरामा जिनाः खरामाश्च ॥ ३८ ॥

पञ्चशरा नेत्रगुणा रामा नवबाहवो द्विप समुद्राः ।
मूर्वसवो द्वौ चन्द्रा नगवेदाः षड्भुजा अचल बाणा ॥ ३९ ॥

विंशतिरिषु हव्यभुज कुकृता वसवोऽद्रयोऽक्षभुजा ।
रामा कुगुणा वर्गा सप्ताला पञ्च पञ्चशराः ॥ ४० ॥

वेदगुणाश्च पृषत्काः सिद्धा नवबाहव. कुभुजाः ।
नव विशिखा रामभुजा इलाग्नयो वह्नितयनानि ॥ ४१ ॥

ख नवचन्द्रा द्विभुजा रसरसा नन्दवह्नयोऽगभुजाः ।
त्रिशरा नन्दपृषत्का गुणाब्धय. सायका विशिखाः ॥ ४२ ॥

खहुता. कुशरा मङ्गलहव्यभुजो वसुशरा द्विशरा ।
व्योमभुजा नवचन्द्राः खशराः कुशरा दृगशीणि ॥ ४३ ॥

निकरा द्विशराश्छिद्रप्रनिम्नगेशा इनश्चन्द्रः ।
अष्टि पञ्चशरा नगबाणाग्निभुजा दिशोऽङ्कभुवः ॥ ४४ ॥

अष्टहुता रसरामास्त्रिकृता अचला खाऽब्धयोऽङ्ककृताः ।
नवविशिखा रसनेत्राण्यङ्गाग्न्येकेषवोऽब्धयोऽङ्कभुवः ॥ ४५ ॥

शरवेदा हव्यभुजस्तिथयोऽङ्कभुज कृताब्धयस्त्रिज्या ।
अगगुणवेदहुताशा· कलिका विकलाः समुद्र जलधय· सप्त ॥ ४६ ॥

जलधाष्ट शशिधृति शशिनः कलिका शराग्नयो विकलाः ।
त्रिज्याकृतिरष्टनव त्रिभुवा कथिता गणार्कजिनाशज्या. ॥४७ ॥

गणितवशगास्तु जीवा षण्णवति प्रोदिताः क्रमेणैव ।
करणीमूलग्रहणात्तुल्यत्वं प्रथमजीवया धनुष. ॥ ४८ ॥

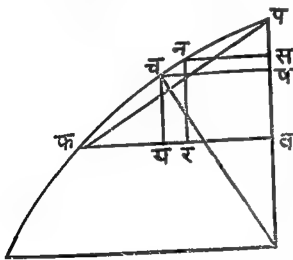
एवामर्था स्पष्टा एव।

अत्रोपपत्ति ।

अन्येराचार्यै पदमध्ये २२५' कला तुल्यान्तरे चतुर्विंशत्यो जीवा साधयित्वा पठिता सन्ति एभिर्ग्रन्थकारै षण्णवति सख्यका जीवा कलात्मिका पठिता याश्चोपरिलिखिता सन्ति । उपर्युक्तज्याना पाठे किं बीजमिति कथ्यते, त्रिज्योत्क्रमज्या निहतेर्दलस्य मूल तदर्धांशकशिञ्जिनी स्यादित्यादिना क्रमोत्क्रमज्याकृतियोगमूलान्मूलमित्यादिना वा, त्रिज्यार्ध राशिज्येत्यादिना सर्वासा जीवाना ज्ञान सुलभेन भविष्यति । प्राचीनै पूर्वोक्तरीत्यैव सर्वासा जीवाना मानानि साधयित्वा पठितानि, नवीनानां मतेनापि तज्ज्ञान सुखेन भवितुमर्हति । २२५' कलान्तरितचतुर्विंशति जीवा पाठे "जीवा स्वसप्तांशयुगांशहीना द्विघ्नी चे"त्यादि प्रकारो वा

"ज्यपिण्डमौर्व्या ययुतेन लब्धमि" त्यादि प्रकार आश्रयणीय । ६६ सख्यक जीवा ज्ञानानसरे "२ ज्याइ—$\frac{२ ज्याइ}{\frac{त्रि}{प्रउज्या}}$=अग्रज्या+पृज्या" तत्प्रथमोत्क्रमज्या त्रिज्या भक्ता यल्लब्ध तच्छेशेनाग्रज्या पृष्ठज्ययोर्योग ज्ञात्वा तत्र पृष्ठज्याया शोधनेनाग्रज्याया ज्ञान भवेदेव सर्वासा जीवाना ज्ञान सुलभेनैव भवेत्पाटी—गणितरीत्या वा ज्ञान कृत्वा पाठे पठिता —

अथ पठितज्याना स्वरूपदर्शनेन ज्ञायते यद् यथा पदादितश्चापगतिर्वर्धते तथा ज्यागतिरल्पा भवति । कथमिति तदुच्यते—



चित्र न० १

प च चापम्=च फ चापम् ।

द्विगुणित प च चापपूर्णज्या=प फ रेखा प फ व जात्य त्रिभुजे प फ कर्णार्धविन्दु =ल तदा फ र=र व =न स, न स=फ र एतत्सम्बन्धि चापयोर्मध्ये प न< न फ अर्थात् २ न प<प फ चाप, २न स=फ व अतस्तुल्यचापवृद्धौ तुल्य ज्यावृद्धिर्न भवतीति निश्चितम् ।

तथा फ र=र व फ य <य व=च प . फ य<च प परन्तु प च= फ च अत सिद्ध यच्चापवृद्धितो ज्यावृद्धिरल्पा भवतीति ।

हि भा—अब स्पष्टीकरणादि सब ग्रह गणित के मूलभूत ज्याओ को कहते हैं । वृत्तपाद मे ६६ जीवाओ का पाठ किया है जिनके मान श्लोको मे वर्णित हैं । उनके अर्थ स्पष्ट होने के कारण नहीं लिखे जाते हैं ।

उपपत्ति

अन्य आचार्य (सूर्यसिद्धान्तकार ब्रह्मगुप्त प्रभृति) ने पदमध्य मे २२५' कलान्तरित पर चौबीस ज्याओ के मान साधन कर पठित किये हैं । ये ग्रन्थकार छियानवे कलात्मकज्या विकला सहित पठित किए है जो श्लोको म वर्णित हैं ये जीवायें किन तरह साधन की गई सो कहते हैं । 'क्रमोत्क्रमज्या कृति योगमूलाद्दल तदर्धांशकशिञ्जिनी स्यात्' इनसे अथवा "त्रिज्योत्क्रमज्या निहतेर्दलस्य मूल तदर्धांशक शिञ्जिनी वा," तथा 'त्रिज्यार्धं राशिज्या' इत्यादि से सब

ज्याओं के ज्ञान सुलभ ही से हो जायगा, प्राचीनाचार्य ने इन्हीं रीतियों से सब ज्याओं के मान साधन कर पठित किये हैं। नवीन मत से भी उनके ज्ञान सुलभ ही से हो जाते है । २२५' कलान्तरित चौबीस ज्याओं के पाठ में 'जीवा स्वमप्तारियुगाद्यहीना द्विघ्नी च पूर्वज्यकया' इत्यादि प्रकार का अथवा 'त्र्यंविघ्न मौर्व्या अयुतन लब्ध' इत्यादि प्रकार का आश्रयण करना चाहिए। वहां त्रिज्या = ३४३८ है। ९६ सस्यक जीवाओं के ज्ञान के लिए प्रथमोत्क्रमज्या एतदाधारक (९६ सस्यक ज्याधारक) लेकर अग्रज्या और पृष्ठज्या के योग ज्ञान कर उसमें पृष्ठज्या को घटाकर अग्रज्या ज्ञान करना अथवा अग्रज्या और पृष्ठज्या घात सशोधक प्रकार से ज्ञान कर उसमें पृष्ठज्या से भाग देने से अग्रज्या होगी। इस तरह सब जीवाओं का ज्ञान हो जायेगा। अथवा पाटीगणित रीति से जीवाओं को साधन कर पठित किये।

पठित ज्याओं के स्वरूप देखने से मालूम होता कि पदादि से ज्यों ज्यों चाप गति बढ़ती है त्यों त्यों ज्यागति अल्प होती है। क्योंकि ऐसा होता है उसके लिए युक्ति चित्र १ देखिए।

प च चाप = च फ चाप, द्विगुणित प च चाप की पूर्णज्या = प फ रेखा, प फ व जात्य त्रिभुज में प फ कर्णार्धबिन्दु = स, तब भ र = र व = न स, न स = फ र एतत्सम्बन्धी चापों म प न < न फ अर्थात् २ न प < प फ चाप, २ न स = फ व अतः तुल्य चाप वृद्धि में तुल्य ज्यावृद्धि नहीं होती है यह सिद्ध हुआ। तथा फ र = र व . फ म < य व = च प फ य < च प परन्तु प च = फ च इसलिए सिद्ध हुआ कि चापवृद्धि से ज्यावृद्धि अल्प होती है॥

पठितज्यासु स्विष्टज्या ज्ञानात्तत्पूर्वाग्रिमज्ययोर्घातानयनं सशोधकेन सिद्धान्तशिरोमणेष्टिप्पण्यां कृतं यथा इष्टचापम् = इ । प्रथमचापम् = प्र। तदा ज्या(इ—प्र) = पृष्ठज्या, ज्या(इ+प्र) = अग्रज्या अनयोर्घातं पृष्ठज्या × अग्रज्या = ज्या (इ—प्र) × ज्या (इ+प्र) चापयोरिष्टयोरित्यादिना

$$\frac{(\text{ज्याइ कोज्याप्र} - \text{ज्याप्र कोज्याइ})}{\text{त्रि}} \times \frac{(\text{ज्याइ कोज्याप्र} + \text{ज्याप्र कोज्याइ})}{\text{त्रि}}$$

योगान्तरघातस्य वर्गान्तरसमत्वात्

$$\frac{\text{ज्या}^2\text{इ कोज्या}^2\text{प्र} - \text{ज्या}^2\text{प्र कोज्या}^2\text{इ}}{\text{त्रि}^2}$$

$$= \frac{\text{ज्या}^2\text{इ (त्रि}^2 - \text{ज्या}^2\text{प्र)} - \text{ज्या}^2\text{प्र (त्रि}^2 - \text{ज्या}^2\text{इ)}}{\text{त्रि}}$$

$$= \frac{\text{ज्या}^2\text{इ. त्रि}^2 - \text{ज्या}^2\text{इ ज्या}^2\text{प्र} - \text{ज्या}^2\text{प्र त्रि}^2 + \text{ज्या}^2\text{प्र ज्या}^2\text{इ}}{\text{त्रि}^2}$$

= पृष्ठज्या + अग्रज्या

$$= \frac{ज्या^2 इ त्रि — ज्या^2 प्र त्रि^2}{त्रि^2} = \frac{त्रि^2 (ज्या^2 इ — ज्या^2 प्र)}{त्रि^2}$$

$=$ ज्या^{2} इ $-$ ज्या^{2} प्र $=$ अग्रज्या $\times$ पृष्ठज्या तत्त्वदक्षानगाशोना एवमत्राद्य-शिजिनीत्यादिना प्रथमज्या $=$ २२५३, प्रथमज्या^{2} $=$ ५०५६० स्वल्पान्तरात् अत ज्या^{2}इ $-$ ५०५६० $=$ अग्रज्या $\times$ पृष्ठज्या एतावता "ज्यावर्गात्खरसाक्षाभ्र वाणोनात्पूर्व-जीवया । अवाप्तमग्रजीवा स्यादवाप्त पूर्वशिजिनी" एवमासन्नजीवाभ्या गजाग्न्यब्धिगुणैर्मिते । व्यासार्धेऽवशिष्टज्या सिद्धयन्ति लघुकर्मणा" सशोधकोक्त-मुपपद्यते ।

एतद्ग्रन्थकारमतेन प्रथमज्यामानम् $=$ ५६'।१५" एतद्वशेनाग्रज्यापृष्ठ-ज्ययोर्घातानयन ज्ञेयम् । तत्र घाते पृष्ठज्यया भक्तेऽग्रज्या भवेदग्रज्यया भक्ते च पृष्ठज्या भवेदस्योपपत्ति क्षेत्रयुक्तापि भवतीति ।

यदि तत्र इ $=$ प्रथमचा तदा ज्या (इ $-$ प्र) $=$ पृष्ठज्या $=$ ०

तथा ज्या (इ $+$ प्र) $=$ ज्या २ प्र $=$ अग्रज्या परन्तु अग्रज्या $\times$ पृज्या $=$ ज्या^{2} इ $-$ ५०५६० $=$ ज्या^{2}इ $-$ ज्या^{2}प्र $=$ ० $=$ अग्रज्या $\times$ ० अग्रज्या $= \frac{0}{0}$ एतस्य मान किमपि नास्ति परन्तु यदा पृष्ठज्या $=$ ० तदा त्वग्रज्यामान भवत्यत सशोधकोक्त-प्रकारो न समीचीन इति विशेजरा खण्डते । तथा च तद्वाक्यम्—

> पूर्वज्या यत्र शून्या प्रथमगुणमितिश्चेज्ज्यका तर्हि विद्वन् !
> अग्रज्या नैव सिद्ध्यति प्रथमगदितात्सशोधकोक्तप्रकारात् ।।
> तस्मान्नित्य बुधेन्द्रैर्निखिलगणितजक्षेत्रयुक्तिप्रवीणैः ।
> कार्यो जीवाविधाने सुलभगणितजो मद्विधिश्चादरेण ।।

अत्र समाधीयते अग्रज्या $\times$ पृष्ठज्या $=$ ज्या^{2} इ $-$ ज्या^{2}प्र यदि पृष्ठज्या $=$ ० तदा अग्रज्या $\times$ ० $=$ ज्या^{2} इ $-$ ज्या^{2}प्र वर्गान्तरस्य योगान्तरघातसमत्वात् अग्र-ज्या $\times$ ० $=$ (ज्याइ $+$ ज्याप्र) (ज्याइ $-$ ज्याप्र) परमत्र ज्याइ $-$ ज्याप्र $=$ ० अत अग्र-ज्या $\times$ ० $=$ (ज्याइ $+$ ज्याप्र) $\times$ ० तत $\frac{अग्रज्या \times 0}{0} =$ अग्रज्या $=$ ज्याइ $+$ ज्याप्र

अतो लुप्तभिन्नसमीकरणेन तत्र सशोधकोक्तप्रकारेण अग्रज्यामानमुचितमेवागत मतोऽयप्रकार समीचीन एव नात्र कश्चिद्दोष इति ।।

अत्र विशेषेणाग्रज्या पृष्ठज्ययोर्योगानयनमभिहित यथा

इष्टचापम् $=$ इ । प्रथमचापम् $=$ प्र । अग्रज्या $=$ ज्या (इ $+$ प्र) पृष्ठज्या $=$ ज्या (इ $-$ प्र) अथ अग्रज्या $+$ पृष्ठज्या $=$ ज्या (इ $+$ प्र) $+$ ज्या (इ $-$ प्र) चाप योरिष्टयोरित्यादिना ।

$$= \frac{ज्याइ \times कोज्याप्र + ज्याप्र कोज्याइ}{त्रि} + \frac{ज्याइ कोज्याप्र — ज्याप्र कोज्याइ}{त्रि}$$

अग्रज्या+पृष्ठज्या

$$=\frac{\text{२ज्याइ कोज्याप्र}}{\text{त्रि}}=\frac{\text{२ज्याइ(त्रि—उप्र)}}{\text{त्रि}}$$

$$=\text{२ज्याइ}-\frac{\text{२ ज्याइ उप्र}}{\text{त्रि}}=\text{२ ज्याइ}-\frac{\text{२ ज्याइ}}{\frac{\text{त्रि}}{\text{उप्र}}}$$

$$=\text{२ज्याइ}-\frac{\text{२ ज्याइ}}{\text{४६७}}=\text{अग्रज्या+पृष्ठज्या । अत्र त्रि=३४३८,}$$

एतावता तदुक्तसूत्रमुपपद्यते ।

जीवा स्वपस्तारियुगाद्यहीना द्विघ्नी च पूर्वज्यकया विहीना ।
स्यादग्रजीवा बृहतीति सर्वा आसन्नजीवाद्वयतो भवन्ति ॥

अथ अग्रज्या+पृष्ठज्या=२ ज्याइ—$\frac{\text{२ ज्याइ}}{\text{४६७}}$ अत्र द्वितीयखण्डम् (१००००)

अनेन गुण्यते भज्यते च तदा २ ज्याइ—$\frac{\text{२ ज्याइ}\times\text{१००००}}{\text{४७६}\times\text{१००००}}$=२ ज्याइ

—$\frac{\text{ज्याइ}\times\text{२००००}}{\text{४६७}\times\text{१००००}}$=२ज्याइ—$\frac{\text{ज्याइ}\times\text{४३}}{\text{१००००}}$=अग्रज्या+पृष्ठज्या ।

एतावता "व्यधिग्रमौर्व्या अयुतेन लब्ध द्विघ्नज्यकाया प्रविशोध्य शेषम् ।
विश्लिष्य पूर्वज्यकाऽग्रजीवा वेद्याऽग्रमौर्व्या खलु पूर्व जीवा ॥"

इत्युपपद्यते ।

पठित ज्याओं में इष्टज्या से पूर्व और पर (पृष्ठज्या, अग्रज्या) जीवाओं के गुणनफल के साधन सिद्धान्तशिरोमणि की टिप्पणी में किये हैं । जैसे कल्पना करते हैं इष्टचाप =इ । प्रथमचाप=प्र तब पृष्ठज्या=ज्या (इ—प्र), अग्रज्या=ज्या (इ+प्र) दोनों के घात करने से पृष्ठज्या×अग्रज्या=ज्या (इ—प्र), ज्या (इ+प्र) चापयोरिष्टयोर्दोर्ज्ये इत्यादि से $\frac{\text{(ज्याइ. कोज्याप्र—ज्याप्र कोज्याइ)}}{\text{त्रि}}\times\frac{\text{(ज्याइ कोज्याप्र+ज्याप्र कोज्याइ)}}{\text{त्रि}}$ =अग्रज्या×पृष्ठज्या योगान्तर घात वर्गान्तर के बराबर होता है इस नियम से

$$\frac{\text{ज्या}^{2}\text{इ कोज्या}^{2}\text{प्र—ज्या}^{2}\text{प्र कोज्या}^{2}\text{इ}}{\text{त्रि}}=\frac{\text{ज्या}^{2}\text{इ (त्रि}^{2}\text{—ज्या}^{2}\text{प्र)—ज्या}^{2}\text{प्र (त्रि}^{2}\text{—ज्या}^{2}\text{प्र)}}{\text{त्रि}^{2}}$$

$$=\frac{\text{ज्या}^{2}\text{इ त्रि}^{2}\text{—ज्या}^{2}\text{इ ज्या}^{2}\text{प्र—ज्या}^{2}\text{प्र त्रि}^{2}\text{+ज्या}^{2}\text{प्र ज्या}^{2}\text{इ}}{\text{त्रि}^{2}}$$

$$=\frac{\text{ज्या}^{2}\text{इ त्रि}^{2}\text{—ज्या}^{2}\text{प्र त्रि}^{2}}{\text{त्रि}^{2}}=\frac{\text{त्रि}^{2}\text{ (ज्या}^{2}\text{इ—ज्या}^{2}\text{प्र)}}{\text{त्रि}^{2}}=\text{ज्या}^{2}\text{इ—ज्या}^{2}\text{प्र}$$ अग्रज्या×पृष्ठ-ज्या तत्त्वादस्त्रनवाग्नीना एवमत्राद्यशिञ्जिनी इससे २२५—$\frac{१}{३}$=प्रथमज्या ।

प्रथमज्या वर्ग = ५०५६० ∴ ज्या² इ — ज्या² प्र = ज्या² इ — ५०५६० = अज्या × पृज्या

इससे "ज्यावर्गाद्विरसाक्षाभ्र बाणोनात्पूर्वजीवया, अवाप्तमग्रजीवास्यादग्राप्तं पूर्वशिञ्जिनी । एवमासन्नजीवाभ्या गजाग्न्यब्धिगुणोमिते । व्यासार्धेऽत्र वनिपृज्या सिद्धयन्ति लघुकर्मणा" सशोधकोक्त उपपन्न होता है। ग्रन्थकार (वटेश्वर) के मत से प्रथम ज्यामान = ५६' । १५" इसके वश से अग्रज्या पृष्ठ ज्या के घात जानना चाहिये। उस घात में पृष्ठज्या से भाग देने से अग्रज्या होती है और अग्रज्या भाग देने से पृष्ठज्या होती है। इस की उपपत्ति क्षेत्र युक्ति से भी होती है।

यहां यदि इष्ट चा = प्रथम चा तब ज्या (इ — प्र) = पृष्ठज्या = ०, और ज्या (इ + प्र) = ज्या २ प्र = अग्रज्या परन्तु अग्रज्या × पृज्या = ज्या² इ — ज्या² प्र = ० = अग्रज्या × ० इसलिये अग्रज्या = $\frac{0}{0}$ इसका मान कुछ नहीं है परन्तु यहां अग्रज्या मान है अत सशोधकोक्त प्रकार समीचीन नहीं है यह विशेष प० सुधाकर द्विवेदी जी खण्डन करते हैं इसके विषय में उनके वचन यह हैं।

"पूर्वाज्या यत्र शून्या प्रथमगुणमितिश्चेज्ज्यका तर्हि विद्वन् ।" इत्यादि

यहां सशोधक प्रकार के समाधान करते हैं।

अग्रज्या × पृज्या = ज्या² इ — ज्या² इ यदि पृष्ठ ज्या = ० तब अग्रज्या × ० = ज्या² इ — ज्या² प्र परन्तु वर्गान्तर योगान्तर घात के बराबर होता है अग्रज्या × ० = (ज्या इ + ज्याप्र) (ज्याइ — ज्याप्र) परन्तु ज्याइ — ज्याप्र = ० अत अग्रज्या × ० = (ज्याइ + ज्याप्र) × ०

इसलिये $\frac{\text{अग्रज्या} \times 0}{0}$ = अग्रज्या = ज्याइ + ज्याप्र अत लुप्तभिन्न समीकरण से सशोधकोक्त प्रकार से यहां अग्रज्या का मान उचित ही आया। इसलिये यह प्रकार समीचीन ही है, इसमें कुछ भी दोष नहीं है।

यहां पर विशेष अग्रज्या और पृष्टज्या के योगान्तर किये हैं। जैसे—कल्पना करते है इष्टचाप = इ। प्रथम चाप = प्र। अग्रज्या = ज्या (इ + प्र) पृज्या = ज्या (इ — प्र) तब अग्रज्या + पृज्या = ज्या (इ + प्र) + ज्या (इ — प्र) चापयोरिष्टयोरित्यादि से

$$= \frac{\text{२ ज्याइ.कोज्या प्र} + \text{ज्या प्र कोज्याइ}}{\text{त्रि}} + \frac{\text{ज्याइ कोज्या प्र} - \text{ज्याप्र कोज्या इ}}{\text{त्रि}}$$

$$= \frac{\text{२ ज्याइ कोज्या प्र}}{\text{त्रि}}$$

$$= \frac{\text{२ ज्याइ (त्रि} - \text{उत्र)}}{\text{त्रि}} = \text{२ ज्याइ} \quad \frac{\text{२ ज्याइ उत्र}}{\text{त्रि}} = \text{२ ज्याइ} - \frac{\text{२ ज्याइ}}{\frac{\text{त्रि}}{\text{उत्र}}}$$

$२ \text{ ज्याइ} - \frac{२ \text{ ज्याइ}}{४६७} = \text{अग्रज्या} + \text{पृष्ठज्या}$

इससे उनका सूत्र उपपन्न होता है।

जीवा स्वससारि युगाग्निहीना द्विघ्नी च पूर्वज्यकया विहीना।
स्यादग्रजीवा वृहतीति सर्वा भानन्नजीवाद्वयतो भवन्ति॥

$\text{अग्रज्या} + \text{पृज्या} = २ \text{ ज्याइ} - \frac{२ \text{ ज्याइ}}{४६७}$ यहां द्वितीय खण्ड में हर भाज्य को

(१००००) इससे गुणने से $२ \text{ ज्याइ} - \frac{२ \text{ ज्याइ} \times १००००}{४६७ \times १००००} = २ \text{ज्याइ} - \frac{\text{ज्याइ} \times २००००}{४६७ \times १००००}$

$= २ \text{ ज्याइ} - \frac{\text{ज्याइ} \times ४३}{१००००} = \text{अग्रज्या} + \text{पृज्या}$।

इससे त्र्यब्धिघ्न मौर्व्या प्रयुतेन लब्धं द्विघ्नज्यकाया प्रविशोध्य शेषम्।
विश्लिष्य पूर्वज्यकयाऽग्रजीवा वेद्याग्रमौर्व्या खलु पूर्वजीवा॥

यह उपपन्न होता है।

अथ रव्यादिग्रहाणां मन्दपरिधीनाह।

शक्रा सदलेन्दुगुणा दृगगा द्विभुजा सुरा शिवा स्पष्टाः।
रसवेदा नागाख्या रव्यादीनां भवन्ति मृदुपरिधयः॥४६॥

वि. भा.—शक्रा (१४) सदलेन्दुगुणा (३१।३०) दृगगा (७२) द्विभुजा (२२) सुरा (३३) शिवा (११) रसवेदा (४६) एते रव्यादीनां ग्रहाणां स्पष्टा नागाख्या मृदुपरिधयः (मन्दपरिधयः) भवन्ति॥ ४६॥

अत्रोपपत्तिः।

मध्यममन्दस्पष्टग्रहयोरन्तरं मन्दफलम्। परममन्दफलज्या मन्दान्त्यफलज्या कथ्यते मध्यमग्रहान्मन्दान्त्यफलज्या व्यासार्धेन यद्वृत्तं तन्मन्दनीचोच्चवृत्तम्। तत्परिधिर्मन्दनीचोच्चवृत्तपरिधिः। एतज्ज्ञानार्थमनुपातो यदि त्रिज्याव्यासार्धे भांशा परिधयस्तदा मन्दान्त्यफलज्या व्यासार्धे किमित्यनुपातेन समागता मन्दनीचोच्चवृत्तपरिधयः। सर्वेषां ग्रहाणां मन्दान्त्यफलज्या मानानि वेधेन ज्ञात्वाऽऽचार्येण तद्वशेन मन्दनीचोच्चवृत्तपरिधयः पठिता ये चाधोलिखिताः सन्ति।

रवेर्मन्दपरिधिभागाः $= १४^\circ$

चन्द्रस्य मन्दपरिधिभागाः $= ३१^\circ।३०'$

गुरो मन्दपरिधिभागा =३३°
शुक्रस्य " " =११°
शने " " =४६°

सूर्यसिद्धान्तमतेन समपदान्ते रविमन्दपरिध्यशा =१४°, चन्द्रस्य =३२°, विषमपदान्ते विंशतिकलोना भवन्ति तेन रविमन्दपरिध्यंशा =१३°।४०'। चन्द्रस्य =३१°।४०' भौमा हि ग्रहाणा समपदान्ते मन्दपरिधिभागा क्रमेण ७५°।३०°, ३३°।१२°, ३९° विषमपदान्ते क्रमेण मन्दपरिधय ७२°।२८°।३२°।११°।४८° सूर्यसिद्धान्ते एतदर्थमधोलिखितानि वाक्यानि सन्ति।

रवेर्मन्दपरिध्यशा मनव शीतगोरदा।युग्मान्ते विषमान्ते च नखलिप्तोनितास्तयो ॥ युग्मान्तेऽर्थाद्रय खाग्निसुरा सूर्या नवार्णवा। ओजे द्वयगा वसुयमा रदा रुद्रा गजाब्धय.।

ब्राह्मस्फुटसिद्धान्ते ब्रह्मगुप्तेन रविचन्द्रयोर्मन्दपरिधिभागा भिन्ना एव कथिता यथा तदुक्तानि वाक्यानि—

सूर्यस्य मनुद्वितय त्र्यशोन दिनदले नतस्य प्राक्।
तिथिघटिकाभिस्त्र्यशाधिकोनमूनाधिक पश्चात्॥
द्युदले जिनलिप्तोन दशनद्वितय द्विशरकलोन प्राक्।
पश्चाद्युतोनमिन्दो सूर्यस्य ऋणे धने परिधि ॥
एतदनुसारेण

रवेर्ऋणफले	धनफले
प्रागुन्मण्डलस्थे रवौ परिध्यशा =१४°।०	प्रागुन्मण्डलस्थे रवौ परिध्यशा =१३°।२०'
मध्याह्ने ' " =१३°।४०'	मध्याह्ने " ' =१३°।४०'
पश्चिमोन्मण्डलस्थे रवौ " =१३°।२०	पश्चिमोन्मलण्डस्थे रवौ " =१४°।०

चन्द्रस्य ऋणफले	धनफले
प्रागुन्मण्डलस्थे चन्द्रे परिध्यशा -३०°।४४'	प्रागुन्मण्डलस्थे चन्द्रपरिध्यशा =३०°।४४'
मध्याह्ने " =३१°।३६'	मध्याह्ने " =-३१°।३६'
पश्चिमोन्मण्डलस्थे चन्द्रे " =३२°।२८'	पश्चिमोन्मण्डलस्थे " =३०°।४४'

तथा कुजादिग्रहाणा मन्दपरिध्यशास्तदुक्ता

कुजज्य=७०, बुधस्य=३८। गुरो =३३। समपदान्ते शुक्रस्य =११। विषमपदान्ते=९। शने =३०। भास्कराचार्येणाप्येतदनुसारमेव कथ्यते केवल शनैश्चर मन्दपरिधौ पार्थक्यमस्ति। एतेन ज्ञायते यन्मन्दान्त्यफलज्या सदा स्थिरानेत्यत एवाचार्यकथितेषु मन्दपरिध्यशेषु पार्थक्यमस्तीति ॥४६॥

अब रव्यादिग्रहो की मन्दपरिधि कहते हैं।

हि भा—रवि के मन्दपरिध्यंश=१४°। चन्द्र के मन्दपरिध्यंश=३१°।३०', कुज

के मप=७२° । बुध के मप=२२° । गुरु के मपरिधि=३३° । शुक्र के मप=११° । शनि के मप=४६° ॥४६॥

उपपत्ति

मध्यम ग्रह और मन्दस्पष्ट ग्रह के अन्तर मन्दफल है, परमम-दफलज्या मन्दान्त्यफलज्या कहलाती है, मध्यम ग्रह को केन्द्र मानकर मन्दान्त्यफलज्याव्यासार्ध से जो वृत्त होता है। वह मन्दनीचोच्च वृत्त है। मन्दोच्चनीच परिधिज्ञान के लिये अनुपात करते हैं यदि त्रिज्याव्यासार्ध मे भाश परिधि पाते हैं तो मन्दान्त्य फलज्या व्यासार्ध मे क्या इस अनुपात से मन्दनीचोच्च वृत्तपरिधि आती है, सब ग्रहो के मन्दान्त्यफलज्या मानवेध से जानकर आचार्य उसके वश से मन्दनीचोच्च वृत्तपरिधि पठित किये जो उपयुक्त है। सूर्यसिद्धान्त के अनुसार समपदान्त मे रविमन्दपरिध्यश=१४°। चन्द्र के मन्दप=३२°, विषमपदान्त मे बीस कला घटकर रविमन्दपरिध्यश=१३°।४०'। चन्द्रमन्दप=३१°।४०' भौमादिग्रहो के समपदान्त मे क्रमश मन्दपरिध्यश ७५°। ३०°। ३३°। १२°। ३६°। विषम पदान्त मे क्रमश मन्द परिध्यश ७२°। २८°। ३२°। ११°। ४८° इसके लिए सूर्यसिद्धान्तोक्त अधोलिखित वाक्य है—

रवेर्मन्दपरिध्यशा मनव शीतगोरदा । युग्मान्ते विषमान्ते च नखलिप्तोनितास्तयो ॥
युग्मान्तेऽर्थाद्रय खाग्नि सुरा सूर्या नवार्णवा । ओजे द्वयगा वसुयमा रदा रुद्रा गजाब्धय ॥

ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त मे ब्रह्मगुप्त रवि और चन्द्र के मन्दपरिध्यश भिन्न ही कहते हैं, जैसे
सूर्यस्य मनु द्वितय त्र्यशोन दिनदलेन तस्य प्राक् । तिथिघटिकाभिस्त्र्यशाधिकोनमूनाधिक पश्चात् ॥
धुदले जिनलिप्तोन दशनद्वितय द्विशरकलोन प्राक् । पश्चाद्युतोनमिन्दो सूर्यस्य ऋणे धने परिधि ॥

इसके अनुसार रवि के ऋण फल मे	धनफल मे
पूर्व उन्मण्डलमे रविके रहने से मन्दपरि-१४°।०	पूर्व उन्मण्डलमे रविके रहने से मप १३°।२०'
मध्यान्ह मे " =१३°।४०'	मध्यान्ह मे " =१३°।४०'
पश्चिम उन्मण्डलमे रविके रहने से मप १३°।२०'	पश्चिम उन्मण्डल मे रवि के रहने मप ४०°।०'

चन्द्र के ऋणफल मे	धनफल मे
पूर्व उन्मण्डलमे चन्द्र के रहने से मप ३०°।४४'	पूर्व उन्मण्डलमे चद्र के रहने से मप ३०°।४४'
मध्यान्ह मे " =३१°।३६'	मध्यान्ह मे " =३१°।३६'
पश्चिम उन्मण्डल मे चन्द्र रहने से "३२°।२८'	पश्चिमउन्मण्डल मे चद्र से रहने से म ३० ।४४'

तथा कुजादि ग्रहो के ब्रह्मगुप्तोक्त मन्दपरिध्यश ये हैं—कुजम प=७० । बुधमदप=३८ । गुरुम प=३३ । समपदात मे शुक्रम दप=११ । विषमपदात मे शुक्रम दप=६ । शनि के मन्दपरिध्य श=३० ।

भास्कराचार्य भी एतदनुसार ही कहते हैं केवल शनैश्चर की मन्दपरिधि मे अन्तर पडता है। इससे मालूम होता है कि मन्दान्त्यफलज्या बराबर एक रूप नही रहती है जिसके कारण मन्दनीचोच्च वृत्तपरिधि पाठ मे आचार्यों के मतो मे भेद है ॥४६॥

इदानीं भौमादिग्रहाणां शीघ्रपरिधीनाह ।

त्रिगुणयमा वसुविश्वे शरर्त्तवः खोत्कृती तथाक्षिगुणाः ।
शीघ्रचास्त्वमी परिधयो भौमादीनां हि संददशाख्याः ॥५०॥

वि भा—त्रिगुणयमा (२३३) वसुविश्वे (१३८) शरर्त्तव (६५) खोत्कृती (२६०) अक्षिगुणा (३२) भौमादीना ग्रहाणाममी शीघ्रचा परिधय सद-दशाख्या भवन्ति ॥५०॥

अत्रोपपत्ति

भौमादिग्रहाणा परमशीघ्रफलाना ज्या शीघ्रान्त्यफलज्या कथ्यन्ते, बिम्बीयकर्णा-नयनप्रकारेण बिम्बीयकर्णज्ञान कृत तस्य परमत्वे उच्चस्थो ग्रहो भवेत्तत्र परमो-च्चकर्ण = त्रि + शीघ्रान्त्यफलज्या परमोच्चकर्ण — त्रि = शीघ्रान्त्यफलज्या, तथा बिम्बीयकर्णस्य परमाल्पत्वे नीचस्थाने ग्रहो भवेदतस्तत्र परमनीचकर्ण = त्रि — शीघ्रान्त्यफलज्या तत , त्रि — परमनीचकर्ण = शीघ्रान्त्यफलज्या, अनया रीत्या शीघ्रान्त्यफलज्यामान ज्ञात्वाऽनुपातो यदि त्रिज्या व्यासार्धे भाशा परिधयस्तदा शीघ्रान्त्यफलज्या व्यासार्धे किमित्यनुपातेन समागच्छन्ति शीघ्रनीचोच्चवृत्तपरिधयो ये चोपयुक्ता सन्ति, मन्दस्पष्टग्रहाच्छीघ्रान्त्यफलज्याव्यासार्धेन यद्वृत्त तच्छीघ्रनी-चोच्चवृत्त शीघ्रनीचोच्चवृत्तपरिधिर्वा ।

सूर्यसिद्धान्ते तु शीघ्रान्त्यफलज्याऽपि सदा न स्थिरेति विचार्य समविषम पदान्तभेदेन परिध्यशा भिन्ना भिन्ना कथिता, यथा—

कुजादीनामत शैघ्रया युग्मान्तेऽर्थाग्निदस्रका ।
गुणाग्निचन्द्रा खनगा द्विरसाक्षीणि गोऽग्नय ॥
ओजान्ते द्वित्रियमला द्विविश्वे यमपर्वता ।
खर्त्तुदस्रा वियद्वेदा शीघ्रकर्मणि कीर्तिता ॥ इति

भास्कराचार्येण

"एषा चला कृतजिनास्त्रिलवेन हीना दन्तेन्दवो वसुरसा वसुबाणदस्रा ।
पूर्णाब्धयोऽथ भृगुजस्य तु मन्दकेन्द्र दो शिञ्जिनी द्विगुणिता त्रिगुणेन भक्ता ।
लब्धेन मन्दपरिधी रहित स्फुट स्यात्तच्छीघ्रकेन्द्रभुजमौर्व्यथ बाणनिघ्नी ।
त्रिज्योद्धृताशु परिधि फलयुक् स्फुट स्याद् भौमाशुकेन्द्रपदगम्यगताल्पजीवा ।
त्र्यशोनशैलगुणिता रयुतस्य राशेर्मौर्व्योद्धृता प्रलवहीनयुत मृदूच्चम् ।
भौमस्य कर्किमकरादिगते स्वकेन्द्रे लब्धाशकैर्विरहित परिधिस्तु शैघ्रचा ॥

एभिः श्लोकै कुजादिग्रहाणा शीघ्रपरिधिभागा पठिता , कुजस्य = २४३°।४०′ बुधशीघ्रोच्चस्य = १३२° । गुरो = ६८°, शुक्रशीघ्रोच्चस्य = २५८°, शनै = ४० अत्रापि

ब्रह्मगुप्तोक्तशनिशीघ्रपरिधितो भास्करोक्तपरिधे पार्थक्यमस्ति, भास्करेण मङ्गलशुक्रयोः परिध्यो स्पष्टीकरणं कृतं यत्र तदुक्तश्लोकेभ्यो ज्ञायते। ग्रन्थकारो- (वटेश्वरो)क्त शीघ्रपरिधिभ्यो भास्करादिपठित शीघ्रपरिधीनां महदन्तर- मिति प्रत्यक्षमेव दृश्यते। ग्रन्थकारेण परिधे स्फुटीकरणादिकं किमपि न कृतं यथा भास्करेण कुजशुक्रयो कृतम्। भास्करेणापि कथं तयो (कुजशुक्रयो) एव स्फुटी- करणं कृतमन्येषां न कृतमत्र कारणं किमपि न प्रदर्शितमिति ॥५०॥

अब भौमादि ग्रहों के शीघ्र परिधिमान कहते हैं।

हि.भा.—२३३।१३८।६५।२६०।३२ ये क्रमश भौमादि ग्रहों के शीघ्रपरिध्यंश (सदसदात्मक) हैं।

उपपत्ति

भौमादि ग्रहों के परम शीघ्र फल की जो ज्या है वे शीघ्रान्त्यफलज्या कहलाती है। मन्द स्पष्ट ग्रह को केन्द्र मानकर शीघ्रान्त्य फलज्या व्यासार्ध से जो वृत्त होता है वही शीघ्र- नीचोच्चवृत्त परिधि है। उसके ज्ञान के लिये पहले शीघ्रान्त्य फलज्या ज्ञान करते हैं। ग्रहों के बिम्बीय कर्णज्ञान प्रकार से बिम्बीय कर्णज्ञान किया, उसका परमत्व जब होगा तब उच्चस्थान में ग्रह रहते हैं। इसलिये वहां परमोच्चकर्ण=त्रिज्या+शीघ्रान्त्यफलज्या एवं त्रिम्बीयकर्ण की परमाल्पता में ग्रह नीच स्थान में रहते हैं अत परमनीचकर्ण=त्रि—शीघ्रा- न्त्यफलज्या परमोच्चकर्ण—त्रि=शीघ्रान्त्यफलज्या। त्रि—परमनीचकर्ण=शीघ्रान्त्यफलज्या इस तरह शीघ्रान्त्यफलज्या जान कर अनुपात करते हैं यदि त्रिज्याव्यासार्ध में भाश(३६०) पाते हैं तो शीघ्रान्त्य फलज्या व्यासार्ध में क्या इस अनुपात से शीघ्रनीचोच्च वृत्तपरिधि प्रमाण आता है। जो अपनी शीघ्रान्त्य फलज्यावश उपर्युक्त के बराबर है। सूर्यसिद्धान्त में शीघ्रान्त्य फलज्या भी सदा स्थिर नहीं है यह विचार कर सम विषम पदान्त भेद से भिन्न-भिन्न परिध्यंश पठित किये हैं। जैसे—

कुजादीनामतः शैघ्रया युग्मान्तेऽर्थाग्निदस्रकाः। गुणाग्निचन्द्राः खनगा द्विरसाक्षीणि गोऽग्नयः। ओजान्ते द्वित्रियमला द्विविश्वे यमपर्वताः। खर्तुदस्रा वियद्वेदाः शीघ्रकर्मणि कीर्तिताः ॥ इति

भास्कराचार्य ने अधोलिखित पद्य द्वारा अधोलिखित शीघ्र परिधि पठित की है।

एषां चलाः कृतजिनाग्निलवेन हीना दन्तेन्दवो वसुरसा वसुबाणदस्राः।" इत्यादि

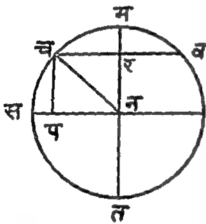
कुजपरिधि=२४३°।४०′ बुधशीघ्रोच्चपरिधि=१३२°। गुरुशीघ्रपरिधि=६८°, शुक्र- शीघ्रोच्च परिधि=२५८°। शनिशीघ्रपरिधि=४०। यहां भी शनिशीघ्रपरिधि ब्रह्मगुप्तोक्त से भास्करोक्त भिन्न है। भास्कराचार्य ने मङ्गल और शुक्र का परिधिस्पष्टीकरण किया है। ग्रन्थकार (वटेश्वर) पठित शीघ्रपरिधिमानों से भास्करादिपठितशीघ्र परिधिमान बहुत भिन्न है, भास्कराचार्य ने केवल कुज और शुक्र का ही परिधिस्पष्टीकरण किया है इसके कारण को नहीं कहा है ॥५०॥

इदानीं मन्दकर्माभिधीयते ततो भुजकोटिज्यादिकल्पना चाह ।

मन्दतुङ्गरहितो नभश्चरो मन्दकेन्द्रमथ खेचरोनितम् ।
शीघ्रमत्र चलकेन्द्रमुच्यते तत्पदानि भवनैस्त्रिभिस्त्रिभि ॥५१॥

अयुक् पदेस्तो गतयेययोर्गुणौ भुजाग्रसज्ञौ युजि येययातयो ।
भुजाग्रभागोत्क्रममौर्विकोनिता त्रिमौर्विका चेतरमौर्विका भवेत् ॥५२॥

वि भा—नभश्चर (देशान्तरभुजान्तर बीजकर्म सस्कृतो मध्यमग्रहा भौमादिमन्दस्फुटश्च) मन्दतुङ्गरहित (मन्दोच्चहीनित) तदा मन्दकेन्द्रम् । खेचरोनित (मन्दस्पष्टग्रहरहित) शीघ्र (शीघ्रोच्च) चलकेन्द्रमुच्यते (शीघ्रकेन्द्र कथ्यते) त्रिभिस्त्रिभिस्तद्भवनैः (त्रिभिस्त्रिभि र्येन्द्रराशिभि) पदानि भवन्ति अयुक् पदे (विषमपदे) गतयेययो (गतागतचापयो) गुणौ (जीवे) भुजाग्रसज्ञौ (गतचापज्या, गम्यचापज्या कोटिज्या परमेते भुजकोटिज्ये भुजाग्रसज्ञिके) युजि (समपदे) येययातयो (गम्यगतचापयो) गुणौ भुजाग्रसज्ञौ । भुजाग्रभागोत्क्रममौर्विकोनिता त्रिमौर्विका (भुजाग्रभागोत्क्रमज्योनत्रिज्या) इतर मौर्विका (भिन्नभुजाग्रसज्ञका) भवेत् ॥ ५१-५२ ॥



चित्र २

न=वृत्तकेन्द्रम् । मच=इष्टचापम् चस=इष्टचापकोटि । चर=इष्टचापज्या=भुजाग्रसज्ञकम् । चप=इष्टचापकोटिज्या=द्वितीय भुजाग्रसज्ञकम् । रम=इष्टचापोत्क्रमज्या=भुजाग्रभागोत्क्रमज्या । सप=इष्टचापकोट्युत्क्रमज्या=द्वितीयभुजाग्रभागोत्क्रमज्या । नम=त्रिज्या । नस=त्रिज्या । नम—रम=त्रि—भुजाग्रभागोत्क्रमज्या =रन=चप=द्वितीय-भुजाग्रसज्ञक=कोटिज्या

तथा नस—सप=नप=त्रि—द्वितीयभुजाग्रभागोत्क्रमज्या=त्रि—कोट्युत्क्रमज्या=भुजाग्रसज्ञक=भुजज्या=चर ॥ ५१ ५२ ॥

हि भा—अब केन्द्र कहते है उससे भुजज्या और कोटिज्यादि कल्पना कहते हैं। देशान्तर भुजान्तर बीजकर्म सस्कृत मध्यम ग्रह मे भौमादि मन्द स्पष्ट ग्रह मे मन्दोच्च घटाने से मन्दकेन्द्र होता है । शीघ्रोच्च मे मन्द स्पष्टग्रह को घटाने से शीघ्रकेन्द्र होता है तीन तीन केन्द्रराशियों के एक एक पद होते हैं । विषम पद मे गत चापज्या और गम्य चापज्या भुजाग्र सज्ञक (अर्थात् गत चाप की ज्या, गम्य चाप की कोटिज्या) प्रथम और द्वितीय भुजाग्र सज्ञक हैं । समपद मे गम्य और गत चाप की ज्या भुजाग्र सज्ञक (गम्य चाप की ज्या, और गतचाप की कोटिज्या) है । भुजाग्रभागोत्क्रमज्या को त्रिज्या म घटाने से भिन्न

भुजाग्र सशर (त्रिज्या में भुजांशोत्क्रमज्या घटाने से कोटिज्या सशर) होता है ॥ ५१-५२ ॥

चित्र को देखिये। न=वृत्तकेन्द्र। मच=इष्टचाप, चम=इष्टचाप कोटि, चर=इष्टचापज्या=भुजाग्रमसक। चप=इष्टचापकोटिज्या=द्वितीय भुजाग्रसनक रम=इष्टचाप की उत्क्रमज्या=भुजाग्रभागोत्क्रमज्या।

मप=इष्टचाप कोटि की उत्क्रमज्या=द्वितीय भुजाग्र भाग की उत्क्रमज्या।

नम=त्रिज्या। नस=त्रिज्या, नम−रम=त्रि−भुजाग्रभागोत्क्रमज्या=रन=चप =द्वितीय भुजाग्रसक=कोटिज्या

तथा नस−मप=नप=त्रि−द्वितीयभुजाग्रभागोत्क्रमज्या=त्रि−कोट्युत्क्रमज्या= भुजाग्रसक=चर=भुजज्या ॥ ५१-५२ ॥

इदानीं भुजज्याकोटिज्ययोरेकतो द्वितीयज्ञानं क्रमज्याज्ञानं चाह।

त्रिज्या बाह्वग्रमौर्व्यो: कृतिविवरपदं चेतरज्या प्रदिष्टा।
बाह्वग्रज्या त्रिमौर्व्योविवरयुतिहतेर्मूलमाहुस्तयोर्वा।
व्यासस्य व्यस्तजीवा विरहितनिहतेर्यत्पदं सा क्रमज्या।
व्यासघ्ना व्यस्तजीवा निजकृतिरहिता मूलमस्या: क्रमज्या ॥ ५३ ॥

वि भा—त्रिज्याबाह्वग्रमौर्व्यो: कृतिविवरपदं (त्रिज्याभुजाग्रज्ययोर्वर्गान्तरमूलं) इतरज्या प्रदिष्टा(द्वितीयभुजाग्रज्या कथिता) अर्थात् त्रिज्याभुजज्ययोर्वर्गान्तरमूलं कोटिज्या वा त्रिज्याकोटिज्ययोर्वर्गान्तरमूलं भुजज्या भवेत्। वा तयोर्बाह्वग्रज्या त्रिमौर्व्योविवरयुतिहते पदं (त्रिज्या भुजाग्रज्ययोर्योगान्तरघातमूलं) इतरज्या (द्वितीयभुजाग्रज्या) आहु (आचार्या कथितवन्त)। व्यस्तजीवा विरहितनिहिते (उत्क्रमज्यारहितगुणितस्य) व्यासस्य पदं (मूलं) यत् सा क्रमज्या भवति। व्यस्तजीवा (उत्क्रमज्या) व्यासघ्ना (व्यासगुणिता) निजकृतिरहिता (स्ववर्गहीना) अस्या मूलं तदा क्रमज्या भवतीति ॥ ५३ ॥

अत्रोपपत्ति।

चित्रं द्वितीयं द्रष्टव्यम्। नच^2−चर^2=रन^2=त्रि^{2}−भुजाग्रज्या^{2}=त्रि^{2}−भुजज्या^{2}=द्वितीयभुजाग्रज्या^{2}=कोटिज्या^{2}

मूलेन

$$\sqrt{\text{त्रि}^2-\text{भुजाग्रज्या}^2}=\sqrt{(\text{त्रि}+\text{भुजाग्रज्या})\ (\text{त्रि}-\text{भुजाग्रज्या})}$$

$$=\sqrt{(\text{त्रि}+\text{भुज्या})\ (\text{त्रि}-\text{भुज्या})}=\text{ द्वितीय भुजाग्रज्या}=\text{कोटिज्या}$$ ।

चर=रव=क्रमज्या। मत=व्यास। मर=उत्क्रमज्या, अथ रेखागणित तृतीयाध्यायेन मर × रत=चर × रव=उज्या (व्यास−उज्या)=उज्या × व्यास −उज्या^{2}=क्रमज्या^{2}

मूलेन

$$\sqrt{\text{उज्या (व्यास—उज्या)}} = \sqrt{\text{उज्या} \times \text{व्यास} - \text{उज्या}^2} = \text{क्रमज्या}$$

अत उपपन्नमाचार्योक्तम् ॥ ५३ ॥

हि भा—अब भुजज्या और कोटिज्या में से एक दूसरे के ज्ञान और क्रमज्या के ज्ञान कहते हैं। त्रिज्या और भुजाग्रज्या के वर्गान्तरमूल द्वितीय भुजाग्रज्या होती है अर्थात् त्रिज्या और भुजज्या के वर्गान्तर मूल कोटिज्या तथा त्रिज्या, और कोटिज्या के वर्गान्तरमूल भुजज्या होती है। या त्रिज्या और भुजाग्रज्या के योगान्तर घात मूल द्वितीय भुजाग्रज्या या कोटिज्या होती है। व्यास में उत्क्रमज्या को घटाकर और उत्क्रमज्या से गुणाकर मूल लेने से क्रमज्या होती है। व्यासगुणित उत्क्रमज्या में उत्क्रमज्या वर्ग घटाकर मूल लेने से क्रमज्या होती है ॥५३॥

उपपत्ति।

चित्र (२) देखिये। नच² — चर² = रन² = त्रि² — भुजाग्रज्या² = त्रि² — भुजज्या² = द्वितीयभुजाग्रज्या² = कोटिज्या²

मूल लेने से

$$\sqrt{\text{त्रि}^2 - \text{भुजाग्रज्या}^2} = \sqrt{(\text{त्रि} + \text{भुजाग्रज्या})\ (\text{त्रि} - \text{भुजाग्रज्या})}$$

$$\sqrt{(\text{त्रि} + \text{भुजज्या})\ (\text{त्रि} - \text{भुज्या})} = \text{द्वितीय भुजाग्रज्या} = \text{कोटिज्या}।$$

चर = रव = क्रमज्या। मत = व्यास। मर = उत्क्रमज्या, रेखागणित तृतीय अध्याय से मर × रत = चर × रव = उज्या (व्यास—उज्या) = उज्या × व्यास — उज्या

मूल लेने से

$$\sqrt{\text{उज्या (व्यास—उज्या)}} = \sqrt{\text{उज्या} \times \text{व्यास} - \text{उज्या}^2} = \text{क्रमज्या}।$$

आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥ ५३ ॥

इदानीं क्रमज्योत्क्रमज्याभ्यां व्यासानयनमाह।

क्रमगुणकृतिर्विभक्तोत्क्रममौर्व्या च फल युत हि व्यास।
अन्यकोटिभुजाशात्त्रिभाद् विहीनाद् गुणो वाऽन्या ॥ ५४ ॥

वि भा.—क्रमगुणकृति (क्रमज्यावर्ग) उत्क्रममौर्व्या (उत्क्रमज्यया) विभक्ता, फलमुत्क्रमज्ययायुत तदा व्यासो भवेत्। त्रिभात् (राशित्रयात्) विहीनात् (शोधितात्) अन्यकोटिभुजाशाद् गुण अन्या ज्या भवत्यर्थात्कोटिचापरहितनवत्यशचापस्य ज्या भुजज्या भवेदिति ॥ ५४ ॥

अत्रोपपत्ति।

पूर्वश्लोकोपपत्तौ सिद्ध यत् उज्या (व्यास — उज्या) = क्रमज्या² पक्षौ उज्या भक्तौ तदा $\text{व्यास} - \text{उज्या} = \frac{\text{क्रमज्या}^2}{\text{उज्या}}$ तत पक्षयो 'उज्या' योजनेन

$\frac{\text{क्रमज्या}^2}{\text{उज्या}} + \text{उज्या} = \text{व्यास}$। एतावताऽऽचार्योक्तमुपपन्नम्। लीलावत्या भास्करेण जीवार्धवर्गे शरभक्तयुक्ते व्यासप्रमाणमि" त्यादिना एवमेव

कथ्यते । अन्यकोटिभुजांशादित्यादिकथनस्याऽऽवश्यकता नास्ति, स च विषय पूर्वमेव प्रतिपादितोऽस्त्यत निरर्थकमिव प्रतिभातीति ॥ ५४ ॥

हि भा —अब क्रमज्या और उत्क्रमज्या से व्यास का आनयन करते है । क्रमज्यावर्ग मे उत्क्रमज्या से भाग देकर उत्क्रमज्या जोडने से व्यास होता है। तीन राशि (९० अंश) मे अन्य कोटि भुजांश घटाने से जो शेष रहता है उसका ज्या भुजांश ज्या होती है ।

उपपत्ति ।

पहले श्लोक की उपपत्ति मे सिद्ध हुआ कि (व्यास—उज्या) उज्या = क्रमज्या² दोनो पक्षो म 'उज्या' से भाग देन से व्यास—उज्या = $\frac{\text{क्रमज्या}^2}{\text{उज्या}}$, दोनों पक्षों म 'उज्या' जोडने से

$\frac{\text{क्रमज्या}^2}{\text{उज्या}}$ + उज्या = व्यास इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ।

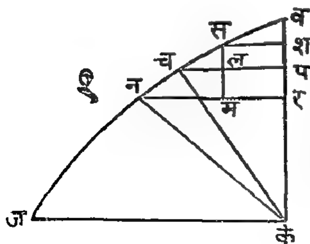
लीलावती म भास्कराचार्य 'जीवार्धवर्गे शरभक्तयुक्ते व्यासप्रमाणम्' इत्यादि से यही बातें कहते है । अन्य कोटि भुजांशात् इत्यादि कहन की यहा जरूरत नही है क्योंकि वह विषय पहले कहा जा चुका है जो यहा निरर्थक मालूम होता है ॥ ५४ ॥

इदानीमिष्टचापज्यानयनमाह ।

धनुषाहृतास्त्वभीष्टा लिप्ता ज्या ज्यान्तराहताच्छेषात् ।
धनुषाहृतात्फलयुता ज्या कोटिज्या भुजज्या वा ॥ ५५ ॥

वि भा —अभीष्टा लिप्ता (इष्टचापकला) धनुषाहृता (प्रथमचापभक्ता) तदा ज्या (गतज्या) भवन्ति, शेषात् (शेषचापात्) ज्यान्तरहतात् (गतज्या भोग्यज्ययोरन्तरगुणितात्) धनुषाहृतात् (प्रथमचापभक्तात्) फलयुता ज्या (गतज्या) तदा कोटिज्या वा भुजज्या भवेदिति ॥

अत्रोपपत्ति. ।



चित्र ३

जव = वृत्तपाद = ९० । के = वृत्तकेन्द्रम् । सश = गतज्या । नर = भोग्यज्या = अग्रिमज्या, चव = इष्टचापम् । चप = इष्टज्या, नम = गतज्याभोग्यज्ययोरन्तरम् । सन = प्रथमचा

अन $\frac{\text{इष्टचापकला}}{\text{प्रथमचा}}$ = लब्धि

सख्यकगतज्या, शेषचापम् =

सच, चन=इष्टज्यागतज्ययोरन्तरम् ततः, सनम, सचल त्रिभुजयो सजातीय मत्वाऽनुपात क्रियते यदि प्रथमचापेन गतज्याभोग्यज्ययोरन्तर लभ्यन्ते तदा शेषचापेन किमित्यनुपातेनागत शेषचापसम्बन्धि ज्यान्तरम्=

$$\frac{(\text{भोग्यज्या}-\text{गतज्या})\times\text{शे}}{\text{प्रथमचा}}=\frac{(\text{एष्यज्या}-\text{गज्या})\,\text{शे}}{\text{प्रथमचा}}=\text{चल}$$ अनेन सहिता गतज्ये (सद) ष्टज्या (चप) भवेत्तत आचार्योक्तमुपपद्यते । अथ सनम, सचल त्रिभुजयो साजात्यमस्ति नवेति विचार्यते । केन, केच रेखे कार्ये तदा $<$केनव$=$९०, $<$केचव$=$९० पर चवेप कोणात् नकेर कोणोऽधिकोऽस्त्यत केचप कोण केनर कोणादधिकोऽत सनमकोण सचलकोणादधिक सिद्धोऽत उक्तत्रिभुजयो साजात्य न सिद्ध, तयोस्त्रिभुजयो. साजात्य मत्वाऽऽचार्येण ज्यानयन कृतमतस्तदानयन न समीचीनमिति । भास्कराचार्यादिभिरप्येवमेव ज्यानयन कृतमस्ति नैवं वृत्तपादे चतुर्विंशतिमिता जीवा पठिता, अनेन ग्रन्थकृता (९६) षण्णवतिसख्यका जीवा पठितास्तेषा ज्यानयनेऽपीयमेव त्रुटिरस्ति या चात्रास्तीति ॥

अथ यदीष्टचाप प्रथमचापादल्प भवेत्तदा गतज्यामानम्=० तत्र एष्यज्या=प्रथमज्या

$$\text{अत पूर्वानीतेष्टज्या}=\text{गतज्या}+\frac{(\text{एष्यज्या}-\text{गज्या})\times\text{शे}}{\text{प्रथमचा}}$$

$$=0+\frac{(\text{प्रज्या}-0)\times\text{शे}}{\text{प्रथमचा}}=\frac{\text{प्रज्या}\times\text{शे}}{\text{प्रथमचा}}$$

तेन प्रथमचापेन प्रथमज्या लभ्यते तदा शेषचापेन किमित्यनुपातेन शेषाशज्या भवेदिति । अयमेव क्रम उत्क्रमज्यास्वपि भवेत्पर तत्र महत्स्थौल्य भवति अथ प्रथमचापम्=प्र, प्रथमचापतोऽल्पेष्टचापम्=इ । तदा

$$\frac{\text{प्रज्या}\ \text{इ}}{\text{प्र}}=\text{इज्या}$$ तत $\text{त्रि}^2-\text{इज्या}^2=\text{इकोज्या}^2=\text{त्रि}^2-\frac{\text{प्रज्या}^2.\text{इ}^2}{\text{प्र}^2}$ मूलग्रहणेन

$$\text{इकोज्या}=\text{त्रि}-\frac{\text{प्रज्या}^2\ \text{इ}^2}{2\ \text{त्रि}\ \text{प्र}^2}$$ स्वल्पान्तरात् । तत $\text{त्रि}-\text{इकोज्या}=\text{इउज्या}$

$$=\text{त्रि}-\left(\text{त्रि}-\frac{\text{प्रज्या}^2\ \text{इ}^2}{2\ \text{त्रि}\ \text{प्र}^2}\right)=\frac{\text{प्रज्या}^2\ \text{इ}^2}{2\ \text{त्रि}\ \text{प्र}^2}$$ अत्र यदि इ=प्र तदा

$$\text{प्र उज्या}=\frac{\text{प्रज्या}^2}{2\ \text{त्रि}}$$ अत $\text{इउज्या}=\frac{\text{प्रउज्या}\ \text{इ}^2}{\text{प्र}^2}$ एतेन सिद्ध यद्यदि

प्रथमचापवर्गेण प्रथमोत्क्रमज्या लभ्यन्ते तदेष्टचापवर्गेण किमित्यनुपातेनेष्टोत्क्रमज्या समागच्छत्येताहश एवानुपात कर्त्तव्य क्रमज्यानयने यो विधि स चोत्क्रमज्यानयने नाश्रयणीयोऽत सूर्यसिद्धान्तोक्त 'उत्क्रमज्यास्वपि स्मृत' मिद न समीचीनम् । यद्यपि पूर्वोक्तेष्टोत्क्रमज्यानयनमपि न समीचीनमिति तदुपपत्तिदर्श-

नेनैव स्फुटं परं किं क्रियेत, ग्रन्थकारेणान्मन्दकर्णोऽपि श्रेयानित्युक्त्या सदानयनं प्रदर्शितमिति ॥ ५५ ॥

हि. भा.—अब इष्टज्या के ज्यानयन कहते हैं। इष्टचापकला को प्रथमचाप से भाग देने से लब्धसंख्या गतज्या होती है, शेषचाप को गतज्या और एष्यज्या के अन्तर से गुणकर प्रथमचाप से भाग देने से जो फल हो उसको गतज्या में जोड़ने से इष्टज्या होती है ॥५५॥

उपपत्ति

(१) चित्र देखिये। अव=वृत्तपाद है=९०। के=वृत्तकेन्द्र। सदा=गतज्या, नर=एष्यज्या=प्रथमज्या चव=इष्टचाप, चप=इष्टज्या, नम=गतज्या और एष्यज्या के अन्तर, सन प्रथमचाप इष्टज्यागतज्ययोरन्तरम्=चन, सच=शेषचापम्। $\frac{\text{इष्टचापकला}}{\text{प्रथमचाप}}$ = लब्धसंख्यकगतज्या। सनम, सचल दोनों त्रिभुजों को सजातीय मानकर अनुपात करते हैं यदि प्रथमचाप में गतज्या एष्यज्या के अन्तर पाते हैं तो शेषचाप में क्या इस अनुपात से शेषचाप सम्बन्धी ज्यान्तर आता है।

$\frac{(\text{एज्या-गतज्या}) \text{ शे}}{\text{प्रथमचा}}$ = चल। इसको (सद) गतज्या में जोड़ने से चप इष्टज्या होती है॥

इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ। पहले सनम, सचल दोनों त्रिभुजों को सजातीय मानकर अनुपात किया गया है पर उन दोनों में सजातीयत्व है या नहीं इसके लिये विचार करते हैं। केन, केच रेखायें कर देने हैं, तब ∠केनव=९०, ∠केचव=९० परन्तु चकेव कोण से नकेव कोण अधिक है इसलिये केचप कोण केनर कोण से अधिक हुआ अतः सनम कोण सचल कोण से अधिक सिद्ध हुआ इसलिये उक्त दोनों त्रिभुजों में सजातीयत्व नहीं सिद्ध हुआ, परन्तु उक्त त्रिभुजद्वय को सजातीयत्व मानकर आचार्य अनुपात द्वारा ज्यानयन किये हैं। इसलिये यह आनयन ठीक नहीं हैं। भास्कराचार्यादि भी इसी तरह ज्यानयन किये हैं। वे लोग वृत्तपाद में चौबीस ज्या पठित किये हैं और ये ग्रन्थकार ९६ छियानवे ज्या पठित किये हैं, इनके ज्यानयन में जो स्थूलता है वही उन लोगों के ज्यानयन में भी है।

यदि इष्टचाप प्रथम चाप से अल्प है तब वहां गतज्या=०, एष्यज्या=प्रथमज्या इसलिये पहले लाई हुई इष्टज्या=गतज्या + $\frac{(\text{एष्यज्या—गतज्या}) \text{ शे}}{\text{प्रथमचा}}$ = ० + $\frac{(\text{प्रथमज्या—०}) \text{ शे}}{\text{प्रथमचा}}$ = $\frac{\text{प्रज्या—शे}}{\text{प्रथमचा}}$ अतः प्रथमचाप में प्रथमज्या तो शेष चाप में क्या इस अनुपात से शेषाङ्कज्या होती है। यही विधि उत्क्रमज्या में भी होती है परन्तु उसमें बहुत स्थूलता होती है।

यदि इष्टचाप प्रथम चाप से अल्प है तो इष्टचाप=इ। प्रथम चाप प्र तब $\frac{\text{प्रज्या इ}}{\text{प्र}}$ = इज्या

इसके वर्ग को त्रिज्यावर्ग में घटाने से $\text{त्रि}^2 - \frac{\text{प्रज्या}^2 \cdot \text{इ}^2}{\text{प्र}^2} = \text{त्रि}^2 - \text{इज्या}^2 = \text{इकोज्या}^2$ मूल लेने से

$\text{त्रि} - \frac{\text{प्रज्या}^2 \text{इ}^2}{2\text{त्रि}\ \text{प्र}^2} = \text{इकोज्या}$, $\text{त्रि} - \text{इकोज्या} = \text{इउज्या} = \text{त्रि} - \left(\text{त्रि} - \frac{\text{प्रज्या}^2 \text{इ}^2}{\text{प्र}^2}\right) = \frac{\text{प्रज्या}^2 \text{इ}^2}{\text{प्र}^2}$

यदि इ=प्रतब प्रउज्या $= \frac{\text{प्रज्या}^2}{2\text{त्रि}}$ अत. इउज्या $= \frac{\text{प्रउज्या} \cdot \text{इ}^2}{\text{प्र}^2}$ इससे सिद्ध होता है कि यदि प्रथम चापवर्ग में प्रथम उत्क्रमज्या पाते हैं तो इष्टचाप वर्ग में क्या इस अनुपात से इष्टोत्क्रमज्या कुछ सूक्ष्म आती है। ऐसा ही अनुपात करना चाहिए। क्रमज्यानयन में जो विधि है उसको उत्क्रमज्यानयन में नहीं लेनी चाहिये इसलिये सूर्यसिद्धान्त में 'उत्क्रमज्यास्वपि स्मृत.' यह जो कहा है सो ठीक नहीं है। यद्यपि उपर्युक्त उत्क्रमज्यानयन भी ठीक नहीं है यह उसकी उपपत्ति देखने ही से स्पष्ट है। पर क्या किया जाए, जो दिखलाया गया है उसके अतिरिक्त दूसरी गति नहीं है ॥५५॥

इदानीमन्यादिज्यानयनमाह ।

अंशादितिथिलब्धं जीवा जीवान्तरा हता भक्ता ।
षष्ट्या कलादिलब्धं जीवायुक्तं गुणो वा स्यात् । ॥५६॥

भागात्षष्टिगुणाद्वा तिथिभक्त मौर्विका विशेषहृतात् ।
ज्याविवरात्तद्भक्ताल्लब्धयुता मौर्विकाऽप्येवम् ॥५७॥

स्पष्टार्थौ ।

अत्रोपपत्तिः पूर्ववत्स्फुटैवास्तीति ।

हि. भा.—दोनों श्लोकों के अर्थ स्पष्ट है। उपपत्ति भी पहले की उपपत्ति की तरह स्पष्ट ही है ॥

इदानीं पुनरपि ज्यानयनमाह ।

कृतसंगुणिता लिप्ता स्तिथिवर्गहृताः फलं गुणः शेषात् ।
ज्यान्तरहताद् विभक्तात्तत्त्वयमैर्लब्धयुग्गुणा जीवाः ॥५८॥

वि. भा.—लिप्ताः (इष्टचापकला) कृतसगुणिता (चतुर्भिर्गुणिता.) तिथिवर्ग (२२५) हृताः (२२५ एभिर्भक्ता) फल गुण. (गतज्या) भवेत्। शेषात् (शेषचापात्) ज्यान्तरहतात् (गतज्यैष्यज्ययोरन्तरगुणितात् । तत्त्वयमैर्विभक्तात् (२२५) एभिर्भक्तात्। लब्धयुग्गुणा (लब्धयुक्ता गतज्या) जीवा (इष्टज्या) भवेदिति ॥५८॥

अत्रोपपत्तिः

अन्यैराचार्यैर्वृत्तपादे २२५, २×२२५, ३+२२५ इत्यादि चापकलाना षण्णवतिसंख्यका ज्यामानानि साधयित्वा पठितानि सन्ति, अनेन ग्रन्थकारेण

२२५ एतच्चापचतुर्थांशचापतुल्यप्रथमचापतद्द्विगुणितत्रिगुणितादिचापाना ज्या षण्णवतिसंख्यका साधयित्वा पठिता । अतएवैतन्नियमानुसारेणेष्टचाप यदि चतुर्भिर्गुण्येत तदा २२५ एतच्चापानुसार चापमान भवेत्ततस्तच्चापस्य (इष्टचापस्य) ज्यानयन पूर्ववदेव भवेद्यथा

$\frac{\text{इष्टचापकला}}{२२५}$ = लब्धसंख्यक गतज्या, तत $\frac{(\text{एज्या}—\text{गतज्या})\times\text{शे}}{२२५}$ = शेषचाप सम्बन्धीय ज्यान्तर एतस्य गतज्याया योजनेष्टज्या स्यात् । भास्कराचार्यादिभिरेव-मानयन कृतमस्तीति ॥५८॥

पुन ज्यानयन करते हैं ।

हि भा —इष्टचापकला को चार से गुणकर (२२५) दो सौ पचीस से भाग देने से लब्धसंख्यक गतज्या होती है । शेष चाप को गतज्या एष्टज्या के अन्तर से गुणकर (२२५) से दो सौ पचीस से भाग देकर जो फल होता हो उसको गतज्या में जोड़ने से इष्टज्या होती है ॥५८॥

उपपत्ति

ग्रन्थ आचार्य वृत्तपाद मे २२५, २२५×२, २२५×३ इत्यादि चाप कलाओ की चौबीस ज्याओ के मान साधन कर पठित किये हैं, और ये ग्रन्थकार २२५ इसके चतुर्थांशतुल्य प्रथमचाप, २ प्रथमचाप, ३ प्रथमचाप इत्यादि चापो की ज्याएं ९६ संख्यक साधन कर पठित किये हैं, इसलिए इनके (ग्रन्थकार के) नियमानुसार इष्टचाप को यदि चार से गुणा देंगे तो २२५ इस चाप के अनुसार चापमान होगा तब उस चाप के ज्यानयन पूर्ववत् करना । यथा—

$\frac{\text{इष्टचापकला}}{२२५}$ = लब्धसंख्यक गतज्या । शेष चाप से अनुपात करते हैं ।

$\frac{(\text{एज्या}—\text{गज्या})\,\text{शे}}{२२५}$ = शेषचाप सम्बन्धी ज्यान्तर, इसको गतज्या में जोड़ने से इष्टज्या होती है । भास्कराचार्य आदि इसी तरह ज्यानयन किये हैं ॥५८॥

इदानीं ज्यातश्चापानयनमाह ।

ज्यां प्रोज्झ्यं वासरकृतिः शेषगुणा ज्यान्तराब्धि हृतिभक्ता ।
फलयुक् स्याद्रससरर शुद्धसंख्या हतिश्चापम् ॥५९॥

वि भा —यस्या जीवायाश्चापकरणमभीष्ट तत्र यावन्त्यो जीवा विशुद्ध्यन्ति ता शोधयेच्छेष गतज्येष्टज्ययोरन्तर भवेत् । वासरकृति (२२५) शेषगुणा (शेष-सम्बन्धीयज्यान्तरगुणा) ज्यान्तराब्धिहतिभक्ता (चतुर्गुणितगतैष्यज्यान्तर-भक्ता) फलयुक् रससर (५६) शुद्धसंख्याहति (प्रथमचापशुद्धसंख्ययोर्घात) तदा चाप स्यादिति ॥५९॥

अत्रोपपत्ति ।

इष्टज्यातोऽल्पा या गजज्यास्तासा मध्ये महत्तमा ज्यामिष्टज्यातो विशोध्य शेषेणानुपात $\frac{\text{प्रथमचा ज्याशे}}{\text{ज्याए—ज्याग}} = \frac{\text{५६}\times\text{ज्याशे}}{\text{ज्याए—ज्याग}} = \frac{\text{२२५}}{\text{४}}\times\frac{\text{ज्याशे}}{\text{ज्याए—ज्याग}}$ $= \frac{\text{२२५}\times\text{ज्याशे}}{\text{४ (ज्याए—ज्याग)}}$ =शेषचा क्षेत्र ज्यानयने द्रष्टव्यम् । एतेन फलेन (शेषचापेन) विशुद्धसख्यागुणित प्रथमचाप (५६′।१५″) युत तदेष्टचाप भवेदत्रापि पूर्वमनुपातेन यच्छेषचापमानीत तत्समीचीन नास्ति, त्रिभुजयोर्वैजात्यादिति ॥५६॥

अब ज्या से चापानयन करते है ।

हि. भा—जिस ज्या के चाप करने की इच्छा हो उस (ज्या) मे जितनी ज्यायें घटे उनको घटा देना, शेष गतज्या और इष्टज्या मे अन्तर रहता है । दो सौ पच्चीस (२२५) को शेष सम्बन्धीयज्यान्तर से गुण कर चतुर्गुणित ज्यान्तर (भुक्तभोग्यज्यान्तर) से भाग देकर जो फल हो उसमे शुद्ध सख्या गुणित प्रथम चाप जोडने से इष्टचाप होता है ॥५६॥

उपपत्ति

इष्टज्या से छोटी जो गत ज्यायें हैं सब से बडी ज्या को इष्टज्या मे घटाकर शेष पर से अनुपात करते हैं $\frac{\text{प्रथमचाप}\times\text{ज्याशे}}{\text{ज्याए—ज्याग}} = \frac{\text{२२५}}{\text{४}}\times\frac{\text{ज्याशे}}{\text{ज्याए—ज्याग}}$ $= \frac{\text{२२५}\times\text{ज्याशे}}{\text{४ (ज्याए—ज्याग)}}$ = शेष चाप, इसको विशुद्ध सख्या गुणित प्रथमचाप (५६′।१५″) मे जोडने से इष्टचाप होता है । यहा भी अनुपात मे जो शेष चाप लाया गया है सो ठीक नही है, क्योकि दोनो त्रिभुज सजातीय नही है । ज्यानयन मे जो क्षेत्र हैं उसको देखना चाहिए ॥५६॥

पुनश्चापानयनमाह ।

या ज्या ज्यातः शुद्धास्तत्संख्या ताडितं धनुर्युतम् ।
विकलशरासनघाताज्ज्यान्तरलब्धेन चाप स्यात् ॥६०॥

वि भा—ज्यात (इष्टज्यात) या ज्या (यत्सख्यका जीवा) शुद्धास्ता विशोधयेत् । तत्सख्याताडित धनु (विशुद्धसख्यागुणितप्रथमचाप) विकलशरासनघातात् (शेषप्रथमचापवधात्) ज्यान्तरलब्धेन (गतैष्यज्यान्तरभक्तफलेन) युक्त तदा चाप (इष्टचाप) स्यादिति ॥६०॥

अत्रोपपत्ति ।

यस्या इष्टज्यायाश्चापकरणमस्ति तत्र यावत्यो जीवा विशुद्ध्यन्ति ता विशोधयेत् । शेष गतज्येष्टज्ययोरन्तर भवेत् । ततोऽनुपातो यदि गतैष्यज्ययोरन्तरेण प्रथमचाप लभ्यते तदा ज्याशेषेण किमित्यनुपातेन शेषचापप्रमाणमागच्छति

तत्स्वरूपम्= $\frac{\text{प्रथमचा} \times \text{ज्याशे}}{\text{ज्याए}-\text{ज्याग}}$ =शेपचा, इद शुद्धसख्यागुणित प्रथमचापयुत तदेष्टचाप भवेदत्रापि शेपचापानयन न समीचीन त्रिभुजयोर्विजातीयत्वात्। ज्यानयनस्य चित्रम् द्रष्टव्यम् ॥६०॥

पुन ज्या से चापानयन करते हैं।

हि भा —इष्टज्या मे जितनी ज्या घट, घटा देना, शुद्ध सख्यागुणित प्रथम चाप म, शेष प्रथम चाप के घात मे गतज्या और एष्यज्या के अन्तर से भाग देने से जो फल हो वह इष्टचाप होता है ॥६०॥

उपपत्ति

हि भा —जिस इष्टज्या के चापकरण अभीष्ट हो उसम जितनी ज्यायें घट, घटा देना, शेष गतज्या और इष्टज्या के अन्तर रहता है। तब अनुपात करते हैं यदि गतज्या और एष्यज्या के अन्तर में प्रथम चाप पाते है तो ज्या शेष मे क्या इस अनुपात से फल शेष चाप आता है $\frac{\text{प्रथम चा} \times \text{ज्याशे}}{\text{ज्याए}-\text{ज्याग}}$ =शेष चाप, इसको शुद्ध सख्यागुणित प्रथम चाप मे जोडने से इष्टचाप होता है। यहा भी शेष चापानयन ठीक नहीं है क्योंकि दोनो त्रिभुज सजातीय नहीं है। ज्यानयन म जो चित्र है उसको देखिये ॥६०॥

इदानी शेपाद्यज्यानयनमाह।

भुक्ताभुक्तज्यान्तर दलविकलवधात्स्वचापलब्धोनम्।
युक्त क्रमोत्क्रम भुक्ताभुक्तखण्डयुतिदल निघ्नम् ॥६१॥
विकलाद्यैर्भक्त स्वचापमानैस्ततो विकलजीवा।

वि भा —भुक्ताभुक्तज्यान्तरदलविकलवधात् (गतैष्यज्यान्तरार्धशेपचापघातात्) स्वचापलब्धोन युक्त (प्रथमचापभक्ताद् यल्लब्ध तेन हीन युत) क्रमोत्क्रमभुक्ताभुक्तखण्डयुतिदल (क्रमोत्क्रमज्यापक्षीय गतैष्यखण्डयोगार्धम्) विकलाद्यै (शेपाद्यै) निघ्नम् (गणित) स्वचापमानै (प्रथमचापमानै भक्त यत्फल ततो विकलजीवा (शेपाद्यज्या) भवेदिति ॥६१॥

अत्रोपपत्ति।

अथाभीष्टसिद्धयर्थमेव सिद्धात।

अनुपातेन $\frac{\text{ज्या}\frac{\text{प्र}}{२}\;\frac{\text{शे}}{२}}{\frac{\text{प्रचा}}{२}}$ =ज्या $\frac{\text{शे}}{२}$ 'त्रिज्योत्क्रमज्या निहतेर्दलस्य मूल तदर्धांशवशिञ्जिनीत्यादिना $\frac{\sqrt{\text{त्रि उशे}}}{२}$ = ज्या $\frac{\text{शे}}{२}$ अत समीकरणेन

$$\frac{\text{ज्या}\frac{\text{प्र}}{२}\;\frac{\text{शे}}{२}}{\frac{\text{प्रचा}}{२}}=\frac{\sqrt{\text{त्रि उशे}}}{२}$$

उत्थापनेन $$\frac{\frac{\text{शे}}{२}\frac{\sqrt{\text{त्रि उप्र}}}{२}}{\frac{\text{प्रचा}}{२}}=\frac{\sqrt{\text{त्रि उशे}}}{२}$$

वर्गीकरणेन $$\frac{\text{शे}^२\times\text{त्रि उप्र}}{\text{प्रचा}^२\times२}=\frac{\text{त्रि उशे}}{२}$$

$$\therefore\frac{\text{शे}^२\times\text{उप्र}}{\text{प्रचा}^२}=\text{उशे}$$ अत्र यदि प्रचा=१० तदा $\frac{\text{शे}^२\text{उप्र}}{१००}=\text{उशे}$

एतेन विशेषोक्तसूत्रमवतरति ।

आद्योत्क्रमज्या शेषा शवर्गघ्नी शतभाजिता ।
दिगंशप्रमिते ह्याद्ये शेषांशोत्क्रमशिञ्जिनी ॥

गतचापम्=गचा शेषचापम्=शेचा, इष्टचापम्=इचा

तदा चान्योरिष्टयोर्दोर्ज्ये मिथः कोटिज्यकाहते इत्यादिना ज्या (ग+शे)
$=\frac{\text{ज्याग कोज्याशे}}{\text{त्रि}}+\frac{\text{कोज्याग ज्याशे}}{\text{त्रि}}$

परन्तु गतचा+शेचा=इचा ज्या (ग+शे)=ज्याइ

अतः ज्याइ−ज्याग$=\frac{\text{ज्याग कोज्याशे}}{\text{त्रि}}+\frac{\text{कोज्याग ज्याशे}}{\text{त्रि}}-\text{ज्याग}$

$=\frac{\text{ज्याग कोज्याशे}+\text{कोज्याग ज्याशे}-\text{त्रि ज्याग}}{\text{त्रि}}$

$=\frac{\text{ज्याग (कोज्याशे)}+\text{कोज्याग ज्याशे}}{\text{त्रि}}=\frac{-\text{ज्याग उशे}+\text{कोज्याग ज्याशे}}{\text{त्रि}}$

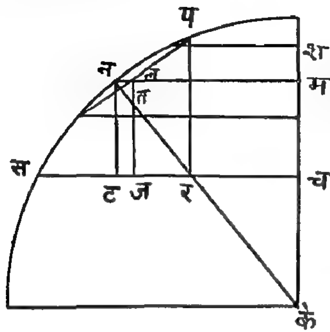
$=\frac{\text{कोज्याग ज्याशे}-\text{ज्याग उशे}}{\text{त्रि}}$ पर $\frac{\text{ज्याप्र शे}}{\text{प्रचा}}=\text{ज्याशे}$

तथा $\frac{\text{शे}^२\text{ उप्र}}{\text{प्रचा}^२}=\text{उशे}$

अत उत्थापनेन

$\frac{\text{कोज्याग ज्याप्र शे}}{\text{त्रि प्रचा}}-\frac{\text{ज्याग उप्र शे}^२}{\text{त्रि प्रचा}^२}=\text{ज्याइ}-\text{ज्याग}=\text{ज्यान्तरम्}=\text{ज्याअ}$

$$=\frac{\text{शे}}{\text{चा}}\left(\frac{\text{कोज्याग ज्याप्र}}{\text{त्रि}}-\frac{\text{ज्याग उप्र शे}}{\text{त्रि प्रचा}}\right)=\text{शेषसम्बन्धीय ज्यान्तरम् ।} \quad (१)$$



पश=प्रथमज्या, नम=गतज्या, सच=एष्यज्या सट=एष्य खण्डम् । हर=गत खण्डम् केम=गतकोज्या

$\frac{\text{गतख}+\text{एख}}{२}=\text{सज}=\text{जर}$

$\frac{\text{गतख}+\text{एख}}{२}-\text{एख}$

$=\frac{\text{गख}+\text{एख}-२\ \text{एख}}{२}$

$=\frac{\text{गख}-\text{एख}}{२}=\text{हज}$

=नल ।

तन=प्रथमोत्क्रमज्या । नप=नस=प्रथमचापम् । पत=सत=प्रथमज्या ।

चित्र न० ४

तदा केनम, मजत त्रिभुजयो सजातीयत्वादनुपात $\frac{\text{कोज्याग ज्याप्र}}{\text{त्रि}}=\text{सज}$

$=\frac{\text{गख}+\text{एख}}{२}=\frac{\text{यो}}{२}$ ·

तथा केनम, नतल त्रिभुजयो सजातीयत्वात् $\frac{\text{ज्याग उप्र}}{\text{त्रि}}=\text{नल}$

$$=\frac{\text{गख}-\text{एख}}{२}=\frac{\text{अन्तर}}{२}$$

अत (१) अस्मिन् स्वरूपे उत्थापनेन $\frac{\text{शे}}{\text{प्रचा}}\left(\frac{\text{यो}}{२}-\frac{\text{अ शे}}{२\times\text{प्रचा}}\right)$

$=\text{शेषसम्बन्धीयज्यान्तर}=\text{ज्याश्र तत}\ \frac{\text{शे}\times\text{स्पभोख}}{\text{प्रचा}}=\text{शेषसज्यान्तरम् ।}$

अ=गतैष्यखण्डातर

अत्र यदि प्रथमचापम् १०° तदा कोष्ठकान्तर्गतस्वरूप भास्करोक्तस्पष्टभोग्यखण्ड भवेत् । आचार्येण अ=गतगम्यज्यान्तर एह्यते तत्तथ्य नास्ति ।

एतावता क्रमज्याकरणे आचार्योक्तमुपपन्नम् । अथोत्क्रमज्यापक्षे किं भवतीति विचार्यते । प्रथमचापम्=प्र, गतचापम्=ग । इष्टचापम्=इ तदा

दोर्ज्ययो कोटिमौर्व्योश्चेत्यादिना कोज्या (गचा+शेचा)=कोज्याइ

$=\frac{\text{कोज्याग कोज्याशे}}{\text{त्रि}}-\frac{\text{ज्याग ज्याशे}}{\text{त्रि}}$ पर कोज्याग—कोज्याइ=कोटिज्यान्तरम्

$=\text{कोज्याग}-\left(\frac{\text{कोज्याग कोज्याशे}}{\text{त्रि}}-\frac{\text{ज्याग ज्याशे}}{\text{त्रि}}\right)$

$=\frac{\text{त्रि कोज्याग}-\text{कोज्याग कोज्याशे}+\text{ज्याग ज्याशे}}{\text{त्रि}}$

$=\frac{\text{कोज्याग (त्रि}-\text{कोज्याशे)}+\text{ज्याग ज्याशे}}{\text{त्रि}}$

$=\frac{\text{कोज्याग उशे}}{\text{त्रि}}+\frac{\text{ज्याग ज्याशे}}{\text{त्रि}}=\text{कोज्याम्र}$ ।

$\text{उशे}=\frac{\text{उप्र}^{\prime}\,\text{शे}^{\prime}}{\text{प्रचा}^{\prime}}$ $\text{ज्याशे}=\frac{\text{ज्या प्र शे}}{\text{प्रचा}}$

उत्थापनेन

$\frac{\text{कोज्याग उप्र शे}^{\prime}}{\text{त्रि प्रचा}}+\frac{\text{ज्याग ज्याप्र शे}}{\text{त्रि प्रचा}}=\frac{\text{शे}}{\text{प्रचा}}$

$\left(\frac{\text{कोज्याग उप्र शे}}{\text{त्रि प्रचा}}+\frac{\text{ज्याग ज्याप्र}}{\text{त्रि}}\right)$

$=\frac{\text{शे}}{\text{प्रचा}}\left(\frac{\text{भ्र}\times\text{शे}}{\text{प्रचा}\times 2}+\frac{\text{यो}}{2}\right)=\text{कोज्याम्र}=\text{उत्क्रमज्यान्तरम्}$ अत्रापि

प्रथमचापस्य (१०) कल्पनेन तथा $\text{भ्र}=\frac{\text{गख}-\text{एख}}{2}$ तदा कोष्ठकान्तर्गतस्वरूप-

मुत्क्रमज्यापक्षीयं भास्करोक्तं स्पष्टभोग्यखण्डं भवति । ततः $\frac{\text{शे}\times\text{स्पष्ट भोख}}{\text{प्रचा}}$

=शेषसम्बन्धी कोटिज्यान्तरम् । एतावताऽऽचार्योक्तमुपपन्नम् ॥

अथ पूर्वं ज्यानयने $\frac{\text{भोख शे}}{\text{प्रचा}}$=शेषसम्बन्धीयं ज्यान्तरम् ।' अनुपातेन यच्छेषसम्बन्धीयज्यान्तरमानमानीतं तत्स्थूलं (बहुकलात्मकचापमानस्य सरलत्वकल्पनात्) अतोऽत्रानुपातस्याविकलस्स्थानपूरणमेव येन केनाप्युपायेन यदि तस्यागतस्य स्थूलफलस्य स्फुटत्वं भवेत्तदा तत्करणीयमेव, आचार्येण तदर्थमेव साधनं कृतं परमेतावता पूर्वोक्तकोष्ठकान्तर्गतफलस्य स्पष्टभोग्यखण्डस्वीकरणेन पूर्वोक्तानुपाते $\frac{\text{शे भोख}^{\prime}}{\text{प्रचा}}$ अस्मिन् भोग्यखण्डस्थले स्पष्टभोग्यग्रहणेऽनुपातागतफले सौक्ष्म्यं भवन्नवेति विचार्यते । यद्यप्यनेनाचार्येण $\frac{\text{यो}}{2}\ldots\frac{\text{भ्र शे}}{\text{प्रचा}}$ एतस्य नाम स्पष्टभोग्यखण्डं न कथ्यते परं तदुपपत्त्या तत्स्पष्टभोग्यखण्डं सिद्धमित्यन्यथैतावता

प्रयासेनालम् । यदि $\frac{\text{यो}}{२}-\frac{\text{श्रं शे}}{\text{प्रचा}}$ इद स्पष्टभोग्यखण्ड् कथ्येत तदा पूर्वानुपातागतफलस्याविकलपुरःसरं संस्थान जातमेव परं पूर्वानुपात $\left(\frac{\text{शे.भोखं}}{\text{प्रचा}}\right)$ नवीनानुपात $\frac{\text{शे.स्पभोख}}{\text{प्रचा}}$ योर्मध्ये $\frac{\text{शे}}{\text{प्रचा}}$-इति हरगुणकयोस्तुल्यत्वदर्शनादुभयत्रागतसमफले क्रमेण स्थूलत्वस्फुटत्वयोर्युक्तिसम्वलितत्वदर्शनाच्च तथा च स्थूलस्फुटाधारतः क्रमेणावश्यमभीष्टपदार्थे स्थूलस्फुटत्व स्यान्नान्यथेति युक्तानुभवाच्च, पूर्वानुपातस्थस्थूलभोग्यखण्डतो नवीनानुपातस्थस्पष्टभोग्यखण्डे स्फुटत्वकथनं युक्तम् । तथैतस्यैवानयनं क्रियतेऽत्र इदानी भोग्य-खण्डस्पष्टीकरणमाहेति श्रीभास्करस्यावतरणलिखनं सुयुक्तमेवेति ।

अथ शेषज्यानयनार्थं विचारः ।

कल्प्यते स्पष्टभोग्यखण्डस्पष्टीप्रमाणम्=य.

पूर्वमानीतं स्पष्टभोग्यखण्डस्वरूपम्= $\frac{\text{यो}}{२}\mp\frac{\text{श्रं. शे}}{२\ \text{प्रचा}}=\text{य}$ ।

परं $\frac{\text{प्रचा. ज्याशे}}{\text{स्पभोख}}=\text{शे}$

अत उत्थापनेन

$\frac{\text{यो}}{२}\mp\frac{\text{श्रं. प्रचा.ज्याशे}}{२\ \text{प्रचा य}}=\text{य}$ पक्षौ २ य गुणितौ तदा

$\text{य. यो}\mp\text{श्रं. ज्याशे}=२\ \text{य}^२$ समशोधनेन $=\text{श्रं. ज्याशे}=२\ \text{य}^२-\text{य. यो}$

पक्षौ द्विगुणितौ तदा $=२\ \text{श्रं. ज्याशे}=४\ \text{य}^२-२\ \text{य. यो}$

पुनः पक्षौ $\left(\frac{\text{यो}}{२}\right)^२$ युक्तौ तदा $\left(\frac{\text{यो}}{२}\right)^२\mp२\text{श्रं .ज्याशे}=४\ \text{य}^२-२\text{य. यो}+\left(\frac{\text{यो}}{२}\right)^२$

मूलेन $२\ \text{य}-\frac{\text{यो}}{२}=\sqrt{\left(\frac{\text{यो}}{२}\right)^२\mp२\ \text{श्रं. ज्याशे}}$ ततः

$$\text{य}=\frac{\sqrt{\left(\frac{\text{यो}}{२}\right)^२\mp२\ \text{श्रं ज्याशे}}+\frac{\text{यो}}{२}}{२}$$

एतेन 'खण्डानि विशोध्याथो शेषं यातैष्यखण्डविवरघ्नम् ।
द्विगुणेन तेन यातैष्यैक्यार्धकृतेर्विहीनयुक्ताया ॥
मूलेन तदैक्यार्धं युक्तं दलितं भवेत्स्पष्टम् ।
भोग्यं क्रमोत्क्रमधनुः करणायैवं गुरुत्वतोनकृतम् ॥

इति संशोधकोक्तमुपपद्यते

तत. $\frac{\text{ज्याशे} \times \text{प्रचा}}{\text{स्पष्टभोख}} = \text{शे} = \text{वास्तवशे}$ । ततोऽन्य ज्याज्ञान सुगममेवेति ॥६१॥

अब शेषांशज्यानयन करते है।

हि भा—गत और गम्य ज्याओ के अन्तरार्ध मे गुणित शेप चाप को प्रथम चाप से भाग देकर जो फल हो उसको क्रमज्या प्रकार और उत्क्रमज्या प्रकार मे गत खण्ड और एष्य खण्ड योगार्ध मे हीन युत करके शेपांश से गुणकर प्रथम चाप से भाग देने से जो फल हो उस पर से शेपांश ज्या होती है ॥ ६१ ॥

उपपत्ति ।

आगे चलकर एक सिद्धान्त की आवश्यकता होगी इसलिये पहले उस सिद्धान्त की उपपत्ति करते है। प्रथमचाप = प्र, शेपचाप = शे तब अनुपात से $\frac{\frac{\text{ज्या प्र}}{\text{२}} \; \frac{\text{शे}}{\text{२}}}{\frac{\text{प्र चा}}{\text{२}}} = \text{ज्या}\,\frac{\text{शे}}{\text{२}}$

'त्रिज्योत्क्रमज्या निहतेर्दलस्य मूल तदर्धांशकशिञ्जिनी' इत्यादि से $\sqrt{\frac{\text{त्रि उशे}}{\text{२}}} = \text{ज्या}\,\frac{\text{शे}}{\text{२}}$ अत

समीकरण करने से $\frac{\text{ज्या}\frac{\text{प्र}}{\text{२}} \; \frac{\text{शे}}{\text{२}}}{\frac{\text{प्र चा}}{\text{२}}} = \sqrt{\frac{\text{त्रि उशे}}{\text{२}}} = \frac{\frac{\text{शे}}{\text{२}} \sqrt{\frac{\text{त्रि उप्र}}{\text{२}}}}{\frac{\text{प्र चा}}{\text{२}}}$ वर्ग करने से

$\frac{\text{शे}^2 \times \text{त्रि उप्र}}{\text{प्र चा}^2 \times \text{२}} = \frac{\text{त्रि उशे}}{\text{२}} \quad \frac{\text{शे}^2\,\text{उप्र}}{\text{प्रचा}^2} = \text{उशे}$ यहां यदि प्रचा = १० तब $\frac{\text{शे}^2\,\text{उप्र}}{\text{१००}} = \text{उशे}$

इससे विशेपोक्तसूत्र उपपन्न हुआ।

"आद्योत्क्रमज्या शेपांशवर्गघ्नीशतभाजिता। दिगंशे प्रमित ह्याद्ये शेपांशोत्क्रमशिञ्जिनी"

गतचाप = गचा। शेपचाप = शेचा, इष्टचाप = इचा तब "चापयोरिष्टयोर्दोर्ज्या मिथ कोटिज्यकाहते" इत्यादि मे $\text{ज्या}(\text{गचा} + \text{शेचा}) = \frac{\text{ज्याग कोज्याशे}}{\text{त्रि}} + \frac{\text{कोज्याग ज्याशे}}{\text{त्रि}}$ परन्तु गचा + शेचा = इचा ∴ ज्या (गचा + शेचा) = ज्याइ। इसमे ज्याग घटाने से ज्याइ — ज्याग

$= \frac{\text{ज्याग कोज्याशे}}{\text{त्रि}} + \frac{\text{कोज्याग ज्याशे}}{\text{त्रि}} - \text{ज्याग} =$

$\frac{\text{ज्याग कोज्याशे} + \text{कोज्याग ज्याशे} - \text{ज्याग त्रि}}{\text{त्रि}} = \frac{\text{ज्याग}\,(\text{कोज्याशे} - \text{त्रि}) + \text{कोज्याग ज्याशे}}{\text{त्रि}}$

$= \frac{\text{ज्याग उशे} + \text{कोज्याग ज्याशे}}{\text{त्रि}} = \frac{\text{कोज्याग ज्याशे}}{\text{त्रि}} - \frac{\text{ज्याग उशे}}{\text{त्रि}}$ = शेपसम्बन्धीय ज्यान्तर

परन्तु $\frac{\text{ज्याप्र शे}}{\text{प्रचा}} = \text{ज्याशे}$

तथा पूर्व सिद्धान्त से $\frac{\text{शे}^2\,\text{उप्र}}{\text{प्रचा २}} = \text{उशे}$

अतः उत्थापन देने से

$$\frac{\text{कोज्याग ज्याप्र शे}}{\text{त्रि प्रचा}} - \frac{\text{ज्याग शे}^2\text{ उप्र}}{\text{त्रि प्रचा}^2} = \frac{\text{शे}}{\text{प्रचा}}\left(\frac{\text{कोज्याग ज्याप्र}}{\text{त्रि}} - \frac{\text{ज्याग उप्र शे}}{\text{त्रि प्रचा}}\right) =$$

शेष सम्बन्धीय ज्यान्तर ... (१)

चित्र ४ देखिये। पन=प्रथमज्या। नम=गतज्या, मच=एष्यज्या। सट=एष्यखण्डम्।

टर=गतखण्डम्। केम=गतकोटिज्या, $\frac{\text{गतख}+\text{एख}}{२}$=सज=जर।

$\frac{\text{गख}+\text{एख}}{२}$—एख = $\frac{\text{गख}+\text{एख}-२\text{ एख}}{२}$ = $\frac{\text{गख}\times\text{एख}}{२}$=टज=नल। लन =प्रथमउत्क्रमज्या नप=नस=प्रथमचाप, पस=सत=प्रथमज्या, तब केनम, सजत दोनों त्रिभुजों के सजातीयत्व के कारण अनुपात करते हैं $\frac{\text{कोज्याग ज्याप्र}}{\text{त्रि}}$=सज=$\frac{\text{गख}+\text{एख}}{२}$=$\frac{\text{यो}}{२}$।

तथा केनम, नतल दोनों त्रिभुजों के सजातीयत्व से $\frac{\text{ज्याग उप्र}}{\text{त्रि}}$=नल=$\frac{\text{गख}-\text{एख}}{२}$=$\frac{\text{अ}}{२}$

इन दोनों $\left(\frac{\text{यो}}{२}, \frac{\text{अ}}{२}\right)$ के स्वरूप में (१) इसमें उत्थान देने से $\frac{\text{शे}}{\text{प्रचा}}\left(\frac{\text{यो}}{२}-\frac{\text{अ शे}}{२\text{प्रचा}}\right)$=ज्याप्र

=शेष सम्बन्धी ज्यान्तर

यहां यदि प्रथमचाप=१०°, तथा अ = गतगम्य खण्डान्तर, तब कोष्ठकान्तर्गत स्वरूप भास्करोक्त स्पष्ट भोग्य खण्ड होगा, ग्रन्थकार अ =गतगम्यज्यान्तर लेते हैं सो ठीक नहीं है, इससे क्रमज्या पक्ष में आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥

अथ उत्क्रमज्यापक्ष में क्या होता है सो विचार करते हैं।

प्रथमचाप=प्र, गतचाप=ग, इष्टचाप=इ, शेषचाप=शे तब "दोर्ज्ययोः कोटिमौर्व्यौरव' इत्यादि से

कोज्या (ग+शे)=कोटिज्याइ=$\frac{\text{कोज्याग कोज्याशे}}{\text{त्रि}}$—$\frac{\text{ज्याग ज्याशे}}{\text{त्रि}}$ लेकिन

कोज्याग—कोज्याइ=कोटिज्यान्तर=कोज्याग—$\left(\frac{\text{कोज्याग कोज्याशे}}{\text{त्रि}}-\frac{\text{ज्याग ज्याशे}}{\text{त्रि}}\right)$

$=\frac{\text{त्रि कोज्याग}-\text{कोज्याग कोज्याशे}+\text{ज्याग ज्याशे}}{\text{त्रि}}$

$=\frac{\text{कोज्याग (त्रि}-\text{कोज्याशे)}+\text{ज्याग ज्याशे}}{\text{त्रि}}$

$=\frac{\text{कोज्या उशे}}{\text{त्रि}}+\frac{\text{ज्याग ज्याशे}}{\text{त्रि}}$ । परन्तु $\frac{\text{उप्र शे}^2}{\text{प्रचा}^2}$=उशे

तथा $\frac{\text{ज्या प्र शे}}{\text{प्रचा}}$=ज्याशे

उत्थापन देने से

$$\frac{\text{कोज्याग उ प्र शे}^2}{\text{त्रि प्रचा}^2}+\frac{\text{ज्याग ज्याप्र शे}}{\text{त्रि प्रचा}}=\frac{\text{शे}}{\text{प्रचा}}\left(\frac{\text{कोज्याग उ प्र शे}}{\text{त्रि प्रचा}}+\frac{\text{ज्याग ज्याप्र}}{\text{त्रि}}\right)$$

$$=\frac{\text{शे}}{\text{प्रचा}}\left(\frac{\text{अ शे}}{\text{प्रचा}\times २}+\frac{\text{यो}}{२}\right)=\text{कोज्याअ}=\text{उत्क्रमज्यान्तर}$$ यहा भी प्रथमचाप $=१०$ तथा $\text{अ}=\frac{\text{गतख—एख}}{२}$ ग्रहण करने से कोष्ठकान्तर्गत भास्करोक्त उत्क्रमज्या पक्षीय स्पष्ट भोग्यखण्ड होना है। यहा ग्र थकार अ = गतगम्य ज्यान्तर लते है। सो ठीक नही है। इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥

पहले ज्यानयन म $\frac{\text{भाख शे}}{\text{प्रचा}}$ शेप सम्बन्धी ज्यान्तर जो अनुपात स शेष सम्बन्धी ज्यान्तर लाया गया है सो स्थल है। क्योकि वहा चापमान को सरलात्मक मानकर अनुपात किया गया है। इसलिये यदि किसी तरह अनुपातागत फल का स्फुटत्व हो जाय तो करना ही चाहिये। यदि पूर्वोक्त कोष्ठकान्तगत फल $\left(\frac{\text{या}}{२}+\frac{\text{अ शे}}{२\ \text{प्रचा}}\right)$ को स्पष्टभोग्य खण्ड मान लें तब अनुपातागत फल म सूक्ष्मता होगी या नही इसके लिये विचार करते है। यद्यपि य ग्र थकार $\frac{\text{यो}}{२}+\frac{\text{अ शे}}{२\ \text{प्रचा}}$ इसका नाम स्पष्ट भोग्य खण्ड नहीं कहत है तथापि उपपत्ति से स्पष्ट भोग्य खण्ड सिद्ध होता है नही तो इतने प्रयास स शेष सम्बन्धी ज्यान्तर से क्या फल। यदि उसको स्पष्ट भोग्य खण्ड कहते है तव पूर्वानुपातागत फल का स्वरूप ज्यों का त्यों रहता ही है। केवल भोग्यखण्ड के स्थान म स्पष्ट भोग्य खण्ड वहा रहेगा। दोनो म $\frac{\text{शे भोख}}{\text{प्रचा}}$ तथा $\frac{\text{शे स्पभोख}}{\text{प्रचा}}$ यह गुणक बराबर होने के कारण स्थूलत्व सूक्ष्मत्व प्रत्यक्ष देखने म आते हैं अत $\frac{\text{शे स्पभोख}}{\text{प्रचा}}$ यह पूर्वानुपातागत $\frac{\text{शे भोख}}{\text{प्रचा}}$ फल से युक्तिसङ्गत स्पष्ट सिद्ध हुआ इसीलिये भास्कराचार्य ने सिद्धान्तशिरोमणि मे इदानीं भोग्यखण्डस्पष्टीकरणमाह यह अवतरण युक्तियुक्त लिखा है ॥ ६१ ॥

अवशेष ज्यानयन करते है।

स्पष्ट भोग्यखण्ड प्रमाण=य

पहले लाये हुए स्पष्ट भोग्यखण्ड प्रमाण= $\frac{\text{या}}{२}+\frac{\text{अ शे}}{२\ \text{प्रचा}}=\text{य}$। तथा

$$\frac{\text{प्रचा ज्यादी}}{\text{स्पभोख}}=\text{दा}$$

उत्थापन दन म

$$\frac{\text{या}}{२} \mp \frac{\text{अ प्रचा ज्याश}}{\text{२ प्रचा य}} = \text{य} = \frac{\text{या}}{२} \pm \frac{\text{अ ज्याश}}{\text{२ य}}$$ दाना पक्षों का २ य स गुण

देन स $२\,\text{य}^2 = \text{य यो} \mp \text{अ ज्याश}$ समशोधन करने स

$२\,\text{य}^2 - \text{य या} = \mp \text{अ ज्याश}$ दाना पक्षा का दो स गुणन से

$४\,\text{य}^2 - २\,\text{य या} = \mp २\,\text{अ ज्याश}$ दाना पक्षा म $\left(\frac{\text{या}}{२}\right)^2$ जोड दन स

$$४\,\text{य}^2 - २\,\text{य या} + \left(\frac{\text{यो}}{२}\right)^2 = \left(\frac{\text{या}}{२}\right)^2 \mp २\,\text{अ ज्याश}$$ मूल लन स

$$२\,\text{य} - \frac{\text{यो}}{२} = \sqrt{\left(\frac{\text{या}}{२}\right)^2 \mp २\,\text{अ ज्याश}}$$

अत $$\frac{\sqrt{\left(\frac{\text{यो}}{२}\right)^2 \mp २\,\text{अ ज्याश}} + \frac{\text{यो}}{२}}{२} = \text{य}$$

इसस सशोधकाक्त सूत्र उपपन्न हुआ ।

खण्डानि विशाध्याथो दोप यातैंप्यखण्डविवरघ्नम् । इत्यादि

इस पर स $\frac{\text{प्रचा ज्याश}}{\text{स्पभोख}}$ —शे = वास्तवशे इसस इसका ज्ञापान सुलभ है ।। ६१ ।।

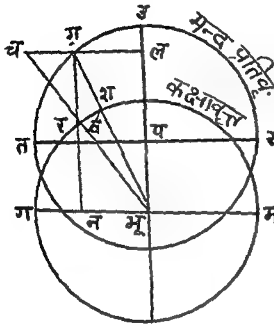
इदानी रवी न्द्वो स्पष्टाकरण भुजान्तरकर्मानयनञ्चाह ।

परिधिघ्नभाशभाजित भुजकोटिज्ये तयो फले भवत ।।६२।।
रविशशिदो फलचाप मेषतुलादिस्थ निजकेन्द्रे ।।
शोध्य क्षेप्यमिनेन्द्वो स्पष्टो स्त सूर्यफलकलाभिहता ।।६३।।
राश्युदयाश्च रवेरहोरात्रासुभाजितास्तेन सगुणित ।
गतयो ग्रहस्य शून्याभ्रनागमहीभाजिता फल रविवत् ।।६४।।

वि भा—परिधिघ्नभाशभाजितभुजकोटिज्ये (परिधिना गुणिते भांशैर्भाजिते भुजकोटिज्ये) तयोर्भुजकोटिज्ययो फले (भुजफल कोटिफल) भवत । रविशशिदो फलचाप (रविचन्द्रयोर्भुजफलचाप) मेषतुलादिस्थ निजकेन्द्रे (मेषादिकेन्द्रस्थे तुलादिकेन्द्रस्थे च) इनेन्द्वो (सूर्याचन्द्रमसो (शोध्य (हीन) क्षेप्य (योज्य) तदा स्पष्टो स्त (सूर्याचन्द्रमसो स्पष्टो भवत) । रवे (सूर्यस्य) राश्युदया (निरक्षोदया) सूर्यफलकलाभिहता (रविमन्दफलकलागुणिता) अहोरात्रासुभाजिता (अहोरात्रासुभिर्भक्ता) तेन फलेन ग्रहस्य गतय सगुणिता (ग्रहगतिकलागुणिता) शून्याभ्रनागमहीभाजिता (१८०० भक्ता) फल रविवत् (मध्यमरवौ मन्दफल योजनेन यदि स्पष्टरविस्तदाऽऽनीतफलमपि मध्यमार्कोदयकालिकग्रहे योज्य यदि च

मध्यमरवौ मन्दफलविशोधनेन स्पष्टरविस्तदाऽऽनीतफल मध्यमार्कोदयकालिक ग्रहे विशोध्य तदा स्पष्टार्कोदयकालिकग्रहो भवेदिति ॥६२—६४॥

अत्रोपपत्ति



चित्र ५

भू=भूकेन्द्रम् । प=मन्दप्रतिवृत्तकेन्द्रम् । भूप=मन्दान्त्यफलज्या । उ=मन्दोच्चम् । ग्र=मन्दप्रतिवृत्ते ग्रह । ग्रउ=मन्दकेन्द्रम् । ग्रल=मन्दकेन्द्रज्या । लप=मन्दकेन्द्रकोटिज्या भूर रेखा वर्धिता तदुपरि ग्रबिन्दुतो लम्ब =ग्रच=मन्दभुजफलम् । चर=मन्दकोटिफलम् । रग्र=मन्दान्त्यफलज्या । रन=मन्दकेन्द्रकोटिज्या भून=मन्दकेन्द्रज्या । भूर=त्रिज्या र=मध्यम ग्रह । श=स्पष्टग्रह । रश=मन्दफलम्

गम—कक्षामध्यगतिर्यग्रेखा ।

तय=मन्दप्रतिवृत्ततिर्यग्रेखा ।

तदा भूरन, रग्रच त्रिभुजयो साजात्यादनुपात ।

$\frac{\text{मन्दकेन्द्रज्या} \times \text{मन्दान्त्यफलज्या}}{\text{त्रि}} = \text{मन्दभुजफलम्}$ ।

$\frac{\text{मन्दकेन्द्रकोज्या} \times \text{मन्दान्त्यफज्या}}{\text{त्रि}} = \text{मन्दकोटिफलम्}$ ।

पर-$\frac{\text{मन्दान्त्यफज्या}}{\text{त्रि}} = \frac{\text{मन्दपरिधि}}{३६०}$ अत उत्थापनेन

$\frac{\text{मन्दकेज्या} \times \text{मन्दपरिधि}}{३६०} = \text{रविमदभुजफलम्}$ । $\frac{\text{मन्दकेकोज्या} \times \text{मन्दपरिधि}}{३६०} = $ मन्द कोटिफलम् । $\frac{\text{रविमन्दकेज्या} \times \text{रविमन्दपरिधि}}{३६०} = \text{रविमन्दभुजफ}$ ।

$\frac{\text{चन्द्रमन्दकेज्या} \times \text{चन्द्रमन्दपरिधि}}{३६०} = \text{चन्द्रभुजफलम्}$ ।

चापकरणेन रविचन्द्रयोर्मन्दभुजफलचापे तयोर्मन्दफले भवत स्वल्पान्तरात् तदा मेषादिकेन्द्रे स्पष्टरवितो मध्यमरवरग्रे स्थितत्वात् मध्यमरवि—रविमन्दफल=

स्पष्टरवि तुलादिकेन्द्रे स्पष्टरवितो मध्यमरवे पृष्ठे स्थितत्वात् मध्यमरवि + रविमन्दफ = स्पष्टरवि । एवं चन्द्रे पि, अत्राचार्येण मन्दभुजफलचापसमं मन्दफलं यत्स्वीकृतं तन्न समीचीनम् । यतः ग्रच = भुजफल । शव = मन्दफलज्या, एतयो साम्ये आचार्यकथनं समीचीनं भवितुमर्हति परं प्रत्यक्षमेव दृश्यते तयो साम्यं नास्ति । पठितमन्दकर्णाग्रीयं मन्दभुजफलं मन्दफलज्यासमं भवति, तात्कालिककर्णाग्रीयं मन्दभुजफलं मन्दफलज्यासमं न भवति । यथा

ग्र = मन्दप्रतिवृत्ते मध्यमग्रह । भूग्र = तात्कालिमन्दकर्ण । ग्रम = तात्कालिकान्त्यफलज्या ग्रस = मन्द भुजफलम् । नप = मन्दफलज्या, न विन्दुतो भूसरेखाया समानान्तरा रेखा कार्या सा यत्र मग्ररेखाया लग्ना तत्र श विन्दु । श विन्दुत भूसरेखो- परिलम्ब = शर = पठितमन्दकर्णा- ग्रीय भुजफ भूश = पठितमन्दकर्ण । न विन्दुतो मग्र रेखाया समान्तरा नज रेखा कार्या तदा नश मज समा- नान्तर चतुर्भुजे मश = नज । परं भूग्रम, भूनज त्रिभुजयो साजात्यात्

$$\frac{\text{तात्कालिकान्त्यफज्या} \times \text{त्रि}}{\text{तात्कालिकामकर्ण}} = \text{नज}$$

चित्र ६

= पठितान्त्यफलज्या, यतस्त्रिज्यातुल्ये कर्णे यान्त्यफलज्या सैव पठितान्त्य- फलज्या, नज = शम = पठितान्त्यफज्या अत भूश = पठितमन्दकर्ण । तथा रश = नप (समानान्तर चतुर्भुजत्वात्) परं रश = पठितमन्दकर्णाग्रीयभुजफलम् । नप = मन्दफज्या,

एतेन सिद्ध यत्पठितमन्दकर्णाग्रीयभुजफल मन्दफलज्ययोस्तुल्यत्वात्तद्भुजचापसमं मन्दफलं भवितुमर्हति । नहि तात्कालिक मन्दभुजफलचापसमं मन्दफलं भवेदत आचार्योक्तं न समीचीनमिति । श्रीपतिनाऽपि सिद्धान्तशेखरे एवमेव कथ्यते—

> दो फलस्य च धनुर्मनादिकं जायते मृदुफलं नभ सदाम् ।
> तेन संस्कृततनुर्दिवाकरो मध्यमो विधुरपि स्फुटो भवेत् ॥ इति
> भास्कराचार्येणापि मन्दभुजफलचापसममेव मन्दफलं कथ्यते । यथा
> भूतश्रुतिर्वा मृदु दो फलस्य चापं बुधा मन्दफलं वदन्ति ॥

सूर्यफलवासनाभिज्ञा ज्याभ्य फल रविविदित्यन्तेन भुजान्तरसाधनं क्रियते तदुपपत्तिर्मया मध्यमाधिकारे लिखिता सा तत्रैव द्रष्टव्येति ॥६२-६४॥

हि भा—केन्द्रज्या और केन्द्रकोटिज्या को परिधि से गुणकर भाग (३६०) से भाग देने से भुजफल और कोटिफल होता है। रवि और चन्द्र के भुजफल चाप को मेषादिकेन्द्र में मध्यम रवि और मध्यमचन्द्र म ऋण करने से तुलादिकेन्द्र में मध्यम रवि और मध्यम चन्द्र से धन करने से स्पष्ट रवि और स्पष्ट चन्द्र होते है। रवियुत राशि के निरक्षोदयासु को रवि मन्दफलकला से गुण देना अहोरात्रासु से भाग देकर जो हो उसको ग्रहगति से गुणकर १८०० से भाग देने से जो फल होता है उसको रवि की तरह (मध्यम रवि म मन्द फल जोडने से स्पष्ट रवि होते हैं तो इस लाये हुए फल को भी मध्यमार्कोदयकालिक ग्रह में जोड देना, यदि मध्यमरवि में मन्द फल को ऋण करने से स्पष्ट रवि होते हैं तो मध्यमार्कोदयकालिक ग्रह में ऋण करना तब स्पष्टार्कोदय कालिक ग्रह होता है) ॥६२-६४॥

उपपत्ति

चित्र ५ को देखिये।

भू=भूकेन्द्र प=मन्दप्रतिवृत्त केन्द्र । भूप=मन्दान्त्यफलज्या। उ=मन्दोच्च। ग्र=मन्दप्रतिवृत्त में मध्यमग्रह। ग्रउ=मन्दकेन्द्र। ग्रल=मन्दकेन्द्रज्या, लप=मन्दकेन्द्रकोटिज्या, भूर रेखा को बढा कर उस पर ग्र बिन्दु से लम्ब करते है। उसका नाम है मन्दभुजफल=ग्रच। चर=मन्दकोटिफल। रप=मन्दान्त्यफलज्या, रन=मन्दकेन्द्रकोटिज्या, भून=मन्दकेन्द्रज्या, र=मध्यम ग्रह। श=स्पष्टग्रह। रश=मन्दफल। गम=कक्षामध्यगतिर्यग्रेखा। तय=मन्दप्रतिवृत्तमध्यगतिर्यग्रेखा। तब भूरन, रग्रच दोनो त्रिभुजसजातीय है इसलिये अनुपात करते हैं।

$\frac{\text{मन्दकेन्द्रज्या} \times \text{मन्दान्त्यफलज्या}}{\text{त्रि}}$ = मन्दभुजफल। $\frac{\text{मन्द के कोज्या} \times \text{मन्दान्त्यफज्या}}{\text{त्रि}}$ = मन्दकोटिक लेकिन $\frac{\text{मन्दान्त्यफज्या}}{\text{त्रि}} = \frac{\text{मन्दपरिधि}}{३६०}$ उत्थापन देने से

$\frac{\text{मन्दकेज्या} \times \text{मन्दपरिधि}}{३६०}$ = मन्दभुजफल। $\frac{\text{मन्द के कोज्या} \times \text{म परिधि}}{३६०}$ = मन्दकोटिफल

$\frac{\text{रविमन्दकेज्या} \times \text{रवि मन्द परिधि}}{३६०}$ = रविम भुजफल। $\frac{\text{च म केज्या} \times \text{च म परिधि}}{३६०}$ = चन्द्र मभुफल चाप करने से रवि और चन्द्र का मन्दभुजफल चाप होता है। इसको आचार्य स्वल्पान्तर से मन्दफल के बराबर मानते हैं।

तब मेषादिकेन्द्र में स्पष्ट रवि से मध्यम रवि आगे रहते हैं इसलिये मरवि + रमफ = स्पष्ट रवि तुलादिकेन्द्र में स्पष्टरवि से मध्यम रवि पीछे रहते हैं इसलिये मरवि + रमफ = स्पष्टरवि इसी तरह चन्द्र में भी होना है। ग्रच=भुजफल। शव=मन्दफलज्या इन दोनों के बराबर रहने से आचार्य का कथन ठीक हो सकता है लेकिन प्रत्यक्ष देखते है दोनो बराबर नही है।

पठित मन्दकर्णाग्रीय भुजफल मन्दफलज्या के बराबर होता है। तात्कालिक कर्णाग्रीय भुजफल मन्दफलज्या के बराबर नहीं होता है। जैसे—

यहा चित्र ६ देखिये। ग्र=मन्द प्रतिवृत्त में मध्यग्रह। भूग्र=तात्कालिक मन्दकर्ण ग्रम=तात्कालिकान्त्यफलज्या, ग्रस=मन्दभुजफल। नप=मन्दफलज्या, न बिन्दु से भूस रेखा की समान्तर रेखा कीजिए ग्रम रेखा में जहा लगती है वहा ज बिन्दु है। ज बिन्दु से भूस रेखा के ऊपर लम्ब=जर=पठितमन्दकर्णाग्रीय भुजफल। भूज=पठितमन्दकर्ण न बिन्दु से ग्रम रेखा की समानान्तर रेखा नज है तब भज=नज भग्रम, भूनज दोनो त्रिभुज सजातीय है इसलिये $\frac{\text{तात्कालिकान्त्यफलज्या} \times \text{त्रि}}{\text{तात्कालिकमन्दकर्ण}}$ =नज=पठितान्त्यफलज्या। त्रिज्यातुल्यकर्ण में जो अन्त्यफलज्या है वही पठितान्त्यफलज्या कहलाती है। नज=राम=पठितान्त्यफलज्या। भूज=पठितमन्दकर्ण, रज=नप। लेकिन रज=पठितमन्दकर्णाग्रीयभुजफल। नप=मन्दफलज्या, इससे सिद्ध हुआ कि पठित मद कर्णाग्रीय भुजफल और मन्दफलज्या के बराबर होने के कारण उस भुजफल के चाप के बराबर मन्दफल होता है। तात्कालिक मन्दभुज चाप के बराबर मन्दफल नही होता है। इसलिए आचार्य का कथन ठीक नहीं है।

सिद्धातशेखर मे श्रीपति भी इसी तरह कहते हैं। यथा—

दो फलस्य च धेनु कलादिक जायते मृदुफल नभ सदाम्।
तेन सस्कृततनुर्दिवाकरो मध्यमो विधुरपि स्फुटो भवेत्॥

भास्कराचार्य भी मन्दभुजफल चाप ही को मन्दफल कहते हैं। जैसे—

मूल श्रुतिर्वा मृदु दो फलस्य चाप बुधा मन्दफल वदन्ति॥

'मूर्यफलकलाभिहता' यहा से 'फल रविवत्' यहा तक से आचार्य भुजान्तर फल साधन करते हैं। उसकी उपपत्ति मध्यमाधिकार म लिखी गयी है। वह वही देखनी चाहिए॥६२ ६४॥

इदानीं ग्रहाणा चरकर्माह।

भानोश्चरासु निहतागतयो ग्रहाणा खाभ्राङ्क स्वर्गविहृता फलहीनयुक्ता।
मेषादिगे दिनपतावुदयास्तसस्था जूकादिके तु खचरा सहिता वियुक्ता॥६५॥

वि भा—ग्रहाणा गतय (ग्रहगतिकला) चरासुनिहता (चरासुभिर्गुणिता) खाभ्राङ्क (२६००) विहृता (भक्ता) फलहीनयुक्ता खचरा कार्या दिनपतौ (सूर्ये) मेषादिगेऽर्थादुत्तरगोले सति), दिनपतौ (सूर्ये) जूकादिके (तुलादिस्थेऽर्थाद्दक्षिणगोले) सहिता वियुक्ता (युक्ता-रहिता) खचरा कार्या तदा क्रमश उदयास्तसस्था ग्रहा भवन्त्यर्थादुत्तरगोले चरफलकलाभिर्ग्रहो रहितो दक्षिणगोले सहितस्तदौदयिको ग्रहो भवेत्तथोत्तरगोले सहितो दक्षिणगोले रहितस्तदाऽस्तकालिकग्रहो भवेदिति॥६५॥

अत्रोपपत्ति

अहर्गणोत्पन्ना ग्रहा लङ्काक्षितिजासन्ना समागच्छन्ति, तत्र देशान्तरसस्कारेण स्वकीयोन्मण्डलकालिका भवन्ति। एतदाचार्यमतेनाहर्गणोत्थग्रहा लङ्काक्षितिजस्था

एव समागच्छन्तीत्यहर्गणाद् ग्रहानयनदर्शनेव स्फुट भवेत् । परमपेक्षितास्तु स्वक्षिति जोदयकालिका. । तेन स्वक्षितिजोन्मण्डलयोरन्तररूपचरासु सम्बन्धिग्रहगतिमानीयते तत्रानुपातो यद्यहोरात्रासुभिर्ग्रहगतिकला लभ्यन्ते तदा चरासुभि कि समागच्छन्ति चरास्वन्तर्गतग्रहगतिकला । उत्तरगोले उन्मण्डलस्य स्वक्षितिजादुपरिस्थितत्वा-दानीतचरफलैरुन्मण्डलकालको ग्रहो हीन कार्यो दक्षिणगोले युक्त (उन्मण्डलात्स्व-क्षितिजस्योऽर्ध्वस्थितत्वात्) तदा स्वक्षितिजोदयकालिकग्रहो भवेत् । पर चरासु-मध्येऽपि ग्रहाणा काऽपिगतिर्भविष्यति तद्ग्रहणन्त्वाचार्येण न कृतमत पूर्वोक्त-युक्त्यौदयिकग्रहास्तकालिकग्रहश्च न समीचीनास्तत्रासकृत्कर्मणा पूर्वोक्तग्रहसिद्धि । अहोरात्रासुशब्देन सर्वत्रैव ग्रहाहोरात्रासवो न ग्रहीतव्या ग्रहाहोरात्रा स्वन्तर्गतग्रह-गतिपाठाभावादिति ॥६५॥

हि भा — ग्रहगति को चरासु से गुण कर २१६०० से भाग देने से जो फल हो उसको उत्तर गोल मे रवि के रहने से ग्रह मे घटाने से दक्षिण गोल मे जोडने मे औदयिक ग्रह होते हैं । तथा उत्तर गोल मे जोडने से दक्षिण गोल मे घटाने मे अस्तकालिक ग्रह होते हैं ॥६५॥

उपपत्ति

अहर्गणोत्पन्न ग्रह लङ्काक्षितिजासन्न मे आते है, उसमे देशान्तर सस्कार करने से उन्मण्डलकालिक ग्रह होते हैं । इन आचार्य के मत मे अहर्गणोत्पन्न ग्रह लङ्काक्षितिजस्थ होते हैं । यह विषय अहर्गण से ग्रहानयन देखने से साफ होता है, लेकिन यह अपेक्षित है स्वक्षितिजोदयकालिक इसलिए स्वक्षितिज और उन्मण्डल के अन्तर्गत चरासु सम्बन्धी ग्रह-गति प्रमाण लाते हैं । यदि अहोरात्रासु मे ग्रहगति कला पाते है तो चरासु मे क्या इस अनुपात से चरासु सम्बन्धि ग्रहगति कला प्रमाण आया । उत्तर गोल मे अपने क्षितिज से उन्मण्डल के ऊपर रहने के कारण आ ीत चरफल को उन्मण्डलकालिक ग्रह मे ऋण करने से दक्षिणगोल मे जोडने (उन्मण्डल से स्वक्षिति को ऊपर रहने के कारण) से स्वक्षितिजो-दयकालिक ग्रह होते है । लेकिन चरासु के अन्तर्गत भी ग्रह की कुछ गति होगी उसका ग्रहण आचार्य नहीं करते हैं, इसलिए पूर्वोक्तयुक्ति से औदयिक ग्रह और अस्तकालिक ग्रह ठीक नहीं होगा वहा असकृत्कर्म करने से पूर्वोक्त ग्रह ठीक होंगे । अहोरात्र शब्द से सब जगह ग्रह की अहोरात्रासु नहीं लेनी चाहिए । क्योंकि ग्रहाहोरात्रान्तर्गत ग्रहगति का पाठ नहीं है ॥६५॥

इदानीं स्पष्टगतिपरिभाषामाह ।

ह्यः श्वस्तनाद्यतनयोर्विशेषजा सूर्ययोर्गतिः स्फुटगतिर्गतागता ।
श्वस्तनाद्यतनयो रवेर्विधोरेवमिष्टखचरस्य वा भवेत् ॥६६॥

वि. भा — ह्य श्वस्तनाद्यतनयो सूर्ययो (ह्यस्तनाद्यतनयो, श्वस्तनाद्य-तनयो सूर्ययो) विशेषजा (अन्तरोत्पन्ना) गति, गतागता (अतीतगम्या) स्फुट-

गतिर्भवेदर्थात् ह्यस्तनाद्यतनस्फुटसूर्ययोरन्तरं गता सूर्यस्पष्टा गतिस्तथाऽद्यतन-श्वस्तनस्पष्टसूर्ययोरन्तरं गम्या स्पष्टसूर्यगतिः । एवं श्वस्तनाद्यतनयोरेवेविधोरिष्ट-ग्रहस्य वा स्फुटा गतिर्भवदिति ॥६६॥

उपपत्ति

स्पष्टगते परिभाषा क्रियते । ग्रहयोरन्तरं ग्रहगतिः । ह्यस्तनाद्यतनयोर्ग्रहयो-रन्तरं गतग्रहगतिः । अद्यतनश्वस्तनग्रहयोरन्तरं गम्यग्रहगतिः । सर्वेषां ग्रहादीनां गतेः परिभाषैकरूपैव भवेत् । अद्यतनश्वस्तनमध्यमग्रहयोरन्तरं मध्यगतिः । अद्यतनश्वस्तनमन्दोच्चयोरन्तरं मन्दोच्चगतिरेव सर्वेषां गतिर्भवतीति ॥६६॥

हि भा—बीता हुआ कल और आज के स्पष्टसूर्य का अन्तर गत सूर्य स्पष्टगति होती है और आज के स्पष्ट सूर्य और भावी कल के स्पष्ट सूर्य का अन्तर गम्य सूर्य स्पष्ट गति होती है। इसी तरह चन्द्र और दूसरे ग्रह की भी स्पष्टगति होती है। गति की परिभाषा करते हैं किसी भी ग्रह या मन्दोच्चादि की गति की परिभाषा इसी तरह की जाती है। आज के और कल के मध्यम ग्रह का अन्तर मध्यम ग्रहगति है। आज के और कल के मन्दोच्च के अन्तर मन्दोच्चगति है। इसी तरह सब की गति होती है ॥६६॥

इदानीं मन्दगतिफलानयनं तत स्पष्टगत्यानयनं चाह ।

मन्दतुङ्गगतिवर्जिता गतिः केन्द्रभुक्तिरिह खेचरस्य सा ।
दोर्गुणान्तरहताद्यजीवया भाजिता. स्वपरिणाहसंगुणा ॥६७॥
भगणांशहृता फलं गतौ निजकेन्द्रे मकरादिके क्षयं ।
धनमिन्दुगृहादिके स्फुटा श्रवणाग्रे खलु चान्तमानिका ॥६८॥

वि भा—गतिः (मध्यगतिः) मन्दतुङ्गगतिवर्जिता (मन्दोच्चगतिरहिता) तदा सा खेचरस्य (ग्रहस्य) केन्द्रभुक्तिः (मन्दकेन्द्रगतिर्भवेत्) दोर्गुणान्तरहृता (मन्दकेन्द्रज्यान्तरगुणा) आद्यजीवया (प्रथमज्यया) भाजिता (भक्ता) स्वपरि-णाहसगुणा (स्वपरिधिगुणिता) भगणांशहृता (३६० एभिर्भाज्या) फलं मकरादिके निजकेन्द्रे (मकरादिके स्वकेन्द्रे) गतौ (मध्यगतौ) क्षयं (ऋणं) कार्यं, इन्दुगृहा-दिके केन्द्रे (कर्कादिकेन्द्रे) धनं (युक्तं) तदा (स्फुटा गतिः स्यात्) रविचन्द्रयोः कृते इयमेव स्फुटा गतिर्भवेदन्येषां कृते मन्दस्पष्टगतिर्भवेत् । श्रवणाग्रे खलु चान्तमानि-केत्यस्याग्रिमश्लोकेन सम्बन्ध इति ॥६७ ६८॥

अत्रोपपत्तिः ।

अथ $\frac{\text{मन्दकेज्या} \times \text{मन्दान्त्यफज्या}}{\text{त्रि}}$ = मंदभुजफल = मंदफलज्या (स्वल्पान्तरात्)

तथा $\frac{\text{मंदकेज्या} \times \text{मंदान्त्यफज्या}}{\text{त्रि}}$ = मंदभुजफ = मंदफज्या (स्वल्पान्तरात्)

अनयोरन्तरेण

$$\frac{\text{मन्दान्त्यफज्या}}{\text{त्रि}}(\text{म'न्दकेज्या} \sim \text{मन्दकेज्या}) = \text{म'न्दफलज्या} \sim \text{मन्दफज्या} = \text{मफलज्यान्तरम्} = \text{मफलगति} \ (\text{स्वल्पान्तरात्})$$

$$= \frac{\text{मन्दान्तफज्या} \times \text{मन्दकेन्द्रज्यान्तर}}{\text{त्रि}} = \text{मफलगति}$$

अथ मन्दकेन्द्रज्यान्तरमानीयते ।

चन = मदकेंद्रम् । च विंदुतो वृत्तस्पर्शरेखा कार्या तत्र चर = प्रथमज्या, चप = मदकेन्द्रगति इति दत्वा च विंदुतो रज रेखोपरि लम्ब = चम तदा रम = स्पष्टभोग्य खण्डम् । पच = मद केन्द्रग

तदा चरम, चपव त्रिभुजयो साजात्यादनुपात

चित्र ७

$$\frac{\text{स्पष्टभोख} \times \text{मदकेन्द्रगति}}{\text{प्रथमज्या}} = \text{मन्दकेन्द्रगतिसज्यावृद्धि} = \text{मन्दकेन्द्रज्यान्तर}$$

मन्दफगतिस्वरूपे उत्थापनेन $\frac{\text{मन्दान्त्यफलज्या} \times \text{स्पभोख} \times \text{मकेग}}{\text{त्रि} \times \text{ज्याप्र}} = \text{मफलगति}$

अथ $\frac{\text{मअन्त्यफज्या}}{\text{त्रि}} = \frac{\text{मन्दपरिधि}}{३६०} \therefore \frac{\text{मन्दपरिधि} \times \text{स्पभोख} \times \text{मकेग}}{३६० \times \text{ज्याप्र}} = \text{मफलगति}$

ततो मकरादि कर्क्यादिकेन्द्रवशात गध्यग $\mp$ मगफ = मस्पग,
रविचन्द्रयोर्मध्यमगतिमन्दगतिफलयोश्च ग्रहणादियमेव स्पष्टगतिर्भवति ॥
एतेनाचार्योक्तमुपपन्नम् ।

परमेनदानयन न समीचीन यतो मन्दफलज्यान्तरमन्दफलान्तरयो समत्व स्वीकृतमाचार्येणातो वास्तवानयन क्रियते ।

अथ $\frac{\text{मकेज्या} \times \text{मदअफज्या}}{\text{त्रि}} = \text{मफज्या}$, पक्षयोश्चलनकलनरीत्या तात्कालिक

गतिग्रहणेन $\frac{\text{मग्र फज्या}}{\text{त्रि}} \times \frac{\text{मकेकोज्या} \times \text{मकेग}}{\text{त्रि}} = \frac{\text{मफकोज्या} \times \text{मफग}}{\text{त्रि}}$

$= \frac{\text{मकोन्फिल} \times \text{मकेग}}{\text{त्रि}} = \frac{\text{मफकोज्या} \times \text{मफग}}{\text{त्रि}}$

अत मकोफ × मकेग = मफकोज्या × मफग पक्षौ मफकोज्या भक्तौ तदा $\frac{\text{मकोफ} \times \text{मकेग}}{\text{मफकोज्या}}$ = मफलगति । अनया रीत्या वास्तव मन्दगतिफलानयन भवितुमर्हति, ग्रयाऽऽनीनमन्दगनिफलस्वरूप यदि हरभाज्यौ त्रिज्यया गुण्यते तदा $\frac{\text{मकाफ} \times \text{मकेग} \times \text{त्रि}}{\text{मफकोज्या} \times \text{त्रि}} = \frac{\text{भास्करकथितमगनिफ} \times \text{त्रि}}{\text{मफकोज्या}}$ = मगफल

भास्करेण $\frac{\text{मकोफ} \times \text{मकेग}}{\text{त्रि}}$ = मगफल, कथ्यते, एतेन सिद्ध यद्भास्करोक्त गतिफल त्रिज्यया गुणित मन्दफलकोटिज्यया भक्त तदा वास्तव मन्दगतिफल भवेदतो विशेषोक्तसूत्रावतार

भास्करोक्त गतिफल त्रिज्यया गुणित हृतम् ।
मान्दीय फलकोटिज्यामानेन भवति स्फुटम् ॥ इति । ६७-६८ ॥

हि भा —मन्दोच्च गति को ग्रहगति म घटाने मे मन्द केन्द्रगति होती है। उसको (मन्द केन्द्रगति को) केन्द्रज्यान्तर म गुण देना, प्रथमज्या से भाग देना, जो फल हो मन्द परिधि से गुणकर भाग (३६०) मे भाग देना जो फल (मन्दगतिफल) हो उसको मकरादि केन्द्र म मध्यगति म ऋण करना और कर्कादिकेन्द्र म मध्यगति म जोड़ना तब रवि और चन्द्र की स्पष्टगति होती है। कुजादि ग्रहो की मन्दस्पष्टा गति होती है ॥६७ ६८॥

उपपत्ति

$\frac{\text{मन्दकज्या} \times \text{मन्दान्त्यफज्या}}{\text{त्रि}}$ = मन्दभुजफल = मन्दफलज्या (स्वल्पान्तर से)

तथा $\frac{\text{म'केज्या} \times \text{मन्दान्त्यफज्या}}{\text{त्रि}}$ = म'न्दभुजफ = म'न्दफलज्या (स्वल्पान्तर से)

दोनो के अन्तर करने स

$\frac{\text{मन्दान्त्यफज्या (म'केज्या} \sim \text{मकेज्या)}}{\text{त्रि}}$ = म'न्दफज्या ∼ मन्दफज्या = म'न्दफज्या

न्तर = मन्दफ'लान्तर = मफलग (स्वल्पान्तर से)

$= \frac{\text{मन्दान्त्यफज्या} \times \text{मन्दकेन्द्रज्यान्तर}}{\text{त्रि}}$ = मन्दफलगति ।

यहा मन्दकेन्द्रज्यान्तर के प्रमाण ज्ञात है ।
(७) चित्र देखिए ।

चेन=मन्दकेन्द्र। च बिंदु से वृत्त स्पर्शरेखा कीजिये। उसमें चर=प्रथमज्या, स्पर्श-रेखा में चप=मन्दकेन्द्रगति। दान देकर च बिंदु से रज रेखा के ऊपर चम लम्ब कीजिये। तब रम=स्पष्टभोग्यखण्ड, पच=मन्दकेन्द्रगति। चरम, चपव दोनो त्रिभुज सजातीय हैं इसलिये अनुपात करते हैं।

$$\frac{\text{स्पष्टभोखण्ड} \times \text{मन्दकेन्द्रगति}}{\text{ज्याप्रथम}} = \text{मन्दकेन्द्रगति सज्यावृद्धि} = \text{मन्दकेन्द्रज्यान्तर}$$ इससे

मन्दफलगति स्वरूप में उत्थापन देने से $\frac{\text{मग्रफज्या} \times \text{स्पभोखं} \times \text{मकेग}}{\text{त्रि} \times \text{ज्याप्र}} = \text{मफलगति}$

$\because \frac{\text{मग्रफज्या}}{\text{त्रि}} = \frac{\text{मन्दपरिधि}}{३६०}$, $\frac{\text{मन्दपरिधि स्पभोख मकेग}}{३६० \times \text{ज्याप्र}} = \text{मफलगति}$

तब मकरादि कर्क्यादिकेन्द्रवश मध्यगति$\mp$मंगतिफल=मन्दस्पष्टगति रवि, चन्द्र के लिये अपनी अपनी मध्यगति और मन्दगति फल लेने से यही स्पष्टगति होती है। इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ।

लेकिन यह आनयन ठीक नहीं है क्योंकि पहले मन्दफलज्यान्तर=मन्दफलान्तर =मन्दगतिफल, मान लिया गया है। इसलिए वास्तवानयन करते हैं।

$\frac{\text{मकेज्या} \times \text{मग्रफज्या}}{\text{त्रि}} = \text{मफज्या}$ दोनो पक्षों के चलन कलन से तात्कालिक गति लाने से

$$\frac{\text{मकेकोज्या} \times \text{मकेग}}{\text{त्रि}} \times \frac{\text{मग्रफज्या}}{\text{त्रि}} = \frac{\text{मफकोज्या} \times \text{मफग}}{\text{त्रि}}$$

$$\frac{\text{मकोफ} \times \text{मकेग}}{\text{त्रि}} = \frac{\text{मफकोज्या} \times \text{मफग}}{\text{त्रि}}$$ छेदगम से

मकोफ मकेग = मफकोज्या $\times$ मफग $\qquad \frac{\text{मकोफ} \times \text{मकेग}}{\text{मफकोज्या}} = \text{मफग}$

इस रीति से वास्तव मन्दगतिफलानयन हो सकता है।

आनीत मन्दफलगति स्वरूप $\frac{\text{मकोफ मकेग}}{\text{मफकोज्या}}$ को त्रिज्या से गुणन भजन करने से

$$\frac{\text{मकोफ} \times \text{मकेग} \times \text{त्रि}}{\text{मफकोज्या त्रि}} = \frac{\text{भास्करवचित मगफ त्रि}}{\text{मफकोज्या}} = \text{मफलगति},$$

$\therefore \frac{\text{मकोफ} \times \text{मकेग}}{\text{त्रि}}$ = भास्करोक्तगतिफल। इससे सिद्ध होता है कि भास्करोक्त मन्दगति फल को त्रिज्या से गुणकर मन्दफलकोटिज्या से भाग देने से वास्तव मन्दगतिफल होता है।

इससे विशेषोक्त सूत्र उत्पन्न हुआ—

भास्करोक्त गतिफल त्रिज्यया गुणित हृतम् ।' इत्यादि ।।६७ ६६।।

इदानी पुनर्मन्दगतिफलानयन तत स्पष्टगत्यानयन चाह ।

निजकेन्द्रगतिः समाहता त्रिभमौर्व्या मृदुकर्णभाजिता ।
स्वमृदूच्चगति फलान्विता ग्रहभुक्तिस्त्वथवा परिस्फुटा ।।६६।।

वि भा —अथवा निजकेन्द्रगति (ग्रहस्वमन्दकेन्द्रगति) त्रिभमौर्व्या समाहता (त्रिज्यया गुणिता) मृदुकर्णभाजिता (मन्दकर्णभक्ता) फलान्विता स्वमृदूच्चगति (फलयुक्ता ग्रहमन्दोच्चगति) परिस्फुटा ग्रहभुक्ति (ग्रस्पष्टगति) भवेत् ।। ।।६६।।

अत्रोपपत्ति ।

अथ $\frac{\text{म'केन्द्रज्या} \times \text{त्रि}}{\text{मन्दकर्ण}} = \text{स्प'केज्या}$

तथा $\frac{\text{मेकेन्द्रज्या} \times \text{त्रि}}{\text{म दकर्ण}} = \text{स्प'केज्या}$

अनयोरन्तरेण

$\frac{\text{मन्दकेन्द्रज्यान्तर} \times \text{त्रि}}{\text{मन्दकर्ण}} = \frac{\text{मन्दकेन्द्रगति} \times \text{त्रि}}{\text{मन्दकर्ण}} = \text{स्पष्टकेन्द्रज्यान्तर} = \text{स्पष्ट-}$ केन्द्रगति (स्वल्पान्तरात्)

मन्दोच्चगति + स्पकेगति = स्पष्टगति । रविचन्द्रयो कृते इयमेव स्पष्टा गतिर्भवेत् । इदमानयनमपि न समीचीनम् । यत

मन्दकेन्द्रज्यान्तर = मन्दकेन्द्रगति = मन्दकेन्द्रान्तर तथा

स्पष्टकेन्द्रज्यान्तर = स्पष्टकेन्द्रान्तर = स्पष्टकेगति आचार्येण तुल्या कल्पिता, तत स्पष्टकेन्द्रग + मन्दोच्चगति = स्पष्टगति

वस्तुत एतान्यानयानि रविचन्द्रयोरेव कृते सन्ति, यत एतस्याध्यायस्य नाम रविचन्द्रयो स्फुटीकरणविधिरस्तीति ।।६८।।

हि भा —अपनी केन्द्रगति को त्रिज्या से गुणकर मन्दकर्ण से भाग देने से जो फल हो उसको मन्दोच्चगति में जोडने से स्पष्टगति होती है ।।६६।।

उपपत्ति

$\frac{\text{मकेज्या} \times \text{त्रि}}{\text{मन्दकर्ण}} = \text{स्पकेज्या}$ । $\frac{\text{म'केज्या} \times \text{त्रि}}{\text{मन्दकर्ण}} = \text{स्पकेज्या}$

दोनो के अन्तर करने से

$\frac{\text{मन्दकेज्यान्तर त्रि}}{\text{मन्दकर्ण}} = \frac{\text{मन्दकेन्द्रज्यान्तर त्रि}}{\text{मन्दकर्ण}} = \frac{\text{मकेगति त्रि}}{\text{मन्दकर्ण}} = \text{स्पष्टकेन्द्रज्यान्तर} = \text{स्पष्टकेन्द्रा-}$

न्तर = स्पष्टकेन्द्रगति (स्वल्पान्तर से)

∴ मन्दोच्चगति + स्वकेग = स्पष्टगति ।

यह आनयन भी ठीक नहीं है क्योंकि मन्दकेन्द्रज्यान्तर = मन्दकेन्द्रान्तर = मन्दकेन्द्रग तथा स्पष्टकेन्द्रज्यान्तर = स्पष्टकेन्द्रान्तर = स्पष्टकेन्द्रगति आचार्य इन सब को स्वल्पान्तर से तुल्य माने हैं। ये सब आनयन रवि और चन्द्र के लिये है क्योंकि इस अध्याय का नाम ही 'रविचन्द्रयो स्फुटीकरणविधि' है। इति ॥६९॥

इदानीं पुन रविचन्द्रयोर्मन्दगतिफलानयनमाह ।

भुजभोज्यगुणान्तरं रवेः शरनिघ्नं द्विशरेन्दुभाजितम् ।
शशिनोऽङ्कजलाहत हृतं खकृतैर्भुक्तिफल कलादि वा ॥७०॥

वि भा —रवे (सूर्यस्य) भुजभोज्यगुणान्तर (गतगम्यकेन्द्रज्यान्तर) शरनिघ्न (पञ्चगुणित) द्विशरेन्दुभाजित (१५२ एभिर्भक्त) तदा कलादिभुक्तिफल (कलादिगतिफल) भवेत्। शशिन (चन्द्रस्य) भुजभोज्यगुणान्तरम् अङ्कजलाहत (ऊनपञ्चाशद्गुणित) खकृतै (४० एभि) हृत (भक्त) तदा कलादिगतिफल भवेदिति ॥७०॥

अत्रोपपत्ति ।

$$\frac{\text{मके ज्या} \times \text{मअफज्या}}{\text{त्रि}} = \text{म भुफल} = \text{मन्दफलज्या (स्वल्पान्तरात्)}$$

तथा $\frac{\text{म'केज्या} \times \text{मअफज्या}}{\text{त्रि}} = \text{म'भुजफल} = \text{म'दफलज्या}$

अनयोरन्तरेण

$$\frac{\text{मअफज्या}}{\text{त्रि}} \times \text{मन्दकेन्द्रज्यान्तर} = \text{मन्दफलज्यान्तर} = \text{मन्दफलान्तर} = \text{मन्दग-}$$

तिफ (स्वल्पान्तरात्)

$$\frac{\text{मअफज्या}}{\text{त्रि}} = \frac{\text{मन्दपरिधि}}{३६०} \quad \therefore \frac{\text{मन्दपरिधि} \times \text{मकेन्द्रज्यान्तर}}{३६०} = \text{मन्दगतिफल}$$

अथ $\frac{\text{रविमन्दपरिधि} \times \text{रविमन्दपरिधि केज्यान्तर}}{३६०} = \text{रविमन्दगफ अत्र हरभाज्यौ}$

पञ्चभिर्गुणितौ तथा रविमन्दपरिधिविभक्तौ तदा $\frac{५ \times \text{रविमकेज्यान्तर}}{\frac{३६० \times ५}{\text{रविमन्दपरिधि}}}$

= रविमगतिफल

$$= \frac{५ \times \text{रविमन्दकेज्यान्तर}}{१५२}, \text{ एवं } \frac{\text{चन्द्रमपरिधि} \times \text{चन्द्रमकेज्यान्तर}}{३६०} = \text{चन्द्रमगफल}$$

इससे विशेषोक्त सूत्र उत्पन्न हुआ—

भास्करोक्त गतिफलं त्रिज्यया गुणित हृतम्।' इत्यादि ॥६७-६८॥

इदानीं पुनर्मन्दस्पष्टगतिफलानयन तत स्पष्टगत्यानयन चाह ।

निजकेन्द्रगतिः समाहता त्रिभमौर्व्या मृदुकर्णभाजिता ।
स्वमृदूच्चगतिः फलान्विता ग्रहभुक्तिस्त्वथवा परिस्फुटा ॥६६॥

वि भा —अथवा निजकेन्द्रगति (ग्रहस्वमन्दकेन्द्रगति) त्रिभमौर्व्या समाहता (त्रिज्यया गुणिता) मृदुकर्णभाजिता (मन्दकर्णभक्ता) फलान्विता स्वमृदूच्चगतिः (फलयुक्ता ग्रहमन्दोच्चगति) परिस्फुटा ग्रहभुक्ति (ग्रस्पष्टगति) भवेत् ॥ ॥६६॥

अत्रोपपत्ति ।

अथ $\frac{\text{म'केन्द्रज्या} \times \text{त्रि}}{\text{मन्दकर्ण}}$ = स्प'केज्या

तथा $\frac{\text{मकेन्द्रज्या} \times \text{त्रि}}{\text{मन्दकर्ण}}$ = स्प'केज्या

अनयोरन्तरेण

$\frac{\text{मन्दकेन्द्रज्यान्तर} \times \text{त्रि}}{\text{मन्दकर्ण}} = \frac{\text{मन्दकेन्द्रगति} \times \text{त्रि}}{\text{मन्दकर्ण}}$ = स्पष्टकेन्द्रज्यान्तर = स्पष्ट-केन्द्रगति (स्वल्पान्तरात्)

मन्दोच्चगति + स्पकेगति = स्पष्टगति । रविचन्द्रयो कृते इयमेव स्पष्टा गतिर्भवेत् । इदमानयनमपि न समीचीनम् । यत

मन्दकेन्द्रज्यान्तर = मन्दकेन्द्रगति = मन्दकेन्द्रान्तर तथा

स्पष्टकेन्द्रज्यान्तर = स्पष्टकेन्द्रान्तर = स्पष्टकेगति आचार्येण तुल्या कल्पिता, तत स्पष्टकेन्द्रग + मन्दोच्चगति = स्पष्टगति

वस्तुत एतान्यानयानि रविचन्द्रयोरेव कृते सन्ति, यत एतस्याध्यायस्य नाम रविचन्द्रयो स्फुटीकरणविधिरस्तीति ॥६८॥

हि. भा —अपनी केन्द्रगति को त्रिज्या से गुणकर मन्दकर्ण से भाग देने से जो फल हो उसको मन्दोच्चगति में जोडने से स्पष्टगति होती है ॥६६॥

उपपत्ति

$\frac{\text{मकेज्या} \times \text{त्रि}}{\text{मन्दकर्ण}}$ = स्पकेज्या । $\frac{\text{म'केज्या} \times \text{त्रि}}{\text{मन्दकर्ण}}$ = स्पकेज्या

दोनों के अन्तर करने से

$\frac{\text{मन्दकेज्यान्तर त्रि}}{\text{मन्दकर्ण}} = \frac{\text{मन्दकेन्द्रज्यान्तर त्रि}}{\text{मन्दकर्ण}} = \frac{\text{मकेगति त्रि}}{\text{मन्दकर्ण}}$ = स्पष्टकेन्द्रज्यान्तर = स्पष्टकेन्द्रा-

न्तर = स्पष्टकेन्द्रगति (स्वल्पान्तर से)

∴ मन्दोच्चगति + स्पकेग = स्पष्टगति ।

यह आनयन भी ठीक नहीं है क्योंकि मन्दकेन्द्रज्यान्तर = मन्दकेन्द्रान्तर = मन्दकेद्रग तथा स्पष्टकेन्द्रज्यान्तर = स्पष्टकेन्द्रान्तर = स्पष्टकेन्द्रगति आचार्य इन सब को स्वल्पान्तर से तुल्य माने हैं। ये सब आनयन रवि और चन्द्र के लिये है क्योंकि इस अध्याय का नाम ही 'रविचन्द्रयो स्फुटीकरणविधि' है। इति ॥६९॥

इदानीं पुन रविचन्द्रयोर्मन्दगतिफलानयनमाह ।

भुजभोज्यगुणान्तरं रवेः शरनिघ्नं द्विशरेन्दुभाजितम् ।
शशिनोऽङ्कजलाहत हृतं जकृतैर्भुक्तिफलं कलादि वा ॥७०॥

वि भा —रवे (सूर्यस्य) भुजभोज्यगुणान्तर (गतगम्यकेन्द्रज्यान्तर) शर-निघ्न (पञ्चगुणित) द्विशरेन्दुभाजित (१५२ एभिर्भक्त) तदा कलादिभुक्तिफल (कलादिगतिफल) भवेत्। शशिन (चन्द्रस्य) भुजभोज्यगुणान्तरम् अङ्कजलाहत (ऊनपञ्चाशद्गुणित) जकृतै (४० एभि) हृत (भक्त) तदा कलादिगति-फल भवेदिति ॥७०॥

अत्रोपपत्ति ।

$$\frac{\text{मकेज्या} \times \text{मअफज्या}}{\text{त्रि}} = \text{म'भुफल} = \text{म'न्दफलज्या (स्वल्पान्तरात्)}$$

तथा $\frac{\text{म'केज्या} \times \text{मअफज्या}}{\text{त्रि}} = \text{म'भुजफल} = \text{म'दफलज्य}$।

अनयोरन्तरेण

$\frac{\text{मअफज्या}}{\text{त्रि}} \times$ मन्दकेन्द्रज्यान्तर = मन्दफलज्यान्तर = मन्दफलान्तर = म दग-निफ (स्वल्पान्तरात्)

$$\frac{\text{मअफज्या}}{\text{त्रि}} = \frac{\text{मन्दपरिधि}}{३६०} \cdot \frac{\text{मन्दपरिधि} \times \text{मकेन्द्रज्यान्तर}}{३६०} = \text{मन्दगतिफल}$$

अथ $\frac{\text{रविमन्दपरिधि} \times \text{रविमन्दपरिधि मकेज्यान्तर}}{३६०}$ = रविमन्दगफ अत्र हरभाज्यो पचभिर्गुणितौ तथा रविमन्दपरिधिभक्तौ तथा $\frac{५ \times \text{रविमकेज्यान्तर}}{\frac{३६० \times ५}{\text{रविमन्दपरिधि}}}$

= रविमगतिफल

$$= \frac{५ \times \text{रविमन्दकेज्यान्तर}}{१५२}, \text{ एव } \frac{\text{चन्द्रमपरिधि} \times \text{चन्द्रमकेज्यान्तर}}{३६०} = \text{चन्द्रमगफल}$$

अत्र हरभाज्यौ ४६ गुणितौ तथा चन्द्रमन्दपरिधिभक्तौ तदा

$$\frac{४६\ \text{चन्द्रमकेज्यान्तर}}{\dfrac{४६\times३६०}{\text{चम परिधि}}}=\frac{४६\times\text{चन्द्रमकेज्यान्तर}}{४०}=\text{चन्द्रमगतिफलम्}$$ ।

अत उपपन्नम् ॥७०॥

हि भा—रवि के गतगम्य के केन्द्रज्यान्तर को पाच से गुणा कर १५२ इतने मे भाग देने से कलादि गतिफल होता है। और चन्द्र के गतगम्य केन्द्रज्यान्तर को ४६ से गुणा कर ४० इनने से भाग देने से चन्द्र के कलादि गतिफल होता है ॥७०॥

उपपत्ति

$$\frac{\text{मकेज्या}\times\text{ममफज्या}}{\text{त्रि}}=\text{मभुजफल}=\text{मफलज्या}$$ (स्वल्पान्तर से)

तथा $$\frac{\text{म'केज्या}\times\text{ममफज्या}}{\text{त्रि}}=\text{म'भुजफल}=\text{म'फलज्या}$$ (स्वल्पान्तर से)

दोनों के अन्तर करने से

$$\frac{\text{ममफज्या}}{\text{त्रि}}\times\text{मन्दकेंद्रज्यान्तर}=\text{मन्दफलज्यान्तर}=\text{मन्दफलान्तर}=\text{मन्दगतिफल}$$

(स्वल्पान्तर से)

$$\because\frac{\text{ममफज्या}}{\text{त्रि}}=\frac{\text{मपरिधि}}{३६०},\quad\frac{\text{मन्दपरिधि}\times\text{मन्दकेन्द्रज्यान्तर}}{३६०}=\text{मन्दगतिफल}$$

$$\frac{\text{रविमन्दपरिधि}\times\text{रविमन्दकेन्द्रज्यान्तर}}{३६०}=\text{रविमगतिफल}$$, यहां हरभाज्य को पांच से गुणकर रविमन्दपरिधि से भाग देने से $$\frac{५\times\text{रविमन्दकेन्द्रज्यान्तर}}{\dfrac{३६०\times५}{\text{रविमपरिधि}}}=\frac{५\times\text{रविमकेज्यान्तर}}{१५२}$$

$=$ रविमगफल

एवं $$\frac{\text{चन्द्रमपरिधि}\times\text{चन्द्रमन्द केन्द्रज्यान्तर}}{३६०}=\text{चन्द्रमगतिफल}$$, यहां हरभाज्य को ४६ से गुणकर चन्द्रमन्दपरिधि से भाग देने से $$\frac{४६\times\text{चन्द्रमन्द केज्यान्तर}}{\dfrac{३६०\times४६}{\text{चम परिधि}}}=\frac{४६\times\text{चन्द्रमकेज्यान्तर}}{४०}$$

$=$ चन्द्रमगतिफल। इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥७०॥

पुनस्तदानयनमाह।

निजकेन्द्रं जह्यादोर्भोग्यधनुर्गुणं ऽवलम्।
धनुषा ग्राह्या जीवा विषमपदे व्युत्क्रमाद् युग्मे ॥७१॥

धनुरल्पे धनुर्हृते निजभोज्यगुणान्तराभ्यस्ते ।
तन्मध्यशुद्धमौर्वी वृद्धिः परिधिसगुणा हृताभाशैः ।।७२।।
लब्धधनुः स्वमृणं वा गतौ स्फुटा ह्यस्तनाद्यतनान्तः ।।३।।

वि भा—ओजभोज्यधनुर्गुणं शकलं (विषमपदभोग्यचापक्रमज्यामानमर्थाद् भोग्यकेन्द्रज्यामानं) निजकेन्द्रं (भुक्तकेन्द्रज्यामानं) जह्यात् (शोधयेत्) तदा या जीवा सा धनुषा (चापेन समा) ग्राह्याऽर्थात्केन्द्रज्यान्तरं केन्द्रान्तरयोस्तुल्यत्वं स्वीकार्यम् । विषमदे एव, युग्मे (समपदे) व्युत्क्रमात् (विलोमात्) ज्ञातव्यम् । *धनुरल्पे (स्वल्पे चापे पूर्वोक्त केन्द्रज्यान्तरतुल्यकेन्द्रान्तरे) निजभोज्यगुणान्तरा-भ्यस्ते* (स्पष्टभोग्य खण्डगुणिते) धनुर्हृते (चापविहृते) तदा मध्यशुद्धमौर्वीवृद्धि (चापान्तरसम्बन्धिज्यावृद्धि) भवेत् । सा परिधिसगुणा, भाशैः (३६० एभिः) हृता (भक्ता) लब्धधनुः (लब्धचाप) गतौ (मध्यगतौ) स्व (धन) ऋणं वा कार्यं तदा ह्यस्तनाद्यतनयोर्मध्ये स्फुटा गतिर्भवेत् ।।७१-७२३।।

अत्रोपपत्तिः ।

पूर्वं यन्मन्दगतिफलमानीतं $\frac{\text{मग्रफज्या} \times \text{मन्दकेज्यां}}{\text{त्रि}}$ = मन्दगतिफलं ।

तत्सम्बन्धे कथ्यते यदत्र मन्दकेन्द्रज्यान्तरं यत्तत्प्रमाणं $\frac{\text{स्पभोख} \times \text{मकेग}}{\text{ज्याप्रथम}}$

$=\frac{\text{स्पभोख} \times \text{मकेग}}{\text{प्रथम चाप}}$ ग्रहीतव्यं यदि चापमानमल्पं भवेत् । एतदेव मन्दपरिधिना गुणितं भार्धैर्भाज्यं तदा गतिफलं भवेत् । $\frac{\text{स्पभोख} \times \text{मकेग} \times \text{मपरिधि}}{\text{प्रथमचा} \times ३६०}$ = मदगतिफल

ततः मध्यगतिः–मन्दगतिफल = स्पष्टगतिः । वटेश्वराचार्यो विषमिमं ज्ञातवान् यत्पूर्वं मन्दकेन्द्रज्यान्तरमन्दकेन्द्रान्तरमन्दकेन्द्रगतीनां तुल्यत्वस्वीकरणं युक्ति-युक्तं नहि, तत्संशोधनमेवात्र करोति परन्तु मन्दगतिफलसंशोधनं न कृतवान् तेनैतत्संशोधनमपि तथ्यं नास्ति, अन्यैराचार्यैरेतद्विषये किमपि न कथ्यते । एतेनाऽऽचार्यस्य दूरदर्शिता लक्ष्यत इति । एतत्कथनस्यावश्यकता नासीद्यतोऽयं विषयः पूर्वं न प्रति-पादितोऽस्ति । ७१-७२३।।

इति वटेश्वरसिद्धान्ते स्पष्टाधिकारे सूर्याचन्द्रमसोः स्फुटीकरणविधिः
प्रथमोऽध्यायः समाप्तः ।।

हि भा—गम्य केन्द्रज्या मान में गतकेन्द्रज्या मान को घटाकर जो होता है उसके मान लाने के लिए यदि चाप छोटा है तो गतकेन्द्र चाप और गम्य केन्द्रचाप के अंतर (मन्दकेन्द्रगति) को गतगम्य केन्द्रज्यान्तर (स्पष्टभोग्यखण्ड से) गुणकर चाप से भाग देकर जो फल हो उसको मन्दपरिधि से गुणकर भांश (३६०) से भाग देने से जो फल हो उसके

चाप को केन्द्रवश (मकरादि कर्यादि केन्द्र के अनुसार) मध्यगति में हीन धन करने से स्पष्ट गति होती है। बीता हुआ कल और आज के ग्रह स्पष्ट का अन्तरगत स्पष्टगति है। आगे के कल और आज के स्पष्ट ग्रह के अन्तर गम्य स्पष्टगति है।

उपपत्ति

पूर्व में जो मन्दगति फल $=\frac{\text{मं अं फज्या} \times \text{मन्दकेन्द्रज्यान्तर}}{\text{त्रि}}$ = मन्दगतिफल, लाये गये हैं उसी के सम्बन्ध में कहते हैं कि मन्दकेन्द्र ज्यान्तर $=\frac{\text{स्पष्टभोग्यं} \times \text{मंकेग}}{\text{ज्याप्रथम}}$ इसमें यदि चाप छोटा है तो मन्दकेन्द्रज्यान्तर = मन्दकेन्द्रान्तर = मन्दकेन्द्रगति, तथा प्रथमज्या = प्रथमचाप लेकर मन्दकेन्द्रज्यान्तर या मन्दकेन्द्रगति सम्बन्धिनी ज्यावृद्धि को मन्दपरिधि से गुणाकर भाग (३६०) से भाग देकर जो फल हो उसे केन्द्र (मकरादि, कर्यादि) वश मध्यमगति में ऋण धन करने से स्पष्टगति होती है। आचार्य को यह विषय मालूम था कि पहले जो ज्यान्तर और चापान्तर अर्थात् मन्दकेन्द्रज्यान्तर = मन्दकेन्द्रान्तर = मन्दकेन्द्रगति तुल्य स्वीकार किया गया है सो ठीक नहीं है उसीका संशोधन यहां करते हैं, परन्तु फलज्यान्तर रूप फलगति का संशोधन नहीं हुआ है क्योंकि आनीत गतिफल फलज्यान्तर रूप है, फलज्यान्तर के चाप करने से फलगति नहीं हो सकती है, ज्यान्तर के चाप, चापान्तर के बराबर नहीं होता है। अतः यह संशोधन अधूरा ही रहा परन्तु इस विषय के सम्बन्ध में किसी दूसरे आचार्य ने कुछ नहीं लिखा है। मन्दकेन्द्र ज्यान्तर तुल्य मन्दकेन्द्रगति जो पहले स्वीकार की गई सो ठीक नहीं है, इसलिए उसका संशोधन करना आवश्यक समझकर यहां संशोधन किया है यद्यपि यह संशोधन भी ठीक नहीं है परन्तु इससे वटेश्वराचार्य की दूरदर्शिता देखने में आती है॥ ७१-७२½ ॥

इति वटेश्वरसिद्धान्त में स्पष्टाधिकार में "रविचन्द्र की स्पष्टीकरणविधि" नामक प्रथम अध्याय समाप्त हुआ॥



द्वितीयोऽध्यायः

स्वोच्चनीचग्रहस्फुटीकरणविधिः

तत्रादौ कुजादिग्रहाणां स्फुटत्वार्थं फलचतुष्टयसंस्कारमाह ।

प्राग्वन्मन्दफलं खगाच्छकलितं मध्ये तदूनाच्चला-
च्छैघ्रयार्धं च मृदुस्फुटे धनमृणं केन्द्रेऽजजूकादिके
तस्मान्मन्दफलं ग्रहादविकलं मध्ये तदूनात्पुन ।
स्तद्वच्छीघ्रफलं च तत्र खचरे कृत्स्नं स्फुटोऽसौ भवेत् ॥ १ ॥

वि भा —खगात् (मध्यमग्रहात्) प्राग्वत् (पूर्ववत्) मन्दफल साध्य, शकलित (अर्धित) मध्ये ग्रहे देय (धनत्वे क्षयत्वे वा गोलवशात्कार्यं) तदूनात् (अर्धमन्द फल संस्कृतमध्यमरहितात्) चलात् (शीघ्रोच्चात्) शैघ्र्यार्धं (शीघ्रफलार्धमर्धादर्धमन्दफलसंस्कृतमध्यमग्रहे मन्दस्पष्ट) अजजूकादिके केन्द्रे (मेषादितुलादिकेन्द्रे) धनमृणं कार्यम् । तस्माद् ग्रहात् (द्वितीयफलार्धसंस्कृतग्रहात्) अविकल मन्दफल (सम्पूर्णं मन्दफल) कृत्वा मध्यमे ग्रहे धनमृणं कार्यम् । तदूनाच्छीघ्रोच्चात् तद्वत् (पूर्ववत्) शीघ्रफलमानीय तत्र खचरे (तृतीयकर्मसिद्धे मध्यमग्रहे) कृत्स्न (सम्पूर्णं) धनमृणं कार्यं तदाऽसौ स्फुटो भवेदिति ॥ १ ॥

अत्रोपपत्ति

कुजादिग्रहस्पष्टीकरणार्थं फलचतुष्टय (मन्दफलार्धशीघ्रफलार्धं मन्दफलशीघ्रफलानि) संस्कार सर्वैराचार्यैः सूर्यसिद्धान्तकारादिभिर्यथोक्तस्तथैवाऽनेनाचार्येणापि कथ्यते, मन्दफलार्धशीघ्रफलार्धयो संस्कार कथ क्रियते तदर्थं कापि युक्तिर्न मिलति केवल पूर्वाचार्योक्तवचनमेव प्रमाणमिति ॥१॥

हि भा —मध्यमग्रह से पूर्ववत् मन्दफल साधन करना उनके आधे को मध्यमग्रह में केन्द्रवश धन वा ऋण करना चाहिये, अर्धमन्द फल संस्कृत मध्यम ग्रह करके रहित शीघ्रोच्च से शीघ्रफलसाधन कर उसके आधे को अर्ध मन्दफल संस्कृत मध्यम ग्रह में मेषादि और तुलादि केन्द्रवश धन ऋण करना । द्वितीयफलार्ध संस्कृत ग्रह से मन्दफल साधन कर मध्यमग्रह में

धन या ऋण करना। उस करके रहित शीघ्रोच्च से पूर्ववत् शीघ्रफल साधन कर तृतीयकर्म सिद्धग्रह में धन या ऋण करने से स्पष्ट ग्रह होते हैं ॥ १ ॥

उपपत्ति

कुजादि ग्रहों के स्पष्टीकरण के लिये चार फल (मन्दफलार्ध, शीघ्रफलार्ध, मन्दफल, शीघ्रफल) के संस्कार सूर्यसिद्धान्तकार आदि आचार्यों ने अपने अपने सिद्धान्त में कहे हैं। गोल में दो ही फल (मन्दफल) और शीघ्रफल) संस्कार की स्थिति देखने में आती है, मन्द फलार्ध और शीघ्रफलार्ध का संस्कार क्या किया जाता है इसके लिये कोई युक्ति नहीं है केवल आप्तवचन प्रमाण है ॥ इति ॥ १॥

इदानीं बुधशुक्रयोर्विशेषमाह।

ग्रहोनात्स्वचलात्कृत्स्नं फलं शैघ्रं ज्ञशुक्रयोः ।
मान्दं चैव स्वमन्दोनात्सकलं मध्यमाद् ग्रहात् ॥२॥

वि भा —ज्ञशुक्रयो (बुधशुक्रयो) ग्रहोनात्स्वचलात् (ग्रहरहितात्स्वशीघ्रोच्चात्) कृत्स्नं (सम्पूर्णं) शैघ्रं फलं तथा स्वमन्दोनात् मध्यमाद् ग्रहात् सकलं (सम्पूर्णं) मान्दं फलं साध्यम् ॥ २ ॥

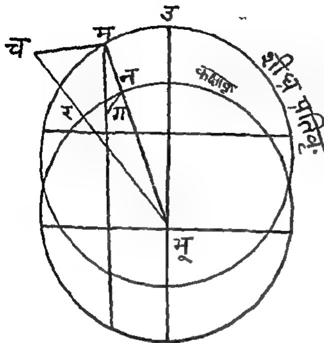
हि भा —बुध और शुक्र के लिये ग्रह रहित शीघ्रोच्च से शीघ्र फल साधन कर वह सम्पूर्ण शीघ्र फल संस्कार करना और मन्दोच्चरहित मध्यम ग्रह पर से साधित मन्दफल सम्पूर्ण संस्कार करना चाहिये ॥२॥

इदानीं शीघ्रफलानयनमाह।

अग्राफलत्रिगुणयोर्विवरैक्यमुक्ता केन्द्रे कुलीरमकरादिगतेऽत्र कोटिः ।
तद्वर्गबाहुफलवर्गयुते पदं स्यात्कर्णो भुजाफलहतत्रिगुणस्य हारः ॥३॥
लब्धस्य चापमिह शीघ्रफलं प्रदिष्टमेवं मृदुश्रवणको द्युचरस्य साध्यः ।
बाहुभ्रमौ स गुणकस्त्रिगुणश्च हारस्ताभ्यामसावसकृदेवमनिश्चलत्वे ॥४॥

वि भा —कुलीरमकरादिगते केन्द्रे (कर्यादिमकरादिकेन्द्रे) अग्राफलत्रिगुणयो (कोटिफलत्रिज्ययो) विवरैक्यं (अन्तरैक्यं) कोटि (स्पष्टकोटि) उक्ता (कथिता) तद्वर्गबाहुफलवर्गयुते (स्पष्टकोटिवर्गभुजफलवर्गयोर्योगात्) पदं (मूलं) कर्णः (शीघ्रकर्णः) भवेत्। भुजाफलहतत्रिगुणस्य (भुजफलगुणित त्रिज्यायाः) कर्णो हारः (भाजकः) लब्धस्य चापं शीघ्रफलं प्रदिष्टं (कथितम्) एवं द्युचरस्य (ग्रहस्य) मृदुश्रवणकः (मन्दकर्णः) साध्यः। स कर्णः बाहुभ्रमौ (भुजज्याकोटिज्ययोः) गुणकः, त्रिगुणः (त्रिज्याहारः) ताभ्यां फलाभ्यां, अनिश्चलत्वे (चञ्चलत्वे) असकृदसौ भवेदिति ॥ ३ ४ ॥

अत्रोपपत्ति



चित्र ८

म=शीघ्रप्रतिवृत्ते मन्दस्पष्टग्रह। न=स्पष्टग्रह। र=मन्दस्पष्टग्रह। रन=शीघ्रफलम्। उ=शीघ्रोच्चम्। भू=भूकेन्द्रम्। नग=शीघ्रफलज्या भूर=त्रि। भूम=शीघ्रकर्णं। मच=भुजफलम्। चर=अन्त्यफलम् =कोटिफलम्। मकरादिकेन्द्रे भूर+रच=भूच= त्रि+अन्त्यफल=त्रि+कोटिफ=नीचोच्च-वृत्तीयस्पष्टा कोटि।

कर्क्यादिकेन्द्रे त्रि—अन्त्यफल=त्रि—कोफल=नीचोच्च वृत्तीयस्पष्टा कोटि।

तथा $\sqrt{\text{भूच}^2+\text{मच}^2}=\sqrt{\text{स्पको}^2+\text{भुजफ}^2}$ =भूम=शीघ्रकर्णं

ततः भूमच, भूनग त्रिभुजयो साजात्यादनुपात

$\frac{\text{भुजफल}\times\text{त्रि}}{\text{शीघ्रकर्णं}}$=शीघ्रफलज्या, अस्याश्चापम्=शीघ्रफलम्।

शेषोपपत्ति स्फुटैवास्ति ॥ ३-४ ॥

हि. भा.—कर्क्यादि और मकरादि केन्द्र में कोटिफल और त्रिज्या के अन्तर, योग करने से स्पष्टा कोटि होती है, उसके (स्पष्टकोटि) और भुजफल वर्ग के योग कर मूल लेने से शीघ्रकर्ण होता है। त्रिज्या और भुजफल के घात में शीघ्रकर्ण से भाग देकर जो फल हो उसके चाप करने से ग्रह के शीघ्र फल होते हैं। इस तरह ग्रह का मन्दकर्ण साधन करना, शीघ्र केन्द्रज्या, और शीघ्रकेन्द्र कोटिज्या को कर्ण से गुणकर त्रिज्या से भाग देने पर जो फलद्वय होते हैं उनसे भमवृत्तक्रम द्वारा वे होते हैं ॥ ३-४ ॥

उपपत्ति

चित्र ८ देखिये।

भू=भूकेन्द्र, उ=शीघ्रोच्च, म=शीघ्रप्रतिवृत्त में मन्दस्पष्टग्रह न=स्पष्टग्रह। र=

मन्दस्पष्टग्रह। नर=शीघ्रफल, नग=शीघ्रफलज्या भूम=शीघ्रकर्ण, मच=भुजफल, चर=कोटिफल, भूर=त्रिज्या, भूमच, भूनग ये दोनो त्रिभुज सजातीय हैं इसलिए अनुपात करते हैं।

$\frac{\text{भुजफल} \times \text{त्रि}}{\text{शीघ्रकर्ण}}$ =शीघ्रफलज्या, चाप करने से शीघ्र फल हुआ।

शेष की उपपत्ति स्पष्ट है ॥ ३-४ ॥

इदानीं कर्णानयनमाह

स्फुटकोट्यग्रा फलकृतिविवरान्त्यफलगुणकृतियुतेर्मूलम्।
कर्णः स्यादथवा भुजाफलेन विनियोजना नात्र ॥ ५ ॥

वि भा—स्फुटकोट्यग्रा फलकृति-विवरान्त्यफलगुणकृतियुते (स्पष्टकोटि-कोटिफल वर्गान्तरान्त्यफल ज्यावर्गयोगस्य) मूलं वा कर्णः स्यात्। अत्र भुजाफलेन (भुजफलेन) विनियोजना नास्त्यर्थाद् भुजफलेन सम्बन्धो रिक्त, अग्राफलम्=कोटिफलम्।

अत्रोपपत्ति।

स्पष्टको^{2}—कोटिफल^2+अन्त्यफलज्या^{2}
=स्पष्टको^{2}+अन्त्यफलज्या^{2}—कोटिफल^2=स्पष्टको^{2}+भुजफल^2=कर्ण^2

मूलेन $\sqrt{\text{स्पष्टको}^2 + \text{भुजफल}^2}$=कर्ण
अत उपपन्नमाचार्योक्तम् ॥ ५ ॥

अब कर्णानयन कहते हैं।

हि भा—स्पष्टकोटि और कोटिफल इन दोनो के वर्गान्तर में अन्त्यफलज्या वर्ग जोड़कर मूल लेने से कर्ण होता है यहां भुजफल से सम्बन्ध है अर्थात् भुजफल की सहायता से कर्णसाधन है।

उपपत्ति

स्पष्टको^{2}—कोटिफल^2+अन्त्यफलज्या^{2}=स्पष्टको^{2}+अन्त्यफज्या^{2}—कोटिफल^2

=स्पष्टको^{2}+भुजफल^2=कर्ण^2 मूल लेने से $\sqrt{\text{स्पष्टको}^2+\text{भुजफ}^2}$ =कर्ण
अत आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥ ५ ॥

इदानीं भुजफल विनैव कर्णानयनमाह।

तद्द्युतिविवरहतिः परफलगुणवर्गसंयुता सा स्यात्।
कर्णकृतिस्तन्मूलं कर्णो दोःफलगुणं विनैवायम् ॥६॥

वि भा—तद्द्युति (स्पष्टकोटि-कोटिफलयोर्योग) विवरहति (स्पष्ट-कोटि कोटिफलयोरन्तरगुणिता) परफलगुणवर्गसंयुता (अन्त्यफलज्यावर्गयुता) कर्णकृति (कर्णवर्ग) तन्मूलं कर्णो भवेत्। अयं कर्ण, दोःफलगुणं विनैव (भुजफलज्यासाहाय्यमन्तरेव) स्यादिति ॥६॥

अस्योपपत्ति

पूर्वश्लोकोपपत्तौ स्पष्टको^{2}—कोटिफल^2+अन्त्यफलज्या^{2}=कर्ण^2

वर्गान्तरस्य योगान्तरघातसमत्वात्

(स्पष्टको+कोटिफल) (स्पष्टको—कोटिफल)+अन्त्यज्या^{2}=कर्ण^2

मूलेन

$\sqrt{(\text{स्पष्टको}+\text{कोटिफल})(\text{स्पष्टको}-\text{कोटिफल})+\text{अन्त्यफज्या}^2}$=कर्ण

एतावताऽऽचार्योक्तमुपपन्नम् । ॥६॥

हि भा—स्पष्टकोटि और कोटिफल के योग को दोनों के (स्पष्टकोटि और कोटिफल) अन्तर से गुण कर अन्त्यफलज्या वर्ग जोड़ने से कर्णवर्ग होता है, उसका मूलकर्ण होता है, यह कर्णसाधन भुजफल बिना ही होता है ॥६॥

उपपत्ति

पहले श्लोक की उपपत्ति में सिद्ध हुआ है स्पष्ट को^{2}—कोटिफल^2+अन्त्यफज्या^{2}=कर्ण^2 वर्गान्तर योगान्तर घात के बराबर होता है इस नियम से

(स्पष्ट को+कोटिफल) (स्पष्टको—कोटिफल)+अन्त्यफलज्या^{2}=क^2

मूल लेने से $\sqrt{(\text{स्पष्टको}+\text{कोटिक})(\text{स्पष्टको}-\text{कोटिक})+\text{अन्त्यफज्या}^2}$=कर्ण

इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥६॥

इदानीं पुनरपि कर्णानयन प्रकारद्वयेनाह ।

भुजफलरहिताग्रया हता वा युतिर्द्विघ्ने च कृती तदन्वितोने ।
मूले च गणकवरंजनेशमान्यैर्भुजफलकोटिकयोः श्रुती प्रदिष्टे ॥७॥

वि भा—वा (अथवा) भुजफलरहिताग्रया (भुजरहितकोट्या) युति (भुजकोटियोग) हता (गुणिता) द्विघ्ने (द्विगुणिते) कृती (भुजकोटिवर्गौ) तदन्वितोने (पूर्वफलेन सहितरहिते) मूले तदा भुजफलकोटिकयोः श्रुती (कर्णौ) प्रदिष्टे (कथिते) जनेशमान्यैः (राजमान्यैः) गणकश्रेष्ठैरिति ॥७॥

अत्रोपपत्तिः

श्लोकोक्त्या २ भु^{2}	२ को^{2}
(को+भु) (को–भु)=को^{2}—भु^{2}	(को+भु) (को—भु)=को^{2}—भु^{2}
अनयोर्योग	द्वयोरन्तरेण
२ भु^{2}+को^{2}—भु^{2}=भु^{2}+को^{2}=कर्ण^2	२को^{2}—(को^{2}—भु^{2})=२को^{2}—को^{2}+भु^{2}=को^{2}+भु^{2}=कर्ण^2 मूलेन
मूलेन	$\sqrt{\text{को}^2+\text{भु}^2}$ =कर्ण
$\sqrt{\text{भु}^2+\text{को}^2}$=कर्ण	अत्र को=स्पष्टा को । भु=भुजज्या । कर्ण=मन्दकर्ण

अत उपपन्नमाचार्योक्तम् ॥७॥

पुन कर्णानयन दो प्रकार से कहते हैं।

हि भा—भुज और कोटि के अन्तर से उन्ही दोनो के योग को गुणकर द्विगुणि भुजवर्ग और द्विगुणित कोटिवर्ग मे जोडने और घटाने से उस पर से मूल लेने से दो प्रका के कर्ण होते हैं ॥७॥

उपपत्ति

श्लोकोक्ति अनुसार

२ भु²
(को+भु) (को—भु)=को²—भु²
दोनो के योग करने से
२भु²+को²—भु²=भु²+को²=कर्ण²
मूल लेने से
$\sqrt{\text{भु}^2+\text{को}^2}$ =कर्ण

२ को²
(को+भु) (को—भु)=को²—भु²
दोनो के अन्तर करने से
२ को²—(को²—भु²)=२ को²—को²
+भु²=को²+भु²=कर्ण
मूल लेने से
$\sqrt{\text{को}^2 \times \text{भु}^2}$ =कर्ण
यहा को=स्पष्टा को। भु=भकोज्या।
कर्ण=भक

इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥७॥

पुन कर्णानयनमाह।

वधाद् द्विनिघ्नात्स्वविशेषवर्गितात् प्रमोजनात्मूलमुशन्ति वा श्रुतिम्।
श्रुतिप्रमाणानयनान्तराणि वा ज्ञेयानि विज्ञैर्हि सुतीक्ष्णबुद्धिभिः ॥८॥

वि भा.—द्विगुणितभुजकोटियातात्स्वान्तरवर्गयुतान्मूल वा कर्णं पण्डित कथयन्ति, कर्णमानसाधनान्तराणि सुतीक्ष्णबुद्धिभि पण्डितैर्बोध्यानीति ॥८॥

अत्रोपपत्ति

श्लोकोक्त्या (को—भु)²+२भु को=को²—२भु को+भु²+भु को
=भु²+को²=क² मूलेन कर्णो भवेदिति ॥८

हि भा—द्विगुणित भुजकोटिघात मे अतर वर्ग जोड कर मूल लेने से कर्ण होत है ऐसा पण्डित लोक कहते हैं। या कर्णमान के दूसरे दूसरे आनयन भी तीक्ष्णबुद्धि वा पडित लोग समर्झे ॥८॥

उपपत्ति

श्लोकोक्ति के अनुसार (को—भु) ²+२ भु को=को²—२ भु को +भु²+२
को=भु²+को²=कर्ण² मूल लेने से कर्ण होता है ॥८

पुन. कर्णानयनमाह ।

द्विघ्नाऽग्राफलताडितस्त्रिभगुणः केन्द्रे मृगादिस्थिते,
व्यासार्धान्त्यफलज्ययो. कृतियुतौ देय कुलीरादिगे ।
हेयः स्याच्छ्रवणः पदं परफलव्यासार्धकृत्योर्युते-
र्व्यासाप्तं श्रुतिवर्गतश्च फलयोः स्यादन्तरेऽग्राफलम् ॥६॥

वि. भा.—त्रिभगुण (त्रिज्या) द्विघ्नाग्राफलताडितः (द्विगुणितकोटिफल-गुणितः) मृगादिस्थिते केन्द्रे (मकरादिकेन्द्रस्थिते ग्रहे) व्यासार्धान्त्यफलज्ययो. कृति-युतौ (त्रिज्यान्त्यफलज्ययोर्वर्गयोगे) देय (सहित) कुलीरादिगे केन्द्रे (कर्क्यादि-केन्द्रस्थिते ग्रहे) हेय (रहित) पद (मूल) श्रवण (कर्ण) स्यात् । श्रुतिवर्गतः (कर्णवर्गात्) परफलव्यासार्धकृत्योर्युते (अन्त्यफलज्यात्रिज्ययोवर्गयोगात्) रिक्तं-स्थानं व्यासाप्तं (व्यासभक्त) फलयो (त्रिज्यान्त्य फलज्ययोवर्गयोगरूपमेक फलम्-कर्णवर्गे त्रिज्यान्त्यफलज्ययोवर्गयोगातिरिक्त द्वितीय खण्ड व्यासभक्त द्वितीय फलम्) अन्तरेऽग्राफल (कोटिफल स्यात्) ॥६॥

अस्योपपत्ति

अथ मृगादिकर्क्यादिकेन्द्रवशात् त्रि ± कोटिफल = नीचोच्चवृत्तीयस्पष्टकोटिः ।
स्पष्टकोटि² + भुजफल² = कर्ण² = (त्रि ± कोटिफल)² + भुजफल²
= त्रि² ± २ त्रि कोटिफल + कोटिफल² + भुजफल²
= त्रि² ± २ त्रि कोटिफल + अन्त्यफलज्या² । ∵ कोटिफ² + भुजफ² = अ फज्या²
= त्रि² + अन्त्यफज्या² ± २त्रि कोफ = कर्ण²
मूलेन √(त्रि² + अन्त्यफज्या² ± २ त्रि कोफ) = कर्ण ।
तथाच (त्रि² + अन्त्यफज्या² ± २त्रि कोफ)/व्या = (त्रि² + अन्त्यफज्या² ± २ त्रि. कोफ)/२ त्रि
= त्रि² + अन्त्यफज्या² ± कोफल = द्वितीयफ ।
तथा त्रि² + अन्त्यफलज्या² = प्रथमफलम्
अनयोरन्तरे त्रि² + अ फज्या² ± कोफ — (त्रि² + अ फज्या²)
= ± कोफल, एतावताऽऽचार्योक्तमुपपन्नम् ॥६॥

हि. भा.—त्रिज्या को द्विगुणित कोटिफल से गुणाकर मकरादि केन्द्र में त्रिज्या और अन्त्यफलज्या के वर्ग योग में जोड़ देना, कर्क्यादि केन्द्र में घटा देना, उसके मूल लेने से कर्ण होता है। कर्णवर्ग में अन्त्यफलज्या और त्रिज्या के वर्गयोगातिरिक्त खण्ड में व्यास से भाग देकर जो हो तत्सहित अन्त्यफलज्या त्रिज्यावर्ग योगरूप फल तथा अन्त्यफलज्या त्रिज्या वर्गयोग रूप द्वितीय फल के अन्तर करने से कोटिफल होता है ॥६॥

उपपत्ति—

मकरादि केन्द्र और मकर्यादि केन्द्रवश त्रि ± कोटिफल = नीचोच्चवृत्तीयस्पष्टा को तथा स्पष्ट को^{2} + भुजफल^2 = कर्ण^2 = (त्रि ± कोटिफल)^2 + भुजफल^2

= त्रि^{2} + २ त्रि कोटिफल + कोटिफल^2 + भुजफल^2 = क^2

= त्रि^{2} ± २ त्रि कोटिफल + अन्त्यफलज्या^{2} । ∴ कोटिफ^2 + भुजफ^2 = अन्त्यफज्या

= त्रि^{2} + अन्त्यफज्या^{2} ± २ त्रि कोफ = कर्ण^2

मूल लेने से कर्ण हो जायगा ।

अब, त्रि^{2} + अन्त्यफज्या^{2} = प्रथमफल

$$\text{त्रि}^2 + \text{अन्त्यफज्या}^2 \pm \frac{\text{२ त्रि कोटिफ}}{\text{व्यास}} = \text{त्रि}^2 + \text{अन्त्यफज्या}^2 \pm \frac{\text{२ त्रि कोटिफ}}{\text{२ त्रि}}$$

= त्रि^{2} + अन्त्यफज्या^{2} ± कोटिफल = द्वितीयफल

दोनो फलों के अन्तर करने से

त्रि^{2} + अफज्या^{2} ± कोटिफल — (त्रि^{2} + अन्त्यफलज्या^{2})

= त्रि^{2} + अ फज्या^{2} ± कोटिफल — त्रि^{2} — अन्त्यफज्या^{2} = ± कोटिफल

इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ।।९।।

पुनस्तदानयन प्रकारद्वयेनाह ।

भुजफलाग्रसमासहते तु ते निजविशेषहताग्रभुजाफले ।
धनमृणं क्रमशो गणका वरा पदमुशन्ति तयोरथवा श्रुती ।।१०।।

वि. भा. — ते भुजकोटी भुजगफलाग्र समासहते (भुजकोटियोगगुणिते) निजविशेषहताग्रभुजाफले (भुजकोटयन्तरगुणितकोटिभुजप्रमाणे) क्रमशः धनमृणं तत्र कार्य तयो पद वरा (श्रेष्ठा) गणका (ज्योतिर्विद) अथवा (प्रकारान्तरेण) श्रुती उशन्ति (कथयन्ति) इति ।।१०।।

अत्रोपपत्ति

श्लोकोक्त्या	को (भु + को) = को भु + को^{2}
भु (भु + को) = भु^{2} + को × भु	भु (को — भु) = भु. को — भु^{2}
को (को — भु) = को^{2} — को × भु	द्वयोरन्तरेण
द्वयोर्योग	को भु + को^{2} — (भु को — भु^{2})
भु^{2} + को भु + को^{2} — को × भु = भु^{2} + को^{2}	= को भु + को^{2} — भु को + भु^{2} = को^{2} + भु^{2} = कर्ण^2
= कर्ण^2 मूलेन	मूलग्रहणेन
$\sqrt{\text{भु}^2 + \text{को}^2}$ = कर्ण	$\sqrt{\text{को}^2 + \text{भु}^2}$ = कर्ण ।

अत्र को=स्पष्टा कोटिः

भु=मकेन्द्रज्या । कर्णं=म कर्णं

अत उपपन्नमाचार्योक्तम् ॥१०॥

पुनः कर्णानयन दो प्रकार से करते हैं

हि. भा.—भुज और कोटि को अलग-अलग भुज और कोटि के योग से गुण देना, भुज और कोटि के अन्तर से गुणित कोटि और भुज को उसमें जोड़ने और घटाने से मूल न लेने से दो प्रकार के कर्णों को ज्योतिषी लोग कहते हैं ॥१०॥

उपपत्ति

श्लोकोक्ति के अनुसार—

$\text{भु}(\text{भु}+\text{को})=\text{भु}^2+\text{भु}\cdot\text{को}$

$\text{को}(\text{को}-\text{भु})=\text{को}^2-\text{को}\cdot\text{भु}$

दोनों के योग करने से

$\text{भु}^2+\text{भु}\cdot\text{को}+\text{को}^2-\text{को}\cdot\text{भु}=\text{भु}^2+\text{को}^2$

$=\text{कर्ण}^2$ मूल लेने से

$\sqrt{\text{भु}^2+\text{को}^2}=\text{कर्ण}$

$\text{को}(\text{भु}+\text{को})=\text{को}\cdot\text{भु}+\text{को}^2$

$\text{भु}(\text{को}-\text{भु})=\text{भु}\cdot\text{को}-\text{भु}^2$

दोनों के अन्तर करने से

$\text{को}\cdot\text{भु}+\text{को}^2-\text{भु}\cdot\text{को}+\text{भु}^2=\text{को}^2+\text{भु}^2$

$=\text{कर्ण}^2$ मूल लेने से

$\sqrt{\text{को}^2+\text{भु}^2}=\text{कर्ण}$

यहां को=स्पष्ट कोटि

भु=मकेज्या

क=म कर्ण

इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥१०॥

इदानीं कुजादिस्पष्टीकरणमन्यदन्यतरणमाह ।

एवं खेचरमेकमेव गणयन् यद्वाद्यपंव स्फुट
भुक्ति स्याद्वियरावशिष्टमनयो स्पष्टादिकं ग्रहे ।
वक्रात्पाद्यतनेऽथवा ग्रहगतेः साध्य फल पूर्ववत्
मार्दं तद्दलसंस्कृतामपनयेत्तच्छीघ्रभुक्तेः पृथक् ॥११॥

वि. भा.—एव (अनेन पूर्वोक्तक्रमेण) एवमेव खेचर (ग्रह) गणयन् आद्यपंव रीत्या स्फुट (ग्रहस्पष्टीकरण) प्रतिपादने । (अर्थान्साधारणरूपेण कुजादिग्रहाणा स्पष्टीकरणमभिधीयते नहि कुत्रापि कस्यापि ग्रहस्योल्लेख क्रियते) अनयोर्द्वयोर्विवरावशिष्ट (द्विनद्वयग्रहान्तरशेष) भुक्ति स्यात् (ग्रहगति स्यात्) स्पष्टादिकं ग्रं है स्पष्टादिना भुक्तिरर्थात्स्पष्टग्रहयोरन्तर स्पष्टगति । मध्यमग्रहयोरन्तर मध्यमगति । वक्रात्पाद्यतनेऽथवा पूर्ववत् मार्दं ग्रहगते फल (मन्दगतिफल) साध्य तद्दलसंस्कृता (मन्दगतिफलार्धसंस्कृता मध्यमगति) पृथक् शीघ्रभुक्ते

(शीघ्रोच्चगतित) अपनयत् (शोधयेत्) तथा केन्द्रगतिर्भवेत्। अत्र वक्राख्याद्यतने इत्यसङ्गतमिव प्रतिभातीति ॥११॥

हि भा —इस पूर्वकथित क्रम से एक ही ग्रह की गणना करते हुए प्राचीन ही रीति से ग्रहस्पष्टीकरण मैं कहता हूं अर्थात् साधारण रूप से कुजादिग्रहों के स्पष्टीकरण कहता हूं कहीं पर किसी ग्रहविशेष का उल्लेख नहीं करता हूं। इन दो ग्रहों का (अद्यतन श्वस्तन ग्रहों का) अन्तर ग्रहगति है। स्पष्टादि ग्रह करने स्पष्टादिकगति होती है। अर्थात् अद्यतन श्वस्तन स्पष्टग्रह का अन्तर स्पष्टगति है। एवं अद्यतन श्वस्तन मध्यमग्रह का अन्तर मध्यमगति है। पूर्वक मन्दगतिफल साधन कर मध्यमगति में संस्कार करने से जो (मन्द स्पष्टगति) हो उसको शीघ्रोच्चगति में घटा देना तब शेष शीघ्र केन्द्रगति होती है ॥११॥

इदानीं गतिस्फुटीकरणमाह

केन्द्रभुक्तिरवशेषमुच्यते तां स्वशीघ्रफलधन्वभोज्यया।
जीवपाशशिरसं प्रताडयेद् भाजयेच्च चलकर्णजीवया ॥१२॥
लब्धमत्र निजकेन्द्रभुक्तितः शोधयेद्गतिफलं धनक्षयं।
व्यस्तशुद्धिविकलं दलीकृतं स्यान्मृदुस्फुटगतौ ततः पुनः ॥१३॥
प्रोक्तवन्मृदुफलं समस्तकं मध्यमग्रहगतौ यथोदितम्।
तद्विहीनचलकेन्द्रभुक्तितः शीघ्रजं च निखिलं स्फुटं भवेत् ॥१४॥
शोधनीयमधिको यदा गते शुद्ध्यतीह चलकेन्द्रजं फलम्।
भुक्तिमेव फलतस्तदा हरेद्वक्रभुक्तिरवशिष्टकं भवेत् ॥१५॥

वि भा —अवशेषं (शीघ्रोच्चगतितो मन्दस्पष्टगत्यूना यच्छेषं) शीघ्रकेन्द्रगतिर्भवति। तां स्वशीघ्रफलधन्वभोज्यया (स्पष्टभोग्यखण्डेन) जीवपाशशिरसं (त्रिज्यया) प्रताडयेत् (गुणयेत्) चलकर्णजीवया (शीघ्रकर्णेन प्रथमज्यया च) भाजयेत् लब्धमत्र स्पष्टकेन्द्रगतिः निजकेन्द्रभुक्तितः (शीघ्रकेन्द्रगतितः) शोधये तदा धनक्षयं (धनमृणं) गतिफलं (शीघ्रगतिफलं) भवेत्। व्यस्तशुद्धिविकलं (विलोमशोधनावशिष्टं) दलीकृतं (अर्धीकृतं) मृदुस्फुटगतौ (मन्दस्पष्टगतौ) संस्कार्य ततः पुनः प्रोक्तवत् (पूर्ववत्) समस्तकं मृदुफलं (सम्पूर्णमन्दफलं) यथोदितं मध्यमग्रहगतौ संस्कार्य तद्विहीनचलकेन्द्रभुक्तितः (तद्रहितशीघ्रकेन्द्रभुक्तितः) शीघ्रजं फलं निखिलं (सम्पूर्णं) संस्कार्य तदा स्फुटग्रहो भवेत्। यदा शोधनीयं (गणितसाधितं स्पष्टकेन्द्रगतिप्रमाणं) गते (शीघ्रकेन्द्रगतितः) नो शुद्ध्यति तदा चलकेन्द्रजं फलं फलतः शोधयेदवशिष्टकं वक्रभुक्तिः स्यादिति ॥ १२-१५ ॥

अत्रोपपत्तिः।

यदि शीघ्रकर्णेन शीघ्रकेन्द्रज्या लभ्यते तदा त्रिज्यया किं समागच्छति स्पष्टकेन्द्रज्या तत्स्वरूपम् $= \frac{\text{शीकेज्या}\cdot\text{त्रि}}{\text{शीक}}$। एवमेव $\frac{\text{शीकज्या}'\cdot\text{त्रि}}{\text{शीक}} = \text{स्प}'\text{केज्या}$

अनयोरन्तरम्

$$\frac{\text{त्रि}}{\text{शीक}}\ (\text{शीकेज्या}'\sim\text{शीकेज्या})=\text{स्पकेन्द्रज्या}'\sim\text{स्पकेन्द्रज्या}\ ।$$

$$=\frac{\text{त्रि}\times\text{शीघ्रकेन्द्रज्यान्तर}}{\text{शीक}}=\text{स्पष्टकेन्द्रज्यान्तरम्}$$

अथ यत. $\frac{\text{स्पभोखं}\times\text{शीकेग}}{\text{प्रथमज्या}}$ = शीघ्रकेन्द्रगतिसज्यावृ = शीघ्रकेन्द्रज्यान्तर इत्थापनेन

$$\frac{\text{त्रि स्पभोख शीकेग}}{\text{शीकरण प्रथमज्या}}=\text{स्पष्टकेन्द्रज्यान्तर}=\text{स्पष्टकेन्द्रान्तर}=\text{स्पष्टकेन्द्रग}$$

(स्वल्पान्तरात्)

तत· शीकेग ~ स्पष्टकेग = शीघ्रगतिफलम् ।

मन्दस्पष्टगतावेतस्य सस्करणेन स्पष्टगतिर्भवेत् मन्दस्पग + शीघ्रगतिफ = स्पष्टगति यदा च ऋणात्मिका गतिर्भवेत्तदा सैव वक्रा गतिरिति ।

आचार्योक्त स्पष्टकेन्द्रगतिसाधन न समीचीनमिति तदुपपत्तिदर्शनेनैव स्फुट भवति भास्कराचार्येण सिद्धान्तशिरोमणौ तत्साधन समीचीन "फलांश-खाङ्कान्तरशिञ्जिनीघ्नी द्राक् केन्द्रभुक्तिरित्यादिना" कृत, भास्करोक्तस्पष्टकेन्द्र-गति = $\frac{\text{शीघ्रफलकोज्या शीकेग}}{\text{शीघ्र}}$ इतिशीघ्रोच्चगती विशोध्य तदा स्पष्टगति =

शीउग — $\frac{\text{शीफकोज्या शीकेग}}{\text{शीक}}$ यदा स्पष्टकेन्द्रगतेर्मानमधिक भवेत्तदा शीघ्रोच्चगती तन्न शुद्धयति तत्र विलोमशोधनेन शिष्टा स्पष्टगति क्षयात्मिका भवेत्तदैव ग्रहगति-र्वक्रा भवेत्परमेव स्थितिर्नीचस्थाने फलकोटिज्याया परमत्वाच्छीघ्रकर्णस्य परमाल्पत्वाच्च भवितुमर्हत्यनेन सिद्ध यन्नीचासन्न एव ग्रहगतेर्वक्रारम्भ इति ॥१२-१५ ॥

हि भा — शीघ्रोच्चगति मे स्पष्ट गति घटाकर जो शेष रहता है वह शीघ्र केन्द्रगति है उसको भोग्यज्या (स्पष्टभोग्यखण्ड) से गुणाकर त्रिज्यया से गुणना, शीघ्रकर्ण और प्रथम ज्या से भाग देकर फल स्पष्टकेन्द्रगति होती है, उसको शीघ्रकेन्द्रगति मे घटाने से धन या ऋण शीघ्रगतिफल होता है । विलोमशोधन से जो शेष रहता है उसके आधे को मन्दस्पष्ट गति मे संस्कार करना, उससे फिर पूर्ववत् सम्पूर्ण मन्दफल मध्यमगति मे सस्कार करना, इस तरह फल करके रहित शीघ्रकेन्द्रगति मे शीघ्रफल सम्पूर्ण सस्कार करना तब स्पष्ट-ग्रह होते हैं । यदि गणितसाधित स्पष्टकेन्द्रगति प्रमाण शीघ्र केन्द्रगति मे न घटे तो विलोम घटाकर जो शेष रहता वह वक्रगति होती है ॥ १२-१५॥

उपपत्ति

यदि शीघ्रकर्ण मे शीघ्रकेन्द्रज्या पाते हैं तो त्रिज्या मे क्या इस अनुपात से स्पष्ट

केन्द्रज्या आती है $\frac{\text{शीकेज्या त्रि}}{\text{शीक}}$ = स्पष्टकेज्या । इसी तरह $\frac{\text{शीकेज्या त्रि}}{\text{शाक}}$ = स्प'केज्या

दोनों के अन्तर करने से

$\frac{\text{त्रि}}{\text{शीक}}$ (शीकेज्या ∼ शीकेज्या) = स्प'केज्या = स्पकेज्या

$\frac{\text{त्रि} \times \text{शीघ्रकेन्द्रज्यान्तर}}{\text{शीक}}$ = स्प'केज्या = स्पकेज्या

परन्तु $\frac{\text{स्पभोग्य शीकेग}}{\text{प्रथमज्या}}$ = शीघ्रकेग स ज्यावृ = शीघ्रकेन्द्रज्यान्तर

इसलिये उत्थापन से $\frac{\text{त्रि स्पभोग्य शीकेग}}{\text{शीक प्रज्या}}$ = स्पष्टकेन्द्रज्यान्तर = स्पष्टकेन्द्रान्तर = स्पष्ट-केगति (स्वल्पान्तर से),

तब शीकेग—स्पकेग = फलगति, इसको मन्दस्पष्टगति में संस्कार करने से स्पष्ट-गति होती है । जब ऋणात्मक गति होती है तो वही वक्रगति कहलाती है ।

आचार्य से साधित स्पष्टकेन्द्रगति ठीक नहीं है यह बात उसकी उपपत्ति देखने से ही स्पष्ट है । भास्कराचार्य ने सिद्धांतशिरोमणि में "फलांशखाङ्कान्तरशिञ्जिनी" इत्यादि से स्पष्टकेन्द्रगति साधन ठीक किया है । भास्करोक्त स्पष्टकेन्द्रग = $\frac{\text{शीफकोज्या शीकेग}}{\text{शीक}}$ इसको शीघ्रोच्चगति में घटाने से ग्रह की स्पष्टगति होती है । शीउग — $\frac{\text{शीफकोज्या शीकेग}}{\text{शीक}}$ जब स्पष्ट-केन्द्रगति का मान ज्यादा होगा तब शीघ्रोच्चगति में न घटने से विलोम संशोधन होगा, तब ऋणात्मक स्पष्टगति होगी तभी ग्रहगति वक्र होगी । यह स्थिति नीचस्थान में फलकोटिज्या के परमत्व से और शीघ्रकर्ण के परमाल्पत्व से हो सकती है । इससे सिद्ध होता है कि नीचासन्न में ग्रह की वक्रता आरम्भ होता है ॥१२-१५॥

इदानीं केन्द्रमभिधीयते ततोमन्द शीघ्रफलयोर्धनर्णव्यवस्थामाह ।

मन्दग्रहोनमथवा विचलश्च खेट केन्द्रं ग्रहे धनमृणं पदयोः क्रमेण ।
मान्दं फलञ्च विपरीतमतो हि शैघ्रं ज्ञेयं सदा चञ्चलकर्मणीह ॥१६॥

वि भा —मन्दग्रहोनं (ग्रहरहितमन्दोच्चं) केन्द्रं (मन्दकेन्द्रम्) विचल (शीघ्रोच्चरहित) खेट (ग्रह) केन्द्रं (शीघ्रकेन्द्र) भवेत् । पदयोः क्रमेण (तुलादिमेषादिकेन्द्रवशेन, मान्दं फलं ग्रहे धनमृणं (तुलादिकेन्द्रे धनं मेषादिकेन्द्रे ऋणं) भवति । चञ्चलकर्मणि (शीघ्रकर्मणि) सदा (सर्वदा) अतो विपरीतं (मन्दफलाद्विलोमं) शैघ्रं (शीघ्रफलं) भवत्यर्थान्मेषादिकेन्द्रे शीघ्रफलं ग्रहे धनं तुलादिकेन्द्रे ऋणं भवतीति ॥

अन्यैराचार्यैः श्रीपतिब्रह्मगुप्तभास्करप्रभृतिभिर्मन्दोच्चरहितो ग्रहो मन्द-

केन्द्रं, ग्रहरहित शीघ्रोच्च शीघ्रकेन्द्र कथ्यते परमनेन ग्रथकारेण शीघ्रोच्चरहितो ग्रह शीघ्रकेन्द्रं कथ्यते इति ॥१६॥

हि भा—ग्रहरहित मन्दोच्च मदकेन्द्र होता है, शीघ्रोच्चरहित ग्रह शीघ्रकेन्द्र होता है। तुलादि और मेषादि केन्द्रवश मे मन्दफल ग्रह मे धन और ऋण होता है, इससे उलटा शीघ्र फल होता है, अर्थात् तुलादि केन्द्र मे ऋण ग्रार मेषादिकेन्द्र मे धन है ॥

अन्य ग्राचार्य श्रीपति ब्रह्मगुप्त भास्कर ग्रादि मन्दोच्चरहित ग्रह को मन्दकेन्द्र कहते है, ग्रहरहित शीघ्रोच्च को शीघ्रकेन्द्र कहते है परन्तु ये ग्रन्थकार (वटेश्वर) शीघ्रोच्चरहित ग्रह को शीघ्रकेन्द्र कहते है ॥१६॥

अधुना विध्यन्तरेण फलस्फुटीकरणमाह ।

भुजफल वाऽयुजि साधयेद् गतादुयुज्युत्क्रमज्योन त्रिभज्यया फलम् ।
क्षये क्षयस्वे च धने धनक्षयौ ग्रहेऽथवा केन्द्रपदक्रमाद् भवेत् ॥१७॥

वि भा—वा ग्रयुजि (विषमपदे) गतात्केन्द्रचापात् भुजफल साधयेत् । युजि (समपदे) उत्क्रमज्योन त्रिज्यया साधयेत्। केन्द्रपदक्रमात् क्षये (ऋणे केन्द्रज्यामाने) भुजफले क्षयस्वे (धनर्णे) ग्रहे कार्ये, तथा धने (धनात्मके ज्यामाने) भुजफले धनक्षयौ (धनर्णे) ग्रहे कार्ये ।

अत्रायमर्थ —प्रथमपदे ज्यार्ऋण भवति, द्वितीयपदे उत्क्रमज्याधन, तृतीयपदे क्रमज्याधन चतुर्थपदे उत्क्रमज्याऋण भवति । एव पदक्रमेण क्रमोत्क्रमाभ्या केन्द्रज्या प्रसाध्य भुजफलमानयेत् । ग्रत्र वाशब्द प्रकारान्तरसूचनार्थ । एतदुक्त भवति एव पदक्रमेण केन्द्रज्यामुत्पाद्य 'स्वेनाहते परिधिना भुजकोटिजीवे भार्गै"-रित्यादिना मन्दभुजफलानि क्षयधनधनक्षय सज्ञकान्यानेयानीति ॥१७॥

ग्रत्रोपपत्ति

प्रथमपदे गताशाना क्रमज्या स्वपरिधिगुणा भाशहृता भुजफल स्फुटमेव । द्वितीयपदे गम्याशाना क्रमज्या गतोत्क्रज्यान त्रिज्यासमा सा परिधिगुणा भाशभक्ता भुजफल भवेत् $\frac{\text{परिधि (त्रि—उत्क्रमज्या)}}{\text{भाश}}$ = परमभुजफल — $\frac{\text{परिधि उज्या}}{\text{भाश}}$ एव समपदे उत्क्रमज्यातो यद्भुजफल तेन परम भुजफल हीन तदा वास्तव भुजफलम् । एव क्रमेण चतुर्षु पदेषु भुजफलम् ।

प्रथमपदे	द्वितीयपदे
$\frac{\text{क्रमज्या परिधि}}{\text{भाश}}$ पदान्ते परम भुजफलम् ।	परमभुजफल — $\frac{\text{उज्या परिधि}}{\text{भाश}}$ पदान्ते शून्य भुजफलम्
तृतीयपदे	चतुर्थपदे
$\frac{\text{क्रमज्या परिधि}}{\text{भाश}}$ पदान्ते परम भुजफलम्।	परमभुजफल — $\frac{\text{उज्या परिधि}}{\text{भाश}}$

ग्रत सिद्धम् ॥१७॥

हि. भा.—विषमपद में गत केन्द्र चाप में भुजफल साधन करना समपद में उत्क्रमज्याहीन त्रिज्या से साधन करना। केन्द्र के पद क्रम से ऋणात्मक केन्द्रज्यामान से ग्रह में भुजफल धन ऋण होता है धन में भुजफल ग्रह में धन, ऋण होता है।

यहाँ इसका यह अर्थ है कि प्रथम पद में ज्या ऋण है, द्वितीय पद में उत्क्रमज्या धन है। तृतीय पद में क्रमज्या धन और चतुर्थ पद में उत्क्रमज्या ऋण होती है। इस तरह पद क्रम से क्रम और उत्क्रम से केन्द्रज्या करके भुजफल साधन करना। उपर्युक्त श्लोक में (वा) शब्द प्रकारान्तरसूचक है। पदक्रम से केन्द्रज्या लाकर "स्वेनाहते परिधिना भुजकोटिजीवे" इत्यादि भास्करकथित नियम से क्षय, धन, धन, क्षय मजक भुजफल लाना चाहिए ॥१७॥

उपपत्ति

प्रथम पद में गताश ज्या को परिधि से गुणकर भाश भाग देने पर भुजफल होता है, द्वितीय पद में गम्याश की क्रमज्या गतचापाशोत्क्रमज्यारहित त्रिज्या के बराबर है उसको परिधि से गुणकर भाश से भाग देने से भजफल होता है।

$\frac{\text{परिधि (त्रि—उत्क्रमज्या)}}{\text{भाश}} = \text{परमभुजफल} + \frac{\text{परिधि उज्या}}{\text{भाश}}$ इस तरह समपद में उत्क्रमज्या से जो भुजफल होता है परमभुजफल में उसको घटाने से वास्तव भुजफल होता है। इस क्रम से चारों पदों में भुजफल होता है।

प्रथम पद में	द्वितीय पद में
$\frac{\text{क्रमज्या परिधि}}{\text{भाश}}$ पदान्त में परमभुजफल।	परमभुजफल—$\frac{\text{उज्या परिधि}}{\text{भाश}}$—पदांत में शून्य भुजफल
तृतीय पद में	चतुर्थ पद में
$\frac{\text{क्रमज्या परिधि}}{\text{भाश}}$ पदान्त में परमभुज	परम भुजफल — $\frac{\text{उज्या परिधि}}{\text{भाश}}$

∴ सिद्ध हुआ ॥१७॥

इदानीमानीतानां भुजफलानां संयोगवियोगप्रकारमाह।

क्षयस्वं हि ग्रहे कुर्यात्फलं जीवान्तरं भवेत्।
फलयोर्वा विशेषोत्थं व्यत्यासाच्च चले भवेत् ॥१८॥

वि.भा.—ग्रहे (मध्यमग्रहे) फलं (मन्दभुजफलं) क्षयस्वं (ऋणधनं) जीवान्तरं (ज्यान्तरात्मकं) कुर्यात्। फलयो (मन्दभुजफलयो) विशेषोत्थं (अन्तराज्जायमानं) ग्रहे कुर्यात्। चले (शीघ्रकर्मणि) व्यत्यासात् (विलोमात्) भवेदिति ॥

अस्याय भाव। मन्दे शीघ्रकर्मणि वा यदि प्रथमपदे केन्द्र स्यात्तदा केन्द्रेणयद्भुक्तं तत्क्रमज्या ग्राह्या द्वितीयपदे केन्द्रे द्वितीयपदोत्क्रमज्या परिधिना संगुण्यभाशैर्भक्तंवा यत्फलं तत्परमभुजतो विशोध्यावशिष्टं ग्रहस्य भुजफलं भवति तेन 'क्षयस्वफल' मित्युक्त

यदि तृतीयपदे केन्द्र तदा भुक्तस्य क्रमज्या कृत्वा पूर्ववत् फल (भुजफल) समानीय द्वितीयपदोत्पन्नपरमभुजफले योज्यम्। ततस्तस्माद् योगात्प्रथमपदभुजफल विशोध्य तदा ग्रहस्य भुजफल भवेत्। चतुर्थे पदे केन्द्रे तत्पदीयोत्क्रमज्या परिधिना सगुण्य भाशैर्भक्त्वा फल प्रथमपदीयग्रहपरमभुजफले योज्य तदा वास्तव भुजफल भवेदत उक्त "फलयोर्वा विशेषोत्थम्" द्वितीयतृतीयपदोत्पन्नयो परमभुजफलयो-र्धनात्मकयोर्योगे ऋणयोर्योग विशोध्य ग्रहस्य भुजफल भवति। मन्दकर्मणि प्रथम-पदे क्रमज्याजनितभुजफलमृण भवति। द्वितीयपदोत्क्रमज्याजनितफल धन भवति, तृतीयपदे धन चतुर्थपदोत्क्रमज्योत्पन्नमृण भवति। शीघ्रकर्मणि विलोम-मर्थात्प्रथमपदे धनं द्वितीये तृतीये च क्षय, चतुर्थे धनम्।

अत्रेद तात्पर्यम्। भुजफलसाधन कृत्वा तच्चाप मन्दफल भवति मन्दकर्मणि, ततश्च तद्योगान्तरवशाद्यदधिक तदधनमृण वा ग्रहे कर्त्तव्यम्। शीघ्रकर्मणि तद्-गुणिताद् व्यासार्धात् स्वकर्णेन भाजिताद् यल्लब्ध तच्चाप फल भवति तदपि फल-योगान्तरवशादेव ग्रहे धनमृण वा कार्यमिति ॥ १८ ॥

हि भा —मध्यग्रह मे ऋण धन भुजफल (ज्यान्तात्मक) सस्कार करना चाहिये। फलद्वय के अन्तररूप फलग्रह मे सस्कार करना। शीघ्र कर्म मे विलोमक्रिया होती है ॥

इसका यह अभिप्राय है मन्दकर्म म या शीघ्रकर्म म प्रथम पद मे केन्द्र रहने से केन्द्र का जो भुक्तांश है उसकी क्रमज्या लेनी चाहिये। द्वितीय पद म द्वितीयपदीय उत्क्रमज्या को परिधि से गुणकर भाश से भाग देने से जो फल हो उसको परम भुजफल मे घटाने से ग्रह का वास्तव भुजफल होता है। इसलिये "क्षयस्व फल" कहा गया है। तृतीय पद म भुक्तचाप की क्रमज्या कर पूर्ववत् भुजफल लाकर द्वितीय पदीय परम भुजफल मे जोडना चाहिये। उस योग म प्रथमपदीय भुजफल घटाने से ग्रह के भुजफल होते हैं। चतुर्थ पद में केन्द्र रहने से चतुर्थपदीय उत्क्रमज्या को परिधि से गुणकर भाश से भाग देने से जो फल होता है उसको प्रथमपदीय ग्रह परमभुजफल मे जोडने से वास्तव भुजफल होता है इसलिये "फलयोर्वा विशे-षोत्थम्' कहा गया है। द्वितीय तृतीय पदीय परम भुजफलद्वय (धनात्मक) के योग मे ऋण-द्वय के योग को घटाने मे ग्रह का भुजफल होता है। मन्दकर्म मे प्रथम पद मे क्रमज्योत्पन्न भुजफल ऋण होता है। द्वितीयपदीय उत्क्रमज्याजनित फल धन होता है। तृतीय पद मे धन चतुर्थपदीय उत्क्रमज्योत्पन्न ऋण होता है शीघ्रकर्म म विपरीत होता है। प्रथम पद मे धन, द्वितीय और तृतीय पद मे ऋण, चतुर्थ पद म धन होता है।

इसका तात्पर्य यह है भुजफल साधन कर उसका चाप मन्द फल होता है मन्दकर्म मे। बाद मे उनके योग, अन्तर वश करके जो अधिक रहता है उसको ग्रह मे धन या ऋण करना चाहिये। शीघ्र कर्म म उसको (भुजफल को) त्रिज्या से गुणकर शीघ्रकर्ण से भाग देने मे जो हो उसका चाप शीघ्रफल होता है। उसको भी फल के योग, अन्तर वश करके ग्रह में धन या ऋण करना चाहिये ॥ १८ ॥

इदानीं भुजकोटिज्यादिसाधनैर्विना भगणादेव स्फुटग्रहं वक्तुं प्रकारमाह ।

स्वोच्चनीचपरिवर्त्तशेषकाद् भूदिनैः कृतहतात्पदानि स्यु ।
शेषकात्त्रिगुणितात् गृहादितः पूर्ववच्च भुजकोटिसाधनम् ॥ १६ ॥

वि भा—स्वोच्चनीचपरिवर्त्तशेषकात् (स्वोच्चनीचकेन्द्रभगणशेषादर्थाद्-ग्रहभगणशेषे स्वच्चनीचभगणशोधने यच्छेषं तस्मात्केन्द्रभगणशेषात्) कृतहतात् (चतुर्भिगु णितात्) भूदिनैः (कुदिनैः) भक्तात्फलं पदानि (केन्द्रस्य भुक्तानि पदानि) स्यु । शेषकात् (पदप्राप्त्यनन्तरमवशिष्टात्) त्रिगुणात् (त्रिगुणितात्) भूदिनैर्भक्ता-ल्लब्धगृहादितो भुजकोटिसाधनं भवेत् । यथा पदप्राप्त्यनन्तरमवशिष्टं त्रिगुणाद्-भूदिनैर्भक्ताल्लब्धं भुजज्या भवेत् । गतगम्यज्यान्तरगुणाच्छेषात् कुदिनैर्भक्ताल्लब्धं पूर्वस्यापिते योज्यं तदा स्फुटा भवेत् । सा च प्रथमकेन्द्रपदे शेषं कुदिनेभ्यो विशो-ध्यावशिष्टं त्रिगुणितं कुदिनैर्भक्तं लब्धा कोटिज्या, गतगम्यज्यान्तरगुणिताच्छेषात् कुदिनैर्यल्लब्धं तत्पूर्वलब्धे ज्यार्धे योज्यं तदा स्फुटा कोटिज्या भवेत् । गतैः प्रथमे केन्द्रपदे भुजज्या, गम्यैः कोटिज्या, द्वितीये केन्द्रपदेऽन्योऽन्यथा गतैस्तदूनशेषाद्गम्यै-र्भुजज्या, तृतीये पदे गतैर्भु जज्या, गम्यैः कोटिज्या, चतुर्थपदे गतैः कोटिज्या गम्यैर्भु जज्या भवतीति ॥ १६ ॥

अत्रोपपत्ति ।

भगणशेषादेव केन्द्रादिकं साधितमाचार्येण, तत एकस्मिन् भगणे चत्वारि पदानि तदा भगणशेषे किमिति पदानि $=\frac{४\times भशे}{कुदि}$ तत एकस्मिन् पदे राशय $=३$ तदाऽनुपातो यद्यकस्मिन् पदे राशित्रयं लभ्यते तदा शेषे किमित्यागतास्तत्सम्ब-न्धिनो राशयस्ततो भुजकोटिसाधनं कार्यं यच्च भाष्ये लिखितमस्तीति ॥

हि भा — भुज कोटिज्यादि साधन बिना अहर्गण ही से स्फुटग्रह के लिये प्रकार कहते हैं । अपने उच्चनीच केन्द्र भगणशेष से अर्थात् ग्रहभगणशेष में उच्च, नीच के भगण-शेष घटाने से जो शेष केन्द्र भगण शेष रहता है उसको चार से गुणकर कुदिन से भाग देने के फल केन्द्र के भुक्तपद होते हैं पदप्राप्ति के बाद जो शेष है उसको तीन से गुणकर कुदिन से भाग देने से जो लब्धफल होता है उससे भुज और कोटि का साधन होता है । जैसे पदप्राप्ति के बाद शेष को तीन से गुणकर कुदिन से भाग देने से फल भुजज्या होती है । गत और गम्य ज्या के अन्तर से गुणित शेष को कुदिन से भाग देने से जो फल होता है उसको पूर्व रखे हुए में जोड़ने से स्फुट भुजज्या होती है । वह प्रथम केन्द्र पद में है । शेष को कुदिन में घटाकर । शेष को तीन से गुणकर और कुदिन से भाग देकर कोटिज्या प्राप्त हुई । गत और गम्य ज्या के अन्तर से गुणित शेष को कुदिन से भाग देने से जो फल होता है उसको पूर्व प्राप्त ज्यार्ध में जोड़ें तब स्फुट कोटिज्या होती है । पहले केन्द्र पद में गत से भुजज्या और गम्य से कोटिज्या, द्वितीय केन्द्र पद में इससे विपरीत गत में उस ऊन शेष से गम्यों से भुजज्या, तीसरे पद में गतों से भुजज्या और गम्यों से कोटिज्या तथा चौथे पद में गतों से कोटिज्या और गम्यों से भुजज्या होती है ।

उपपत्ति

यहा भगण शेष ही केन्द्रादि का साधन आचार्य ने किया है तब अनुपात करते है कि यदि एक भगण मे चार पद पाते हैं तो भगण शेष मे क्या इस अनुपात से पद आते हैं $\frac{४ \times भशे}{कुदिन}$ = पद। फिर अनुपात करते है कि एक पद मे तीन राशि पाते है तो शेष में क्या इस अनुपात से तत्सम्बन्धी राशिया आती है इन पर से भुज कोटि का साधन करना चाहिए ॥१६॥

इदानीं स्पष्टभगणशेषज्ञानार्थमाह।

मन्दजं चलभवं च तद्धतंभूं दिनैर्भगणलिप्तिकोद्धृतैः।
खेचरस्य भगणावशेषकं संस्कृतं कलिकयाऽखिलं स्फुटम् ॥२०॥

वि. भा.—मन्दजं (मन्दकर्मोद्भवं भुजफल) चलभवं (शीघ्रकर्मोदभवं भुजफल) यत् तद्धतं (तद्गुणित) भूदिनैः (कुदिनैः) भगणलिप्तिकोद्धृतैः (भगणकलाभिश्चक्रकलाभिर्भक्तैः) लब्धं खेचरस्य भगणावशेषक (ग्रहभगणशेष) सस्कृतं तदा फलकलया अखिलं स्फुटं (स्पष्ट भगणशेष) भवेदिति ॥२०॥

अत्रोपपत्ति

फलकलाश्चक्रकला भक्तास्तदा भगणात्मिका. फलकलाः $= \frac{फकला}{चक्रक}$

$= \frac{फक \times कुदिन}{चक \times कुदि} = \frac{\frac{फक. कुदिन}{चक}}{कुदिन} = \frac{लब्ध}{कुदिन}$ इति भगणात्मकं फलकलामान ग्रहभगणशेषे सस्कृत तदा वास्तव भवेदिति ॥२०॥

हि भा—मन्दकर्मोत्पन्न भुजफल और शीघ्रकर्मोत्पन्न भुजफल जो है उनसे कुदिन को गुणकर भगण कला (चक्रकला) से भाग देने से जो फल होता है उसको ग्रह भगण शेष मे सस्कार करने से वास्तव भगण शेष होता है ॥२०॥

उपपत्ति

फलकला को चक्रकला से भाग देने से भगणात्मक फल कला होती है।

$\frac{फक}{चक} = \frac{फक}{चक} \cdot \frac{कुदिन}{कुदिन} = \frac{\frac{फक. कुदिन}{चक}}{कुदिन} = \frac{लब्ध}{कुदिन}$ इस भगणात्मक फलकला को ग्रह भगण शेष मे संस्कार करने से वास्तव भगण शेष होता है ॥२०॥

इदानीं ग्रहस्फुटत्वार्थं सस्कारविशेषमाह।

दो फलेन सवितुश्चरासुभिः स्वेनदेशविवरेण चोक्तवत्।
संस्कृतं कुदिनभाजितं भवेन्मंगलादिखचरः परिस्फुटः ॥२१॥

वि. भा.—सवितुः (सूर्यस्य) दो.फलेन (भुजफलेन) चरासुभिः (चरखण्ड-

प्राणैः) देशविवरेण (स्वदेशान्तरेण) उक्तवद्यत्फलमर्थाद् भुजान्तरफल, चरासुजनितग्रहगतिकलाफल तथा देशान्तरजनितग्रहगतिकलाफल, कुदिनभाजित (कुदिनभक्त) यद् भवेत्तं फलं सस्कृत भगणशेष स्फुट भगणशेष भवेत्तस्मात्स्फुटभगणशेषाद्यो ग्रह आनीयते स स्फुट एव मगलादिखचरः (मगलादिग्रहो) भवेदिति ॥२१॥

अस्योपपत्ति पूर्वश्लोकोपपत्तिदर्शनेनैव स्फुटेति ॥२१॥

हि भा—अब ग्रह के स्फुटत्व के लिए सस्कार विशेष को कहते हैं। सूर्य के भुजफल से, चरासु से और अपने देशान्तर से पूर्ववत् जो फलकला मान अर्थात् भुजान्तरफलकला, चरासुसम्बन्धी ग्रहगतिकला और देशान्तर सम्बन्धी ग्रहगतिकला मान होते है उनको कुदिन से भाग देने से जो फल हों उन्हें ग्रह भगणशेष मे सस्कार करने से स्पष्टभगण शेष से जो ग्रह आते हैं वे मगलादि स्पष्टग्रही होते हैं ॥२१॥

इसकी उपपत्ति पूर्व श्लोक की उपपत्ति देखने से स्फुट है ॥२१॥

इदानी पूर्वोक्त पूर्ववच्चाभुजकोटिसाधनमि' त्यस्य स्पष्टीकरणमाह।

पदशेष गतसज्ञ तदून कुदिन गम्यमिति ते द्वे।
षण्णवतिघ्ने कुदिनैर्भक्ते जीवाऽन्तराहताच्छेषात् ॥२२॥
कुदिनैर्लब्धयुता ज्या भुजकोटिज्येऽथवा पदानुगते।
तत्फलमिलाहतिघ्न चक्रकलाभाजित शेषे ॥२३॥

हि भा—स्वोच्चनीचपरिवर्त्तशेषकादित्यादिना यत्पदशेष तद् गतसज्ञम्। तदून (गतमज्ञकेन रहित) कुदिन, गम्य (भोग्यम्) ते द्वे (गतगम्ये) षण्णवतिघ्ने (९६ एभिर्गुणिते) कुदिनैर्भक्ते भुजकोटिज्ये भवत.। भुजज्यासम्बन्धिशेषाद् गतगम्यज्यान्तरगुणात् कुदिनैर्भक्ताल्लब्ध पूर्वस्थापिते योजयेत्तदा स्फुटा भुजज्या भवेत्तथा कोटिज्यासम्बन्धिशेषाद् गतगम्यज्यान्तरहतात्कुदिनैर्भक्ताल्लब्ध तत्पूर्वलब्धे ज्यार्धे योज्य तदा स्फुटा कोटिज्या भवेत्। एते भुजकोटिज्ये पदानुगते भवतोऽर्थात्पदाधीने स्त, प्रथमे केन्द्रपदे गताद्भुजज्या, गम्यात्कोटिज्या, द्वितीये केन्द्रपदेऽन्यथा गतात्कोटिज्या, तदूनशेषाद्गम्याद्भुजज्या, तृतीये पदे गताद्भुजज्या, गम्यात्कोटिज्या चतुर्थे पदे गतात्कोटिज्या, गम्याद्भुजज्या इति, तत्फल, इलाहतिघ्न (कुदिनगुणित) चक्रकलाभाजित (चक्रकलाभक्त) फल शेषे (ग्रहभगणशेषे) सस्कृत तदा वास्तवभगणशेष भवेदिति ॥२२-२३॥

अत्रोपपत्ति।

एकस्मिन् भगणे ज्यासख्या =९६। तदा पदशेषात् ९६ एभिर्गुणितात्कुदिनैर्भक्ताल्लब्धाङ्कसमा भुजज्या भवति, शेषाद् गतगम्यज्यान्तरगुणात्कुदिनैर्भक्ताद्यल्लब्ध तत्पूर्वस्थापिते योज्य तदा स्फुटा भुजज्या भवेत्। एव गम्यात् (कुदिन—पदशे) ९६ [illegible] कोटिज्या, शेषाच्च गतगम्यज्यान्तरहतात् [illegible] स्फुटा कोटिज्या भवेत्। शेषोपपत्तिमन्दज [illegible]

॥२२-२३॥

हि भा—उक्त दोनो श्लोकों का अर्थ स्पष्ट ही है ॥२२-२३॥

इदानीं भुजफलस्य नामान्तरमाह ।

भग्रहाम्युदयेभ्यो वा ग्रहे स्पष्टे तु तद्वशात् ।
तद्दो.फलमिनाख्यो हि संस्कारः परिकीर्त्तितः ॥२४॥

वि भा —वा भग्रहाभ्युदयेभ्य (भोदयग्रहसावनदिवसेभ्य) स्पष्टे ग्रहे अपेक्षिते सति तदा तद्वशात् दो फल (भुजफल) इनाख्य संस्कार (भुजान्तरसंस्कार) परिकीर्त्तित (कथित) रविमन्दफलबलादेव भुजान्तरफलस्य साधन भवत्यतस्तस्य नाम "इनाख्य संस्कार" ॥ इति ॥२४॥

भभ्रमा यस्य ग्रहस्य भगणोनरूपा शेषाणि तस्य सावनदिनानि भवन्ति तैरहर्गणे गुणिते युगकुदिनैर्भक्ते फल गतसावनानि स्यु । भभ्रमोत्पन्नग्रहास्तेन फलेनोनास्तदा मध्यमग्रहो भवति यस्य भगणैर्यो ग्रह आनीयते स तस्यैवोदयकालिको भवति । नक्षत्रपरिवर्त्तैरानीतो ग्रहो नक्षत्रोदयिककालिको भवति, तथा सत्यश्विनीनक्षत्राणा प्रथम तदुदयकालिको ग्रहो भवति । अस्मादश्विन्यौदयिकाद् भगणात् यस्योदया शोध्यन्ते शेषस्तस्यैव मध्यमो भवतीति । एतद् ग्रहवशाद्यन्मन्दफल रवेस्तद्वशादेव भुजान्तरफलानयन भवत्यतो दो फलचापाख्य संस्कारोऽस्य नामेति । २४॥

हि भा —अथवा भोदय, ग्रहसावन दिन पर से यदि स्पष्ट ग्रह जानना हो तो उसके वश से (भोदय या ग्रहसावन से आनीत मध्यम ग्रह के वश से) जो भुजफल होता है उसका नाम भुजफल संस्कार या भुजान्तरफलसंस्कार कथित है ।

भभ्रम में जिस ग्रह के भगण को घटाते हैं शेष उस ग्रह के सावन दिन होते हैं। अहर्गण को उससे गुणाकर कुदिन से भाग देने से गत सावन दिन होते हैं। भभ्रम से जो ग्रह आते हैं उसमें पूर्वोक्त फल को घटाने से मध्यम ग्रह होते हैं। जिसके भगण द्वारा ग्रह साधित होते हैं वह ग्रह उसी के उदयकालिक होते हैं। नक्षत्र भगण द्वारा साधित ग्रह नक्षत्रोदयकालिक होते हैं। इस तरह अश्विनीनक्षत्रोदयकालिक ग्रह होते हैं। इस अश्विनी के औदयिक भगण में जिस के सावन घटाते हैं उसी के मध्यम ग्रह होते हैं। इस ग्रहवश से जो मन्दफल होता है रवि के उसी मन्दफल के द्वारा भुजांतर फल साधन होता है इसलिए उसका नाम भुजफलसंस्कार यानि भुजान्तरसंस्कार कहा गया है ॥२४॥

इदानीं चन्द्रस्य देशान्तरसंस्कारमाह ।

स्वोदयभोगोपहते देशान्तरयोजने कुवृत्तहृते ।
प्राग्वद्धनमृणमिन्दोर्यथोदया. प्राग्दिशि निबद्धाः ॥२५॥

वि भा —देशान्तरयोजने (पूर्वसाधितस्पष्टदेशान्तरयोजने) इन्दो (चन्द्रस्य) स्वोदयभोगोपहते (स्वगतिकलागुणिते) कुवृत्तहृते (भूपरिधिनाभक्ते) फल प्राग्वत् गृहे धन वा ऋण कार्य, चन्द्रस्य यथोदया (यथार्कविनोदया) प्राग्दिशि (पूर्वमार्गे पूर्वपद्धतौ वा) निबद्धा मन्वीनि ॥२५॥

प्रश्नोपपत्ति

यदि स्पष्टभूपरिधियोजनैर्ग्रहगतिकला लभ्यन्ते तदा देशान्तरयोजनैः किमित्यनुपातेन देशान्तरकला समागतास्तत्स्वरूपम् $= \frac{\text{ग्रग} \times \text{देशान्तरयो}}{\text{स्पभूपरि}}$ एतदेव फलं रेखातः पूर्वापरस्थितदेशवशेन ग्रहे सस्कार्यं भवति, सर्वेषां ग्रहाणां देशान्तरफलसाधनमेकरीत्यैव भवति तत्संस्कारोऽप्येकरूप एव देशान्तरसंस्कारः पूर्वकथित एव पुनरत्र तत्कथनस्य काऽऽवश्यकतेत्याचार्य एव ज्ञातुं शक्नोति । एतेनाऽऽचार्येण स्पष्टभूपरिध्यानयनं न कृतमतो भूपरिधियोजनवशेनानीतं देशान्तरफलं न समीचीनमिति विज्ञैर्ज्ञेयमिति ॥२५॥

अब देशांतर संस्कार कहते हैं ।

हि भा —पूर्वसाधित स्पष्टदेशांतर योजन को अपनी गतिकला से गुणकर भूपरिधि से भाग देने से जो फल हो उसको ग्रह में धन या ऋण करना चाहिए, चन्द्र के सावन पूर्व ही के अनुसार समझना चाहिए ॥२५॥

उपपत्ति

यदि स्पष्ट भूपरिधि योजन में ग्रहगति कला पाते हैं तो देशांतर योजन में क्या इस अनुपात से देशांतर कला आती है । $\frac{\text{ग्रग देशांतरयो}}{\text{स्पभूपरि}}$ = देशांतर कला, इसको रेखादेश से पूर्व, पर देश के अनुसार ग्रह में संस्कार करते हैं । सब ग्रहों के देशांतर फल साधन एक ही तरह से होता है उसका संस्कार भी पहले आचार्य कह चुके हैं तब फिर यहां कहने की क्या आवश्यकता है इस विषय को आचार्य ही जान सकते हैं । इस आचार्य ने स्पष्ट भूपरिधि का साधन नहीं किया है इसलिए उनके द्वारा साधित देशांतर फल भी ठीक नहीं हैं ॥२५॥

इदानीं भुजांतरसंस्कारमाह ।

मध्यादधिके स्पष्टे स्वमृणं चोने भुजान्तरं चैतत् ।
तदुदयगास्तदहोगतयस्तज्ज्ञासुफलेन हता ॥२६॥
तदहोरात्रहृता हीनयुता व्योमवासिनः सर्वे ।
मदिवन्योर्दयिकास्तदशिवनो दर्शनान्तरोनयुता ॥२७॥

वि भा —मध्यात् (मध्यमग्रहात्) स्पष्टे (स्पष्टग्रहे) अधिके एतदधोदर्शितं भुजान्तरं मध्यमार्कोदयकालिकग्रहे स्वं (धनम्) मध्यात्स्पष्टे ऊने (हीने सत्येवा) तत्फलं मध्यमार्कोदयकालिकग्रहे ऋणं कार्यम् । अधुना तत्फलं (भुजान्तरफलं) साध्यते तदुदयगा (तत्तेषां ग्रहाणां सावनान्तर्गता) तदहोगतयः (तद्दैनिकगतयः) तज्ज्ञासुफलेन (भुजान्तरासुफलेन) हता (गुणिता) तदहोरात्रहृता (तदहोरात्रासु भक्ता) फलेन हीनयुता मध्यमार्कोदयकालिका ग्रहास्तदा सर्वे व्योम-

वासिनः (ग्रहा) स्पष्टार्कोदयकालिका भवेयु । अश्विनीदर्शनान्तरोनयुतास्तदाऽश्विन्यौदयिका भवन्तीति ॥२६-२७॥

अस्योपपत्तिर्मध्यमाधिकारे प्रदर्शिताऽस्ति सा तत्रैव द्रष्टव्येति ॥२६-२७॥

इति वटेश्वरसिद्धान्ते स्पष्टाधिकारे स्वोच्चनीचग्रहस्फुटीकरणविधि द्वितीयोऽध्याय ।

अब भुजातर सस्कार कहते हैं।

ह, भा — मध्यम ग्रह से स्पष्ट ग्रह अधिक हो तो नीचे लिखे हुए भुजान्तर फल को मध्यमार्कोदयकालिक ग्रह म धन करना, मध्यम ग्रह से स्पष्ट ग्रह अल्प हो तो भुजातर फल को मध्यमार्कोदयकालिक ग्रह मे ऋण करना, अब भुजातर फलानयन करते है।

ग्रह के सावनागत गति को भुजातरासु से गुणकर अहोरात्रासु भाग देने से जो फल होता है उसको मध्यमार्कोदय कालिकग्रह मे हीन, युत करने म स्पष्टार्कोदयकालिक ग्रह होते हैं॥२६-२७॥

इतिवटेश्वर सिद्धात म स्पष्टाधिकार म स्वोच्चनीचग्रहस्फुटीकरणविधि नामक द्वितीय अध्याय समाप्त हुआ॥



तृतीयोऽध्यायः

इदानी प्रतिमण्डलस्पष्टीकरणविधि प्रारभ्यते

इदमभिहित ग्रहाणा स्पष्टीकरणमुच्चनीचविधिनैव ।
प्रतिमण्डलाख्यमधुना स्पष्टीकरण प्रवक्ष्यामि ।।१।।

वि भा —इद (पूर्वोक्त) ग्रहाणा स्पष्टीकरणम् उच्चनीचविधिनैव (नीचोच्चवृत्तभंगिरीत्यैव) अभिहित (कथितम्) अधुना (इदानी) प्रतिमण्डलाख्य (प्रतिवृत्तसज्ञकम) स्पष्टीकरणमर्थात्प्रतिवृत्तभङ्गिद्वारा स्पष्टीकरण प्रवक्ष्यामि (कथयामि) इति ।

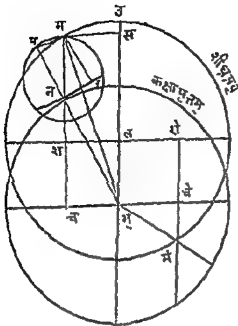
हि भा –यह पहले कहे हुए ग्रहो के स्पष्टीकरण नीचोच्चवृत्तभङ्गी की विधि से कहे गये हैं । इस समय प्रतिवृत्त सज्ञक स्पष्टीकरण (प्रतिवृत्तभङ्गि द्वारा स्पष्टीकरण) को कहता हू ।।१।।

इदाना नीचोच्चवृत्तव्यासार्धानयनमाह ।

परिधिगुणास्त्रिभजीवा भगणाशविभाजिताऽन्त्यफलजीवा ।
नीचोच्चव्यासदल शरासन चास्य परमफलम् ।।२।।

वि भा —त्रिभजीवा (त्रिज्या) परिधिगुणा (नीचोच्चवृत्तपरिधिगुणिता) भगणाशविभाजिता (चक्राशभक्ता) तदाऽन्त्यफलजीवा (अन्त्यफलज्या) भवेत् इति (अन्त्यफलज्या) नीचोच्चव्यासदल (नीचोच्चवृत्तव्यासार्धम्) भवति, अस्य (नीचोच्चवृत्तव्यासदलस्य) शरासन (चाप) परमफल (अन्त्यफल) भवतीति ।।२।।

शीघ्रप्रतिवृत्त म=मन्दस्पष्टग्रह । न=मन्दस्पष्टग्रह । उ=शीघ्रोच्चम् । भूकेन्द्रादिष्टत्रिज्या व्यासार्धेन (मध्यम कर्णव्यासार्धेन) वृत्त कार्यं तत्कक्षवृत्तसज्ञकम् । तद्वृत्तस्योर्ध्वाधरव्यासरेखाया भूकेन्द्रादुपरि ग्रहस्यान्त्यफलज्या तुल्य दान दत्वा तस्माद्दानाग्रबिदुतो त्रिज्यया वृत्त कार्यं तच्छीघ्रप्रतिवृत्तसज्ञकम् ।



चित्र ६

कक्षाप्रतीयोर्ध्वाधरव्यासरेखा (उच्चरेखा) प्रतिवृत्ते ऊर्ध्वभागे यत्र लगति तत्रैव 'प्रतिवृत्ते उच्चम् (शीघोच्चम्) अधोभागे सैव रेखा वर्धिता यत्र लगति तत्र नीचम् । भूकेन्द्रात्कक्षावृत्तीयोर्ध्वाधरव्यास रेखोपरि (उच्चरेखोपरि) लम्बरेखा कक्षावृत्तकेन्द्रगतिर्यग्रेखा, एवं प्रतिवृत्तकेन्द्रात्तदुच्चरेखोपरिलम्बरेखा प्रतिवृत्तीयतिर्यग्रेखा, प्रतिवृत्ते म विन्दौ मन्द स्पष्ट ग्रह । भूउ = उच्चरेखा, म विन्दुत उच्चरेखायाः समानान्तरा मच रेखा कार्या, सा कक्षावृत्ते न विन्दौ लग्ना तदा न = मन्दस्पष्टग्रह , ल = प्रति वृत्तकेन्द्रम् । भूल = शीघ्रान्त्यफलज्या = चश = मन, न विन्दु केन्द्रं मत्वा मन व्यासार्धेन यद्वृत्त तच्छीशीघ्रनीचोच्चवृत्तम् । भूनरेखा कार्या सोर्ध्वभागे वर्धिता तदुपरि म विन्दुतो यो लम्बस्तदेव शीघ्रभुजफलम् = मप, नप = कोटिफलम् । न विदुतो भूनरेखोपरि लम्बरेखा नीचोच्चवृत्तीयतिर्यग्रेखा तदुपरि म विन्दुतो लम्ब = मर = नप = कोटिफल, मम = शीघ्रकेन्द्रज्या मल = मश = शीघ्रकेकोटिज्या । भूनच, नमप त्रिभुजयो सजात्यादनुपात: $\frac{\text{शीकेज्या} \times \text{शीघ्रान्त्यफलज्या}}{\text{त्रि}}$ = शीभुजफलम् । पर $\frac{\text{शीघ्रान्त्यफज्या}}{\text{त्रि}} = \frac{\text{शीपरिधि}}{\text{भाम}}$

∴ $\frac{\text{शीकेज्या} \times \text{शीपरिधि}}{\text{भाश}}$ = शीभुजफल । यदा शीघ्रकेन्द्रज्या = त्रि तदा शीघान्त्यफलज्या = शीघ्रभुजफल ∴ $\frac{\text{त्रि} \times \text{शीपरिधि}}{\text{भाम}}$ = शीघ्रान्त्यफलज्या = शीघ्रनीचोच्चवृत्त्याः अस्याश्चापम् = शीघ्रान्त्यफलम् ।

एतावताऽऽचार्योक्तमुपपन्नम् ॥२॥

शीघ्र नीचोच्चवृत्त के व्यासार्धानयन करते हैं ॥ २ ॥

हि. भा.—शीघ्रपरिधिगुणित त्रिज्या को भगणांश से भाग देने से शीघ्रान्त्यफलज्या

होती है वह (शीघ्रान्त्यफलज्या) नीचोच्चवृत्त व्यासार्ध है। इसका चाप अन्त्यफल (परम-फल) है ॥२॥

उपपत्ति

भू केंद्र बिंदु को केंद्र मान कर मध्यमकर्ण व्यासार्ध (त्रिज्या) से जो वृत्त होता है वह कक्षावृत्त संज्ञक है। कक्षावृत्त की ऊर्ध्वाधर व्यास रेखा में भूकेंद्र से ऊपर ग्रह की शीघ्रा-न्त्यफलज्या तुल्य दान देकर उस बिंदु से त्रिज्याव्यासार्ध से जो वृत्त होता है उसका शीघ्र-प्रतिवृत्त है। कक्षावृत्तीय ऊर्ध्वाधर व्यासरेखा (उच्चरेखा) ऊर्ध्व भाग में प्रतिवृत्त में जहाँ लगती है वह बिंदु प्रतिवृत्त में शीघ्रोच्च है। अधोभाग में वही रेखा जहाँ लगती है वह बिंदु शीघ्र नीच है। भूकेंद्र से कक्षावृत्तीय ऊर्ध्वाधर व्यास रेखा के ऊपर लम्ब रेखा कक्षा मध्यग तिर्यग्रेखा है। प्रतिवृत्त केंद्र से प्रतिवृत्तीय ऊर्ध्वाधर व्यास के ऊपर लम्ब रेखा प्रतिवृत्त मध्यगतिर्यग्रेखा है। प्रतिवृत्त में म=मंदस्पष्टग्र उ=शीघ्रोच्च। भूउ=उच्चरेखा, म बिंदु से उच्चरेखा की समानांतर रेखा कक्षावृत्त में न बिंदु में लगती है इसलिए न=स्पष्ट ग्रह ल=प्रतिवृत्त केंद्र। भू=भूकेंद्र।

चित्र ६ देखिये, भूल=शीघ्रान्त्यफलज्या=दाच=मन, न बिंदु को केंद्र मान कर मन अन्त्यफलज्या व्यासार्ध से जो वृत्त होता है वही शीघ्र नीचोच्च वृत्त कहलाता है। भून रेखा को ऊपर बढ़ा दीजिये उसके ऊपर म बिंदु से लम्ब (मप) कीजिए वह शीघ्र भुजफल है। नप=कोटिफल भून रेखा के ऊपर न बिंदु से जो लम्बरेखा होती है वह शीघ्र नीचोच्चवृत्तीय तिर्यग्रेखा है। इसके ऊपर म बिंदु से लम्ब=मर=नप =कोटिफल। मस=शीघ्रान्त्यफलज्या, सल=मरा=शीघ्रकेंद्रकोटिज्या भम=शीघ्रकेन्द्रज्या, भूनव। नमर दोनों त्रिभुज सजातीय है इसलिए अनुपात करते है।

$\frac{\text{शाघ्रज्या} \times \text{शीघ्रान्त्यफज्या}}{\text{त्रि}}$ =शीभुजफल। यदि शीकेज्या=त्रि तदा शीघ्रान्त्य-फज्या=शीभुज

परन्तु $\frac{\text{शीघ्रान्त्यफज्या}}{\text{त्रि}} = \frac{\text{शीपरिधि}}{\text{भांश}}$ अत $\frac{\text{शीकेज्या} \times \text{शीपरीधि}}{\text{भांश}}$ = शीघ्रभुजफल

∴ शीघ्रान्त्यफलज्या= $\frac{\text{त्रि} \times \text{शीपरिधि}}{\text{भांश}}$ =शीघ्रनीचोच्चवृत्तव्यासार्ध है

चाप करने से शीघ्रान्त्यफल (परमफल) होता है।

इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥२॥

इदानीं कर्णानयनमाह

मृगकर्क्यादौ केन्द्रे कोट्यन्त्यफलज्ययोर्युतिविशेषः।
तद्बाहुज्या कृत्यो समासमूलं श्रुतिर्भवति ॥३॥

वि भा—मृगकर्क्यादौ केन्द्रे (मकरादिकर्क्यादिकेन्द्रे) कोट्यन्त्यफलज्ययो-र्युतिविशेष (शीघ्रकेन्द्रकोटिज्याऽन्त्यफलज्ययोर्योगोऽन्तर) स्पष्टा कोटि, तद्बा-

द्वयो कृत्यो समासमूल (स्पष्टाकोटिभुजज्ययो वर्गयोगमूल) श्रुति (कर्ण) भवति ॥

अस्योपपत्ति ।

अत्र पूर्वश्लोकोपपत्ती प्रदर्शित नवमचित्र द्रष्टव्यम् । मकरादिकेन्द्रे मश = केन्द्रकोटिज्या, शच = अन्त्यफलज्या मश + शच = मच = स्पष्टा कोटि = केन्द्रकोज्या + अन्त्यफलज्या = भूस, मस = केन्द्रज्या भूम = कर्ण ।

भूस^2 + मस^2 = स्पकोटि^{2} + केन्द्रज्या^{2} = भूम^2 = कर्ण^2. $\sqrt{\text{स्पको}^2 + \text{केन्द्रज्या}^2}$ = कर्ण कर्क्यादिकेन्द्र म′ श′ = केन्द्रकोटिज्या, श′ च′ = अन्त्यफलज्या, भूम′ = कर्ण, भूच′ = केन्द्रज्या म′ श′ — श′ च′ = म′ च′ = केन्द्रकोटिज्या — अन्त्यफलज्या = स्पष्टा कोटि । तत म′ च′^{2} + भूच′^{2} = भूम′^{2} = स्पकोटि^{2} + केन्द्रज्या^{2} = कर्ण^2 मूलेन $\sqrt{\text{स्पकोटि}^2 - \text{अन्त्यफज्य}^2}$ = कर्ण ।

अत सिद्धम् ॥ ३ ॥

कर्णानयन करते है

हि भा—मकरादि केन्द्र म और कर्क्यादि केन्द्र म शीघ्रकेन्द्र कोटिज्या और अन्त्यफलज्या के योग और अन्तर करने से स्पष्टकोटि होती है। स्पष्टकोटि और केन्द्रज्या के वर्गयोग मूल लेने से कर्ण होता है ॥ ३ ॥

उपपत्ति

इससे पहले श्लोक की उपपत्ति मे लिखित नवें चित्र को देखिय । मकरादि म मश = केन्द्रकोटिज्या, शच = अन्त्यफलज्या मश + शच = म च = स्पष्टा कोटि = केन्द्रकोज्या + अ फलज्या = भूस मस = केन्द्रज्या ।

भूस^2 + मस^2 = स्पकोटि^{2} + केन्द्रज्या^{2} = भूम^2 = कर्ण^2 मूल लेने से

$\sqrt{\text{स्पकोटि}^2 + \text{केन्द्रज्या}^2}$ = कर्ण । भूम = कर्ण

कर्क्यादि केन्द्र म म′ श′ = केन्द्रकोटिज्या, श′च′ = अन्त्यफलज्या, भूम′ = कर्ण भूच′ = केन्द्रज्या, म′ श′ — श′च′ = म′ च′ = केन्द्रकोज्या — अन्त्यफज्या = स्पष्टा कोटि म′ च′^{2} + भूच′^{2} = भूम′^{2} = स्पकोटि^{2} + केन्द्रज्या^{2} = कर्ण^2 मूल लेन से $\sqrt{\text{स्पकोटि}^2 + \text{केज्या}^2}$ = कर्ण अत सिद्ध हो गया ॥ ३ ॥

पुन कर्णानयनमाह ।

स्फुटकोटिकोटिज्याकृतिविवरात् त्रिगुणवर्गसयुक्तात् ।
मूल कर्णो वा स्याद् विनैव चलकेन्द्रबाहुज्याम् ॥ ४ ॥
तद्योगान्तरघातत्रिज्याकृतियोगमूल यत् ।
मृगमुखशशिभवनादौ कर्णो वा स्याद् विनैव बाहुज्याम् ॥५ ॥

वि. भा.—स्फुटकोटिकोटिज्याकृतिविवरात् (स्पष्टकोटिकेन्द्रकोटिज्ययोर्वर्गान्तरात्) त्रिगुणवर्गसयुक्तात् (त्रिज्यावर्गयुतात्) मूल वा चलकेन्द्रबाहुज्या (शीघ्रकेन्द्रज्या) विनैव कर्णो भवेदिति ॥ ४ ॥

तद्योगान्तरघातत्रिज्याकृतियोगमूल यत् (स्पष्टकोटिकेन्द्रकोटिज्ययोर्योगान्तरघातयुतत्रिज्यावर्गस्य मूल यत्) मृगमुखशशिभवनादौ (मकरादिकर्कादिकेन्द्रे) बाहुज्या (केन्द्रज्या) विनैव वा कर्ण स्यादिति ॥ ५ ॥

अत्रोपपत्ति ।

अथ स्पष्टकोटि^{2}—केन्द्रकोज्या^{2}+त्रि^{2}=स्पष्टको^{2}+त्रि^{2}—केकोज्या^{2} स्पष्टको^{2}+केज्या^{2}=कर्ण^2 मूलेन $\sqrt{\text{स्पको}^2\text{—केकोज्या}^2+\text{त्रि}^2}$=कर्ण ।

स्पष्टको^{2}—केन्द्रकोज्या^{2}+त्रि^{2}=कर्ण^2 प्रथमखण्डे वर्गान्तरस्य योगान्तरघातसमत्वात् (स्पष्टको+केकोज्या) (स्पको—केकोज्या)+त्रि^{2}=कर्ण^2 मूलग्रहणेन $\sqrt{(\text{स्पष्टको}+\text{केकोज्या})(\text{स्पष्टको}-\text{केकोज्या})+\text{त्रि}^2}$ कर्ण, अत्र प्रकारद्वये "विनैव बाहुज्याम्" यत्कथ्यते तत्समीचीन नास्ति तत्र प्रत्यक्षमेव केन्द्रज्या वर्गोऽस्त्येवेति ॥ ४ ५ ॥

पुन कर्णानयन करते हैं

हि. भा.—स्पष्ट कोटि और केन्द्र कोटिज्या के वर्गान्तर म त्रिज्यावर्ग जोडकर मूल लेने से केन्द्रज्या विना ही कर्ण होता है । वा स्पष्ट कोटि और केन्द्र कोटिज्या के योगान्तर घात म त्रिज्या वर्ग जोडकर मूल लेने से मकरादिकेन्द्र और कर्यादि केन्द्र मे कर्ण होता है ॥ ४ ५ ॥

उपपत्ति

स्पष्टकोटि^{2}—केन्द्रकोज्या^{2} + त्रि^{2}= स्पष्टको^{2} + त्रि^{2}—केकोज्या^{2}= स्पष्टको^{2}+केज्या^{2}=कर्ण^2 मूल लेने से $\sqrt{\text{स्पष्टको}^2\text{—केकोज्या}^2+\text{त्रि}^2}$=कर्ण

तथा स्पष्टको^{2}—केकोज्या^{2}+त्रि^{2}=कर्ण^2 प्रथमखण्ड म वर्गान्तर योगान्तर घात के बराबर होता है इस नियम से (स्पको+केकोज्या) (स्पको—केकोज्या)+त्रि^{2}=कर्ण^2 मूल लेने से $\sqrt{(\text{स्पको}+\text{केकोज्या})(\text{स्पको}-\text{केकोज्या})+\text{त्रि}^2}$=कर्ण, यहा दोनो प्रकार मे 'विनैव बाहुज्याम्' जो कहते हैं सो ठीक नहीं हैं वहा प्रत्यक्ष केन्द्रज्या वर्ग देखने म आता है । इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥ ४ ५ ॥

पुन कर्णानयनमाह ।

द्विघ्नाद्यज्याऽभ्यस्ता परमफलज्या मृगादिके योज्या ।
त्रिज्या परफलमौव्यो कृतियोगे कर्कटादिके शोध्या ॥ ६ ॥
केन्द्रे तस्मान्मूल कर्णो वा स्याद विनैव बाहुज्याम् ।

वि भा —मृगादिके केन्द्रे (मकरादिकेन्द्रे) द्विघ्नाग्रज्याऽभ्यस्ता परमफलज्या द्विगुणितकेन्द्रकोज्यागुणिताऽन्त्यफलज्या।) त्रिज्या परफलमौर्व्यो कृतियोगे (त्रिज्याऽन्त्यफलज्ययोर्वर्गयोगे) योज्या (सहिता) कर्कटादिके केन्द्रे (कर्क्यादि-केन्द्रे) शोध्या तस्मान्मूल वा बाहुज्या (केन्द्रज्या) विनैव कर्णो भवेदिति ॥

अस्योपपत्तिः

अथ पूर्वं सिद्ध यत् स्पष्टको^{2}+केज्या^{2}=कर्ण^2। पर मकरादिकर्क्यादिकेन्द्र-वशात् केकोज्या±अन्त्यफलज्या=स्पष्टाको

अतः (केकोज्या±अन्त्यफज्या)^2+केन्द्रज्या^{2}=कर्ण^2
=केकोज्या^{2}±२ केकोज्या. अ फज्या+अ फज्या^{2}+केज्या^{2}
=त्रि^{2}+अ फज्या^{2}±२ केकोज्या अफज्या=कर्ण^2 मूलग्रहणेन
$\sqrt{}$त्रि^{2}+अफज्या^{2}±२ केकोज्या. अफज्या=कर्ण । अत उपपन्नम् ॥६॥

पुन कर्णानयन करते हैं।

हि. भा —मकरादि केन्द्र द्विगुणित केन्द्र कोटिज्या गुणित अन्त्यफलज्या को त्रिज्या और अन्त्यफलज्या के वर्ग योग म जोडने से और कर्क्यादिकेन्द्र मे घटाने से मूल लेने पर केन्द्रज्या विना ही कर्ण होता है ॥

उपपत्ति।

पहले सिद्ध हो चुका है कि स्पष्ट को^{2}+केन्द्रज्या^{2}=कर्ण^2 इसलिए उत्थान देने से स्पष्टा को^{2}+केज्या^{2}= परतु मकरादि और कर्क्यादि केन्द्रवश से केकोज्या±अन्त्यफज्या=स्पष्टा को
(केकोज्या±अन्त्यफज्या)^2+केज्या^{2}=केकोज्या^{2}±२ केकोज्या अ फज्या+अ फज्या^{2}
+केज्या^{2}=त्रि^{2}+अ फज्या^{2}±२ केकोज्या अफज्या=कर्ण^2 मूल लेने से

$\sqrt{}$त्रि^{2}+अफज्या^{2}±२ केकोज्या अफज्या=कर्ण इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥६॥

इदानीं कर्णसम्बन्धेन केन्द्रकोटिज्यानयनमाह।

त्रिज्याऽन्त्यफलज्याकृतियुत्या श्रवणवर्गविवरं यत् ॥७॥
तद्दलितं प्रविभक्तं परफलमौर्व्याय कोटिजीवा स्यात्।
अपरेष्टश्रुतियोगात्तद्विवरघ्नात्पदं वा स्यात् ॥८॥

वि. भा.—त्रिज्यान्त्यफलज्याकृतियुत्या (त्रिज्याऽन्त्यफलज्ययोर्वर्गयोगेन) श्रवणवर्गविवरं यत् (कर्णवर्गस्य यदन्तर) तद्दलित (द्वाभ्या भक्त) परफलमौर्व्या विभक्त (अन्त्यफलज्यया भक्त) तदा कोटिजीवा (केन्द्रकोटिज्या) स्यात्। अपरेष्ट-श्रुतियोगात् केन्द्रज्याकर्णयोगात्) तद्विवरघ्नात् केन्द्रज्याकर्णयोरन्तरगुणितात्) पद (मूल) वा कोटिजीवा स्यादिति ॥८॥

अत्रोपपत्ति ।

पूर्वानीतकर्णवर्गस्वरूपम् = त्रि² + अफज्या² ± केकोज्या अफज्या = कर्ण² तथा कर्ण² − (त्रि² + अफज्या²) = त्रि² + अफज्या² ± २ केकोज्या. अफज्या − (त्रि² + अफ²) = त्रि² + अफज्या² ± २ केकोज्या अफज्या − त्रि² − अफज्या² = २ केकोज्या अफज्या (२ अफज्या) भक्तेन $\frac{२ \text{ केकोज्या अफज्या}}{२ \text{ अफज्या}}$ = केकोज्या

अथवा कर्ण² − केज्या² = स्पको² वर्गान्तरस्य योगान्तरघातसमत्वात् (कर्ण + केज्या) (कर्ण − केज्या) = स्पको² मूलेन स्पष्टकोटि । परमियं स्पष्टा कोटि । पूर्वं केन्द्रकोटिज्यामानमानीतमेतद्द्वयं सम नास्त्यत आचार्येण "पद वा स्यात्" यत्कथ्यते तत्समीचीनं न प्रतिभाति, 'वा' इति प्रकारान्तरद्योतक ॥७-८॥

कर्ण से केन्द्रकोटिज्यानयन करते हैं ।

हि भा —कर्ण वर्ग और त्रिज्या, अन्त्यफलज्या के वर्गयोगान्तर को दो और अन्त्यफलज्या से भाग देने से केंद्र कोटिज्या होती है । अथवा कर्ण और केंद्रज्या के योगांतर घात के मूल लेने से केंद्र कोटिज्या होती है ॥ ७ ८ ॥

उपपत्ति ।

पूर्वानीत कर्ण वर्ग = त्रि² + अफज्या² ± केकोज्या अफज्या इसको त्रि² + अफज्या² इसके साथ अंतर करने से ± २ केकोज्या अफज्या इसमें (२ अफज्या) से भाग देने से केकोज्या होती है । अथवा कर्ण² − केंद्रज्या² = स्पष्टको वर्गांतर योगांतर घात के बराबर होता है । इस नियम से (कर्ण + केज्या) (कर्ण − केज्या) = स्पको² मूल लने से स्पष्टकोटि होती है । यह स्पष्टा कोटि पूर्वानीत केंद्रकोटिज्या के बराबर नहीं है इसलिए पद्य में (पद वा स्यात्) यह ठीक नहीं मालूम होता है । (वा) यह प्रकारांतरसूचक है इति ॥८॥

पुनस्तदानयनद्वयमाह ।

कोटिभुजांतरनिघ्नो भुजाग्रयोगोद्भवस्तदूनयुते ।
कोटिभुजकृती द्विघ्ने तन्मूले स्तोऽथवा श्रवणौ ॥९॥

वि भा—भुजाग्रयोगोद्भव (भुजकोटियोगोत्पन्न) कोटिभुजान्तरनिघ्न (कोटिभुजान्तरगुणित) द्विघ्ने (द्विगुणिते) कोटिभुजकृती (कोटिभुजवर्गौ) तदूनयुते (तेन फलेन रहितसहिते) कार्ये तन्मूले अथवा श्रवणौ (कर्णौ) भवेतामिति ॥९॥

अत्रोपपत्ति ।

श्लोकोक्त्या को − भु = अन्तरम् । को + भु = योग

अन्तर × योग = (को − भु) (को + भु) = को² − भु² एतेन द्विगुणित भुजकोटिवर्गौ पृथक् युतोनौ तदा २ भु² + को² − भु² = भु² + को² = क² मूलेन कर्ण

स्यात् तथा २ को^{2}—(को^{2}—भु^{2})—२को^{2}=को^{2}+भु^{2}=को^{2}+भु^{2}=क^2 मूलेन कर्णो भवेदिति । अत्र को=स्पष्टा कोटि । भु=भुजज्या=केन्द्रज्या ।

अत उपपन्नम् ॥९॥

पुन दो प्रकार से कर्णानयन करते हैं।

हि. भा.—भुज और कोटि के योग को कोटिभुज के अन्तर से गुणाकर जो हो उसको द्विगुणित भुजवर्ग और द्विगुणित कोटिवर्ग मे घटाने और जोडने से उनके मूल लेने से दो प्रकार के कर्ण होते हैं ॥९॥

उपपत्ति

श्लोक के अनुसार

को—भु=अन्तर । को+भु=योग

∴ योग × अन्तर=(को+भु) (को—भु)=को^{2}—भु^{2} इसको द्विगुणितभुजवर्ग और द्विगुणित कोटिवर्ग मे जोडने और घटाने से

२ भु^{2}+को^{2}—भु^{2}=भु^{2}+को^{2}=कर्ण^2 मूल लेने से $\sqrt{\text{भु}^2+\text{को}^2}$ =कर्ण

तथा २ को^{2}—(को^{2}—भु^{2})=२ को^{2}—को^{2}+भु^{2}=को^{2}+भु^{2}=कर्ण मूल लेने से

$\sqrt{\text{को}^2+\text{भु}^2}$ =कर्ण । यहा को=स्पष्टा कोटि, भु=भुजज्या=केन्द्रज्या

इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥९॥

पुन प्रकारत्रयेण तदानयनमाह ।

निजयुतिहतभुजकोट्यो कोटिभुजे स्वान्तराहते स्वमृणम् ।
मूले श्रुती द्विगुणिताद् वधात्पद वाऽन्तरकृतियुतात् ॥१०॥

वि भा—निजयुतिहतभुजकोट्यो (भुजकोटियोगगुणितभुजकोटिप्रमाणे) स्वान्तराहते (स्वयोरन्तर (भुजकोट्यन्तर) गुणिते) कोटिभुजे स्वमृण (धन हीन) मूले तदा श्रुती (कर्णो) भवत । वा अन्तरकृतियुतात् (भुजकोट्यन्तर वर्गयुतात्) द्विगुणिताद् वधात् (द्विगुणितभुजकोटिघातात्) पद मूल कर्ण स्यादिति ॥१०॥

अत्रोपपत्ति ।

श्लोकोक्त्या	को (भु+को)=को भु+को^{2}
भु (भु+को)=भु^{2}+भु को	भु (को—भु)=भु को—भु^{2}
को (को—भु)=को^{2}—को भु	अनयोरन्तरेण
ततोऽनयोर्योगेन भु^{2}+भु को+को^{2}—को भु=भु^{2}+को^{2}=कर्ण^2	को भु+को^{2}—भु को+भु^{2}=को^{2}+भु^{2}=कर्ण^2
मूलेन $\sqrt{\text{भु}^2+\text{को}^2}$=कर्ण	मूलेन $\sqrt{\text{को}^2+\text{भु}^2}$=कर्ण

तथा द्विगुणिताद्वधादित्याद्यनुसारेण २ भु को + (को—भु)^2 = २भु. को + को^{2}—२ भु को + भु^{2} = को^{2} + भु^{2} = कर्ण^2

मूलेन $\sqrt{को^2 + भु^2}$ = कर्ण । अत्रापि को = स्पष्टा कोटि ।
भु = केन्द्रज्या

एतावताऽऽचार्योक्तमुपपन्नम् ॥१०॥

पुन तीन प्रकार से कर्णानयन करते हैं ।

हि भा—भुज और कोटि के योग से गुणित भुज और कोटि में अन्तर (भुज कोटि के अन्तर) गुणित कोटि और भुज को जोड़ने और घटाने से जो होते हैं उनके मूल लेने से दो प्रकार के कर्ण होते हैं । अथवा भुज और कोटि के अन्तर वर्ग करके युत द्विगुणित भुज और कोटि के घात के मूल कर्ण होता है ॥१०॥

उपपत्ति

श्लोकोक्ति के अनुसार

भु (भु + को) = भु^{2} + भु को

को (को—भु) = को^{2}—को भु

दोनों के योग करने से

भु^{2} + भु को + को^{2}—को भु = भु^{2} + को^{2}

= कर्ण^2 मूल लेने से $\sqrt{भु^2 + को^2}$ = कर्ण

को (भु + को) = को भु + को^{2}

भु (को—भु) = को भु—भु^{2}

दोनों के अन्तर करने से

को भु + को^{2}—को भु + भु^{2} = को^{2} + भु^{2}

= कर्ण^2

मूल लेने से $\sqrt{को^2 + भु^2}$ = कर्ण

तथा 'द्विगुणिताद्वधात्पदम्' इत्यादि के अनुसार

२भु को + (को—भु)^2 = २ भु. को + को^{2}—२ को भु + भु^{2} = को^{2} + भु^{2} = कर्ण^2

मूल लेने से $\sqrt{को^2 + भु^2}$ = कर्ण

को = स्पष्टा कोटि । भु = केन्द्रज्या

इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥१०॥

इदानीं कर्णानयनमुक्त्वा ग्रहमध्यमसंस्कारार्थमाह ।

त्रिज्याहता भुजज्या कर्णहृता तस्य कार्मुकं तु फलम् ।
देयं मध्ये शोध्यं शीघ्रोच्चे स्यात्स्फुटो द्युचर ॥११॥

वि भा—भुजज्या (शीघ्रकेन्द्रज्या) त्रिज्याहता (त्रिज्यागुणिता) कर्ण-हृता (कर्णभक्ता) यत्फलं तस्य कार्मुक (चाप) मध्ये (मन्दोच्चे) देय (योज्य) शीघ्रोच्चे शोध्य तदा स्फुट द्युचर (ग्रह) स्यादिति ॥११॥

यदि मन्दस्फुट चिकीर्षित तदा मन्दकेन्द्रवशेन पूर्ववद्भुजज्याकोटिज्ये साध्ये तत कोट्यन्त्यफलज्ययोरैक्यान्तर स्फुटा कोटि कार्या तद्वर्गभुजज्या वर्ग-योर्योगमूल मन्दकर्ण स्यात् ततस्त्रिज्या स्वकेन्द्रभुजज्यया सगुण्य पूर्वोक्तकर्णेन भक्ता फलस्य चाप यदि प्रथमपदे केन्द्र तदा स्वमन्दोच्चे योजयेत् । यतस्तावदेव

मन्दोच्चमन्दस्फुटयोरन्तर तदा मन्दोच्च मन्दस्फुटसम भवति । द्वितीयपदे केन्द्र चेत्तदा लब्धचाप चक्रार्धाद्विशोध्य शिष्ट मन्दोच्चे योजयेत् । यतस्तावदन्तर मन्दोच्चमन्दस्फुटयोस्तदा मन्दोच्चमन्दस्फुटो तुल्यो भवत । तृतीयपदे केन्द्र चेत्तदा राशिपट्क तत्र योजयेत् मन्दोच्चमन्दस्फुटयोस्तावदन्तरत्वात्, ततश्च तौ समौ स्याताम् चतुर्थपदे चेत्केन्द्र तदा चक्राद् विशोध्य शेष मन्दोच्चमन्दस्फुटयोरन्तर तन्मन्दोच्चे योजयेत्तदा मन्दोच्च मन्दस्फुटसम भवेत् ।

अथ शीघ्रस्फुट चिकीर्षित तदा शीघ्रकेन्द्रात् शीघ्रोपकरणैं कर्णमानीय तेन शीघ्रकेन्द्रज्या सगुण्य त्रिज्यया विभज्य लब्धस्य चाप शीघ्रकेन्द्र प्रथमपदे चेत् शीघ्रोच्चाद् विशोधयेत् तदा शीघ्रोच्च शीघ्रस्फुटसम स्यात् यतस्तावत्तयोरन्तरम् । द्वितीयपदे केन्द्र चेत् लब्धचाप चक्रार्धाद् विशोध्य शीघ्रोच्चात्त्यजेत् तदा तौ समौ भवेताम् । तृतीयपदे केन्द्र चेत्तदा तयोस्तुल्यत्व भवेत् । चतुर्थे पदे केन्द्र चेल्लब्धचाप चक्राद्विशोध्यशेष शीघ्रो चाद् विशोधयेत्तदा तयोस्तुल्यत्व भवेदिति ॥११॥

कर्णानयन कहकर ग्रहमध्यम सस्कारार्थ कहते हैं।

हि. भा —भुजज्या को त्रिज्या से गुणकर कर्ण से भाग देने पर जो फल होता है उसके चाप को मन्दोच्च मे जोडने से शीघ्रोच्च में घटाने से स्पष्टग्रह होते है ॥११॥

उपपत्ति

यदि मन्दस्पष्ट ग्रह अपेक्षित हो तब मन्दकेन्द्रवश से पूर्ववत् भुजज्या, कोटिज्या करके तब केन्द्रकोटिज्या और अन्त्यफलज्या के योगान्तर रूप स्पष्टकोटि, तथा भुजज्या के वर्ग योगमूल कर्ण होता है, तब त्रिज्या को केन्द्रज्या से गुणाकर पूर्वोक्त कर्ण से भाग देने से जो फल होता है उसके चापको यदि केन्द्र प्रथम पद मे है तो स्वमन्दोच्च मे जोड देना, क्योंकि मन्दोच्च और मन्दस्पष्ट का अन्तर उतना ही है तब मन्दोच्च मन्दस्पष्ट बराबर होता है । द्वितीयपद मे केन्द्र रहने से लब्धचाप को चक्रार्ध (६ राशि) मे घटा कर जो शेष रहता है उसको मन्दोच्च मे जोडना चाहिये । तृतीय पद मे केन्द्र रहने से उसमे छ राशि जोडना चाहिये क्योंकि *मन्दोच्च और मन्दस्पष्ट का अन्तर वहा छ राशि चतुर्थ पद मे केन्द्र रहने से चक्र (१२ राशि)* मे घटा देने से शेष मन्दोच्च और मन्द स्फुट ग्रह को अन्तर होता है उसको मन्दोच्च मे जोडने से मन्दस्फुट होता है ॥

यदि शीघ्र स्फुट अपेक्षित है तो शीघ्रकेन्द्र से शीघ्रकर्णोपयुक्त सामग्रियो द्वारा कर्ण साधन कर उससे शीघ्रकेन्द्रज्या को गुणकर त्रिज्या से भाग देने से जो फल होता है उसके चाप स्पष्टकेन्द्र होता है । प्रथम पद मे शीघ्रकेन्द्र रहने से लब्धचाप को शीघ्रोच्च मे घटा देना तब शीघ्रोच्च और शीघ्र स्फुट बराबर होगे । द्वितीय पद मे शीघ्र केन्द्र रहने से पूर्वानीत लब्ध चाप को छ राशि मे घटा देने से जो शेष रहता है उसको शीघ्रोच्च मे घटा देना चाहिए । तब वे दोनों बराबर होगे । तृतीय पद मे शीघ्र केन्द्र रहने से शीघ्रोच्च मे छ राशि को घटाने से दोनों की तुल्यता होती हैं । चतुर्थ पद मे शीघ्र केन्द्र रहने से आनीत लब्ध चाप को

बारह राशि में घटा कर जो शेष रहे उसको शीघ्रोच्च म घटाना चाहिये तब दोनों की तुल्यता होती है ।।११।।

इदानी देय मध्ये शोध्यमित्यादे स्पष्टीकरणमाह ।

अविकृतः प्रथमे चरणे भगणदलाच्छोधितं द्वितीयेऽस्मिन् ।
षड्गृहयुतं तृतीये भगणाच्छुद्धं चतुर्थपदे ।।१२।।

वि भा.—प्रथमचरणे अविकृत एवार्थात् यथागतमेव बोध्यम् । द्वितीयेऽस्मिन् पादे भगणदलात् (शशिषट्कात्) त्रिज्याहृरा भुजज्येत्यादिनाऽऽनीतफलचाप शोधित तृतीयपादे षड्गृहयुत (षड्राशियुत) चतुर्थपदे भगणाच्छुद्ध (द्वादशराशित शुद्ध) कार्यमिति ।।

एतस्य सर्वे विषया पूर्वश्लोकभाष्ये विशदरूपेण वर्णिता सन्ति, तत एव ज्ञातव्या ।।१२।।

अब 'देय मध्येशोध्य' इत्यादि का स्पष्टीकरण कहते हैं ।

हि भा—पूर्व श्लोक से समागत चाप प्रथम पद मे ज्यो का त्यो होता है, द्वितीय पद मे छ राशि मे घटाना चाहिये, तृतीय पद मे छ राशि जोडना और चतुर्थ पद मे बारह राशि मे घटाना चाहिये ।

इसके विषय मे सब बातें पूर्वश्लोक के भाष्य मे विशद रूप से कही गई है इसलिए वही मे जाननी चाहियें ।।१२।।

इदानी पदज्ञानार्थमाह ।

अग्न्यान्त्यफलज्यातो यदि पतति तदा प्रथमचरणे ।
सैवाद्यज्या ततश्चे त्पतति तदा मध्यमे ज्ञेयः ।।१३ ।
मध्यपदे वा परफलरहिते तथाऽधिके शेषे ।
पदसंज्ञाश्चामीभि फलावगतिरुत्तरत्रान्यत् ।।१४।।
स्पष्टार्थो ।।

इदानी ग्रहस्पष्टगतेरानयनमाह ।

निजफलभोज्यज्याघ्नो केन्द्रगतिश्चाद्यजीवया भक्ता ।
त्रिज्याघ्नी कर्णहृता लब्धेनोनास्वशीघ्रमन्दगति ।। १५ ।।
स्पष्टा भुक्तिद्युं सदां विपरीतविशोधनाच्च वक्रत्वम् ।
नोचासन्ने ज्ञेया विलोमगतिसम्भावना विज्ञैः ।। १६ ।।

वि भा—केन्द्रगति (शीघ्रकेन्द्रगति) निजफलभोज्यज्याघ्नो (निजफलभोज्यज्यया ग्रहस्य स्फुटीक्रियमाणस्य यच्छीघ्रफल भवति तस्य फलज्याया क्रियमाणाया यद् ज्यान्तर सा फलभोज्यज्या तया गुणिता) आद्यजीवया (प्रथम-

ज्यया) भक्ता, सा त्रिज्याघ्नी (त्रिज्यया गुणिता) कर्णाहृता (कर्णेनभक्ता) लब्धेन ऊना (रहिता) स्वशीघ्रतुङ्गगति (शीघ्रोच्चगति) तदा द्यु सदा (ग्रहाणा) स्पष्टा-भुक्ति (स्पष्टा गति) भवेत्। विपरीतशोधनात् (शीघ्रोच्चगतिरहिताल्लब्धात्) वक्रत्व (वक्रता) भवेत्। नीचासन्ने (नीचसमीपे द्वितीयपदे) विलोमगतिसम्भावना (वक्रगतिसम्भावना) विज्ञ र्ज्ञेयेति ॥ इयमेवोपपत्तिर्मन्दस्पष्टगत्यानयनेऽपि केवल केन्द्रगतिकर्णयो पार्थक्यमस्ति तत्स्थाने तत्केन्द्रगति कर्णश्च ग्राह्य इति ॥ १५-१६ ॥

अत्रोपपत्ति ।

$$\text{अथ} \frac{\text{शीकेन्द्रज्या त्रि}}{\text{शीक}} = \text{स्पकेज्या । एव} \quad \frac{\text{शी'केज्या त्रि}}{\text{शीक}} = \text{स्प'केज्या}$$

अनयोरन्तरेण

$$\frac{\text{त्रि (शी'केज्या} \sim \text{शीकेज्या)}}{\text{शीक}} = \text{स्प'केज्या} \sim \text{स्पकेज्या} = \frac{\text{त्रि} \times \text{शीघ्रकेज्यान्तर}}{\text{शीक}}$$

$$\text{परन्तु} \quad \frac{\text{स्पभोख} \times \text{शीकेग}}{\text{प्रज्या}} = \text{शीकेग सज्यावृद्धि} = \text{शीघ्रकेन्द्रज्यान्तर}$$

तत उत्थापनेन

$$\frac{\text{त्रि स्पभोख शीकेग}}{\text{प्रज्या शीक}} = \text{स्पष्टकेन्द्रज्यान्तर} = \text{स्पष्टकेन्द्रान्तर} = \text{स्पष्टकेन्द्रगति}$$

(स्वल्पान्तरात्)

$$\begin{matrix} \text{शीउ} \pm \text{स्पग्र} = \text{स्पष्टके} \\ \text{शीउ'} \pm \text{स्प'ग्र} = \text{स्प'के} \end{matrix} \ \text{अनयोरन्तरेण शीउग} - \text{स्पष्टग्रग} = \text{स्पकेग}$$

$$\text{तत शीउग} - \text{स्पष्टकेग} = \text{स्पग्रग} = \text{शीउग} - \frac{\text{त्रि स्पभोख शीकेग}}{\text{प्रज्या शीक}}$$

यदि च शीघ्रोच्चगतिमाने स्पष्टकेन्द्रगतिर्न शुद्ध्येत्तदा विलोमशोधनेन स्पष्टा गति क्षयात्मिका भवेत्सैव वक्रगति ॥ पूर्वानीतस्पष्टकेन्द्रगतिस्वरूपे हरे शीघ्रकर्णोऽस्ति तेन शीघ्रकर्णस्य परमाल्पत्वे स्पष्टकेन्द्रगतेराधिक्याच्छीघ्रोच्चगतितोऽधिकत्वसम्भावनाया ग्रहस्फुटगते विलोमदिक्त्वाद् वक्रता, युक्ता, परमिय स्थितिर्नीचासन्ने द्वितीयपदे भवेदत आचार्योक्तमुपपन्नम् । आचार्योक्तस्पष्टकेन्द्रगतेरानयन न समीचीनमिति तदुपपत्तिदर्शनेनैव स्फुटम् । सिद्धान्तशेखरे श्रीपतिनाऽपि ग्रहस्पष्टकेन्द्रगतिसाधन समीचीन न कृत, भास्कराचार्येण सिद्धान्तशिरोमणौ 'फलांशखाङ्कान्तरशिञ्जिनीघ्नी' - त्यादिना समीचीन स्पष्टकेन्द्रगतिसाधन कृतमिति ॥ १५-१६ ॥

अब ग्रहो क स्पष्टगत्यानयन करते हैं।

हि भा —शीघ्रकेन्द्रगति को भोग्यखण्ड (स्पष्टभोग्यखण्ड से) गुणकर प्रथमज्या से भाग देना, जो फल हो उसको त्रिज्या से गुणकर कर्ण से भाग देने से जो फल हो उसको

शीघ्रकेन्द्रगति में घटा देने से ग्रहों की स्पष्टगति होती है। विलोमशोधन में अर्थात् शीघ्रोच्च-गति आनीतफल (स्पष्ट केन्द्रगति) में घटाने से वक्रगति होती है। विपरीतगति की सम्भावना नीच के आसन्न में समझनी चाहिये ॥ १४-१५ ॥

उपपत्ति

$$\frac{\text{शीकेज्या त्रि}}{\text{शीक}}=\text{स्पकेज्या। तथा}\quad\frac{\text{शी}'\text{केज}}{\text{शीक}}=\text{स्प}'\text{केज्या}$$

दोनों के अन्तर करने से

$$\frac{\text{त्रि}}{\text{शीक}}(\text{शी}'\text{केज्या}\sim\text{शीकेज्या})=\frac{\text{त्रि}\times\text{शीकेज्यान्तर}}{\text{शीक}}=\text{स्प}'\text{केज्या}\sim\text{स्पकेज्या}$$

$$\text{परन्तु}\quad\frac{\text{स्पभोज्य शीकेग}}{\text{प्रज्या}}=\text{शीघ्रकेगतिस ज्यावृद्धि}=\text{शीघ्रकेन्द्रज्यान्तर}$$

उत्थापन देने से

$$\frac{\text{त्रि स्पभोख शीकेग}}{\text{प्रज्या शीक}}=\text{स्प}'\text{केज्या}\sim\text{स्पकेज्या}=\text{स्प}'\text{के}\sim\text{स्पके}=\text{स्पष्टकेन्द्रगति}$$

(स्वल्पान्तर से)

$$\text{शीउ}\pm\text{स्पष्टग्र}=\text{स्पष्टके}$$
$$\text{शीउ}'\pm\text{स्प}'\text{ष्टग्र}=\text{स्प}'\text{क}\quad\text{द्वयोरन्तरेण}$$
$$\text{शीउग}-\text{स्पग}=\text{स्पकेग}\quad\text{शीउग}-\text{स्पकेग}=\text{स्पग}$$
$$=\text{शीउग}-\frac{\text{त्रि स्पभोख शीकेग}}{\text{प्रज्या शीक}}=\text{स्पग}$$

यदि शीघ्रोच्चगति में स्पष्ट केन्द्रगति न घटे , विलोम शोधन से ऋणात्मक स्पष्ट-गति होती है वही वक्रगति है। पहले लाई हुई स्पष्ट केन्द्रगति स्वरूप में हर में जो शीघ्रकर्ण है उसका मान जब परमाल्प होगा (नीचस्थान में) तब स्पष्टकेन्द्रगति के मान अधिक होने के कारण शीघ्रोच्चगति में न घटे इसकी सम्भावना हो सकती है अत वहीं पर (नीचा-सन्न में क्योंकि कर्ण नीच स्थान से पहले से घटते घटते नीच स्थान में परमाल्प हो जाता है) ग्रह की वक्रता होना युक्तियुक्त है। इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ। आचार्योक्त स्पष्ट केन्द्र गति को आनयन ठीक नहीं है यह स्पष्ट केन्द्रगति के आनयन देखने ही से स्पष्ट है। सिद्धान्तशेखर में श्रीपति ने भी स्पष्टकेन्द्रगति के साधन ठीक नहीं किये हैं। सिद्धान्त-शिरोमणि में भास्कराचार्य ने 'फलांशखाङ्कान्तरशिञ्जिनीघ्नी' इत्यादि से उसका साधन युक्ति-युक्त किया है। यही उपपत्ति मन्द स्पष्ट गति के लिए भी है केवल केन्द्रगति और कर्ण के स्थान पर तत्तत्र केन्द्रगति और कर्ण लेना चाहिए ॥१५-१६॥

इदानीं पुनर्मन्दफलानयनं शीघ्रफलानयनं चाह।

यत्मन्ददोर्गुणोवा निजान्त्यफलजीवया हतौ भक्तौ।
कर्णव्यासार्धाभ्यां फलधनुषी शीघ्रमन्दजे फले स्याताम् ॥१७॥

वि. भा.—वा चलमन्ददोर्गुणौ (शीघ्रकेन्द्रज्या मन्दकेन्द्रज्ये) निजान्त्यफलजीवया (शीघ्रान्त्यमन्दान्त्यफलज्याभ्या) हतौ (गुणितौ) कर्णव्यासार्धाभ्या (कर्णत्रिज्याभ्या) भक्तौ फलधनुषी (फलयोश्चापे) शीघ्रमन्दजे फले (शीघ्रफलमन्दफले) स्यातामिति ॥१६॥

अत्रोपपत्तिः

चित्रम् द्वितीयश्लोकोपपत्तिस्थ द्रष्टव्यम् । $\frac{\text{शीघ्रान्त्यफज्या शीकेज्या}}{\text{शीकर्ण}}$ = शीघ्रफलज्या।

अस्याश्चापम् = शीफलम् । तथा $\frac{\text{मकेज्या. मन्दान्त्यफज्या}}{\text{त्रि}}$ = मभुजफलम् ।

अस्य चापम् = मन्दफलम् । एतावताऽऽचार्योक्तमुपपन्नम् ॥१७॥

अब पुन मन्दफलानयन और शीघ्रफलानयन कहते है।

हि. भा.—शीघ्र केन्द्रज्या और मन्दकेन्द्रज्या को अपनी अपनी अन्त्यफलज्या से गुणाकर, कर्ण और त्रिज्या से भाग देने से जो फलद्वय होते है उनके चाप शीघ्रफल और मन्दफल होते हैं ॥१६॥

उपपत्ति

द्वितीयश्लोक का उपपत्तिस्थ चित्र देखिये । $\frac{\text{शीकेज्या. शीघ्रान्त्यफज्या}}{\text{शीकर्ण}}$ = शीफज्या ।

इसके चाप करने से शीघ्रफल होता है। तथा $\frac{\text{मकेज्या मन्दान्त्यफज्या}}{\text{त्रि}}$ = मभुजफल इसके

चाप = मन्दफल । इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥१७॥

इदानीं स्पष्टग्रहान्मध्यग्रहानयनमाह ।

शीघ्रात्स्पष्टग्रहोनाच्चलफलमखिलं खेचरः स्यादनष्टे
व्यत्यासात्स्पष्टसंज्ञे धनमृणमसकृत् स्यान्मृदुस्पष्टसंज्ञः ।
तस्मान्मन्दोच्चहीनान्मृदुफलमपि च व्यत्ययादेव कृत्स्नं
तत्रानेष्टक्षयस्व गदितवदसकृन्मध्यमोऽन्यश्च तस्मात् ॥१८॥

वि. भा.—स्पष्टग्रहोनात् शीघ्रात् (स्पष्टग्रहरहितात् शीघ्राच्चात्) अखिल चलफल (सम्पूर्णं शीघ्रफल) अनष्टे स्पष्टसज्ञे (यथास्थानस्थिते स्पष्टग्रहे) व्यत्यासात् (विलोमात्) धनमृण कार्यं (शीघ्रफल धन चेदृण, ऋणं चेद्धन कार्यं, एवमसकृत्तदा मृदुस्पष्टसज्ञः (मन्दस्पष्ट.) खेचरः (ग्रहः) स्यात् । मन्दोच्चहीनात्तस्मात् मन्दोच्चरहितामन्दस्पष्टग्रहात् कृत्स्नं मृदुफल (सम्पूर्णं मन्दफलं) व्यत्ययादेव (विलोमादेव) गदितवत् (कथितमार्गेण) अनेष्टक्षयस्व (यथास्थमृण धनं) तत्र मन्दस्पष्टग्रहे कार्यम् एवमसकृत्तदामध्यमः ग्रहः स्यात् । तस्मान्मध्यमग्रहादन्यदिति ॥१८॥

[अत्रोपपत्ति.

शीघ्रोच्चस्फुटग्रहयोरन्तरं मन्दस्पष्टग्रहार्थमुपयुक्तं शीघ्रकेन्द्र नास्त्यतः प्रथम मन्दस्पष्टग्रहतुल्यमेव स्फुटग्रह मत्वा ततो यथोक्तरीत्या शीघ्रफलमानीय तच्च स्फुटग्रहे व्यस्तेन संस्कार्यं (शीघ्रफलं चेद्धनं तदा ऋणं चेद् धनं) एवमसकृत् तदा स्पष्टग्रहाच्छीघ्रफलेनान्तरितो, वास्तवमन्दस्पष्टग्रहो भवेत्। एतस्मात्समागताद् वास्तवमन्दस्पष्टग्रहान्मन्दफलं साध्यं तस्यावास्तवत्वात्तज्जनितमन्दफलस्यावास्तवत्वात्तेन विलोमसंस्कृतो वास्तवमन्दस्पष्टग्रहोऽवास्तवमध्यमग्रह एवमसकृत्करणेन वास्तवमध्यमग्रहो भवेदिति। अन्यैः प्राचीनैरपि स्पष्टग्रहान्मध्यग्रहानयनमसकृत्प्रकारेण कृत, सिद्धान्तशिरोमणेष्टिप्पण्या सशोधकेन रविचन्द्रयोः स्पष्टादन्येषां मन्दस्फुटादेव सकृत्प्रकारेणैव मन्दफलानयनं कृतमिति ॥१८॥

इति वटेश्वरसिद्धान्ते स्पष्टाधिकारे प्रतिमण्डलस्पष्टीकरणविधिस्तृतीयो ऽध्यायः समाप्त.।

अब स्पष्टग्रह से मध्यमग्रहानयन कहते हैं।

हि भा—स्पष्टग्रह करके रहित शीघ्रोच्च से जो शीघ्रफल हो उसको स्पष्ट ग्रह में विलोम (उलटा) संस्कार करना यानि शीघ्रफल धन रहे तो स्पष्ट ग्रह में ऋण करना, शीघ्रफल ऋण रहे तो स्पष्ट ग्रह में धन करना। इस तरह बार-बार करने से मन्द स्पष्ट ग्रह होते हैं। मन्दोच्चरहित मन्द स्पष्ट ग्रह मन्दफल साधन करना, उस सम्पूर्ण मन्दफल को मन्द स्पष्टग्रह में विलोम (मन्दफल धन रहने से मन्द स्पष्ट ग्रह में ऋण, और मन्दफल ऋण रहने से मन्दस्पष्ट ग्रह में धन) संस्कार करना, इस तरह बार-बार करने से मध्यम ग्रह होते हैं। उस मध्यमग्रह से अन्य बातें जानना ॥१८॥

उपपत्ति

शीघ्रोच्च और स्फुट ग्रह के अन्तर मन्द स्पष्ट ग्रह के लिये उपयुक्त शीघ्रकेन्द्र नहीं है इसलिये मन्द स्पष्ट ग्रह तुल्य स्फुटग्रह को मानकर यथोक्तरीति से शीघ्रफल साधन कर स्फुटग्रह में विलोम संस्कार (शीघ्रफल धन रहने से ऋण, ऋण रहने से धन) करने से अवास्तव मन्दस्पष्ट ग्रह होता है इस तरह बार-बार करने से वास्तवमन्द स्पष्टग्रह होते हैं। इस मन्द स्पष्टग्रह से जो मन्द फल होगा सो अवास्तविक होगा, उसको मन्द स्पष्टग्रह में विलोम संस्कार करने से अवास्तव मध्यम ग्रह होते हैं, इस तरह बार-बार करने से वास्तव मध्यम ग्रह होते हैं। स्पष्टग्रह से मध्यमग्रहानयन के लिये सब प्राचीनाचार्यों ने असकृत्कर्म किये हैं सिद्धांतशिरोमणि की टिप्पणी में संशोधक रवि और चन्द्र के लिए स्पष्ट से अन्य ग्रहों के लिए मन्द स्पष्ट से सकृत् प्रकार से मन्द फलानयन किये हैं ॥१८॥

इति वटेश्वरसिद्धांत में स्पष्टाधिकार में प्रतिमंडल स्पष्टीकरणविधि नामक तृतीय अध्याय समाप्त हुआ।

चतुर्थोऽध्यायः

स्फुटीकरणम्

अथ ज्याखण्डैर्विना स्फुटीकरणमाह ।

त्रिज्याशकलैद्युसदां स्पष्टीकरणं मयेरितं विधिवत् ।
अधुना विनैव मौर्वीशकलैर्वक्ष्ये स्फुटीकरणम् ॥१॥

वि.भा—द्युसदां (ग्रहाणां) स्पष्टीकरणं त्रिज्याशकलैः (त्रिज्याव्यासार्धे) विधिवत् (यथोचितविधिना) मया ईरितं (कथितम्) अधुना (इदानीं) मौर्वी-शकलैर्विना (ज्यार्धैर्विना) स्फुटीकरणं वक्ष्ये ॥१॥

हि.भ—ग्रहों के स्पष्टीकरण त्रिज्याव्यासार्ध से विधिपूर्वक मैंने कहे अब बिना ज्या के स्पष्टीकरण कहता हूं ॥१॥

इदानीं ज्याभिर्विनाभुजज्यानयनमाह ।

चक्रार्धांशाः भुजांशैर्विरहितनिहतास्तद्विहीनैर्विभक्ता,
खव्योमेष्वभ्रवेदैः सलिलनिहताः पिंडराशिः प्रदिष्टः ।
षड्भागघ्ना भुजांशा निजकृतिरहितास्तत्तुरीयांशहीनै-
र्भक्ताः स्यात्पिंडराशिर्विशिखनयनभूव्योमशीतांशुभिर्वा ॥२॥

वि भा—भुजांशैर्यदोया जीवाऽपेक्षितास्तैर्विरहितनिहताश्चक्रार्धांशाः (खना-गेन्दवो भुजांशैरूना गुणिताश्च) सलिलनिहताः (चतुर्भिर्गुणिताः) तद्विहीनैः पूर्वोक्तभुजांशरहितगुणितभार्धांशरहितैः) खव्योमेष्वभ्रवेदैः (४०५०० एभिरङ्कैः) विभक्तास्तदा पिण्डराशिः प्रदिष्टः (कथितः) वा (अथवा षड्भागघ्ना भुजांशाः (१८० एतद्गुणितभुजांशाः) निजकृतिरहिताः (भुजांशवर्गहीनाः) तत्तुरीयांश-हीनैः (तदीयचतुर्थांशरहितैः) विशिखनयनभूव्योमशीतांशुभिः (१०१२५ एभिः) भक्तास्तदा पिण्डराशिः (भुजज्या) भवेदिति ॥२॥

अत्रोपपत्तिः ।

यदि व्यासार्धे भुजज्या तदा द्विगुणव्यासार्धे वा लब्धा द्विगुणव्यासार्धे भुजज्या $= \frac{\text{ज्याभु}\ २\ \text{व्याद}}{\text{व्याद}} = २$ ज्याभु, अत कस्मिन्नपि व्यासार्धे द्विगुणभुजांशानां या पूर्णज्या सैव द्विद्गुणतव्यासार्धे भुजज्या भवतीति । परिव्यासार्धे द्विगुणभुजा

शाना पूर्णज्यासाधनार्थं स्वल्पान्तराद्व्यासस्त्रिगुण परिधि =३६०, चक्रांशैश्चक्रसमचापीयमान लभ्यते तदा द्विगुणभुजांशै किं लब्ध तच्चापमानम्=२ भु । तत "चापोननिघ्नपरिधि प्रथमाह्वय स्यादि"त्यादि विधिना खार्कव्यासार्धे द्विगुणभुजांशपूर्णज्या जाता. खार्कमितत्रिज्यायां भुजज्या

$$=\frac{(३६०-२भु)\,२\,भु\times४\times१२०}{३६०^२\times\frac{५}{४}-(३६०-२भु)२भु}=\frac{१८०-भु\times१६\times१२०}{\frac{३८०\times३६०\times५}{४}-(१८०-भु)भु\times४}$$

$$=\frac{(१\ ०-भु)\,भु\ १२०}{\frac{६०\times३६०\times५}{१६}-\frac{(१८०-भु)\,भु}{४}}=\frac{(१८०-भु)भु\times१२०}{४५\times४५\times५-\frac{(१८०-भु)भु}{४}}$$

$$=\frac{(१८०-भु)\,भु\times१२०}{१०१२५-\frac{(१८०-भु)\,भु}{४}}$$ यदि खार्कं मितत्रिज्यायामियं भुजज्या तदेष्ट-

त्रिज्याया किमिति जाता भुजज्या$=\frac{(१८०-भु)\,भु\,त्रि(^१)}{१०१२५-\frac{(१८०-भु)\,भु}{४}}$

$=\frac{(१८०-भु)\,भु\ \ त्रि\times४}{४०५००-(१८०-भु)भु}$ अत्र त्रिज्या=१ तदा $\frac{(१८०-भु)\,भु\ ४}{४०५००-(१८०-भु)भु}$

=भुजज्या। अथ $\frac{(१८०\ \ भु)\,भु\ त्रि}{१०१२५-\frac{(१८०-भु)\ भु}{४}}=\frac{(१८०\times भु-भु^२)\ त्रि}{१०१२५-\frac{(१८०\times भु-भु^२)}{४}}$

$=\frac{१८०\times भु-भु^२}{१०१२५-\frac{(१८०\times भु-भु^२)}{४}}$=भुजज्या=पिण्डराशि ।

कोटिचापवशादेवमेव कोटिज्येति । एतावताऽऽचार्योक्तमुपपन्नम् ॥२॥

(१) एतेन सिद्धान्तशेखरे श्रीपतिनोक्त "दो कोटिभागरहिताभिहता खनागचन्द्रास्तदीयचरणोनशराब्धिदिग्भि । तैर्व्यास खण्डगुणिता विहृता फले तु ज्याभिर्विनव भवतो भुजकोटिजीवे" । उपपद्यते ।

श्रीपतिप्रकारस्यास्य मूल वटेश्वरोक्तप्रकार एवेति विद्वद्भिर्विविच्य ज्ञेयमिति ॥२॥

अब विना ज्या के भुजज्यानयन कहते हैं ।

हि भा —जिस भुजांश की जीवा (ज्या) अपेक्षित है उससे रहित और गुणित भार्धांश को चार से गुणाकर उससे (भुजांश रहित और भुजांश स गुणित भार्धांश) रहित ४०५०० इतने अंक म भाग देने से पिण्डराशि (भुजज्या) होती है। १८० इतने से

गुणित भुजांश मे भुजांश वर्ग घटाकर चार से भाग देने से जो फल हो उसको १०१२५ इनमे घटाकर उसमे (१८० गुणित भुजांश मे भुजांशवर्ग घटा हुआ) भाग देने से पिण्डराशि (भुजज्या) होती है ॥२॥

उपपत्ति

यदि व्यासार्ध मे भुजज्या पाते हैं तो द्विगुणित व्यासार्ध मे क्या इस अनुपात से द्विगुणित व्यासार्ध मे भुजज्या आवेगी $\frac{\text{ज्याभु}\ \text{२ व्याद}}{\text{व्याद}} = \text{२ ज्याभु}$ । इससे यह सिद्ध हुआ कि किसी व्यासार्ध मे द्विगुणित भुजांश की जो पूर्णज्या होती है वही द्विगुणित उस व्यासार्ध मे भुजज्या होती है। साठ (६०) व्यासार्ध मे द्विगुणित भुजांश की पूर्णज्या साधन के लिए स्वल्पान्तर से त्रिगुणित व्यास के बराबर परिधि=३६०, अब अनुपात करते हैं चक्रांश मे चक्रपम चापीयमान पाते हैं तो द्विगुणित भुजांश मे क्या आ जायगा, चापमान=२ भु, तब 'चापोननिघ्नपरिधि प्रथमाह्वय स्यात्' इत्यादि नियम से १२० त्रिज्या मे द्विगुणभुजांश पूर्णज्या आ जायगी, १२० त्रिज्या में भुजज्या $= \frac{(\text{३६०}-\text{२भु})\ \text{२ भु}\ \ \text{४}\times\text{१२०}}{\text{३६०}^{\text{२}}\times\frac{\text{५}}{\text{४}}-(\text{३६०}-\text{२ भु})\ \text{२ भु}}$

$$= \frac{(\text{१८०}-\text{भु})\ \text{भु}\ \ \text{१६}\times\text{१२०}}{\frac{\text{३६०}\times\text{३६०}\times\text{५}}{\text{४}}-(\text{१८०}-\text{भु})\ \text{भु}\times\text{४}} = \frac{(\text{१८०}-\text{भु})\ \text{भु}\times\text{१२०}}{\frac{\text{६०}\times\text{३६०}\times\text{५}}{\text{१६}}-\frac{(\text{१८०}-\text{भ})\ \text{भु}}{\text{४}}}$$

$$= \frac{(\text{१८०}-\text{भु})\ \text{भु}\ \ \text{१२०}}{\text{४५}\times\text{४५}\times\text{५}-\frac{(\text{१८०}-\text{भ})\ \text{भ}}{\text{४}}} = \frac{(\text{१८०}-\text{भु})\ \text{भु}\ \ \text{१२०}}{\text{१०१२५}-\frac{(\text{१८०}-\text{भु})\ \text{भु}}{\text{४}}}$$

यदि १२० त्रिज्या मे यह भुजज्या पाते हैं तो इष्ट त्रिज्या मे क्या आ जायगी इष्ट त्रिज्या में भुजज्या $= \frac{(\text{१८०}-\text{भु})\ \text{भ}\ \ \text{त्रि}}{\text{१०१२५}-\frac{(\text{१८०}-\text{भु})\ \text{भु}}{\text{४}}} = \frac{(\text{१८०}-\text{भ})\ \text{भ}\ \ \text{त्रि}\times\text{४}}{\text{४०५००}-(\text{१८०}-\text{भु})\ \text{भु}}$

यहा त्रि=१ तब $\frac{(\text{१८०}-\text{भु})\ \text{भु}\ \text{४}}{\text{४०५००}-(\text{१८०}-\text{भु})\ \text{भु}} = \text{भुजज्या}$ ।

$$\frac{(\text{१८०}-\text{भु})\ \text{भु}\ \ \text{त्रि}}{\text{१०१२५}-\frac{(\text{१८०}-\text{भ})\ \text{भु}}{\text{४}}} = \text{भुजज्या}\ (\text{१})$$

$$\frac{(\text{१८०}\times\text{भु}-\text{भु}^{\text{२}})\ \text{त्रि}}{\text{१०१२५}-\frac{(\text{१८०}\times\text{भु}-\text{भु}^{\text{२}})}{\text{४}}} = \frac{\text{१८०}\times\text{भु}-\text{भु}^{\text{२}}}{\text{१०१२५}-\frac{(\text{१८०}\times\text{भु}-\text{भु}^{\text{२}})}{\text{४}}} = \text{भुजज्या}\ ।$$

कोटि-चाप से इसी तरह कोटिज्या होती है। इससे आचार्योक्तउपपन्न हुआ ॥

(१) इससे सिद्धान्तशेखर मे श्रीपति के पद्य "दोर्कोटिभागरहिताभिहता. खनाग-

चन्द्रास्तदीयचरणोनशरार्कदिग्भि । ते व्यासखण्डगुणिता विहृता फले तु ज्याभिर्विनैव भवतो भुजकोटिजीवे" उपपन्न होते हैं, परन्तु इस श्रीपति प्रकार का मूल वटेश्वरोक्त प्रकार ही है इस विषय को विवेचक लोग विचार कर समझें ॥ २ ॥

इदानीं भुजफलकोटिफलयो साधनार्थमाह ।

परफलगुणनिघ्नी हृत्फलज्या त्रिमौर्व्या भवति हि भुजजीवा चैव मन्याहतेऽपि । मृदुफलमिह साध्य प्रोक्तवद्बाहुभागै. स्वफलकमपि चैव बाहुकोट्यंशकै स्वै. ॥३ ।

वि भा —भुजजीवा (भुजज्या) परफलगुणनिघ्नी (ग्रन्यफलज्यया गुणिता) त्रिमौर्व्याहृत् (त्रिज्याभक्ता) तदा फलज्या भवति, एवमन्याहतेऽपि (केन्द्रकोटिज्या गुणितेऽप्यर्थात्केन्द्रकोटिज्या गुणिताऽन्त्यफलज्यायास्त्रिज्यया विभक्ताया मन्द मूल-सञ्ज्ञक फलज्यामूलाद् ग्रह यावत्) प्रोक्तवत् बाहुभागै (भुजाशै) मृदुफल (मन्द-फल) साध्यम् । एव स्वै (स्वकीयै) बाहुकोटय शकै (केन्द्राशकै केन्द्रकोट्यशकैश्च) स्वफलक (भुजफल, कोटिफल) साध्यमिति ॥ ३ ॥

अत्रोपपत्ति स्फुटैवास्ति, पूर्वसाधितभुजज्या) कोटिज्याभ्या पूर्ववद् भुज-फलकोटिफले भवेतामेवेति ॥ ३ ॥

अब भुजफल और कोटिफल के साधन के लिये कहते है ।

हि भा —भुजज्या (केन्द्रज्या) को अन्त्यफलज्या से गुणकर त्रिज्या से भाग देने से फलज्या होती है, इस तरह केन्द्रकोटिज्या से भी अन्त्यफलज्या को गुणकर त्रिज्या से भाग देने से फलमूल सञ्ज्ञक (फलज्या मूल से ग्रह तक) होता है । भुजाश (केन्द्राश) से पूर्ववत् मन्दफल साधन करना चाहिये । एव अपने भुजाश (केन्द्राश) कोट्यश (केन्द्र-कोटि में) अपने अपने फल (भुजफल, कोटिफल) साधन करने चाहिय ॥ ३ ॥

इसकी उपपत्ति स्पष्ट ही है । पूर्वसाधित भुजज्या (केन्द्रज्या) और कोटिज्या (केन्द्र-कोटिज्या) से भुजफल और कोटिफल हो वे ही करेंगे ॥ ३ ॥

इदानीं ज्याभिर्विना चापानयनमाह ।

त्रिभनवगुणयुक्तो ज्यातुरीयोऽत्रहारो विशिखरविखचन्द्रै स्ताडितायास्तु मौर्व्या । खखविशिख खवेदैराहता वेष्टजीवा त्रिभगुणकृतिघातज्या समासेन भक्ता ॥४॥

फलहीना नवतिकृतस्तन्मूलेन प्र वर्जिता भवति ।
शेष धनुरथवा यत्रिज्याखण्डैर्विनैव फलम् ॥५ ॥

वि भा —विशिखरविखचन्द्रै (१०१२५ एभि) ताडिताया (गुणिताया) मौर्व्या (ज्याया) त्रिभनव गुण (त्रिज्या) युक्तो ज्यातुरीय (ज्याचतुर्थांश) हार वा (अथवा) इष्टजीवा (भुजज्या) खख विशिख खवेदै (४०५०० एभि) ताडिता (गुणिता) त्रिभगुण कृतिघातज्या समासेन (चतुर्गुणित त्रिज्यावर्ग ज्यायोगेन)

भक्ता (विभाजिता) फलहीना (फलरहिता) नवतिकृति. (८१००) तन्मूलेन वर्जिता (रहिता) नवतिः (९०) शेष ज्याखण्डैर्विनैव फलं धनु (चाप) भवेदिति ॥ ४-५॥

अत्रोपपत्तिः ।

द्वितीयश्लोकोपपत्त्या $\frac{(\text{१८०}-\text{भु})\ \text{भु त्रि}\times\text{४}}{\text{४०५००}-(\text{१८०}-\text{भु})\ \text{भु}}=\text{भुजज्या}$ छेदगमेन

$(\text{१८०}-\text{भु})\ \text{भु त्रि.}\ \text{४}=\text{भुज्या}\times\text{४०५००}-\text{भुज्या}\ (\text{१८०}-\text{भु})\ \text{भु}$ पक्षयो समयोजनेन

$(\text{१८०}-\text{भु})\ \text{भु. त्रि.}\ \text{४}+\text{भुज्या}\ (\text{१८०}-\text{भु})\ \text{भु}=\text{भुज्या}\times\text{४०५००}=(\text{१८०}-\text{भु})\ \text{भु}\ (\text{४ त्रि}+\text{भुज्या})$

$$\therefore\ \frac{\text{भुज्या}\times\text{४०५००}}{\text{४ त्रि}+\text{भुज्या}}=(\text{१८०}-\text{भु})\ \text{भु}=\text{१८०}\times\text{भु}-\text{भु}^{\text{२}}=\text{पक्षौ}\ (-\text{१})$$

गुणितौ तदा $=\frac{\text{भुज्या}\times\text{१०१२५}}{\text{त्रि}+\frac{\text{भुज्या}}{\text{४}}}=\frac{\text{भुज्या}\times\text{१०२०५}}{\text{हार}}$

$$-\frac{\text{भुज्या}\times\text{४०५००}}{\text{४ त्रि}+\text{भुज्या}}=\text{भु}^{\text{२}}-\text{१८० भु}$$ पक्षयो $(\text{९०})^{\text{२}}$ योजनेन

$$\text{८१००}-\frac{\text{भुज्या}\times\text{४०५००}}{\text{४ त्रि}+\text{भुज्या}}=\text{भु}^{\text{२}}-\text{१८० भु}+\text{९०}^{\text{२}}$$ मूलग्रहणेन

$$\sqrt{\text{८१००}-\frac{\text{भुज्या.४०५००}}{\text{४ त्रि}+\text{भुज्या}}}=\text{भु}-\text{९०}\quad \text{९०}-\sqrt{\text{८१००}-\frac{\text{भुज्या ४०५००}}{\text{४ त्रि}+\text{भुज्या}}}$$

$$=\text{भु}=\text{९०}-\sqrt{\text{८१००}-\frac{\text{भुज्या १०१२५}}{\text{त्रि}+\frac{\text{भुज्या}}{\text{४}}}}$$ अत उपपन्नमाचार्योक्तम् ।

एतदनुरूपमेव

'इष्टज्यया विनिहता. शरभास्कराशा ज्यापादयुक् त्रिभगुणेन हृता· फल तत् ।
त्यक्त्वा खनन्दकृतितः पदमभ्रनन्द भागाच्च्युत भवति धन्वविना ज्यकाभि ॥"
श्रीपत्युक्तमिदमिति ॥ ४-५ ॥

अब ज्या विना चापानयन कहते हैं ।

हि. भा.—१०१२५ एतद्गुणित भुजज्या में त्रिज्या युत ज्याचतुर्थांश से भाग देना अथवा भुजज्या को ४०५०० इनने से गुणकर चतुर्गुणित त्रिज्या और भुजज्या योग से भाग देना, फल को नब्बे ९० के वर्ग में घटाकर मूल लेना उस मूल को नब्बे में घटाकर जो शेष रहता है वह विना ज्या के चाप होता है ॥ ४-५ ॥

उपपत्ति

द्वितीयश्लोक की उपपत्तिसे $\frac{(१८०—भु) भ \text{ त्रि} \times ४}{४०५००—(१८०—भु) भु}$ = भुजज्या छेदगम से

$(१८०—भु) \text{ भु. त्रि} \times ४ = \text{भुज्या} \times ४०५००—\text{भुज्या} (१८०—भु) \text{ भु}$ दोनो पक्षों मे तुल्य जोडने से

$(१८०—भु) \text{ भु त्रि. } ४ + \text{भुज्या} (१८०—भु) \text{ भु} = \text{भुज्या } ४०५००$

$= (१८०—भु) \text{ भु } (४ \text{ त्रि} + \text{भुज्या}) = \text{भुज्या} \times ४०५०० \therefore \frac{\text{भुज्या } ४०५००}{४ \text{ त्रि} + \text{भुज्या}} =$

$(१८०—भु) \text{ भु} = \frac{\text{भुज्या } १०१२५}{\text{त्रि} + \frac{\text{भुज्या}}{४}} = १८० \times \text{भु}—\text{भु}^२$ दोनो पक्षों को (—१)

गुण देने से

$—\frac{\text{भुज्या } ४०५००}{४ \text{ त्रि} + \text{भुज्या}} = \text{भु}^२—१८० \text{ भु}$ दोनो पक्षो में $(९०)^२$ जोडने से

$९०^२—\frac{\text{भुज्या } ४०५००}{४ \text{ त्रि} + \text{भुज्या}} = \text{भु}^२—१८० \text{ भु} + ९०^२$ मूल लेने से

$\sqrt{९०^२—\frac{\text{भज्या } ४०५००}{४ \text{ त्रि} + \text{भज्या}}} = \text{भु}—९०$

अत $९०—\sqrt{९०^२—\frac{\text{भज्या } ४०५००}{४ \text{ त्रि} + \text{भुज्या}}} = \text{भु}$ इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ।

इसके सदृश ही "इष्टज्यया विनिहता चरमास्वराशा ज्यापाद युक्त्रिभगुरोन हृता फल तद्। त्यक्त्वा खनन्दकृतित पदमनन्दभागाच्च्युत भवति धन्वविना ज्यकार्मु.॥" श्रीपति प्रकार है ॥ ४-५ ॥

इदानीं भौमादिग्रहाणामतिशीघ्र-शीघ्रादिगतीनाह।

स्फुटमध्यमखेचरान्तरं दलितं मध्यखगात्स्फुटेऽल्पके।
स्वमृणं महति स्फुटोनिते स्वचलेऽस्मिन् भवनेषु खेचरः॥६॥
अतिशीघ्रगतिः शीघ्रा निसर्गतस्तदनु भावयोराद्य।
मन्दाऽपराऽतिमन्दा वक्रा चैवाऽतिवक्राख्या:॥ ७ ॥
चक्रे च्युतेऽपि चास्मिन् ग्रहचारश्चैव एव निर्दिष्टः।
चक्रच्युतस्य मन्दा ग्रहस्य भुक्ति. कुटिलसंज्ञा ॥ ८ ॥

वि. भा—स्फुटे (स्पष्टग्रहे) मध्यखगादल्पके (मध्यमग्रहान्न्यूने) स्फुटमध्यम खेचरान्तरं (स्पष्टमध्यमग्रहयोरन्तर) दलित (अर्धीकृत) स्व (धनम्) महति मध्यमग्रहात्स्पष्टग्रहेऽधिके) तदन्तरार्धं स्पष्टमध्यमग्रहान्तार्धम् ऋण (हीन) कार्यं,

स्फुटोनिते (स्पष्टग्रहहीने) अस्मिन् स्वचले (शीघ्रोच्चे) तदा भवनेषु (राशिषु) खेचरः (ग्रहः) अतिशीघ्रातिगतिर्भवेत् ॥

अत्राऽयमर्थः — स्फुटग्रहोनशीघ्रोच्चे मध्यमग्रहात्स्फुटग्रहेऽल्पके मध्यस्फुटयोरन्तरार्धं धनं कार्यं मध्यग्रहात् स्फुटेऽधिके तदन्तरार्धं हीनं कार्यम्, एवं सस्कृतेषु राशिषु ग्रहोऽतिशीघ्रगत्यादिको भवेत् । इतोऽग्रे ग्रहाणामतिशीघ्रादिगतीनां नामानि कथ्यन्ते चक्रा (३६०) द्विशोधितास्ता वक्रादिगतयः पुनः स्वाभाविकगतयो भवन्तीति ॥ ६-८ ॥

अब भौमादि ग्रहो की अतिशीघ्र-शीघ्रादिगतियो को कहते हैं ॥

हि. भा. – मध्यम ग्रह से स्पष्टग्रह के अल्प रहने से दोनों (मध्यमग्रह और स्पष्टग्रह) के अन्तरार्ध को स्फुटग्रह रहित शीघ्रोच्च मे धन करना, यदि मध्यमग्रह से स्पष्टग्रह अधिक है तब दोनो के अन्तरार्ध को स्फुटग्रह रहित शीघ्रोच्च में ऋण करना । इस तरह करने से राशियो में ग्रह अतिशीघ्रादि गति होते हैं । इसके बाद ग्रहो की अतिशीघ्रादिगतियो के नाम कहते है । चक्र मे (३६० मे) वक्रादि गतियो को घटाने से पुन अपनी स्वाभाविक गति होती है ॥ ६-८ ॥

इदानीं भौमादिग्रहाणां वक्रारम्भकालिककेन्द्रांशानाह ।

रामाद्रिभिः (१६३) क्षितिसुतश्चलकेन्द्रभागै-
र्वक्रीन्दुजोऽक्षमनुभि (१४५) र्गुरुरङ्कसूर्यै (१२६) ।
शुक्र शरर्त्तुशशिभिः (१६५) शनिरग्निरुद्रै- (११३)
श्चक्रच्युतैरकुटिला. कथितास्त्वमीभिः ॥ ९ ॥

वि भा —क्षितिसुत (१६३ एतैः) चलकेन्द्रभागैः (शीघ्रकेन्द्रांशैः) इन्दुजः (बुध) अक्षमनुभि (१४५ एभि शीघ्रकेन्द्रांशै) गुरु (बृहस्पतिः) अङ्कसूर्यैः (१२६ एभि शीघ्रकेन्द्रांशै) शुक्र शरर्त्तुशशिभि (१६५ एभिः) शनिः अग्निरुद्रैः (११३ एभि) वक्रीभवति, चक्रच्युतैः (भगणात्पतितै) अमीभिः (एतैः केन्द्रांशैः) अकुटिला. (मार्गा) भवन्ति ते ॥ ९ ॥

अथाऽस्योपपत्ति

अथ वक्रारम्भकालिककेन्द्रांशानयन प्रदर्श्यते।

वक्रारम्भो द्वितीयपदे नीचासन्ने भवतीति पूर्वं प्रदर्शितम् [illegible] केन्द्रकोटिज्यामान =य कल्प्यते ।

तदा कर्णवर्ग. =त्रि^{2}+अन्त्यफज्या^{2}—२ अफ[illegible] [illegible]

द्धान्तरशिञ्जिनीघ्नोद्राक्केन्द्रभुक्तिरित्यादिना [illegible]

अथ द्राक् केन्द्र मौर्व्यान्त्यफलज्यागुणया क्रमात्।
मृगकर्क्यादिके केन्द्रे युतोना त्रिज्यकाकृति ॥
शीघ्रकर्णहृता लब्ध फलकोटिज्यका भवेत् । इति सशोधकोक्तटिप्पण्या

$\text{त्रि}^2 - \frac{\text{य अ फज्या}}{\text{कर्ण}} = \text{फलकोटिज्या}$, स्पष्टगतिस्वरूपे उत्थापनेन

$$\text{उग} - \frac{(\text{त्रि}^2 - \text{य अ फज्या})\,\text{केग}}{\text{क}^2} = \text{स्पग} = \text{उग} - \frac{(\text{त्रि}^2 - \text{य अ फज्या})\,\text{केग}}{\text{त्रि}^2 + \text{अ फज्या}^2 - 2\ \text{अ फज्या य}}$$

$$= \text{उग} - \frac{(\text{त्रि}^2\,\text{केग} - \text{य अ फज्या केग})}{\text{त्रि}^2 + \text{अ फज्या}^2 - 2\ \text{अ फज्या य}}$$ पर वक्रारम्भे स्पष्टगति $= 0$

$$\frac{\text{उग त्रि}^2 + \text{उग अ फज्या}^2 - 2\ \text{अ फज्या य उग} - (\text{त्रि}^2\,\text{केग} - \text{य अ फज्या केग})}{\text{त्रि}^2 + \text{अफज्या}^2 - 2\ \text{अ फज्या य}}$$

$= \text{स्पष्टग} = 0$

छेदगमेन

$$\text{उग त्रि}^2 + \text{उग अफज्या}^2 - 2\,\text{अफज्याय उग} - (\text{त्रि}^2\,\text{केग} - \text{य अफज्या केग}) = 0$$

समयोजनेन

$$\text{उग त्रि}^2 + \text{उग अफज्या}^2 - 2\ \text{अ फज्या य उग} = \text{त्रि}^2\,\text{केग} - \text{य अ फज्या केग}$$

समशोधनेन

$$\text{उग त्रि}^2 - \text{त्रि}^2\,\text{केग} + \text{उग अफज्या}^2 - 2\ \text{अफज्या य उग} = -\text{य अ फज्या केग}$$

समयोजनेन

$$\text{उग त्रि}^2 - \text{त्रि}^2\,\text{केग} + \text{उग अ फज्या} = 2\,\text{अ फज्या य उग} - \text{य अ फज्या केग}$$
$$= \text{त्रि}^2(\text{उग} - \text{केग}) + \text{उग अ फज्या}^2 = \text{य अ फज्या}\ (2\ \text{उग} - \text{केग})$$
$$= \text{त्रि}^2 \times \text{मस्पग} + \text{उग अ फज्या}^2 = \text{य अ फज्या}\ (\text{उग} + \text{उग} - \text{केग})$$
$$= \text{य अ फज्या}\ (\text{उग} + \text{मस्पग})$$

अत $\frac{\text{त्रि}^2\,\text{मस्पग} + \text{उग अ फज्या}^2}{\text{अ फज्या}\ (\text{उग} + \text{मस्पग})} =$

$$\frac{\text{त्रि}^2 \times \text{मग} + \text{उग अ फज्या}^2}{\text{अ फज्या}\ (\text{उग} + \text{मग})} = \text{य}$$ (१) स्वल्पान्तरादत्र

मन्दस्पष्टगति = मध्यमगति स्वीकृताऽस्तज्जन्या त्रुटिरत्र वर्तते । समागतस्य (य) ग्रस्य चाप कार्यं नवत्यंशे योजित तदा वक्रारम्भकालिककेन्द्रांशा भवेयुरिति ॥

(१) एतावता सशोधकोक्तमूलमवतरति ।

त्रिज्याकृति खचरमध्यमभुक्तिनिघ्नी शीघ्रोच्चभुक्तिगुणितोऽन्त्यफलस्य वर्ग ।
योगस्तयो परफलज्यकया विभक्त शीघ्रोच्चभुक्तिखगवेगसमासहृत्त ॥ ६ ॥

अब भौमादिग्रहों के वक्रारम्भकालिक केन्द्रांश कहते हैं।

हि भा—मङ्गल १६३ इतने शीघ्र केन्द्रांश में बुध १४५ शीघ्रकेन्द्रांश में बृहस्पति १२६, शुक्र १६५, शनि ११३ शीघ्रकेन्द्रांश में वक्री होते हैं। इन्हीं शीघ्र केन्द्रांशों को ३६० में घटाने से अवक्री (मार्गी) होते हैं ॥ ६ ॥

उपपत्ति

वक्रारम्भकालिक शीघ्रकेन्द्रांशानयन करते हैं। वक्रारम्भकालिक केन्द्रकोटि ज्या-*मान = य मानते हैं। परन्तु द्वितीय पद में नीचासन्न में ग्रहों का वक्रारम्भ होता है इसलिये* कर्णवर्ग = त्रि² + अ फज्या² — २ अ फज्या य, फलांशखाङ्कान्तरशिञ्जिनीघ्नी इत्यादि से

उग — $\frac{\text{फलकोज्या केग}}{\text{शीक}}$ = स्पष्टगति।

ग्रहा केग = शीघ्रकेन्द्रग
कग = शीघ्रोच्चगति
शीक = शीघ्रकर्ण = क

द्राक् केन्द्रकोटि मौर्व्यान्त्य फलज्या गुणया क्रमात्। मृगकर्क्यादिके केन्द्रे युनोना त्रिज्यकाकृतिः। शीघ्रकर्णहृता लब्धं फले कोटिज्यका

भवेत्। इस सशोधकोक्त टिप्पणी से त्रि² — $\frac{\text{य अ फज्या}}{\text{कर्ण}}$ = फलकोज्या स्पष्टगति स्वरूप में

उत्थापन देने से उग — $\frac{(\text{त्रि}^2 - \text{य अ फज्या})\ \text{केग}}{\text{क}^2}$ = स्पग

$= \text{उग} - \frac{(\text{त्रि}^2 - \text{य अ फज्या})\ \text{केग}}{\text{त्रि}^2 + \text{अ फज्या}^2 - २\ \text{अ फज्या य}} = \text{उग} - \frac{\text{त्रि}^2\ \text{केग} - \text{य अ फज्या केग}}{\text{त्रि}^2 + \text{अ फज्या}^2 - २\ \text{अ फज्या य}}$

परन्तु वक्रारम्भ में स्पष्टगति = ०

अत $\frac{\text{उग त्रि}^2 + \text{उग अ फज्या}^2 - २\ \text{अ फज्या य} \times \text{उग} - (\text{त्रि}^2\ \text{केग} - \text{य अ फज्या केग})}{\text{त्रि}^2 + \text{अ फज्या}^2 - २\ \text{अ फज्या य}}$

= ० = स्पग

छेदगम से

उग त्रि² + उग अ फज्या² — २ अफज्या य × उग — (त्रि² केग — य अफज्या केग) = ०

समशोधन से

उग त्रि² + उग अ फज्या² — २ अ फज्या य उग — त्रि² केग — य अ फज्या केग समशोधन से

उग त्रि² — त्रि² केग + उग अ फज्या² = २ अ फज्या य उग — य अ फज्या केग

= त्रि² (उग — केग) + उग अ फज्या² = य × अ फज्या (२ उग — केग) = य अ फज्या (उग + उग — केग) = त्रि² मस्पग + उग अ फज्या² = य अ फज्या (उग + मस्पग)

$\frac{\text{त्रि}^2\ \text{मस्पग} + \text{उग अ फज्या}^2}{\text{अ फज्या (उग + मस्पग)}} = \frac{(१)}{\text{य}} = \frac{\text{त्रि}^2\ \text{मग} + \text{उग अ फज्या}^2}{\text{अ फज्या (उग + मग)}}$ ।

मन्दस्पग = मध्यमग स्वल्पान्तर से, आनीत (य) मान के चाप में नवत्यंश जोड़ने से वक्रारम्भ कालिक शीघ्रकेन्द्रांश होता है।

(१) इसमें सशोधकोक्त सूत्र उत्पन्न होता है— त्रिज्याकृति' रित्यादि ॥६॥

इदानीं भौमादीनां वक्रदिनान्याह ।

पञ्चत्त्वैः कुदस्रा बाहुशिवा द्वीपतो द्विगुणचन्द्राः ।
वक्रादिनान्युर्बीजाग्निरशदिनशोधितन्यृजूनि स्युः ॥१०॥

वि. भा—६५, २१, ११२, ५१, १३२ एतानि क्रमशो भौमादीनां ग्रहाणां वक्रदिनानि भवन्ति तानि च निरशदिनशोधितानि (वक्रमार्गदिनसमूहे रहितानि) तदा मार्गदिनानि भवन्तीति ॥ १० ॥

अब भौमादि ग्रहों के वक्रदिन कहते हैं।

हि भा.—६५, २१, ११२, ५२, १३२ इतने क्रम से भौमादि ग्रहों के वक्रदिन होते हैं। उनको निरश दिनों (वक्र और मार्गदिनसमूह के योग) में घटाने से मार्गदिन होते हैं ॥१०॥

इदानीं भौमादीनां निरशदिनान्याह ।

खाष्टनगा रसरुद्रा नवनरागा पयोधिधीपवना ।
वसुशैलगुणा क्रमशो भौमादीनां निरशनिशाः ॥११॥

वि भा—७८०, ११६, ६६६, ५५४, ३७८ इति भौमादिग्रहाणां क्रमशो निरशदिनानि भवन्ति ॥११॥

अब भौमादिग्रहों के निरशदिन कहते हैं।

हि भा—७८०, ११६, ६६६, ५५४, ३७८ इतने इतने क्रम से भौमादि ग्रहों के निरश दिन हैं ॥ ११ ॥

इदानीं भौमादीनामुदयास्तकेन्द्रांशानाह ।

धीयमलैस्त्रिखपक्षैर्विश्वैस्त्रिमतीन्दुभिर्नगशशाङ्कैः ॥
दृश्याः प्रागपरायां च्युताश्च भांशाददृश्याः स्युः ॥१२॥
विपरीतदिश्येवं हि ज्ञसितौ तानैर्जिनैर्जगुर्भागैः ।
एष्यातीतकलाभ्यः स्वकेन्द्रभुक्त्या दिनानि स्युः ॥१३॥

वि.भा—धीयमलैः (२५ एभिः) त्रिखपक्षैः (२०३) विश्वैः (१३) त्रिमतीन्दुभिः (१५३) नगशशाङ्कैः (१७) शीघ्रकेन्द्रांशैर्भौमादयो ग्रहा प्राग्दिशि (पूर्वस्यां दिशि) दृश्या भवन्ति, एते भांशात् (३६० चक्रांशात्) च्युता (शुद्धा) तदा तैः केन्द्रांशैरपरायां (पश्चिमायां दिशि) अदृश्या (अस्तमया) भवन्तीति, एवं ज्ञसितौ (बुधशुक्रौ) तानैः (४९) जिनैः (२४) भागैः (अंशैः) विपरीतदिशि (पश्चिमायां दिशि) उदयं गच्छतः। एष्यातीतकलाभ्यः स्वकेन्द्रभुक्त्या च दिनानि स्युरिति ॥ १२ १३ ॥

अत्रोपपत्ति

अथ कुजगुरुशनीना रविरेव शीघ्रोच्चम् । शीघ्रोच्चस्थाने स्थिताना तेषा ग्रहाणा परमास्त । पश्चाद्रविरधिकगतित्वादग्रे गच्छति, ग्रहास्तु तत पश्चात्स्थितास्तत य.ा रविणा सह कालाशतुल्यमन्तर भवेत्तदा रवेरासन्नत्ववशेन रात्र्यन्ते पूर्वदिशि तेषा ग्रहाणा समुदयो दृश्यते तत्र कालाशतुल्ये स्पष्टकेन्द्राशे या फलज्या तच्चापयुत कालाशमान तदुदयशीघ्रकेन्द्राशा भवन्तीति ॥

यथा शीघ्रान्त्यफलज्या=अ फज्या । कक्षावृत्ते स्पष्टग्रह =स्ग्र, रवे शीघ्रोच्चत्वात्स्फुटकेन्द्राशा = कालाशा , ततोऽनुपातो यदि त्रिज्यया कालाशतुल्यस्य स्पष्टकेन्द्रस्य ज्या लभ्यते तदा शीघ्रान्त्यफलज्यया किं समागच्छति शीघ्रफलज्या तत्स्वरूपम् $= \frac{\text{कालाशज्या} \times \text{अ फज्या}}{\text{त्रि}}$ अस्याश्चाप कालाशे युत तदोदयकेन्द्राशा भवेयु

कालाश+चाप=उदयशीघ्रकेन्द्राशा । अत्र स्वस्वपठितकालाशाना ज्याभिरन्त्यफलज्याभिश्च गणितेनोदयशीघ्रकेन्द्राशा आगच्छन्ति शन्यतिरिक्तयोर्भौमगुर्वो केन्द्राशमाने भास्कराद्दिपठिततदुदयशीघ्रकेन्द्रमानाभ्या भिन्ने भवत इति बुधशुक्रयोर्मध्यग्वे समत्वात्तमेव मन्दस्पष्ट मत्वा स्वस्वस्पष्टेन बुधेन शुक्रेण च कालाशतुल्येऽन्तरे पश्चिमाया समुदयो दृश्यते बुधशुक्रयो क्षितिजोपरिस्थित स्यात् । तदा

$\frac{\text{कालाशज्या} \times \text{त्रि}}{\text{अ फज्या}}$ = चापज्या, अस्याश्चाप कालाशे युत तदा तयो पश्चिमोदयशीघ्रकेन्द्राशा भवन्ति प्रथमपदे । द्वितीये पदे वक्रीभूय रवितोऽल्पगतित्वात्पश्चिमायामेवास्त गच्छत । तृतीये पदे तयो पुनरुदयो भवति, तयो पुनर्नीचस्थाने परमास्तत्वेन पूर्वदिशि रात्रिशेषे स चोदयो दृश्यो भवति चतुर्थे पदे च तयो कालाशान्तरे स्थितत्वात्तत्रैवास्तो भवेत् । तेन पूर्वोदयकेन्द्राशमानम् = चा + १८०— कालाश, प्रथमपदे बुधशुक्रयो पश्चिमाय.मुदयश्चतुर्थे पदे च पूर्वास्यामस्त । तृतीयपदे पूर्वस्यामुदयो द्वितीये पदे पश्चिमायामस्त स्यादत पश्चिमायामुदय केन्द्राशोनभार्धांशा पूर्वस्या, पूर्वस्यामुदयकेन्द्राशोनभार्धाशा पश्चिमायामस्तकेन्द्राशा भवन्ति । श्रीपतिभास्कराद्याचार्यकथितबुधपश्चिमोदयकेन्द्राशमान (५०) त एतदाचार्यकथित तन्मानमेवाल्पम् । बुधशुक्रयो पूर्वोदयकेन्द्राशा अपि तदुक्तोदयकेन्द्राशेभ्यो भिन्ना सन्तीति ।

अथ ग्रहस्य वक्रोदयास्तादि पठितशीघ्रकेन्द्राशाभीष्टशीघ्रकेन्द्राशयोरन्तर कार्यं ततोऽनुपातो यदि केन्द्रगत्यैक दिन लभ्यते तदोपर्युक्तशीघ्रकेन्द्राशान्तरेण किमित्यनुपातेन समागतदिनैर्वक्रोदयास्तादीना गतत्व वा भविष्यतीति ॥१२-१३॥

अब भौमादिग्रहो के उदयास्त केन्द्राश कहते हैं ।

हि भा —२५, २०३, १३, १५३, १७ इनने शीघ्र केन्द्राश करके क्रमश भौमादिग्रह

पूर्व दिशा में उदय होते हैं। भाग (३६७) में उन केन्द्रांशों को घटाकर जो शेष रहते हैं उतने केन्द्रांश करके पश्चिम दिशा में अस्त होते हैं इस तरह बुध और शुक्र ४६, २४ केन्द्रांश करके क्रमश पश्चिम दिशा में उदित होते हैं। एष्य और गतकला में तथा अपनी शीघ्र केन्द्रगति से वक्रोदयादि दिन होते हैं ॥१२-१३॥

उपपत्ति

मङ्गल, गुरु, और शनैश्चर इनके शीघ्रोच्च रवि है। शीघ्रोच्च स्थान में इन सब का परमास्त होता है, पीछे रवि शीघ्रगति होने के कारण आगे चले जाते हैं और वे ग्रह पीछे अवलम्बित रहते हैं वहां रवि से जब कालांशान्तर पर ग्रह होते हैं तब रवि से समीपता के कारण राश्यन्त में पूर्व दिशा में उन ग्रहों के उदय देखते हैं। इसलिये कालांश तुल्य स्पष्ट केन्द्रांश में जो फलज्या होगी उसके चाप को कालांश में जोड़ने से उन ग्रहों के उदय शीघ्र केन्द्रांश होते हैं। जैसे शीघ्रान्त्यफलज्या = अ फज्या, कक्षावृत्त में स्पष्टग्रह = स्पग्र, स्फुटकेन्द्रांश = कलांश तब अनुपात करते हैं, यदि त्रिज्या में कालांश तुल्य स्पष्ट केन्द्रांश की ज्या पाते हैं तो अन्त्य फलज्या में क्या इस अनुपात से फलज्या आती है $\frac{\text{कालांशज्या} \times \text{अं फज्या}}{\text{त्रि}}$ = फलज्या।

इसके चाप को कलांश में जोड़ देने से उन ग्रहों के उदय केन्द्रांश होंगे। चाप + कालांश = उदयशीके यहां अपने अपने पठित कालांश की ज्या से और अन्त्यफलज्या से गणित करने से उदय केन्द्रांश माने हैं। मङ्गल और गुरु के केन्द्रांशमान श्रीपति भास्कराचार्य प्रभृति आचार्य कथित उदयकेन्द्रांश मान से भिन्न हैं।

बुध और शुक्र मध्यम रवि के बराबर हैं इसलिये उनको मन्द स्पष्ट मानकर अपने अपने स्पष्ट बुध और शुक्र के साथ कालांश तुल्य अन्तर पर पश्चिम दिशा में उदय देखते हैं, क्योंकि बुध और शुक्र क्षितिज से ऊपर हैं। तब $\frac{\text{कालांशज्या} \times \text{त्रि}}{\text{अ फज्या}}$ = चापज्या, इसके चाप को कालांश में जोड़ देने से उन दोनों (बुध और शुक्र) के पश्चिमोदय शीघ्र केन्द्रांश होते हैं प्रथम पद में। द्वितीय पद में वक्री होकर रवि के अल्पगतित्व के कारण वहीं पर अस्त हो जाते हैं। तृतीय पद में फिर उदय होते हैं, नीच स्थान में दोनों के परमास्त होने के कारण वह उदय पूर्व दिशा में रात्रिशेष में देखा जाता है। चतुर्थ पद में रवि से कालांशान्तर पर दोनों के रहने के कारण अस्त होते हैं। इसलिये पूर्वोदय केन्द्रांश = चाप + १८० — कालांश।

प्रथम पद में बुध और शुक्र पश्चिम दिशा में उदित होते हैं और चतुर्थ पद में पूर्व दिशा में अस्त होते हैं। तृतीय पद में पूर्व दिशा में उदय होते हैं और द्वितीय पद में पश्चिम दिशा में अस्त होते हैं। इसलिये पश्चिमोदय केन्द्रांशोन भाग पूर्व दिशा में अस्त केन्द्रांश होते हैं और पूर्वोदय केन्द्रांशोन भाग पश्चिम दिशा में अस्त केन्द्रांश होते हैं।

श्रीपति भास्करादि आचार्य कथित बुध पश्चिमोदय केन्द्रांश (५०) मान से वटेश्वराचार्य कथित केन्द्रांश मान एक अल्प है, बुध और शुक्र के पूर्वोदय केन्द्रांश मान भी उन आचार्यों के कथित केन्द्रांश मान से भिन्न हैं।

ग्रहों के वक्रोदयादि पठित केन्द्रांश और इष्टकेन्द्रांश के अन्तर करके अनुपात करते हैं यदि केन्द्रगति में एक दिन पाते हैं तो केन्द्रांशान्तर में क्या इस अनुपात से जो दिन आते हैं उतने दिन करके वक्रोदयादि गत या भविष्य होंगे ॥ १२-१३ ॥

इदानीं बुधशुक्रयोः पूर्वपश्चिमदिशोरुदयास्तदिनान्याह ।

नखेन्दवोऽग्निः खगुणा द्विजिह्वा ग्रहस्कराण्यर्कदिनानि पश्चात् ।
प्राच्यां च चन्द्रात्मजदैत्यगुर्वोर्दन्ताः शरव्योम्निचराः प्रदिष्टाः ॥१४॥

स्पष्टार्थं ॥ १४ ॥

अत्रोपपत्ति ।

पूर्वकथितनियमेनैव स्पष्टेति ॥ १४ ॥

इति वटेश्वरसिद्धान्ते स्पष्टाधिकारे ज्याभिर्विना स्पष्टीकरणविधि-श्चतुर्थोऽध्यायः समाप्तः ॥

अर्थ स्पष्ट है ॥१४॥

उपपत्ति

पूर्वकथित नियम से स्पष्ट है ॥ १४ ॥

इति वटेश्वर सिद्धान्त में स्पष्टाधिकार में ज्या के बिना स्पष्टीकरणविधि नामक चौथा अध्याय समाप्त हुआ ।



पञ्चमोऽध्यायः

अथ फलज्यास्फुटीकरणविधिमाह ।

भुजकोटिफलश्रवणैर्द्युसदां स्फुटता विहिता हि मया विविधाः ।
कथयाम्यधुनातिविवेकफलस्फुटतां भुजयाहमवाप्तवरः ॥१॥

वि भा—भुजकोटिफलश्रवणैः (भुजफलकोटिफलकर्णैः) द्युसदां (ग्रहाणां) विविधास्फुटता (अनेकप्रकारका स्पष्टता) मया पूर्वं विहिता (कथिता) अधुना (इदानीं) अवाप्तवरोऽहं (प्राप्तप्रसादोऽहम्) भुजया (भुजज्यया) अतिविवेकफलस्फुटतां (अत्यन्तविचारपूर्वकफलस्पष्टीकरणं) कथयामीति ॥१॥

हि भा—भुजफल कोटिफल और कर्णों के द्वारा ग्रहों की स्पष्टीकरण अनेक प्रकार से हमने कहा है अब गुरुप्रसाद से मैं भुजज्या से अतिविचारपूर्वक फलस्पष्टीकरण को कहता हूँ ॥१॥

इदानीं मन्दभुजफलशीघ्रभुजफलयोरानयनमाह ।

निजवृत्तगुणा क्रमकेन्द्रगुणा भगणांशहृता फलचापकला ।
द्युचरफलान्यनुपातफलं मृदुजं चलजं स्वसकृद् द्युचरे ॥२॥

वि भा—क्रमकेन्द्रगुणा (केन्द्रज्या) निजवृत्तगुणा (स्वपरिधिगुणिता) भगणांशहृता (भांशभक्ता) फलचापकला द्युचरफलानि (ग्रहफलानि) भवन्ति । अनुपातफलं मृदुजं (मन्दभुजफलचापमन्दफलं) चलजं (शीघ्रफलं) द्युचरे (ग्रहे) असकृत् (वारं वारं) संस्कार्यमित्यर्थः ।

अत्रोपपत्तिः ।

यदि त्रिज्यया मन्दकेन्द्रज्या लभ्यते तदा मन्दान्त्यफलज्यया किमित्यनुपातेन समागच्छति मन्दभुजफलम् $= \frac{\text{मकेज्या} \times \text{मअफज्या}}{\text{त्रि}}$ अस्य चापं मन्दफलं भवतीति प्राचीनैः कथ्यते, परन्तु तच्चापं मन्दफलं न भवतीति पूर्वमेव मया तत्कारणं प्रदर्शितम् । सर्वं प्राचीनैरेवमेव कथ्यते । एवं शीघ्रभुजफलानयनेऽपि—

$\frac{\text{शीकेज्या} \times \text{शीघ्रान्त्यफज्या}}{\text{त्रि}}$ = शीघ्रभुजफलम् । एतच्चापं शीघ्रफलम् । अन्यैराचार्यै

शीघ्रफलसम्बन्धे एव न कथ्यते। मध्यमग्रहात्स्पष्टग्रहज्ञानार्थमेतयोरसकृत्संस्करणं भवतीति ग्रहानयनावलोकने नैव स्फुटमिति त्रिज्यान्त्यफलज्ययोर्य सम्बन्ध स एव भाशपरिध्योरपि तनाऽन्त्यफलज्यात्रिज्ययो स्थाने परिधिभाशयोर्ग्रहणेनाऽऽचार्योक्तमुपपद्यते इति ॥२॥

हि भा—केन्द्रज्या को अपनी परिधि से गुणाकर भाश से भाग देने से जो फल हो उसको चापकला ग्रहो के फल होते हैं। अनुपात जनित मन्दफल और शीघ्रफल ग्रह में बारबार संस्कार करना चाहिए ॥२॥

उपपत्ति

यदि त्रिज्या मे मन्दकेन्द्रज्या पाते हैं तो मन्दान्त्यफलज्या में क्या इस अनुपात से मन्दभुजफल आता है $\frac{\text{मकेज्या मअफज्या}}{\text{त्रि}}$ = मभुजफल। इसके चाप मन्दफल होता है। यह प्राचीनाचार्य कहते है। यहा $\frac{\text{मअफज्या}}{\text{त्रि}} = \frac{\text{मपरिधि}}{\text{भाश}}$ $\frac{\text{मकेज्या} \times \text{मपरि}}{\text{भाश}}$ = मभुजफल एव

$\frac{\text{शीकेज्या} \times \text{शीअफज्या}}{\text{त्रि}} = \frac{\text{शीकेज्या} \times \text{शीपरिधि}}{\text{भाश}}$ = शीघ्रभुजफल।

इसके चाप करने से शीघ्रफल होता है। शीघ्रफल के विषय मे और आचार्य इस तरह नही कहते हैं। तात्कालिक मन्दभुजफल के चाप मन्दफल नही होते हैं यह हम पहले दिखला चुके हैं, इसलिये यह बात वहीं से समझनी चाहिये ॥२॥

इदानीं ग्रहस्फुटीकरणमाह।

मन्दोद्भवं मध्यखगे समस्त सुसंस्कृत स्पष्टखगो हि मन्द।
ततस्तदूनात् स्वचलाद्विलोक्य तस्मिन् समस्त त्वसकृत् स्फुट स्यात् ॥३॥
मध्यमश्चलदलार्धसंस्कृतो मन्दजेन दलितेन चैव हि।
मन्दज सकलमेव मध्यमे शीघ्रज च निखिल परिस्फुट ॥४॥

वि. भा—मन्दोद्भव (मन्दकर्मोद्भव फल मन्दफल) समस्त (सम्पूर्णं) मध्यखगे (मध्यमग्रहे) सुसंस्कृत तदा मन्द स्पष्टखग (मन्दस्पष्टग्रह) भवेत्। ततोऽनन्तर तदूनात्स्वचलात् (मन्दस्पष्टग्रहरहिताच्छीघ्रोच्चात्) चलोत्थ फल (शीघ्रफल) साध्य तत्समस्त (सम्पूर्ण) तस्मिन् मन्दस्पष्टग्रहे संस्कृत तदा स्फुट स्यात् तस्मात्स्फुटान्मन्दोच्च विशोध्य मन्दफलमानीय तेन संस्कृतो गणितागतमध्यमग्रहो मन्दस्फुट स्यात्। तद्रहिताच्छीघ्रोच्चात्पुन शीघ्रफल साध्य तेन संस्कृतो मन्दस्पष्टग्रह स्यादेवमसकृद् यावदविशेष।

चलार्धसंस्कृत (शीघ्रफलार्धसंस्कृतोऽर्थाच्छीघ्रोच्चान्मध्यम ग्रह विशोध्य शीघ्रकेन्द्र कृत्वा तत शीघ्रफलमानीय तदर्धसंस्कृत) मध्यमग्रह प्रथमसंस्कारयुक्त-

मध्यमग्रह स्यात् । ततो मन्दोच्चरहितात्प्रथमसंस्कारयुक्तमध्यमग्रहान्मन्दफलं साध्य तदर्धसंस्कृत प्रथमसंस्कारयुक्तमध्यमग्रहो द्वितीयसंस्कारयुक्तमध्यमग्रह. स्यात् । पुनर्मन्दोच्चरहिताद् द्वितीयसंस्कारयुक्तमध्यमग्रहान्मन्दकेन्द्र कृत्वा ततो मन्दफलमानीय मध्यमग्रहे संस्कर्त्तव्य तदा मन्दस्पष्टग्रहो भवेत् । एतन्मन्दस्पष्ट-ग्रह शीघ्रोच्चाद्विशोध्य शीघ्रकेन्द्र कृत्वा तत शीघ्रफलमानीय तेन संस्कृतो मन्द-स्पष्टग्रह स्पष्टग्रह स्यादिति ॥ सूर्यसिद्धान्तेऽप्येवमेव संस्कारविधिर्यथा तदुक्त वाक्यम् ।

मध्येशीघ्रफलस्यार्धमान्दमर्धफल तथा । मध्यग्रहे मन्दफल सकल शैघ्रय मेव च ॥ 'भास्करेणापि' 'दलीकृताभ्या प्रथम फलाभ्यामित्यादिना' तथैव कथ्यते ग्रहलाघवे गणेशदैवज्ञेन प्राड् मध्यमे चलफलस्य दल विदध्यात्तस्माच्च मान्दमखिल विदधीत मध्ये । द्राक्केन्द्रकेऽपि च विलोममतश्च शीघ्र सर्वं च तत्र विदधीत भवेत्स्फुटो-ऽसौ' इत्यनेनभिन्नरूपक संस्कारविधि प्रदर्शित इति ॥३-४॥

अत्रोपपत्तिस्तु व्याख्यारूपैवास्तीति ॥३-४॥

अब ग्रहस्पष्टीकरण कहते हैं ।

हि भा —मध्यमग्रह मे सम्पूर्ण मन्दफल संस्कार करने से मन्द स्पष्टग्रह होते हैं । शीघ्रोच्च मे मन्दस्पष्टग्रह को घटाकर शीघ्र केन्द्र करके शीघ्रफल स धन करना । वह सम्पूर्ण शीघ्र फल मन्दस्पष्टग्रह म संस्कार करने से स्पष्टग्रह होते है । उस स्पष्टग्रह मे मन्दोच्च घटा कर मन्दफल साधन करना, उस फल को गणितागत मध्यमग्रह मे संस्कार करने से मन्दस्पष्ट-ग्रह होते है, उसको शीघ्रोच्च मे घटाकर शीघ्र फल साधन करना, मन्दस्पष्ट ग्रह मे उस शीघ्रफल को संस्कार करने से स्पष्ट ग्रह होते है, इस तरह असकृत् (बार बार) करने से वास्तव स्पष्टग्रह होते है । शीघ्रोच्च मे मध्यमग्रह को घटाकर शीघ्र केन्द्र करके शीघ्रफल साधन करना, उसके आधे को मध्यमग्रह मे संस्कार करन से प्रथम संस्कार युक्त मध्यमग्रह होते हैं । प्रथम संस्कार युक्त मध्यमग्रह म मन्दोच्च को घटाकर मन्दफल साधन करना, उसके आधे को प्रथम संस्कार युक्त मध्यमग्रह म संस्कार करने से जो होता है, उसको द्वितीय संस्कार युक्त मध्यमग्रह कहते है । इस द्वितीय संस्कार युक्त मध्यम ग्रह मे मन्दोच्च घटाकर उस पर से मन्दफल साधन करना, इसको मध्यमग्रह म संस्कार करने से मन्दस्पष्टग्रह होते हैं । शीघ्रोच्च मे इस मन्दस्पष्टग्रह को घटाकर शीघ्रफल साधन करना इस शीघ्रफल को मन्दस्पष्टग्रह मे संस्कार करने से स्पष्टग्रह होते हैं ।

सूर्यसिद्धान्त मे भी इसी तरह संस्कारविधि है । जैसे—

मध्ये शीघ्रफलस्यार्धं मान्दमर्धं फल तथा ।
मध्यग्रहे मन्दफल सकल शैघ्रमेवच च ॥

भास्कराचार्य भी सिद्धान्तशिरोमणि म इसी तरह कहते है, जैसे उनके वचन हैं—
'दलीकृताभ्या प्रथम फलाभ्यामित्यादि' ग्रहलाघव मे गणेशदैवज्ञ
'प्राड्मध्यमे चलफलस्य दल विदध्यात्तस्माच्च मान्दमखिलं विदधीत मध्ये ।

द्राक्केन्द्रकेऽपि च विलोममतश्च शीघ्रं सर्वं च तत्र विदधीत भवेत्स्फुटोऽसौ ॥"
इसमें भिन्न तरह संस्कारविधि कही है ॥ ३-४ ॥

यहां उपपत्ति व्याख्यारूप ही है ॥३-४॥

इदानीं कोटिं विना कर्णानयनमाह ।

परमफलकेन्द्रजीवाघातात्फलजीवया हृतात्कर्णः ।
कोटिं विनाऽथवा स्यात् त्रिज्या दोःफलसमभ्यासात् ॥५॥

वि. भा.—परमफलकेन्द्रजीवाघातात् (अन्त्यफलज्याकेन्द्रज्ययोर्वधात्) फलजीवयाहृतात् (फलज्ययाभक्तात्) कोटिं विना (स्पष्टकोटिं विना) कर्णो भवेत् । अथवा त्रिज्या दोःफलसमभ्यासात् (त्रिज्याभुजफलघातात्) फलज्यया भक्तात् कर्णो भवेदिति ॥५॥

अत्रोपपत्तिः

यदि शीघ्रफलज्ययाऽन्त्यफलज्या लभ्यते तदा शीघ्रकेन्द्रज्यया किं समागच्छति शीघ्रकर्णस्तत्स्वरूपम् $=\frac{\text{शीअ फज्या}\times\text{शीकेज्या}}{\text{शीफज्या}}=$शीकर्ण । अथवा शीघ्रफलज्यया त्रिज्या लभ्यते तदा शीघ्रभुजफलेन किमिति समागतं शीघ्रकर्ण $=\frac{\text{त्रि}\times\text{शीभुफल}}{\text{शीफज्या}}$

स्वोच्चनीचग्रहस्फुटीकरणविधौ शीघ्रफलानयनस्य चित्रं द्रष्टव्यम् ॥५॥

अब विना स्पष्टकोटि के कर्णानयन कहते हैं ।

हि. भा.—अन्त्यफलज्या केन्द्रज्या घात में फलज्या से भाग देने से कर्ण होता है । अथवा त्रिज्या और भुजफल के घात में फलज्या से भाग देने से कर्ण होता है ॥५॥

उपपत्ति

यदि शीघ्रफलज्या में अन्त्यफलज्या पाते हैं तो शीघ्रकेन्द्रज्या में क्या इस अनुपात से शीघ्रकर्ण आता है $\frac{\text{शीअन्त्यफज्या}\times\text{शीकेज्या}}{\text{शीफज्या}}=$शीकर्ण । अथवा शीघ्रफलज्या में यदि त्रिज्या पाते हैं तो शीघ्रभुजफल में क्या इस अनुपात से शीघ्रकर्ण आता है

$\frac{\text{त्रि}\times\text{शीभफ}}{\text{शीफज्या}}=$शीकर्ण । इसी तरह मन्दकर्णानयन भी होता है ।

स्वोच्चनीच ग्रहस्फुटीकरणविधि नामक अध्याय में शीघ्रफलानयन के चित्र देखिये ॥ ५ ॥

इदानीं केन्द्रसम्बन्धे विशेषमाह ।

बाहुज्या समकर्णे परमफलेनान्वितं त्रिभं केन्द्रम् ।
त्रिज्यातुल्यश्रवणे परमफलगुणखण्डचापयुतम् ॥६॥
राशिज्या सगुणिता त्रिगुणकोटिगुणोऽथ हीनपदे ।
अन्त्यफलजीवयाप्ता परमफलज्या समे कर्णे ॥७॥
त्रिज्यान्त्यफलज्यायुतितुल्ये कर्णे ग्रहस्य केन्द्रं हि शून्यसमम् ।
तद्वियुति समे कर्णे केन्द्रं परिपूर्णराशिषट्कगतम् ॥८॥

वि. भा.—बाहुज्या समकर्णे (केन्द्रज्या तुल्यकर्णे) परमफलेनान्वित त्रिभ (अन्त्यफलयुतनवत्यंशसमम्) त्रिज्यातुल्यश्रवणे (त्रिज्यातुल्यकर्णे) परमफलगुणखण्डचापयुतम् (अन्त्यफलार्धयुतनवत्यंशसमम्) केन्द्रांशमानमित्यर्थः । अथ त्रिगुणा (त्रिज्या) राशिज्या सगुणिता (त्रिराशज्यया गुणिता) अन्त्यफलजीवयाप्ता (अन्त्यफलज्याभक्ता) तदा हीनपदे (द्वितीयपदे तृतीयपदे च) परमफलज्या समे कर्णे (अन्त्यफलज्या तुल्यकर्णे) कोटिगुणः (केन्द्रकोटिज्या) भवेत् । त्रिज्यान्त्यफलज्या युतितुल्यकर्णे ग्रहस्य केन्द्र शून्यसम भवेत् । तद्वियुति (त्रिज्यान्त्यफलज्यान्तर) समे कर्णे केन्द्र परिपूर्णराशिषट्क भवेदिति ॥६-८॥

अत्रोपपत्तिः

अथ द्वितीयपदे कर्णवर्ग $=$ त्रि^{2} $+$ अन्त्यफज्या^{2} $-$ २अ फज्या $\times$ केकोज्या $=$ क^2 यदि केन्द्रज्या $=$ कर्ण तदा त्रि^{2} $+$ अन्त्यफज्या^{2} $-$ २ अफज्या केकोज्या $=$ केज्या^{2} $=$ त्रि^{2} $-$ केकोज्या^{2} समशोधनेन अफज्या^{2} $-$ २ अफज्या केकोज्या $=$ $-$ केकोज्या^{2} समयोजनेन अफज्या^{2} $-$ २ अ फज्या केकोज्या $+$ केकोज्या^{2} $=$ ० मूलग्रहणेन केकोज्या $-$ अफलज्या $=$ ० केकोज्या $=$ अ फज्या वा केकोटि $=$ अन्त्यफल वा ९० $+$ अन्त्यफल $=$ केन्द्रांश ॥ अत सिद्ध यद्यदा केन्द्रज्यातुल्य कर्णो भवेत्तदाऽन्त्यफलयुतनवत्यंशसम केन्द्रांशमान भवेदर्थात्कक्षामध्यगतिर्यग्रेखा प्रतिवृत्त सम्पाते ग्रहे एव केन्द्रांशमान भवेदिति ।

यदि कर्ण $=$ त्रि तदा विचार्यते पूर्वकर्णवर्गस्वरूपम् $=$ त्रि^{2} $+$ अन्त्यफज्या^{2} $-$ २ अफज्या. केकोज्या $=$ क^2 $=$ त्रि^{2} समशोधनेन अन्त्यफज्या^{2} $-$ २ अ फज्या केकोज्या $=$ त्रि^{2} $-$ त्रि^{2} $=$ ० पक्षयो समयोजनेन अ फज्या $=$ २ अ फज्या. केकोज्या,

$$\frac{\text{अ फज्या}^2}{\text{२ फज्या}} = \frac{\text{अफज्या}}{\text{२}} = \text{केकोज्या वा} \frac{\text{अन्त्यफल}}{\text{२}} = \text{केन्द्रकोटि} = \text{केन्द्रांश} - ९०$$

केन्द्रांश $= ९० + \frac{\text{अन्त्यफल}}{\text{२}}$ एतेन सिद्ध यद्यदा त्रिज्यातुल्यकर्णो भवेत्तदाऽन्त्यफलार्धयुतनवत्यंशसम केन्द्रांशमान भवेदर्थादेतन्मिते केन्द्रांशे त्रिज्यातुल्य कर्णो भवतीति । यदा कर्णोऽन्त्यफलज्या समस्तदा केन्द्रांशमान किं भवेदिति विचार्यते । अथ पूर्वकर्णवर्गस्वरूपम् $=$ त्रि^{2} $+$ अन्त्य^2 $-$ २ अफज्या केकोज्या $=$ कर्ण^2 $=$ अन्त्य-

फज्या^{2} समशोधनेन त्रि^{2}—२ अफज्या केकोज्या=०समयोजनेन त्रि^{2}=२ अफज्या केकोज्या अत $\frac{\text{त्रि}^2}{\text{२ अफज्या}}=\frac{\text{त्रि}\times\text{त्रि}}{\text{२ अफज्या}}=\frac{\text{राशिज्या त्रि}}{\text{अन्त्यफलज्या}}$केकोज्या एनेन सिद्ध यदा-न्त्यफलज्या तुल्य कर्णो भवेत्तदैतावती केन्द्रकोटिज्या भवेत्। यदा त्रि+अन्त्य फज्या=कर्णं तदा केन्द्रांशमान किं भवतीति विचार्यते। पूर्वकर्णवर्गस्वरूपम्= त्रि^{2}+अफज्या^{2}—२ अफज्या केकोज्या=कर्ण^2=(त्रि+अफज्या)^2=त्रि^{2}+ अफज्या^{2}+२ त्रि अफज्या समशोधनेन—२ अफज्या केकोज्या=२ त्रि अफज्या —केकोज्या=त्रि वर्गकरणेन केकोज्या^{2}=त्रि^{2} $\sqrt{\text{त्रि}^2-\text{केकोज्या}^2}$= केज्या=० केन्द्रांश=० एतेन सिद्ध यदा कर्ण=त्रि+अफज्या तदा तत्र उच्चस्थाने केन्द्रांशा शून्यसमा भवन्ति। यदा त्रि—अफज्या=कर्ण तदा नीच-स्थाने पूर्वोक्तयुक्त्या केन्द्रांशा=१८०°=६ राशि ॥ अत सिद्धम् ॥ ६-८ ॥

हि भा—केन्द्रज्या तुल्य कर्ण मे अन्त्यफल युतनवत्यश के बराबर केन्द्रांश होते हैं। त्रिज्या तुल्य कर्ण मे अन्त्यफलयुत नवत्यंश के बराबर केन्द्रांश होते हैं। राशिज्या (तीस अंश की ज्या) त्रिज्या से गुणकर अन्त्यफलज्या से भाग देने मे अन्त्यफलज्या तुल्य कर्ण मे केन्द्रांश होते हैं। त्रिज्या और अन्त्यफलज्या के योग तुल्य कर्ण मे केन्द्रांश के अभाव (शून्य) होते है, त्रिज्या और अन्त्यफलज्या के अन्तर तुल्य (अन्त्यफलज्या रहित त्रिज्या) कर्ण मे केन्द्रांश ६ राशि (१८०°) के बराबर होते है ॥६-८॥

उपपत्ति

द्वितीय पद मे कर्ण वर्ग=त्रि^{2}+अफज्या^{2}—२ अफज्या केकोज्या=के^{2}, यदि कर्ण=केज्या तब त्रि^{2}+अफज्या^{2}—२ अफज्या केकोज्या=केन्द्रज्या^{2}=त्रि^{2}—के कोज्या^{2} समशोधन से अफज्या^{2}—२ अफज्या केकोज्या=—केकोज्या^{2} समान जोडने से अफज्या^{2}—२ अफज्या केकोज्या+केकोज्या^{2}=(केकोज्या—अफज्या)^2=० मूल लने से केकोज्या—अफज्या=० केकोज्या=अफज्या वा केकोटि=अन्त्यफल ९०+अन्त्यफ =केन्द्रांश इससे सिद्ध होता है इतने केन्द्रांश मे केन्द्रज्या तुल्य कर्ण होते हैं। यदि कर्ण=त्रि तब केन्द्रांश मान क्या होगा इसके लिये विचार करते हैं। पहले के कर्ण वर्ग=त्रि^{2}+ अफज्या^{2}—२ अफज्या केकोज्या=क^2=त्रि^{2} समशोधन करने से अफज्या^{2}—२ अफज्या केकोज्या=त्रि^{2}—त्रि^{2}=० समयोजन से अफज्या^{2}=२ अफज्या केकोज्या

$\frac{\text{अफज्या}^2}{\text{२ अफज्या}}=\frac{\text{अफज्या}}{२}$ केकोज्या वा $\frac{\text{अफल}}{२}$=केकोटि=केन्द्रांश—९० केन्द्रांश=

९० + $\frac{\text{अन्त्यफल}}{२}$ इससे सिद्ध होता है कि इतने केन्द्रांश मे त्रिज्या तुल्य कर्ण होते हैं। यदि कर्ण=अन्त्यफलज्या तब विचार करते हैं। पहले कर्ण वर्ग=त्रि^{2}+अफज्या^{2}—२ अफज्या केकोज्या=क^2=अफज्या^{2} समशोधन करने से त्रि^{2}—२ अफज्या केकोज्या=० समान जोडने से त्रि^{2}=२ अफज्या केकोज्या ∴ $\frac{\text{त्रि}^2}{\text{२ अफज्या}}=\frac{\text{त्रि त्रि}}{\text{२ अफज्या}}=\frac{\text{राशिज्या त्रि}}{\text{अफज्या}}$=केकोज्या

इससे सिद्ध होता है जब मन्दफलज्या तुल्य वर्ण होता है तब कोटिज्या इतनी होती है यदि त्रि+म फज्या=वर्ण तब केन्द्रारा प्रमाण क्या होता है विचार करते हैं। पहले के वर्ग वर्ग=त्रि²+म फज्या²—२ म फज्या　केकोज्या=क²=(त्रि+म फज्या)²　=त्रि²+म फज्या+२ त्रि म फज्या

समशोधन करने से

—२ म फज्या केकोज्या=२ त्रि म फज्या ∴ —केकोज्या=त्रि वा केकोज्या²=त्रि². केज्या=० वा केन्द्रारा=० इससे सिद्ध होता है जब वर्ण=त्रि+म फज्या तब केन्द्रारा शून्य होता है। जब त्रि—म फज्या=वर्ण तब पूर्वयुक्ति से केन्द्रारामान=१८०° =६ राशि होते हैं। अतः सिद्ध हो गये ॥६-८॥

इदानीं गतिस्पष्टीकरणमाह।

मृदुवृत्तकेन्द्रभुक्त्योर्वधाद् भभागाप्तहीनयुग्भुक्तिः।
तच्छीघ्रभुक्तिविवरत्रिज्याघातात्स्वशीघ्रसजेन ॥९॥
कर्णेनाप्तफलोना चलभुक्तिः स्पष्टभुक्तिः स्यात्।
वक्रे स्पष्टगतावपि वक्रारम्भे गतिः शून्यम् ॥१०॥

वि. भा.—मृदुवृत्तकेन्द्रयुक्त्योर्वधात् (मन्दपरिधिकेन्द्रगत्योर्घातात्) भभागाप्तहीनयुग्भुक्तिः (भागविभक्तफलेन रहितसहितमध्यमगतिः) मन्दस्पष्टा गतिः स्यात्। तच्छीघ्रभुक्तिविवरत्रिज्याघातात् (मन्दस्पष्टगतिरहितशीघ्रोच्चगति त्रिज्यावधात्) स्वशीघ्रसजेन कर्णेन (शीघ्रकर्णेन) आप्तफलोनाचलभुक्तिः (शीघ्रकर्णभक्तफलेन रहितशीघ्रोच्चगतिः) स्पष्टभुक्तिः (ग्रहस्पष्टगतिः) स्यात्। वक्रे स्पष्टगतौ सत्यामपि वक्रारम्भे ग्रहस्पष्टगतिः शून्या भवेदिति ॥९-१०॥

अत्रोपपत्तिः

यदि त्रिज्यया मन्दकेन्द्रज्या लभ्यते तदा मन्दान्त्यफलज्यया किं समागच्छति

$$\text{मन्दभुजफलम्} = \frac{\text{मकेज्या} \times \text{म अ फज्या}}{\text{त्रि}} = \frac{\text{मकेज्या} \times \text{मपरिधि}}{\text{भांश}}\text{। यतः } \frac{\text{म अ फज्या}}{\text{त्रि}}$$

$$= \frac{\text{मपरिधि}}{\text{भांश}} \text{ एवं } \frac{\text{म}'\text{केज्या} \times \text{मपरि}}{\text{भांश}} = \text{म}'\text{भुजफल}$$

अनयोर्भुजफलयोरन्तरम् = म'भुजफल ∼ मभुजफल = मफलज्या ∼ मफलज्या
= मन्दफलान्तर = मन्दफलगति (स्वल्पान्तरात्)

$$\text{तदा } \frac{\text{म}'\text{केज्या} \times \text{मपरि}}{\text{भांश}} \sim \frac{\text{मकेज्या} \times \text{मपरिधि}}{\text{भांश}} = \text{मन्दफलगति}$$

$$= \frac{\text{मपरिधि}}{\text{भांश}} (\text{म}'\text{केज्या} \sim \text{मकेज्या}) = \frac{\text{मपरिधि} \times \text{मकेगति}}{\text{भांश}} = \text{मन्दफलगति}$$

अत्राचार्येण म'केज्या ~ मकेज्या = मं'के — मंके = मन्दकेन्द्रज्यान्तर = मन्दकेन्द्रगतिः स्वल्पान्तरात्स्वीकृतम् ।

ततः मगति ± मफलगति = मन्दस्पगति । शी घ्रोच्चगति — मन्दस्पग = शीकेगति

$$\text{ततः } \frac{\text{शीकेज्या. त्रि}}{\text{शीकर्ण}} = \text{स्पकेज्या । एव } \frac{\text{शीकेज्या. त्रि}}{\text{शीक}} = \text{स्प'केज्या}$$

अनयोरन्तरम्

$$\frac{\text{शीकेज्या त्रि}}{\text{शीक}} \sim \frac{\text{शीकेज्या त्रि}}{\text{शीक}} = \frac{\text{त्रि}}{\text{शीक}} (\text{शी'केज्या} \sim \text{शीकेज्या}) = \text{स्प'केज्या}$$

$$\sim \text{स्पकेज्या} = \frac{\text{त्रि} \times \text{शीकेग}}{\text{शीकर्ण}} = \text{स्प'केज्या} \sim \text{स्पकेज्या} = \text{स्पकेगति,}$$ अत्राचार्येण स्वल्पान्तरात् शीघ्रकेन्द्रज्यान्तर = शीघ्रकेन्द्रगति । तथा स्पष्टकेन्द्रज्यान्तर = स्पष्टकेन्द्रान्तर = स्पष्टकेन्द्रगति स्वीकृतम्

$$\text{तदा } \frac{\text{त्रि.शीकेग}}{\text{शीक}} = \text{स्पकेग ततः शीउग — स्पकेग = स्पष्टगतिः ।}$$

यदा च विलोमशोधनं भवेत्तदा स्पष्टा गतिः ऋणात्मिका भवेत्तदैव वक्रगतिः । परं कदा स्पष्टा गतिः ऋणात्मिका भवति तत्कारणं मया पूर्वमेव लिखितमिति तत एवावगन्तव्यमिति ॥ इदमानयन न समीचीनमित्युपपत्तिदर्शनेनैव स्फुटमिति ॥९-१०॥

हि. भा — मन्दपरिधि केन्द्रगति के घात में भाग से भाग देकर जो फल होता है उसको मध्यमगति में रहित सहित करने से मन्दस्पष्टगति होती है । मन्दस्पष्टगति रहित शीघ्रोच्चगति को त्रिज्या से गुणाकर शीघ्रकर्ण से भाग देने से जो फल होता है उसको शीघ्रोच्चगति में घटाने से ग्रह की स्पष्टगति होती है । वक्रारम्भ में गति शून्य होती है ॥ ९-१० ॥

उपपत्ति

यदि त्रिज्या में मन्द केन्द्रज्या पाते हैं तो मन्दान्त्य फलज्या में क्या इस अनुपात से मन्दभुजफल होता है $\frac{\text{मकेज्या} \times \text{ममफज्या}}{\text{त्रि}}$ = मभुजफल = मफलज्या ।

$\frac{\text{म'केज्या.मम'फज्या}}{\text{त्रि}}$ = म'भुफ = म'फज्या दोनों के अन्तर करने से म'भुजफ ~ मंभुफ = म'दफज्या ~ मफज्या = मन्दफलान्तर = मन्दफलगति स्वल्पान्तर से

$$\frac{\text{म'केज्या मम फज्या}}{\text{त्रि}} \sim \frac{\text{मकेज्या मंम फज्या}}{\text{त्रि}} = \frac{\text{म 'केज्या} \times \text{मं'परि}}{\text{भाग}} \sim \frac{\text{म केज्या.मं'परि}}{\text{भाग}} =$$

$$\frac{\text{मं'परिधि}}{\text{भाग}} (\text{म'केज्या} \sim \text{मं'केज्या}) = \frac{\text{म परिधि} \times \text{मन्दकेग}}{\text{भाग}} = \text{मन्दफलगति}$$

यहां भी आचार्य म'केज्या ∼ म केज्या = मके' — म के = मन्दकेज्यान्तर = मन्दकेन्द्रान्तर = मन्दकेन्द्रगति स्वल्पान्तर से मान लिये हैं।

तब $\frac{\text{म परिधि} \times}{\text{भांश}}$ मन्दकेगति = मन्दफलगति।

मध्यग ± मन्दफलग = मन्दस्पष्टगति। शीउग — म स्पग = शीकेगति

तब $\frac{\text{शीकेज्या त्रि}}{\text{शीक}}$ = स्पकेज्या। एवं $\frac{\text{शी'केज्या त्रि}}{\text{शीक}}$ = स्प'केज्या

दोनों के अन्तर करने से

$\frac{\text{शी'केज्या त्रि}}{\text{शीक}} \sim \frac{\text{शीकेज्या त्रि}}{\text{शीक}} = \frac{\text{त्रि}}{\text{शीक}}$ (शी'केज्या ∼ शीकेज्या) = स्प'केज्या ∼ स्पकेज्या

$= \frac{\text{त्रि शीकेग}}{\text{शीक}}$ = स्पष्टगति

यहां भी शी'केज्या ∼ शीकज्या = शी'केन्द्र ∼ शीके = शीघ्रकेगति।

तथा स्प'केज्या ∼ स्पकेज्या — स्प'केन्द्र = स्पष्टकेगति स्वल्पान्तर से माने हैं

शीउग — स्पष्टकेगति = स्पष्टगति

यदि शीघ्रोच्चगति में स्पष्टकेन्द्रगति नहीं घटेगी तब विलोम शोधन से स्पष्टगति ऋणात्मक होती है यही वक्रगति कहलाती है। ऐसी स्थिति कब होती है इसका कारण हम पहले लिख चुके हैं ये बातें वहीं से समझनी चाहिये। यह आनयन बिलकुल ठीक नहीं है यह उपपत्ति देखने ही से स्पष्ट है ॥ ९ १० ॥

इदानीमुदयास्तदिनानयनं वक्रानुवक्रदिनानयनं चाह।

अस्तोदयकेन्द्रान्त. कलिका केन्द्रगतिभाजिता दिवसा ।
वक्रानुवक्रकेन्द्रान्तरलिप्तास्वैवं हि वक्राहा. ॥ ११ ॥

वि भा.—अस्तोदयकेन्द्रान्तरकला केन्द्रगतिभक्तास्तदाऽस्तोदयदिनानि भवन्ति। एवं वक्रानुवक्रकेन्द्रान्तरकला केन्द्रगतिभक्तास्तदा वक्रदिनानि भवन्ति ॥११॥

अत्रोपपत्ति

यदि केन्द्रगत्यैक दिनं लभ्यते तदाऽस्तोदयकेन्द्रान्त कलाभि किमित्यनुपातेनाऽस्तोदयदिनानि भवन्ति। एवमेव केन्द्रगत्यैक दिनं लभ्यते तदा वक्रानुवक्रान्त केन्द्रकलाभि. किमित्यनुपातेन वक्रा दिनान्यागच्छन्तीति॥ पूर्वपठितवक्रदिनोपपत्तिरियमेवोह्येति ॥ ११ ॥

अब उदयास्तदिन और वक्रानुवक्र दिनानयन करते हैं।

हि भा—अस्तोदय केन्द्रान्त कला को केन्द्रगति से भाग देने से अस्तोदय दिन होते हैं। इसी तरह वक्रानुवक्र केन्द्रान्तर कला में भी वक्रदिन होते हैं ॥ ११ ॥

उपपत्ति

यदि केन्द्रगति में एक दिन पाते हैं तो अस्तोदयकेन्द्रान्तर कला में क्या इस अनुपात से उदयास्त दिन आते हैं। इसी तरह केन्द्रगति में एक दिन पाते हैं तो वक्रानुवक्र केन्द्रान्तर कला में क्या इस अनुपात से वक्र दिन आते हैं॥ पहले ग्रहों के वक्र दिन आचार्य ने पठित किये हैं उसकी उपपत्ति यही समझनी चाहिये॥११॥

इदानीं निरंशदिनानयनमाह।

युगकेन्द्रभगणभक्ता युगभूदिवसा निरंशदिवसाः स्युः॥ ११½॥

वि. भा.—युगभूदिवसा (युगसावनवासरा) युगकेन्द्रभगणभक्तास्तदा निरंशदिवसा स्युः॥ ११½॥

अत्रोपपत्तिः।

एककेन्द्रभगणे यानि दिनानि तानि निरंशदिनानि। तज्ज्ञानार्थमनुपातो यदि युगकेन्द्रभगणैर्युगसावनदिनानि लभ्यन्ते तदैकेन केन्द्रभगणेन किमित्यनुपातेनैककेन्द्रभगणसम्बन्धीनि सावनदिनान्यागच्छन्ति त एव निरंशदिवसा पूर्वं निरंशदिवसा आचार्येण पठितास्तदुपपत्तिरियमेव बोध्या इति॥ ११½॥

इति वटेश्वरसिद्धान्ते स्पष्टाधिकारे फलज्यास्फुटीकरणविधिर्नामक पञ्चमोऽध्यायः समाप्तः॥

अब निरंश दिनानयन करते हैं।

हि. भा.—युगभूदिन में युग केन्द्रभगण से भाग देने पर निरंश दिन होते हैं॥११½॥

उपपत्ति

एक केन्द्र भगण में जो दिन हैं वे ही निरंश दिन कहलाते हैं। उनके ज्ञान के लिये अनुपात करते हैं यदि युग केन्द्र भगण में युगभूदिन पाते हैं तो एक केन्द्र भगण में क्या इस अनुपात से एक केन्द्र भगण सम्बन्धी सावन दिन होते हैं वे निरंश दिन कहलाते हैं। पहले निरंश दिन के पाठ आचार्य ने किये हैं उसकी उपपत्ति यही समझनी चाहिये॥ ११½॥

इति वटेश्वरसिद्धान्त में स्पष्टाधिकार में फलज्यास्फुटीकरणविधि नामक पञ्चम अध्याय समाप्त हुआ॥



षष्ठोऽध्यायः

तिथ्यानयनविधि

तत्रादौ तिथ्यानयनमाह ।

भानूनविधोर्भागा द्वादशभक्ताः फलं गतास्तिथयः ।
षष्टिघ्ने गतगम्ये गतिविवराशोद्धृते नाड्यः ॥१॥

वि भा —भानूनविधोर्भागा (सूर्यरहितचन्द्रस्यांशा रविचन्द्रान्तरांशाः) द्वादशभक्ता फलं गतास्तिथयो भवन्ति । गतगम्ये (भुक्तभोग्यांशप्रमाणे षष्टिघ्ने (षष्टिगुणिते) गतिविवरांशोद्धृते (रविचन्द्रगत्यन्तरांशभक्ते) तदा नाड्य (गतानाड्यो भोग्यनाड्यश्च) भवन्तीति ॥१॥

अत्रोपपत्ति ।

• चक्रांशा (३६०) त्रिंशता भक्तास्तदा द्वादश भवन्त्यतो रविचन्द्रयोरन्तरांशा प्रतितिथौ द्वादशांशा भवन्त्यतोऽनुपातो यदि द्वादशभिरंशैरविचन्द्रान्तरांशैरेका तिथिर्लभ्यते तदेष्टरविचन्द्रान्तरांशै किमित्यनुपातेन गतास्तिथयस्तत्स्वरूपम्

$\frac{१\times(च-र)}{१२}=\frac{च-र}{१२}$, १२—गतांश=भोग्यांश ततोऽनुपातो यदि रविचन्द्रगत्यन्तरांशै षष्टिघटिका लभ्यन्ते तदा गतांशैर्भोग्यांशैश्च किमित्यनुपातेन गतनाड्यो भोग्यनाड्यश्च भवन्तीति ॥१॥

अब तिथ्यानयनविधि अध्याय प्रारम्भ करते हैं ।

उसमे पहले तिथ्यानयन करते हैं ।

हि भा —रवि और चन्द्र के अन्तरांश को बारह से भाग देने से फलगततिथि होती है । तिथिभुक्तांश और भोग्यांश को साठ से गुणकर रवि और चन्द्र के गत्यन्तरांश से भाग देने से गततिथि घटी और गम्यतिथि घटी होती है ॥१॥

उपपत्ति

चक्रांश (३६०) को तीस से भाग देने से बारह होता है अर्थात् प्रतितिथि में रवि और चन्द्र के अन्तर बारह अंश होते हैं । इस पर से अनुपात करते हैं यदि बारह अंश रवि चन्द्रान्तरांश मे एक तिथि पाते हैं तो इष्ट रविचन्द्रांतरांश में क्या इस अनुपात से गततिथि

प्रमाण आता है $\frac{१(\text{चन्द्र}-\text{रवि})}{१२}$ = गततिथि, १२—गततिथ्यंश = भोग्यतिथ्यंश, अब अनुपात से एतत्सम्बन्धी दण्ड लाते हैं यदि रवि और चन्द्र के गत्यन्तरांश मे साठ दण्ड पाते हैं तो गततिथ्यंश और भोग्यांश मे क्या इस अनुपात से गत घटी, और गम्य घटी आ जायेगी ॥१॥

इदानीं नक्षत्रानयनार्थमाह ।

त्रिगुणा ग्रहस्य भागाः खाब्धिहृता भानि येययाते च ।
नखनिहते स्वगतिहृते दिनादिभुक्तर्क्षं भोग्यः स्यात् ॥२॥

वि भा—ग्रहस्य भागा (इष्टग्रहस्यांशा) त्रिगुणा, खाब्धिहृता (४० एभिर्भक्ता) फल भानि (गतनक्षत्राणि) स्यु । शिष्ट वर्तमाननक्षत्रस्य गतशेष भवति । तत् ४० अस्माद् विशोध्य शिष्ट भोग्य भवेत् ते येययाते (भोग्यभुक्ते) नखनिहते (विंशत्या गुणिते) स्वगतिहृते (स्वस्पष्टगत्या भक्ते) दिनादिभुक्तर्क्षभोग्य स्यात् (वर्तमाननक्षत्रस्य तेन ग्रहेण गतगम्यानि दिनानि भवन्तीति ॥

अत्रोपपत्ति

स्पष्टग्रहस्य मेषादिभिर्भुक्तराशिभिर्नक्षत्राणि भवन्ति, सपादद्विनक्षत्रैरथवा नवभिर्नक्षत्रचरणैर्मेषादयः प्रत्येक राशयो भवन्ति, एकराशिकला (१८००) नवभिर्भक्तास्तदैकनक्षत्रपादकला भवन्ति चतुर्भिर्गुणनेन ८०० कला एकनक्षत्रे कला. स्यु । ततोऽनुपातो यद्यष्टशतकलाभिरेक नक्षत्र लभ्यते तदा ग्रहकलाभि कि समागच्छति गतनक्षत्राणि तत्स्वरूपम् = $\frac{१\times \text{ग्रहभाग}\times ६०}{८००} = \frac{\text{ग्रहभाग}\times ३}{४०}$ = गतनक्षत्र + $\frac{\text{शे}}{२०}$, शिष्ट यदा विंशत्या गुण्यते तदा वर्तमाननक्षत्रस्य गतखण्डस्य कला पिण्डात्मक भवति तत पूर्ववद्दिनादि मानमानयमिति ॥२॥

अब नक्षत्रानयन के लिए कहते हैं ।

वि भा—ग्रह के अंश को तीन से गुणकर चालीस से भाग देने से जो फल वह गत नक्षत्र होते हैं, शेष वर्तमान नक्षत्र के गत शेष होता है । उसको चालीस में घटाने से शेष भोग्य होता है । भोग्य और भुक्त को बीस से गुणकर अपनी स्पष्टगति से भाग देने से फल वर्तमान नक्षत्र के उस ग्रह से भोग्य और भुक्त दिन होते हैं ॥२॥

उपपत्ति

स्पष्ट ग्रह के मेषादि भुक्तराशि करके नक्षत्र होते हैं । सवा दो नक्षत्र अर्थात् नौ पाद (चरण) करके मेषादि प्रत्येक राशि होती है । एक राशि कला १८०० को नौ से भाग देने से एक नक्षत्र पाद की कला होती है उसको चार से गुणने से ८०० एक नक्षत्र कला होती है । तब अनुपात करते हैं, यदि ८०० कला में एक नक्षत्र पाते हैं तो ग्रहकला मे क्या

स अनुपात से फल गत नक्षत्र प्रमाण आता है, $\frac{१ \times \text{ग्रहभाग} \times ६०}{८००} = \frac{\text{ग्रहभाग} \times ३}{४०} =$ तनक्षत्र $+ \frac{\text{शे}}{४०}$, शेप को बीस से गुणन से वतमान नक्षत्र के गत खण्ड का कलापिण्ड होता। उस पर पूवव दिनादिमान लाना चाहिए ॥२॥

इदानी स्थूलमानयनमभिधाय सूक्ष्मानयनमाह ।

स्थूलोऽय स्पष्टोऽसावध्यर्धं समार्धभोगो य ।
त वच्म्यधुनाऽभिजित स्फुटभोगोऽह्न विशेषेण ॥३॥
ब्राह्मोत्तरा विशाखादित्याग्न्यध्यर्धभोगसज्ञानि ।
वारुणसार्पार्द्रानिलयाम्येन्द्राण्यर्धभोगीनि ॥४॥
समभोगीन्यन्यानि समभोगो मध्यमा गति शशिन ।
स्वदलयुताऽध्यर्धाख्यो भागो दलिताह्निखण्डमध्य ॥५॥
भगणाश्चक्राच्छुद्धा भोगोऽभिजितोऽथवेन्दुभगणहृता ।
क्ष्माह्ना फल भहीन घटिकाद्यो भघ्नशशिभगणा ॥६॥
वियुक्ता क्वहादगतिघ्ना भगणविभक्ता विधौ कलादिर्वा ।
भगणकला शशिभुक्त्या भजिता शेषोऽथवा प्रोक्त ॥७॥
द्युचरो भभोगहीनो गतयेया लिप्तिका स्वभुक्तिहृता ।
भवति दिवसादिभोगो द्युचराक्रान्तस्य धिष्ण्यस्य ॥८॥

वि भा —अथ (कथितप्रकार) स्थूल । य अध्यर्धसमार्धभोगोऽसौ स्पष्ट । अधुनाऽह्न त (स्पष्ट) वच्मि (ब्रुवे) विशेषेणाभिजित स्फुटभोग इति । ब्राह्मोत्तरा विशाखादित्यानि (रोहिण्युत्तरविशाखापुनर्वसू इतिपट् नक्षत्राणि), अध्यर्धभोगसज्ञानि (अर्धाधिक नक्षत्राणि) भोग प्रत्येकमष्ट विलिप्तोना रसाष्टरुद्रा ११८५।५२ गतिकलाप्रमाणमिति । वारुणसार्पार्द्रानिलयाम्येन्द्राणि (शतभिषश्लेषार्द्रास्वातिभरणिज्येष्ठाख्यानि षट्नक्षत्राणि), अर्धभोगानि (चन्द्रमध्यमगतिकलाऽर्धभोगानि) अन्यानि नक्षत्राणि समभोगीनि (चन्द्रमध्यमगतिकला ७९०।३५ प्रमाणभोगानि) इत्येव स्पष्टीकरोत्यग्रे ॥३-४॥

शशिन (चन्द्रस्य) मध्यमा गति समभोगोऽर्थाच्चन्द्रमध्यमगति तुल्यानि भोगमानानि येषा तानि नक्षत्राणि समभोगसज्ञकानि, स्वदलयुता मध्यमा गति (स्वार्धयुतचन्द्रमध्यमगतितुल्यानि भोगमानानि येषा तानि नक्षत्राणि) अध्यर्धाख्य , दलिता (चन्द्रगत्यर्धतुल्या) येषा भोगकला तानि खण्डमध्य (अर्धभोग), चक्रात् (भगणकलात) भगणा (सर्वर्क्षभोगा) शुद्धा (रहिता) तदाऽभिजितो भोग स्यात् । अथवेन्दुहृता (चन्द्रभगणभक्ता) क्ष्माह्ना (भूदिवसा) फल भहीन तदा घटिकाद्य स्यात् । कह्नात् (कुदिनत) भघ्नशशिभगणा (सप्तविंशति गुणितचन्द्रभगणा) वियुक्ता (रहिता) गतिघ्ना (गतिगुणिता) विधोर्भगण-

विभक्ता चन्द्रभगणभक्ता) वा कलादिफल स्यात् । भगणकला शशिभुक्त्या (चन्द्रगत्या) भजिता (भक्ता) अथवा शेप स एव प्रोक्ता । द्युचर (ग्रह) भभोगहीन गतयेयालिप्तिका (गतगम्यकला) स्वभुक्तिहृता (ग्रहगतिभक्ता) तदा द्युचराक्रान्तस्य (ग्रहवेष्टितस्य) धिष्ण्यस्य (नक्षत्रस्य) दिवसादिभोगो भवेत् ।

सर्वक्षंभोगसख्या = २१३४६ चक्रकलाभ्यो २१६०० विशोध्य शिष्टा २५४ ऽभिजितो भुक्तिकला प्रमाणम् । अथवा सप्तविंशतिगुणितचन्द्रभगणा कुदिनेभ्यो विशोध्याशेषे भगणे कुदिनभक्ते एकदिनभवा कलात्मिका गतिर्भवेत् । इष्टग्रहस्य कला समूहा नक्षत्रभोगकला ८०० विशोध्यास्तदा ग्रहभुक्तानि नक्षत्राणि भवन्ति, शेष भुक्त ८०० कलाभ्यो विशोध्य शेष गम्य ततो ग्रहगतिकलायामेक दिन लभ्यते तदा गतकलाया गम्यकलाया च किमित्यनुपातेन गतदिनानि गम्यदिनानि भवन्ति शेष स्पष्टम् ॥ ५-८ ॥

अत्रोपपत्ति

षडध्यर्धभोगकलानामैक्यम् $= \frac{३ \text{ चग}}{२} \times ६ = ९$ चग

षडर्धभोगकलानामैक्यम् $= \frac{\text{चग}}{२} \times ६ = ३$ चग

पञ्चदशैकभोगकलानामैक्यम् = १५ चग = १५ चग

सर्वयोगकला = २७ चग

चक्रकलाभ्य शुद्धा सर्वयोगकला जाता अभिजिद्भोगकलास्तद्दिनगति = चक्र—२७ चग इय कुदिनगुणा चक्रकलाभक्ता जाता अभिजितो भगणा = कुदिन—२७ चभगण । युगकुदिन युगचन्द्र भगणयोर्ह्रणेन युगे, कल्पकुदिनकल्प चन्द्रभगणयोर्ह्रणेन कल्पेऽभिजितो भगणा भवन्तीति ॥

हि भा —यह कथित प्रकार स्थूल है । अध्यर्ध, सम, अर्धभोग यह जो है सो स्पष्ट है, इसको अब कहता हू विशेष रूप से अभिजित के स्फुटभोग को कहता ■ । रोहिणी, तीनो उत्तरा, विशाखा, पुनर्वसु ये ■ नक्षत्र अध्यर्ध भोगसज्ञक हैं, शतभिषक्, अश्लेषा, आर्द्रा, स्वाति, भरणी, ज्येष्ठा ये छ नक्षत्र अर्धभोग सज्ञक हैं। अन्य नक्षत्र सब समभोग सज्ञक है । चन्द्र की मध्यमगति के बराबर भोग वाले नक्षत्र सब समभोग सज्ञक है । चन्द्रगत्यर्धयुत चन्द्रगति के बराबर भोग वाले नक्षत्र सब अध्यर्ध सज्ञक हैं। चन्द्रगत्यर्ध के बराबर भोग वाले नक्षत्र अर्धभोग सज्ञक हैं । चक्रकला में भगण (सर्वर्क्षभोग) को घटाने से अभिजित का भोग होता है, अथवा कुदिन को चन्द्रभगण से भाग देन से जो फल होता है उसमे नक्षत्रहीन करने से घटिकादि भोग होता है । सत्ताइस गुणित चन्द्रभगण को कुदिन मे घटाने स शेष अभिजित् का कल्प मण्डल यदि युगकुदिन में सत्ताइस गुणित चन्द्रभगण को घटाया जायगा तब अभिजित का युग मण्डल होता है । इसमे एक अहर्गण का गुणकर कुदिन से भाग देने से भगणादि फल होता है । यहा भगण और राशि नही है चार अश, १४ कला आती है

यही अभिजित् का गतिप्रमाण है। अथवा गतिगुणित पूर्व फल को चन्द्रभगणसे भाग देने से कलादि फल होता है अथवा भगणकला को चन्द्रगति से भाग देनेसे शेष वही फल होता है। ग्रह कला म नक्षत्रभोगकला ८०० को घटाने से जो गत या गम्यकला होती है उसको ग्रहगति से भाग देने से ग्रहाक्रान्त नक्षत्र के दिनादि भोग होते हैं। सर्वर्क्ष भोग सख्या = २१३४६ को चक्रकला २१६०० मे घटाने से शेष रहा २५४ यह अभिजित के गतिकला प्रमाण है। अथवा सत्ताईस गुणित चन्द्रभगण को कुदिन मे घटाना शेष भगण को कुदिन से भाग देन से एक दिन की कलात्मक गति होती है। इष्टग्रह कला में नक्षत्र भोग कला ८०० घटाने से ग्रहभुक्त नक्षत्र होने हैं शेष भुक्त होता है, ८०० सो कला म भुक्त को घटाने से गम्य (भोग्य) होता है, तब ग्रहगतिकला मे एक दिन पाते हैं तो गतकला और गम्यकला मे क्या इस अनुपात से गतदिन और गम्यदिन आ जायेंगे। शेष स्पष्ट है ॥ ३-८ ॥

उपपत्ति

छ मध्यर्धभोगकलाओ के योग $= \frac{३ \text{ चग}}{२} \times ६ = ९$ चग

छ अर्धभोगकलाओ के योग $= \frac{\text{चग}}{२} \times ६ = ३$ चग

पन्द्रह एक भोगकलाओ के योग = १५ चग = १५ चग
सब योग कला = २७ चग

इनको चन्द्रकला मे घटाने से अभिजित् की भोगकला = चक्रक—२७ चग इसको कुदिन से गुण कर चक्रकला से भाग देने से अभिजित् के युग या कल्प मे भगण होते हैं कुदिन—२७ च भ। युगकुदिन, युगचन्द्रभगण ग्रहण करने से युग मे अभिजित् भगण आयेगा। कल्पकुदिन, कल्पचन्द्र भगण लेने से कल्प म अभिजित भगण आवेंगे ॥३-८॥

इदानीमभिजितो भुक्तिमाह।

वैश्वान्त्याद्यावभिजिच्छ्रवणघटी चतुष्टये प्रथमे।
तत्रेष्टं भवति कृतं जातस्य मृत्युरचिरेण ॥ ९ ॥

वि भा—वैश्वान्त्याद्यो (उत्तराषाढचतुर्थचरणे) प्रथमे श्रवणघटी चतुष्टये अर्थादुत्तराषाढस्य चतुर्थपाद श्रवणस्य च प्रथमाश्चतस्रो नाड्योऽभिजितो भुक्ति स्यात् तत्र यदि जातकस्येष्ट कृत भवेद्यत्तत्र यदि कस्यापि जन्म भवेत्तदाऽचिरेण (स्वल्पकालेन) मृत्युर्भवेदिति।

अभिजिद्भुक्तिपरिज्ञाने वृद्धैरप्येवमुक्तो यथा तद्वाक्यम्—

पादश्चतुर्थ किल विश्वभस्य नाड्यश्चतस्र प्रथमाश्च विष्णो।
उक्ताभिजिद्भुक्तिरितीयमस्या स्थितो ग्रहो विध्यति धातृताराम् ॥

सिद्धान्तशेखरे श्रीपतिनेत्थ कथ्यते 'सा वैश्वर्वैष्णव भमध्यगधिष्ण्य भुक्ति" इति ॥ ९ ॥

अब अभिजित् की भुक्ति कहते हैं।

हि भा—उत्तराषाढा के चौथे चरण और श्रवण नक्षत्र की प्रथम चार घटी अभिजित् की भुक्ति (गति) है। उसमे जन्म होने से जातक की मृत्यु बहुत शीघ्र होती है, अभिजित् की भुक्ति के विषय मे वृद्धो ने भी ऐसा ही कहा है। जैसे उनके वचन हैं—

'पादश्चतुर्थ किल विश्वभस्य नाड्यश्चतस्र प्रथमाश्च विष्णो।' इत्यादि

सिद्धान्तशेखर मे श्रीपति इस तरह कहते हैं "सा वैश्ववैष्णव भ मध्यग धिष्ण्य भुक्ति" ॥९॥

इदानीमन्य विशेषमाह।

षड्भानि पौष्णसंज्ञाद्रौद्राद् द्वादश नवेन्द्रसंज्ञाच्च।
प्राग्मध्यान्त्यदलेषु व्रजन्ति योगं समं शशिना ॥१०॥

वि. भा—पौष्णसज्ञात् (रेवतीनक्षत्रात्) षड्भानि (षड्नक्षत्राणि) रौद्रात् (आर्द्रात) द्वादश नक्षत्राणि, इन्द्रसज्ञात् (ज्येष्ठा) नक्षत्राणि प्राग्मध्यान्त्यदलेषु (पूर्वार्धमध्यापरार्धेषु) शशिना सम (चन्द्रेण साक) योग (समागम) व्रजन्ति (प्राप्नुवन्ति) इति ॥१०॥

अब अन्य विशेष कहते हैं।

हि भा—रेवती छ नक्षत्र, आर्द्रा से बारह नक्षत्र, और ज्येष्ठा से नौ नक्षत्र पूर्वार्ध, मध्य परार्ध में चन्द्र के साथ मिलते हैं ॥१०॥

इदानी करणानयन माह।

वीनेन्द्व शा भवता रसैः फलं व्येकमश्वहृतशेषम्।
करणं गतागतकला गतिविवराशोद्धृताः कृष्णे ॥ ११ ॥
चतुर्दश्यन्ते शकुनिः कुह्वाश्चतुष्पदः प्रथमे।
नागश्च परे भागे प्रतिपत्पूर्वे च किंस्तुघ्नम् ॥१२॥

वि भा—वीनेन्द्व शा (रविचन्द्रान्तराशा) रसै (षड्भि) भक्ता फल व्येक (रूपरहितम्) अश्वहृतशेष (सप्तभक्तावशिष्ट) करण स्यात्, गतागतकला गतिविवराशोद्धृता (रविचन्द्रगत्यन्तराशभक्ता) तदा वर्त्तमानकरणस्य गतगम्यादिनाडिका सिद्धिरिति ॥११॥

अत्रोपपत्ति।

यदा रविचन्द्रयोरन्तराशा द्वादशागसमास्तदैका तिथिर्भवति, करणस्य तिथेरर्धभोगित्वात् षड्भिर शै रविचन्द्रान्तराशैरेक करण लभ्यते तदेष्टरविचन्द्रान्तराशै किमित्यनुपातेन गतकरणान्यागच्छन्ति, लब्धेषु चैकमूनीक्रियते यत प्रतिपदाद्यर्धगतत्वात् किंस्तुघ्नस्यस्य स्थिरकरणस्य, बवादीना च शुक्लप्रतिपद उत्तरार्धमारभ्य प्रवृत्ते.। गतगम्यादिघट्यानयन तिथिगतगम्यानयनवद् बोध्यम्। अन्यै श्रीपतिप्रभृतिभिरप्याचार्यैरेवमेव करणानयन कृतमस्तीति ॥११॥

कृष्णचतुर्दश्यन्ते (कृष्णचतुर्दश्या उत्तरार्धे) शकुनि करणम्। कुह्वा (अमावास्याया) प्रथमेऽर्धे चतुष्पद करणम्। अमावास्याया परभागे (अन्त्यार्धे) नाग करणम्। प्रतिन्पूर्वे (प्रतिपद पूर्वार्धे) किंस्तुघ्न करणमुक्तमिति ॥ १२ ॥

स्थिरकरणावस्थानविषये ब्रह्मगुप्तेनाप्येवमुच्यते, तथा च तद्वाक्यम्—

कृष्णचतुर्दश्यन्ते शकुनि पर्वणि चतुष्पद प्रथमे।
तिथ्यर्धेऽन्ते नाग किंस्तुघ्नप्रतिपदाद्यर्धे ॥

इद स्वीकृत्य लल्लेनाप्येतदनुसारमेव वच्यते यथा—
शशिनि कृशशरीरे या चतुर्दश्यवश्य शकुनिरपरभागे जायते नाम तस्या ।
तदनु तिथिदले ये ते चतुष्पादनागे प्रतिपदि च यदाद्य तद्धि किंस्तुघ्नमाहु ॥

भास्कराचार्येण "शकुनितोऽसितभूतदलादित्यादिना" कृष्णचतुर्दश्यर्धात्पर यान्यवशिष्टानि त्रीणि प्रतिपत्पूर्वार्धे च चतुर्थमिति चत्वारि शकुनितोऽर्थाच्छकुनि चतुष्पदनागकिंस्तुघ्नानीति।

सूर्यसिद्धान्ते 'ध्रुवाणि शकुनिर्नाग तृतीय तु चतुष्पदम्।
किंस्तुघ्न तु चतुर्दश्या कृष्णायाश्चापरार्धत" ॥

एतेनामावास्या पूर्वापरार्धयोर्नागचतुष्पदकरणे कथिते किन्तु तत्पूर्वापरक्रमे भेदोऽस्त्यत सुधावर्षिणीटीकाया प्राय सर्वेषा मते ब्राह्मक्रम एव समीचीनस्तेन प्रथम शकुनि द्वितीय चतुष्पद तृतीय नागमित्यध्याहार्यम्" लिखितम्। श्रीपतिनापि ब्राह्मक्रम एव स्वीकृतोस्तीति ॥ १२ ॥

अब करणानयन और स्थिर करणो की स्थिति कहते हैं।

हि भा—रवि और चन्द्र के अन्तराश को छ से भाग देकर जो फल हो उसमे एक घटाकर सात से भाग देनेसे जो शेष रहता है वह करण होता है। गत और गम्यकला को रविचन्द्रगत्यन्तराश से भाग देने से वर्तमान करण की गत गम्यनाडी होती है ॥११॥

उपपत्ति

जब रवि और चन्द्र के अन्तराश बारह अश होते है तो एक तिथि होती है। तिथि के आधे को करण होने के कारण यदि छ अश रविचन्द्रान्तराश मे एक करण पाते हैं तो इष्ट रविचन्द्रान्तराश मे क्या इस अनुपात से गत करण आते हैं। यहा लब्धि मे एक घटाते हैं क्योकि किंस्तुघ्न नामक स्थिरकरण प्रतिपद के पूर्वार्ध म पडता है अर्थात् चर करणो की प्रवृत्ति शुक्ल प्रतिपद के उत्तरार्ध से होती है। इन कारणो से पूर्व लब्धि म एक घटाया जाता है। गत घटी और गम्य घटी के आनयन तिथि की गत घटी आदि के आनयन की तरह समझना चाहिये। श्रीपति आदि आचार्य ने इसी तरह करणानयन किया है ॥ ११ ॥

कृष्णचतुर्दशी के उत्तरार्ध म शकुनिकरण होता है। अमावस्या के पूर्वार्ध मे चतुष्पदकरण और परार्ध म नागकरण होता है। प्रतिपदा के पूर्वार्ध म किंस्तुघ्नकरण होता है ॥१२॥

हि भा—स्थिर करण की स्थिति के विषय मे ब्रह्मगुप्त भी इसी तरह कहते हैं, उनके वाक्य ये हैं। 'कृष्णचतुर्दश्यन्ते शकुनि पर्वणि चतुष्पद प्रथमे' इत्यादि।

इसी को स्वीकार कर इसी के अनुसार लल्लाचार्य भी कहते हैं—'शशिनि कृश-शरीरे या चतुर्दश्यवस्य शकुनिरपरभागे जायते नाम तस्या.।' इत्यादि।

भास्कराचार्य 'शकुनितोऽसितभूतदलात्' इससे कृष्ण चतुर्दशी के पूर्वार्ध के बाद जो बाकी तीन करण और प्रतिपद के पूर्वार्ध मे चौथे करण को शकुनि सम्बन्धी करण 'शकुनि, चतुष्पद, नाग, किंस्तुघ्न' मानते हैं। सूर्यसिद्धान्त मे—

ध्रुवाणि शकुनिनाग तृतीय तु चतुष्पदम्। किंस्तुघ्न तु चतुर्दश्या कृष्णायाश्चा-परार्धत ॥ इससे अमावस्या के पूर्वार्ध मे नागकरण, पदार्ध मे चतुष्पदकरण कहते हैं किंतु उन करणद्वय के पूर्वापर क्रम मे भेद है इसलिए सुधावर्षिणी टीका मे (प्राय सब आचार्यों के मत से ब्राह्मक्रम ही ठीक है। अत प्रथम शकुनिकरण, द्वितीय चतुष्पद, तृतीय नाग यह अध्याहार करना चाहिये। ये विषम लिखे हैं। श्रीपतिने भी ब्राह्मक्रमानुसार ही लिखे हैं इति ॥१२॥

इदानी योगानयनमाह।

रविचन्द्रयोगलिप्ताः खखवसुभक्ताः फलं गतायोगा।
खरसगुणे गतयेये गतियुतिभक्ते फलं नाड्यः ॥१३॥

वि भा.—रविचन्द्रयोगलिप्ता (स्फुटरविचन्द्रयोगकला) खखवसुभक्ता. (८०० एभिर्भक्ता) फल गता योगा स्यु। शेष वर्त्तमानयोगताराया गतशेष तत् ८०० भागहारात्यक्ताऽवशेष गम्यगतयेये (गतगम्ये) खरसगुणे (६० एभिर्गुणिते) गतियुतिभक्ते (रविचन्द्रगतियोगभाजिते),फल नाड्य (गता नाड यो गम्या नाड्यश्च) भवन्तीति ॥१३॥

अत्रोपपत्ति।

यदा रविचन्द्रयोगकला = ८०० कला भवन्ति तदेको योगो भवति, ततोऽनु-पातो यदि ८०० कलाभी रविचन्द्रकलाभिरेको लभ्यते तदेष्टरविचन्द्रयोगकलाभिः किमित्यनुपातेनागच्छन्ति गतयोगा। शेष वर्त्तमानयोगस्य भुक्तं, तद्धर ८०० शुद्ध तदा भोग्यम्। ततो यदि रविचन्द्रगतियोगकलाया षष्टिघटिका लभ्यन्ते तदा गतगम्यकलाभि. किमित्यनुपातेन गतनाडिका गम्यनाडिकाश्च समागच्छन्ती-त्यत उपपन्नम् ॥१३॥

अब योगानयन कहते हैं।

हि.भा—स्फुट रविचन्द्र योग कला को ८०० आठ सौ से भाग देने से फल गत-योग होते हैं। शेष वर्तमान योग तारा के गत शेष हैं उसको ८०० हर में घटाने से गम्य

होता है, गतकला को साठ मे गुणकर रविचन्द्र के गतियोग मे भाग देने से गत घटी और गम्य घटी होती है ॥१३॥

उपपत्ति ।

जब रवि और चन्द्र का योगकला ८०० कला होती है तो एक योग होता है, इससे अनुपात करते हैं यदि ८०० सौ रविचन्द्र योग कला म एक योग पाते हैं तो इष्ट रविचन्द्र-योगकला म क्या इस अनुपात से गत योग के प्रमाण आते हैं। शेष वर्तमान योगतारा के गत शेष है, उसको हर ८०० मे घटाने से गम्य होता है, तब अनुपात करते हैं रविचन्द्र गतियोग कला मे यदि ६० घटी पाते हैं तो गतकला और गम्य कला म क्या इस अनुपात से गतघटी और गम्य घटी आती है। इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥१३॥

इदानीं व्यतीपातवैधृतिपातयोर्लक्षणमाह ।

चक्रार्धे व्यतिपातो रविचन्द्रयुतौ समाज्यमधुयोगात् ।
विषवच्चायनभेदे क्रान्तिसमत्वे तयोर्युतिभचक्रे ॥१४॥
वैधृतिरेव क्रान्तिसमत्वे तथायनैकत्वे ।
ऊनाधिकालिप्ताभ्यो गतियुतिलब्ध द्युगणसाध्या ॥१५॥
स्वफलेन युक्तहीना रवीन्दुपाता विधावयनसन्धौ ।

वि भा —रविचद्रयुतौ चक्रार्धे (रविचन्द्रयोगे राशिषट्के) अयनभेदे क्रान्ति-साम्ये समाज्यमधुयोगात् (समपरिमाणकघृतमधुयोगात्) विषवत् (विषमिव) व्यतिपातो व्यतीपातो नामयोगविशेषो भवतीति, विशेषेणात्यन्त मगल पातयति नाशयतीति व्यतीपातो व्यतिपातो वा योगविशेष । एव तयो रविचन्द्रयोर्युतिभचक्रे (रविचन्द्रयोगे द्वादशराशितुल्ये) अयनैकत्वे क्रान्तिसमत्वे वैधृतिः वैधृतिनामयोग स्यात्। मगल विशेषेण ध्रियते अवरोध्यते इति विधृत, विधृत एव वैधृत ॥ ऊनाधिकलिप्ताभ्य (रविचन्द्रयोर्योगे चक्रचक्रार्धहीनाधिककलाभ्य) गतियुति-लब्ध द्युगणसाध्या (रविचन्द्रयोर्गतियोगेन विभक्ता लब्ध यद् दिनादिफल तस्मात्) साध्या स्वफलेन युक्तिहीना रवीन्दुपाता । रविचन्द्रराहवो गतगम्य-दिवसकालिका कर्त्तव्या इति स्वस्वगतितश्चालनद्वारा तत्तात्कालिकीकरण स्फुट-मेवेत्यनेन यदा रविचन्द्रयोर्योगो द्वादशराशिसमस्तथा षड्राशिसमस्तदा रविचन्द्र-पातानयनमाचार्येण क्रियते। विधावयनसन्धावित्यस्याग्रिमश्लोकेन सम्बन्ध ।

अत्रोपपत्ति ।

यदा रविचन्द्रयोर्योग षड्राशितुल्यस्तदा तौ भिन्नायनगतावेकगोलस्थौ च भवत । यथा यद्येक =१ रा तदा द्वितीय =५ रा, एवतयोर्योगे षड्राशितुल्ये प्रमाणे १५।२४।३।३।४२ अत्र द्वयोर्भुजयोस्तुल्यत्वात्तयो स्थानीये क्रान्तिसमे भवतो-ऽतोऽत्र व्यतीपात नामपात स्यादेवेति ॥ अत्र रविचन्द्रयोर्योगेन सायनरवि-चन्द्रयोर्योगो बोध्य इति ॥१४-१५॥

यदा रविचन्द्रयोर्योगो द्वादशराशिसमस्तदा तौ भिन्नगोलगतावेकायनगतौ च भवेताम् यथा यद्येक =१ रा, तथा द्वितीय =११ रा, एव तयो प्रमाणे १।११।। २।१०।।३।६।।४।८।।५।७।।६।६।।७।५।। अत्र द्वयोर्भिन्नगोलत्वमनयोरेकत्व च, भुजयोस्तुल्यत्वाद्रविक्रान्तिचन्द्रस्थानीयक्रान्त्योश्च समत्वात्तत्र वैधृतपातस्य सम्भव इति । रविचन्द्रयोर्योगेन सायनयोर्योगो बोध्य इति शेषोपपत्ति स्फुटैव ॥१४-१५॥

अब व्यतीपात और वैधृतिपात के लक्षण कहते हैं ।

हि भा —रवि और चन्द्र के योग छ राशि होने पर अयनभेद और क्रान्तिसाम्य होने से समान मात्रा मे मधु और घृत के मिलने से जैसे विष होता है उसी तरह व्यतिपात नामक योग होता है, एव रवि और चन्द्र के योग बारह राशि हो तो क्रान्तिसमत्व और अयन के एकत्व के कारण वैधृति नाम का पात होता है। यदि रवि चन्द्र का योग छ राशि से न्यून हो तो जितना न्यून है वह ऊन कला कहलाती है। यदि योग छ राशि से अधिक है तो जितना अधिक है वह अधिक कला कहलाती है। इसी तरह रवि चन्द्र के योग बारह राशि से न्यूनाधिक रहने पर ऊनकला और अधिककला समझनी चाहिये। उन कलाओ को स्फुट-गतियोग से भाग देना जो दिनादिफल हो उन गतैष्य दिन करके युक्त और हीन रवि, चन्द्र और पात को करना चाहिए अर्थात् रवि चन्द्र और पात को गत गम्य दिवसचालित करना चाहिये। अपनी अपनी गति से चालन द्वारा तात्कालिकीकरण स्पष्ट ही है ॥१४-१५॥

उपपत्ति

यदि रवि और चन्द्र का योग छ राशि के बराबर है तब दोनो भिन्न अयन मे और एक गोलगत होते हैं। जैसे यदि एक के मान=१ रा तो दूसरे=५ रा, इसी तरह उन दोनो के प्रमाण १।५।।२।४।।३।३।।४।२।। यहा रवि चन्द्र के भुजाश तुल्य होने से दोनो की स्थानीय क्रान्ति बराबर होती है इसलिये यहा व्यतीपात नाम का पातयोग होता है यहा रवि और चन्द्र के योग सायन रवि चन्द्र का योग समझना चाहिये ॥

यदि रवि और चन्द्र के योग बारह राशि के बराबर है तो दोनो भिन्न गोलगत और एक अयनगत होते हैं जैसे यदि एक के मान=१रा तो दूसरे के मान=११ रा एव उन दोनो के प्रमाण १।११।।२।१०।।३।६।।४।८।।५।७।।६।६।।७।५ यहा दोनो के भिन्न गोलत्व और अयन मे एकत्व है, दोनो के भुजाश बराबर होने के कारण स्थानीय क्रान्ति बराबर होती है अत यहा वैधृति नाम का पातयोग होते हैं॥ यहा रविचन्द्र का योग सायन समझना चाहिये। यदि ऊन कला को रवि और चन्द्र के गतियोग से भाग देने तो एष्य दिन आयेंगे और अधिक कला मे भाग देने से गत दिन आते हैं उन गत और एष्य दिनो से गुणित गतिकला को पृथक् स्थापित करना, गतिकला दिनावयव घटी से गुणाकर साठ से भाग देने से जो लब्ध कला हो उसे पूर्व स्थापित म मिलाकर ग्रह मे जोडने घटाने से तात्कालिक ग्रह होते हैं। इस तरह रवि, चन्द्र और राहु का तात्कालिकीकरण करना चाहिए ॥१४-१५॥

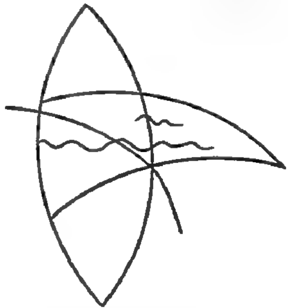
इदानीं साधारण्येन क्रान्तिसाम्यसंभवासंभवज्ञानमाह ।

विदिशो. क्षेपक्रान्त्यो क्रान्त्यूनोऽपक्रम परम' ॥१६॥
यदि विक्षेपादूनो यात पातस्तदाऽन्यथा भवति ।
अयनादे. प्रागूर्ध्वं पञ्चाग्निमिरक्षकं सन्धि ॥१७॥

वि भा—विधो (चन्द्रे) अयनसन्धौ तस्य या क्रान्ति सा तस्य स्फुटा परमा तस्मात्स्थानादग्रत पृष्ठतो वा यावच्चन्द्रश्चाल्यते तावत्तस्य क्रान्तिर्न्यूनैव भवति । अतोऽधिकया रविक्रान्त्या सह साम्य नास्ति । अतोऽन्ययाऽस्तीति । अयनादितश्चन्द्रायनसन्धि ३५ पञ्चत्रिंशदंशै पूर्वं पश्चाद्भवतीति ॥

अत्रोपपत्ति

अननाचार्येण चन्द्रगोलायनसन्ध्योर्ज्ञान न कृत केवलमित्येव कथ्यते यदयनादित ३५ अशान्तरे चन्द्रायनसन्धिर्भवति । भास्कराचार्येण चन्द्रगोलायनसन्ध्योर्ज्ञान कृत, विमण्डलनाडीमण्डलयो सम्पातगतकदम्बप्रोतवृत्त क्रान्तिवृत्ते यत्र लगति स चन्द्रगोलसन्धि । ततैव नवति संयोज्य यो विन्दुर्भवति त चन्द्रायनसन्धि कथयति भास्कर । विमण्डलनाडीमण्डलयो सम्पातान्नवत्यशेन यद्वृत्त तत्क्रान्तिवृत्ते यत्र लगति स विन्दुरेव पूर्वोक्तप्राचीनचन्द्रायनसन्धि । यतश्चन्द्रगोलसन्धौ नवतियोजनेन स एव विन्दुर्भवति,पर तद्वृत्त (विमण्डलनाडीमण्डलसम्पातोत्पन्ननवत्यशवृत्त, क्रान्तिवृत्तोपरि लम्बरूप नास्त्यत प्राचीनोक्त चन्द्रायनसन्धि समीचीनो नास्ति, विमण्डलनाडीमण्डलसम्पातोत्पन्ननवत्यशवृत्त यत्र विमण्डले लगति तद्विन्दूपरिगतकदम्बप्रोतवृत्त यत्र कान्तिवृत्तं लगति स एव वास्तवचन्द्रायनसन्धि । नवीना एतमेव बिन्दु चन्द्रायनसंधि कथयन्ति, तयो (प्राचीनायनसन्धिनवीनायनसन्ध्योरन्तरज्ञान सुलभेनैव भवितुमर्हति, गोलसन्ध्यन्तरस्य (रविगोलसन्धिचन्द्रगोलसन्ध्योरन्तरस्य) ज्ञान तत्परम कदा भवतीत्येतस्यापि ज्ञान सुलभेनैव भवति, प्राचीनायनसन्धिनवीनायन-



चित्र १०

सन्ध्योरन्तरस्य परमत्वं भवति तज्ज्ञानं कदा भवति परन्तु ग्रन्थविस्तरभयादेते विषया अत्र न लिख्यन्ते इति ॥१६-१७॥

अब साधारण तथा सम्भवासम्भव लक्षण कहते है।

हि. भा.—चन्द्र के अयनसन्धि मे रहने से जो उनकी क्रान्ति होती है वह परमस्पष्ट क्रान्ति है। उस स्थान से आगे पीछे यावत् चन्द्र को चालित करते हैं तावत् उनकी क्रान्ति न्यून होती है। इसलिये अधिक रवि क्रान्ति के साथ तुल्यता नही होती है। इससे भिन्न ही है। अयनादि से चन्द्रायनसन्धि ३५ अंश पर आगे पाछे होती है ॥

उपपत्ति

आचार्य ने चन्द्र की गोलसन्धि और अयनसन्धि का ज्ञान नही किया है, केवल इतना कहते हैं कि अयनादि से ३५ अंशान्तर पर अयनसन्धि होती है। भास्कराचार्य ने चन्द्रगोलसन्धि और अयनसन्धि का ज्ञान किया है, विमण्डल नाडीमण्डल सम्पातगत कदम्बप्रोतवृत्त क्रान्तिवृत्त मे जहा लगता है उस विन्दु को चन्द्रगोलसन्धि कहते है। इसी मे ९० अंश जोड देने से जो विन्दु होता है उसको अयनसन्धि कहते है। विमण्डल नाडीमण्डल के सम्पात से नवत्यंश-व्यासार्धवृत्त क्रान्तिवृत्त मे जहा लगता है वही विन्दु प्राचीनायनसन्धि (भास्करोदितायन सन्धि) है क्योंकि चन्द्रगोल सन्धि मे ९० अंश जोडने से वही विन्दु होता है। परन्तु यह वृत्त (विमण्डल नाडीमण्डल सम्पातोत्पन्न नवत्यंश वृत्त) क्रान्तिवृत्त के ऊपर लम्ब रूप नहीं है इसलिये भास्कर स्वीकृत चन्द्रायनसन्धि ठीक नही है। विमण्डल नाडीमण्डल सम्पातो त्पन्न नवत्यंशवृत्त विमण्डल मे जहा लगता है उस विन्दु के ऊपर जो कदम्ब प्रोतवृत्त कीजियेगा वह क्रान्तिवृत्त मे जहा लगता वही वास्तव चन्द्रायन सन्धि है, नवीन लोग इसी को चन्द्रायन सन्धि कहते है। प्राचीनायनसन्धि और नवीनायनसन्धि का अन्तरज्ञान सुगम होता है। रविगोलसन्धि और चन्द्रगोलसन्धि का अन्तर ज्ञान और उसका परमत्व कब होता है इनका ज्ञान भी सुलभ होता है, प्राचीनायनसन्धि और नवीनायनसन्धि के अन्तर का परमत्व कब होता है उसके ज्ञान भी होते हैं किन्तु ग्रन्थ विस्तारभय से यह विषय यहा नही लिखा जाता है ॥१६-१७॥

इदानी सति चन्द्रान्तरे विशेषमाह।

एकदिशोर्व्यतिपातः क्रान्त्योर्विदिशोस्तु वैधृतं भवति।
दिग्भेदेऽपक्रमणं महदप्यूनं वियोज्यम् ॥१८॥

वि. भा.—एकदिशो (एकदिक्स्थयो) क्रान्त्योरन्तरं तदा व्यतीपातः स्यात्। विदिशो (भिन्नदिक्स्थयो) क्रान्त्योर्योगे वैधृत भवति। दिग्भेदे वियोगस्थले अपक्रमणं (स्पष्टक्रान्तिचाप महदपि रविक्रान्तिचापादित्यर्थं), [illegible] सुतरामेव न्यूनमिति ॥१८॥

[illegible]

एकदिशो [illegible]

रेव रविचन्द्रयोर्भवति, क्रान्त्यन्तरे चन्द्रसूर्ययोर्याम्योत्तरभावेन स्थिति । तदन्तर रविचन्द्रयोरहोरात्रवृत्तयोरन्तरम् यदि च चन्द्रक्रान्ति शरेण भिन्नगोल नीता तदा रविचन्द्रयोरहोरात्रवृत्तयोभिन्नगोले स्थितत्वात् स्वक्रान्त्यग्रे एकस्योत्तरतोऽन्यस्य स्वक्रान्त्यग्रे दक्षिणतोऽवस्थानात्क्रान्तियोगेनैवाहोरात्रवृत्तयोरन्तर भवेत् । रवेरहोरात्रवृत्त नाडीवृत्तादुत्तरतो दक्षिणतो वा यावतान्तरेण भवेत्तावतैवान्तरेण यदि चन्द्रस्याहोरात्रवृत्त नाडीवृत्ताद् भिन्नदिशि भवेत्तदा वैधृतनामा पात । रविर्दक्षिणगोलेऽस्ति, तदुपर्यहोरात्रवृत्त कार्यं, नाडीवृत्तात्तावतान्तरेणोत्तरश्चन्द्रोपर्यहोरात्रवृत्त कार्यं तदा वैधृत इति । यदा च पुनश्चेष्टकालिकचन्द्र उत्तरगोले भवेत्तदोत्तरक्रान्तेरल्पत्वात्तदहोरात्रवृत्तादमन्यस्मिन्नहोरात्रवृत्त दक्षिणे भ्रमति तदा तयोर्वृत्तयोरन्तरज्ञानार्थमुपाय । नाडीवृत्ताद्रवेर्दक्षिणक्रान्तितुल्यन्तरे उत्तरतस्तद्वृत्त कार्यम् । वेष्टकालिकचन्द्रस्य यदन्यदहोरात्रवृत्त तच्चन्द्रस्योत्तरक्रान्त्यग्रे, तेन रविदक्षिणक्रान्तिचन्द्रोत्तरक्रान्त्योयदन्तर तदेव तदहोरात्रवृत्तयोरन्तरम् । अथ यदि शरवशाद्दक्षिणगोल नीतस्तदा चन्द्रस्य स्पष्टा क्रान्तिर्दक्षिणा भवेत् । इष्टकालिकचन्द्रस्य यद्भिन्नमहोरात्रवृत्त तदुत्तरे कृताहोरात्रवृत्तस्य चान्तर तयो क्रान्त्योर्योगे कृते भवति तेन "एकदिशोर्व्यतिपात क्रान्त्योर्विदिशोस्तु वैधृत भवतीत्युपपन्नम्" । यदि चन्द्रस्य स्थानीयक्रान्तेरधिकस्तच्छरो भिन्नदिक्काया क्रान्तिसीमाया सकाशात्स्वा दिश क्रान्तिचापमानयेत्ताहशस्थितौ चन्द्रस्पष्टक्रान्तिचाप रविक्रान्तिचापादधिकमपि भवेत्तदा न्यूनमेव कल्प्यम् । ब्राह्मस्फुटसिद्धान्ते ब्रह्मगुप्तेनाप्येवमुच्यते, तथाच तद्वाक्यम्—

व्यतिपातोऽपक्रमयोर्दिक्साम्ये वैधृतो दिगन्यत्वे ।
अधिकोऽप्यून कल्प्य दिग्भेदेऽपक्रम शशिन ॥

शिष्यवृद्धिदतन्त्रे लल्लेन—

कल्प्योऽधिकोऽप्यूनक एव चान्द्र स्फुटोऽपमश्चन्द्रमसोऽन्यदिक्स्थ ।
इत्युक्तम् ।

श्रीपतिनाऽपि सिद्धान्तशेखरे लल्लोक्तसदृशमेव वक्ष्यते ।।इति ।।१८।।

अब चन्द्रशर रहने पर विशेष कहते हैं।

हि भा —एक दिशा म रविक्रान्ति और चन्द्रक्रान्ति का अन्तर करने तब व्यतिपात योग होता है। भिन्न दिशा म क्रान्ति के योग करने से वैधृतयोग होता है। दिग्भेद मे चन्द्रस्पष्टक्रान्ति रविक्रान्ति चाप से अधिक भी हो तो उसे न्यून ही मानना चाहिए। न्यून तो सुतरा न्यून है ही।।१८।।

उपपत्ति

एक दिशा मे रवि और चन्द्र के क्रान्त्यन्तर व्यतिपात योग म होता है क्योंकि एक गोल मे रवि और चन्द्र के रहने ही से व्यतिपात योग होता है। क्रान्त्यन्तर पर उत्तर दक्षिण के रूप म रवि और चन्द्र की स्थिति है। क्रान्त्यन्तर रवि चन्द्र के अहोरात्रवृत्तो का अन्तर

है, यदि शर के द्वारा चन्द्रक्रान्ति भिन्नगोल में लाई गई तब रवि चन्द्र के अहोरात्रवृत्तो के भिन्नगोल में रहने के कारण अपने क्रान्त्यग्र पर एक को उत्तर दूसरे को अपने क्रान्त्यग्र पर दक्षिण रहने से दोनो क्रान्तियो के योग करने से ही अहोरात्रवृत्तान्तर होता है। रवि के अहोरात्रवृत्त नाडीवृत्त से जितने अन्तर पर उत्तर या दक्षिण है उतने ही अन्तर पर यदि चन्द्र के अहोरात्रवृत्त नाडी वृत्त से भिन्न तरफ हो तब वैधृत नाम का योग होता है। रवि दक्षिण गोल में है उनके ऊपर अहोरात्रवृत्त कर देना, नाडीवृत्त से उतने ही अन्तर पर उत्तर तरफ चन्द्र के ऊपर अहोरात्रवृत्त कर देना, तब वैधृत होता है। यदि चक्रकालिक (जिस समय रविचन्द्र के योग बारह राशि के बराबर होता है) चन्द्र उत्तर गोल में हैं तब उत्तर क्रान्ति के अल्पता के कारण उनके अहोरात्रवृत्त से दक्षिण भिन्न अहोरात्रवृत्त मे भ्रमण करते हैं तब वहां उन दोनो अहोरात्रवृत्तो के अन्तरज्ञान के लिये उपाय करते है। नाडीवृत्त से रवि की दक्षिण क्रान्ति तुल्यान्तर पर उत्तर तरफ अहोरात्र वृत्त करना, वा इष्टकालिक चन्द्र के जो भिन्न अहोरात्रवृत्त है वह चन्द्र के उत्तर क्रान्त्यग्र पर, इसलिये रवि दक्षिण क्रान्ति और चन्द्र की उत्तरा क्रान्ति का जो अन्तर है वही उन अहोरात्र वृत्तो का अन्तर है। यदि शरवश से दक्षिण गोल में लाये गये तब चन्द्र की स्पष्टा क्रान्ति दक्षिण होगी। इष्टकालिक चन्द्र का जो भिन्न अहोरात्र वृत्त है उसका और उत्तर तरफ जो अहोरात्र वृत्त किये हुए हैं उन दोनों के अन्तर उन दोनो क्रान्तियो के योग करने से होता है, इसलिये 'एकदिशोर्व्यतिपात क्रान्त्योर्विदिशोस्तु वैधृत भवति' यह उपपन्न हुआ ॥ यदि चन्द्रस्थानीय क्रान्ति से अधिकशर भिन्नदिशा की क्रान्ति सीमा से अपनी तरफ क्रान्तिचाप को लावे तो उस स्थिति में चन्द्र स्पष्ट क्रान्तिचाप को रविक्रान्ति चाप से अधिक रहने पर भी न्यून मानना चाहिये। ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त में ब्रह्मगुप्त भी इसी तरह कहते है। जैसे उनके वाक्य है—

व्यतिपाताऽपक्रमयोर्दिक्साम्ये वैधृतो दिगन्यत्वे ।
अधिकोऽप्यून कल्प्यो दिग्भेदेऽपक्रम शशिन ॥

शिष्यधीवृद्धिदतन्त्र मे लल्लाचार्य ने—

'कल्प्योऽधिकोऽप्यूनक एव चान्द्र स्फुटोऽपमश्चन्द्रमसोऽन्यदिक्स्य ।'

कहा है।

लल्लोक्त सदृश ही श्रीपति भी सिद्धान्तशेखर मे कहते हैं ॥१८॥

इदानी पातस्य गतागतत्वमाह ।

विषमपदगे यदीन्दो क्रान्तिर्महती सहस्रगुक्रान्तेः ।
भूतोऽन्यथा तु भावी समपदगे व्यत्ययात्पातः ॥१९॥

वि. भा.—यदि इन्दो (चन्द्रे) विषमपदगे क्रान्तिः (चन्द्रस्फुटा क्र सहस्रगुक्रान्ते. (सूर्यक्रान्ते) महती (अधिका) भवेत्तदा पातो भूतः (गत.) अन्यथा भावी पातो भवेत् चन्द्रे समपदगे व्यत्ययात् (विलोमात्) पातो भवतीति ॥१९॥

अत्रोपपत्ति.

गोलसन्धौ चन्द्ररव्यो· पदादि', विषमपदे (प्रथमे तृतीये वा) गोलसन्धितोऽग्रे यथा यथा तयोर्गमनं भवेत्तथा तथा तत्क्रान्तिर्वर्धते, पदान्ते क्रान्तेः परमत्वं भवेत्। तेन विषमपदीयचन्द्रक्रान्तिर्यदि रविक्रान्तितोऽधिका भवेत्तदा तु चन्द्रो रवेः क्रान्ति-स्थानं प्राप्य तदुल्लङ्घ्याग्रे गतो भवेदतः पातो गतोऽन्यथैष्य: । एवं द्वितीये चतुर्थे च पदे यथा यथा रविचन्द्रावग्रे गच्छतस्तथा तथा तत्क्रान्तिरपचीयते, गोल-सन्धौ क्रान्ति शून्या भवेत्। समपदे चन्द्रक्रान्तिर्यदि रविक्रान्तितोऽल्पीयसी तदा ऽग्रगतश्चन्द्रः परावर्त्य रविक्रान्तिस्थानं प्राप्याल्पक्रान्तिर्जातोऽर्थाद् गोलसन्धि प्रत्यागन्तुं लग्नस्तदाऽपि गत एव पातोऽन्यथैष्य इति ॥

ब्राह्मस्फुटसिद्धान्ते—

मेषतुलादाविन्दोरपक्रमे रव्यपक्रमादूने। एष्यो ह्यधिकेऽतीतो विपरीतः कर्किमकरादौ ॥

इति ब्रह्मगुप्तोक्तं, शिष्यधीवृद्धिदतन्त्रे—

"अयुग्मजश्चान्द्रमसोऽपमश्चे दपक्रमाद् भानुमतोऽधिकः स्यात्।
समोद्भवो वापि लघुस्तदेतो निपातकालो भविताऽन्यथाऽतः ॥"

इति लल्लोक्तं च। सिद्धान्तशिरोमणौ—

"ओजपदेन्दुक्रान्तिर्महती सूर्यापमाल्लघु समजा।
यदि भवति तदा ज्ञेयो यात. पातस्तदन्यथा गम्यः ॥"

इति भास्करोक्तं च सर्वमेकरूपमेवेति ॥१६॥

अब पात के गतैष्यत्व कहते हैं

हि भा—यदि चन्द्र विषमपद मे हो उनकी स्पष्टक्रान्ति रविक्रान्ति से बड़ी हो तब पात गत होता है इससे अन्यथा भावी (एष्य) होता है, समपद मे विलोम (उल्टा) होता है ॥१६॥

उपपत्ति

गोल सन्धि पदादि है। विषम पद (प्रथम या तृतीय) मे गोलसन्धि से आगे ज्यो-ज्यो रवि और चन्द्र आयेंगे त्यों-त्यों उनकी क्रांति बढ़ती है। पदन्त मे क्रांति का परमत्व होता है। इसलिये विषमपदीय चन्द्रक्रांति यदि रविक्रांति मे अधिक होगी तो चन्द्र रवि क्रांतिस्थान को पाकर उसको छोड़कर आगे चले जायेंगे इसलिये पातयोग गत होगा, इस मे अन्यथा एष्य होता है। एवं द्वितीय और चतुर्थपद मे ज्यो ज्यो रवि और चन्द्र आगे जाते है त्यो त्यों उनकी क्रांति घटती है गोल सधि मे क्रांति अभाव होता है। समपद मे चन्द्र क्रांति यदि रविक्रांति से छोटी है तो आगे गये हुये चन्द्र लौटकर रविक्रांति स्थान को पाकर अल्प-क्रांतिक हो जाते हैं अर्थात् गोलसधि मे लौटने लगते हैं तथापि गतपात योग होता है अन्यथा एष्य होता है इति ॥ ब्राह्मस्फुटसिद्धांत मे ब्रह्मगुप्त भी इसी तरह कहते हैं। जैसे उनके वाक्य हैं—

मेषतुलादाविन्दोरपक्रमं रव्यपक्रमादूने ।
एष्यो ह्यधिकेऽतीतो विपरीतं कर्किमकरादौ ॥

शिष्यधीवृद्धिदतन्त्र में लल्लाचार्य भी इसी तरह कहते हैं—
'अयुग्मजश्चन्द्रमसोऽपमश्चे द' इत्यादि ।
सिद्धांतशिरोमणि म भास्कराचार्य भी इसी तरह कहते हैं—
"ओजपदेन्दुक्रान्तिर्महती इत्यादि ॥१६॥

इदानीं यस्मिन् काले रविचन्द्रयोगश्चक्रार्धचक्र वा तस्मात्कालाद्गता गतस्य क्रान्तिसाम्यकालस्य ज्ञानमाह ।

विवरयुतिर्व्यतिपाते युतिविवरं वैधृते समान्यदिशो ।
क्रान्त्यो प्रथमो राशिस्तथेष्टघटिकाभिरन्योऽपि ॥२०॥
यदि भूतो भावी वा द्वयोर्विशेषोऽन्यथा युतिर्हारः ।
आद्यहतेष्टनाड्या प्रथमवशान्मध्यमेताभिः ॥२१॥
तात्कालिकैर्ग्रहैस्तैरसकृत्ववशिष्टमध्यनाडीघ्नम् ।

वि भा —समान्यदिशो (एकदिक्कयोर्भिन्नदिक्कयोश्च) क्रान्त्यो (रविचन्द्र-क्रान्त्यो) विविरयुति (अन्तर योगेऽर्थादेकदिक्कयो क्रान्त्योरन्तर भिन्नदिक्कयो क्रान्त्योर्योग) व्यतिपातयोगे प्रथमो राशि (प्रथमसज्ञक)भवतीर्थं ,वैधृते योगे समा न्यदिशो (एकदिक्कयोर्भिन्नदिक्कयोश्च) क्रान्त्यो , युतिविवर (योगोऽन्तरमर्थादेक-दिक्कयोर्योगो भिन्नदिक्कयोरन्तर) प्रथमसज्ञक । तथेष्टघटिकाभि अन्योऽपि राशि साध्य । एतदुक्त भवति काचिदिष्टघटिका परिकल्प्य ताभी रविचन्द्रराहुगती सगुण्य षष्टिभिर्भक्त्वा फल कलादिक तेषु (रविचन्द्रराहुषु गतगम्यपातकालयो-र्धनर्णं कृत्वा तत्कालेऽपि रविचन्द्रयो क्रांतिमाने समानीय (विवयुतिर्व्यतिपाते युति-विवर" मित्यादिना अन्योऽपि राशि साध्य । यदि प्रथमोऽन्यश्च भूत (गत)वा भावी (गम्य) तदा द्वयो (प्रथमान्ययो) विशेष (अन्तर) अन्यथाऽर्थात्तयोर्मध्ये एको गतो द्वितीयो गम्यस्तदा तयोर्युति (योग) आद्यहतेष्टनाड्या (आद्यगुणित-पूर्वकल्पितेष्टनाड्या) हारो भवेत् । आद्यगुणितपूर्वकल्पितेष्टनाडीहारविभक्ता-लब्धघटीभि प्रथमवशाद्गत भविष्यद् वा मध्य (पातमध्य) बोध्यम् । एताभिर्घटीभि र्हीनयुतैस्तैस्तात्कालिकै (रविचन्द्रराहुभि) असकृत्क्रियया मध्य (पातमध्य) भव-तीति । नाडीघ्नमित्यस्याग्रिमश्लोकेन सम्बन्ध ॥

अत्रोपपत्ति

व्यतीपातयोगे एकदिशो क्रान्त्योरन्तर भवति रविचन्द्रयोरेकगोले स्थित-त्वात, तत्क्रान्त्यन्तर रविचन्द्रयो रहोरात्रवृत्तयोरन्तरम् । यदा हि चन्द्रक्रान्ति शरे-णान्यगोल नीता तदा तयो क्रान्त्योर्योग कार्य (रविचन्द्रयोरहोरात्रवृत्तयोभिन्न-

भिन्नगोले स्थितत्वात्) एकस्य स्वक्रान्त्यग्रे उत्तरतोऽन्यस्य स्वक्रान्त्यग्रे दक्षिणतोऽर्न-क्रान्त्योर्योगेनैवाहोरात्रवृत्तयोरन्तरं भवेत्। नाडीवृत्तादुत्तरतो दक्षिणतो वा याव-तान्तरेण रवेरहोरात्रवृत्तं नाडीवृत्ताद् भिन्नदिशि तावतान्तरेणैव यदि चन्द्रस्याहो-रात्रवृत्तं भवेत्तदा वैधृतनामा पातः स्यात्। अथ दक्षिणगोले रविरस्ति तदुपर्यहोरात्र वृत्तं कार्यं नाडीवृत्तादुत्तरतस्तावतान्तरेण भिन्नमहोरात्रवृत्तं कार्यं तत्र यदि चन्द्रो भवेत्तदा वैधृतपात इति भावः। यदा चक्रकालिकश्चन्द्र उत्तरगोले भवेत्तदा स्वोत्तर-क्रान्तेरल्पत्वात्तस्मादहोरात्रवृत्ताद्भिन्नेऽहोरात्रवृत्ते दक्षिणतो भ्रमति तदा तयो-र्वृत्तयोरन्तरज्ञानार्थं नाडीवृत्तादुत्तरे रवेर्दक्षिणक्रान्त्यन्तरेऽहोरात्रवृत्तं कार्यम्। अतो रविदक्षिणक्रान्तेश्चन्द्रोत्तरक्रान्तेश्च यदन्तरं तदेव तयोरहोरात्रवृत्तयोरन्त-रम्। यदि शरेण दक्षिणगोलं नीतः तदा चन्द्रस्फुटा क्रान्तिर्दक्षिणा भवेत्, अत्रेष्ट-कालिकचन्द्रस्य यद्भिन्नमहोरात्रवृत्तं तस्योत्तरे कृताहोरात्रवृत्तस्य चान्तरं क्रान्त्यो-र्योगेनैव भवेत्। अतो युतिविवरं वैधृते समान्यदिशोरित्युक्तम्। तत्क्रान्त्योरन्तरं प्रथमसञ्ज्ञकम्। क्रान्त्यन्तरस्य ह्रासोन्मुखस्य यदाऽभावस्तदा क्रान्तिसाम्यं भवेत्। तद्ह्रासस्य वृद्धिस्त्वं नैव कर्तुं शक्यतेऽत इष्टघटीभिश्चालितयो रविचन्द्रयो पूर्वव-त्क्रान्त्यन्तरं नेयं तदन्यसञ्ज्ञकम्। तयो प्रथमान्ययोर्यदन्तरं तदिष्टघटीसम्बन्धि-क्रान्त्यन्तरस्यापचयमानम्। तेन तयोरन्तरं ह्रनम्। परमेव तदेव यदा प्रथमान्य-कालयोर्गतं गम्यं वा लक्षणम्। यदि प्रथमकाले गतलक्षणमन्यकाले गम्यलक्षणं तदा तत्र प्रथमान्ययोर्योगे कृतेऽन्तरं कृतं भवेत्ततोऽनुपातो यदि तावता क्रान्त्यन्तरा-पचयेनेष्टघटिका लभ्यन्ते तदा प्रथमेन किमित्यनुपातेन या घटिका भवन्ति ताभि-र्घटिकाभिरसकृत्कर्मणा स्फुटा भवितुमर्हन्तीत्याचार्योक्तिमुपपन्नम् ॥२० २१॥

हि भा—अब जिस समय में रवि और चन्द्र के योग ६ राशि या १२ राशि होता है उस काल से गत और गम्य क्रान्ति साम्यकाल का ज्ञान कहते हैं।

व्यतीपात योग में एक दिशा की रवि चन्द्रक्रान्ति के अन्तर, भिन्न दिशा की रवि-चन्द्रक्रान्ति के योग प्रथम सञ्ज्ञक है। वैधृत योग में एक दिशा की रवि चन्द्रक्रान्ति के योग, भिन्न दिशा की क्रान्तियों के अन्तर प्रथम सञ्ज्ञक हैं। और इष्ट घटी करके अन्य राशि भी साध्य न करना, कोई इष्टघटी मानकर उससे रवि, चन्द्र और राहु इनकी गतियों को गुण-कर साठ से भाग देकर जो कलादि फल हो उसको गत और गम्य पातकाल में रवि, चन्द्र और राहु में धन, ऋण करके उस काल में रवि और चन्द्र की क्रान्ति लाकर पूर्ववत् (विवर-युतिर्व्यतिपाते इत्यादि के अनुसार) अन्य राशि भी साधन करना, यदि प्रथम और अन्य भूत या भावी हो तब दोनों के अन्तर इससे अन्यथा अर्थात् एक गत और दूसरे गम्य हो तो दोनों के योग प्रथम गुणित पूर्वकल्पित इष्टघटी के हर होते हैं। प्रथम गुणित इष्टघटी को हर से भाग देकर जो घट्यादि फल होता है उस करके प्रथमवश गत गम्य पातमध्य सम-झना चाहिये। इतनी घटी (पूर्वानीत घटी) करके हीनयुत तात्कालिक रवि, चन्द्र और राहु करके असकृत्प्रकार से पातमध्य होता है ॥ २०-२१ ॥

उपपत्ति

व्यतीपात योग में रवि और चन्द्र के एक गोल में रहने के कारण एक दिशा की रविचन्द्र क्रान्ति के अन्तर भिन्न दिशा की क्रान्तियों का योग प्रथम संज्ञक होता है। क्रान्त्यन्तर रवि चन्द्र के अहोरात्र वृत्तों का अन्तर है, जब चन्द्रक्रान्ति शर के द्वारा भिन्न गोल में लाई गयी तब दोनों क्रान्तियों का योग करना चाहिये, क्योंकि रवि और चन्द्र के अहोरात्र वृत्त भिन्न भिन्न गोल में हैं, एक के अहोरात्रवृत्त उत्तर में अपने क्रान्त्यग्र पर हैं दूसरे के अहोरात्रवृत्त दक्षिण में अपने क्रान्त्यग्र पर है इसलिये वहां दोनों क्रान्तियों के योग करने ही से अहोरात्र वृत्तान्तर होता है, नाडीवृत्त से उत्तर या दक्षिण जितने अन्तर पर रवि का अहोरात्र वृत्त है उतने ही अन्तर पर नाडीवृत्त से भिन्न तरफ यदि चन्द्र के अहोरात्र वृत्त हो तब वैधृत नाम का पात होता है। रवि दक्षिणगोल में है रवि के ऊपर अहोरात्रवृत्त कर देना, नाडीवृत्त में उत्तर उतने ही अन्तर पर अन्य अहोरात्र वृत्त करना उसमें यदि चन्द्र होंगे अर्थात् वह यदि चन्द्र के अहोरात्र वृत्त होगा तो वैधृत पात होता है। जब चक्रार्धालिक (जिस समय रवि चन्द्र के योग बारह राशि के बराबर होता है) चन्द्र उत्तर गोल में होंगे तब अपनी उत्तरा क्रान्ति की अल्पता के कारण उस अहोरात्रवृत्त से भिन्न अहोरात्रवृत्त में दक्षिण तरफ भ्रमण करते है तब उन दोनों वृत्तों के अन्तरज्ञान के लिये नाडीवृत्त से उत्तर रवि के दक्षिण क्रान्त्यग्र पर अहोरात्रवृत्त कर देते हैं तब रवि की दक्षिण क्रान्ति और चन्द्र की उत्तर क्रान्ति के अन्तर जितने होंगे उतने ही दोनों अहोरात्रवृत्तों के अन्तर होंगे। यदि शर के द्वारा चन्द्र क्रांति दक्षिण लाई गयी तब चन्द्र की स्फुट क्रान्ति दक्षिण होगी, यहां इष्टकालिक चन्द्र के जो भिन्न अहोरात्र वृत्त होंगे उनके और उत्तर तरफ किये हुए अहोरात्र वृत्तों के अन्तर दोनों क्रांतियों के योग ही में होगा। इसलिए 'युतिविवर वैधृते समान्यदिशो' यह कहा गया है। वह क्रान्त्यन्तर प्रथम संज्ञक है। ह्रासोन्मुख क्रान्त्यन्तर का जब अभाव होगा तब क्रांति साम्य होगा, उस ह्रास का वृद्धित्व नहीं कर सकते हैं इसलिए इष्टघटी करके चालित रवि और चन्द्र के पूर्ववत् क्रान्त्यन्तर लाना वह अन्य संज्ञक है। प्रथम और अन्य का जो अन्तर है वह इष्टघटी सम्बन्धी क्रान्त्यन्तर का अपचयात्मक मान है इसलिए दोनों के अन्तर किये गये। लेकिन ऐसा तब भी होगा जब कि प्रथमकाल और अन्यकाल के गत या गम्य लक्षण होंगे। यदि प्रथमकाल में गत लक्षण और अन्यकाल में गम्य लक्षण होंगे तब वहां प्रथम और अन्य के योग करने ही से अन्तर होगा। अब अनुपात करते हैं यदि इस क्रान्त्यन्तर अपचय में इष्टघटी पाते हैं तब प्रथम में क्या इस अनुपात से जो घटी होती है उसके द्वारा असकृत्कर्म से स्फुट होते हैं। इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥२०-२१॥

एवं पातमध्यमभिधायेदानीं पाताद्यन्तकालपरिज्ञानमाह।

मानैक्यार्धं भक्तं प्रथमेनाप्तघटिकाभिराद्यन्तौ ॥२२॥
निजबिम्बापक्रान्त्या रविमानापक्रमं जहातीन्दुः।
यावत्सममार्गगतस्तावत्पातोक्तफलसिद्धिः ॥२३॥

वि भा.—मानैक्यार्धं (पूर्वानीतस्पष्टेष्टघटिकाभिश्चक्रार्धचक्रकालिकौ रविचन्द्रौ प्रचाल्य पातमध्यकालिकौ कृत्वा तयोर्बिम्बे साध्ये तयोरर्धयोर्योगो

मानैक्यार्धम्) मध्यनाडीघ्न (ग्रानीतस्पष्टघटीभिर्गुणित) प्रथमेन भवनमाप्त- घटिकाभि (लब्धघटिकाभि) ग्राद्यन्तो (पातमध्यकालात्पूर्वत पातस्यादि । तथा ताभिरेव लब्धघटिकाभि पातमध्यकालादग्रत पातस्यान्त) इन्दु (चन्द्र) निजबिम्बापक्रान्त्या (स्फुटक्रान्त्या) रविमानापक्रम (रविक्राति) जहाति (उल्लङ्घ्याग्रे गच्छति) यावत्काल चन्द्र सममार्गगत एकाहोरात्रगतस्ताव- त्पातोक्तफलसिद्धि । अर्थाद् यावत्क्रान्त्योरन्तर मानैक्यार्धादल्प भवति तावद् बिम्बैकदेशजक्रान्त्यो साम्यात्तत्फल भवति तदभावे तत्फलाभाव इति । अतो याव- त्क्रान्तिसाम्य तावदेव तस्य फल वाच्य तेन यस्मिन् दिने पातस्तत्समस्त दिन न दुष्टमिति फलितम् ।

अत्रोपपत्ति

यदा क्रान्तिसाम्य तदैव पातस्तस्मात्कालात् प्राक् परतश्च पातस्य स्थमव- स्थानम् । तत्र क्रान्तिसाम्याभावात् क्रान्तिसाम्य नाम पात । बिम्बमध्यक्राति- बिम्बार्धेन रहिता सती पाश्चात्यबिम्बप्रान्तस्य तावती क्रातिर्भवति, बिम्बमध्य- क्रातिर्बिम्बार्धेन युता सती अग्रतो बिम्बप्रान्तस्य क्रातिर्भवति । एव रविचन्द्रयोश्च, अत्र बिम्बे पृष्ठमग्र च याम्योत्तरभावेन कथ्यते । रविबिम्बपृष्ठक्रान्तियावती तावत्येव यदा चन्द्रस्याग्रप्रान्तक्राति, तदा तयोर्बिम्बयोरेकदेशेन क्रान्त्यो साम्या- त्पातस्यादि । तदा तयोर्बिम्बकेन्द्रयोरन्तर मानैक्यार्धतुल्यम् । तत क्रमेण गच्छतो रविचन्द्रयोर्यदा बिम्बकेन्द्रीयक्रातिसाम्य तदा पातमध्यम् । तदनन्तर चन्द्रपृष्ठप्रातस्य रवेरग्रप्रातस्य च यदा क्रातिसाम्य तदा पातान्त । यत क्रान्त्य- न्तर यावन्मानैक्यार्धान्न्यून तावत्पातोऽस्तीति । अथ पातमध्यसाधने यत्प्रथमसन्न क्रान्त्यन्तर यश्चासकृत्प्रकारेण स्पष्टीकृता इष्टघटिकास्ततोऽनुपातो यदि प्रथम- तुल्येन क्रान्त्यतरेणैतावत्यो घटिका लभ्यन्ते तदा मानैक्यार्धतुल्यातरेण किमित्यनुपा- तेन या घटिका समागच्छन्ति ता स्थित्यर्धघटिका स्थूलास्तत्स्फुटीकरणम् । तात्कालिकयो रविचद्रयो पुन क्रान्त्यतर कार्य तन्मानैक्यार्धसिन्न ततोऽनुपात यद्यनेन क्रान्त्यतरेणैतावत्य स्थित्यर्धघटिका लभ्यन्ते तदा मानैक्यार्धतुल्येन किमि- त्येवमसकृत्-घटीना स्फुटत्वम् ॥२२ २३॥

हि भा —अब पातमध्य को कह कर पात के आदि और अत काल ज्ञान कहते हैं। पहले लाई हुई स्पष्ट इष्टघटी करके चक्रार्ध और चक्रकालिक रवि और चन्द्र को चालन देकर पातमध्यकालिक करके उन दोनो के बिम्ब साधन करना, दोनो व्यासार्धों के योग मानैक्यार्ध है, इसको पूर्वानीत स्पष्ट इष्ट घटी से गुण कर प्रथम से भाग देने से जो घटिकादि फल हो उतने करके पात मध्यकाल से पूर्व पात की आदि होती है और उतनी ही घटी करके पातमध्यकाल से आगे पात का अन्त होता है। चन्द्र अपनी स्फुट क्राति करके रवि क्रान्ति को लाघ कर आगे जाते है। जब तक रवि और चन्द्र सम मार्ग (एक मार्ग याने एक अहोरात्र म रहते है तब तक पात का फल होता है। अर्थात् जब तक क्रान्त्यतर

मानैक्यार्ध से अल्प होता है तब तक बिम्ब के एक प्रदेश की क्रांति बराबर होने से उसका फल ऋषियों ने कहा है उसके अभाव मे फलाभाव जानना चाहिये इसलिए जब तक क्रान्तिसाम्य रहता है तभी तक उसका फल होता है अत जिस दिन पात होता है वह समग्रदिन दुष्ट नही होता है ॥२२-२३॥

उपपत्ति

जब क्रांति साम्य होता है तो पात होता है। उस काल से (क्रान्तिसाम्यकाल) आगे और पीछे क्यो पात की स्थिति होती है। क्योंकि वहा क्रान्तिसाम्य नही है। क्रान्तिसाम्य ही का नाम पात है। बिम्बमध्यक्रांति मे बिम्बार्ध जोडने से आगे के बिम्ब प्रांत की क्रांति होती है। इस तरह रवि और चन्द्र दोनो की होती है। यहा बिम्ब मे आगे पीछे से मतलब याम्योत्तर भाव से है। रविबिम्ब पृष्ठक्रांति के बराबर जब चन्द्रबिम्ब के अग्रप्रान्त की क्रांति होगी तब उन दोनो बिम्बो के एक देश की क्रांति बराबर होने से पात की आदि होती है। तब दोनो बिम्बकेन्द्रो के अन्तर मानैक्यार्ध के बराबर होता है। उसके बाद क्रम मे भ्रमण करते हुए रवि और चन्द्र की केन्द्रीय क्रांति जब बराबर होगी तब पातमध्य होता है। उसके बाद चन्द्र पृष्ठप्रांतीय क्रान्ति जब रवि के अग्रप्रान्तीय क्रान्ति के बराबर होगी तब पात का अन्त होता है। क्योंकि मानैक्यार्ध से क्रान्त्यन्तर जब तक न्यून रहेगा तब तक पात रहेगी। पात मध्यसाधन मे क्रान्त्यन्तर आद्यसंज्ञक है और प्रथमप्रकार मे स्पष्टीकृत इष्ट घटी जो है उन पर से अनुपात करते हैं। यदि प्रथम तुल्य क्रान्त्यन्तर मे ये इष्ट घटी पाते है तो मानैक्यार्ध तुल्य अन्तर मे क्या इस अनुपात मे जो घटी आती है वह स्थित्यर्ध घटी स्थूल है उसका स्फुटीकरण करते हैं। तात्कालिक रवि और चन्द्र के पुन क्रान्त्यन्तर करना वह मानैक्यार्ध के आसन्न होता है, उस पर से अनुपात करते हैं यदि इस क्रान्त्यन्तर म यह स्थित्यर्धघटी पाते है तो मानैक्यार्ध म क्या इस तरह असकृत् करने से उसका स्फुटत्व होता है ॥२२-२३॥

इदानी रविचन्द्रयो समलिप्ताधानमाह।

तिथिगतयेय घटीघ्न्यो रवीन्दुभुक्ती विभाजिते षष्टया।
फललिप्ताविधुतयुतौ तिथ्यन्ते समकलौ भवत ॥२४॥
गतयेय विकलघ्ने गती रवीन्द्वोर्गमान्तरेण हृते।
फललिप्ताभिः प्राग्वद्वियुतयुतौ समकलौ स्तः ॥२५॥
तिथियेय यातघटिकातुल्यकलाभिर्युतोनितेन्दुरवी ।
तिथिलिप्ताभिश्चैव समलिप्तौ वा विधूष्णकरौ ॥२६॥

वि भा.—रवीन्दुभुक्ती (रवीन्द्वगती) तिथिगतयेयघटीघ्न्यौ (तिथिगतगम्यनाडिकागुणिते) षष्ट्या विभाजिते फललिप्ताविधुतयुतौ (लब्धकलारहितयुतौ) तौ तिथ्यन्ते (इष्टतिथ्यन्ते) समकलौ (कलाद्यवयवेन तुल्यौ) भवत ॥ रवीन्द्वोर्गती (रविचन्द्रगती) गतयेयविकलघ्ने (गतगम्यशेषगुणिते) गमान्तरेण (गत्यन्तरेण भक्ते) फलकलाभि पूर्ववद्वियुतयुतरविचन्द्रौ समकलौ भवत. ॥ तिथियेययान-

घटिकातुल्यकलाभि (तिथिगम्यगतघटीतुल्यकलाभि) तिथिलिप्ताभिश्च (तिथि-कलाभिश्च) युतोनितेन्दुरवी वा समकलौ विधूष्णकरौ (चन्द्रसूर्यौ) भवेताम् ।।२४-२६।।

अत्रोपपत्ति

यदि षष्टिघटीभी रविगतिकला लभ्यन्ते तदा तिथिगतगम्यघटीभि किमित्यनुपातेन तिथिगतगम्यकला समागच्छन्ति। एव चन्द्रगतिकलावशेन तिथि-गतगम्यकला समागमिष्यन्ति। आभि स्वस्वगतगम्यकलाभिर्वियुतयुतौ रविचन्द्रौ तिथ्यन्ते समकलौ भविष्यत। शेषोपपत्ति स्फुटैवास्तीति ।।२४-२६।।

अब रवि और चन्द्र का समकला स्थान कहते हैं।

हि भा —रवि और चन्द्र की गति को तिथि को गत घटी और गम्य घटी से गुण-कर साठ से भाग से जो फल कला हो उस करके रहित और सहित रविचन्द्र की गति को करने से इष्टतिथ्यन्त मे कलाद्यवयव करके रवि और चन्द्र बराबर होते हैं।

रवि और चन्द्र की गति को तिथिगत शेष और गम्य शेष से गुणकर गत्यन्तर मे भाग देने से जो फलकला हो उन करके पूर्ववत् रहित सहित करने से रवि और चन्द्र-कलाद्यवयवेन बराबर होते हैं।। तिथि गम्य और गत घटी तुल्य कला करके तथा तिथि-कला करके सहित और रहित चन्द्र और सूर्य कलाद्यवयवेन बराबर होते हैं ।।२४ २६।।

उपपत्ति

यदि साठ घटी म रविगति कला पाते हैं तो तिथिगत घटी और गम्य घटी म क्या इस अनुपात से गत कला और गम्य कला आती हैं। इस तरह चन्द्रगति कलावश कर गत कला और गम्य कला आती है। इन अपनी अपनी गत कला और गम्य कला करके रहित और सहित रविचन्द्र इष्ट तिथ्यन्त म कलादि अवयव करके बराबर होते हैं।।

शेष की उपपत्ति स्पष्ट है ।।२४-२६।।

इदानी रविचन्द्रयो समभागसमराशिस्थानमाह ।

करणान्ते तिथ्यन्ते समौ कलाभिस्तथा च पूर्णान्ते।
समभागौ मासान्ते समराशी भास्करेन्दू स्त ।।२७।।

वि भा —पूर्णान्ते (पूर्णिमाया) भास्करेन्दू (रविचन्द्रौ) समभागौ (अंशाद्य-वयवेन तुल्यौ) मासान्ते (अमान्ते) समराशी (राश्याद्यवयवेन तुल्यौ) स्तः (भवत) इति ।।२७।।

अत्रोपपत्ति ।

रविचन्द्रयोरन्तर यदा द्वादशभागसम तदेका तिथिर्भवति, स्फुटमासान्ते त्रिंशत्तिथय । अतो रविचन्द्रान्तरांशा $=३० \times १२^{\circ} = ३६०^{\circ}$ वा शून्यसमा । अतो

राश्याद्यवयवे रविचन्द्रौ समौ पूर्णिमायां पचदश तिथय । अतो रविचन्द्रान्तरम्= $१५\times१२^\circ=१८०^\circ=६$ राशय । अतो रविचन्द्रावशाद्यवयवैस्तुल्यौ भवत. । अन्यथा कथ तयोरन्तरे केवल राशय एव भवन्ति एव कस्मिन्नपि तिथ्यन्ते रविचन्द्रयोरन्तराशा द्वादशापवर्त्या एव । तेन तदन्तरे कला विकला समत्वादेव केवल भागा उत्पद्यन्ते इति ॥ ब्रह्मगुप्तेनाप्येवमुच्यते राश्यशकलाविकला. स्फुटमासान्तेऽशलिप्तिकाविकलाः । पक्षान्ते तिथ्यन्ते समा रवीन्द्वोः कला विकला । श्रीपतिलल्लादिभिरप्येवमेव कथ्यते इति ॥२७॥

अब रवि और चन्द्र के समाश और समराशि स्थान कहते है ।

हि भा —पूर्णान्त मे चन्द्र और रवि अशाद्यवयवेन बराबर होते है । अमान्त मे राश्यादि करके बराबर होते हैं ॥२७॥

उपपत्ति

रवि और चन्द्र का अन्तर जब बारह अश होता है तब एक तिथि होती है । स्फुट मासान्त मे तीस तिथिया है । अत $३०\times१२^\circ=३६०^\circ$ या शून्य=रविचन्द्रान्तराश । इसलिए अमान्त मे राश्यादि रवि और चन्द्र बराबर होते हैं । पूर्णान्त मे तिथि=१५ इसलिए रवि चन्द्राश= $१५\times१२^\circ=१८०^\circ=६$ राशि, इसलिए पूर्णान्त मे अशाद्यवयव करके रवि और चन्द्र बराबर होते हैं । अन्यथा दोनो के अन्तर केवल छ राशि होंगे । एव किसी तिथ्यन्त मे रवि और चन्द्र का अन्तराश द्वादश भक्त ही होगा । इसलिए उनके अन्तर मे कला विकला के समत्व रहने के कारण केवल अश ही आते हैं । ब्राह्मस्फुटसिद्धात मे ब्रह्मगुप्त भी इसी तरह कहते हैं । जैसे उनके वाक्य है—

राश्यशकला विकला स्फुट मासांतेऽशलिप्तिका विकला ।
पक्षान्ते तिथ्यन्ते समा रवीन्द्वो कला विकला ॥

श्रीपति लल्लाचार्य आदि आचार्य इसी तरह कहते हैं ॥२७॥

इदानीं सक्रान्तिकालराशिकरणतिथियोगानामन्तकाल निर्णेतुमाह ।

गत्यंशहृतबिम्बं संक्रमकालो ग्रहस्य घटिकादिः ।
पुण्यतमोऽर्कस्यायं राश्यन्तं त्यजति रविबिम्बे ॥२८॥
शशिबिम्बं षष्टिगुणं गतिविवरहृतं च करणतिथ्यन्तम् ।
गतियुतिहृद्योगान्तं मिश्रफलमत्र स्थितो द्युचरः ॥३०॥
अत एवानिष्टानामाद्यन्तौ तिथिकरणयोगानाम् ।
नेष्टौ विष्टिर्वारस्तिथिस्त्र्यहस्पृक् दिनं भवति ॥२९॥

वि भा —ग्रहस्य विम्ब गत्यशहृत (गत्यशभक्त) तदा घटिकादि सक्रमणकाल. । अर्कस्य (सूर्यस्य) अय सक्रमणकाल पुण्यतम (अतिपुण्यतम' स्मृतिपुराणोक्त) रवि बिम्बे (स्वमण्डले) राश्यन्त त्यजति (पूर्वार्धपुण्यकालेन पूर्वराश्यन्त

.जति, परार्धेन पुण्यकालेन परराशे पूर्वभाग विशति) । शशिविम्ब (चन्द्रविम्ब) षिगुण (पष्ट्यागुणित) गतिविवरहृत (रविचन्द्रगत्यन्तरभक्त) तदा करण-तथ्यन्तम् (पष्टिगुणित चन्द्रविम्बे रविचन्द्रगत्यन्तरभक्ते यद्घटघादिफल तत्करण-तथ्यो प्रान्त स्यात्) । पष्टिगुण चन्द्रविम्ब गतियुतिहृत् (रविचन्द्रगतियोगभक्त) तदा योगान्त भवति । तत्र लब्धे अस्य पूर्वार्धेन निर्गमकाल उत्तरकालेनोत्तर-प्रवेश । अत्र तिथ्यन्ते, करणान्ते योगान्ते च स्थितो द्युचर (ग्रह) मिश्रफल (पूर्वापरतिथ्यादीना फल) विधत्ते । अतएवानिष्टाना तिथिकरणयोगाना आद्यन्तौ नेष्टौ (अशुभौ), विष्टि (भद्रा) वार (दिन) तिथि, इति त्र्यहस्पृक्सज्ञक दिन भवतीति ।

अत्रोपपत्ति

अत्रानुपात यदि ग्रहगतिकलाभि षष्टिघटिका लभ्यन्ते तदा ग्रहविम्बकलाभि

किमित्यनुपातेन समागता विम्बघटी तत्स्वरूपम् $= \frac{६० \times \text{ग्रविक}}{\text{ग्रगतिकला}} = \frac{\text{ग्रविकला}}{\frac{\text{ग्रहगकला}}{६०}}$

$= \frac{\text{ग्रविकला}}{\text{ग्रहगत्यश}}$ = सक्रान्तिकाल । अन्यग्रहसक्रान्तिकालापेक्षया रविसक्रान्ति-काल स्मृतिपुराणवर्णितोऽतीव पुण्यजनक यदि रविचन्द्रगतियोगेन पष्टिघटिका लभ्यते तदा चन्द्रविम्बकलाया किमित्यनुपातेन (तिथिकरणयो प्रान्तकाल समागच्छति, तत्रैव पष्टिगुणितचन्द्रविम्बे रविचन्द्रगतियोगभक्ते तदा योगस्य प्राप्तकाल (एकयोगाद् योगान्तरगमनकाल) समागच्छति, शेष स्पष्टम् । ब्रह्मगुप्तेन ब्राह्मस्फुटसिद्धान्ते इत्थ कथ्यते—

मानार्धात् पष्टिगुणाद्भुक्तिहृतान्नाडिकादिलब्धेन ।
राश्यान्तात्प्रागादि पश्चादन्तोऽर्कसक्रान्ते ॥
सक्रान्तिपुण्यकालो यल्लब्ध नाडिकादितद्द्विगुणम् ।
स्नानजपहोमदानादिकोऽत्र धर्मो विशिष्टफल ॥
एव नक्षत्रान्तात् तिथिकरणान्ताच्छशिप्रमाणार्धात् ।
षष्टिगुणाद्रविशशिनोर्भुक्त्यन्तरलब्धघटिकाभि ॥

सिद्धान्तशेखरे श्रीपतिनेत्थ कथ्यते—

पष्टिघ्न सूर्यविम्ब स्फुटगतिविहृत सोऽर्कसक्रातिकाल ।
पुण्य स्मृत्यादिपूक्तस्त्यजति दिनमणिर्मण्डले भान्तमेवम् ।
पष्टिघ्ने चन्द्रविम्बेऽप्युडुकरणतिथिप्रान्तमन्त युतेर्वा ।
चान्द्रया भुक्त्येन्दुभान्वोर्गतियुतिवियुतिभ्या क्रमान्नाडिकादि ॥२८-३०॥

इति वटेश्वरसिद्धान्ते स्पष्टाधिकारे तिथ्याद्यानयनविधि षष्ठोऽध्याय समाप्त ।

हि भा —अब सक्रान्तिकाल, राशिकरण तिथियोगा का अन्तकाल कहते है। ग्रह-विम्ब को रविचन्द्र के गत्यश से भाग देने से जो घटी आदि फल होता है वह सक्रमणकाल है। रवि का यह सक्रमणकाल बहुत पुण्यप्रद है। रवि अपने मण्डल मे राश्यन्त को छोडते है अर्थात्पूर्वार्धे पुण्यकाल से पूर्व राश्यन्त को छोडते है, और परार्धपुण्यकाल से परराशि के पूर्व भाग मे प्रवेश करते हैं। चन्द्रविम्ब को साठ मे गुण कर रविचन्द्र के गत्यन्तर से भाग देने से फलकरण और तिथि का प्रान्त होता है। साठ मे गुणित चन्द्रविम्ब को रवि-चन्द्र के गतियोग से भाग देने से योगान्त होता है (लब्धि के पूर्वार्ध से निर्गमकाल और उत्तरार्ध से उत्तर मे प्रवेश) तिथ्यन्त राश्यन्त, करणान्त, योगान्त मे स्थितग्रह मिश्रफल (पूर्वापर राश्यादिफल) करते है इसलिए अनिष्ट तिथि, करण और योग के आदि और अन्त नेष्ट (अशुभ) है। और विष्टि (भद्रा) दिन, तिथि यह "त्र्यहस्पृक् दिन" कहलाता है ।।२८-३०।।

उपपत्ति

यदि ग्रहगति कला मे साठ घटी पाते हैं तो ग्रहबिम्ब कला मे क्या इस अनुपात से बिम्बघटी प्रमाण आता है $\frac{६० \times \text{ग्रबिक}}{\text{ग्रगतिक}} = \frac{\text{ग्रबिक}}{\frac{\text{ग्रगतिक}}{६०}} = \frac{\text{ग्रबिक}}{\text{ग्रहगत्यंश}} = $ सक्रमण काल, अन्यग्रह सक्रान्तिकाल की अपेक्षा रवि का सक्रमणकाल बहुत पुण्यद है ।। २८ ।।

यदि रवि और चन्द्र के गत्यन्तर मे साठ घटी पाते है तो चन्द्र विम्ब कला मे क्या इस अनुपात से तिथि और करण प्रान्त आता है। और साठ गुणित चन्द्रविम्ब कला मे रवि और चन्द्र के गतियोग से भाग देने से योग का प्रान्तकाल होता है ।। शेष विषय स्पष्ट है। ब्रह्मगुप्त ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त म इस तरह कहते हैं—

'मानार्धात् षष्टिगुणाद्भुक्तिहृतान्नाडिकादिलब्धेन ।' इत्यादि ।

सिद्धान्तशेखर मे श्रीपति इस तरह कहते हैं—

'षष्टिघ्न सूर्यविम्ब स्फुटगतिविहृत सोऽर्कसक्रान्तिकाल ।' इत्यादि ।।२८-३०।।

इति वटेश्वरसिद्धान्त मे स्पष्टाधिकार मे तिथ्याद्यानयनविधि नामक छठा अध्याय समाप्त हुआ।



सप्तमोऽध्यायः

अथ प्रश्नविधि

स्पष्टगतावपि वच्मि प्रश्नाध्याय मुदे हि दैवविदाम् ।
मतिकुमुदिनी शशाङ्क कुतन्त्रविज्ञागसिंहमहम् ॥१॥

वि भा—स्पष्टगतावपि (स्पष्टगतिनामकेऽधिकारेऽपि) मतिकुमुदिना शशाङ्क (बुद्धिरूपकैरवण्याश्चन्द्रसदृश) कुतन्त्रविनागसिंह (असत्तन्त्रज्ञगज-सिंह) प्रश्नाध्याय दैवविदा (ज्योति शास्त्रज्ञाना) मुदे (हर्षाय) अह वच्मि (ब्रूव) इति ॥१॥

हि भा—स्पष्टगति नामक अधिकार म भी बुद्धिरूप कुमुदिनी के चन्द्र सदृश और असत् तन्त्र के जानने वाले व्यक्ति विशेष रूप हाथी के लिए सिंह रूप प्रश्नाध्याय को ज्योतिषियो के हर्ष के लिए मैं कहता हू ॥१॥

इदानी प्रश्नानाह ।

कोट्यशकर्यं कुरुते भुजज्या बाहु शकैर्वेत्ति च कोटिजीवाम् ।
बाहुज्ययाऽग्रा हि तया च दोर्ज्या जानात्यसौ स्पष्टगति ग्रहाणाम् ॥२॥

वि भा—य कोटय शकैर्भु जज्या कुरुत तथा वाहु शकै (भुजाशै) कोटि जीवा (कोटिज्या) बाहुज्यया (भुजज्यया) अग्रा (कोटिज्या) तथा तया (कोटि-ज्यया) दोर्ज्या भुजज्या कुरुते असौ ग्रहाणा स्पष्टगति जानातीत्यह मन्ये ॥२॥

एतदुत्तरार्थमुपपत्ति

कोटिचापतो भुजज्याज्ञान यथा ९० कोटय श=भुजाश, ज्यासाधनरीत्यै त्यस्य ज्या भुजज्या भवेत एव ९०=भुजाश=कोटयश ज्यासाधनेन कोटिज्या भवेत् । तथा भुजज्याज्ञानेन

$\sqrt{त्रि^2 - भुजज्या^2}$=कोटिज्या, तथा कोटिज्याज्ञानेन $\sqrt{त्रि^2 - कोटज्या^2}$=भुजज्या अत सिद्धम् ॥२॥

अब प्रश्न कहते हैं ।

हि. भा.—जो व्यक्तिविशेष कोट्यंश से भुजज्या जानते हैं, और भुजांश से कोटिज्या जानते हैं, भुजज्या से कोटिज्या जानते हैं, कोटिज्या से भुजज्या जानते है वे ग्रहों की स्पष्टगति को जानते हैं ॥२॥

इनके उत्तर के लिये उपपत्ति

कोट्यंश से भुजज्या ज्ञान, ९०—कोट्यंश=भुजांश ज्यासाधन नियम से इसकी ज्या भुजज्या होती है, इसी तरह ९०—भुजांश=कोट्यंश इसकी ज्या कोटिज्या होती है । भुजज्या ज्ञान से $\sqrt{\text{त्रि}^2 - \text{भुजज्या}^2}$=कोटिज्या । तथा कोटिज्या ज्ञान से $\sqrt{\text{त्रि}^2 - \text{कोटिज्या}^2}$=भुजज्या इस तरह सब प्रश्नों के उत्तर हो गये ॥२॥

पुनरन्यान् प्रश्नानाह ।

क्रमज्यया स्वोत्क्रममौर्विकां तथा निजक्रमज्यां श्रवणं विना ग्रहम् ।
भुजज्यया च श्रवणाच्च कोटिकां तथा च दोर्ज्यां कुरुते स धीवरः ॥३॥

वि. भा.—क्रमज्यया (ज्यया) स्वोत्क्रममौर्विकां (भुजांशोत्क्रमज्यां) कोटिज्यया कोट्युत्क्रमज्यां तथोत्क्रमज्यया निजक्रमज्यां, श्रवणं (कर्णं) विना भुजज्यया ग्रहम्, श्रवणात् (कर्णात्) कोटिकां (कोटिं) तथा (कोटिज्यया) दोर्ज्यां (भुजज्यां) यः कुरुते स धीवरः (बुद्धिश्रेष्ठः) अस्तीति ॥३॥

एतदुत्तरार्थमुपपत्तिः ।

उत्क्रमज्याज्ञानेन (व्यास—उज्या)×उज्या=क्रमज्या² मूलेन $\sqrt{(\text{व्यास}-\text{उज्या})\ \text{उज्या}}$=क्रमज्याक्रमज्याज्ञानेनोत्क्रमज्याज्ञानं ज्या व्यासयोगान्तरघातमूलमित्यादिनोत्क्रमज्याज्ञानं भवेदेव । अथवा त्रि—कोट्युत्क्रमज्या=भुजज्या । त्रि—कोज्या=भुजोत्क्रमज्या एवं त्रि—भुजोत्क्रमज्या=कोटिज्या, त्रि—भुजज्या=कोट्युत्क्रमज्या ॥

तथा कर्णज्ञानेन स्पष्टकोटिज्ञानम् । मृगकर्क्यादिकेन्द्रवशात्स्पष्टा कोटि=त्रि± अन्त्यफलज्या $\sqrt{\text{कर्ण}^2 - \text{भुजज्या}^2}$=स्पष्टकोटि । वा $\sqrt{\text{कर्ण}^2 - \text{स्पष्टको}^2}$= भुजज्या ॥ ∴ सिद्धम् ॥३॥

अब अन्य प्रश्नों को कहते हैं ।

हि. भा.—क्रमज्या से अपनी उत्क्रमज्या को तथा उत्क्रमज्या से अपनी क्रमज्या को बिना कर्ण के भुजज्या से ग्रह को, कर्ण से स्पष्टकोटि को, स्पष्टकोटि से भुजज्या को जो जानते हैं वे अच्छी बुद्धि वाले हैं ॥३॥

इनके उत्तर के लिये उपपत्ति

(व्यास—उज्या) उज्या = क्रमज्या² मूल लेने से $\sqrt{(\text{व्या}-\text{उज्या})\text{उज्या}}$ = क्रमज्या इससे उत्क्रमज्या ज्ञान से क्रमज्या ज्ञान हो गया, अब क्रमज्या ज्ञान से 'ज्या व्यास योगान्तर घातमूल' इत्यादि से उत्क्रमज्या ज्ञान हो जायेगा, अथवा त्रि—कोट्युत्क्रमज्या = भुजज्या, त्रि—कोज्या = भुजोत्क्रमज्या, त्रि—भुजोत्क्रमज्या = कोटिज्या, त्रि—भुजज्या = कोट्युत्क्रमज्या।

कर्णांशान से स्पष्ट कोटिज्ञान मकरादि और कर्यादिकेन्द्रवश स्पष्टको = त्रि ± अन्त्यफज्या $\sqrt{\text{कर्ण}^2-\text{भुजज्या}^2}$ = स्पष्टको । $\sqrt{\text{कर्ण}^2-\text{स्पको}^2}$ = भुजज्या ∴ सिद्ध हो गया ॥३॥

पुनरन्यप्रश्नानाह ।

स्पष्टमेव खचरं द्युराशितो वेत्ति वाभिहितखेचरोदये ।
अश्विनस्य खलु वा प्रसाधयेद्यः स वेत्ति विमलां स्फुटां गतिम् ॥४॥

वि भा—यो द्युराशित (अहर्गणात्) स्पष्टमेव खचरं (ग्रहं) वेत्ति, वा अभिहितखेचरोदये (कथितग्रहोदयकाले) वा अश्विन्यर्योदयिके प्रसाधयेत् स विमलां स्फुटां गतिं वेत्तीति एतदुत्तरं यद्यपि पूर्वं कथितमपि तथाप्युच्यते।

इष्टग्रहभगणैरहर्गण सगुण्य कुदिनैर्भजेद् लब्धा भगणास्ते प्रयोजनाभावात्याज्या शिष्टं ग्रहभगणशेषं ग्राह्यम् । एवमुच्चभगणैरहर्गणं सगुण्य कुदिनैर्भक्त्वा ये लब्धा भगणास्ते त्याज्या शिष्टं भगणशेषं ग्राह्यं तद्ग्रहभगणशेषे शोध्यं तदा केन्द्रभगणशेषं भवेत् । ततोऽनुपातं क्रियते यद्येकस्मिन् भगणे चत्वारिपदानि लभ्यन्ते तदा भगणशेषे किमित्यनुपातेनाऽऽगतानि पदानि $\frac{४ \times \text{भशे}}{\text{कुदिन}}$ तत एकस्मिन् पदे यदि राशित्रयं लभ्यते तदा शेषे किमित्यागतास्तत्सम्बन्धिनो राशयस्ततो भुजकोटिसाधनं कार्यम् । ततो मन्दभुजफलशीघ्रभुजफलाभ्यां गुणितानि कुदिनानि भगणकलाभिर्भक्तानि लब्धफलैर्ग्रहभगणशेषं संस्कृतं तदा स्पष्टं भगणशेषं भवति । ततो भुजान्तरचरफलदेशान्तरफलानि कुदिनभक्तानि यानि फलानि भवेयुस्तैः संस्कृतं पूर्वं भगणशेषं स्फुटं भगणशेषं भवेत्तस्मात्स्फुटभगणशेषाद् यो ग्रह आनीयते स स्फुट एव भौमादिग्रहो भवेदिति ।

शेषप्रश्नोत्तरार्थमुपपत्ति ।

मध्यमार्कोदयकालिकग्रहा भुजान्तरसंस्कारेण स्पष्टार्कोदयकालिका भवन्ति निरक्षदेशे पुनः रविचरासुभिः स्वदेशे स्पष्टार्कोदयकालिका भवन्ति, इत्थमिष्टमध्यमस्पष्टग्रहान्तरकलाभिस्तद्दुत्पन्नासवो रविवदिष्टोदयिकभुजान्तरं साध्य रविवत्स्वचरासुभिः (इष्टग्रहचरासुभिः) स्वचालनफलं साध्य तत्संस्करणेन स्वदेशे स्पष्टेष्टग्रहोदयकालिका ग्रहा भवन्ति, यद्यश्विन्यौदयिका स्पष्टग्रहा अपेक्षितास्तदा नक्षत्रस्य फलाभावाद् भुजान्तरं न भवतीति ॥४॥

अब अन्य प्रश्नों को कहते हैं

हि भा —जो व्यक्ति विशेष अहर्गण से स्पष्टग्रह को जानते हैं, या कथित ग्रहोदय काल मे या अश्विनी के उदयकाल म साधन करते है वे ग्रह की स्पष्ट गति को जानते हैं ॥४॥

इसका उत्तर पहले कह चुके है तथापि यहां पुन कहते हैं

इष्ट मध्यग्रह भगण को अहर्गण से गुण कर कुदिन से भाग देने पर लब्ध भगण को छोड देना, शेष ग्रहभगण शेष ग्रहण करना। इस तरह उच्च के पठित भगण को अहगण से गुण कर कुदिन से भाग देने से जो भगणफल हो उसको छोड कर भगण शेष ग्रहण करना। इस भगण शेष को ग्रह भगण शेष म घटाने से केन्द्र भगण शेष होता है। तब अनुपात करते है यदि एक भगण म चार पद पाते हैं तो भगण शेष म क्या इस अनुपात म पद आते हैं।

$\frac{४ \times भशे}{कुदिन}$ फिर अनुपात करते हैं यदि एक पद म तीन राशिया पाते हैं तो शेष मे क्या शेष सम्बन्धी राशियो के प्रमाण आते है इस पर से भुजज्या कोटिज्या का ज्ञान सुलभ है। तब मन्दभुजफल और शीघ्रफल से गुणित कुदिन को भगण कला से भाग देने से जो फल होता है उसको भगण शेष म सस्कार करने से वास्तव भगणशेष होता है। उसके बाद भुजान्तर फल, चरफल देशान्तर फल को पूर्ववत् कुदिन स भाग देने से जो फल होता है उसको पूव भगण शेष म सस्कार करने स स्फुट भगणशेष होता है। इस स्फुट भगण शेप से जो ग्रह आते है सो स्पष्ट ही कुजादिग्रह होते हैं।

शेष प्रश्नो के उत्तर के लिए उपपत्ति

मध्यमार्कोदयकालिक ग्रहो को भुजान्तर सस्कार से स्पष्टार्कोदय कालिक करते हैं निरक्ष देश म फिर चरफल के द्वारा स्वदेश मे स्पष्टार्कोदय कालिक करते हैं। इस तरह इष्ट मध्यमग्रह और स्पष्टकला जनित असु रवि की तरह इष्टोदयिक भुजान्तर साधन करना और सूय की तरह इष्टग्रह चरासु से अपना चालनफल साधन करना तब उसके सस्कार करने से स्पष्ट इष्ट ग्रहोदयकाल म ग्रह होते है। यदि अश्विन्यौदयिक ग्रह अपेक्षित है तो नक्षत्र के फलाभाव के कारण भुजान्तर नहीं होता है ॥४॥

इदानीमन्यान् प्रश्नानाह।

ज्याभिर्विनैव कुरुते भुजकोटिजीवा चाप च यत्स्फुटखग च करोति मध्यम्।
तुङ्गात्तयोश्चगतिमध्यगती स्फुटा वो चेष्टा करामलकवद्द्युसदा स वेत्ति ॥५॥

वि भा —ज्याभिर्विनैव यो भुजकोटिजीवा तथा चाप करोति, तुङ्गात् (उच्चात्) स्फुटखग (स्पष्टग्रह) मध्य करोति स करामलकवद्द्युसदा (ग्रहाणा) चेष्टा (गति) वेत्त्यन्यत्स्पष्टम् ॥५॥

एतदुत्तरार्थमुपपत्तिः ।

यदि व्यासार्धे भुजज्या लभ्यते तदा द्विगुणित व्यासार्धे किं जाताद्विगुणित-व्यासार्धे भुजज्या तत्स्वरूपम् $= \dfrac{\text{ज्याभु}\ \text{२ व्याद}}{\text{व्याद}} = \text{२ ज्याभु}$ । अत कस्मिन्नपि व्यासार्धे द्विगुणभुजांशाना या पूर्णज्या सैव द्विगुणित तद्व्यासार्धे भुजज्या भवतीति । षष्टिव्यासार्धे द्विगुणितभुजांशाना पूर्णज्यासाधनार्थं स्वल्पान्तरतो व्यासस्त्रिगुण परिधि $=$ ३६० । ततश्चक्रांशेश्चक्रमचापीयमान लभ्यते तदा द्विगुणभुजांशैः किं लब्ध तच्चापमानम् $=$ २ भु. ततश्चापोननिघ्नपरिधि प्रथमाह्वयः स्यादित्यादिना १२० व्यासे द्विगुणभुजांशपूर्णज्या जाता, १२० त्रिज्याया भुजज्या

$$= \frac{(\text{३६०}-\text{२भु})\ \text{२भु} \times \text{४} \times \text{१२०}}{\text{३६०}^{2} \times \frac{\text{५}}{\text{४}} - (\text{३६०}-\text{२भु})\ \text{२भु}}$$

$$= \frac{(\text{१८०}-\text{भु})\ \text{भु} \times \text{१६} \times \text{१२०}}{\frac{\text{३६०} \times \text{३६०} \times \text{५}}{\text{४}} - (\text{१८०}-\text{भु})\ \text{भु} \times \text{४}}$$

$$= \frac{(\text{१८०}-\text{भु})\ \text{भु} \times \text{१२०}}{\frac{\text{९०} \times \text{३६०} \times \text{५}}{\text{१६}} - \frac{(\text{१८०}-\text{भु})\ \text{भु}}{\text{४}}}$$

$$= \frac{(\text{१८०}-\text{भु})\ \text{भु} \times \text{१२०}}{\text{१०१२५} - \frac{(\text{१८०}-\text{भु})\ \text{भु}}{\text{४}}}$$ ततो यदि खार्कमितत्रिज्यायामियं भुजज्या तदेष्टत्रिज्याया किमिति जाता भुजज्या $= \dfrac{(\text{१८०}-\text{भु})\ \text{भु}\ \text{त्रि}}{\text{१०१२५} - \frac{(\text{१८०}-\text{भु})\ \text{भु}}{\text{४}}}$

$$= \frac{(\text{१८०}-\text{भु})\text{भु}\ \text{त्रि} \times \text{४}}{\text{४०५००} - (\text{१८०}-\text{भु})\text{भु}} = \frac{(\text{१८०} \times \text{भु} - \text{भु}^{2})\ \text{त्रि}}{\text{१०१२५} - \frac{(\text{१८०} \times \text{भु} - \text{भु}^{2})}{\text{४}}} = \text{भुजज्या}$$

∴ सिद्धम् ।

एवं कोटिचापवशातोऽपि भवेदिति ।

हि. भा—ज्या विना जो व्यक्ति विनेप भुजज्या और कोटिज्या लाते हैं तथा चाप लाते है, और उच्च मे स्पष्ट ग्रह को मध्यम करते है अर्थात् उच्च और स्पष्ट ग्रह से मध्यमग्रह साधन करते हैं वह ग्रह स्पष्टगति को जानते हैं । शेष स्पष्टार्थ है ॥५॥

इसके उत्तर के लिए उपपत्ति ।

यदि व्यासार्ध मे भुजज्या पाते हैं तो द्विगुणित व्यासार्ध मे क्या इस अनुपात से

द्विगुणित व्यासार्ध मे भुजज्या आती है। $\frac{\text{ज्याभु २ व्याद}}{\text{व्याद}} = \text{२ ज्याभु}$ । व्याद = व्यासदल

इसलिए किसी भी व्यासार्ध मे द्विगुणित भुजाश की जो पूर्णज्या होती है वही द्विगुणित उस व्यासार्ध मे भुजज्या होती है। ६० व्यासार्ध मे द्विगुणित भुजाश की पूर्णज्या साधन के लिए स्वल्पान्तर से त्रिगुणित व्यास = परिधि = ३६० । तब अनुपात करते हैं यदि चक्राश में चक्रतुल्य चापीय मान पाते हैं तो द्विगुणित भुजाश मे क्या आ जायगा उस चाप के मान = २ भु । तब 'चापोननिघ्नपरिधि प्रथमाह्वय स्यात्' इत्यादि से १२० व्यास मे द्विगुणित भुजाश की पूर्णज्या हुई। १२० त्रिज्या मे भुजज्या =

$$\frac{(\text{३६०} - \text{२ भु})\,\text{२ भु} \times \text{४} \times \text{१२०}}{\text{३६०}^2 \times \frac{\text{५}}{\text{४}} - (\text{३६०} - \text{२भु})\text{२भु}} = \frac{(\text{१८०} - \text{भु})\text{भु} \times \text{१६} \times \text{१२०}}{\frac{\text{३६०} \times \text{३६०} \times \text{५}}{\text{४}} - (\text{१८०} - \text{भु})\text{भु} \times \text{४}}$$

$$= \frac{(\text{१८०} - \text{भु})\text{भु} \times \text{१२०}}{\frac{\text{९०} \times \text{३६०} \times \text{५}}{\text{१६}} - \frac{(\text{१८०} - \text{भु})\text{भु}}{\text{४}}} = \frac{(\text{१८०} - \text{भु})\text{भु} \times \text{१२०}}{\text{१०१२५} - \frac{(\text{१८०} - \text{भु})\text{भु}}{\text{४}}}$$ यदि १२०

त्रिज्या मे यह भुजज्या पाते है तो इष्ट त्रिज्या मे क्या आ जायगी भुजज्या =

$$\frac{(\text{१८०} - \text{भु})\,\text{भु त्रि}}{\text{१०१२५} - \frac{(\text{१८०} - \text{भु})\text{भु}}{\text{४}}} = \frac{(\text{१८०} - \text{भु})\,\text{भु त्रि} \times \text{४}}{\text{४०५००} - (\text{१८०} - \text{भु})\,\text{भु}}$$

$$\frac{(\text{१८०} \times \text{भु} - \text{भु}^2)\,\text{त्रि}}{\text{१०१२५} - \frac{(\text{१८०} \times \text{भु} - \text{भु}^2)}{\text{४}}}$$ = भुजज्या, इसी तरह कोटि चापवश करके कोटिज्या होगी।

∴ सिद्ध हो गया।

द्वितीयप्रश्नस्य (ज्यातश्चापानयस्य) उत्तरार्थमुपपत्ति ।

पूर्वप्रकारेण $\frac{(\text{१८०} - \text{भु})\text{भु त्रि ४}}{\text{४०५००} - (\text{१८०} - \text{भु})\text{भु}}$ = भुजज्या, छेदगमेन

$(\text{१८०} - \text{भु})\text{भु त्रि ४} = \text{भुजज्या} \times \text{४०५००} - \text{भुज्या}\ (\text{१८९} - \text{भु})\text{भु}$ समयोजनेन

$(\text{१८०} - \text{भु})\text{भु त्रि ४} + \text{भुज्या}\ (\text{१८०} - \text{भु})\text{भु} = \text{भुज्या} \times \text{४०५००}$

$= (\text{१८०} - \text{भु})\text{भु}\ (\text{४ त्रि} + \text{भुज्या})$

अत $\frac{\text{भुज्या} \times \text{४०५००}}{\text{४त्रि} + \text{भुज्या}} = (\text{१८०} - \text{भु})\,\text{भु} = \frac{\text{भुज्या} \times \text{१०१२५}}{\text{त्रि} + \frac{\text{भुज्या}}{\text{४}}}$

$\text{१८०} \times \text{भु} - \text{भु}^2$ पक्षौ (—१) गुणितौ तदा $- \frac{\text{भुज्या} \times \text{१०१२५}}{\text{त्रि} + \frac{\text{भुज्या}}{\text{४}}} = \text{भु}^2 - \text{१८०} \times \text{भु} = \text{ल}$

अत $\frac{\text{भुज्या} \times १०१२५}{\text{त्रि} + \frac{\text{भुज्या}}{४}} = \text{ल}$ । अत $\text{भु}^2 - १८० \times \text{भु} + \text{ल} = ०$

अत $\text{भु} = ९० \pm \sqrt{९०^2 - \text{ल}}$ सिद्धम् ।

द्वितीय प्रश्न (ज्या से चापानयन) के उत्तर के लिए उपपत्ति ।

पूर्व प्रकार से $\frac{(१८०-\text{भु})\text{भु} \ \text{त्रि} \times ४}{४०५००-(१८०-\text{भु})\text{भु}} = \text{भुज्या}$ । छेदगम करने से

$(१८०-\text{भु})\text{भु} \ \text{त्रि} \ ४ = \text{भुज्या} \ ४०५०० - \text{भुज्या} \ (१८०-\text{भु})\text{भु}$ समयोजन से

$(१८०-\text{भु})\text{भु} \ \text{त्रि} \ ४ + \text{भुज्या} \ (१८०-\text{भु})\text{भु} = \text{भुज्या} \times ४०५००$
$= (१८०-\text{भु})\text{भु} \ (४ \ \text{त्रि} + \text{भुज्या})$

अत $\frac{\text{भुज्या} \times ४०५००}{४ \ \text{त्रि} + \text{भुज्या}} = (१८०-\text{भु})\text{भु} = \frac{\text{भुज्या} \times १०१२५}{\text{त्रि} + \frac{\text{भुज्या}}{४}} = १८० \times \text{भु} - \text{भु}^2 = \text{ल}$

यहां $\frac{\text{भुज्या} \times १०१२५}{\text{त्रि} + \frac{\text{भुज्या}}{४}} = \text{ल}$ । समशोधन करने से $\text{भु}^2 - १८० \times \text{भु} + \text{ल} = ०$

अत $\text{भु} = ९० \pm \sqrt{९०^2 - \text{ल}}$

अत सिद्ध हो गया ।

तृतीयप्रश्नस्य (उच्चस्पष्टग्रहैर्मध्यमग्रहानयनस्य) उत्तरार्थमुपपत्ति ।

शीघ्रात्स्पष्टग्रहोनाच्चलफलमखिलमित्यादिना पूर्वं स्पष्टग्रहज्ञानान्मध्यमग्रहानयनमाचार्येण कृतमस्ति, एतदुपपत्तिश्च मया तत्र लिखिता, ब्रह्मगुप्तेन भास्कराचार्येण चासकृत्प्रकारेण स्पष्टग्रहान्मध्यग्रहानयनं कृतमस्ति, एतेन ग्रन्थकारेणाप्यसकृत्प्रकारेणैव तदानयनं कृतम् । स्पष्टग्रहेण रहितं शीघ्रोच्चं स्पष्टकेन्द्रं भवति ततोऽनुपातस्त्रिज्यया यदि स्पष्टकेन्द्रज्या लभ्यते तदाऽन्त्यफलज्यया किं समागच्छति सकृदेव स्पष्टा शीघ्रफलज्या तच्चापं वास्तवमेव शीघ्रफलम् । ब्रह्मगुप्तादिकथितस्पष्टीक्रिया क्रमतो मन्दोच्चरहितस्पष्टकेन्द्रतो यदा पुनः पुनस्तदेव मन्दफलमागच्छेत्तदा क्रियासमाप्तिः । उपान्तिमस्पष्टग्रहाद् यन्मन्दफलं तदेवोपान्तिमतुल्यान्त्यस्पष्टग्रहाद्यातो मन्दोच्चरहितस्पष्टकेन्द्रत सकृदेव वास्तवं मन्दफलं भवति ब्रह्मगुप्तादिभिर्वटेश्वरेण च व्यर्थमेवासकृद्विधिः प्रतिपादित इति ॥५॥

अब तृतीय प्रश्न (उच्च और स्पष्टग्रह से मध्यमग्रह ज्ञान) के उत्तर के लिये उपपत्ति ।

शीघ्रात्स्पष्ट ग्रहोनाच्चलफलमखिलम् इत्यादि से पहले स्पष्ट ग्रह से मध्यम ग्रह ज्ञान आचार्य ने किया हुआ है उसकी उपपत्ति वहां हम लिख चुके हैं । ब्रह्मगुप्त भास्कराचार्य और ये ग्रन्थकार भी असकृत् प्रकार से स्पष्टग्रह से मध्यमग्रह का ज्ञान किया है । शीघ्रोच्च से –

स्पष्टग्रह को घटाने से स्पष्ट केन्द्र होता है तब अनुपात करते है यदि त्रिज्या में स्पष्ट केन्द्रज्या पाते हैं तो अन्त्यफलज्या में क्या इस अनुपात से सकृत् ही (एक ही वार में) स्पष्ट शीघ्र फलज्या आती है, इसका चाप वास्तव शीघ्रफल है। ब्रह्मगुप्तादि स्पष्टीकरण क्रियाक्रम से मन्दोच्च रहित स्पष्ट केन्द्र से जब वार-वार वही मन्दफल आता है तब क्रिया की समाप्ति होती है। उपान्तिम स्पष्टग्रह से जो मन्दफल होता है वही उपान्तिम तुल्य अन्तिम स्पष्टग्रह से भी, इसलिए मन्दोच्च रहित स्पष्ट केन्द्र से सकृत् ही वास्तव मन्दफल होता है। ब्रह्मगुप्तादि आचार्यो ने व्यर्थ ही असकृत् प्रकार कहा है। इति ॥५॥

इदानीमन्यौ प्रश्नावाह।

त्रिज्यासमः कीदृशि शीघ्रकेन्द्रे कर्णो भुजज्यासदृशश्च कस्मिन्।
ब्रूहि स्फुटां वेत्सि यदि ग्रहाणां चेष्टां तथाऽग्रान्त्यफलज्यया च ॥६॥

वि. भा—कीदृशि शीघ्रकेन्द्रे त्रिज्यासम (त्रिज्यातुल्य.) कर्णो भवेत्। कस्मिन् शीघ्रकेन्द्रे भुजज्यासदृश. (केन्द्रज्यातुल्य) शीघ्रकर्णो भवेत्, यदि ग्रहाणा स्फुटा चेष्टा (स्पष्टगति) त्व वेत्सि तदा ब्रूहि (कथय) तथाऽग्रान्त्यफल-ज्ययेत्यस्याग्रिमश्लोकेन सम्बन्ध इति ॥६॥

प्रथमप्रश्नस्योत्तरार्थमुपपत्ति।

यदा कक्षावृत्तशीघ्रप्रतिवृत्तयोर्योगबिन्दौ ग्रहस्तदा तत्र त्रिज्यातुल्यः शीघ्र-कर्णो भवति, तत्र शीघ्रकेन्द्र प्रमाण कियदिति विचार्यते कक्षावृत्तप्रतिवृत्तयो सम्पातस्य द्वितीयपदे स्थितत्वात्तत्र कर्णवर्गस्वरूपम् = त्रि^{2} + अ फज्या^{2} — २ अ फज्या. केकोज्या = कर्ण^2। यदि कर्ण = त्रि तदा

त्रि^{2} + अ फज्या^{2} — २ अ फज्या केकोज्या = त्रि^{2} समशोधनेन

अफज्या^{2} — २ अफज्या केकोज्या = त्रि^{2} — त्रि^{2} = ० समयोजनेन

अ फज्या^{2} = २ अ फज्या केकोज्या तत अ फज्या = २ केकोज्या ∴ $\frac{\text{अ फज्या}}{२}$

= केकोज्या चापकरणेन $\frac{\text{अ फल}}{२}$ = केकोटि = ९० — शीकेन्द्र ∴ शीकेन्द्र = ९० + $\frac{\text{अ फल}}{२}$

एतेन सिद्धंयद् यदैतत्तुल्य शीघ्रकेन्द्र भवेत्तदा तत्र त्रिज्यातुल्य शीघ्रकर्णो भवेदिति।

अथ द्वितीयप्रश्नो (कीदृशे शीघ्रकेन्द्रशीघ्रकेन्द्रज्यातुल्यः शीघ्रकर्णः) त्तरार्थ-मुपपत्तिः।

अथ कर्णवर्गस्वरूपम् = केन्द्रज्या तदा त्रि^{2} + अ फज्या^{2} — २ अ फज्या. केकोज्या = कर्ण^2

यदि कर्ण = केन्द्रज्या तदा त्रि^{2} + अ फज्या^{2} — २ अ फज्या. केकोज्या = कर्ण^2 = शीकेन्द्रज्या^{2} = त्रि^{2} — केकोज्या

समशोधनेन

अ फज्या^{2}—२ अ फज्या वेकोज्या = —वेकोज्या^{2} समयोजनेन

अ फज्या^{2}— २ अ फज्या वेकोज्या + वेकोज्या^{2} = (वेकोज्य —अ फज्या)^2 = ० मूलेन।

वेकोज्या—अन्त्यफज्या = ० वेकोज्या = अ फज्या तत वेज्या= अ फकोज्या वा शीकेन्द्रज्या = अन्त्यफलको, एतेन सिद्ध यत्रान्त्यफलकोटितुल्य शीघ्रकेन्द्र भवेत्तत्र शीघ्रकेन्द्रज्यातुल्य शीघ्रकर्णो भवेदिति ॥६॥

अब दो अन्य प्रश्न को कहते हैं।

हि भा—कितने शीघ्रकेन्द्र में त्रिज्या तुल्य शीघ्र कर्ण होता है। और कितने शीघ्र केन्द्र में शीघ्र केन्द्रज्या तुल्य शीघ्रकर्ण होता है। 'अग्रान्त्यफलज्यया च' इसको अगले श्लोक के साथ सम्बन्ध है ॥६॥

प्रथम प्रश्न (त्रिज्यातुल्य शीघ्रकर्ण कितने शीघ्रकेन्द्र में होता है) के उत्तर के लिये उपपत्ति।

जब कक्षावृत्त और शीघ्र प्रतिवृत्त के योग बिंदु में ग्रह रहते हैं तो त्रिज्या तुल्य शीघ्रकर्ण होता है। वहां शीघ्र केन्द्र प्रमाण क्या है इसके लिये विचार करते हैं। कक्षावृत्त और प्रतिवृत्त के योगबिन्दु द्वितीय पद में हैं इसलिए वहां शीघ्रकर्ण वर्ग = त्रि^{2} + अफज्या^{2}—२ अफज्या वेकोज्या = कर्ण^2 जब कर्ण = त्रि तब त्रि^{2} + अ फज्या^{2}—२अफको वेकोज्या = कर्ण^2 = त्रि^{2} समशोधन करने से अ फज्या^{2}—२ अ फज्या वेकोज्या = ०

२ अफज्या^{2} = २ अफज्या वेकोज्या वा अफज्या = २ वेकोज्या तव $\frac{\text{अ फज्या}}{२}$ = वेकोज्या

चाप करने से $\frac{\text{अ फल}}{२}$ = केन्द्रकोटि = ९०—केन्द्र ९० + $\frac{\text{अ फल}}{२}$ = केन्द्र इससे सिद्ध हुआ जहां पर अन्त्यफलार्ध युत नवत्यंश तुल्य शीघ्रकेन्द्रांश होता वहीं त्रिज्या तुल्य शीघ्र कर्ण होता है॥

अब द्वितीय प्रश्न (कितने शीघ्रकेन्द्र में शीघ्र केन्द्रज्या तुल्य शीघ्रकर्ण होता है) के उत्तरार्थ उपपत्ति।

पहले के कर्ण वर्ग = त्रि^{2} + अ फज्या^{2}—२ अ फज्या केकोज्या = कर्ण^2, यदि कर्ण शीकेन्द्रज्या तब त्रि^{2} + अ फज्या^{2}—२ अ फज्या केकोज्या = शीकेज्या = त्रि^{2}—केकोज्या^{2} समशोधन करने से अ फज्या^{2}—२ अ फज्या केकोज्या = —केकोज्या^{2} समान जोड़ने से

अ फज्या^{2}—२ अ फज्या केकोज्या + केकोज्या^{2} = ० मूल लेने से

केकोज्या—अ फज्या = ० केकोज्या = अ फज्या या शीघ्र केन्द्र = अफल कोटि इससे सिद्ध हुआ कि जहां पर अन्त्यफल कोटि के बराबर शीघ्र केन्द्र होता है वहीं पर शीघ्र केन्द्रज्या तुल्य शीघ्रकर्ण होता है ॥६॥

इदानीमन्यान् प्रश्नानाह ।

केन्द्रमिष्टफलस्ततोऽथवा तद्ग्रहस्य दृगदृश्यकेन्द्रके ।
वक्रकेन्द्रमनुवक्र केन्द्रक तद्दिनानि गणक ॥ उच्यते ॥७॥

वि भा —अग्रान्त्यफलज्यया केन्द्रमिष्टफलतोऽथवा ग्रहस्य दृगदृश्यकेन्द्रके (उदयास्तकेन्द्राशके) वक्रकेन्द्र (वक्रारम्भकालिककेन्द्राश) अनुवक्रकेन्द्रक तद्दिनानि च यो जानाति स गणक (ज्योतिर्विन्) उच्यते (कथ्यते) । वक्रारम्भकालिककेन्द्राशा ३६० एभ्यो विशोधितास्तदाऽनुवक्र (मार्ग) केन्द्राशा भवेयुस्तद्दिनानि(वक्रानुवक्र दिनानि) यो जानाति स गणक कथ्यते ।।७।।

अथ तद्ग्रहस्य दृगदृश्यकेन्द्रके—एतदुत्तरार्थमुपपत्ति ।

कुजगुरुशनीना शीघ्रोच्चरविरेवास्ति, तस्मात्तेपा ग्रहाणा शीघ्रोच्चस्थाने परमास्तो भवेत् ततोऽनन्तर शीघ्रगतित्वाद्रविस्ततोऽग्रतो गच्छति यदा कालाशतुल्य मन्तर भवेत्तदा रविसामीप्यवशेन रात्र्यन्ते तेपा पूर्वदिश्युदयो दृश्यते तेन कालाश तुल्ये स्पष्टकेन्द्राशे यच्छीघ्रफल तद्युता कालाशास्तदुदयशीघ्रकेन्द्राशा भवेयु । यथा रवे शीघ्रोच्चत्वात्स्पष्टकेन्द्राशा =कालाशा । ततोऽनुपातो यदि त्रिज्यया स्पष्ट-केन्द्राशज्या (कालाशज्या) लभ्यते तदाऽन्त्यफलज्यया किमित्यनुपातेन फलज्या $= \frac{\text{कालाशज्या} \times \text{अन्त्यफज्या}}{\text{त्रि}}$ अस्याश्चापम्=फ कालाशयुत तदा तेपा कुजगुरुशनीनामुदयकेन्द्राशा =कालाश+फ

बुधशुक्रयोर्मध्यगरविसम एव मध्यम मध्यममेव मन्दस्पष्ट प्रकल्प्य स्वस्वस्पष्टेन बुधेन शुक्रेण वा कालाशतुल्येऽन्तरे पश्चिमाया तदुदयोऽवलोक्यते प्रथमपदे तत $\frac{\text{कालाशज्या त्रि}}{\text{अफलज्या}}$ =स्पकेज्या अस्याश्चाप कालाशसहित तदा पश्चिमोदये तत्केन्द्रा शा भवन्ति । द्वितीयपदे च वक्रीभूय तत्रैव चास्त गच्छत । तृतीय पदे तदुदय पुन र्दृश्यते नीचस्थाने तयो परमास्त गतत्वात् । पूर्वदिशि रात्र्यवशेषे स चोदया दृश्यते । चतुर्थे पदे कालागान्तरस्थयोस्तयोस्तत्रैवास्ताविति । तेन पूर्वोदयकेन्द्राशा =स्पके+(१८०—कालाश) प्रथमपदे बुधशुक्रयो पश्चिमोदयश्चतुर्थपदे च पूर्वदि-ग्यस्तस्तृतीयपदे पूर्वदिग्युदये द्वितीयपदे च पश्चिमास्त स्यात् । तेन पश्चिमोदय-केन्द्राशोनभाशा पूर्वदिशि पूर्वोदयकेन्द्राशोनभाशा पश्चिमदिशि तदस्तकेन्द्राशा भवन्तीति ॥

तद्दिनानीत्यस्योत्तरार्थमुपपत्ति ।

यदि केन्द्रगत्यैक दिन लभ्यते तदास्तोदयान्त केन्द्रकलाभि किमित्यनु-पातेन यानि दिनानि समागच्छन्ति तान्येव तद्दिनानीति । तथा वक्रानुवक्रान्त, केन्द्रकलाभिश्च पूर्ववदनुपातेनानुवक्रवक्रदिनान्यागच्छन्तीति ॥ ७ ॥

अब अन्य प्रश्नों को कहते हैं।

हि. भा—अग्रा (केन्द्रकोटिज्या) और अन्त्यफलज्या से केन्द्र उस पर से दृक्फल उससे ग्रह के दृश्यकेन्द्र (उदयकेन्द्र) अदृश्यकेन्द्र (अस्तकेन्द्र), वक्रकेन्द्र और अनुवक्रकेन्द्र, और उनके दिन, (उदयास्तदिन, वक्रानुवक्रदिन) को जो जानते हैं वह अच्छे ज्योतिषी हैं ॥७॥

ग्रह के उदयास्त केन्द्रांशानयन के लिये उपपत्ति

कुज, गुरु और शनि इनके शीघ्रोच्च रवि है, इसलिये शीघ्रोच्च स्थान में उन ग्रहों के परमास्त होता है उसके बाद उन ग्रहों से रवि शीघ्रगति होने के कारण उनसे आगे जाते हैं जब उन ग्रहों के साथ कालांश तुल्य अन्तर होता है तब रवि के साथ समीपता के कारण रात्रिशेष में पूर्वदिशा में उन ग्रहों के उदय देखते हैं। अतः कालांश तुल्य स्पष्ट केन्द्रांश में जो शीघ्रफल होगा उसको कालांश में जोड़ने से उनके उदयशीघ्र केन्द्रांश होते हैं, यथा रवि के शीघ्रोच्च होने के कारण स्पष्ट केन्द्रांश=कालांश तब अनुपात करते हैं यदि त्रिज्या में स्पष्ट केन्द्रज्या (कालांशज्या) पाते हैं तो अन्त्यफलज्या में क्या इस अनुपात से फलज्या आती है।

$\frac{\text{कालांशज्या} \times \text{अन्त्यफज्या}}{\text{त्रि}}$ = फलज्या। इसके चाप को कालांश में जोड़ने से उन ग्रहों के उदय केन्द्रांश होते हैं, *कालांश + फल = उदयकेन्द्रांश, बुध और शुक्र के मध्यम रवि ही मध्यम* है मध्यम ही को मन्दस्पष्ट मानकर अपने अपने स्पष्ट बुध, या शुक्र से कालांश तुल्य अन्तर पर पश्चिम दिशा में उनके उदय देखते हैं प्रथम पद में। अतः $\frac{\text{कालांशज्या} \times \text{त्रि}}{\text{अ फज्या}}$ = स्पकेज्या इसके चाप में कालांश जोड़ने से उनके पश्चिमोदय केन्द्रांश होते हैं। द्वितीय पद में वक्र होकर वे वहीं अस्त होते हैं। तृतीय पद में उनके उदय फिर देखते हैं नीच स्थान में उन दोनों के परमास्त होने के कारण, पूर्व दिशा में रात्रिशेष में वह उदय देखते हैं। चतुर्थपद में कालांशान्तरित पर स्थित होने से वहीं पर अस्त होते हैं। इसलिये पूर्वोदय केन्द्रांश=स्पके + (१८०—कालांश) प्रथम पद में बुध और शुक्र के पश्चिमोदय और चतुर्थ पद में पूर्व दिशा में अस्त, तृतीय पद में पूर्व दिशा में उदय, द्वितीय पद में पश्चिमास्त होते हैं। इसलिये पश्चिमोदय केन्द्रांश को ३६० में घटाने से पूर्व दिशा में और पूर्वोदय केन्द्रांश को ३६० में घटाने से पश्चिम दिशा में अस्त केन्द्रांश होते हैं॥

अब उदयास्त और वक्रानुवक्रदिन ज्ञान के लिये उपपत्ति।

यदि केन्द्रगति में एक दिन पाते हैं तो उदयास्तान्त. केन्द्रकला में क्या इस अनुपात से उदयास्तदिन आते हैं। एवं वक्रानुवक्रान्त केन्द्रकला पर से पूर्ववत् अनुपात से वक्रानुवक्रदिन आते हैं॥७॥

वक्रकेन्द्रमनुवक्रकेन्द्रमिति प्रश्नोत्तरार्थमुपपत्ति।

वक्रारम्भो द्वितीयपदे नीचासन्ने भवतीति पूर्वप्रदर्शितमस्ति, अथ वक्रारम्भकालिकशीघ्रकेन्द्रांशानयनार्थं तत्कोटिज्याप्रमाणं=य कल्प्यते।

तत्र कर्ण^2 = त्रि + अ फज्या^{2} = २ अ फज्या य । फलांशखाङ्कान्तरशिञ्जिनीघ्नी

द्राक्केन्द्रभुक्तिरित्यादिना $उग - \frac{फकोज्या\ केग}{शीक}$ = स्पष्टगति | अत्र केग = शीघ्रकेन्द्रगति, उग = शीघ्रोच्चगति, शीक = शीघ्रकर्ण = क

द्राक् केन्द्रकोटि मौर्व्यन्त्यफलज्या गुणया क्रमात् ।
मृगकर्क्यादिके केन्द्रे युतोना त्रिज्यकाकृति ।
शीघ्रकर्णहृता लब्ध फलकोटिज्यका भवेत् । इति सशोधकोक्तटिप्पण्या

$त्रि^2 - \frac{य\ अ\ फज्या}{कर्ण}$ = फलकोज्या तत स्पष्टगतिस्वरूपे उत्थापनेन

$$उग - \frac{(त्रि^2 - य.अ\ फज्या)केग}{क^2} = स्पग = उग = \frac{(त्रि^2 - य\ अ\ फज्या)\ केग}{त्रि^2 + अ\ फज्या - २अ\ फज्या\ य}$$

$$= उग - \frac{(त्रि^2\ केग - य\ अ\ फज्या\ केग)}{त्रि^2 + अ\ फज्या^2 - २\ अ\ फज्या\ य} = ०$$ (वक्रारम्भे ग्रहगति = ० भवति)

$$\frac{उग\ त्रि^2 + उग\ अ\ फज्या^2 - २\ अ\ फज्या\ य\ उग - त्रि^2\ केग - य\ अ\ फज्या\ केग}{त्रि^2 + अ\ फज्या^2 - २\ अ\ फज्या\ य} = स्पग = ०$$

छेदगमेन $उग\ त्रि^2 + उग\ अ\ फज्या^2 - २\ अ\ फज्या\ य\ उग - त्रि^2\ केग - य\ अ\ फज्या\ केग = ०$

दोनो पक्षो मे समान जोडने से

$उग\ त्रि^2 + उग\ अ\ फज्या^2\ उग - २\ अ\ फज्या\ य\ उग = त्रि^2\ केग + य\ अ\ फज्या\ केग$ समशोधन करने से $उग\ त्रि^2 - त्रि^2\ केग + उग\ अ\ फज्या^2 = २\ अ\ फज्या\ य\ उग - य\ अ\ फज्या\ केग$

$= त्रि^2\ (उग - केग) + उग + अ\ फज्या^2 = य\ अ\ फज्या\ (२\ उग - केग)$

$= त्रि^2 \times मस्पग + उग\ अ\ फज्या^2 = य\ अ\ फज्या\ (उग + उग - केग)$

$= य\ अ\ फज्या\ (उग + मस्पग)$

$$अत\ \frac{त्रि^2.मस्पग + उग\ अ\ फज्या^2}{अ\ फज्या\ (उग + मस्पग)} = \frac{त्रि^2\ मग + उग\ अफज्या^2}{अ\ फज्या\ (उग + मग)} = य\ ।$$

अत्र स्वल्पान्तरात् मन्दस्पगति = मध्यगति । अस्याश्चाप नवतियुत तदा वक्रारम्भे केन्द्रांशा भवेयुरिति ॥ वक्रकेन्द्रांशा ३६० एभ्यो विशो धितास्तदा'नुवक्र (मार्ग) केन्द्रांशा भवन्ति । ततो वक्रानुवक्र दिवसज्ञान सुलभमेवेति ॥ ७ ॥

अब वक्रकालिक और अनुवक्रकालिक केन्द्रानानयन करते हैं।

हि भा —वक्रारम्भ द्वितीय पद म नीचासन्न म होता है यह बात पहले कह चुके है । वक्रारम्भकालिक शीघ्रकेन्द्रानयन के लिये उसकी कोटिज्या को मान य मानते हैं। यहा पर कर्णवर्ग =

त्रि^{2}+अ फज्या^{2}—२ अ फज्या. य =कर्ण^2, फलाभखाङ्कान्तरशिञ्जिनीघ्नी इत्यादि से

$$\text{उग}-\frac{\text{फकोज्या केग}}{\text{शीक}}=\text{स्पष्टगति}$$

यहा केग=शीघ्रकेन्द्रगति ।
उग=शीघ्रोच्चगति
शीक=शीघ्रकर्ण=क

द्राक् केन्द्रकोटिमौर्व्यान्त्यफलज्या गुणया क्रमात् ।

मृगकर्क्यादिके केन्द्रे युतोना त्रिज्यका कृति ॥

शीघ्रकर्ण हृता लब्ध फलकोटिज्यका भवेत् । इस मशोधकोक्त टिप्पणी से

$$\text{त्रि}^2-\frac{\text{य अ फज्या}}{\text{क}}=\text{फकोज्या}$$ । इसमें स्पष्टगति स्वरूप में उत्थापन देने से

$$\text{उग}-\frac{(\text{त्रि}^2-\text{य अ फज्या})\text{ केग}}{\text{क}^2}=\text{स्पष्टगति}\quad \text{उग}-\frac{(\text{त्रि}^2-\text{य अफज्या})\text{ केग}}{\text{त्रि}^2+\text{अफज्या}^2-\text{२ अफज्या य}}$$

$$\text{उग}-\frac{\text{त्रि}^2\text{ केग}-\text{य अ फज्या केग}}{\text{त्रि}^2+\text{अ फज्या}^2-\text{२ अ फज्या.य}}=0$$ (वक्रारम्भे ग्रहगति=० होती है)

$$=\frac{\text{उग त्रि}^2+\text{उग अफज्या}^2-\text{२ अफज्या य उग}-(\text{त्रि}^2\text{केग}-\text{य अफज्या केग})}{\text{त्रि}^2+\text{अ फज्या}^2-\text{२ अफज्या य}}=0$$

छेदगम से

$$\text{उग त्रि}^2+\text{उग अफज्या}^2-\text{२ अफज्या य उग}-(\text{त्रि}^2\text{ केग}-\text{य अफज्या केग})=0$$

समान जोडने से

$$\text{उग त्रि}^2+\text{उग अ फज्या}^2-\text{२ अफज्या य उग}=\text{त्रि}^2\text{ केग}-\text{य.अफज्या केग}$$

समशोधनादि से

$$\text{उग त्रि}^2-\text{त्रि}^2\text{ केग}+\text{उग अ फज्या}^2=\text{२ अ फज्या य उग}-\text{य अ फज्या केग}$$
$$=\text{त्रि}^2(\text{उग}-\text{केग})+\text{उग अ फज्या}^2=\text{य अ फज्या}(\text{२ उग}-\text{केग})$$
$$\text{त्रि}^2\times\text{मस्पग}+\text{उग अ फज्या}^2=\text{य अ फज्या}(\text{उग}+\text{उग}-\text{केग})=\text{य अ फज्या}(\text{उग}+\text{मस्पग})$$

$$\text{अत}\ \frac{\text{त्रि}^2\text{ मस्पग}+\text{उग अ फज्या}^2}{\text{अ फज्या}(\text{उग}+\text{मस्पग})}=\text{य}$$ | यहाँ स्वल्पान्तर से मंस्पष्टग=मध्यमग

$$\text{तब}\ \frac{\text{त्रि}^2\text{ मग}+\text{उग अ फज्या}^2}{\text{अ फज्या}(\text{उग}+\text{मस्पग})}=\text{य}$$ | इसके चाप को नवत्यंश में जोड़ने से

वक्रारम्भकालिक शीघ्रकेन्द्रांश होता है। वक्रकेन्द्रांश को ३६० इसमें घटाने से अनुवक्र केन्द्रांश होता है। इससे वक्र अनुवक्र दिन ज्ञान सुलभ ही है ॥७॥

इदानीमन्यान् प्रश्नानाह ।

स्फुटर्क्ष भोगं बहुधाऽभिजिद्गतिं स्फुटां गतिं चाऽभिजितो हि वेत्ति यः ।
दिवौकसः संक्रमकालनाडिकां स वेत्ति सम्यग्गणितं स्फुटागते ॥ ८ ॥

वि भा—स्फुटर्क्ष भोग (स्पष्टनक्षत्रभोग) बहुधा (अनेकधा) अभिजिद्‌गति तथाऽभिजित स्फुटा गति वा, दिवौकस (ग्रहस्य) सक्रमनाडिका (सक्रमणकाल) यो वेत्ति (जानाति) स सम्यक् स्फुटागतेर्गणित (स्पष्टगतिगणित) वेत्तीति ॥८॥

प्रथमप्रश्नस्योत्तरार्थमुपपत्ति ।

येषा नक्षत्राणा भोगश्चन्द्रमध्यमगतिसमस्तानि नक्षत्राणि समभोगसज्ञकानि चन्द्रमध्यमगतेरर्धतुल्यो भोगस्तान्यर्धभोगसज्ञकानि । येषा च चन्द्रगत्यर्धयुतचन्द्रगतिसमभोगस्तान्यध्यर्धभोगसज्ञकानि । इत्येव स्फुटर्क्ष भोगा । द्वितीयप्रश्नोत्तरार्थं सर्वर्क्ष भोगसख्या =२१३४६, चक्रकला २१६०० भ्यो विशोध्याऽवशेषसख्या २५४ ऽभिजो गतिकलामानम् । अथवा "भघ्नशशिभगणा वियुक्ता कह्वात्) इत्यादिना तद्‌गति सा॰या सैव स्पष्टा गति कथ्यतेऽत्र सम्बन्धे विशेष स्पष्टाधिकारस्य तिथ्यानयनविधिनामकाध्यायस्य ६७ श्लोकोपपत्तौ द्रष्टव्य इति ।

दिवौकसा सक्रमकालनाडिकामित्युक्तरार्थमुपपत्ति ।

यदि ग्रहकलाया षष्टिघटिका लभ्यन्ते तदा ग्रहविम्बकलाया किमित्यनुपातेन सक्रमणकलघट्यस्तत्स्वरूपम् $= \dfrac{६० \times \text{ग्रविक}}{\text{ग्रगतिक}} = \dfrac{\text{ग्रविक}}{\dfrac{\text{ग्रहगतिक}}{६०}} = \dfrac{\text{ग्रहविक}}{\text{ग्रहगत्यश}} =$ सक्रमण काल । एव सर्वेषा ग्रहाणा सक्रमणकालानयन भवति तत्र रविसक्रातिकालोऽतीव पुण्यप्रद इति ॥८॥

अब अन्य प्रश्नो को कहते है ।

हि भा.—स्पष्ट नक्षत्र भोग को, अनेक प्रकार की अभिजित् की गति और अभिजित् की स्पष्टगति को और ग्रहसक्रान्तिकाल को जो जानते है वे स्पष्टगति गणित को अच्छी तरह जानते है ॥ ८ ॥

प्रथम प्रश्न के उत्तर के लिय उपपत्ति ।

जिन नक्षत्रो के भोग चन्द्रमध्यमगति के बरावर है वे समभोग सज्ञक है जिन नक्षत्रो के भोग चन्द्रमध्यगति के आधे के बरावर हैं वे अर्धभोगसज्ञक है । जिन नक्षत्रो के भोग चन्द्रगत्यर्ध युत चन्द्रगति के बरावर है वे अध्यर्धभोगसज्ञक है । ये ही स्फुटर्क्ष भोग है ।

द्वितीय प्रश्न के उत्तर के लिये सर्वर्क्ष भाग सख्या २१३४६ को चक्रकला २१६०० मे घटाने से २५४ कला अभिजित् का गतिकलामान होता है । अथवा (भघ्नशशिभगणा वियुक्ता कह्वात्) इत्यादि पूर्वोक्त से अभिजित् की गति साधन करना यही अभिजित् की स्पष्टगति कही जाती है, इसके विषय मे विशेष तिथ्यानयनविधि नामक अध्याय के ६७ श्लोकोपपत्ति मे देखना ॥

'दिवौकस सक्रमकालनाडिका' इस प्रश्न के उत्तर के लिय उपपत्ति ।

यदि ग्रहगति कला मे साठ घटी पाते हैं तो ग्रह बिम्बकला मे क्या इस अनुपात से

संक्रमणकाल घटी प्रमाण आता है $\dfrac{६० \times \text{ग्रहबिम्बकला}}{\text{ग्रहगतिकला}} = \dfrac{\text{ग्रहबिम्बकला}}{\dfrac{\text{ग्रहगतिकला}}{६०}}$

$= \dfrac{\text{ग्रहबिम्बकला}}{\text{ग्रहगत्यंश}}$ = संक्रमणकाल। इस तरह सब ग्रहों के संक्रमणकाल के आनयन होता है। उनमें रविसंक्रान्तिकाल सबसे पुण्यद है ॥८॥

इदानीं पुनरन्यान् प्रश्नानाह।

आद्यन्तौ व्यतिपातवैधृतिकयोर्मृतिकारयोश्च स्फुटं
तिथ्यन्तं करणान्तमेव हि तथा योगान्तमार्क्षं तथा।
यो जानाति समौ खराशुशशिनौ लिप्ताद्यराश्यादिकं-
स्त्र्यहं स्पृक् दिवसाधिपं स गणको नान्योऽस्ति तस्यापरः ॥ ९ ॥

वि. भा.—मृतिकारयो (मरणकारकयोः) व्यतिपातवैधृतिकयो (व्यतिपातवैधृतिनाम्नो पातयो) आद्यन्तौ, तिथ्यन्तं करणान्तं, योगान्तं तथा आर्क्षं (नाक्षत्रान्तं) यो जानाति लिप्ताद्यराश्यादिकं कलाद्यराश्यादिकं) समौ (तुल्यौ) खराशुशशिनौ (रविचन्द्रौ) त्र्यहं स्पृग्दिवसाधिपं (त्र्यहस्पृग्दिनपतिं) यो जानाति स गणकः। तस्यापरः (भिन्नः) अन्यः (गणकः) नास्तीति ॥ ९ ॥

आद्यन्तौ व्यतिपातवैधृतिकयोरित्यस्योत्तरार्थमुपपत्तिः।

यदा क्रान्तिसाम्यं तदैव पातस्तस्मात्कालात्प्राक् परतश्च पातस्य कथमवस्थानम्। तत्र क्रान्तिसाम्याभावात् क्रान्तिसाम्यं नाम पातः। बिम्बमध्यक्रान्तिर्बिम्बार्धेन रहिता सती पाश्चात्यबिम्बप्रान्तस्य तावती क्रान्तिर्भवति, बिम्बमध्यक्रान्तिर्बिम्बार्धेन सहिता सती अग्रतो बिम्बप्रान्तस्य क्रान्तिर्भवति, एवं रविचन्द्रयोश्च, अत्र बिम्बे पृष्ठमग्रं च याम्योत्तरभावेन कल्प्यते रविबिम्बपृष्ठक्रान्तिर्यावती तावत्येव यदा चन्द्रस्याग्रप्रान्तक्रान्तिस्तदा तयोर्बिम्बयोरेकदेशेन क्रान्त्योः साम्यात्पातस्यादि। तदा तयोर्बिम्बकेन्द्रयोरन्तरं मानैक्यार्धतुल्यम्। ततः क्रमेण गच्छतो रविचन्द्रयोर्यदा बिम्बकेन्द्रीयक्रान्तिसाम्यं तदा पातमध्यम्। तदनन्तरं चन्द्रपृष्ठप्रान्तस्य रवेरग्रप्रान्तस्य च यदा क्रान्तिसाम्यं तदा पातान्तः यतः क्रान्त्यन्तरं यावन्मानैक्यार्धान्न्यूनं तावत्पातोऽस्तीति, अथ पातमध्यसाधने यत्प्रथमसञ्जक्रान्त्यन्तरं याश्चासकृत्प्रकारेण स्पष्टीकृता इष्टघटिकास्ततोऽनुपातो यदि प्रथमतुल्येन क्रान्त्यन्तरेणैतावत्यो घटिका लभ्यन्ते तदा मानैक्यार्धतुल्यान्तरेण किमित्यनुपातेन या घटिका समागच्छन्ति ताः स्थित्यर्धघटिकाः स्थूलास्ततस्स्पष्टीकरणम्। तात्कालिकयो रविचन्द्रयोः पुनः क्रान्त्यन्तरं कार्यं तन्मानैक्यार्धाधिक ततोऽनुपातो यद्यनेन क्रान्त्यन्तरेणैतावत्यः स्थित्यर्धघटिका लभ्यन्ते तदा मानैक्यार्धतुल्येन किमित्येवमसकृत्तद्घटीनां स्फुटत्वमिति ॥

तिथ्यन्तकरणान्तमेवेत्यस्योत्तरार्थमुपपत्ति ।

यदि रविचन्द्रयोर्गत्यन्तरेण षष्टिघटिका लभ्यन्ते तदा चन्द्रविम्बकलाया किमित्यनुपातेन यद्घट्यादिफलं तत्करणतिथ्यो प्रान्त स्यादिति ।

योगान्तमार्क्ष तथेत्येतदुत्तरार्थमुपपत्ति ।

यदि रविचन्द्रयोर्गतियोगकलाया षष्टिघटिका लभ्यन्ते तदा चन्द्रविम्ब-कलाया किमित्यनुपातेन यद् घट्यादिफल तद्योगस्यान्त भवति । तत्र लब्धे अस्य पूर्वार्धेन निर्गमकाल उत्तमकालेनोत्तरप्रवेश इति ।

यदि च चन्द्रगतिकलाया षष्टिघटिका लभ्यन्ते तदा चन्द्रविम्बकलाया किमित्यनुपातेन यद्घटयादिफलं तन्नक्षत्रस्यान्त भवति ॥

समौ स्तराशुशशिनौ लिप्ताशराश्यादिकाविरयेतदुत्तरार्थमुपपत्तय ।

यदि षष्टिघटीभी रविगतकला लभ्यन्ते तदा तिथिगतघटीभिर्गम्यघटीभिश्च किं समागच्छन्ति तिथिगतकला, गम्यकलाश्च, एव चन्द्रगतिवशेनापि तिथिगति-कला गम्यकलाश्चागच्छन्ति, आभि स्वस्वगतगम्यकलाभिर्वियुतयुतौ रविचन्द्रौ तिथ्यन्ते (इष्टतिथ्यन्ते) समकलौ भवत ।

रविचन्द्रयोरन्तर यदा द्वादशभागसम तदैका तिथिर्भवति स्फुट-मासान्ते त्रिंशत्तिथय । अतो रविचन्द्रान्तराशा $=३० \times १२=३६०^{\circ}$ वा शून्यसमा, अतोऽमान्ते राश्याद्यवयवे रविचन्द्रौ समौ पूर्णिमाया पञ्चदशतिथय । अतो रवि-चन्द्रान्तर$=१५ \times १२=१८०^{\circ}=६$ राशय । अतो रविचन्द्रावशाद्यवयवैस्तुल्यौ भवत । अन्यथा कथ तयोरन्तरे केवल राशय एव भवन्ति । एव कस्मिन्नपि तिथ्यन्ते रविचन्द्रयोरन्तराशा द्वादशापवर्त्या एव तेन तदन्तरे कला विकला समत्वादेव केवल भागा उत्पद्यन्ते शेषप्रश्नोत्तर सुलभमेवेति ॥६ ॥

व्यतिपात और वैधृतपात के आद्यन्तकालानयन के लिये उपपत्ति।

हि भा —जब क्रान्तिसाम्य होता है तो पात होता है उस काल से (क्रान्तिसाम्यकाल से) आगे और पीछे क्यों पात की स्थिति होती हैं क्योंकि वहा क्रान्तिसाम्य नही है । क्रान्तिसाम्य ही का नाम पात है, विम्ब विम्बक्रान्ति मे विम्बार्ध घटाने मे पीछे के विम्ब प्रान्त की उतनी ही क्रान्ति होती है । विम्बमध्यक्रान्ति मे विम्बार्ध जोडने से आगे के विम्बप्रान्त की क्रान्ति होती है । इस तरह रवि और चन्द्र दोनों की होती है । यहा विम्ब म आगे पीछे से मतलब याम्योत्तर भाव में है । रवि विम्ब पृष्ठ प्रान्ति के बराबर जब चन्द्र विम्ब के अग्रप्रान्त की क्रान्ति होगी तब उन दोना विम्बो के एक देश की क्रान्ति बराबर होने मे पात की आदि होगी है । तब दोनो विम्ब केन्द्रो के अन्तर मानैक्यार्ध के बराबर होता है उसके बाद क्रम मे भ्रमण करते हुए रवि और चन्द्र की केन्द्रीय क्रान्ति जब बराबर होगी तब पातमध्य होता है । उसके बाद चन्द्रपृष्ठ प्रान्तीय क्रान्ति जब रवि के अग्रप्रान्तीय क्रान्ति के बराबर होगी

तब पात का अन्त होता है। क्योंकि मानैक्यार्ध से क्रान्त्यन्तर जब तक न्यून रहेगा तब तब पात रहेगा। पातमध्य साधन में क्रान्त्यन्तर ग्राह्य मज्ञक है और असकृत्प्रकार से स्पष्टीकृत इष्ट घटी जो है उन पर से अनुपात करते हैं यदि प्रथम तुल्य क्रान्त्यन्तर में यह इष्टघटी पाते हैं तो मानैक्यार्ध तुल्य अन्तर में क्या इस अनुपात से जो घटी आती है वह स्थित्यर्धघटी स्थूल है उसका स्फुटीकरण करते हैं तात्कालिक रवि और चन्द्र के पुन क्रान्त्यन्तर करना वह मानैक्यार्ध के आसन्न होता है उस पर से अनुपात करते हैं यदि इस क्रान्त्यन्तर में यह स्थित्यर्धघटी पाते हैं तो मानैक्यार्ध में क्या इस तरह असकृत् करने से उनका स्फुटत्व होता है। इति ॥

तिथ्यन्त और करणान्त का ज्ञान कैसे होता है इस प्रश्न के उत्तर के लिये उपपत्ति।

यदि रवि और चन्द्र के गत्यन्तर में साठ घटी पाते हैं तो चन्द्र विम्बकला में क्या इस अनुपात से जो घट्यादि फल होता है वह तिथि और करण के प्रान्त है।

योगान्त और नक्षत्रान्त ज्ञान कैसे होता है इन प्रश्नों के उत्तर के लिये उपपत्ति।

यदि रवि और चन्द्र की गतियोग कला में साठ घटी पाते हैं तो चन्द्रविम्बकला में क्या इस अनुपात से जो घट्यादि फल होता है वह योग का अन्त है।

यदि चन्द्रगति कला में साठ घटी पाते है तो चन्द्रविम्बकला में क्या इससे जो घट्यादि फल होता है वह नक्षत्र का अन्त है अर्थात् क्षत्रान्तर गमनकाल है ॥

अब रवि और चन्द्र कब कलादि कब अंशादि, और कब राश्यादि बराबर होते हैं इन प्रश्नों के उत्तर के लिये उपपत्ति।

यदि साठ घटी में रविगति कला पाते है तो तिथिगत घटी और गम्य घटी में क्या इसमें तिथि गतकला और गम्यकला आती है, एवं चन्द्रगतिवश करके भी तिथि गतकला, गम्यकला आती है। अपनी अपनी गतकला और गम्यकला करके रहित और सहित रवि और चन्द्र तिथ्यन्त में कलाद्यवयव कर बराबर होते है।

रवि और चन्द्र के अन्तर जब बारह अंश के बराबर होता है तब एक तिथि होती है, स्फुटमासान्त में तीस तिथियां हैं, इसलिये रवि और चन्द्र के अन्तरांश $=३० \times १२=$ ३६०° या शून्य के बराबर, इसलिये अमान्त में रवि और चन्द्र राश्यादि करके बराबर होते है। पूर्णिमा में पन्द्रह तिथियां हैं इसलिये रवि चन्द्र के अन्तर$=१५ \times १२=१८०^{\circ}=६$ राशि, इसलिये पूर्णिमा में रवि और चन्द्र अंशादि बराबर होते हैं। अन्यथा क्यों दोनों के अन्तर में केवल राशियां ही हैं। इस तरह किसी भी तिथ्यन्त में रवि और चन्द्र के अन्तरांश बारह से अपवर्त्य ही होंगे इसीलिए उनके अन्तर में कला, विकला के समत्व के कारण केवल अंश ही रहते हैं। इति ॥

शेष प्रश्न के उत्तर सुलभ ही हैं ॥ ६ ॥

इदानीमन्यान् प्रश्नानाह ।

अत्यन्तशीघ्रामथ शीघ्रसंज्ञां निसर्गजातां मृदुसंज्ञितां च ।
सुमन्दवेगां खलु वक्रनाम्नीमतीतवक्रां कुटिलां तथैवम् ॥१०॥
अष्टप्रकारां द्युचरस्य भुक्तिं यः केन्द्रभेदैर्गणक स सम्यक् ।

वि. भा.—अत्यन्तशीघ्रा (शीघ्रतरामतिशीघ्रा वा) शीघ्रसंज्ञा (शीघ्रा) निसर्गजाता (मन्दगति) मृदुसंज्ञिता (मन्दगति) सुमन्दवेगा (मन्दतरा) वक्रनाम्नी (वक्रगति) अतीतवक्रा (मार्गगति) कुटिलामित्यष्टप्रकारा द्युचरस्य (ग्रहस्य) भुक्ति (गति) केन्द्रभेदैर्यो जानाति स सम्यग्गणक (शोभनो ज्योतिर्वित्) इति ॥१०३॥

अत्रोपपत्तिर्वक्रादिकेन्द्रांशानयनेन मुलभैवेति ।

इति प्रश्नविधिः सप्तमोऽध्याय

इति श्रीमदानन्दपुरीयमहदत्तसुतवटेश्वरविरचिते स्फुटसिद्धान्ते स्वनामसंज्ञिते स्पष्टाधिकार. समाप्त ।

हि. भा. — शीघ्रतर या अतिशीघ्र, शीघ्रसंज्ञक निसर्गसंज्ञक (मन्दगति) मन्दगति, मन्दतर गति, वक्रगति, मार्गगति, कुटिल गति ये आठ प्रकार की ग्रहगतियों को केन्द्रभेद से जो जानते हैं वे अच्छे ज्योतिषी है ॥१०३॥

इसकी उपपत्ति वक्रादिकेन्द्रांशानयन से स्पष्ट है ॥

इति प्रश्नविधि नामक सप्तम अध्याय समाप्त हुआ ॥

इति श्रीमदानन्दपुरीय महदत्त पण्डित के पुत्र वटेश्वररचित स्फुटसिद्धान्त स्पष्टाधिकार समाप्त हुआ ।



वटेश्वर सिद्धान्ते

त्रिप्रश्नाधिकारः

प्रथमोऽध्यायः

अथ त्रिप्रश्नाधिकारः प्रारभ्यते ।

तत्रादौ तदारम्भप्रयोजनमाह ।

त्रिप्रश्नोक्त्या निखिलं सुगमं मष्टाधिकारजं यस्मात् ।
त्रिप्रश्नाह्वं तस्मादधिकारं स्पष्टमभिधास्ये ॥१॥

स्पष्टार्थम् ।

इदानीं दिग्ज्ञानमाह ।

समभुवि वृत्तेशङ्कोर्मध्यस्य प्रभाक्रामद्यत्र ।
प्रविशत्यपैति ककुभौ क्रान्तिवशात्स्तोऽपरैन्द्राख्ये ॥२॥

वि भा —समभुवि (जलेन समीकृतायां भूमौ) वृत्ते (माध्याह्निकच्छाया-प्रमाणतोऽधिकेन कर्कटकेन लिखितवृत्ते) मध्यस्य शङ्कोः तद्वृत्तकेन्द्रस्थापित शङ्कोः प्रभा (छाया) क्रमात् क्रान्तिवशाद्यत्र तस्मिन् वृत्ते प्रविशति, अपैति (निर्गच्छति) अपरैन्द्राख्ये (पश्चिमपूर्वसंज्ञके) ककुभौ (दिशौ) स्त इति ॥२॥

अत्रोपपत्ति ।

जलसमीकृतभूमौ माध्याह्निकच्छायाप्रमाणतोऽधिककर्कटेन वृत्तं विलिख्य तत्केन्द्रे द्वादशाङ्गुलशङ्कुं निवेश्य. । तस्य प्राक्कपालस्थे सूर्ये यत्र पश्चिमभागे वृत्तपरिधौ छायाग्रं लगति तत्र प्रथमबिन्दुः कार्यः । पुन. पश्चिमकपालस्थे रवौ तस्यैव शङ्कोश्छायाग्रं पूर्वभागे वृत्तपरिधौ यत्र निर्गच्छति तत्रान्यो बिन्दुः कार्यः । प्रथमबिन्दु. पश्चिमाऽन्यबिन्दुश्च पूर्वादिग्व्यवहारोपयोगिनी ज्ञेया, तद्गता रेखा नहि वास्तवपूर्वापररेखायाः समानान्तरा (छायाप्रवेशनिर्गमबिन्द्वोरग्रयोर-समत्वात्) तस्मादाचार्योक्तनियमेन वास्तवपूर्वापररेखायाः समानान्तररेखायाः ज्ञानं न जातमतस्तद्विधिर्न शोभनः, भास्कराचार्येण छायाप्रवेशनिर्गमबिन्द्वोरग्र-योरसमत्वात्तदन्तरानयनं 'तत्कालापमजीवयोस्तु विवराद् भाश्रवणमित्याहृता-दित्यादिना' कृत्वा तद्वशेन (कर्णवृत्ताग्रान्तरदानेन) स्फुटा प्राची दिक् साधिता परं कर्णवृत्ताग्रान्तरस्य वृत्तपरिधौ दानानौचित्याद् भास्करमतेनापि न वास्तवपूर्वापर-दिशोर्ज्ञानं जातमतो वास्तवपूर्वापरज्ञानार्थं प्रदर्श्यते अवास्तवपूर्वापररेखार्थ-

बिन्दु केन्द्रं मत्वा तदर्धव्यासार्धेन वृत्तं कार्यं तस्मिन् वृत्ते स्थूलपूर्वबिन्दुत साधिताग्रान्तरतुल्या पूर्णज्या देया, स्थूलपश्चिमबिन्दुतत्पूर्णज्याग्रगता रेखा वास्तवपूर्वापर रेखाया समानान्तरारेखा भवेत्, ततो वास्तवपूर्वापरज्ञान सुलभमेवेति ॥२॥

अब दिग्ज्ञान कहते हैं।

हि भा—जल से समीकृत भूमि में मध्याह्नकालिक छाया प्रमाण से अधिक कर्कट से लिखित वृत्त के केन्द्र में स्थापित द्वादशाङ्गुलशङ्कु की छाया भ्रान्तिवश से क्रमश उस वृत्त परिधि में जहां प्रवेश करती है और जहां निर्गत होती है वे दोनो बिन्दु पश्चिम और पूर्व दिशा होती है ॥२॥

उपपत्ति

जल से समीकृत पृथ्वी में मध्याह्निक छाया प्रमाण से अधिक कर्कट से वृत्त बनाकर उसके केन्द्र में द्वादशाङ्गुलशङ्कु स्थापित करना, पूर्वकपाल में सूर्य के रहने से उस शङ्कु की छाया पश्चिम भाग में वृत्त परिधि में जहां लगती है उसको प्रथम बिन्दु नाम रखना, पुन पश्चिम कपाल में सूर्य के रहने से उसी शङ्कु के छायाग्र पूर्वभाग में वृत्तपरिधि में जहा निर्गत होता है उसका नाम अन्य बिन्दु रखना, प्रथम बिन्दु पश्चिम दिशा और अन्य बिन्दु पूर्व दिशा व्यवहारोपयोगिनी समझनी चाहिए। इन दोनो बिन्दुओ में गत रेखा वास्तव पूर्वापर रेखा की समानान्तर रेखा नही होती है क्योंकि उन दोनो बिन्दुओ (प्रथम बिन्दु और अन्य बिन्दु) की अग्रायें बराबर नही है। इसलिए आचार्य के नियम से वास्तव पूर्वापर रेखा की समानान्तर रेखा का ज्ञान नही हुआ। यदि वास्तव पूर्वापर रेखा की समानान्तर रेखा का ज्ञान इनके नियम से होता तब केन्द्रबिन्दु से उस रेखा की समानान्तर रेखा करने से वास्तव पूर्वापर रेखा का ज्ञान हो जाता। भास्कराचार्य छायाप्रवेश बिन्दु और छाया निर्गम बिंदु के अग्राओ के अन्तरानयन "तत्कालापमजीवयोस्तु विवराद् भाकर्णमित्याहतात्" इत्यादि से करके उसके वश से (कर्णवृत्ताग्रान्तर दान से, स्फुट पूर्व दिशा का ज्ञान किया है, परन्तु कर्ण वृत्ताग्रान्तर को वृत्त परिधि में दान देना अनुचित है इसलिए भास्कराचार्य के प्रकार से भी वास्तव पूर्वापर रेखा का ज्ञान नही होता है, तब वास्तव पूर्वापर रेखा का ज्ञान किस तरह होगा इसलिए निम्नलिखित युक्ति समझनी चाहिए।

स्थूल पूर्वापर रेखा (छायाप्रवेश बिन्दु और छायानिर्गम बिन्दुगत रेखा) के अर्ध बिन्दु का केन्द्र मानकर उस रेखा के आधा व्यासार्ध से वृत्त बनाना, उस वृत्त में स्थूल पूर्व बिन्दु से अग्रान्तर तुल्य पूर्णज्या रूप दान देना, उस पूर्णज्या के अग्र में पश्चिम बिन्दु से जो रेखा करेंगे वह वास्तव पूर्वापर रेखा की समानान्तर रेखा होती है। केन्द्रबिन्दु से उसकी समानान्तर रेखा करने से वास्तव पूर्वापर रेखा होती है इस तरह वास्तव पूर्वापर रेखा का ज्ञान होता है ॥२॥

इदानीं पुनर्दिग्ज्ञानमाह।

तुल्यप्रभाग्रयोर्वा पूर्वापरयोः कपालयोर्बिन्दू।
कार्यावपक्रमवशादपरेन्द्राख्यौ दिशौ भवत. ॥३॥

वि भा.—वा (अथवा) पूर्वापरयोः (पूर्वपश्चिमयो) कपालयो, तुल्यप्रभाग्रयो. (तुल्यच्छायाग्रयो.) विन्दू कार्यौ, अपक्रमवशात्—अपरैन्द्राख्यौ (पश्चिम-पूर्वसंज्ञकौ) दिशौ भवतोऽर्थात् पूर्वापरकपालयोस्तुल्यच्छायाग्रयोर्यौ विन्दू तत्राऽद्य पश्चिमा दिक्, अन्यः पश्चिमकपालस्थे रवौ य उत्पन्न. स पूर्वा दिक् पूर्वा परकपालयोस्तुल्यच्छायाग्रयोर्ये *क्रान्ती तयोर्वशाद् भेद उत्पद्यते इत्यध्याहार्यम्* ।

अत्रोपपत्तिर्भास्करोक्तैव स्फुटा। भास्करोक्तकर्णवृत्ताग्रान्तरदानेनापि न स्फुटा प्राची भवतीत्यादिपूर्वश्लोकोपपत्तिदर्शनेनेन सर्वं स्फुटमिति ॥३॥

अब पुन. दिग्ज्ञान कहते है ।

हि. भा—अथवा पूर्व और पश्चिम कपाल मे क्रान्तिवश से जो तुल्य छायाग्र के द्वय होते है वे पश्चिम और पूर्व सज्ञक दिशायें होती है अर्थात् पूर्व और पश्चिम कपाल मे तुल्य छायाग्र के जो दो बिन्दु होते है उनमे प्रथम बिन्दु पश्चिम दिशा होती है और अन्य बिन्दु पश्चिम कपाल मे रवि के रहने से जो उत्पन्न होता है वह पूर्व दिशा होती है ॥३॥

उपपत्ति

"वृत्तेऽम्भ सुसमीकृतक्षितिगते केन्द्रस्य शङ्कोरित्यादि भास्करोक्त से इसकी उपपत्ति स्पष्ट है, कर्णवृत्ताग्रान्तर दान देने से भी स्फुट पूर्वदिशा का ज्ञान नही होता है इत्यादि सब बातें पहले श्लोक की उपपत्ति देखने मे स्पष्ट है ॥३॥

इदानीं पुनर्दिग्ज्ञानमाह ।

वृत्तं रवौ प्रविष्टे सममण्डलसंज्ञितं प्रभा या स्यात् ।
समपूर्वापरगा सा सौम्या यत्र ध्रुवः सा स्यात् ॥४॥

वि भा—सममण्डलसज्ञित वृत्त (पूर्वापरवृत्त) रवौ (सूर्ये) प्रविष्टे (प्रविशति) सति या प्रभा (छाया) सा समपूर्वापरगा भवति यत्र (यस्या दिशि) ध्रुव सा सौम्या (उत्तरा) दिक् स्यादिति, अनेनैतदुक्त भवति यदा रवि पूर्वापरवृत्ते भवेत्तदा तात्कालिकच्छायास्थितिवशेन पूर्वापरज्ञान सुगममेव। अथवा ध्रुव सर्वत्र उत्तरेऽस्ति, ध्रुवदर्शनेनोत्तरदिग्ज्ञान भवेत्तद्विरुद्धदिग्दक्षिणादिगेवमुत्तरदक्षिणदिशोर्ज्ञानेन दक्षिणोत्तररेखाया अर्धविन्दुतस्तदुपरि लम्बरूपा या रेखा वास्तवपूर्वापररेखा भवेदनया रीत्याऽपि पूर्वापरदिशोर्ज्ञानं भवितुमर्हतीति ॥४॥

अब पुन. दिग्ज्ञान कहते हैं ।

हि. भा—पूर्वापर वृत्त मे रवि के प्रविष्ट होने मे जो छाया होती है वह समपूर्वापर गत होती है और जहा ध्रुव है वह उत्तर दिशा है। कहने का अभिप्राय यह है कि जब रवि *सममण्डल में प्रवेश करते हैं तब जो छाया होती है उसकी स्थिति वशकर पूर्वापर दिग्ज्ञान* सुलभ ही है। अथवा ध्रुवतारा सबमे उत्तर तरफ है, ध्रुव दर्शन से उत्तरदिशा का ज्ञान हो जायेगा उसके विरुद्ध भाग मे जो दिशा वह दक्षिण दिशा है उसका ज्ञान हो जायेगा। इस तरह

दक्षिणोत्तर के ज्ञान से रेखा के अर्ध बिन्दु से उसके ऊपर जो लम्ब रेखा होगी वही वास्तव पूर्वापर रेखा होती है इस तरह भी पूर्वापर का ज्ञान होना है ।।४।।

इदानीं पुनरपि दिग्ज्ञानमाह।

इष्टाभा भुजकोटिरचितत्रिभुजस्य वा श्रवणतुल्या ।
यत्रेष्टाभा यावत्तावत्पूर्वापरा कोटिः ।।५।।

वि भा —इष्टाभा भुजकोटिरचितत्रिभुजस्य (इष्टछायाकर्ण, भुजो भुज कोटि कोटिरिति कर्णभुजकोटिभिरुत्पन्नत्रिभुजस्य) श्रवणतुल्या (कर्णतुल्या) यत्र यावदिष्टाभा (इष्टच्छाया) भवेत्तावत्कोटि पूर्वापरा भवेदिति ।।५।।

अत्रोपपत्ति ।

शङ्कुमूलात्पूर्वापररेखोपरिकृतो लम्बो भुजसंज्ञक । भुजमूलाद्वृत्तकेन्द्र यावत्पूर्वापररेखाया कोटि । शङ्कुमूलात्केन्द्र यावत् छायाकर्ण, इति भुजकोटि-कर्णैरुत्पन्नत्रिभुजस्य स्थितिवशेन पूर्वापररेखाया ज्ञान सुखेनैव भवितुमर्हति । यत उक्त त्रिभुजे छायारूपकर्णस्य भुजस्य च वर्गान्तरमूलरूपा पूर्वापररेखा खण्डरूपा कोटिर्भवेदेतस्या एव वर्धनेन पूर्वापरा भवेदिति ।।५।।

अब पुन दिग्ज्ञान कहते हैं ।

हि भा —इष्टच्छाया कर्ण, भुजभुज, कोटिसज्ञक कोटि इन कर्णभुज और कोटि से जो त्रिभुज बनता है उसके कर्ण के बराबर जहा इष्टच्छाया होती है वहा कोटि पूर्वापर होती है ।।५।।

उपपत्ति

शङ्कुमूल से पूर्वापर रेखा के ऊपर जो लम्ब करते हैं वह भुज है। भुजमूल से केन्द्र तक पूर्वापर रेखा मे कोटि है । शङ्कुमूल से केन्द्र तक छाया इन भुजकोटि और कर्ण से उत्पन्न त्रिभुज म छायारूप कर्ण और भुज के वर्गान्तर मूल लने से पूर्वापर रेखा मे कोटि प्रमाण होता है इसी को बढा देने स पूर्वापर रेखा होती है । इस तरह भी पूर्वापर रेखा का ज्ञान हो सकता है ।।५।।

इदानीं पुनरपि दिग्ज्ञानमाह ।

यत्रास्तमेति कश्चिद्द्युचर क्रान्त्या विनोदय याति ।
वरुणामरपत्योर्दिशो पतेते क्रमादथवा ।।६।।

वि भा —कश्चित् द्युचर (कोऽपि ग्रह) क्रान्त्या विना (क्रान्त्यभावेन) यत्र (यस्मिन् स्थाने) अस्तमेति (अस्त प्राप्नोति) यत्र चोदय याति क्रमात् वरुणामर-पत्योर्दिशो (वरुणेन्द्रयोर्दिशौ पश्चिमपूर्वौ) पतेतामर्थाद् ग्रहस्य क्रान्त्यभावोऽस्त्य-तोऽन्तकाले पश्चिमस्वस्तिके उदयकाले च पूर्वस्वस्तिके ग्रहो भवेदेतावताऽपि पूर्वापरज्ञान भवितुमर्हतीति ।। ६ ।।

अब पुन दिग्ज्ञान कहते हैं ।

हि भा —कोई ग्रह बिना क्रान्ति के जिस स्थान मे अस्त होता है वह पश्चिम दिशा होती है और जहा उदित होता है वह पूर्व दिशा होती है अर्थात् ग्रह के क्रान्ति के अभाव रहने से अस्तकाल मे ग्रह पश्चिम स्वस्तिक मे होंगे तथा उदयकाल मे पूर्व स्वस्तिक मे । इस तरह ठीक पूर्व और पश्चिम दिशा का ज्ञान होता है, इन दोनो बिन्दुओ मे जो रेखा होगी वही वास्तव पूर्वापरा रेखा होगी ॥६॥

इदानीं भाभ्रमरेखावशेन दिग्ज्ञानमाह ।

छायात्रयाग्रज मीनद्वयमध्यगसूत्रयोर्युतिर्यत्र ।
याम्या सोत्तरगोले सौम्या याम्ये हि शङ्कुतलात् ॥७॥
छाया त्रितयाग्र स्पृक्सूत्रयुतेर्वृत्तमालिखेत्तत्र ।
लेखां न जहात्येमा वनितेव कुलस्थितिं कुलोत्पन्ना ॥८॥
याम्योत्तरलेखाया द्युदलाभा वृत्तशङ्कुविवरं यत् ।
याम्योदग्वा ज्ञेया विज्ञैर्भाभ्रमप्रपञ्चकुशलैर्हि ॥ ६ ॥

वि भा —दृष्टेऽन्हि दिग्मध्यस्थशङ्कोश्छायात्रय ज्ञात्वा तदग्रैर्मत्स्यद्वय-मुत्पाद्य तन्मुखपुच्छमध्यगरेखयोर्य न युति सोत्तरगोले याम्या दिग् ज्ञेया यदि जिनाल्पाक्षे देशे कदाचिच्छङ्कुमूलाद्दक्षिणे छायाग्रे सा युतिर्भवति तदा सा सौम्या ज्ञेया ॥ ७ ॥

सूत्रयुते (मत्स्यद्वयमुखपुच्छनिर्गतसूत्रयुते) वृत्तमालिखेत्तदेव छाया त्रितयाग्रस्पृक् (छाया त्रितयाग्रगत भाभ्रमरेखा) भवति, इमा लेखा (वृत्तपरिधि भाभ्रमरेखा वा) सा छाया न जहाति (न त्यजति) कुलस्थितिं (कुलमर्यादा) कुलोत्पन्ना (कुलीना) वनितेव (स्त्रीव) अर्थाद्यथा कुलीना स्त्री कुलमर्यादा न त्यजति तथैव सा छायापि तद्वृत्तपरिधि (भाभ्रमरेखा) न त्यजतीति ॥८॥

वृत्तशङ्कुविवर (शङ्कुमूलभाभ्रमरेखयोरन्तर) यत् सैव याम्योत्तर-लेखाया द्युदलाभा (मध्यच्छाया) भवति । सा च याम्या (दक्षिणा) उदग्वा (उत्तरा वा) भवति । अर्थाज्जिनाधिकाक्षदेशे मध्यच्छाया सर्वदोत्तरा भवति जिनाल्पाक्षे देशे यदा रवेरुत्तरा क्रान्तिरक्षाधिका तदा शङ्कोर्मध्यान्हे छाया दक्षिणाभिमुखी भवति, । इष्टेऽन्हि मध्ये प्राक् पश्चाद्धृते बाहुत्रयान्तरे । मत्स्यद्वयान्तरयुतोस्त्रिस्पृक्सूत्रेण भाभ्रम इति सम्प्रति प्रसिद्धसूर्यसिद्धान्तेऽप्ये-वमेव । लल्लादिभिरप्येवमेवोदित स्वतन्त्रे । भास्करेणास्यैव 'भात्रितयाद्भाभ्रमण न सदस्माद् दिक् फलाद्य चे' त्यादिना भाभ्रमणस्य खण्डन कृतम् । वस्तुतो यद्ये-कस्मिन् दिने रविक्रान्तिः स्थिरा भवेत्तदा मेरौ भाभ्रमरेखा वृत्ताकारा भवेत् । साक्षदेशे न्यूनाधिक्य ध्रुववशेन वृत्तदीर्घवृत्तपरवलयातिपरवलयरेखाकारा भाभ्रमरेखा भवति, निरक्षे विषुवद्दिने रेखाकारा भवतीति स्वयमेव विज्ञैर्विचार्य ज्ञेयेति ॥ ६ ॥

अब भाभ्रम के सम्बन्ध से दिग्ज्ञान कहते हैं

हि. भा.—इष्टदिन मे दिग्मध्य स्थित शङ्कु की तीन छायायें जानकर उनके अग्रो से दो मछलियां बनाकर उनके मुख और पुच्छगत रेखाद्वय का योग जहां पर होता है वह उत्तर गोल मे दक्षिण दिशा होती है यदि जिनाल्पाक्ष देश मे कदाचित् शङ्कु मूल से दक्षिण छायाग्र मे वह योग हो तब उसको उत्तर दिशा समझनी चाहिये ॥७॥ मत्स्यद्वय के मुख पुच्छ निर्गत सूत्रो के योग बिन्दु से वृत्त बनाना वही वृत्तपरिधि तीनों छायाओ से अवगत गत होती है वही भाभ्रम रेखा है। छायायें इस वृत्तपरिधि को नही छोड सकती हैं जैसे कुलीन स्त्री अपनी कुल मर्यादा को नही छोडती है ॥८॥ शङ्कु मूल और भाभ्रम रेखा के जो अन्तर हैं वही मध्यच्छाया होती है वह दक्षिण या उत्तर होती है। जिनाधिकाक्ष देश मे मध्यच्छाया सर्वदा उत्तर होती है तब मध्याह्नकाल मे शङ्कु की छाया दक्षिण मुख की होती है।

'इष्टेऽह्नि मध्ये प्राक् पश्चाद्धृते बाहुत्रयान्तरे। मत्स्यद्वयान्तरयुतेस्त्रिस्पृक्सूत्रेण भाभ्रम' यह प्रसिद्ध सूर्यसिद्धान्त मे भी छायाभ्रमण 'भाभ्रम' इसी तरह है। अपने अपने तन्त्र मे लल्लादि आचार्य ने भी इसी तरह कहा हैं, भास्कराचार्य ने 'भान्तियात्भाभ्रमण न सदस्माद् दिक् पलाद्य च" इत्यादि से पूर्वोक्त भाभ्रम (वृत्ताकार) का खण्डन किया है। यदि एक दिन मे रवि की क्रान्ति स्थिर मानी जाय तब मेरु मे छाया भ्रमण मार्ग वृत्ताकार होता हैं। साक्षदेश मे न्यूनाधिक शङ्कु वश मे वृत्त, दीर्घवृत्त, परवलय, अतिपरवलय, और रेखा मे पाच तरह के छाया भ्रमण मार्ग होते है। निरक्ष देश मे विषुवद्दिन मे छाया भ्रमण मार्ग रेखाकार होता है ॥ ७-९ ॥

इदानी पुनरपि दिग्ज्ञानमाह।

उदयति पौष्णं यत्र श्रवणो वा सा दिगिन्द्रस्य।
स्थूलाय वा प्रदिष्टा चित्रा स्वात्यन्तरं विबुधैः ॥१०॥

स्पष्टार्थम्।

इदानी छायात कर्णं कर्णाच्छाया चाह।

शङ्कुप्रमाणवर्गाच्छायावर्गान्वितात्पदं कर्णः।
कर्णकृतेः शङ्कुकृतिं विशोध्य मूलं प्रभा भवति ॥११॥

वि भा—छायावर्गान्वितात् (छायावर्गयुतात्) शङ्कुप्रमाणवर्गात्पदं (मूल) कर्णो भवेत्। कर्णकृते. (कर्णवर्गात्) शङ्कुकृतिं (शङ्कुवर्ग) विशोध्य मूलं प्रभा (छाया) भवतीति ॥११॥

अत्रोपपत्तिः। तत्कृत्योर्योगपदमित्यादिना स्फुटैवास्तीति ॥११॥

अब छाया से कर्ण और कर्ण से छाया को कहते हैं।

हि भा—शङ्कुवर्ग मे छायावर्ग जोडकर मूल लेने से कर्ण होता है, कर्णवर्ग मे शङ्कुवर्ग को घटाकर मूल लेने से छाया होती है ॥११॥

उपपत्ति 'तत्कृत्योर्योगपदम्' इत्यादि से स्पष्ट है ।।११।।

इदानीं शङ्कुस्वरूपमाह ।

कार्यं स्थण्डिलमथवा वृत्तं भ्रमसिद्धमस्तकं विपुलम् ।
भगणांशाङ्कं तत्परिधिं स्वस्कन्धसमुच्छ्रितं च सिद्धाग्रम् ।।१२।।

स्पष्टार्थं ।

इदानीं पलभानयन प्रकारद्वयेनाह ।

अग्रा द्वादशगुणिता क्रान्तिज्या भाजिता पलश्रवणः ।
श्रुतिशङ्ख्वन्तरगुणितात्तद्योगान्मूलमक्षा भा ।।१३।।
क्रान्तिज्याग्राकृत्योर्विशेषमूलं द्युमण्डले कुज्या ।
द्वादशगुणिता कुज्या क्रान्तिज्याहृत्पलाभा वा ।।१४।।

वि भा —अग्रा द्वादशगुणिता क्रान्तिज्या भाजिता (क्रान्तिज्या भक्ता) तदा पलश्रवणः (पलकर्णः) भवेत् । श्रुतिशङ्ख्वन्तरगुणितात् (पलकर्णद्वादशान्तरगुणितात्) तद्योगात् (पलकर्णद्वादशयोगात) मूलं तदाऽक्षाभा (पलभा) भवेत् ।।१३।।

क्रान्तिज्याग्राकृत्योर्विशेषमूलं (क्रान्तिज्याग्रयोर्वर्गान्तरमूलं) द्युमण्डले (अहोरात्रवृत्ते) कुज्या भवेत् । कुज्या द्वादशगुणिता क्रान्तिज्या भक्ता वा पलाभा (पलभा) भवेदिति ।।१३-१४।।

अत्रोपपत्ति ।

अक्षक्षेत्रानुपातेन $\frac{\text{अग्रा} \cdot १२}{\text{क्राज्या}}$ = पलकर्ण तत $\sqrt{\text{पलक}^२ - १२^२}$ = पलभा

$= \sqrt{(\text{पलक} + १२)(\text{पलक} - १२)}$ एतेन १३ श्लोक उपपद्यते ।

तथा $\sqrt{\text{अग्रा}^२ - \text{क्राज्या}^२}$ = कुज्या तत $\frac{\text{कुज्या}\ १२}{\text{क्राज्या}}$ = पलभा

एतेनोपपन्नमाचार्योक्तम् ।।१३-१४।।

अब दो प्रकार से पलभा के आनयन कहते हैं ।

हि भा —अग्रा को द्वादश से गुणकर क्रान्तिज्या से भाग देने से पलकर्ण होती है । पलकर्ण और द्वादश के अन्तर से उसके योग (पलकर्ण और द्वादश के योग) को गुणकर मूल लेने से पलभा होता है ।।१३।। क्रान्तिज्या और अग्रा के वर्गान्तरमूल कुज्या होती है । कुज्या को द्वादश से गुणकर क्रान्तिज्या से भाग देने से पलभा होती है ।।१३-१४।।

उपपत्ति

अक्षक्षेत्रानुपात से $\frac{\text{अग्रा}\ १२}{\text{क्राज्या}}$ = पलकर्ण $\therefore \sqrt{\text{पलक}^२ - १२^२}$ = पलभा परन्तु

वर्गान्तर योगान्तर घात के बराबर होता है इसलिये $\sqrt{पलक^2 - १२^2} =$
$\sqrt{(पलक + १२)(पलक - १२)} =$ पलभा इससे १३वा श्लोक उपपन्न हुआ ॥१३॥

तथा $\sqrt{अग्रा^2 - क्राज्या^2} =$ कुज्या $\frac{कुज्या \ १२}{क्राज्या} =$ पलभा।

इससे आचार्योक्त १४ वा श्लोक उत्पन्न हुआ ॥१२-१४॥

पुनरपि पलभाज्ञानमाह।

सूर्याभिमुखी यष्टिर्धार्या तद्वत्त्रिभज्यया तुल्या।
यद्वच्छायाभाव शङ्कुस्तत्तलम्बक प्रोक्त ॥१५॥
तत्पूर्वापरलेखाविवर बाहुर्नृ यष्टितुल्य दृग्।
ज्याकर्णो यष्टिर्नु बलभुजो दृग्ज्यया तुल्य ॥१६॥
बाह्वग्रयो समासो भिन्नदिशोरन्तर नृतलम्।
तद् द्वादशगुणित वा शङ्कुविभक्त पलच्छाया ॥१७॥

वि भा —त्रिभज्यया तुल्या यष्टि सूर्याभिमुखी तथा धार्या यथा छायाभावो भवेत्तदा तत्पूर्वापररेखयोरन्तर भुजो भवेत्। मध्याह्नकालिकभुजो दृग्ज्या तुल्यो भवेत्। भुजाग्रयोरेकदिक्कयोर्योगो भिन्नदिक्कयोरन्तर शङ्कुतल भवति तद्द्वादशगुणित शङ्कुभक्त तदा पलभा भवेदिति ॥१५-१ ॥

श्लोकरूपा एवोपपत्तय इति ॥

पुन पलभाज्ञान के लिये कहते हैं।

हि भा —त्रिज्यातुल्य यष्टि सूर्याभिमुख उस तरह रखना चाहिये जिससे छाया के अभाव हो वहा शङ्कुमूल से पूर्वापर रेखा पर्यन्त भुज होता है। मध्यान्हकालिक भुज-दृग्ज्यातुल्य होता है एक दिशा मे भुज और अग्रा के योग करने भिन्न दिशा मे अन्तर करने से शङ्कुतल होता है उसको द्वादश से गुणकर शङ्कु से भाग देने से पलभा होती है ॥१५-१७॥

यहा श्लोक रूप ही उपपत्ति है ॥ १५ १७ ॥

इदानी भुजद्वय ज्ञाने पलभाज्ञानमाह।

इष्टान्यभुजयो समान्यककुभोर्विशेषसयोग।
सूर्याहतो विभक्त शङ्क्वोर्विवरेण वा पलच्छाया ॥१८॥

वि भा —समान्यककुभो (तुल्यान्यदिशो) इष्टान्यभुजयोर्विशेषसयोग (समदिक्कयोर्भुजयोरन्तर भिन्नदिक्कयोर्भुजयोर्योग) सूर्याहत (द्वादशगुणित) शङ्क्वोर्विवरेण (शङ्क्वन्तरेण) विभक्तस्तदा पलच्छाया (पलभा) भवतीति ॥

अत्रोपपत्ति।

अथ शङ्क्वन्तर कोटि। शङ्कुतलान्तर भुज। हृत्यन्तर कर्ण। इति भुजकोटिकर्णैर्जायमान त्रिभुजमप्यक्षक्षेत्रसजातीयमेव भवत्यतोऽनुपात। यदि

शङ्क्वन्तरेण शङ्कुतलान्तर भुजो लभ्यते तदा द्वादशेन किमित्यनुपातेन समागच्छति पलभ $= \frac{\text{शङ्कुतलान्तर} \times १२}{\text{शङ्कुतलान्तर}}$ अथ गोले एकस्मिन् वृत्ते यदेव भुजान्तर वा भुजयोगस्तदेव शङ्कुतलान्तर दृश्यतेऽत

$$\frac{(\text{भु} \pm \text{भु}')\ १२}{\text{शङ्कन्तर}} = \text{पलभा}$$ । एतावताऽऽचार्योक्तमुपपद्यते ॥ १८ ॥

अब भुजद्वय ज्ञान से पलभा ज्ञान कहते हैं ।

हि भा —एक दिशा में भुजद्वय के अन्तर करने से जो हो और भिन्न दिशा के भुजद्वय में योग करने से जो हो उसको बारह से गुणाकर शङ्क्वन्तर से भाग देने से पलभा होती है ॥१८॥

उपपत्ति

शङ्क्वन्तरकोटि, शङ्कुतलान्तर भुज, हृत्यन्तरकर्ण इन कोटिभुज कर्णों से जो त्रिभुज बनता है यह अक्षक्षेत्र के सजातीय होता है इसलिये अनुपात करते हैं यदि शङ्क्वन्तर में शङ्कुतलान्तर पाते है तो द्वादश में क्या इस अनुपात से पलभा आती है $\frac{\text{शङ्कुतलान्तर}\ १२}{\text{शङ्क्वन्तर}} = \text{पलभा}$ । गोल में एक अहोरात्रवृत्त में जो भुजान्तर या भुजयोग होता है वही शङ्कुतलान्तर होता है । इसलिये $\frac{(\text{भु} \pm \text{भु}')\ १२}{\text{शङ्क्वन्तर}} = \text{पलभा}$, इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥ १८ ॥

इदानीं छायाकर्णद्वयं तद्भुजद्वयं च ज्ञात्वा पलभाज्ञानमाह ।

अन्योन्यकर्णनिघ्नौ श्रुतिविवरहृतौ प्रभाद्वयस्य यौ बाहू ।
तत्फलविवरयुती समान्यककुभो पलच्छाया ॥ १९ ॥

वि भा —प्रभाद्वयस्य (छायाद्वितयस्य) यौ बाहू (भुजौ) अन्योन्यकर्णनिघ्नौ (परस्परछायाकर्णगुणितौ) श्रुतिविवरहृतौ (छायाकर्णान्तरभक्तौ) समान्यककुभो (तुल्यान्यदिशो तत्फलविवरयुती (परस्परछायाकर्णगुणितभुजयोश्छायाकर्णान्तरभक्तयोरन्तरयोगौ) पलच्छाया (पलभा) भवेदिति ॥ १९ ॥

अत्रोपपत्ति ।

अत्र कल्प्यते पलभामानम् $=$ य । इयं दक्षिणेन भुजेन युता जाता कर्णवृत्ताग्रा $=$ य $+$ भु इयं त्रिज्यागुणा कर्णभक्ता जाताग्रा $= \frac{(\text{य}+\text{भु}).\text{त्रि}}{\text{छाक}}$

$= \frac{\text{य त्रि} + \text{भु त्रि}}{\text{छाक}}$ एवमन्यभुजादपि । पलभोत्तरेण भुजेनोना जाता कर्णवृत्ताग्रा $=$

य—भु' इय त्रिज्यागुणा कर्णभक्ताग्रा $=\frac{(\text{य}-\text{भु}')\,\text{त्रि}}{\text{छा'ग्र}}=\frac{\text{य त्रि}-\text{भु' त्रि}}{\text{छा'क}}$ ततोऽग्रयो समीकरणम् $=\frac{\text{य त्रि}+\text{भु त्रि}}{\text{छाक}}=\frac{\text{य त्रि}-\text{भु' त्रि}}{\text{छा'क}}$ छेदगमेन

(य त्रि + भु त्रि) छा'क = छाक (य त्रि — भु' त्रि)
= य त्रि छा'क + भु त्रि छा'क = छाक य त्रि — छाक भु' त्रि समशोधनादिना
भु त्रि छा'क + छाक भु' त्रि = छाक य त्रि ∼ छा'क य त्रि
= त्रि (भु छा'क + छाक भु') = य त्रि (छाक ∼ छा'क)

∴ भु छा'क + छाक भु' = (य छाक ∼ छा'क) ततः $\frac{\text{भु छा'क}+\text{छाक भु'}}{\text{छाक}\sim\text{छा'क}}=$ य।

यदि भुजद्वयमेकदिक्कं भवेत्तदा $\frac{\text{भु छा'क}-\text{छाक भु'}}{\text{छाक}-\text{छा'क}}=$ य अत उपपन्नम् ॥१६॥

अब छाया कर्णद्वय और उसके भुजद्वय जान कर पलभाज्ञान कहते हैं।

हि भा—दोनो छायाओ में जो भुजद्वय है उनको परस्पर छायाकर्ण से गुणकर छायाकर्णान्तर से भाग देकर जो हो उन दोनो फलो के एक दिशा में अन्तर भिन्न दिशा में योग करने से पलभा होती है। यहां भुजद्वय के एक दिशा और भिन्न दिशा के सम्बन्ध से विचार करना चाहिये ॥ १६ ॥

उपपत्ति

यहां कल्पना करते हैं पलभा = य । इसमें दक्षिण भुज जोडने से कर्णवृत्ताग्रा होती है य + भु = कर्णवृत्ताग्रा इसको त्रिज्या से गुणकर कर्ण से भाग देने से अग्रा होती है $\frac{(\text{य}+\text{भु})\,\text{त्रि}}{\text{छाक}}=$ अग्रा । इसी तरह दूसरे भुज से भी होता है यथा पलभा में उत्तर भुज घटाने से कर्णवृत्ताग्रा होती है।

य — भु' = कर्णवृत्ताग्रा, इसको त्रिज्या से गुणकर कर्ण से भाग देने से अग्रा होती है $\frac{(\text{य}-\text{भु}')\,\text{त्रि}}{\text{छाक}'}=\frac{\text{य त्रि}-\text{भु' त्रि}}{\text{छा'क}}=$ अग्रा । दोनो अग्राओ के समीकरण करने से

$\frac{\text{य त्रि}+\text{भु त्रि}}{\text{छाक}}=\frac{\text{य त्रि}-\text{भु' त्रि}}{\text{छा'क}}$ छेदगम करने से

य त्रि छा'क + भु त्रि छा'क = य त्रि छाक — भु' त्रि छाक समशोधनादि से
भु त्रि छा'क + भु' त्रि छाक = छाक य त्रि ∼ छा'क य त्रि
= त्रि (भु छा'क + भु' छाक) = य त्रि (छाक ∼ छा'क)

∴ भु छा'क + भु' छाक = य (छाक ∼ छा'क) ∴ $\frac{\text{भु छा'क}+\text{भु' छाक}}{\text{छाक}\sim\text{छा'क}}=$ य।

यदि दोनो भुज एक दिशा होगे तब $\frac{\text{भु छा'व—भु'.छाव}}{\text{छाव—छा'व}}$=य।

इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥ १९ ॥

इदानी पुनरपि प्रकारद्वयेन पलभापलकर्णयो. साधनमाह।

द्वादशगुणिता वाऽग्रा सममण्डलशङ्कुभाजिताऽक्षाभा।
समकर्णगुणा कुज्या पलजीवाल्हृत्पलाभा वा ॥ २० ॥
स्ववृतिः समशङ्कुहृता रविगुणिता च पलश्रवणः।
त्रिज्या द्वादशगुणिता भक्ता लम्बज्ययाऽथवा कर्णः ॥ २१ ॥

वि. भा.—वा अग्रा द्वादशगुणिता सममण्डलशङ्कुभाजिता (समशङ्कु भक्ता) तदा अक्षाभा (पलभा) भवेत्। अथवा कुज्या समकर्णगुणा, पलजीवाहृत् (अक्षज्या भक्ता) तदा पलाभा (पलभा) भवेत् ॥२०॥

स्ववृतिः (तद्धृति) रविगुणिता (द्वादशगुणा) समशङ्कुहृता (समशङ्कुभक्ता) तदा पलश्रवण. (पलकर्ण) भवेत्। अथवा त्रिज्या द्वादशगुणिता, लम्बज्यया भक्ता तदा कर्ण (पलकर्ण) भवेदिति ॥ २०-२१ ॥

अत्रोपपत्ति।

अक्षक्षेत्रानुपातेन $\frac{\text{अग्रा १२}}{\text{समश}}$=पलभा। परन्तु $\frac{\text{त्रि कुज्या}}{\text{अज्या}}$=अग्रा

अतोऽग्राया उत्थापनेन $\frac{\text{त्रि कुज्या १२}}{\text{समश अज्या}}=\frac{\text{कुज्या समकर्ण}}{\text{अज्या}}$=पलभा

एतेन २० तम श्लोक उपपद्यते ॥

अथाक्षक्षेत्रानुपातेन $\frac{\text{तद्धृति १२}}{\text{समश}}$=पलकर्ण।

तथा $\frac{\text{त्रि १२}}{\text{लज्या}}$=पलकर्ण अत उपपन्नम् ॥ २०-२१ ॥

अब फिर भी दो प्रकार से पलभा और पलकर्ण के साधन कहते हैं।

हि. भा.—वा अग्रा को द्वादश से गुणकर समशङ्कु से भाग देने से पलभा होती है। अथवा कुज्या को समकर्ण से गुणकर अक्षज्या से भाग देने से पलभा होती है ॥२०॥

तद्धृति को द्वादश से गुणकर समशङ्कु से भाग देने से पलकर्ण होता है। अथवा त्रिज्या को द्वादश से गुणकर लम्बज्या से भाग देने से पलकर्ण होता है ॥ २०-२१ ॥

उपपत्ति

अक्षक्षेत्रानुपात से $\frac{\text{अग्रा.१२}}{\text{समश}}$=पलभा। परन्तु =अग्रा इससे पलाभ

स्वरूप म अग्रा को उत्थापन देने से $\frac{\text{त्रि कुज्या १२}}{\text{समश अग्रज्या}} = \frac{\text{समकर्ण कुज्या}}{\text{अग्रज्या}} = \text{पभा}$ ।

इससे बीसवा श्लोक उपपन्न हुआ ।।

अक्षक्षेत्रानुपात से $\frac{\text{तद्धृति १२}}{\text{समश}} = \text{पलकर्ण}$ । $\frac{\text{पर तद्धृति}}{\text{समश}} = \frac{\text{त्रि}}{\text{लज्या}}$

. $\frac{\text{तद्धृति १२}}{\text{समश}} = \frac{\text{त्रि १२}}{\text{लज्या}} = \text{पकर्ण}$ इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ।।२०-२१।।

इदानी क्रान्तिज्ञाने पलज्ञानमाह ।

दिनदलदृग्ज्याचाप क्रान्त्या युतवर्जितं क्रियतुलादौ ।
अक्षो दक्षिणदृग्ज्या धनुषोना क्रान्तिरक्ष स्यात् ।।२२।।

वि भा —क्रियतुलादौ (मेषादितुलादिकेन्द्रे) दिनदलदृग्ज्याचाप (मध्याह्ननतांशचाप) क्रान्त्या युतवर्जित तदाऽक्ष (अक्षांश) भवेत् । दक्षिणदृग्ज्याधनुषोनाक्रान्ति (दक्षिणनतांशचापोनक्रान्ति) अक्ष स्यादिति ।।२२।।

अत्रोपपत्तिरति सुगमैवेति ।

अब क्रान्तिज्ञान से अक्षांश ज्ञान कहते हैं ।

हि भा —मेषादि और तुलादि केन्द्र मे मध्याह्नकालिक नतांश चाप म क्रान्ति चाप को जोडने और घटाने से अक्षांश होता है । दक्षिण नतांश चाप को क्रान्ति मे घटाने से अक्षांश होता है ।।२२।।

इसकी उपपत्ति गोल म स्पष्ट है ।।

इदानी पुनरपि पलभाज्ञानमाह ।

शङ्कु परिकल्प्य भुज त्रिभुजेन विलोकयेद् ध्रुवमुदीच्याम् ।
यन्त्रेण दृष्टिभुजयोर्विवराग्रा वा पलच्छाया ।।२३।।

वि भा —शङ्कु (द्वादशाङ्गुल) भुज परिकल्प्य त्रिभुजेन यन्त्रेण (द्वादश-पलभा पलकर्णोरुत्पन्नत्रिभुजरूपयन्त्रेण) उदीच्याम् (उत्तरदिशि) ध्रुव (ध्रुव-तारा) विलोकयेत् तदा दृष्टिभुजान्तर यद्भवेत्सा पलभा स्यादिति ।।२३।।

अब पुन पलभाज्ञान कहते है ।

हि भा —द्वादशाङ्गुल शङ्कु को भुज मानकर द्वादश, पलभा, पलकर्ण इनसे उत्पन्न जो त्रिभुज होता है तद्रूपी यन्त्र के द्वारा उत्तर तरफ ध्रुव तारा को देखने से दृष्टि और भुज का अन्तर जो होता है वही पलभा होती है ।।२३।।

इदानीं पुनरपि पलभाज्ञानमाह ।

उदयास्तसूत्रतः स्याच्छङ्क्वग्रप्रोपणी स्वधृतिः ।
नृतलास्तोदयसूत्रान्तरं रविगुणं नृहृत्पलाभा वा ॥२४॥
स्वधृतिर्वा सूर्यगुणा शङ्कुविभक्ता पलश्रवणः ।
इष्टच्छायाभ्यस्तं नृतलं दृग्ज्योद्धृतं पलाभा वा ॥२५॥

वि. भा—उदयास्तसूत्रत शङ्क्वग्रप्रोपणी (उदयास्तसूत्राच्छङ्क्वग्र यावदुदयास्तसूत्रोपरिलम्बरूपा) स्वधृति (हृति.) भवेत् । नृतलास्तोदयसूत्रान्तर (शङ्कुमूलस्वोदयास्तसूत्रान्तर शङ्कुतल) रविगुण (द्वादशगुणितं) नृहृत् (शङ्कुभक्त) वा पलाभा (पलभा) भवेत् ॥२४॥

स्वधृति (हृति) सूर्यगुणा (द्वादशगुणिता) शङ्कुविभक्ता तदा पलश्रवण (पलकर्ण) भवेत् । नृतल (शङ्कुतल) इष्टच्छायाभ्यस्त (इष्टच्छायागुणित) दृग्ज्योद्धृत (दृग्ज्याभक्त) वा पलाभा (पलभा) भवेदिति ॥२४ २५॥

अत्रोपपत्ति

अक्षक्षेत्रानुपातेन $\frac{\text{शतल} \times १२}{\text{शङ्कु}} =$पलभा ।

अथ $\frac{\text{दृग्ज्या } १२}{\text{शङ्कु}} =$ छाया । $\frac{\text{छाया शतल}}{\text{दृग्ज्या}} = \frac{\text{दृग्ज्या } १२ \times \text{शतल}}{\text{शङ्कु} \times \text{दृग्ज्या}}$

$= \frac{१२ \times \text{शतल}}{\text{शङ्कु}} =$पलभा

$\frac{\text{छाया शतल}}{\text{दृग्ज्या}} =$ पलभा । अत आचार्योक्तमुपपन्नम् ॥२४-२५॥

इति वटेश्वरसिद्धान्ते त्रिप्रश्नाधिकारे विषुवच्छाया-
साधनविधि प्रथमोऽध्याय ॥

अब पुन पलभाज्ञान कहते हैं।

हि भा—उदयास्त सूत्र से शङ्कु के अग्र तक उदयास्त सूत्र के ऊपर लम्बरूप रेखा स्वधृति (हृति) होती है। शङ्कुमूल और स्वोदयास्त सूत्र के अन्तर (शङ्कुतल) को द्वादश से गुणकर शङ्कु से भाग देने से वा पलभा होती है। हृति को द्वादश से गुणकर शङ्कु से भाग देने से पलकर्ण होता है। शङ्कुतल को इष्टच्छाया से गुणकर दृग्ज्या से भाग देने से अथवा पलभा होती है ॥२४-२५॥

उपपत्ति

अक्षक्षेत्रानुपात से $\frac{\text{शतल } १२}{\text{शङ्कु}} =$पलभा ।

$$\frac{\text{दृग्ज्या १२}}{\text{शङ्कु}} = \text{छाया ।} \quad \frac{\text{छाया शंतल}}{\text{दृग्ज्या}} = \frac{\text{दृग्ज्या १२ शंतल}}{\text{दृग्ज्या शङ्कु}} = \frac{\text{१२ शंतल}}{\text{शङ्कु}} = \text{पभा}$$

$$\therefore \frac{\text{छाया शंतल}}{\text{दृग्ज्या}} = \text{पलभा}$$ इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥२४-२५॥

इति वटेश्वरसिद्धान्त में त्रिप्रश्नाधिकार में विषुवच्छायोना साधनविधि नामक प्रथम अध्याय समाप्त हुआ ॥



द्वितीयोऽध्यायः

अथ लम्बाक्षज्यानयनविधिः

इदानीं लम्बाक्षज्ययोरानयनान्याह

पलभार्कवर्गगुणितौ त्रिज्यावर्गौ पलश्रवणकृत्या ।
भक्ताववाप्तमूले पलजीवा लम्बजीवे स्तः ॥१॥
अथवा भार्ककृतिघ्ने त्रिज्ये भार्कहृतश्रवणभक्ते ।
केवलया श्रुत्या लब्धी छायार्कसंगुणिते ॥२॥

वि भा —त्रिज्यावर्गौ पलभार्कवर्गगुणितौ (पलभा द्वादशवर्गाभ्यां पृथक्-गुणितौ) पलश्रवणकृत्या (पलकर्णवर्गेण) भक्तौ, अवाप्तमूले (लब्धयोर्मूले ग्राह्ये) तदा पलजीवा लम्बजीवे स्तः (अक्षज्यालम्बज्ये भवतः) ॥ अथवा त्रिज्ये भार्ककृतिघ्ने (पलभाद्वादशवर्गगुणिते) भार्कहृतश्रवणभक्ते (पलभा पलकर्णघातेन द्वादशपलकर्णघातेन च विभाजिते) तदाऽक्षज्यालम्बज्ये भवतः । अथवा त्रिज्ये छायार्कसङ्गुणिते (पलभाद्वादशगुणिते) केवलया श्रुत्या (केवलपलकर्णेन) विभाजिते तदा लब्धी—अक्षज्यालम्बज्ये भवतः । इति ॥१-२॥

अत्रोपपत्तिः

अक्षज्या लम्बज्या त्रिज्याभिर्भुजकोटिकर्णैर्जायमानाक्षक्षेत्रस्य पलभा द्वादशपलकर्णैर्भुजकोटिकर्णैरुत्पन्नाक्षक्षेत्रेण सजातीयत्वादनुपातो यदि पलकर्ण-वर्गेण पलभावर्गो लभ्यते तदा त्रिज्यावर्गेण किमित्यागतोऽक्षज्यावर्गस्तत्स्वरूपम्
$= \frac{\text{पलभा}^2 \cdot \text{त्रि}^2}{\text{पलक}^2}$ मूलेन $\frac{\text{पलभा} \cdot \text{त्रि}}{\text{पलक}} = \text{अक्षज्या}$ । एवं $\frac{१२^2 \cdot \text{त्रि}^2}{\text{पलक}^2} = \text{लम्बज्या}^2$ मूलेन
$\frac{१२ \times \text{त्रि}}{\text{पलक}} = \text{लज्या}$ अथवा $\frac{\text{पलभा}^2 \cdot \text{त्रि}}{\text{पलभा} \cdot \text{पलक}} = \frac{\text{पलभा} \cdot \text{त्रि}}{\text{पलकर्ण}} = \text{अक्षज्या}$
$\frac{१२^2 \cdot \text{त्रि}}{१२ \times \text{पलकर्ण}} = \frac{१२ \times \text{त्रि}}{\text{पक}} = \text{लम्बज्या}$ ।

पूर्वं प्रथमश्लोकेन वर्गानुपातद्वारा येऽक्षज्यालम्बज्ये समानीते तत्र वर्गानुपा-तस्याऽवश्यकता नाऽङ्गीकृत्य वर्गानुपातेन तयोरानयनं कृतमाचार्येणाचार्य एव ज्ञातुं शक्नोतीति मन्मते तु वर्गानुपातकरणं निरर्थकमिति ॥१-२॥

अब लम्बज्या और अक्षज्या के आनयन करते हैं।

हि भा —त्रिज्यावर्ग को पृथक् पलभावर्ग और द्वादश के वर्ग से गुणाकर पलकर्ण वर्ग से भाग देकर जो फल हो उन दोनो के मूल अक्षज्या और लम्बज्या होती है। अथवा त्रिज्या को पृथक् पलभा वर्ग और द्वादश वर्ग से गुण कर, क्रमश पलभा पलकर्ण के घात और द्वादश पलकर्ण के घात से भाग देने से अक्षज्या और लम्बज्या होती है। अथवा त्रिज्या को पृथक् पलभा और द्वादश से गुण कर पलकर्ण से भाग देने से अक्षज्या और लम्बज्या होती है ॥१-२॥

उपपत्ति

अक्षज्या भुज, लम्बज्या कोटि, त्रिज्या कर्ण इन भुजकोटि और कर्ण से जो त्रिभुज बनता है वह पलभा भुज, द्वादश कोटि, पलकर्ण इन भुजकोटिकर्णों से उत्पन्न त्रिभुज का सजातीय है इसलिए अनुपात करते हैं यदि पलकर्ण वर्ग मे पलभावर्ग पाते हैं तो त्रिज्यावर्ग मे क्या इस अनुपात से अक्षज्या वर्ग आता है $\frac{\text{पलभा}^2\ \text{त्रि}^2}{\text{पलक}^2} = \text{अक्षज्या}^2$ मूल लेने से

$\frac{\text{पलभा त्रि}}{\text{पलक}} = \text{अक्षज्या}$ । एव $\frac{१२^2\ \text{त्रि}^2}{\text{पलक}^2} = \text{लंज्या}^2$ मूल लेने से $\frac{१२ \times \text{त्रि}}{\text{पलक}} = \text{लज्या}$

अथवा

$\frac{\text{पलभा त्रि}}{\text{पलकर्ण}} = \text{अक्षज्या} = \frac{\text{पलभा}^2\ \text{त्रि}}{\text{पलभा} \times \text{पलकर्ण}}$ $\frac{१२\ \text{त्रि}}{\text{पलक}} = \frac{१२^2\ \text{त्रि}}{१२ \times \text{पलक}} = \text{लज्या}$

प्रथम श्लोक की उपपत्ति म वर्गानुपात करने की आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि वर्गानुपात आचार्य ने किया यह बात आचार्य ही जान सकते हैं, हमारे विचार मे वह निरर्थक है। वर्गानुपात करने की कोई आवश्यकता नहीं है॥१-२॥

पुनस्तयोरेवानयनद्वयमाह ।

त्रिज्ये छायार्कघ्ने कर्णहृते वा पलावलम्बज्ये ।
नृच्छायानिहते वा छायाशङ्कूद्धृते चाज्ये ॥ ३ ॥

वि भा —वा त्रिज्ये पृथक् छायार्कघ्ने (पलभाद्वादशगुणिते) कर्णहृते (पलकर्णभक्ते) पलावलम्बज्ये (अक्षज्यालम्बज्ये) भवत । वा पूर्वोक्तफले नृच्छायानिहते (द्वादशपलभागुणिते) छाया शङ्कूद्धृते (पलभाद्वादशभक्ते) तदाज्ये ते स्त इति ॥३॥

अत्रोपपत्ति

अक्षक्षेत्रानुपातेन $\frac{\text{पलभा त्रि}}{\text{पलकर्ण}} = \text{अक्षज्या}$ | $\frac{१२ \times \text{त्रि}}{\text{पलक}} = \text{लम्बज्या}$ ।

अथवा $\frac{\text{अक्षज्या}\times १२}{\text{पलभा}} = \frac{\text{पलभा. त्रि. १२}}{\text{पलक}\times\text{पलभा}} = \frac{\text{त्रि. १२}}{\text{पलक}} = \text{लम्बज्या}$ | तथा $\frac{\text{लंज्या. पभा}}{१२} = \frac{१२\times\text{त्रि. पभा}}{\text{पकर्ण}\times १२} = \frac{\text{त्रि. पभा}}{\text{पलक}} = \text{अक्षज्या}$

अत आचार्योक्त युक्तियुक्तमिति ॥३॥

पुन. अक्षज्या और लम्बज्या के आनयन कहते हैं।

हि. भा—त्रिज्या को पृथक् पलभा और द्वादश से गुणाकर पलकर्ण से भाग देने से अक्षज्या और लम्बज्या होती है। अथवा पूर्वोक्त फल को द्वादश और पलभा से गुणाकर पलभा और द्वादश से भाग देने से अन्य होते हैं अर्थात् अक्षज्या लम्बज्या से व्यत्यास होता है ॥३॥

उपपत्ति

अक्षक्षेत्र के अनुपात से $\frac{\text{पभा त्रि}}{\text{पलक}} = \text{अक्षज्या}$ | $\frac{१२\times\text{त्रि}}{\text{पलक}} = \text{लंज्या}$

अथवा $\frac{\text{अज्या}\times १२}{\text{पभा}} = \frac{\text{पभा त्रि १२}}{\text{पलक. पभा}} = \frac{\text{त्रि १२}}{\text{पलक}} = \text{लज्या}$ | तथा $\frac{\text{लज्या. पभा}}{१२} = \frac{१२\times\text{त्रि. पभा}}{\text{पकर्ण}\times १२} = \frac{\text{त्रि पभा}}{\text{पकर्ण}} = \text{अज्या}$

अत आचार्योक्त युक्तियुक्त है ॥३॥

पुनरक्षज्यालम्बज्ययो आनयनान्याह।

लम्बज्याकृतिहीनात् त्रिज्यावर्गात्पदं पलज्या वा।
पलजीवा त्रिज्याकृति वियुतिपदं लम्बकज्या वा ॥४॥
कुज्या भाकर्णघ्ना भावृत्ताग्रोद्धृताऽथवाऽक्षज्या।
जिनभागज्याघ्नाऽर्कज्या त्रिज्याऽग्रज्ययाहृदवलम्बज्या ॥५॥
लम्बज्योन समेत त्रिज्याघातात्पदं पलज्या वा।
अक्षज्ययोनयुक्तत्रिगुणवधान्मूलमितरा वा ॥६॥

वि. भा.—लम्बज्या कृतिहीनात् त्रिज्यावर्गात् (लम्बज्या वर्गरहितात् त्रिज्यावर्गात्) पद (मूल) वा पलज्या (अक्षज्या) भवेत्। पलजीवा त्रिज्याकृतिवियुतिपद (त्रिज्याक्षज्ययोर्वर्गान्तरमूल) वा लम्बज्या (लम्बकज्या) भवेत् ॥ अथवा कुज्या भाकर्णघ्ना (छायाकर्णगुणा) भावृत्ताग्रोद्धृता (छायाकर्णगोलीयाग्रया भक्ता) तदाऽक्षज्या भवेत्। भाकर्णघ्ना (छायाकर्णगुणिता) जिनभाज्याघ्नाऽर्कज्या (जिनज्यागुणित रविभुजज्या) त्रिज्याऽग्रज्यया (त्रिज्यागुणितछायाकर्णगोलीयाग्रया) हृत् (भक्ता) तदाऽवलम्बज्या (लम्बज्या) भवेत् ॥ अथवा लम्बज्योनसमेतत्रिज्याघातात् (लम्बज्यया रहितसहितत्रिज्ययोर्घातात्) पदं (मूल) पलज्या (अक्षज्या)

भवेत् । अक्षज्ययोनयुक्तत्रिगुणवधात् (अक्षज्ययारहितसहितत्रिज्ययोर्घातात्) मूल वा इतरा (लम्बज्या) भवेदिति ॥४-६॥

अत्रोपपत्ति

अथ $\sqrt{\text{त्रि}^2 - \text{लज्या}^2}$ = अक्षज्या । तथा $\sqrt{\text{त्रि}^2 - \text{अक्षज्या}^2}$ = लम्बज्या ।

अक्षक्षेत्रानुपातेन $\frac{\text{कुज्या त्रि}}{\text{अग्रा}}$ = अक्षज्या । पर $\frac{\text{छायाकर्णगोलीयाग्रा त्रि}}{\text{छायकर्ण}}$ = अग्रा

अत उत्थापनेन $\dfrac{\text{कुज्या त्रि}}{\dfrac{\text{छाकगोलीयाग्रा त्रि}}{\text{छायाक}}} = \dfrac{\text{कुज्या त्रि छाक}}{\text{छाकगोअग्रा त्रि}}$ = अक्षज्या

$= \frac{\text{कुज्या छाक}}{\text{छाकगोअग्रा}}$, तथा $\frac{\text{क्राज्या त्रि}}{\text{अग्रा}}$ — लम्बज्या, अत्राप्यग्राया उत्थापनेन

$\dfrac{\text{क्राज्या त्रि}}{\dfrac{\text{छायाकर्णगोअग्रा त्रि}}{\text{छायाकर्ण}}} = \dfrac{\text{काज्या छाकर्ण}}{\text{छायाकर्णगोअग्रा}}$ = लम्बज्या ।

परन्तु $\frac{\text{जिनज्या भुजज्या}}{\text{त्रि}}$ = क्राज्या तत क्रान्तिज्याया उत्थापनेन

$\frac{\text{जिज्या भुज्या छाकर्ण}}{\text{त्रि छाकर्णगोअग्रा}}$ = लम्बज्या ॥

तथाच $\sqrt{\text{त्रि}^2 - \text{लज्या}^2}$ = अक्षज्या वर्गान्तरस्य योगान्तर घातसमत्वात् ।

$\sqrt{(\text{त्रि} + \text{लज्या})(\text{त्रि} - \text{लज्या})}$ = अज्या । एव $\sqrt{\text{त्रि}^2 - \text{अक्षज्या}^2}$ = लम्बज्या वर्गान्तरस्य योगान्तरघातसमत्वात् $\sqrt{(\text{त्रि} + \text{अज्या})(\text{त्रि} - \text{अज्या})}$ = लम्बज्या अत उपपन्न सर्वमिति ॥४ ६॥

हि भा —लम्बज्या वर्ग को त्रिज्यावर्ग म घटा कर मूल लन से अक्षज्या होती है, अथवा त्रिज्यावर्ग म अक्षज्या को घटाकर मूल लन से लम्बज्या होती है ॥ अथवा कुज्या को छायाकर्ण म गुणकर छायकर्ण गोलीय अग्रा मे भाग देने से अक्षज्या होती है । जिनज्या गुणित त्रिज्या को छायाकर्ण स गुणकर त्रिज्या और छायाकर्ण गोलीय अग्रा के घात से भाग देन स लम्बज्या होती है ॥ अथवा लम्बज्या करके रहित और सहित त्रिज्या के घात कर मूल लने म अक्षज्या होती है । तथा अक्षज्या करके रहित और सहित त्रिज्या के घात कर मूल लन मे लम्बज्या होती है ॥४ ६॥

उपपत्ति

$\sqrt{\text{त्रि}^2 - \text{लज्या}^2}$ = अक्षज्या । तथा $\sqrt{\text{त्रि}^2 - \text{अज्या}^2}$ = लज्या

अथवा

अक्षक्षेत्रानुपात से $\frac{\text{कुज्या.त्रि}}{\text{अग्रा}}$ = अक्षज्या। परन्तु $\frac{\text{छायाकर्ण गोलीयाग्रा त्रि}}{\text{छायाकर्ण}}$ = अग्रा

अक्षज्या के स्वरूप मे अग्रा को उत्थापन देने मे $\frac{\text{कुज्या. त्रि}}{\frac{\text{छायाकगोअग्रा त्रि}}{\text{छायाक}}} = \frac{\text{कुज्या छायाक}}{\text{छायाकगोअग्रा}}$

= अक्षज्या तथा $\frac{\text{क्राज्या त्रि}}{\text{अग्रा}}$ = लम्बज्या। यहा भी अग्रा के स्वरूप को उत्थापन देने से

$\frac{\text{क्राज्या.त्रि}}{\frac{\text{छायाकगोअग्रा.त्रि}}{\text{छायाकर्ण}}} = \frac{\text{क्राज्या.छायाक}}{\text{छायाकगोअग्रा}}$ = लम्बज्या। परन्तु $\frac{\text{जिज्या भुजज्या}}{\text{त्रि}}$ = क्राज्या

अत. क्रान्तिज्या के स्वरूप को उत्थापन देने से $\frac{\text{जिज्या. भुज्या. छायाक}}{\text{त्रि. छायाकगोअग्रा}}$ = लम्बज्या।

अथवा $\sqrt{\text{त्रि}^2 - \text{लज्या}^2}$ = अज्या वर्गान्तर योगान्तर घात के बराबर होता है। इसलिये $\sqrt{(\text{त्रि}+\text{लज्या})(\text{त्रि}-\text{लज्या})}$ = अक्षज्या। तथा $\sqrt{\text{त्रि}^2 - \text{अज्या}^2}$ = लज्या यहा भी वर्गान्तर योगान्तर घात के बराबर होने से $\sqrt{(\text{त्रि}+\text{अज्या})(\text{त्रि}-\text{अज्या})}$ = लम्बज्या। अत आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥८-६॥

पुनस्तयोरेवानयनान्याह।

कुज्या क्रांतिज्ये वा त्रिज्याघ्नेऽग्रज्यया हृते ते स्तः।
अग्रा समशङ्कुज्ये त्रिगुणघ्ने तद्धृति हृते वा ॥७॥
स्वधृतिहृद्वा त्रिज्ये नृतलनरघ्ने पलावलम्बज्ये।
अक्षावलम्बकार्मुकहीनत्रिगेहाद् गुणौ वा ते ॥८॥

वि. भा. —वा कुज्या क्रान्तिज्ये त्रिज्याघ्ने (त्रिज्यागुणिते) अग्रज्यया (अग्रया हृते (भक्ते) ते स्तः (अक्षज्यालम्बज्ये भवत)। वा अग्रासमशङ्कुज्ये त्रिज्याघ्ने तद्धृतिहृते (तद्धृतिभक्ते) तदाऽक्षज्यालम्बज्ये भवत.। वा त्रिज्ये नृतलनरघ्ने (शङ्कुतल-स्वधृतिहृत् (हृत्या भक्ते) तदा पलावलम्बज्ये (अक्षज्यालम्बज्ये) भवतः। वा अक्षावलम्बकार्मुकहीनत्रिगेहात् (अक्षांशलम्बांशरहित नवत्यंशचापात्) गुणौ (ज्ये) ते (लम्बज्या अक्षज्ये) भवत इति ॥७-८॥

अत्रोपपत्तिः।

अक्षज्या लम्बज्या त्रिज्याभिर्भुजकोटिकर्णैरुत्पन्नमेकमक्षक्षेत्रम्। कुज्या-क्रान्तिज्याऽग्राभिर्भुजकोटिकर्णैरुत्पन्न द्वितीयमक्षक्षेत्रम्। अनयोस्त्रिभुजयोः सजातीयत्वादनुपातः।

$\frac{\text{कुज्या.त्रि}}{\text{अग्रा}}$ = अक्षज्या। तथा $\frac{\text{क्राज्या.त्रि}}{\text{अग्रा}}$ = लम्बज्या,

तथाऽग्रासमशङ्कु तद्घृतिभुजकोटिकर्णैरुत्पन्नत्रिभुज पूर्वोक्तत्रिभुजसजातीय मतोऽनुपात $\frac{\text{अग्रा त्रि}}{\text{तद्घृति}}$ = अक्षज्या । तथा $\frac{\text{समशङ्कु} \times \text{त्रि}}{\text{तद्घृति}}$ = लम्बज्या ।

अथवा शङ्कुतल शङ्कुहृतिभिर्भुजकोटिकर्णैरुत्पन्नत्रिभुजपूर्वोक्तत्रिभुजसजातीयमतोऽनुपात $\frac{\text{शङ्कुतल त्रि}}{\text{हृति}}$ = अक्षज्या । $\frac{\text{शङ्कु त्रि}}{\text{हृति}}$ = लम्बज्या [अत्र स्वघृति शब्देन हृतिर्बोध्या वा ज्या (९०—लम्बाश) = अक्षज्या । ज्या (९०—अक्षाश) = लम्बज्या

अत उपपन्नमाचार्योक्त सर्वमिति ॥७ ८॥

हि भा —वा कुज्या और क्रान्तिज्या को त्रिज्या से गुणकर अग्रा से भाग देने से अक्षज्या और लम्बज्या होती है वा अग्रा और समशङ्कु को त्रिज्या से गुणकर तद्घृति से भाग देने से अक्षज्या और लम्बज्या होती है । वा त्रिज्या को शङ्कुतल और शङ्कु से पृथक् गुणकर स्वघृति (हृति) से भाग देने से अक्षज्या और लम्बज्या होती है । अक्षाश और लम्बाश रहित नवत्यश चाप की ज्यायें लम्बज्या और अक्षज्या होती है ॥७ ८॥

उपपत्ति ।

अक्षज्या, लम्बज्या, और त्रिज्या इन भुजकोटिकर्णों से उत्पन्न एक अक्षक्षेत्र तथा कुज्या क्रान्तिज्या और अग्रा इन भुजकोटिकर्णों से उत्पन्न द्वितीय अक्षक्षेत्र इन दोनों के सजातीय होने के कारण अनुपात करते है $\frac{\text{कुज्या त्रि}}{\text{अग्रा}}$ = अक्षज्या । तथा $\frac{\text{क्राज्या त्रि}}{\text{अग्रा}}$ = लज्या तथा अग्रा, समशङ्कु और तद्घृति इन भुजकोटिकर्णों से उत्पन्न त्रिभुज पूर्वोक्त त्रिभुज के सजातीय है इसलिये अनुपात करते हैं $\frac{\text{अग्रा त्रि}}{\text{तद्घृति}}$ = अक्षज्या । $\frac{\text{समशङ्कु त्रि}}{\text{तद्घृति}}$ = लम्बज्या अथवा शङ्कुतल शङ्कु और हृति इन भुजकोटिकर्णों से उत्पन्न त्रिभुज पूर्वोक्त त्रिभुज के सजातीय है इसलिये अनुपात करते है $\frac{\text{शङ्कुतल त्रि}}{\text{हृति}}$ = अक्षज्या । $\frac{\text{शङ्कु त्रि}}{\text{हृति}}$ = लम्बज्या ।

यहा स्वघृतिशब्देन हृति समझनी चाहिये ।

वा ज्या (९०—लम्बाश) = अक्षज्या । तथा ज्या (९०—अक्षाश) = लम्बज्या इति ॥ ७ ८ ॥

पुनस्तयोरेवानयनाह ।

समशङ्कु क्रान्तिनरैरक्षज्यास्ताडिता क्रमाद् विभजेत् ।
अग्राकुज्यानृतलैरवाप्यो चाऽवलम्बज्या ॥९॥

लम्बज्याः क्रमशो वा कुज्याग्रा नृतलताडितास्तु हरेत् ।
क्रान्तिज्या समशङ्कु स्वेष्टनरैरक्षमौर्व्यः स्युः ॥१०॥
जिनभागगुणरविभुजगुणघातः समनरहृतोऽथवाक्षज्या ।
क्रान्तित्रिभगुणघातः समनरहृतोऽथवाऽक्षज्या ॥११॥

वि. भा —अक्षज्या पृथक् समशङ्कु क्रान्तिनरैः (समशङ्कु क्रान्तिज्येष्टशङ्कुभिः) ताडिताः (गुणिताः) क्रमात् अग्राकुज्यानृतलैरवाप्तय. (अग्राकुज्याशङ्कुतलैर्भजनात्प्राप्ता.) अथवा लम्बज्या भवन्ति ॥ वा लम्बज्या क्रमश कुज्याग्रानृतलताडिता (कुज्याग्राशङ्कुतलैर्गुणिता) क्रान्तिज्या समशङ्कुस्वेष्टनरैः (क्रान्तिज्या समशङ्कुस्वेष्टशङ्कुभि) हरेत् तदा अक्षमौर्व्य (अक्षज्या) भवन्ति ॥ अथवा जिनभागगुणरविभुजगुणघातः (जिनज्याभुजज्ययोर्वध) समनरहृत (समशङ्कुभक्त) अक्षज्या भवेत् । अथवा क्रान्तित्रिभगुणघात (क्रान्तिज्यात्रिज्ययोर्घातः) समनरहृत (समशङ्कुभक्तः) अक्षज्या भवेदिति ॥९-११॥

अत्रोपपत्ति ।

अग्रा, समशङ्कु । तद्धृति एतैर्भुजकोटिकर्णैरुत्पन्नमेकं त्रिभुजम् । कुज्याक्रान्तिज्याऽग्राभिर्भुजकोटिकर्णैर्द्वितीय त्रिभुजम् । शङ्कुतलशङ्कुहृतिभिर्भुजकोटिकर्णैरुत्पन्न तृतीय त्रिभुज अक्षज्यालम्बज्यात्रिज्याभिर्भुजकोटिकर्णैरुत्पन्न चतुर्थं त्रिभुजम् । एषां सजातीयात् $\frac{\text{अक्षज्या समशङ्कु}}{\text{अग्रा}}=\text{लज्या}$ ।

$\frac{\text{क्राज्या.अक्षज्या}}{\text{कुज्या}}=\text{लज्या}$ ।

तथा $\frac{\text{अक्षज्या इशङ्कु}}{\text{शङ्कुतल}}=\text{लज्या}$ । एवमेव

$\frac{\text{लज्या कुज्या}}{\text{क्राज्या}}=\text{अक्षज्या}$ । $\frac{\text{लज्या अग्रा}}{\text{समशङ्कु}}=\text{अक्षज्या}$ ।

$\frac{\text{लज्या.शङ्कुतल}}{\text{शङ्कु}}=\text{अक्षज्या}$

अथवा $\frac{\text{क्राज्या.त्रि}}{\text{समशङ्कु}}=\text{अक्षज्या}$ परन्तु. $\frac{\text{जिज्या भुजज्या}}{\text{त्रि}}=\text{क्राज्या}$

अत उत्थापनेन $\frac{\text{जिज्या.भुज्या.त्रि}}{\text{समशङ्कु त्रि}}=\frac{\text{जिज्या.भुजज्या}}{\text{समशङ्कु}}=\text{अक्षज्या}$ ।

अत उपपन्नमाचार्योक्तं सर्वमिति ॥ ९-१०-११ ॥

पुन: उन्हीं अक्षज्या और लम्बज्या के आनयन कहते हैं।

हि भा—अथवा अक्षज्या को समशङ्कु, क्रान्तिज्या, और इष्टशङ्कु से पृथक् पृथक् गुणाकर क्रम से अग्रा, कुज्या, और शङ्कुतल से भाग देने से लम्बज्या होती है। अथवा लम्बज्या को पृथक् पृथक् कुज्या, अग्रा और शङ्कुतल से गुणाकर क्रमश: क्रान्तिज्या समशङ्कु, और इष्टशङ्कु से भाग देने से अक्षज्या होती है॥ वा जिनज्यागुणित भुजज्या को समशङ्कु से भाग देने से अक्षज्या होती है। वा क्रान्तिज्या और त्रिज्या के घात में समशङ्कु से भाग देने से अक्षज्या होती है ॥९-११॥

उपपत्ति।

अग्रा, समशङ्कु, तद्धृति इन भुजकोटिकर्णों से उत्पन्न एक त्रिभुज, कुज्या, क्रान्तिज्या, अग्रा इन भुजकोटिकर्णों से उत्पन्न द्वितीय त्रिभुज, शङ्कुतल, शङ्कु, हृति इन भुजकोटिकर्णों से उत्पन्न तृतीय त्रिभुज, अक्षज्या, लम्बज्या, त्रिज्या इन भुजकोटिकर्णों से उत्पन्न चतुर्थ त्रिभुज इन त्रिभुजों में सजातीय होने के कारण अनुपात करते हैं।

$$\frac{\text{अक्षज्या समशङ्कु}}{\text{अग्रा}}=\text{लज्या}।\quad \frac{\text{क्राज्या अक्षज्या}}{\text{कुज्या}}=\text{लज्या},\quad \frac{\text{अक्षज्या इशङ्कु}}{\text{शङ्कुतल}}=\text{लज्या}$$

इसी तरह $\frac{\text{लज्या कुज्या}}{\text{क्राज्या}}=\text{अक्षज्या}।\quad \frac{\text{लज्या अग्रा}}{\text{समशङ्कु}}=\text{अक्षज्या}।\quad \frac{\text{लज्या शङ्कुतल}}{\text{इशङ्कु}}=\text{अक्षज्या}$

अथवा $\frac{\text{क्राज्या त्रि}}{\text{समशङ्कु}}=\text{अक्षज्या}$। परन्तु $\frac{\text{जिज्या भुज्या}}{\text{त्रि}}=\text{क्राज्या}$ इसमें उत्थापन देने से

$$\frac{\text{जिज्या भुजज्या त्रि}}{\text{समशङ्कु त्रि}}=\frac{\text{जिज्या भुजज्या}}{\text{समशङ्कु}}=\text{अक्षज्या}$$

अत आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥ ९-११ ॥

अथ तयोरेवोत्क्रमज्यानयनमाह।

कुज्याग्रयोरपक्रमगुणाग्रयोरन्तरे त्रिभज्याघ्ने।
अग्राहृते क्रमात्ते व्यस्ताक्षज्याऽवलम्बज्ये ॥१२॥

वि भा—कुज्याग्रया, अपक्रमगुणाग्रयो (क्रान्तिज्याग्रयो) अन्तरे त्रिभज्याघ्ने (त्रिज्यागुणिते) अग्राहृते (अग्राभक्ते) क्रमात् ते व्यस्ताक्षज्यावलम्बज्ये (अक्षावलम्बाग्रयोरुत्क्रमज्ये) भवत इति ॥१२॥

अत्रोपपत्ति।

अक्षक्षेत्रानुपातेन $\frac{\text{कुज्या त्रि}}{\text{अग्रा}}=\text{अक्षज्या}$ तत: त्रि—अक्षज्या=लम्बाग्रोत्क्रमज्या

$$=\text{त्रि}-\frac{\text{कुज्या त्रि}}{\text{अग्रा}}=\frac{\text{त्रि अग्रा}-\text{कुज्या त्रि}}{\text{अग्रा}}=\frac{\text{त्रि (अग्रा}-\text{कुज्या)}}{\text{अग्रा}}=\text{लम्बा}\cdot$$

शोत्क्रज्या तथा $\frac{\text{क्राज्या त्रि}}{\text{अग्रा}}$ = लंज्या ततः त्रि—लम्बज्या = अक्षांशोत्क्रमज्या

$= \text{त्रि} - \frac{\text{क्राज्या.त्रि}}{\text{अग्रा}} = \frac{\text{त्रि अग्रा—क्राज्या त्रि}}{\text{अग्रा}} = \frac{\text{त्रि (अग्रा—क्राज्या)}}{\text{अग्रा}}$ = अक्षाशोत्क्रमज्या

एतावताऽऽचार्योक्तमुपपन्नम् ॥ १२ ॥

अब अक्षांश और लम्बांश के उत्क्रमज्यानयन कहते हैं।

हि. भा.—कुज्या और अग्रा के अन्तर को तथा क्रान्तिज्या और अग्रा के अन्तर को त्रिज्या से गुणाकर अग्रा से भाग देने से क्रमशः लम्बांशोत्क्रमज्या और अक्षांशोत्क्रमज्या होती है ॥१२॥

उपपत्ति।

$\frac{\text{कुज्या त्रि}}{\text{अग्रा}}$ = अक्षज्या, त्रि—अक्षज्या = लम्बांशोत्क्रमज्या = त्रि— $\frac{\text{कुज्या.त्रि}}{\text{अग्रा}}$

$= \frac{\text{त्रि.अग्रा—कुज्या त्रि}}{\text{अग्रा}} = \frac{\text{त्रि (अग्रा—कुज्या)}}{\text{अग्रा}}$ = लम्बांशोत्क्रमज्या।

एवं $\frac{\text{क्राज्या त्रि}}{\text{अग्रा}}$ = लज्या, त्रि—लज्या = अक्षांशोत्क्रमज्या = त्रि— $\frac{\text{क्राज्या त्रि}}{\text{अग्रा}}$

$= \frac{\text{त्रि अग्रा—क्राज्या त्रि}}{\text{अग्रा}} = \frac{\text{त्रि (अग्रा—क्राज्या)}}{\text{अग्रा}}$ अतः आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥ १२ ॥

पुनस्तयोरेवानयनमाह।

श्रुत्यर्कयोः श्रुतिभवोर्विवरे त्रिगुणाहते श्रुतिविभक्ते।
उत्क्रमपललम्बज्ये क्रमलम्बपलत्रिभगुणविवरे वा ॥१३॥

वि. भा.—श्रुत्यर्कयो (पलकर्णद्वादशयो) श्रुतिभयोः (पलकर्णपलभयो) विवरे (अन्तरे) त्रिगुणाहते (त्रिज्यागुणिते) श्रुतिविभक्ते (पलकर्णभक्ते) तदोत्क्रमपललम्बज्ये भवतः। अथवा क्रमलम्बपलत्रिभगुणविवरे (लम्बज्यात्रिज्ययोरन्तरेऽक्षज्यात्रिज्ययोरन्तरे) अक्षांशलम्बांशोत्क्रमज्ये भवत इति ॥१३॥

अत्रोपपत्तिः।

$\frac{१२ \times \text{त्रि}}{\text{पलकर्ण}}$ = लम्बज्या, त्रि—लंज्या = अक्षांशोत्क्रमज्या = त्रि— $\frac{१२ \times \text{त्रि}}{\text{पक}}$

$= \frac{\text{त्रि} \times \text{पक} - १२ \times \text{त्रि}}{\text{पक}} = \frac{\text{त्रि (पकर्ण—१२)}}{\text{पलक}}$, तथा $\frac{\text{पलभा.त्रि}}{\text{पलक}}$ = अक्षज्या ततः

$त्रि - अक्षज्या = लम्बाशोत्क्रमज्या = त्रि - \frac{पभा त्रि}{पक} = \frac{त्रि पक - पभा.त्रि}{पक}$

$= \frac{त्रि (पक - पभा)}{पक}$, एतावताऽऽचार्योक्तमुपपन्नम् ॥ १३ ॥

पुनः अक्षांश और लम्बांश के उत्क्रमज्यानयन कहते हैं।

हि भा—पलकर्ण और द्वादश के अन्तर को, पलकर्ण और पलभा के अन्तर को त्रिज्या से गुणाकर पलकर्ण से भाग देने से अक्षांशोत्क्रमज्या और लम्बांशोत्क्रमज्या होती है अथवा लम्बज्या और त्रिज्या के अन्तर तथा अक्षज्या और त्रिज्या के अन्तर अक्षांशोत्क्रम-ज्या और लम्बांशोत्क्रमज्या होती है ॥१३॥

उपपत्ति

$\frac{१२ \times त्रि}{पलक} = लज्या$, त्रि — लज्या = अक्षांशोत्क्रमज्या $= त्रि - \frac{१२ \times त्रि}{पक}$

$= \frac{त्रि पक - १२ त्रि}{पक} = \frac{त्रि (पक - १२)}{पक}$ तथा $\frac{पभा त्रि}{पक}$ = अक्षज्या त्रि — अक्षज्या = लम्बां-

शोत्क्रमज्या $= त्रि - \frac{पभा त्रि}{पक} = \frac{त्रि पक - पभा त्रि}{पक} = \frac{त्रि (पक - पभा)}{पक}$

इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥ १३ ॥

पुनरक्षांशलम्बांशयोरुत्क्रमज्यानयनमाह ।

अग्रा तद्धृत्यन्तर तद्धृतिनृविवरे त्रिभगुणघ्ने ।
तद्धृत्या प्रविभक्ते चोत्क्रम-लम्बपलज्यके स्त ॥१४॥

वि भा—अग्रा तद्धृत्यन्तरतद्धृतिनृविवरे (अग्रातद्धृत्योरन्तरतद्धृति-समशङ्कोरन्तरे) त्रिभगुणघ्ने (त्रिज्यागुणिते) तद्धृत्या प्रविभक्ते तदा उत्क्रमलम्ब-पलज्यके (लम्बांशाक्षांशयोरुत्क्रमज्ये) स्त (भवत) इति ॥१४॥

अत्रोपपत्ति

अक्षक्षेत्रानुपातेन $\frac{अग्रा त्रि}{तद्धृति}$ = अक्षज्या, तत त्रि — अक्षज्या = लम्बांशोत्क्रमज्या

ज्या $= त्रि - \frac{अग्रा त्रि}{तद्धृति} = \frac{तद्धृति त्रि - अग्रा त्रि}{तद्धृति} = \frac{त्रि (तद्धृति - अग्रा)}{तद्धृति}$ = लउज्या ।

एव $\frac{समशङ्कु \times त्रि}{तद्धृति}$ — लज्या, तत त्रि — लज्या = अक्षांशोत्क्रमज्या =

$$त्रि - \frac{समश \cdot त्रि}{तद्धृति} = \frac{त्रि \cdot तद्धृति - समश \cdot त्रि}{तद्धृति} = \frac{त्रि (तद्धृति - समश)}{तद्धृति} = अउज्या ।$$

अत उपपन्नमाचार्योक्तम् ॥१४॥

अब पुनः अक्षांश और लम्बांश के उत्क्रमज्यानयन करते हैं।

हि भा —अग्रा और तद्धृति के अन्तर को तथा तद्धृति और समशङ्कु के अन्तर को त्रिज्या से गुणाकर तद्धृति से भाग देने से लम्बांश और अक्षांश की उत्क्रमज्या होती है ॥१४॥

उपपत्ति।

अक्षक्षेत्रानुपात से $\frac{अग्रा \cdot त्रि}{तद्धृति}$ = अक्षज्या त्रि—अक्षज्या = लम्बांशोत्क्रमज्या

$$= त्रि - \frac{अग्रा \cdot त्रि}{तद्धृति} = \frac{त्रि \cdot तद्धृति - अग्रा \cdot त्रि}{तद्धृति} = \frac{त्रि (तद्धृति - अग्रा)}{तद्धृति} = लउज्या ।$$

एवं $\frac{समशङ्कु \cdot त्रि}{तद्धृति}$ = लज्या, त्रि — लज्या = अक्षांशोत्क्रमज्या = $त्रि - \frac{समश \cdot त्रि}{तद्धृति}$

$= \frac{त्रि \cdot तद्धृति - समश \cdot त्रि}{तद्धृति} = \frac{त्रि (तद्धृति - समश)}{तद्धृति}$ = अक्षांशोत्क्रमज्या। इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥१४॥

पुनस्तयोरेवानयनमाह।

नृतलस्वधृतिविशेषः स्वधृतिनृविवरे त्रिमौर्विकाभ्यस्ते ।
स्वधृत्या प्रविभक्ते वोत्क्रमलम्बकपलमौर्विके भवतः ॥१५॥

वि भा —नृतलस्वधृतिविशेषस्वधृतिनृविवरे (शङ्कुतलहृत्योरन्तरहृतिशङ्क्वोरन्तरे) त्रिमौर्विकाभ्यस्ते (त्रिज्यागुणिते) स्वधृत्याप्रविभक्ते (हृत्याभक्ते) अथवा उत्क्रमलम्बपलमौर्विके (लम्बांशाक्षांशयोरुत्क्रमज्ये) भवत इति ॥१५॥

अत्रोपपत्तिः।

$\frac{शङ्कुतल \cdot त्रि}{हृति}$ = अक्षज्या ततः त्रि—अक्षज्या = लम्बांशोत्क्रमज्या = त्रि—

$$\frac{शतल \cdot त्रि}{हृति} = \frac{त्रि \cdot हृति - शतल \cdot त्रि}{हृति} = \frac{त्रि (हृति - शतल)}{हृति} = लउज्या ।$$

तथा $\frac{शङ्कु \cdot त्रि}{हृति}$ = लज्या ततः त्रि—लज्या = अक्षांशोत्क्रमज्या = $त्रि - \frac{शङ्कु \cdot त्रि}{हृति}$ =

$\frac{त्रि \cdot हृति - शङ्कु \cdot त्रि}{हृति} = \frac{त्रि (हृति - शङ्कु)}{हृति}$ अक्षांशोत्क्रमज्या। स्वधृतिशब्देन हृतिर्बोध्या। एतावताऽऽचार्योक्तमुपपन्नम् ॥१५॥

पुनः उन्हीं दोनों के मानयन कहते हैं।

हि भा—शङ्कुतल और हृति के अन्तर का तथा हृति और शङ्कु के अन्तर को त्रिज्या से गुणकर हृति से भाग देने से लम्बांश और अक्षांश की उत्क्रमज्या होती है ॥१५॥

उपपत्ति

$\frac{\text{शङ्कुतल}\cdot\text{त्रि}}{\text{हृति}}$ = अक्षज्या   त्रि—अक्षज्या + लम्बांशोत्क्रमज्या = त्रि —

$\frac{\text{शङ्कुतल}\cdot\text{त्रि}}{\text{हृति}} = \frac{\text{त्रि हृति}—\text{शतल}\cdot\text{हृति}}{\text{हृति}} = \frac{\text{त्रि}(\text{हृति}—\text{शतल})}{\text{हृति}}$ = लउज्या

तथा $\frac{\text{शङ्कु}\cdot\text{त्रि}}{\text{हृति}}$ = लज्या   त्रि—लज्या = अक्षांशोत्क्रमज्या = त्रि — $\frac{\text{शङ्कु त्रि}}{\text{हृति}}$

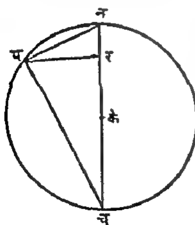
$= \frac{\text{त्रि हृति}—\text{शङ्कु त्रि}}{\text{हृति}} = \frac{\text{त्रि}(\text{हृति}—\text{शङ्कु})}{\text{हृति}}$ = अउज्या। स्वधृति से हृति समझनी चाहिये। इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥१५॥

इदानीं लम्बाक्षज्ययोरानयनमाह।

उत्क्रमपललम्बज्याहृतौ पलगुणावलम्बगुणवर्गौ।
लब्धे त्रिज्यारहिते लम्बाक्षज्ये व्यासघ्नस्वकृतिवर्जिते च पदे ॥१६॥
पललम्बज्ये व्यासौ तदूनगुणौ ते पदे वा स्तः ॥१६½॥

वि भा—पलगुणावलम्बगुणवर्गौ (अक्षज्यालम्बज्ययोर्वर्गौ) उत्क्रमपललम्बज्याहृतौ (अक्षांशलम्बांशयोरुत्क्रमज्याभक्तौ) लब्धे त्रिज्यारहिते (त्रिज्यया हीनिते) तदा लम्बाक्षज्ये भवतः। अथवा व्यासघ्नस्वकृतिवर्जिते (उत्क्रमज्यागुणितव्यासे उत्क्रमज्यावर्गहीने) पदे (मूले) तदा पललम्बज्ये (अक्षज्यालम्बज्ये) भवतः। अथवा तदूनगुणौ (उत्क्रमज्यया हीनगुणितौ) व्यासौ पदे (मूले) ते (पललम्बज्ये) स्तः (भवतः) इति ॥१६½॥

अत्रोपपत्तिः।



चित्र नं० ११

के = वृत्तकेन्द्रम्। पनचाप = अक्षांशचापम्। पर = अक्षज्या नर = अक्षांशोत्क्रमज्या। नच = व्यास। केन = त्रिज्या, ∠चपन = ९० तदा चपन, परन त्रिभुजयोः साजात्यादनुपात $\frac{\text{पर}\times\text{पर}}{\text{रन}} = \frac{\text{अक्षज्या}^2}{\text{अक्षांशोत्क्रमज्या}}$ = रच = केर + केच = लज्या + त्रि अतः रच—केच = $\frac{\text{अक्षज्या}^2}{\text{अक्षांशोत्क्रमज्या}}$ — त्रि = लज्या, यदि च पन चाप लम्बांशचाप तदा पूर्ववत् $\frac{\text{लम्बज्या}^2}{\text{लम्बांशोत्क्रमज्या}}$ — त्रि = अक्षज्या। एतेन प्रथमप्रकार उपपद्यते।

अथ $\frac{पर \times पर}{रन} = रच = \frac{पर^2}{रन} \therefore पर^2 = रच \times रन = (नच - रन)\ रन$

$= अक्षज्या^2 = (व्यास - अउज्या)\ अउज्या$

$= व्यास \times अउज्या - अउज्या^2$

मूलेन $अक्षज्या = \sqrt{व्यास \times अउज्या - अउज्या^2}$

एवमेव $लम्बज्या = \sqrt{व्यास \times लउज्या - लउज्या^2}$

तथा $अक्षज्या = \sqrt{(व्या - अउज्या)\ अउज्या}$

$लम्बज्या = \sqrt{(व्या - लउज्या)\ लउज्या}$

एतेनोपपन्न सर्वमिति ॥१६$\frac{1}{2}$॥

अब लम्बज्या और अक्षज्या के आनयन तीन प्रकार से कहते हैं।

हि भा – अक्षज्या और लम्बज्या के वर्ग को अक्षांशोत्क्रमज्या से भाग देकर जो फल उनमें त्रिज्या घटाने से क्रमश लम्बज्या और अक्षज्या होती है। अथवा अक्षांश और लम्बांश उत्क्रमज्या को व्यास में घटा कर अपनी-अपनी उत्क्रमज्या से गुण कर मूल लेने से क्रम अक्षज्या और लम्बज्या होती है। अथवा व्यास को अक्षांशोत्क्रमज्या और लम्बांशोत्क्रम से पृथक् पृथक् गुण कर अपनी अपनी उत्क्रमज्या वर्ग घटा कर मूल लेने से क्रमश अक्ष और लम्बज्या होती है ॥१६$\frac{1}{2}$॥

उपपत्ति

चित्र देखिये। के=वृत्तकेन्द्र। पनचाप=अक्षांशचाप, पर=अक्षज्या नर= अक्षांश की उत्क्रमज्या। नच=व्यास। केन=त्रिज्या केर= लम्बज्या। <चपन= तब चपर, परन दोनो त्रिभुज सजातीय हैं इसलिये अनुपात करते हैं $\frac{पर \times पर}{रन} = \frac{प}{र}$

$= \frac{अक्षज्या}{अक्षांशोत्क्रमज्या} = रच = केर + केच = लज्या + त्रि$

अत $रच - केच = \frac{अक्षज्या^2}{अक्षांशोत्क्रमज्या} - त्रि = लज्या$। यदि इसी तरह पनचाप

लम्बांश मानकर पूर्ववत् उपपत्ति करें तो $\frac{लम्बज्या^2}{लम्बांशोत्क्रमज्या} - त्रि = अक्षज्या$। इससे प्र

प्रकार उपपन्न हुआ।

यदि पन चाप अक्षांश है

तो $\frac{पर \times पर}{रन} = रच = \frac{पर^2}{रन} \therefore पर^2 = रच \times रन = (नच - रन) रन = अक्षज$

$= (व्यास - अउज्या)\ अउज्या$

$= व्यास \times अउज्या - अउज्या^2$

मूल लेने से $\sqrt{\text{व्या} \times \text{अउज्या} - \text{अउज्या}^2}$ = अक्षज्या

इसी तरह $\sqrt{\text{व्या} \times \text{लउज्या} - \text{लउज्या}^2}$ = लज्या

तथा $\sqrt{(\text{व्या} - \text{अउज्या})\,\text{अउज्या}}$ = अक्षज्या, $\sqrt{(\text{व्या} - \text{लउज्या})\,\text{लउज्या}}$ = लज्या

इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥१६३॥

पुनस्तयोराननमाह ।

उत्क्रमजीवान्तरकृतिहीनत्रिज्याकृतेर्दलं यत्तत् ।
पलगुणहृल्लम्बज्या लम्बज्याहृतपलज्या वा ॥१७॥

वि भा—उत्क्रमजीवान्तरकृतिहीनत्रिज्याकृते (अक्षांशलम्बांशोत्क्रमज्यान्तरवर्गहीनत्रिज्यावर्गस्य) दलं अर्धं यत्तत् पलगुणहृत् (अक्षज्याभक्त) तदा लम्बज्या स्यात् । लम्बज्याहृतदा पलज्या (अक्षज्या) वा भवेदिति ॥१७॥

अत्रोपपत्ति

त्रि—लज्या = अक्षांशोत्क्रमज्या । त्रि—अक्षज्या = लम्बांशोत्क्रमज्या

अनयोरन्तरम्

त्रि—अज्या—(त्रि—लज्या) = त्रि—अज्या—त्रि+लज्या = लज्या—अक्ष = उत्क्रमज्यान्तर त्रि^{2}—अक्षांशलम्बांशोत्क्रमज्यान्तर^2 = त्रि^{2}—(लज्या—अज्या)^2 = त्रि^{2}—(लज्या^{2}—२लज्या, अज्या+अज्या^{2}) = त्रि^{2}—(त्रि^{2}—२ लज्या अज्या)

= त्रि^{2}—त्रि^{2}+२ लज्या अज्या = २ लज्या अज्या

अत $\frac{\text{त्रि}^2 - \text{अक्षांशलम्बांशोत्क्रमज्यान्तर}^2}{२}$ = लज्या अज्या

तत $\frac{\text{त्रि}^2 - \text{अक्षांशलम्बांशोत्क्रमज्यान्तर}^2}{\text{२ लज्या}}$ = अक्षज्या, वा तस्मिन्नेवाक्षज्यया

भक्ते लम्बज्या भवेदत आचार्योक्तमुपपन्नम् ॥१७॥

अब पुन उन्हीं दोनों के आनयन कहते हैं ।

हि भा—अक्षांश और लम्बांश के उत्क्रमज्यान्तर वर्ग करके हीन त्रिज्यावर्ग के आधे को अक्षज्या से भाग देने से लम्बज्या होती है और लम्बज्या से भाग देने से अक्षज्या होती है ॥१७॥

उपपत्ति ।

त्रि—लज्या = अक्षांशोत्क्रमज्या । त्रि—अज्या = लम्बांशोत्क्रमज्या

दोनों के अन्तर करने से

त्रि—अज्या—(त्रि—लज्या) = त्रि अज्या—त्रि+लज्या = लज्या—अज्या = उत्क्रमज्यान्तर

अत त्रि^{2}—अक्षांशलम्बांशोत्क्रमज्यान्तर^2=त्रि^{2}—(लज्या—अज्या)^2

=त्रि^{2}—(लज्या^{2}—२ लज्या अज्या+अज्या^{2})=त्रि^{2}—(त्रि^{2}—२ लज्या अज्या)

=त्रि^{2}—त्रि^{2}+२ लज्या अज्या=२ लज्या अज्या

अत $\frac{\text{त्रि}^2\text{—अक्षांशलम्बांशोत्क्रमज्यान्तर}^2}{२}$=लज्या अक्षज्या, अक्षज्या से भाग देने से

$\frac{\text{त्रि}^2\text{—अक्षांशलम्बांशोत्क्रमज्यान्तर}^2}{\text{२ अज्या}}$=लज्या, उसीमें लम्बज्या से भाग देने से अक्षज्या होती है। इससे आचार्योक्त पद्य उपपन्न हुआ ॥१७॥

पुनरपि तयोरेवानयनमाह।

त्रिज्यावर्गात् द्विगुणाद् व्यस्तगुणान्तरकृतिं विशोध्य पदम्।
उक्तान्तरोनयुक्तं दलितं पललम्बकज्ये वा ॥ १८ ॥

वि. भा.—त्रिज्यावर्गाद् द्विगुणात् व्यस्तगुणान्तरकृतिं (अक्षांशलम्बांशयोरुत्क्रमज्यान्तरवर्गं) विशोध्य पदं (मूलं) उक्तान्तरेणयुक्तं (अक्षांशलम्बांशयोरुत्क्रमज्यान्तरमेकत्र हीनमपरत्र युक्तं) दलितं (अर्धितं) अथवा पललम्बकज्ये (अक्षज्या लम्बज्ये) भवतः ॥१८॥

अत्रोपपत्तिः

अथ लम्बांशोत्क्रमज्या—अक्षांशोत्क्रमज्या=लज्या—अज्या=उत्क्रमज्यान्तर

ततः २त्रि^{2}—उत्क्रमज्यान्तर^2=२ त्रि^{2}—(लज्या—अज्या^{2})

२ त्रि^{2}—(लज्या^{2}—२ लज्या अज्या+अज्या^{2})=२त्रि^{2}
—(त्रि^{2}—२ लज्या अज्या)

=२त्रि^{2}—त्रि^{2}+२ लज्या अज्या=त्रि^{2}+२ लज्या अज्या=लज्या^{2}
+अज्या^{2}+२ लज्या अज्या

=(लज्या+अज्या)^2 मूले $\sqrt{\text{२त्रि}^2\text{—उत्क्रमज्यान्तर}^2}$=लज्या+अज्या

लज्या—अज्या=उत्क्रमज्यान्तर ततः संक्रमणगणितेन

अज्या=$\frac{\sqrt{\text{२ त्रि}^2\text{—उत्क्रमज्यान्तर}^2}\text{—उत्क्रमज्यान्तर}}{२}$,

$\frac{\sqrt{\text{२त्रि}^2\text{—उज्यान्तर}^2}+\text{उज्यान्तर}}{२}$=लज्या

एतावताऽऽचार्योक्तमुपपद्यते ॥१८॥

अब पुन उन्ही दोनो के आनयन कहते हैं।

द्विगुणित त्रिज्यावर्ग मे अक्षांश और लम्बांश के उत्क्रमज्यान्तर वर्ग घटाकर मूल लेना उसमे उस उत्क्रमज्यान्तर को हीन और युत कर आधा करने से अक्षज्या और लम्बज्या होता है ॥१८॥

उपपत्ति।

लम्बांशोत्क्रमज्या—अक्षांशोत्क्रमज्या = लज्या—अज्या = उत्क्रमज्यान्तर

$$२\,\text{त्रि}^{२} - \text{उत्क्रमज्यान्तर}^{२} = २\,\text{त्रि}^{२} - (\text{लज्या} - \text{अज्या})^{२}$$

$$= २\,\text{त्रि}^{२} - (\text{लज्या}^{२} - \text{लज्या अज्या} + \text{अज्या}^{२}) = २\,\text{त्रि}^{२} - (\text{त्रि}^{२} - २\,\text{लज्या अज्या})$$

$$= २\,\text{त्रि}^{२} - \text{त्रि}^{२} + २\,\text{लज्या अज्या} = \text{त्रि} + \text{लज्या अज्या} = \text{लज्या}^{२} + \text{अज्या}^{२} + २\,\text{लज्या अज्या}$$

$= (\text{लज्या} + \text{अज्या})^{२}$ मूलग्रहणेन $\sqrt{२\,\text{त्रि}^{२} - \text{उत्क्रमज्यान्तर}^{२}} = \text{लज्या} + \text{अज्या}$।

लज्या—अज्या = उत्क्रमज्यान्तर तब संक्रमण गणित से

$$\frac{\sqrt{२\,\text{त्रि}^{२} - \text{उत्क्रमज्यान्तर}^{२}} - \text{उत्क्रमज्यान्तर}}{२} = \text{अज्या}।$$

$$\frac{\sqrt{२\,\text{त्रि}^{२} - \text{उत्क्रमज्यान्तर}^{२}} + \text{उत्क्रमज्यान्तर}}{२} = \text{लज्या}।$$

इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥१८॥

पुनस्तयोरेव प्रकारद्वयेनानयनमाह।

तद्वाऽक्षज्योनं लम्बलवज्याऽक्षज्यावलम्बगुणहीनम्।
त्रिज्योत्क्रमाक्षलम्बकगुणान्तरे लम्बकाक्षज्ये ॥१९॥

वि. भा.—वा तत्फल (उत्क्रमज्यावर्गहीनद्विगुणितत्रिज्यावर्गमूल) अक्षज्योनं (अक्षज्यया हीनं) तदा लम्बलवज्या (लम्बांशज्या) भवेत्। तदेव फल अवलम्बगुणहीनं (लम्बज्यया रहितं) तदाऽक्षज्या स्यात्। वा त्रिज्योत्क्रमाक्षलम्बकगुणान्तरे (त्रिज्याऽक्षांशोत्क्रमज्यान्तरत्रिज्यालम्बांशोत्क्रमज्यान्तरे च) लम्बकाक्षज्ये (लम्बाक्षज्ये) भवत इति ॥१९॥

अत्रोपपत्ति.

पूर्वानीतस्वरूपम् = लज्या + अज्या = $\sqrt{२\,\text{त्रि}^{२} - \text{उत्क्रमज्यान्तर}^{२}}$ अत्र यदि लम्बज्या विशोध्यते तदाऽक्षज्या भवेत्। अक्षज्याया विशोधनेन लम्बज्या भवेदेव।

तथा त्रि—अक्षांशोत्क्रमज्या = लज्या। त्रि—लम्बांशोत्क्रमज्या = अक्षज्या।

अत. सिद्धम् ॥ १९ ॥

हि. भा.—उस फल मे (उत्क्रमज्यान्तर वर्गरहित द्विगुणित त्रिज्यावर्ग मे) अक्षज्या घटाने से लम्बज्या होती है और लम्बज्या को घटाने से अक्षज्या होती है। अथवा त्रिज्या और अक्षांशोत्क्रमज्या के अन्तर लम्बज्या होती है और त्रिज्या लम्बांशोत्क्रमज्या के अन्तर अक्षज्या होती है ॥ १९ ॥

उपपत्ति ।

पूर्वानीत स्वरूप लज्या + अग्रज्या = $\sqrt{२ त्रि^2 - उत्क्रमज्यान्तर^2}$ इसमें अक्षज्या को घटाने से लम्बज्या और लम्बज्या को घटाने से अक्षज्या होती है।

तथा त्रि—अक्षांशोत्क्रमज्या = लज्या । त्रि—लम्बांशोत्क्रमज्या = अज्या

अत सिद्ध हो गया ॥१६॥

इदानीं पुनरप्यक्षज्यासाधनमाह

चरदलजीवाद्युज्यावधोऽग्रया भाजितोऽथवाऽक्षज्या ।
समकर्णापक्रमजीवाघातोऽर्कहृतोऽथवाऽक्षज्या ॥२०॥

वि भा—अथवा चरदलजीवाद्युज्यावध (चरज्याद्युज्ययोर्घात) अग्रया भाजित (अग्राभक्त) अक्षज्या स्यात् । अथवा समकर्णाऽपक्रमजीवाघात (सममण्डलकर्णक्रान्तिज्ययोर्वध) अर्कहृत (द्वादशभक्त) अक्षज्या भवेत् ॥२०॥

अत्रोपपत्ति ।

अक्षक्षेत्रानुपातेन $\frac{कुज्या\ त्रि}{अग्रा}$ = अक्षज्या । परन्तु $\frac{चरज्या\ द्युज्या}{त्रि}$ = कुज्या

अत उत्थापनेन $\frac{चरज्या\ द्युज्या\ त्रि}{अग्रा\ त्रि} = \frac{चरज्या\ द्युज्या}{अग्रा}$ = अक्षज्या ।

तथा $\frac{क्रान्तिज्या\ त्रि}{समशङ्कु}$ = अक्षज्या । परन्तु $\frac{त्रि\ १२}{समकर्ण}$ = समशङ्कु

अतोऽक्षज्यास्वरूपे समशङ्कोरुत्थापनेन $\frac{क्राज्या\ त्रि}{\frac{त्रि\ १२}{समक}} = \frac{क्राज्या\ त्रि\ समक}{त्रि\ १२}$

$= \frac{क्राज्या\ समकर्ण}{१२}$ = अक्षज्या । एतावताऽऽचार्योक्तमुपपन्नम् ॥२०॥

अब पुन अक्षज्या साधन करते हैं

हि भा—अथवा चरज्या और द्युज्या के घात में अग्रा से भाग देने से अक्षज्या होती है अथवा समकर्ण और क्रान्तिज्या के घात में बारह से भाग देने से अक्षज्या होती है ॥२०॥

उपपत्ति ।

अक्षक्षेत्रानुपात से $\frac{कुज्या.त्रि}{अग्रा}$ = अक्षज्या । परन्तु $\frac{चरज्या\ द्युज्या}{त्रि}$ = कुज्या इसलिये

अक्षज्या के स्वरूप में कुज्या को उत्थापन देने से $\frac{\text{चरज्या द्यु त्रि}}{\text{अग्रा त्रि}} = \frac{\text{चरज्या द्यु}}{\text{अग्रा}}$ = अग्रज्या

तथा $\frac{\text{क्राज्या त्रि}}{\text{समशङ्कु}}$ = अक्षज्या। परन्तु $\frac{\text{त्रि १२}}{\text{समकर्ण}}$ = समशङ्कु, इसलिये अक्षज्या के स्वरूप में

समशङ्कु को उत्थापन देने से $\frac{\text{क्राज्या त्रि}}{\frac{\text{त्रि १२}}{\text{समक}}} = \frac{\text{क्राज्या त्रि समक}}{\text{त्रि १२}} = \frac{\text{क्राज्या समक}}{\text{१२}}$ = अक्षज्या

इससे आचार्योक्त प्रकार उपपन्न हुआ ॥२०॥

इदानीं पुनरपि लम्बज्यानयनमाह।

पलभाहृल्लम्बज्या नृतलाप्तात् नृभाक्षगुणघातात्।
श्रुतिगुणिता क्रान्तिज्या भावृत्ताग्रोद्धृता वा स्यात् ॥२१॥

वि. भा.—नृभाक्षगुणघातात् (शङ्कु,पलभाऽक्षज्यावधात्) नृतलाप्तात् (शङ्कुतलभक्तात्) पलभाहृत् तदा लम्बज्या भवेत्। अथवा क्रान्तिज्या श्रुतिगुणिता (छायाकर्णगुणा) भावृत्ताग्रोद्धृता (छायाकर्णगोलीयाग्रया भक्ता) तदा लम्बज्या भवेत् ॥२१॥

अत्रोपपत्तिः।

श्लोकपूर्वार्धोक्तानुसारेण $\frac{\text{शङ्कु}\times\text{पलभा}\times\text{अक्षज्या}}{\text{पलभा शङ्कुतल}}$

$= \frac{\text{शङ्कु}\times\text{अक्षज्या}}{\text{शङ्कुतल}}$ = लम्बज्या।

अथवा $\frac{\text{क्रान्तिज्या त्रि}}{\text{अग्रा}}$ = लज्या। परन्तु $\frac{\text{छायाग्रीयाग्रा त्रि}}{\text{छायाकर्ण}}$ = अग्रा

अतो लम्बज्यास्वरूपेऽग्राया उत्थापनेन $\frac{\text{क्राज्या त्रि}}{\frac{\text{छायाग्रीयाग्रा त्रि}}{\text{छायाक}}} = \frac{\text{क्राज्या त्रि छायाक}}{\text{छायाग्रीयाग्रा त्रि}}$

$= \frac{\text{क्राज्या छायाक}}{\text{छायाग्रीयाग्रा}}$ = लज्या। एतेनाऽऽचार्योक्तमुपपन्नम्। श्लोकपूर्वार्धे पलभा गुणनभजन क्रियते तावता किमपि फलं न भवति, मन्ये पदपूर्त्यर्थमाचार्येणैव कृतमिति ॥२१॥

अब पुनः लम्बज्या के आनयन कहते हैं।

हि. भा.—शङ्कुपलभा और अक्षज्या के घात में पलभा और शङ्कुतल के घात से भाग देने से लम्बज्या होती है। अथवा क्रान्तिज्या को छायाकर्ण से गुणकर छायाकर्णवृत्तीयाग्रा से भाग देने से लम्बज्या होती है ॥२१॥

उपपत्ति

श्लोकों के पूर्वार्धोक्ति के अनुसार $\frac{\text{शङ्कु} \times \text{पलभा अग्रज्या}}{\text{पलभा शङ्कुतल}}$

$= \frac{\text{शङ्कु} \times \text{अग्रज्या}}{\text{शङ्कुतल}} = \text{लम्बज्या}$

अथवा $\frac{\text{क्राज्या त्रि}}{\text{अग्रा}} = \text{लज्या}$ । परन्तु $\frac{\text{छायाकर्णवृत्ताग्रा त्रि}}{\text{छायाकर्ण}} = \text{अग्रा}$

लम्बज्या स्वरूप में अग्रा को उत्थापन देने से $\dfrac{\text{क्राज्या त्रि}}{\dfrac{\text{छायाकर्णवृत्ताग्रा त्रि}}{\text{छायाक}}}$

$= \frac{\text{क्राज्या त्रि छायाक}}{\text{छायाकर्णवृत्ताग्रा त्रि}} = \frac{\text{क्राज्या छायाक}}{\text{छायावृत्ताग्रा}}$ = लम्बज्या श्लोक के पूर्वार्ध में पलभा से गुणाकर पलभा से भाग देते हैं इससे कुछ लाभ नहीं होता है। मालूम होता है आचार्य ने पद-पूर्ति के लिये ऐसा किया है, इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥ २१॥

इदानीमक्षज्यालम्बज्ययोश्चापं विधायायनांशानयनं निर्दिशति ।

तद्धनुषी लम्बाक्षावुत्क्रमधनुषी तयोःक्रमाह्वाभ्याम् ।
याम्योऽक्षोऽक्षच्छाभा याम्याऽजतुलाक्षविवरज्या ॥२२॥
त्रिज्यागुणिता भक्ता परमापक्रान्तिजीवयाप्तधनुः ।
देयं ग्रहे यदा भा दक्षिणगोलादिगम्यभानुमतः ॥२३॥
महती मेषादिगतच्छायातस्त्वन्यथा शोध्यम् ।
यातोऽग्यथा विधेयं चापत्रिप्रश्नकर्मविधौ ॥२४॥
षड्राश्यन्तरिताद् वा भानुमतोऽभीष्टकालिकात्साध्यम् ।
अयनचलनं स्वबुद्ध्या गणकेन हि चापचतुरेण ॥२५॥

वि भा —तद्धनुषी (तयोर्लम्बाक्षज्ययोश्चापे) लम्बाक्षौ (लम्बांशाक्षांशौ) भवतः । तयोःक्रमाह्वाभ्यां (लम्बांशाक्षांशोत्क्रमज्याभ्याम्) उत्क्रमधनुषी (उत्क्रमचापे) भवतः । अक्षः (अक्षांश) याम्यः (दक्षिणदिक्क) अक्षच्छाया (पलभा) याम्या (दक्षिणदिक्का) अजतुलाक्षविवरज्या (मेषादि तुलादि-बिन्द्वोरक्षांशान्तरज्या) त्रिज्यागुणिता, परमापक्रान्तिजीवया (परमक्रान्तिज्यया) भक्ता, अवाप्त-धनुः (फलचापं) कार्यं ग्रहे देयं यदा दक्षिणगोलादि (तुलादि) गम्यसूर्यस्य मेषादि-गतच्छायातः (मेषादिगतसूर्यच्छायातः) महती भवेत् । अन्यथा मेषादिगतच्छायात-स्तुलादिगम्यच्छायाऽल्पा भवेत्तदा तत्पूर्वानीतं फलं ग्रहे शोध्यं याते (दक्षिणगो-लादितोऽग्राते रवौ अन्यथा पूर्वोक्तधार्यत्व विपरीतं ग्रहे कर्त्तव्यम् । वा चाप-त्रिप्रश्नकर्मविधौ षड्राश्यन्तरितत्वात् अभीष्टकालिकाद् भानुमतः (सूर्यात्) चापच-तुरेण (नानीयगणितकुशलेन) गणकेन (ज्योतिर्विदा) स्वबुद्ध्या अयनचलनं (अयनांशमानं) साध्यमिति ॥२२-२५॥

अत्रोपपत्तिः ।

मेषादितुलादिविन्द्वोरक्षांशान्तरज्या त्रिज्यया गुण्या परमक्रान्तिज्यया भक्ता तदाऽक्षांशान्तरांशसम्बन्धि भुजज्या भवेत्तच्चापकरणेनाक्षांशान्तरसम्बन्धि सम्पातचलन भवेदेतत्फल यदि मेषादिगतच्छायातस्तुलादिगम्यसूर्यच्छाया महती तदा ग्रहे धनमन्यथाहीन तदाऽयनांशगतिसंस्कृतग्रहो भवेदन्यत्सर्वं स्फुटमेवेति ॥२२-२५॥

इति वटेश्वरसिद्धान्ते त्रिप्रश्नाधिकारे लम्बाक्षज्यानयनविधिः द्वितीयोऽध्यायः समाप्तः ।

अब अक्षज्या और लम्बज्या के चाप करने अयनांशानयन कहते हैं ।

हि भा.—लम्बज्या और अक्षज्या के चाप करने से लम्बांश और अक्षांश होते हैं । लम्बांशोत्क्रमज्या और अक्षांशोत्क्रमज्या से चाप करने पर उत्क्रम चाप होते हैं । अक्षांश की दिशा दक्षिण है । पलभा की दिशा भी दक्षिण है । मेषादि और तुलादि बिन्दुओं की अक्षांशान्तरज्या को त्रिज्या से गुणकर परम क्रान्तिज्या से भाग देने पर जो फल हो उसके चाप को ग्रह में धन करना, यदि दक्षिणगोलादि (तुलादि) गम्य सूर्य की छाया मेषादिगत सूर्यच्छाया से बड़ी हो तब, अन्यथा मेषादिगत छाया से उस छाया के अल्प रहने से पूर्वानीत फल को ग्रह में ऋण करना दक्षिणगोलादि के गत रहने से धन और ऋण विपरीत होता है वा चापीय त्रिप्रश्न कार्यविधि में छ राशि के अन्तर रहने से अभीष्टकालिक सूर्य से चाप सम्बन्धी विषय में चतुर ज्योतिषी लोग अपनी बुद्धि से अयन चलन के साधन करें ॥ २२-२५ ॥

उपपत्ति

मेषादि और तुलादि बिन्दुओं की अक्षांशान्तरज्या को त्रिज्या से गुणकर परम क्रान्तिज्या से भाग देने से अक्षांशान्तर सम्बन्धीय भुजज्या होती है । चाप करने से अक्षांशान्तर सम्बन्धीय अयनगति (सम्पातगति) होती है । यदि मेषादिगतच्छाया से तुलादि गम्य सूर्यच्छाया अधिक हो तब उस फल को ग्रह में धन करना अन्यथा हीन करना तब अयनांश संस्कृत ग्रह होते हैं । अन्य विषय स्पष्ट है ॥ २२-२५ ॥

इति वटेश्वरसिद्धान्त में त्रिप्रश्नाधिकार में लम्बाक्षज्यानयनविधि नामक दूसरा अध्याय समाप्त हुआ ॥



तृतीयोऽध्यायः

अथ क्रान्तिज्यानयनविधिः

तत्रादौ क्रान्तिज्यानयनमाह ।

क्रान्तिः परा जिनाशाः पराक्रमज्या जिनांशकज्योक्ता ।
तद्गुणिताऽर्कभुजज्या त्रिगुणहृदिष्टापमज्या स्यात् ॥१॥

वि.भा.—परा क्रान्तिः (परमक्रान्तिः) जिनाशाः (चतुर्विंशत्यंशाः) पराक्रमज्या (परमक्रान्तिज्या) जिनांशकज्या (जिनज्या) उक्ता (कथिता)। अर्कभुजज्या (रविभुजज्या) तद्गुणिता (जिनज्यागुणिता) त्रिगुणहृत् (त्रिज्याभक्ता) इष्टापमज्या (इष्टाक्रान्तिज्या) स्यादिति ॥१॥

अब क्रान्तिज्यानयन कहते हैं ।

हि.भा.— परमक्रान्ति जिनांश (चौबीस अंश) है, परम क्रान्तिज्या जिनज्या कथित है। रवि की भुजज्या को जिनज्या से गुणाकर त्रिज्या से भाग देने से इष्ट क्रांतिज्या होती है ॥१॥

अथवा क्रान्तिज्यानयनमाह ।

अष्टकृतिर्वा गुणिता रविभुजजीवयाऽष्टकुलकुभक्ता ।
स्वेष्टापक्रमजीवा तच्चापं क्रान्तिरिष्टा स्यात् ॥२॥

वि.भा.—अथवा अष्टकृतिः (अष्टचत्वारिंशत्) रविभुजजीवया (रविभुजज्यया गुणिता अष्टकुलकु (१०१८) भक्ता तदा स्वेष्टापक्रमजीवा (स्वेष्टक्रान्तिज्या) भवेत्। तच्चापमिष्टा क्रान्तिः ॥२॥

अत्रोपपत्तिः ।

अथ गोलसन्धितो नवत्यंशवृत्तमयनप्रोतवृत्तम् । गोलसधितोऽयनसन्धि (क्रान्तिवृत्तायनप्रोतवृत्तयोः सम्पात) यावत्क्रान्तिवृत्ते नवत्यंशः। गोलसन्धितोऽयनप्रोतवृत्तनाडीवृत्तयोः सम्पात यावन्नाडीवृत्ते नवत्यंशः। नाडीक्रान्तिवृत्तयोरन्तरेऽयनप्रोतवृत्ते परमक्रान्तिः। तदा नवत्यंशनवत्यंशजिनांशैर्भुजत्रयैरुत्पन्नमेकं त्रिभुजम्। क्रान्तिवृत्ते यत्र रविरस्ति तदुपरिगतध्रुवप्रोतवृत्तं यत्र नाडीवृत्ते

लगति लगति ततो रवि यावद् ध्रुवप्रोतवृत्ते क्रान्ति.। गोलसन्धितो रवि यावत्क्रान्तिवृत्ते रविभुजाशा.। गोलसन्धितो नाडीवृत्तध्रुवप्रोतवृत्तयो. सम्पातं यावन्नाडीवृत्ते विषुवाशा । भुजाशविषुवाशक्रान्त्यंशैरुत्पन्न द्वितीयत्रिभुजम्। एतयो. क्रान्तिक्षेत्रयोर्ज्याक्षेत्रसजातीयत्वादनुपातो यदि त्रिज्यया जिनज्या लभ्यते तदा रविभुजज्यया किमित्यनुपातेनागतेष्टक्रान्तिज्या -तत्स्वरूपम् $= \frac{\text{जिज्या. रभुजज्या}}{\text{त्रि}}$

अत्र जिनज्यात्रिज्ययो. २९ एभिरपवर्त्तनेन $\frac{४८ \times \text{रभुज्या}}{१०१८}$ = इक्राज्या स्वल्पान्तरात् । एतच्चापमिष्टक्रान्तिरित्युपपन्नमाचार्योक्तमिति ॥२॥

अब पुन क्रान्तिज्यानयन कहते है।

हि. भा—अथवा रवि की भुजज्या से ४८ से गुणकर १०१८ इतने से भाग देने से इष्टक्रान्तिज्या होती है। उसका चाप इष्टक्रान्ति होती है ॥२॥

उपपत्ति।

गोलसन्धि से नवत्यश वृत्त अयन प्रोतवृत्त है। गोलसन्धि से अयनसन्धि (क्रान्तिवृत्त और अयनप्रोतवृत्त के सम्पात) तक क्रान्तिवृत्त में नवत्यश, गोलसन्धि मे नाडीवृत्त और अयनप्रोतवृत्त के सम्पात तक नाडीवृत्त मे नवत्यश, अयनप्रोतवृत्त मे नाडीवृत्त और क्रान्तिवृत्त के अन्तर्गत जिनाश (परमक्रान्ति) इन नवत्यश, नवत्यंश, जिनाश तीनो भुजो से एक त्रिभुज, और क्रान्तिवृत्त म जहा पर रवि है तदुपरिगत ध्रुव प्रोतवृत्त जहा नाडीवृत्त मे लगता है वहा से रवि तक ध्रुव प्रोतवृत्त मे इष्टक्रान्ति, गोलसन्धि से रवि तक क्रान्तिवृत्त मे रविभुजाश, गोलसन्धि मे ध्रुव प्रोतवृत्त नाडीवृत्त के सम्पात तक नाडी वृत्त मे विषुवाश, विषुवाश, भुजाश, क्रान्त्यश इन तीनो भुजो से उत्पन्न द्वितीय चापीय जात्यत्रिभुज है। इन दोनो क्रान्तिक्षेत्र मे ज्याक्षेत्र के सजातीय होने के कारण अनुपात करते हैं यदि त्रिज्या मे जिनज्या पाते है तो रविभुजज्या मे क्या इस अनुपात से रवि की इष्टक्रान्तिज्या आती है। $\frac{\text{त्रिज्या रभुज्या}}{\text{त्रि}}$ = इक्राज्या, यहा जिनज्या और त्रिज्या मे २९ इससे अपवर्तन देने से $\frac{४८ \times \text{रभुज्या}}{१०१८}$ = इष्ट क्राज्या (स्वल्पान्तर से) इसके चाप करने से इष्टक्रान्ति होती है ॥२॥

पुन. क्रान्तिज्यासम्बन्धे आह।

अथवा क्रमजीवाभि. प्रागुक्ताभिगु णोऽपमज्या स्यात्।
क्रान्तिकलाभिर्भावो क्रान्तिकला: पूर्ववत्साध्या: ॥३॥

वि भा—अथवा क्रमजीवाभि: प्रागुक्ताभि. क्रमजीवाभि. (पूर्वकथितक्रमज्याभि:) क्रान्तिकलाया गुण: (ज्या) साध्य:, सोऽपमज्या (क्रान्तिज्या) स्यात्

क्रान्तिकलाभिः मौर्वी (ज्या) क्रान्तिज्या स्यात्। पूर्ववत्क्रान्तिकलाः साध्या इति ॥३॥

पुन क्रान्तिज्या के विषय मे कहते है।

वि. भा.—अथवा पूर्व कथित क्रमज्या से क्रान्तिकला की ज्या साधन करना वह क्रान्तिज्या होती है। क्रान्तिकला पर से ज्या क्रान्तिज्या होती है। क्रान्तिकला पूर्ववत् माधन करना ॥३॥

पुन क्रान्तिज्यानयनान्याह।

लम्बज्येष्टनृसमनरसूर्यैर्गुणिता क्रमादिला मौर्वी।
अक्षज्यानृतलाग्राक्षाभाहृद्वाऽपमज्याः स्युः ॥४॥
द्वादश लम्बज्येष्टनृसमनरनिहताः क्रमेण वाऽग्रज्या।
अक्षश्रुति त्रिभुजज्या निजधृति तद्धृतिहृदपमज्याः ॥५॥
अग्राक्षश्रुति-निजधृतिविष्कम्भदलैर्हृतः समनरो वा।
कुज्याऽक्षाभा स्वेष्टनृपलगुणनिघ्नोऽपमज्याः स्युः ॥६॥

वि. भा.—इलामौर्वी (कुज्या) क्रमात् लम्बज्येष्टनृसमनरसूर्य (लम्बज्येष्टशंकु समशंकु द्वादशभि) गुणिता, क्रमात् अक्षज्यानृतलाग्राऽक्षाभाहृत् (अक्षज्याशंकतलाग्रापलभा) भक्ता तदाऽपमज्याः (क्रान्तिज्या) स्यु ॥४॥ अथवा अग्रज्याः (अग्रा) द्वादशलम्बज्येष्टनृसमनरनिहता. क्रमेण अक्ष्श्रुतित्रिभजज्या निजधृति तद्धृतिहृत् (पलकर्णत्रिज्याहृतितद्धृतिभिर्भक्ता) तदाऽपमज्या. (क्रान्तिज्या) स्यु. ॥५॥ अथवा समनर (समशंकु) कुज्याऽक्षभा स्वेष्टनृपलगुणनिघ्न (कुज्यापलभास्वेष्टशंकुक्षज्यागुणित) अग्राक्षश्रुतिनिजधृति विष्कम्भदलै (अग्रापलकर्णहृतित्रिज्याभि) हृत. (भक्त) तदाऽपमज्या (क्रान्तिज्या) स्युरिति ॥४-६॥

अत्रोपपत्ति।

अथाऽक्षक्षेत्रानुपातेन $\frac{\text{लज्या} \times \text{कुज्या}}{\text{अक्षज्या}} = \text{क्राज्या}$। $\frac{\text{इशंकु} \times \text{कुज्या}}{\text{शंकुतल}} = \text{क्राज्या}$।

$\frac{\text{समशंकु} \times \text{कुज्या}}{\text{अग्रा}} = \text{क्राज्या}$। तथा $\frac{१२ \times \text{कुज्या}}{\text{पलभा}} = \text{क्रांज्या}$

एतेन प्रथमश्लोक उपपद्यते।

अथवा

$\frac{१२ \times \text{अग्रा}}{\text{पलकर्ण}} = \text{क्राज्या}$। $\frac{\text{लज्या. अग्रा}}{\text{त्रि}} = \text{क्राज्या}$। $\frac{\text{इशंकु. अग्रा}}{\text{हृति}} = \text{क्राज्या}$।

तथा $\frac{\text{समशं} \times \text{अग्रा}}{\text{तद्धृति}} = \text{क्रांज्या}$. एतेन द्वितीयश्लोक उपपद्यते।

अथवा

$\frac{\text{कुज्या समश}}{\text{अग्रया}} = \text{क्राज्या}$ । $\frac{\text{पलभा समश}}{\text{पलक}} = \text{क्राज्या}$ । $\frac{\text{इश} \times \text{समश}}{\text{हृति}} = \text{क्राज्या}$ ।

$\frac{\text{अक्षज्या समश}}{\text{त्रि}} = \text{क्राज्या}$ एतावता तृतीयश्लोक उपपद्यते ॥४६॥

अत्र प्रथम-द्वितीय तृतीय श्लोक-शब्देनात्रान्त्यश्लोकत्रय ग्रहीतव्यमिति ॥

पुन अनेक प्रकार से क्रान्तिज्या के आनयन कहते है ।

हि भा—कुज्या को क्रमश लम्बज्या, इष्टशङ्कु, समशङ्कु और द्वादश से गुणकर क्रमश अक्षज्या, शङ्कुतल अग्रा और पलभा स भाग देने से क्रान्तिज्या होती है ॥४॥ अथवा अग्रा को द्वादश, लम्बज्या इष्टशकु, और समशकु से पृथक-पृथक् गुणकर क्रमश पलकर्ण, त्रिज्या, हृति, और तद्धृति से भाग देने से क्रान्तिज्याए होती हैं ॥५॥ अथवा समशकु को पृथक्-पृथक् कुज्या, पलभा, इष्टशकु और अक्षज्या से गुणकर क्रमश अग्रा, पलकर्ण हृति और त्रिज्या से भाग देने से क्रान्तिज्याए होती हैं ॥४-६॥

उपपत्ति

अक्षक्षेत्रानुपात स $\frac{\text{लज्या कुज्या}}{\text{अक्षज्या}} = \text{क्राज्या}$ $\frac{\text{इशकु} \times \text{कुज्या}}{\text{शकुतल}} = \text{क्राज्या}$ ।

$\frac{\text{समशङ्कु} \times \text{कुज्या}}{\text{अग्रा}} = \text{क्राज्या}$ | $\frac{१२ \times \text{कुज्या}}{\text{पलभा}} = \text{क्राज्या}$

इससे चौथा श्लोक उपपन्न हुआ ।

अथवा

$\frac{१२ \times \text{अग्रा}}{\text{पलकर्ण}} = \text{क्राज्या}$ । $\frac{\text{लज्या अग्रा}}{\text{त्रि}} = \text{क्राज्या}$ । $\frac{\text{इशङ्कु} \times \text{अग्रा}}{\text{हृति}} = \text{क्राज्या}$

$\frac{\text{समश} \times \text{अग्रा}}{\text{तद्धृति}} = \text{क्राज्या}$ इससे पाचवा श्लोक उपपन्न हुआ ।

अथवा $\frac{\text{कुज्या समश}}{\text{अग्रा}} = \text{क्राज्या}$ । $\frac{\text{पलभा समश}}{\text{पलक}} = \text{क्राज्या}$ । $\frac{\text{इश समश}}{\text{हृति}} = \text{क्राज्या}$

$\frac{\text{अक्षज्या. समश}}{\text{त्रि}} = \text{क्राज्या}$ । इससे छठा श्लोक उपपन्न हुआ ॥४-६॥

पुनरपि क्रान्तिज्यानयनान्याह ।

अक्षावलम्बघ्नतद्धृति स्त्रिज्याकृति भाजितापमज्या वा ।
नुतलघ्नघाहकुगुणिता तद्धृतिरथवा स्वधृतिकृतिभक्ता ॥७॥

द्वादश पलभा गुणिते पललम्बज्ये समश्रवणभक्ते ।
क्रान्तिज्ये वा कुज्याग्राकृतिविश्लेषमूलं वा ॥८॥

वि भा—अथवा अक्षावलम्बघ्नतद्धृति (अक्षज्यालम्बज्यागुणित-तद्धृति) त्रिज्याकृतिभाजिता (त्रिज्यावर्गभक्ता) अपमज्या (क्रान्तिज्या) भवेत् अथवा तद्धृति नृतलघ्नशङ्कुगुणिता (शङ्कुतलगुणितशङ्कुना गुणिता) स्वधृतिकृतिभक्ता (हृतिवर्गविभाजिता) क्रान्तिज्या भवेत् ॥ अथवा पललम्बज्ये (अक्षज्या लम्बज्ये) पृथक् द्वादशपलभागुणिते समश्रवणभक्ते (समकर्णभक्ते) तदा क्रान्तिज्ये भवत । वा कुज्याऽग्राविश्लेषमूल (कुज्याऽग्रावर्गान्तरमूल) क्रान्तिज्या भवेदिति ॥७ ८॥

अत्रोपपत्ति

अक्षक्षेत्रानुपातेन $\frac{\text{अज्या तद्धृति}}{\text{त्रि}} = \text{अग्रा}$ तत $\frac{\text{लज्या} \times \text{अग्रा}}{\text{त्रि}} = \text{क्राज्या}$

अत्राग्रास्वरूपस्योत्थापनात् $\frac{\text{अज्या लज्या तद्धृति}}{\text{त्रि}^2} = \text{क्राज्या}$ । अथवा

$\frac{\text{शङ्कुतल} \times \text{तद्धृति}}{\text{हृति}} = \text{अग्रा}$ । तत $\frac{\text{शङ्कु} \times \text{अग्रा}}{\text{हृति}} = \text{क्राज्या}$ अत्राग्रास्वरूप-स्योत्थापनेन $\frac{\text{शङ्कुतल} \times \text{शङ्कु} \times \text{तद्धृति}}{\text{हृति}^2} = \text{क्राज्या}$ । अथवा

द्वादश पलभागुणिते इत्यादिश्लोकानुसारेण $\frac{\text{अज्या} \times १२}{\text{समकर्ण}} = \frac{\text{अज्या} \times १२ \times \text{सश}}{\text{त्रि } १२}$

$= \frac{\text{अज्या सश}}{\text{त्रि}} = \text{क्राज्या}$ ।

तथा $\frac{\text{लज्या} \times \text{पलभा}}{\text{समकर्ण}} = \frac{\text{लज्या} \times \text{पभा}}{\frac{\text{त्रि } १२}{\text{सश}}} = \frac{\text{लज्या पभा सश}}{\text{त्रि } १२} = \frac{\text{अज्या सश}}{\text{त्रि}} = \text{क्राज्या}$

अथवा अग्राचापक्रान्तिचापचरखण्डैरुत्पन्नत्रिभुजज्याक्षेत्रे

$\sqrt{\text{अग्रा}^2 - \text{कुज्या}^2} = \text{क्रान्तिज्या}$ । एतावताऽऽचार्योक्तं सर्वमुपपन्नम् ॥७८॥

अब पुन अनेक प्रकार से क्रान्तिज्यानयन करते हैं ।

हि. भा.—अथवा अक्षज्या लम्बज्या गुणित तद्धृति में त्रिज्यावर्ग से भाग देने से क्रान्तिज्या होती है । अथवा शङ्कुतल और शङ्कु से गुणित तद्धृति (हृति) वर्ग से भाग देने से क्रान्तिज्या होती है ।

अथवा अक्षज्या और लम्बज्या को द्वादश और पलभा से गुणकर समकर्ण से भाग देने से दो तरह की क्रान्तिज्या होती है । वा अग्रा और कुज्या के वर्गान्तर मूल क्रान्तिज्या होती है ॥ ७-८ ॥

उपपत्ति ।

अक्षक्षेत्र के अनुपात से $\frac{\text{अज्या तद्धृति}}{\text{त्रि}} = \text{अग्रा} \therefore \frac{\text{लज्या अग्रा}}{\text{त्रि}} = \text{क्राज्या}$. इससे अग्रा के स्वरूप को उत्थापन देने से $\frac{\text{अज्या लंज्या तद्धृति}}{\text{त्रि}^2} = \text{क्राज्या}$ । अथवा

$\frac{\text{शङ्कुतल तद्धृति}}{\text{हृति}} = \text{अग्रा} \therefore \frac{\text{शङ्कु} \times \text{अग्रा}}{\text{हृति}} = \text{क्राज्या}$ इसमे अग्रा के स्वरूप को उत्थापन देने से $\frac{\text{शङ्कु} \times \text{शङ्कुतल} \times \text{तद्धृति}}{\text{हृति}^2} = \text{क्राज्या}$ । अथवा

'द्वादशपलभा गुणिते' इत्यादि श्लोक के अनुसार

$$\frac{\text{अज्या} \times १२}{\text{समकर्ण}} = \frac{\text{अज्या } १२}{\frac{\text{त्रि } १२}{\text{समशङ्कु}}} = \frac{\text{अज्या} \times \text{समशङ्कु}}{\text{त्रि}} = \text{क्राज्या} ।$$

$$\frac{\text{लज्या} \times \text{पलभा}}{\text{समक}} = \frac{\text{लज्या} \times \text{पलभा}}{\frac{\text{त्रि } १२}{\text{समश}}} = \frac{\text{लज्या पभा सश}}{\text{त्रि } १२} = \frac{\text{अज्या मश}}{\text{त्रि}} = \text{क्राज्या} ।$$

अथवा अग्राचाप क्रान्तिचाप और चरखण्ड चापो से उत्पन्न त्रिभुज के ज्याक्षेत्र मे $\sqrt{\text{अग्रा}^2 - \text{कुज्या}^2} = \text{क्राज्या}$ । इनसे आचार्योक्त सब उपपन्न हुए ॥७-८॥

पुनस्तदानयनमाह ।

पलकर्णहृतो दिनदलनरोऽर्कहृत् फलकुगुणप्रतिविशेषः ।
याम्योत्तरयोस्तत्त्रिगुणकृतिवियुतिमूलमपमज्या ॥९॥

वि. भा.—दिनदलनर (दिनार्धशङ्कु) पलकर्णहत (पलकर्णगुणित:) अर्कहृत् फलकुगुणप्रतिविशेष (द्वादशभक्तेन यत्फल स कुज्याप्रतिविशेषोऽर्थाद् द्युज्या) याम्योत्तरयो. (दक्षिणोत्तरयो भवत्यर्थाद्द्युज्याया. स्वरूप दक्षिणोत्तररूप भवति, तत्त्रिगुणकृतिवियुतिमूल (द्युज्यात्रिज्ययोर्वर्गान्तरमूल) अपमज्या (क्रान्तिज्या) भवेदिति ॥ ९ ॥

अत्रोपपत्तिः ।

अक्षक्षेत्रानुपातेन $\frac{\text{पलक} \times \text{दि } \frac{१}{२} \text{ शं}}{१२} = \text{दि } \frac{१}{२} \text{ हृतिः} = \text{द्युज्या}$

ततस्त्रिज्याक्रान्तिज्याद्युज्याभिरुत्पन्नजात्यत्रिभुजे $\sqrt{\text{त्रि}^2 - \text{द्युज्या}^2} = \text{क्रान्तिज्या}$ ।

एतावतोपपन्नमाचार्योक्तमिति ॥ ९ ॥

पुन क्रान्तिज्यानयन कहते है।

हि भा —मध्यान्हशङ्कु को पलकर्ण से गुणकर बारह से भाग देने से याम्योत्तरा-कार द्युज्या होती है। उसके और त्रिज्यावर्ग के अन्तर करके मूल लेने से क्रान्तिज्या होती है ॥ ९॥

उपपत्ति

अक्षक्षेत्र के अनुपात से $\frac{\text{पलक} \times \text{दि}\frac{\text{१}}{\text{२}}\text{श}}{\text{१२}}$ = दि ३ हृति = द्युज्या, तब त्रिज्या, क्रान्तिज्या और द्युज्या से उत्पन्न जात्यत्रिभुज में $\sqrt{\text{त्रि}^2 - \text{द्युज्या}^2}$ = क्राज्या इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥ ९ ॥

पुन क्रान्तिज्यानयनान्याह।

द्युज्यात्रिज्याकृत्योर्विशेषमूलं स्वपाक्रमज्या वा।
त्रिज्या द्युज्यायोगान्निजान्तरघ्नात्पद वा स्यात् ॥१०॥
द्युज्यार्कघातगुणिता चरार्धजीवाऽक्षभा त्रिशिञ्जिन्यो ।
घातेन हृता लब्धं स्वेष्टापक्रान्तिजीवा वा ॥११॥

हि भा —वा द्युज्यात्रिज्याकृत्योर्विशेषमूल (द्युज्यात्रिज्ययोर्वर्गान्तर-मूल) अपक्रमज्या (क्रान्तिज्या) भवेत्। वा त्रिज्या द्युज्या योगात् निजान्तरघ्नात्) (त्रिज्याद्युज्यान्तरगुणितात्) पद (मूल) क्रान्तिज्या स्यात्। चरार्धजीवा (चरज्या) द्युज्यार्कघातगुणिता (द्युज्याद्वादशघातगुणिता) अक्षभा त्रिशि-ञ्जिन्योर्घातेन (पलभा त्रिज्ययोर्वधेन) हृता (भक्ता) लब्ध स्वेष्टापक्रान्तिजीवा (स्वेष्टक्रान्तिज्या) भवेदिति ॥१० ११॥

अत्रोपपत्ति ।

अथ $\sqrt{\text{त्रि}^2 - \text{द्यु}^2}$ = क्राज्या वर्गान्तरस्य योगान्तरघातसमत्वात्

$$\sqrt{(\text{त्रि} + \text{द्यु})(\text{त्रि} - \text{द्यु})} = \text{क्राज्या। अथवा } \frac{\text{१२} \times \text{कुज्या}}{\text{पलभा}} = \text{क्राज्या।}$$

परन्तु $\frac{\text{चरज्या द्यु}}{\text{त्रि}}$ = कुज्या अत क्रान्तिज्यास्वरूपे कुज्योत्थापनात्

$\frac{\text{१२} \times \text{चरज्या द्यु}}{\text{त्रि पलभा}}$ = क्राज्या, एतावताऽऽचार्योक्तमुपपन्न सर्वमिति ॥१० ११॥

इति वटेश्वरसिद्धान्ते त्रिप्रश्नाधिकारे क्रान्तिज्यानयनविधि.
तृतीयोऽध्यायः समाप्त. ॥

अब पुनः क्रान्तिज्यानयन कहते हैं ।

हि भा—अथवा द्युज्या और त्रिज्या के वर्गान्तर मूल क्रान्तिज्या होती है। अथवा त्रिज्या और द्युज्या के योग को अन्तर से गुणकर मूल लेने से क्रान्तिज्या होती है। अथवा चरज्या को द्युज्या और द्वादश के घात से गुणकर पलभा और त्रिज्या के घात से भाग देने से क्रान्तिज्या होती है ॥ १०-११ ॥

उपपत्ति ।

$\sqrt{\text{त्रि}^2 - \text{द्यु}^2}$ = क्राज्या, वर्गान्तर योगान्तर घात के बराबर होता है इसलिये

$\sqrt{\text{त्रि}^2 - \text{द्यु}^2} = \sqrt{(\text{त्रि} + \text{द्यु})(\text{त्रि} - \text{द्यु})}$ = क्राज्या । अथवा $\frac{१२ \times \text{कुज्या}}{\text{पलभा}}$ = क्राज्या

परन्तु $\frac{\text{चरज्या} \times \text{द्यु}}{\text{त्रि}}$ = कुज्या अतः क्रान्तिज्या के स्वरूप में कुज्या को उत्थापन देने से

$\frac{१२ \times \text{चरज्या} \times \text{द्यु}}{\text{त्रि पलभा}}$ = क्राज्या, इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥१०-११॥

इति वटेश्वरसिद्धान्त में त्रिप्रश्नाधिकार में क्रान्तिज्यानयनविधि नामक तृतीय अध्याय समाप्त हुआ ॥



चतुर्थोऽध्यायः

अथ द्युज्यानयनविधिः

तत्रादौ द्युज्यानयनमाह।

क्रान्तिज्यावर्गोनात्त्रिज्यावर्गात्पदं द्युजीवा स्यात्।
त्रिज्या क्रान्तिज्यान्तरसमासघातस्य मूलं वा ॥१॥

वि भा.—क्रान्तिज्यावर्गोनात् त्रिज्यावर्गात् क्रान्तिज्यावर्गरहिता त्रिज्या-वर्गात्) पदं (मूल) द्युजीवा (द्युज्या) स्यात्। वा त्रिज्याक्रान्तिज्यान्तरसमास-घातस्य (त्रिज्याक्रान्तिज्ययोर्योगान्तरवधस्य) मूल द्युज्या स्यादिति ॥१॥

अत्रोपपत्ति।

त्रिज्याक्रान्तिज्याद्युज्याभिरुत्पन्नजात्यत्रिभुजे $\sqrt{त्रि^2 - क्राज्या^2} = द्यु$, वर्गा-न्तरयोगान्तरघातसमत्वात् $\sqrt{(त्रि + क्राज्या)(त्रि - क्राज्या)} = द्यु$
$\therefore$ सिद्धम् ॥१॥

अब द्युज्यानयन कहते हैं।

हि भा.—*क्रान्तिज्या वर्ग को त्रिज्यावर्ग में घटाकर मूल लेने से द्युज्या होती है। अथवा त्रिज्या और क्रान्तिज्या के योगान्तर घात के मूल लेने से द्युज्या होती है।*॥१॥

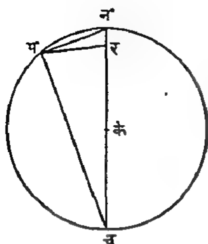
उपपत्ति।

त्रिज्या क्रान्तिज्या और द्युज्या से उत्पन्न जात्य त्रिभुज में $\sqrt{त्रि^2 - क्राज्या^2} = द्यु$, परन्तु वर्गान्तर योगान्तर घात के बराबर होता है इसलिए $\sqrt{(त्रि + क्राज्या)(त्रि - क्राज्या)} = द्यु$ $\therefore$ सिद्ध हुआ ॥१॥

पुनस्तदानयनमाह।

व्यस्त क्रान्तिज्याहृतक्रान्तिगुणकृतिः फलं त्रिभज्योनम्।
द्युज्या वा व्यस्तापमजीवा त्रिज्यान्तरं वा स्यात् ॥२॥

वि. भा.—क्रान्तिगुणकृतिः (क्रान्तिज्यावर्ग.) व्यस्तक्रान्तिज्याहृत् (क्रान्त्यु-त्क्रमज्यया भक्ता) फल त्रिभज्योनं (त्रिभज्यया हीन) वा द्युज्या भवेत्। वा व्यस्ता-पमजीवा त्रिज्यान्तर (क्रान्त्युत्क्रमज्या त्रिज्ययोरन्तर) द्युज्या स्यादिति ॥२॥



अत्रोपपत्तिः।

के=वृत्तकेन्द्रम्। नपचापम्=क्रान्तिचापम्। पर=क्रान्तिज्या। रन=क्रान्त्युत्क्रमज्या। पन रेखा=क्रान्तिपूर्णज्या। केच=केन=त्रिज्या। केर=क्रान्तिकोटिज्या=द्यु। <चपन=९० तदा पचर, परन त्रिभुजयोः साजात्यादनुपात. $\frac{\text{पर}\times\text{पर}}{\text{रन}}=\frac{\text{पर}^2}{\text{रन}}$

$=\frac{\text{क्रान्तिज्या}^2}{\text{क्रान्त्युत्क्रमज्या}}=\text{रच}=\text{त्रि}+\text{द्यु}$

अतः $\frac{\text{क्रांज्या}^2}{\text{क्रान्त्युत्क्रमज्या}}-\text{त्रि}=\text{द्यु}$।

चित्र न. १२

तथा त्रि—क्रान्त्युत्क्रमज्या=द्यु। एतेनोपपन्नमाचार्योक्तम् ॥२॥

पुनः द्युज्यानयन कहते हैं।

हि. भा.—क्रान्तिज्यावर्ग में क्रान्ति की उत्क्रमज्या से भाग देकर जो फल हो उसमें त्रिज्या घटाने से द्युज्या होती है। वा क्रान्ति की उत्क्रमज्या और त्रिज्या के अन्तर द्युज्या होती है।

उपपत्ति।

उपरिलिखित चित्र देखिए। के=वृत्तकेन्द्र। नचचाप=क्रान्तिचाप, पर=क्रान्तिज्या रन=क्रान्ति की उत्क्रमज्या। पनरेखा=क्रान्तिपूर्णज्या। केच=केन=त्रिज्या। केर=क्रान्तिकोटिज्या=द्युज्या। <चपन=९० तब पचर, परन दोनों त्रिभुजों के सजातीय होने से अनुपात करते हैं $\frac{\text{पर}\times\text{पर}}{\text{रन}}=\frac{\text{पर}^2}{\text{रन}}=\frac{\text{क्रान्तिज्या}^2}{\text{क्रान्त्युत्क्रमज्या}}$

$=\text{रच}=\text{त्रि}+\text{द्यु}$।

अत $\frac{\text{क्राज्या}^2}{\text{क्रान्त्युत्क्रमज्या}}-\text{त्रि}=\text{द्यु}$। तथा त्रि—क्रान्त्युत्क्रमज्या=द्यु।

इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥२॥

पुनस्तदानयनमाह।

क्रान्ति त्रिभान्तरज्या द्युज्या वा चरदलजीवया विहृता।
त्रिज्या क्षितिजीवाघ्नाऽहोरात्रार्धजीवा वा ॥३॥

वि.भा.—वा क्रान्तित्रिभान्तरज्या (क्रान्तिनवत्यंशयोरन्तरज्या क्रान्तिकोटिज्या) द्युज्या भवेत्। वा क्षितिजीवाघ्ना त्रिज्या (कुज्यागुणितत्रिज्या) चरदलजीवया विहृता (चरज्यया भक्ता) तदाऽहोरात्रार्धजीवा (द्युज्या) भवेदिति ॥३॥

अत्रोपपत्ति ।

ज्या (९०—क्रान्ति) = क्रान्तिकोटिज्या = द्यु ज्या । अथवा क्षितिजाहोरात्र-वृत्तयो सम्पातोपरिगत ध्रुवप्रोतवृत्त यत्र नाडीवृत्ते लगति तस्मात्पूर्वस्वस्तिक यावन्नाडीवृत्ते चरचापम् । एतावता त्रिभुजद्वय जातम् । क्षितिजाहोरात्रवृत्त-सम्पातोपरिगतध्रुवप्रोतवृत्ते ध्रुवान्नाडीवृत्त यावन्नवत्यश प्रथमो भुज । ध्रुवात्पूर्व-स्वस्तिक यावदुन्मण्डले नवत्यशो, द्वितीयो भुज । नाडीवृत्ते चरचाप तृतीयो भुज इत्येक त्रिभुजम् । ध्रुवात्क्षितिजाहोरात्रवृत्तयो सम्पात यावद् ध्रुवप्रोतवृत्ते द्यु्या-चापमेको भुज । ध्रुवादुन्मण्डलाहोरात्रवृत्तयो सम्पात यावदुन्मण्डले द्युज्याचाप द्वितीयो भुज । अहोरात्रवृत्ते तृतीयो भुज । एतयोस्त्रिभुजयोर्यक्षेत्रसाजात्यादनुपात

$\frac{\text{चरज्या} \times \text{द्यु}}{\text{त्रि}}$ = कुज्या अत $\frac{\text{कुज्या. त्रि}}{\text{चरज्या}}$ = द्यु । अत उपपन्नम् ॥३॥

पुन द्युज्या के आनयन करते हैं ।

हि भा —९० क्रान्ति और नवत्यश के अन्तर की ज्या द्युज्या होती है । अथवा त्रिज्या को कुज्या से गुणाकर चरज्या से भाग देने से द्युज्या होती है ।

उपपत्ति

ज्या (९०—क्रान्ति) = क्रान्ति कोटिज्या = द्यु । अथवा क्षितिजवृत्त और अहोरात्रवृत्त *के सम्पातगत ध्रुवप्रोतवृत्त नाडीवृत्त म जहा लगता है वहा से पूर्वस्वस्तिक तक नाडीवृत्त* म चर चाप है । अब दो त्रिभुज उत्पन्न हुए क्षितिजाहोरात्रवृत्त सम्पातगत ध्रुव प्रोतवृत्त मे ध्रुव से नाडीवृत्त पर्यन्त नवत्यश प्रथम भुज । ध्रुव से पूर्वस्वस्तिक पयन्त उन्मण्डल मे नवत्यश द्वितीय भुज । नाडीवृत्त म चार चाप तृतीय भुज । यह प्रथम त्रिभुज है । ध्रुव से क्षितिजाहोरात्रवृत्त के सम्पात पयन्त ध्रुवप्रोतवृत्त मे द्युज्याचाप एक भुज । ध्रुव से उन्मण्डला होरात्रवृत्त के सम्पात तक उन्मण्डल में द्युज्याचाप द्वितीय भुज, अहोरात्रवृत्त मे तृतीय भुज, यह द्वितीय त्रिभुज है, दोनों त्रिभुजो के ज्याक्षेत्र सजातीय हैं इसलिए अनुपात करते हैं

$\frac{\text{चरज्या द्यु}}{\text{त्रि}}$ = कुज्या $\frac{\text{कुज्या त्रि}}{\text{चरज्या}}$ = द्यु, अत उपपन्न हुआ ॥३॥

पुनस्तदानयनमाह ।

घृतिगुणिता त्रिभजीवा हृताऽन्त्यया वा द्युमौविका भवति ।
शङ्कु त्रिज्याऽक्षश्रुतिवधाद्दिनगुणोऽर्कान्त्ययाप्त वा ॥४॥

वि भा—त्रिभजीवा (त्रिज्या) घृतिगुणिता (हृतिगुणिता) अन्त्यया हृता (भक्ता) वा द्युमौविका (द्युज्या) भवति । वा शङ्कुत्रिज्याऽक्षश्रुतिवघात् (शङ्कु-त्रिज्यापलकर्णघातात्) अर्कान्त्ययाप्त (द्वादशगुणितान्त्यभक्त फल) वा द्युज्य भवतीति ॥४॥

अत्रोपपत्ति

क्षितिजाहोरात्रवृत्तसम्पातोपरिगत ध्रुवप्रोतवृत्त यत्र नाडीवृत्ते लगति तद्बिन्दुत पूर्वापरसूत्रस्य समान्तरसूत्र कार्यं तस्य नाम चराग्रबद्ध सूत्रम्। एतदुपरि ग्रहोपरिगतध्रुवप्रोतवृत्तनाडीवृत्तयो सम्पाताल्लम्ब कार्यं सैवेष्टान्त्या। भूकेन्द्राद् ग्रहोपरिध्रुवप्रोतवृत्तनाडीवृत्तसम्पाते रेखा नेया सा त्रिज्यैको भुज। इष्टान्त्या द्वितीयो भुज। भूकेन्द्रादिष्टान्त्या मूल यावत्ततीयो भुज इति भुजत्रयैरुत्पन्नमेकं त्रिभुजम्। तथाऽहोरात्रवृत्तगर्भकेन्द्राद् ग्रहगता रेखा द्युज्यैको भुज। ग्रहात्स्वोदयास्तसूत्रोपरि कृतो लम्बो हृतिसंज्ञका द्वितीयो भुज। अहोरात्रवृत्तगर्भकेन्द्राद्धृतिमूल यावत्तृतीया भुज। इति भुजत्रयैरुत्पन्न द्वितीय त्रिभुजम्। एतयोस्त्रिभुजयो साजात्य भवत्यतोऽनुपात $\frac{\text{इहृति त्रिज्या}}{\text{द्यु}}$ = इअन्त्या $\frac{\text{इहृति त्रि}}{\text{इअन्त्या}}$ = द्यु।

आचार्येणोऽप्यस्थानेऽस्यैव कथ्यते। अथ $\frac{\text{पलकर्ण} \times \text{शङ्कु}}{१२}$ = हृति अतो द्युज्यास्वरूपे हृतेरुत्थापनात्।

$$\frac{\text{पलक शङ्कु त्रि}}{१२ \times \text{अन्त्या}} = \text{द्यु}$$ अत उपपन्नम्॥४॥

पुन द्युज्या के आनयन कहते हैं।

हि भा —त्रिज्या को हृति स गुणकर अन्त्या से भाग देने से द्युज्या होती है। वा शङ्कु त्रिज्या और पलकर्ण क घात म द्वादश गुणित अन्त्या से भाग देने स द्युज्या होती है॥४॥

उपपत्ति

क्षितिजाहोरात्रवृत्त क सम्पात के ऊपर ध्रुवप्रोतवृत्त करने से वह (ध्रुवप्रोतवृत्त) नाडीवृत्त म जहा लगता है उस बिन्दु से पूर्वापर सूत्र के समानान्तर सूत्र कर देना उसके नाम चराग्रबद्ध सूत्र है। उसके ऊपर ग्रहोपरिगत ध्रुवप्रोतवृत्त नाडीवृत्त के सम्पात से जो लम्ब होता है उसके नाम इष्टान्त्या है। भूकेन्द्र से ग्रहोपरिगत ध्रुवप्रोतवृत्त और नाडीवृत्त के सम्पात मे रेखा लाने से वह त्रिज्या एक भुज। इष्टान्त्या द्वितीयभुज। भूकेन्द्र से इष्टान्त्या मूल तक तृतीय भुज इन तीनो भुजो से एक त्रिभुज हुआ। अहोरात्रवृत्त के गर्भकेन्द्र से ग्रहगत रेखा द्युज्या एकभुज ग्रह से स्वोदयास्त सूत्र के ऊपर लम्ब इष्टहृति द्वितीयभुज। अहोरात्रवृत्त के गर्भकेन्द्र म इष्टहृति मूल तक रेखा तृतीयभुज इन तीनो भुजो से उत्पन्न द्वितीय त्रिभुज हुआ। ये दोनों त्रिभुज सजातीय हैं इसलिए अनुपात करते हैं।

$\frac{\text{इहृति त्रि}}{\text{द्यु}}$ = इअन्त्या $\frac{\text{इहृति त्रि}}{\text{इअन्त्या}}$ = द्यु = $\frac{\text{हृति त्रि}}{\text{अन्त्या}}$ आचाय इष्टान्त्या

को अन्त्या तथा इष्ट हृति को हृति कहते हैं। $\frac{\text{पलक} \times \text{शङ्कु}}{१२}$ = हृति अत द्युज्या के स्वरूप

मे हृति को उत्थापन देने से $\frac{\text{पलक शङ्कु त्रि}}{१२\times\text{अन्त्या}}$ = द्यु। अत उपपन्न हो गया ॥४॥

पुनस्तदानयनमाह।

त्रिज्यानृतलाऽक्षश्रुतिघातात्पलभाहृतान्त्ययाप्त वा।
अक्षज्याऽग्राघाते चरगुणभक्तेऽथवा द्युज्या ॥५॥

वि भा —वा त्रिज्यानृतलाऽक्षश्रुतिघातात् (त्रिज्याशङ्कुतलपलकर्णघातात्) पलभाहृतान्त्ययाप्त (पलभागुणितान्त्यया भक्त फल) द्युज्या भवेत्। अथवा अक्षज्याऽग्राघाते, चरगुणभक्ते (चरज्ययाभक्ते) द्युज्या भवेदिति ॥५॥

अत्रोपपत्ति

अथ पूर्वानीत द्युज्यास्वरूपम् = $\frac{\text{हृति त्रि}}{\text{अन्त्या}}$। परन्तु $\frac{\text{पलक}\times\text{शङ्कुतल}}{\text{पलभा}}$ = हृति अतो द्युज्यास्वरूपे हृतेरुत्थापनात् $\frac{\text{पलक शतल त्रि}}{\text{अन्त्या पलभा}}$ = द्युज्या।

तथा $\frac{\text{कुज्या त्रि}}{\text{चरज्या}}$ = द्यु। पर $\frac{\text{कुज्या त्रि}}{\text{अग्रा}}$ = अक्षज्या कुज्या त्रि = अग्रा अक्षज्या

तत $\frac{\text{कुज्या त्रि}}{\text{चरज्या}} = \frac{\text{अग्रा अक्षज्या}}{\text{चरज्या}}$ = द्यु सिद्धम् ॥५॥

पुन द्युज्यानयन कहते है।

हि भा —अथवा त्रिज्या शङ्कुतल और पलकर्ण इनके घात म पलभा गुणित अन्त्या से भाग देने से द्युज्या होती है। अथवा अक्षज्या और अग्रा के घात म चरज्या से भाग देने से द्युज्या होती है ॥५॥

उपपत्ति

पूर्वानीत द्युज्या के स्वरूप = $\frac{\text{हृति त्रि}}{\text{अन्त्या}}$। परन्तु $\frac{\text{पलक शतल}}{\text{पलभा}}$ = हृति इसमे द्युज्या स्वरूप मे हृति को उत्थापन देने से $\frac{\text{पलक शतल त्रि}}{\text{अन्त्या}\times\text{पलभा}}$ = द्युज्या। अथवा

$\frac{\text{कुज्या त्रि}}{\text{चरज्या}}$ = द्यु। परन्तु $\frac{\text{कुज्या त्रि}}{\text{अग्रा}}$ = अक्षज्या ∴ कुज्या त्रि = अक्षज्या अग्रा

इसलिए $\frac{\text{कुज्या त्रि}}{\text{चरज्या}} = \frac{\text{अक्षज्या अग्रा}}{\text{चरज्या}}$ = द्युज्या ∴ सिद्ध हुआ ॥५॥

पुनस्तदानयनद्वयमाह ।

क्रमगुणपलभा त्रिज्या घातोऽर्कगुणचरजीवयाप्तो वा ।
पलभाऽक्षगुणसमनरवधोऽर्कगुणचरभक्तोना ॥६॥

वि भा—वा क्रमगुणपलभा त्रिज्याघात (क्रान्तिज्या पलभा त्रिज्याघात) अर्कचरजीवयाप्त (द्वादशगुणितचरज्यया भक्त) फल द्युज्या भवेत्। अथवा पलभाऽक्षगुणसमनरवध (पलभाऽक्षज्यासमशङ्कुघात) अर्कगुणचरभक्त (द्वादशगुणितचरज्यया भक्त) द्युज्या भवेदिति ॥६॥

अत्रोपपत्ति

अथ $\frac{\text{कुज्या त्रि}}{\text{चरज्या}}$ = द्यु । परन्तु $\frac{\text{पलभा} \times \text{क्राज्या}}{१२}$ = कुज्या अतो द्युज्यास्वरूपे कुज्यया उत्थापनात् $\frac{\text{पभा क्राज्या त्रि}}{\text{चरज्या} \times १२}$ = द्युज्या एतेन प्रथमप्रकार उपपद्यते ।

अथ $\frac{\text{अक्षज्या} \times \text{समश}}{\text{त्रि}}$ = क्राज्या   अक्षज्या समश = त्रि क्राज्या

तत $\frac{\text{पलभा क्राज्या त्रि}}{\text{चरज्या} \times १२}$ = द्यु = $\frac{\text{पलभा अक्षज्या समश}}{\text{चज्या} \times १२}$ एतेन द्वितीयप्रकार उपपद्यते ॥६॥

अब पुन द्युज्या के आनयन दो प्रकार से कहते हैं ।

हि भा—वा क्रान्तिज्या पलभा और त्रिज्या के घात म द्वादशगुणित चरज्या से भाग देन से द्युज्या होती है । अथवा पलभा—अक्षज्या और समशङ्कु इनके घात म द्वादशगुणित चरज्या स भाग देन से द्युज्या होती है ॥६॥

उपपत्ति ।

$\frac{\text{कुज्या त्रि}}{\text{चरज्या}}$ = द्युज्या । परन्तु $\frac{\text{पलभा क्राज्या}}{१२}$ = कुज्या इसमे द्युज्या स्वरूप म कुज्या को उत्थापन देने स $\frac{\text{पलभा क्राज्या त्रि}}{\text{चरज्या} \times १२}$ = द्युज्या इसस प्रथम प्रकार उपपन्न हुआ ।

$\frac{\text{अक्षज्या समश}}{\text{त्रि}}$ = क्राज्या   अक्षज्या समश = त्रि क्राज्या

तब $\frac{\text{पलभा क्राज्या त्रि}}{\text{चरज्या} \times १२} = \frac{\text{अक्षज्या} \times \text{समश पलभा}}{\text{चज्या} \times १२}$ = द्युज्या इसमे द्वितीय प्रकार उपपन्न होता है ॥६॥

पुनस्तदानयनान्याह ।

पलभाऽक्षस्तद्धृतिवधोऽक्षकर्णचरगुणहृद् वा ।
द्युदलहृति कुज्योना सौम्ये याम्ये युता द्युज्ये ॥६॥

वि. भा —वा पलभाक्षतद्धृतिवध (पलभाऽक्षज्या तद्धृतिघात) अक्षकर्ण-चरगुणहृत् (पलकर्णचरज्याभ्या भक्त) तदा द्युज्या भवेत् । अथवा द्युदलहृतिः (मध्यान्हहृति) सौम्ये (उत्तरगोले) कुज्योना (कुज्यया रहिता) याम्ये (दक्षिणगोले) युता तदा द्युज्ये भवत ॥७॥

अत्रोपपत्ति

पूर्वानीत द्युज्यास्वरूपम् $= \frac{\text{अक्षज्या समश पलभा}}{१२ \times \text{चरज्या}} =$

$\frac{\text{अक्षज्या समश पलभा पलक}}{१२ \times \text{चरज्या} \times \text{पकर्ण}} = \frac{\text{अक्षज्या तद्धृति पलभा}}{\text{चरज्या पलक}} =$ द्युज्या । एतेनोपपद्यते प्रथम प्रकार ।

अथवोत्तरदक्षिणगोलक्रमेण मध्यहृति $\mp$ कुज्या $=$ द्युज्या । अत सिद्धम् ॥६॥

इतिवटेश्वरसिद्धान्ते त्रिप्रश्नाधिकारे द्युज्यानयनविधिश्चतुर्थोऽध्याय ॥

पुन द्युज्या का आनयन कहते है ।

हि भा —वा पलभा अक्षज्या और तद्धृति के घात को पलकर्ण और चरज्या के घात से भाग देने से द्युज्या होती है । अथवा मध्यान्हहृति म उत्तरगोल म कज्या को घटाने से और दक्षिणगोल मे जोडने स द्युज्या होती है ॥६॥

उपपत्ति

पूर्वानीत द्युज्या के स्वरूप $= \frac{\text{अज्या समश पलभा}}{१२ \times \text{चरज्या}} \times \frac{\text{अज्या समश पलभा पलक}}{१२ \times \text{चरज्या} \times \text{पलक}}$

$\frac{\text{अज्या तद्धृति पलभा}}{\text{चरज्या पलक}} =$ द्युज्या, इससे प्रथम प्रकार उपपन्न हुआ ।

अथवा उत्तर और दक्षिण गोलक्रम से मध्यहृति$\mp$कुज्या $=$ द्युज्या इससे द्वितीय प्रकार सिद्ध हुआ ॥७॥

इति वटेश्वर सिद्धान्त मे त्रिप्रश्नाधिकार मे द्युज्यानयनविधि नामक
चतुर्थ अध्याय समाप्त हुआ ॥



पञ्चमोऽध्यायः

अथ कुज्यानयनविधिः।

तत्रादौ कुज्यानयनमाह।

क्रान्तिज्याऽक्षज्याघ्नी लम्बकजीवा विभाजिता कुज्या।
विषुवच्छाया गुणिता क्रान्तिज्याऽर्कोद्धृता वा स्यात् ॥१॥

वि. भा.—क्रान्तिज्या अक्षज्याघ्नी (अक्षज्यागुणिता) लम्बकजीवा विभाजिता (लम्बज्याभक्ता) तदा कुज्या भवेत्। अथवा क्रान्तिज्या विषुवच्छायागुणिता (पलभया गुणिता) अर्कोद्धृता (द्वादशभक्ता) कुज्या भवेदिति ॥१॥

अत्रोपपत्तिः।

अक्षक्षेत्रानुपातेन $\frac{\text{अक्षज्या क्राज्या}}{\text{लज्या}}$ = कुज्या, तथा $\frac{\text{अक्षज्या}}{\text{लज्या}} = \frac{\text{पलभा}}{१२}$

अत $\frac{\text{पलभा क्राज्या}}{१२}$ = कुज्या, अत उपपन्नमिति ॥ १ ॥

अब कुज्या के आनयन दो प्रकार से कहते हैं।

हि भा—क्रान्तिज्या को अक्षज्या से गुणकर लम्बज्या से भाग देने से कुज्या होती है। अथवा क्रान्तिज्या को पलभा से गुणकर द्वादश से भाग देने से कुज्या होती है ॥१॥

उपपत्ति।

अनुपात से $\frac{\text{अक्षज्या क्राज्या}}{\text{लज्या}}$ = कुज्या। तथा $\frac{\text{अक्षज्या}}{\text{लज्या}} = \frac{\text{पलभा}}{१२}$

अत $\frac{\text{पलभा क्राज्या}}{१२}$ = कुज्या। इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥१॥

पुन कुज्यानयन प्रकारद्वयेनाह।

क्रान्तिज्याऽग्राघाते समनरभक्तेऽथवा महीजीवा।
वाऽग्रा विषुवद्भाघ्नी पलकर्णविभाजिता कुज्या ॥२॥

वि. भा—अथवा क्रान्तिज्याऽग्राघाते समनरभक्ते (समशङ्कुभक्ते) तदा महीजीवा (कुज्या) भवेत्। वा अग्रा विषुवद्भाघ्नी (पलभा गुणिता) पलकर्ण-विभाजिता (पलकर्णभक्ता) तदा कुज्या स्यात् ॥२॥

अत्रोपपत्ति ।

यदि समशङ्कुकोटावग्रा भुजो लभ्यते तदा क्रान्तिज्याकोटौ किमित्यनुपातेन समागता कुज्या $= \frac{\text{अग्रा.क्राज्या}}{\text{समश}}$, अथवा पलकर्णे पलभा भुजो लभ्यते तदाऽग्राकर्णे किमित्यागता कुज्या $= \frac{\text{पलभा अग्रा}}{\text{पलकर्ण}}$, अत उपपन्नम् ॥२॥

पुन दो प्रकार से कुज्या का आनयन कहते है ।

हि भा—अथवा क्रान्तिज्या और अग्रा के घात मे समशङ्कु मे भाग देने से कुज्या होती है। अथवा अग्रा को पलभा से गुणकर पलकर्ण से भाग देने से कुज्या होती है ॥२॥

उपपत्ति ।

यदि समशङ्कु कोटि मे अग्रा भुज पाते है तो क्रान्तिज्या कोटि म क्या इस अनुपात मे कुज्या आती है $\frac{\text{अग्रा क्राज्या}}{\text{समश}} = \text{कुज्या}$। अथवा पलकर्ण म पलभा भुज पाते है तो अग्रा मे आ जायगी कुज्या $= \frac{\text{पलभा अग्रा}}{\text{पलक}}$, इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥२॥

पुन कुज्यानयन प्रकारद्वयमाह ।

अग्राकृतिविभक्ता तद्धृत्या वा फलं कुजीवा स्यात् ।
नृतलाभ्यस्ता वाऽग्रा स्वधृतिविभक्ता महीजीवा ॥३॥

वि भा—अग्राकृति (अग्रावर्ग) तद्धृत्या विभक्ता फलं कुजीवा (कुज्या) स्यात्। वा अग्रा नृतलाभ्यस्ता (शङ्कुतलगुणिता) स्वधृतिविभक्ता (हृत्या भक्ता) तदा महीजीवा (कुज्या) भवेदिति ।

अत्रोपपत्ति ।

यदि तद्धृतिकर्णेऽग्राभुजो लभ्यते तदाऽग्राकर्णे किमित्यागता कुज्या $= \frac{\text{अग्रा} \times \text{अग्रा}}{\text{तद्धृति}} = \frac{\text{अग्रा}^2}{\text{तद्धृति}}$ अथवा हृतिकर्णे शङ्कुतल भुजो लभ्यते तदाऽग्राकर्णे किमिति समागता कुज्या $= \frac{\text{शङ्कुतल} \times \text{अग्रा}}{\text{हृति}}$ एतेनोपपन्नम् ॥३॥

पुन दो प्रकार से कुज्यानयन कहते हैं।

हि भा —वा अग्रा वर्ग को तद्धृति से भाग देने से कुज्या होती है। अथवा अग्रा को शङ्कुतल से गुणकर हृति से भाग देने से कुज्या होती है ॥३॥

उपपत्ति।

यदि तद्धृति कर्ण में अग्राभुज पाते हैं तो अग्राकर्ण में क्या इस अनुपात से कुज्या आती है $\frac{\text{अग्रा अग्रा}}{\text{तद्धृति}} = \frac{\text{अग्रा}^2}{\text{तद्धृति}} = $ कुज्या। अथवा यदि हृतिकर्ण में शङ्कुतल भुज पाते हैं तो अग्राकर्ण में क्या इस अनुपात से कुज्या आती है $\frac{\text{शतल अग्रा}}{\text{हृति}} = $ कुज्या।

इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥३॥

पुन कुज्यानयन प्रकारद्वयनाह।

लम्बत्रिभगुणवधलब्ध समनुर्वाक्षगुणवर्गघाताद्यत्।
त्रिज्यार्कघातलब्ध समनृपलभाऽक्षगुणघाततो वा स्यात् ॥४॥
वाऽक्षश्रुति रविघातात्समनृपलभाकृतिघातत फल कुज्या।
तद्धृति लम्बगुणघातहृतोऽक्षगुणाग्रा समनृघातो वा ॥५॥

वि भा —वा समनु (समशङ्को) अक्षगुणवर्गघातात् (समशङ्क्वक्षज्यावर्गघातात्) लम्बत्रिभगुणवधलब्ध (लम्बज्यात्रिज्ययोर्घातभक्ताद्यत्फल) सा कुज्या भवेत्। वा समनृपलभाक्षगुणघातत (समशङ्कुपलभाऽक्षज्यावधात्) त्रिज्यार्कघातलब्ध (त्रिज्या द्वादशघातभक्ताद्यत्फल) सा कुज्या भवेत् ॥४॥

वा समनृपलभाकृतिघातत (समशङ्कुपलभावर्गवधात्) अक्षश्रुतिरविघातात् (पलकर्णद्वादशघातभक्तात्) फल कुज्या स्यात्। वा अक्षगुणाग्रा समनृघात (अक्षज्याग्रासमशङ्कुवध) तद्धृतिलम्बगुणघात हृत (तद्धृतिलम्बज्याघातभक्त) तदा कुज्या भवेदिति ॥४ ५॥

अत्रोपपत्ति।

अक्षक्षेत्रानुपातेन $\frac{\text{अज्या क्राज्या}}{\text{लज्या}} = $ कुज्या। परन्तु $\frac{\text{अज्या समश}}{\text{त्रि}} = $ क्राज्या

कुज्यास्वरूपे क्रान्तिज्याया उत्थापनेन $\frac{\text{अज्या क्राज्या}}{\text{लज्या}} = \frac{\text{अज्या अज्या सश}}{\text{लज्या त्रि}} = $

$\frac{\text{अज्या}^2 \text{ सश}}{\text{लज्या त्रि}} = $ कुज्या। परन्तु $\frac{\text{अज्या}}{\text{लज्या}} = \frac{\text{पलभा}}{१२}$ तत उत्थापनेन

$\frac{\text{अज्या सश पभा}}{१२ \text{ त्रि}} = $ कुज्या एतेन चतुर्थ श्लोक उपपद्यते।

तथा $\frac{\text{अज्या}}{\text{त्रि}}=\frac{\text{पलभा}}{\text{पलक}}\therefore\frac{\text{अज्या समश पभा}}{\text{१२ त्रि}}=\frac{\text{पभा.समश पभा}}{\text{१२ पक}}=\frac{\text{पभा}^2\text{ समश}}{\text{पक.१२}}$ = कुज्या

अथवा $\frac{\text{अज्या क्राज्या}}{\text{लज्या}}$ = कुज्या। परन्तु $\frac{\text{अग्रा समश}}{\text{तद्धृति}}$ = क्राज्या कुज्यास्वरूपे क्रान्तिज्याया उत्थापनेन $\frac{\text{अज्या अग्रा.समश}}{\text{लज्या}}$ = कुज्या एतेन पञ्चमश्लोक उपपद्यते ॥४-५॥

अब पुनः कुज्या के आनयनों को कहते हैं।

हि भा.—या समशकु और अक्षज्यावर्गघात में लम्बज्या और त्रिज्या के घात से भाग देने से कुज्या होती है। या समशंकु पलभा और अक्षज्या के घात में त्रिज्या और द्वादश के घात से भाग देने से कुज्या होती है॥ या समशंकु और पलभावर्ग के घात में पलकर्ण और द्वादश के घात में भाग देने से कुज्या होती है। या अक्षज्या, अग्रा और समशंकु के घात में तद्धृति और लम्बज्या के घात में भाग देने से कुज्या होती है॥४-५॥

उपपत्ति।

अक्षक्षेत्र के अनुपात से $\frac{\text{अज्या क्राज्या}}{\text{लज्या}}$ = कुज्या। परन्तु $\frac{\text{अज्या मश}}{\text{त्रि}}$ = क्राज्या

कुज्या के स्वरूप में क्रान्तिज्या को उत्थापन देने से—

$\frac{\text{अज्या क्राज्या}}{\text{लज्या}}=\frac{\text{अज्या अज्या मश}}{\text{लज्या त्रि}}=\frac{\text{अज्या}^2\text{ मश}}{\text{लज्या त्रि}}$ = कुज्या।

परन्तु $\frac{\text{अज्या}}{\text{लज्या}}=\frac{\text{पभा}}{\text{१२}}$ इसलिये $\frac{\text{अज्या}^2\text{ मश}}{\text{लज्या त्रि}}=\frac{\text{पभा अज्या मश}}{\text{१२ त्रि}}$ = कुज्या

इससे चौथा श्लोक उपपन्न हुआ॥४॥

तथा $\frac{\text{अज्या}}{\text{त्रि}}=\frac{\text{पभा}}{\text{पलक}}$ अतः $\frac{\text{पभा अज्या मश}}{\text{१२ त्रि}}=\frac{\text{पभा पभा मश}}{\text{१२ पक}}$

$=\frac{\text{पभा}^2\text{ मश}}{\text{१२ पक}}$ = कुज्या। अथवा $\frac{\text{अज्या क्राज्या}}{\text{लज्या}}$ = कुज्या।

परन्तु $\frac{\text{अग्रा मश}}{\text{तद्धृति}}$ = क्राज्या। इससे कुज्यास्वरूप में क्रान्तिज्या को उत्थापन देने से

$\frac{\text{अज्या अग्रा मश}}{\text{तद्धृति लज्या}}$ = कुज्या। इससे पञ्चम श्लोक उपपन्न हुआ॥४-५॥

पुनः कुज्यानयनान्याह।

याऽक्षज्यावर्गहता त्रिगुणकृतिहृता च तद्धृतिः कुज्या।
याऽक्षाभावर्गहता तद्धृतिरक्षश्रवणकृति हृत्कुज्या॥६॥

वा नृतलवर्गनिहता स्वधृतिकृतिहृता च तद्धृति-।
कुज्या वाग्रे घ्न कुघातोऽक्षाभाघ्न- स्वधृतिरविहृत् ॥७॥
घातो वाऽक्षगुणघ्नो लम्बज्या स्वधृतिघातहृत्कुज्या।
वऽग्राभिहतो घातः कुज्या स्वधृतिसमनरहृतिहृत् ॥८॥

पुन कुज्यानयनान्याह।

वि भा —वा तद्धृति (तद्धृति.) अक्षज्यावर्गहता (अक्षज्यावर्गगुणिता) त्रिगुणकृतिहृता (त्रिज्यावर्गभक्ता) तदा कुज्या भवेत्। वा तद्धृति. (तद्धृति) अक्षाभावर्गहता (पलभावर्गगुणिता) अक्षश्रवणकृतिहृत् (पलकर्णभक्ता) तदा कुज्या भवेत् ॥ वा तद्धृति (तद्धृति) नृतलवर्गनिहता (शकुतलवर्गगुणिता) स्वधृतिकृतिहृता (हृतिवर्गभक्ता) तदा कुज्या भवेत्। वा अग्रेघ्नकुघात, अक्षाभाघ्न (पलभागुणित) स्वधृतिरविहृत् (हृतिद्वादशघातभक्त) तदा कुज्या भवेत् ॥ वा घात अक्षगुणघ्न (अक्षज्यागुणित) लम्बज्यास्वधृतिघातहृत् (लम्बज्याहृतिघातभक्त) कुज्या भवेत्। वा घात, अग्राभिहत (अग्रागुणित) स्वधृतिसमनरहृतिहृत् (हृतिसमशकुघातभक्त) तदा कुज्या भवेत् ॥६-८॥

अत्रोपपत्ति.

$$\frac{\text{अज्या अग्रा}}{\text{त्रि}} = \text{कुज्या। परन्तु } \frac{\text{अज्या तद्धृति}}{\text{त्रि}} = \text{अग्रा कुज्याया स्वरू}$$

$$\text{अग्राया उत्थापनेन } \frac{\text{अज्या अज्या तद्धृति}}{\text{त्रि त्रि}} = \frac{\text{अज्या}^2 \text{ तद्धृति}}{\text{त्रि}^2} = \text{कुज्या।}$$

$$\text{पर } \frac{\text{अज्या}^2}{\text{त्रि}^2} = \frac{\text{पलभा}^2}{\text{पलक}^2} = \frac{\text{शकुतल}^2}{\text{हृति}} \text{ अत}$$

$$\frac{\text{अज्या}^2 \text{ तद्धृति}}{\text{त्रि}^2} = \frac{\text{पलभा}^2 \text{ तद्धृति}}{\text{पलक}^2} = \frac{\text{श तल}^2 \text{ तद्धृति}}{\text{हृति}^2} = \text{कुज्या।}$$

$$\text{तथा } \frac{\text{श तल अग्रा}}{\text{हृति}} = \text{कुज्या। पर } \frac{\text{पभा इश}}{१२} = \text{श तल, कुज्यास्वरूपे}$$

$$\text{उत्थापनेन } \frac{\text{पभा इश अग्रा}}{१२\times\text{हृति}} = \text{कुज्या} = \frac{\text{घात पभा}}{१२\times\text{हृति}}, \text{ अत्र अग्रा इश} = \text{घात}$$

$$= \frac{\text{घात}\times\text{अज्या}}{\text{लज्या हृति}} = \frac{\text{घात अग्रा}}{\text{शश हृति}} = \text{कुज्या} \cdot \frac{\text{अज्या}}{\text{लज्या}} = \frac{\text{अग्रा}}{\text{शश}}$$

मत उपपन्नम् ॥ ६-८ ॥

पुन कुज्या के आनयनो को कहते हैं।

हि भा —वा तद्धृति को अक्षज्या वर्ग से गुणकर त्रिज्यावर्ग से भाग देने से कुज्या होती है। वा तद्धृति को पलभा वर्ग से गुणकर पलकर्ण वर्ग से भाग देने से कुज्या होती

है ।। वा तद्धृति को अकुलमग स गुणकर हृविवग से भाग दन रा कुज्या होती है। वा अग्रा और इष्टश कु के घात को पलभा से गुणकर द्वादश और हृति के घात मे भाग देने स कुज्या होती है ।। वा घात को अक्षज्या से गुणकर लम्बज्या और हृति के घात से भाग देने से कुज्या होती है । वा घात को अग्रा स गुणकर हृति और समशकु के घात से भाग दने से कुज्या होती है ।। ६ ८।।

उपपत्ति ।

$\frac{\text{अज्या अग्रा}}{\text{त्रि}}=\text{कुज्या}$ । परन्तु $\frac{\text{अज्या तद्धृति}}{\text{त्रि}}=\text{अग्रा}$ इमस कुज्या के स्वरूप म अग्रा को उत्थापन दने से $\frac{\text{अज्या अज्या तद्धृति}}{\text{त्रि त्रि}}=\frac{\text{अज्या}^2\text{ तद्धृति}}{\text{त्रि}^2}=\text{कुज्या}$ ।

परन्तु $\frac{\text{अज्या}^2}{\text{त्रि}^2}=\frac{\text{पलभा}^2}{\text{पलक}}=\frac{\text{शतल}^2}{\text{हृति}^2}$ इसलिये

$\frac{\text{अज्या}^2\text{ तद्धृति}}{\text{त्रि}^2}=\frac{\text{पलभा}^2\text{ तद्धृति}}{\text{पलक}^2}=\frac{\text{शतल}^2\text{ तद्धृति}}{\text{हृति}^2}=\text{कुज्या}$

तथा $\frac{\text{शकुल अग्रा}}{\text{हृति}}=\text{कुज्या}$ । परन्तु $\frac{\text{पभा इश}}{\text{१२}}$—शतल इसस कुज्या क स्वरूप म शकुतल को उत्थापन देने स $\frac{\text{पलभा इश अग्रा}}{\text{हृति १२}}=\text{कुज्या}$ ।

$=\frac{\text{घात पभा}}{\text{हृति १२}}$ यहा अग्रा इश $=$ घात

$=\frac{\text{घात अज्या}}{\text{हृति लज्या}}=\text{कुज्या}=\frac{\text{घात अग्रा}}{\text{हृति समश}}$

इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ।। ६ ८ ।।

इदानी पुनस्तदानयनान्याह ।

द्युदलहृतिद्युज्यान्तरमथवा कुज्या द्युजीवया गुणित ।
उन्नतगुणस्त्रिगुणहृतस्तद्धृतिविवर महीजीवा ।।६।।
द्युज्या हृता चरज्या त्रिज्या भाज्या पलगुणभावृत्ताग्रावध ।
निजश्रवणहृत्क्षितिज्या क्रान्तिज्याप्राकृत्योर्विवरपद या महीजीवा ।।१०।।

वि भा —अथवा द्युदलहृतिद्युज्यान्तर (मध्यहृति द्युज्ययोरन्तर) कुज्या भवेत् अथवा उन्नतगुण (उन्नतज्या) द्युजीवया गुणित (द्युज्यागुणित) त्रिगुण हृत (त्रिज्याभक्त) तद्धृतिविवर (पलतद्धृत्योरन्तर) महीजीवा (कुज्या) भवेत् ।। वा चरज्या द्युज्याहृता (द्युज्यागुणिता) त्रिज्याभाज्या तदा महीजीवा भवेत् । अथवा पलगुणभावत्ताग्रावध (अक्षज्याद्यायाकर्णगोलीयाग्राघात) निजश्रवणहृत्

(छायाकर्णभक्त) तदा क्षितिज्या (कुज्या) भवेत्। वा क्रान्तिज्याऽग्राकृत्योर्विवरपद (क्रान्तिज्याऽग्रावर्गान्तरमूल) महीजीवा (कुज्या) भवेदिति ॥६ १०॥

अत्रोपपत्ति ।

मध्यान्ह द्युज्या±कुज्या=हृति अतो द्युज्या−मध्यहृति=कुज्या। तथा सूत्र कुजीवागुणित विभक्तमित्यादि भास्करोक्त्या $\frac{\text{उन्नतज्या द्युज्या}}{\text{त्रि}}$=कला

=तद्धृति−कुज्या तद्धृति−कला=कुज्या ।

अथवा $\frac{\text{चरज्या द्युज्या}}{\text{त्रि}}$=कुज्या। $\frac{\text{अग्रा छायाक}}{\text{त्रि}}$=कर्णवृत्ताग्रा ।

तथा $\frac{\text{अक्षज्या कर्णवृत्ताग्रा}}{\text{छायाक}}=\frac{\text{अक्षज्या अग्रा छाकर्ण}}{\text{त्रि छाकर्ण}}=\frac{\text{अज्या अग्रा}}{\text{त्रि}}$

=कुज्या वा $\sqrt{\text{अग्रा}^2-\text{क्राज्या}^2}$=कुज्या। एतावताऽऽचार्योक्तमुपपन्नम् ॥६-१०॥

इति वटेश्वरसिद्धान्ते त्रिप्रश्नाधिकारे कुज्यानयनविधि पञ्चमोऽध्याय ॥

अब पुन कुज्या के आनयनों को कहते हैं।

हि भा—अथवा मध्यहृति और द्युज्या के अन्तर कुज्या होती है। वा उन्नतज्या को द्युज्या से गुणाकर त्रिज्या से भाग देने से जो फल होता है उसके और तद्धृति के अन्तर करने से कुज्या होती है॥ अथवा अक्षज्या और कर्ण वृत्ताग्र घात में छाया कर्ण से भाग देने से कुज्या होती है। वा क्रान्तिज्या और अग्रा के वर्गान्तरमूल कुज्या होती है ॥६ १०॥

उपपत्ति ।

मध्याह्न काल में द्युज्या±कुज्या=मध्यहृति द्युज्या−मध्यहृति=कुज्या।
तथा सूत्र कुजीवा गुणित विभक्त मित्यादिभास्करोक्त से

$\frac{\text{उन्नतज्या द्युज्या}}{\text{त्रि}}$=कला=तद्धृति−कुज्या तद्धृति−कला=कुज्या

अथवा $\frac{\text{चरज्या द्युज्या}}{\text{त्रि}}$=कुज्या। $\frac{\text{अग्रा छायाक}}{\text{त्रि}}$=छाया कर्ण की अग्रा

तथा $\frac{\text{अक्षज्या कर्ण वृत्ताग्रा}}{\text{छायाक}}=\frac{\text{अक्षज्या अग्रा छाकर्ण}}{\text{त्रि छाकर्ण}}=\frac{\text{अज्या अग्रा}}{\text{त्रि}}$=कुज्या।

वा $\sqrt{\text{अग्रा}^2-\text{क्रांज्या}^2}$=कुज्या इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥६ १०॥

इति वटेश्वरसिद्धान्त में त्रिप्रश्नाधिकार में कुज्यानयनविधि नामक
पंचम अध्याय समाप्त हुआ ॥

षष्ठोऽध्यायः

अथाग्रानयनविधिः ।

तत्रादावग्रानयनान्याह ।

परमापक्रमजीवाघ्नी रविभुजजीवा लम्बगुणभक्ता ।
अग्रा क्रान्तिज्या वा त्रिज्याघ्नी लम्बजीवाहृत् ॥१॥
अक्षश्रवणाभ्यस्ता क्रान्तिज्याऽर्कोद्धृताऽथवाऽग्रज्या ।
तद्धृतिहृताऽपमज्या समनरभक्ताऽथवाऽग्रज्या ॥२॥
स्वधृतिघ्नाऽपमजीवा स्वेष्टनरेणोद्धृताऽथवाऽग्रज्या ।
कुज्याक्रान्तिज्याकृतिसमासमूलमथवाऽग्राज्या ॥३॥
कुज्यात्रिज्यागुणिता पलजीवा भाजिताऽथवाऽग्रज्या ।
विषुवत्कर्णाभ्यस्ता कुज्या वाऽक्षद्युतिहृताऽग्रा ॥४॥

वि भा—रविभुजजीवा (रविभुजज्या) परमापक्रमजीवाघ्नी (परमक्रान्तिज्यागुणिता) लम्बगुणभक्ता (लम्बज्यया भक्ता) तदाऽग्रा स्यात् । वा क्रान्तिज्याऽक्षज्याघ्नी (अक्षज्यया गुणिता) लम्बजीवाहृत् (लम्बज्या भक्ता) तदाऽग्रा भवेत् ॥१॥

अथवा क्रान्तिज्या, अक्षश्रवणाभ्यस्ता (पलकर्णगुणिता) अर्कोद्धृता (द्वादशभक्ता) तदाऽग्रज्या (अग्रा) भवेत् । अथवा, अपमज्या (क्रान्तिज्या) तद्धृतिहृता (तद्धृतिगुणिता) समनरभक्ता (समशकुभक्ता) तदाऽग्रज्या (अग्रा) भवेत् ॥२॥

अथवा, अपमजीवा (क्रान्तिज्या) स्वधृतिघ्ना (हृतिगुणिता) स्वेष्टनरेणोद्धृता (स्वेष्टशकुभक्ता) तदाऽग्रज्या (अग्रा) भवेत् । अथवा कुज्या क्रान्तिज्याकृतिसमासमूल (कुज्याक्रान्तिज्ययोर्वर्गयोगमूल) अग्राज्या भवेत् ॥३॥

अथवा कुज्या, त्रिज्यागुणिता, पलजीवाभाजिता (अक्षज्याभक्ता) तदाऽग्रज्या भवेत् । वा कुज्या, विषुवत्कर्णाभ्यस्ता (पलकर्णगुणिता) अक्षद्युतिहृता (पलभा भक्ता) तदाऽग्रा भवेत् ॥४॥

एतदुपपत्तयः ।

अथ $\frac{\text{त्रि. क्रांज्या}}{\text{लज्या}}$=अग्रा । परन्तु $\frac{\text{जिज्या. भुजज्या}}{\text{त्रि}}$=क्रांज्या अतः

क्रान्तिज्यायाः उत्थापनेन $\frac{\text{त्रि जिज्या भुजज्या}}{\text{लज्या त्रि}} = \frac{\text{जिज्या भुज्या}}{\text{लज्या}} = \text{अग्रा}$ ।

अथवा $\frac{\text{त्रि क्राज्या}}{\text{लज्या}}$ = अग्रा एतेन प्रथमश्लोक उपपद्यते ॥१

अथ $\frac{\text{त्रि क्राज्या}}{\text{लज्या}} = \text{अग्रा}$ पर $\frac{\text{त्रि}}{\text{लज्या}} = \frac{\text{पलक}}{१२}$ = अत उत्थापनेन जाताऽग्रा

$= \frac{\text{पक क्राज्या,}}{१२}$ तथा $\frac{\text{त्रि}}{\text{लज्या}} = \frac{\text{तद्धृति}}{\text{समश}}$ अत उत्थापनेन अग्रा = $\frac{\text{तद्धृति क्राज्या}}{\text{समश}}$

एतेन द्वितीयश्लोक उपपद्यते ॥२॥

अथ पूर्वानीताग्रास्वरूपम् = $\frac{\text{तद्धृति क्राज्या,}}{\text{समश}}$ परन्तु $\frac{\text{तद्धृति}}{\text{समश}} = \frac{\text{हृति}}{\text{इश}}$

अत उत्थापनेन $\frac{\text{तद्धृति क्राज्या}}{\text{समश}} = \frac{\text{हृति क्राज्या}}{\text{इश}}$ = अग्रा । तथा कुज्या क्रान्तिज्याऽग्राभिर्भुजकोटिकर्णैर्जायमानत्रिभुजे $\sqrt{\text{कुज्या}^2 + \text{क्राज्या}^2}$ = अग्रा एतेन तृतीयश्लोक उपपद्यते ॥३॥

तथाऽक्षक्षत्रानुपातेन $\frac{\text{त्रि कुज्या}}{\text{अक्षज्या}} = \text{अग्रा,}$ पर $\frac{\text{त्रि}}{\text{अज्या}} = \frac{\text{पलक}}{\text{पलभा}}$ एतेनोत्था

पनेन $\frac{\text{त्रि कुज्या}}{\text{अज्या}} = \frac{\text{पलक कुज्या}}{\text{पलभा}}$ = अग्रा एतेन चतुर्थश्लोक उपपद्यते ॥४॥

अब अग्रा के आनयनों को कहते हैं।

रविभुजज्या को परमक्रान्तिज्या से गुणकर लम्बज्या से भाग देने से अग्रा होती है। अथवा क्रान्तिज्या को त्रिज्या से गुणकर लम्बज्या से भाग देने से अग्रा होती है ॥१॥

अथवा क्रान्तिज्या को पलकर्ण से गुणकर द्वादश से भाग देने से अग्रा होती है। अथवा क्रान्तिज्या को तद्धृति से गुणकर समशङ्कु से भाग देने से अग्रा होती है ॥२॥

अथवा क्रान्तिज्या को हृति से गुणकर इष्टशङ्कु से भाग देने से अग्रा होती है। अथवा कुज्या और क्रान्तिज्या के वर्गयोग मूल अग्रा होती है ॥३॥

अथवा कुज्या को त्रिज्या से गुणकर अक्षज्या से भाग देने से अग्रा होती है। अथवा कुज्या को पलकर्ण से गुणकर पलभा से भाग देने से अग्रा होती है ॥४॥

उपपत्ति ।

$\frac{\text{त्रि क्राज्या}}{\text{लज्या}}$ = अग्रा । परन्तु $\frac{\text{जिज्या भुज्या}}{\text{त्रि}}$ = क्राज्या इससे क्रान्तिज्या स्वरूप को

उत्थापन देने से $\frac{\text{त्रि. जिज्या. भुज्या}}{\text{लज्या. त्रि}} = \frac{\text{जिज्या. भुज्या}}{\text{लज्या}}$ = अग्रा। इससे प्रथम श्लोक उपपन्न हुआ ॥१॥

अथवा $\frac{\text{त्रि. क्राज्या}}{\text{लज्या}}$ = अग्रा, परन्तु $\frac{\text{त्रि}}{\text{लज्या}} = \frac{\text{पलक}}{१२}$ इससे उत्थापन देने से $\frac{\text{त्रि.क्राज्या}}{\text{लज्या}}$ $= \frac{\text{पलक. क्राज्या}}{१२}$ = अग्रा। तथा $\frac{\text{पलक}}{१२} = \frac{\text{तद्धृति}}{\text{समश}} \therefore \frac{\text{पलक. क्राज्या}}{१२} = \frac{\text{तद्धृति. क्राज्या}}{\text{समश}}$ = अग्रा., इससे द्वितीय श्लोक उपपन्न हुआ।

तथा $\frac{\text{तद्धृति. क्राज्या}}{\text{समश}}$ = अग्रा.। परन्तु $\frac{\text{तद्धृति}}{\text{समश}} = \frac{\text{हृति}}{\text{इश}}$ इससे उत्थापन देने से $\frac{\text{तद्धृति क्राज्या}}{\text{समश}} = \frac{\text{हृति क्राज्या}}{\text{इश}}$ = अग्रा। तथा कुज्या, क्रान्तिज्या और अग्रा इन भुजकोटि कर्णों से उत्पन्न त्रिभुज में $\sqrt{\text{कुज्या}^2 + \text{क्राज्या}^2}$ = अग्रा, इससे तृतीय श्लोक उपपन्न हुआ ॥३॥

अक्षक्षेत्रानुपात से $\frac{\text{त्रि. कुज्या}}{\text{अज्या}}$ = अग्रा, पर $\frac{\text{त्रि}}{\text{अज्या}} = \frac{\text{पलक}}{\text{पलभा}} \therefore \frac{\text{त्रि. कुज्या}}{\text{अज्या}} = \frac{\text{पलक. कुज्या}}{\text{पलभा}}$ = अग्रा, इससे चतुर्थ श्लोक उपपन्न हुआ ॥४॥

पुनरग्रानयनान्याह।

तद्धृतिकुज्याघातान्मूलं पूर्वापरे कुजे वाऽग्रा।
स्वधृतिघ्ना कुज्या नृतलविभक्ताऽथवाऽग्रज्या ॥५॥
समनाऽक्षज्या गुणितो लम्बज्या भाजितोऽथवाऽग्रज्या।
विषुवच्छायागुणितः समना वाऽर्कोद्धृतोऽग्रज्या ॥६॥
कुज्यागुणितः समना क्रान्तिज्या भाजितोऽथवाऽग्रज्या।
समना नृतलाभ्यस्तः शंकुविभक्तोऽथवाऽग्रज्या ॥७॥
तद्धृतिरक्षज्याघ्नी व्यासार्धविभाजिताऽथवाऽग्रज्या।
अथवाऽक्षच्छायाघ्नी तद्धृतिरक्षश्रुतिहृताऽग्रा ॥८॥

वि. भा.—तद्धृतिकुज्याघातात् मूलं वा पूर्वापरकुजे (पूर्वपश्चिमक्षितिजे) अग्रा भवेत्। अथवा कुज्या स्वधृतिघ्ना (हृतिगुणिता) नृतलविभक्ता (नरतल-भक्ता) अग्रज्या भवेत्॥ अथवा समना (समशंकुः) अक्षज्यागुणितः, लम्बज्या भाजितः (लम्बज्याभक्त) अग्रज्या (अग्रा) भवेत्। अथवा समना (समशंकुः) विषुवच्छायागुणितः (पलभागुणितः) अर्कोद्धृतः (द्वादशभक्तः) अग्रज्या भवेत्॥ अथवा समना (समशंकुः) कुज्यागुणितः, क्रान्तिज्याभाजितः अग्रज्या भवेत्।

अथवा समना (समशङ्कु) नृतलाभ्यस्तः (शंकुतलगुणितः) शंकुविभक्तः, तदा अग्रज्या (अग्रा) भवेत् ॥ अथवा तद्धृति, अक्षज्याघ्नो (अक्षज्यागुणिता) व्यासार्धविभाजिता (त्रिज्याभक्ता) तदाऽग्रज्या भवेत् । अथवा तद्धृतिः, अक्षच्छायाघ्नी (पलभागुणिता) अक्षश्रुतिहृता (पलकर्णभक्ता) तदाऽग्रा भवेत् ॥८॥

एतेषामुपपत्तयः ।

अक्षक्षेत्रानुपातेन $\frac{\text{तद्धृति कुज्या}}{\text{अग्रा}}$ = अग्रा ∴ तद्धृति कुज्या = अग्रा² मूलेन $\sqrt{\text{तद्धृति कुज्या}}$ = अग्रा । अथवा $\frac{\text{हृति कुज्या}}{\text{शङ्कुतल}}$ = अग्रा एतेन पञ्चमश्लोक उपपद्यते ॥ अथवा $\frac{\text{अक्षज्या समश}}{\text{लज्या}}$ = अग्रा । तथा $\frac{\text{अज्या}}{\text{लज्या}} = \frac{\text{पलभा}}{१२}$ अत उत्थापनेन

$\frac{\text{अज्या समश}}{\text{लज्या}} = \frac{\text{पलभा समश}}{१२}$ एतेन षष्ठश्लोक उपपद्यते ॥ अथवा

$\frac{\text{पलभा समश}}{१२}$ = अग्रा । पर $\frac{\text{पलभा}}{१२} = \frac{\text{कुज्या}}{\text{काज्या}}$ अत उत्थापनेन $\frac{\text{पलभा समश}}{१२}$ =

$\frac{\text{कुज्या समश}}{\text{काज्या}}$ = अग्रा । तथा $\frac{\text{कुज्या}}{\text{काज्या}} = \frac{\text{शंकुतल}}{\text{शङ्कु}}$ ∴ $\frac{\text{कुज्या समश}}{\text{काज्या}}$ =

$\frac{\text{शंकुतल समश}}{\text{शङ्कु}}$ = अग्रा, एतेन सप्तमश्लोक उपपद्यते ॥ अथवा $\frac{\text{अज्या. तद्धृति}}{\text{त्रि}}$

= अग्रा । तथा $\frac{\text{अज्या}}{\text{त्रि}} = \frac{\text{पलभा}}{\text{पलक}}$ अत उत्थापनेन $\frac{\text{अज्या तद्धृति}}{\text{त्रि}}$ =

$\frac{\text{पभा तद्धृति}}{\text{पलक}}$ = अग्रा, एतेन अष्टमश्लोक उपपद्यते ॥८॥

पुनः अग्रा के आनयनों को कहते हैं

हि भा—तद्धृति और अग्रा के घात के मूल लेने से अग्रा होती है । अथवा कुज्या को हृति से गुणाकर शंकुतल से भाग देने से अग्रा होती है ॥५॥ अथवा समशंकु को अक्षज्या से गुणाकर लम्बज्या से भाग देने से अग्रा होती है । अथवा समशंकु को पलभा से गुणाकर द्वादश से भाग देने से अग्रा होती है ॥६॥ अथवा समशंकु को कुज्या से गुणाकर क्रान्तिज्या से भाग देने से अग्रा होती है । अथवा समशंकु को शंकुतल से गुणाकर शंकु से भाग देने से अग्रा होती है ॥७॥ अथवा तद्धृति को अक्षज्या से गुणाकर त्रिज्या से भाग देने से अग्रा होती है । अथवा तद्धृति को पलभा से गुणाकर पलकर्ण से भाग देने से अग्रा होती है ॥८॥

उपपत्ति

अक्षक्षेत्र के अनुपात से $\frac{\text{तद्धृति कुज्या}}{\text{अग्रा}}$ = अग्रा ∴ तद्धृति कुज्या = अग्रा² मूल

लेन से $\sqrt{\text{तद्धृति कुज्या}}$ = अग्रा । अथवा $\frac{\text{हृति कुज्या}}{\text{शङ्कुतल}}$ = अग्रा इससे पञ्चमश्लोक उपपन्न हुआ ॥५॥ अथवा $\frac{\text{अज्या समश}}{\text{लज्या}}$ = अग्रा । परन्तु $\frac{\text{अज्या}}{\text{लज्या}} = \frac{\text{पलभा}}{१२}$ इससे उत्थापन देने से $\frac{\text{अज्या समश}}{\text{लज्या}} = \frac{\text{पलभा समश}}{१२}$ = अग्रा । इससे षष्ठश्लोक उपपन्न हुआ ॥६॥ अथवा $\frac{\text{पलभा समश}}{१२}$ = अग्रा परन्तु $\frac{\text{पलभा}}{१२} = \frac{\text{कुज्या}}{\text{क्राज्या}}$ अत उत्थापन देने से $\frac{\text{पलभा समश}}{१२} = \frac{\text{कुज्या समश}}{\text{क्राज्या}}$ = अग्रा । तथा $\frac{\text{कुज्या}}{\text{क्राज्या}} = \frac{\text{शङ्कुतल}}{\text{शङ्कु}}$ इससे उत्थापन देने से $\frac{\text{कुज्या समश}}{\text{क्राज्या}} = \frac{\text{शङ्कुतल समश}}{\text{शङ्कु}}$ = अग्रा इससे सप्तमश्लोक उपपन्न हुआ ॥७॥ अथवा $\frac{\text{अज्या तद्धृति}}{\text{त्रि}}$ = अग्रा । परन्तु $\frac{\text{अज्या}}{\text{त्रि}} = \frac{\text{पलभा}}{\text{पलक}}$ अत उत्थापन देने से $\frac{\text{अज्या तद्धृति}}{\text{त्रि}} = \frac{\text{पलभा तद्धृति}}{\text{पलक}}$ = अग्रा, इससे अष्टमश्लोक उपपन्न हुआ ॥८॥

पुनस्तदानयनान्याह ।

तद्धृतिसमनरकृत्योर्विशेषमूलं कुजे वाऽग्रा ।
भुजशङ्कुतलवियुतियुतो सा कुजे वाऽग्रा ॥९॥
त्रिज्याऽक्षाभा गुणिता सममण्डलकर्णभाजिता वाऽग्रा ।
नृतलं समशङ्कोर्यद्रवावुदक्स्थे भवेत्साऽग्रा ॥१०॥
त्रिज्याभावृत्ताग्राघाते भाकर्णभाजिते वाऽग्रा ।
भावृत्ताग्राहग्ज्यावधे प्रभाभाजिते वाऽग्रा ॥११॥

वि भा — वा तद्धृतिसमनरकृत्योर्विशेषमूल (तद्धृतिसमश कुवर्गान्तरमूल) कुजे (क्षितिजे) अग्रा स्यात् । अथवा भुजशङ्कुतलवियुतियुतौ (भुजशङ्कुतलयोर्योगान्तरे) अग्रा भवेत् ॥९॥ अथवा त्रिज्या अक्षाभागुणिता (पलभा गुणिता) सममण्डलकर्ण-भाजिता (समकर्णभक्ता) तदाग्रा भवेत् । अथवा रवौ (सूर्ये) उदक्स्थे (उत्तरे) समशङ्कोर्यन्नृतल (शङ्कुतल) साऽग्रा भवेत् ॥१०॥ अथवा त्रिज्या भावृत्ताग्राघाते (त्रिज्याछायाकर्णगोलीयाग्रावधे) भाकर्णभाजिते (छायाकर्णभक्ते) तदाग्रा भवेत् । अथवा भावृत्ताग्रा दृग्ज्यावधे (छायाकर्णगोलीयाग्रा दृग्ज्याघाते) प्रभा-भाजिते (छायाभक्ते) तदाऽग्रा भवेदिति ॥११॥

एषामुपपत्तय

अग्रा समशङ्कुतद्धृतिभिर्भुजकोटिकर्णैर्जायमानाऽक्षक्षेत्रे $\sqrt{\text{तद्धृति}^2 - \text{समश}^2}$ = अग्रा । तथा शङ्कुमूलात्पूर्वापरसूत्रोपरिलम्ब = भुज. ।

शङ्कुमूलात्स्वोदयास्तसूत्रोपरिलम्ब = शङ्कुतलम्। स्वोदयास्तपूर्वापरसूत्रयोरन्तरम् = अग्रा। अग्राश कुतलयो सस्कारेण भुजो भवति, तद्विलोमेन शङ्कुतल ∓ भुज = अग्रा, अग्रा गोलदिक्का भवति, शङ्कुतलस्य दिक् दक्षिणा, पूर्वापरसूत्रा यद्दिशि शङ्कुमूल तद्दिग्भुजसज्ञकम्। एतेन नवमश्लोक उपपद्यते ॥९॥ $\frac{\text{पलभा} \times \text{सम}}{१२}$ = अग्रा

अत्र हरभाज्यौ त्रिज्यया गुणितौ तदा $\frac{\text{पलभा} \times \text{सम} \times \text{त्रि}}{१२ \times \text{त्रि}} = \frac{\text{पलभा त्रि}}{\frac{१२ \times \text{त्रि}}{\text{सम}}} =$

$\frac{\text{पलभा त्रि}}{\text{समकर्ण}}$ = अग्रा। अथवा समप्रवेशबिन्दौ सूर्ये यच्छङ्कुतल सैवाग्रा भवति। एतेन दशमश्लोक उपपद्यते ॥१०॥

$\frac{\text{कर्णवृत्ताग्रा त्रि}}{\text{छायाकर्ण}}$ = अग्रा। परन्तु $\frac{\text{त्रि छाया}}{\text{दृग्ज्या}}$ = छायाकर्ण अत उत्थापनेन

$\frac{\text{कर्णवृत्ताग्रा त्रि}}{\frac{\text{त्रि छाया}}{\text{दृग्ज्या}}} = \frac{\text{कर्णवृत्ताग्रा दृग्ज्या}}{\text{छाया}}$ = अग्रा एतेन एकादशश्लोक उपपद्यते ॥११॥

अब पुन अग्रा के आनयन प्रकारो को कहते हैं।

हि भा —तद्धृति और समशङ्कु क वर्गान्तरमूल क्षितिज म अग्रा होती है। अथवा भुज और शङ्कुतल के योगान्तर करने स अग्रा होती है ॥९॥ अथवा त्रिज्या को पलभा से गुणकर समकर्ण म भाग देने से अग्रा होती है। अथवा रवि के सममण्डल मे रहने स जो शङ्कुतल होता है वह अग्रा है ॥१०॥ अथवा त्रिज्या और कर्णवृत्ताग्रा के घात म छायाकर्ण मे भाग देने से अग्रा होती है। अथवा कर्णवृत्ताग्रा और दृग्ज्या के घात मे छाया से भाग देन मे अग्रा होती है।

उपपत्ति।

अग्रा, समशङ्कु और तद्धृति इन भुजकोटिकर्णों से जो जात्य त्रिभुज बनता है उसमे $\sqrt{\text{तद्धृति}^2 - \text{समशं}^2}$ = अग्रा। शङ्कुमूल से पूर्वापर सूत्र के ऊपर लम्ब = भुज। शङ्कुमूल मे स्वोदयास्त सूत्र के ऊपर लम्ब = शङ्कुतल। स्वोदयास्तसूत्र और पूर्वापर सूत्र के अन्तर = अग्रा। अत शङ्कुतल ∓ भुज = अग्रा। शङ्कुतल की दिशा दक्षिण है। पूर्वापर सूत्र से शङ्कुमूल जिस दिशा म रहता है उस दिशा का भुज होता है। अग्रा की दिशा गोल दिशा है। इसम नवम श्लोक उपपन्न हुआ ॥९॥ अथवा $\frac{\text{पलभा समश}}{१२}$ = अग्रा, इसके हर और भाज्य को त्रिज्या से गुण देने से $\frac{\text{पभा सश त्रि}}{१२ \times \text{त्रि}} = \frac{\text{पभा त्रि}}{\frac{१२ \times \text{त्रि}}{\text{सश}}} = \frac{\text{पभा त्रि}}{\text{समक}}$ = अग्रा अथवा सम-

प्रवेश बिन्दु म रवि के रहन से जो शकुतल होता है वह अग्रा है । इससे दसवा श्लोक उपपन्न हुआ ॥१०॥ अथवा $\frac{\text{कर्णवृत्ताग्रा त्रि}}{\text{छायाक}}$ = अग्रा परन्तु $\frac{\text{त्रि छाया}}{\text{दृग्ज्या}}$ = छायाकर्ण इससे उत्थापन देने से $\frac{\text{कर्णवृत्ताग्रा त्रि}}{\frac{\text{त्रि छाया}}{\text{दृग्ज्या}}} = \frac{\text{कर्णवृत्ताग्रा दृग्ज्या}}{\text{छाया}}$ = अग्रा । इससे ग्यारहवा श्लोक उपपन्न हुआ ॥ ११ ॥

पुनस्तदानयनान्याह ।

कुज्याशङ्क्वोर्घातोऽक्षज्याघ्न. स्वधृति लम्बगुणवधहृत् ।
घात कुज्यागुणित क्रान्तिज्या स्वधृति घातहृद्वाऽग्रा ॥१२॥
वाऽक्षाभाघ्नो घात सूर्यघ्नस्वधृतिभक्तोऽग्रा ।
द्युज्या चरगुणघातोऽक्षज्या भक्तोऽथवाऽग्रज्या ॥१३॥

वि भा —कुज्याशङ्कोर्घात , अक्षज्याघ्न (अक्षज्यागुणित) स्वधृतिलम्बगुणवधहृत् (हृतिलम्बज्ययोर्घातभक्त) तदाऽग्रज्या भवेत् । अथवा घात (कुज्याशङ्क्वोर्घात) कुज्यागुणित , क्रान्तिज्यास्वधृतिघातहृत् (क्रान्तिज्याहृतिघातभक्त) तदा अग्रा भवेत् ॥ अथवा घात , अक्षाभाघ्न (पलभागुणित) सूर्यघ्नस्वधृतिभक्त (द्वादशगुणितहृतिभक्त) तदाऽग्रा भवेत् । अथवा द्युज्याचरगुणघात (द्युज्याचरज्ययोर्वध) अक्षज्याभक्तस्तदाऽग्रज्या (अग्रा) भवेदिति॥१२-१३॥

अत्रोपपत्ति ।

श्लोकोक्त्या $\frac{\text{कुज्या श कु अज्या}}{\text{लज्या} \times \text{हृति}} = \frac{\text{कुज्या} \times \text{श कुतल}}{\text{हृति}}$ अत्र व्यस्तत्रैराशिकेन

$\frac{\text{कज्या} \times \text{हृति}}{\text{श कुतल}}$ = अग्रा । अथ कुज्या × शकु = घात, तदा $\frac{\text{घात अज्या}}{\text{लज्या} \times \text{हृति}}$ = अग्रा

परन्तु $\frac{\text{अज्या}}{\text{लज्या}} = \frac{\text{कुज्या}}{\text{क्राज्या}}$ अत $\frac{\text{घात} \times \text{कुज्या}}{\text{क्राज्या हृति}}$ = अग्रा ।

तथा $\frac{\text{कुज्या}}{\text{क्राज्या}} = \frac{\text{पलभा}}{१२}$ अत $\frac{\text{घात} \times \text{पलभा}}{१२ \times \text{हृति}}$ = अग्रा ।

तथा $\frac{\text{कुज्या त्रि}}{\text{द्यु}}$ = चरज्या कुज्या त्रि = चरज्या द्यु पक्षौ अक्षज्यया भक्तौ

तदा $\frac{\text{कुज्या त्रि}}{\text{अज्या}} = \frac{\text{चरज्या द्यु}}{\text{अज्या}}$ = अग्रा । एतेनोपपन्न सर्वमिति ॥१२-१३॥

अत्र कुज्या शङ्क्वाघात इति प्रकारोऽस्मभ्य न रोचते कथमाचार्येण तथाऽऽनयन कृतमिति त एव ज्ञातु शक्नुवन्तीति ॥

इति वटेश्वरसिद्धान्ते त्रिप्रश्नाधिकारेऽग्रानयनविधि षष्ठोऽध्याय ॥

पुन अग्रा के आनयनो को कहते हैं।

हि भा—कुज्या और शकु के घात को अक्षज्या से गुणाकर हृति और लम्बज्या के घात से भाग देने से अग्रा होती हैं। अथवा घात (कुज्या और शकु के घात) कुज्या से गुणाकर क्रान्तिज्या गुणित हृति से भाग देने से अग्रा होती है ॥१२॥ अथवा घात को पलभा से गुणाकर द्वादश गुणित हृति से भाग देने से अग्रा होती है। अथवा द्युज्या और चरज्या के घात को अक्षज्या से भाग देने से अग्रा होती है ॥१३॥

उपपत्ति।

श्लोक के अनुसार $\frac{\text{कुज्या शकु अज्या}}{\text{लज्या हृति}} = \frac{\text{कुज्या शकुतल}}{\text{हृति}}$ = यहा व्यस्तत्रैराशिक से $\frac{\text{कुज्या हृति}}{\text{शकुतल}}$ = अग्रा। यहा कुज्या शकु = घात

तब $\frac{\text{कुज्या शकु अज्या}}{\text{लज्या हृति}} = \frac{\text{घात अज्या}}{\text{लज्या हृति}}$ = अग्रा। परन्तु $\frac{\text{अज्या}}{\text{लज्या}} = \frac{\text{कुज्या}}{\text{क्राज्या}}$

$\frac{\text{घात अज्या}}{\text{लज्या हृति}} = \frac{\text{घात कुज्या}}{\text{क्राज्या हृति}}$ = अग्रा = $\frac{\text{घात पलभा}}{१२ \times \text{हृति}}$,

तथा $\frac{\text{कुज्या त्रि}}{\text{द्यु}}$ = चरज्या कुज्या त्रि = चरज्या द्यु दोनों पक्षो को अक्षज्या से

भाग देने से $\frac{\text{कुज्या त्रि}}{\text{अज्या}} = \frac{\text{चरज्या द्यु}}{\text{अज्या}}$ = अग्रा, इससे सब उपपन्न हो गये। यहा 'कुज्या शङ्क्वोर्घात यह प्रकार मुझे ठीक नही मालूम होता है ॥ १२-१३ ॥

इति वटेश्वरसिद्धान्त म त्रिप्रश्नाधिकार म अग्रानयनविधि नामक,
छठा अध्याय समाप्त हुआ



अष्टमोऽध्याय:

अथ स्वचरार्धज्याप्राणसाधनविधि

तत्रादौ चरार्धज्यानयनमाह ।

कुज्या त्रिज्या गुणिता द्युज्याभक्ता चरार्धजीवा स्यात् ।
अन्त्याहता कुजीवा धृतिभक्ता वा चरार्धज्या ॥१॥
अन्त्योन्नतज्ययोर्वा विशेषशेष चरार्धजीवा स्यात् ।
यन्त्रगृहीतद्युदलतिथिघटी विवरनाडिकाज्या वा ॥२॥

वि भा —कुज्या त्रिज्या गुणिता द्युज्याभक्ता तदा चरार्धजीवा (चरार्धज्या) स्यात । वा कुजीवा (कुज्या) अन्त्याहता (अन्त्यागुणिता) धृतिभक्ता (हृतिभक्ता) तदा चरार्धज्या स्यात ॥१॥ अथवा अन्त्योन्नतज्ययो (अन्त्यासून्नयो) विशेष शेष (अन्तरशेषमर्थादन्त्यासून्नयोरन्तर) चरार्धजीवा (चरार्धज्या) स्यात् । अथवा यन्त्रगृहीतद्युदलतिथिघटीविवरनाडिकाज्या (दिनार्धपञ्चदशघट्योरन्तरज्या) चरज्या भवेदिति ॥२॥

अत्रोपपत्ति ।

क्षितिजाहोरात्रवृत्तसम्पातोपरिगत ध्रुवप्रोतवृत्तनाडीवृत्तसम्पातात्पूर्व-स्वस्तिक यावन्नाडीवृत्त चरचापम् । क्षितिजाहोरात्रवृत्त सम्पातोपरिगतध्रुव-प्रोतवृत्ते ध्रुवान्नाडीवृत्त यावन्नवत्यश । उन्मण्डले ध्रुवात्पूर्वस्वस्तिक यावन्न-वत्यश । नाडीवृत्ते चरचापमिति भुजत्रयैरुत्पन्नमेक त्रिभुजम् । ध्रुवात्क्षितिजा होरात्रवृत्तसम्पात यावद् द्युज्याचापम् । ध्रुवादुन्मण्डलाहोरात्रवृत्तसम्पात यावदु न्मण्डले द्युज्याचापम् । अहोरात्रवृत्ते कुज्याचापमिति भुजत्रयैरुत्पन्न द्वितीय-त्रिभुजम् । एतयोस्त्रिभुजयोर्ज्याक्षेत्रसाजात्यादनुपात $\frac{\text{कुज्या त्रि}}{\text{द्यु}}$ = चरज्या ।

तथा क्षितिजाहोरात्रवृत्तसम्पातोपरिगत ध्रुवप्रोतवृत्तनाडीवृत्त सम्पातात्पूर्वापरसूत्रस्य समानान्तरसूत्र कार्यं तदुपरिग्रहोपरिगतध्रुवप्रोतवृत्त नाडीवृत्तसम्पातात्लम्ब कार्यं सैवान्त्यैको भुज । भूकेन्द्राद्ग्रहोपरिध्रुवप्रोतवृत्तनाडीवृत्त सम्पातगता त्रिज्या द्वितीयो भुज । भूकेन्द्रादन्त्यामूल यावत्तृतीयो भुज इति भुजत्रयैरुत्पन्नमेक त्रिभुजम् । तथाऽहोरात्रवृत्तगर्भकेन्द्राद्ग्रहगताद्युज्यैको भुज । ग्रहात्स्वोदयास्तसूत्रोपरिलम्बो-हृतिर्द्वितीयो भुज । अहोरात्रवृत्तगर्भकेन्द्राद्धृतिमूल यावत्तृतीयो भुज इति भुजत्रयै-

त्पन्नं द्वितीयत्रिभुजम्। एतयोस्त्रिभुजयो सजातीयादनुपातो यदि द्युज्यया हृति-लंभ्यते तदा त्रिज्यया किमित्यनुपातेनागताऽन्त्या$=\frac{\text{हृति. त्रि}}{\text{द्यु}} \therefore \frac{\text{त्रि}}{\text{द्यु}}=\frac{\text{अन्त्या}}{\text{हृति}}$

तदा पूर्वानीतचरज्यामानम्$=\frac{\text{कुज्या. त्रि}}{\text{द्यु}}=\frac{\text{कुज्या अन्त्या}}{\text{हृति}}=$ एतेन प्रथमश्लोक उपपद्यते ॥

अथ ग्रहोपरिध्रुव प्रोतवृत्त नाडीवृत्तसम्पातात्त्वराग्रद्वयवद्धसूत्रो (क्षितिजाहोत्रवृत्त सम्पातोपरि ध्रुव प्रोतवृत्त नाडीवृत्त सम्पातात्पूर्वापरसूत्रसमानान्तरसूत्रस्य चराग्रद्वयवद्धसूत्रस्य) परिलम्बोऽन्त्या, तथा तत एव पूर्वापरसूत्रोपरि लम्ब =सूत्रम्। अत. अन्त्या—सूत्र=चरज्या। तथा चोन्मण्डलयाम्योत्तरवृत्तयोरन्तरे पञ्चदश नाड्य। स्वक्षितिजोन्मण्डलयोरन्तरे चरखण्डकाल। उत्तरगोले स्वक्षितिजादुपरि दक्षिणगोले चाध उन्मण्डलमस्त्यत उत्तरगोले चरघटीसहिता दक्षिणगोलरहिता पञ्चदशनाड्यो गोलयोर्दिनार्धमान भवेत्। एतद्विलोमेन दिनार्धपञ्चदशघट्योरन्तर चरार्धमान तेन दिनार्धपञ्चदशघट्योरन्तरज्या चरज्या भवेदत एतेनोपपद्यते द्वितीयश्लोक ॥ १२॥

अब चरज्या के आनयनों को कहते है।

हि भा—कुज्या को त्रिज्या से गुणाकर द्युज्या से भाग देने से चरज्या होती है। अथवा कुज्या को अन्त्या से गुण कर हृति से भाग देने से चरज्या होती है ॥ अथवा अन्त्या और उन्नत कालज्या के अन्तर करने से जो शेष रहता है वह चरज्या होती है। अथवा यन्त्र ग्रहीत दिनार्ध और पन्द्रह घटी के अन्तर की ज्या होती है ॥१-२॥

उपपत्ति।

क्षितिज्या होरात्रवृत्त सम्पात के ऊपर ध्रुव प्रोतवृत्त करने से वह ध्रुव प्रोतवृत्त नाडीवृत्त मे जहा पर लगता है वहा से पूर्व स्वस्तिक तक नाडीवृत्त मे चरचाप है। क्षितिजाहोरात्रवृत्त सम्पातगत ध्रुवप्रोतवृत्त मे ध्रुव से नाडीवृत्त तक नवत्यश चाप एक भुज, ध्रुव से पूर्व स्वस्तिक तक उन्मण्डल मे नवत्यश द्वितीय भुज, नाडीवृत्त मे चरचाप तृतीयभुज, इन तीनो भुजो से एक त्रिभुज बना। तथा ध्रुव से क्षितिजाहोरात्रवृत्त सम्पात तक ध्रुव प्रोतवृत्त मे द्युज्या चाप एक भुज, ध्रुव से उन्मण्डलाहोरात्रवृत्त के सम्पात तक उन्मण्डल में द्युज्याचाप द्वितीयभुज, होरात्रवृत्त मे कुज्याचाप तृतीयभुज, इन तीनो भुजो से उत्पन्न द्वितीय त्रिभुज बना, इन दोनो त्रिभुजो के ज्या क्षेत्र सजातीय है इसलिए अनुपात है।
$\frac{\text{कुज्या त्रि}}{\text{द्यु}}=$ चरजा। तथा ग्रहोपरि ध्रुव प्रोतवृत्त नाडीवृत्त के सम्पात से चराग्रद्वयबद्ध सूत्र के ऊपर लम्ब रेखा=अन्त्या एक भुज, भूकेन्द्र से ग्रहोपरिगत ध्रुव प्रोतवृत्त नाडीवृत्त सम्पातगत त्रिज्या द्वितीय भुज, भूकेन्द्र से अन्त्या मूलगत रेखा तृतीय भुज इन तीनो भुजो से एक त्रिभुज बना। अहोरात्रवृत्त गर्भकेन्द्र मे ग्रहगत द्युज्या रेखा एक भुज, ग्रह से स्वोद-

मास्त सूत्र के ऊपर लम्बहृति द्वितीय भुज, ग्रहोरात्रवृत्त गर्भकेन्द्र से हृति मूल तक तृतीय भुज इन तीनो भुजों से उत्पन्न द्वितीय त्रिभुज बना। इन दोनो त्रिभुजो के सजातीय होने के कारण अनुपात करते है $\frac{\text{हृति त्रि}}{\text{द्य}}$ = अन्त्या $\therefore \frac{\text{हृति}}{\text{द्यु}} = \frac{\text{अन्त्या}}{\text{त्रि}}$ तब पूर्वानीत चरज्या के स्वरूप $= \frac{\text{कुज्या त्रि}}{\text{द्यु}} = \frac{\text{कुज्या अन्त्या}}{\text{हृति}}$ चरज्या इससे प्रथम श्लोक उपपन्न हुआ ॥१॥

ग्रहोपरिगत ध्रुव प्रोतवृत्त नाडीवृत्त के सम्पात विन्दु से चराग्रद्वय वद्ध सूत्र के ऊपर लम्ब रेखा = अन्त्या और उसी विन्दु स पूर्वापर सूत्र के ऊपर लम्बरेखा = सूत्र इसलिए अन्त्या — सूत्र = चरज्या। तथा उन्मण्डल और याम्योत्तरवृत्त के अन्तर म १५ घटी है। और अपने क्षितिज और उन्मण्डल के अन्तर = चरखण्डकाल है। अपने क्षितिजे ऊर्ध्वयाम्योत्तर वृत्त तक दिनार्धकाल है। इसलिए दिनार्धकाल और पञ्चदश (१५) घटी के अन्तर (चर) ज्या चरज्या होती है। इससे द्वितीय श्लोक उपपन्न हुआ ॥१-२॥

पुनश्चरज्यानयनान्याह।

पलजीवा गुणिताग्रा द्युज्याभक्ताऽथवा चरार्धज्या।
क्रान्तित्रिभगुणघातोऽक्षाभाघ्नोऽर्काहृतद्युजीवाहृत् ॥३॥

अक्षज्याघ्नो घातो लम्बज्या धृतिवधोद्धृतो वा स्यात्।
कुज्याघ्नो वा घातोऽपमधृतिघातोद्धृत सा स्यात् ॥४॥

वि भा — अग्रा, पलजीवागुणिता (अक्षज्यागुणिता) द्युज्याभक्ता, अथवा चरार्धज्या भवेत्। वा क्रान्तित्रिभगुणघात (क्रान्तिज्यात्रिज्ययोर्घात) अक्षाभाघ्न (पलभागुणित) अर्काहृत द्युजीवाहृत् (द्वादशगुणित द्युज्यया भक्त) तदा चरज्या भवेत् ॥३॥ वा घात, अक्षज्याघ्न (अक्षज्यागुणित) लम्बज्याधृतिवधोद्धृत (लम्बज्या द्युज्ययोर्घातभक्त) तदा चरज्या स्यात्। वा घात, कुज्याघ्न (कुज्यागुणित) अपमधृतिघातोद्धृत (क्रान्तिज्याद्युज्ययोर्घातभक्त) तदा सा (चरज्या) स्यादिति ॥३ ४॥

अत्रोपपत्ति।

$\frac{\text{कुज्या त्रि}}{\text{द्यु}}$ = चरज्या. कुज्या त्रि = चज्या द्यु पक्षौ (अक्षज्या) भक्तौ तदा $\frac{\text{कुज्या त्रि}}{\text{अज्या}} = \frac{\text{द्युचज्या}}{\text{अज्या}}$ = अग्रा तत चरज्या द्यु = अज्या अग्रा $\cdot \frac{\text{अज्या अग्रा}}{\text{द्यु}}$ = चज्या, तथा $\frac{\text{पलभा क्राज्या}}{१२}$ = कुज्या नत $\frac{\text{कुज्या त्रि}}{\text{द्यु}}$ = चरज्या $= \frac{\text{पभा क्राज्या त्रि}}{१२\times\text{द्यु}}$ = एतेन तृतीयश्लोक उपपद्यते ॥३॥ अथ $\frac{\text{पलभा क्राज्या त्रि}}{१२\times\text{द्यु}}$ = चरज्या अत क्राज्या त्रि = घात

तदा $\frac{\text{घात पलभा}}{१२\times\text{द्यु}} = \text{चरज्या} = \frac{\text{घात}\times\text{अक्षज्या}}{\text{द्यु}\times\text{ल ज्या}} = \frac{\text{घात}\times\text{कुज्या}}{\text{क्राज्या}\times\text{द्यु}} = \text{चज्या}$ । एतेन चतुर्थश्लोक उपपद्यते ॥३-४॥

अब पुनः चरज्या के आनयनों को कहते हैं।

हि भा—वा अग्रा को अक्षज्या से गुणकर द्युज्या से भाग देने से चरज्या होती है। अथवा क्रान्तिज्या त्रिज्या घात को अक्षभा (पलभा) से गुणकर द्वादश गुणित द्युज्या से भाग देने से चरज्या होती है ॥३॥ वा घात (क्रान्तिज्या और त्रिज्या के घात) को अक्षज्या से गुणकर लम्बज्या और द्युज्या के घात से भाग देने से चरज्या होती है। वा घात को कुज्या से गुणकर क्रान्तिज्या और द्युज्या के घात से भाग देने से चरज्या होती है ॥४॥

उपपत्ति

$\frac{\text{कुज्या त्रि}}{\text{द्यु}} = \text{चरज्या}$ कुज्या त्रि = चज्या द्यु दोनों पक्षों को अक्षज्या से भाग देने से $\frac{\text{कुज्या त्रि}}{\text{अज्या}} = \frac{\text{चज्या द्यु}}{\text{अज्या}} = \text{अग्रा}$ ∴ चरज्या द्यु = अज्या अग्रा दोनों पक्षों में द्युज्या से भाग देने से $\frac{\text{अज्या अग्रा}}{\text{द्यु}} = \text{चरज्या}$ । तथा $\frac{\text{पलभा क्राज्या}}{१२} = \text{कुज्या}$ तब $\frac{\text{कुज्या त्रि}}{\text{द्यु}} = \text{चर-}$ ज्या $= \frac{\text{पलभा क्राज्या त्रि}}{१२\times\text{द्यु}}$ इससे तृतीय श्लोक उपपन्न हुआ ॥३॥

$\frac{\text{पलभा क्राज्या त्रि}}{१२\times\text{द्यु}} = \text{चरज्या}$ यहाँ क्राज्या त्रि = घात तब

$\frac{\text{घात पलभा}}{१२\times\text{द्यु}} = \text{चरज्या} = \frac{\text{घात अक्षज्या}}{\text{लज्या द्यु}} = \frac{\text{घात कुज्या}}{\text{क्राज्या}}$ इससे चतुर्थ श्लोक उपपन्न हुआ ॥ ३-४ ॥

पुनस्तदानयनान्याह ।

'क्रान्त्यक्षज्यासमधृतिघातो द्युज्या समनुवधहृत् ।
स्वधृति क्रान्त्यक्षज्या घातो द्युष्टेष्टनरवधहृद्वा ॥५॥
तद्वृतिपलगुणकृतिहृतिरवलम्बद्युगुणघातभक्ता वा ।
तद्वृतिपलगुण घातोऽक्षाभाघ्नोऽक्षधृतिद्युगुणवधहृद्वा ॥६॥

वि भा.—क्रान्त्यक्षज्या समधृतिघात (क्रान्तिज्याऽक्षज्या तद्धृतिवध.) द्युज्या-समनुवधहृत् (द्युज्या समश कुभक्त) तदा वा चरज्या भवेत् । वा स्वधृतिक्रान्त्य-क्षज्याघात (हृतिक्रान्तिज्याऽक्षज्याघात) द्युज्येष्टनरवधहृत् (द्युज्येष्टश कुघात-भक्त·) तदा चरज्या स्यात् वा तद्वृतिपलगुणकृतिहृति (तद्धृत्यक्षज्यावर्ग नवलम्बद्युगुणघातभक्ता (लम्बज्याद्युज्ययोर्घातभक्त) तदा चरज्या भवेत् । वा

तद्वृति पलगुणघात (तद्धृत्यक्षज्याघात) अक्षाभाघ्न (पलभागुणित) अक्ष-श्रुतिद्युगुणवधहृत् (पलकर्णद्युज्याघातभक्त) तदा चरज्या भवेदिति ॥५-६॥

अत्रोपपत्तय।

अथ पूर्वं सिद्ध यत् $\frac{\text{अग्रा अक्षज्या}}{\text{द्यु}}$ = चरज्या। परन्तु $\frac{\text{तद्धृति क्राज्या}}{\text{समश}}$ = अग्रा ततोऽग्राया उत्थापनेन $\frac{\text{क्राज्या अज्या तद्धृति}}{\text{द्यु. समश}}$ = चरज्या। अत्र $\frac{\text{तद्धृति}}{\text{समश}}$ = $\frac{\text{हृति}}{\text{इश}}$ अत $\frac{\text{क्राज्या अज्या हृति}}{\text{द्यु}\times\text{इश}}$ = चरज्या।

अथ $\frac{\text{क्राज्या. अज्या. तद्धृति}}{\text{द्यु. सश}}$ = चरज्या ∵ $\frac{\text{क्राज्या}}{\text{सश}} = \frac{\text{अज्या}}{\text{लज्या}}$

∴ $\frac{\text{क्राज्या. अज्या तद्धृति}}{\text{द्यु सश}} = \frac{\text{अज्या. अज्या तद्धृति}}{\text{द्यु लज्या}} = \frac{\text{अज्या}^2\text{ तद्धृति}}{\text{द्यु लज्या}}$ = चरज्या

तथा $\frac{\text{क्राज्या}}{\text{सश}} = \frac{\text{पलभा}}{\text{पलकर्ण}}$ ∴ $\frac{\text{क्राज्या अज्या तद्धृति}}{\text{द्यु. सश}} = \frac{\text{पलभा अज्या तद्धृति}}{\text{द्यु पलक}}$ = चज्या,

एतेन सर्वमुपन्नमाचार्योक्तम् ॥५-६॥

पुन चरज्या के आनयन प्रकारो को कहते हैं।

हि भा.—क्रान्तिज्या, अक्षज्या और तद्धृति के घातो को द्युज्या और समशङ्कु के घात से भाग देने से चरज्या होती है। वा हृति क्रान्तिज्या और अक्षज्या के घात को द्युज्या और इष्ट शङ्कु के घात से भाग देने से चरज्या होती है। वा तद्धृति और अक्षज्या वर्ग के घात को लम्बज्या और द्युज्या के घात से भाग देने से चरज्या होती है। अथवा तद्धृति और अक्षज्या घात को पलभा से गुणकर पलकर्ण और द्युज्या के घात से भाग देने से चरज्या होती है ॥५-६॥

उपपत्ति।

पहले के सिद्ध स्वरूप = $\frac{\text{अग्रा. अक्षज्या}}{\text{द्यु}}$ = चरज्या। परन्तु $\frac{\text{तद्धृति. क्राज्या}}{\text{समश}}$ = अग्रा के स्वरूप को उत्थापन देने से $\frac{\text{क्राज्या अज्या तद्धृति}}{\text{द्यु. समश}}$ = चरज्या। तथा $\frac{\text{तद्धृति}}{\text{सश}}$ = $\frac{\text{हृति}}{\text{इश}}$ = $\frac{\text{क्राज्या अज्या. हृति}}{\text{द्यु इश}}$ = चरज्या।

$\frac{\text{क्राज्या. अज्या. तद्धृति}}{\text{द्यु सश}}$ = चरज्या, परन्तु $\frac{\text{क्राज्या}}{\text{सश}} = \frac{\text{अज्या}}{\text{लज्या}}$ अत उत्थापन देने से

तदा $\frac{\text{घात पलभा}}{१२\times\text{द्यु}}$ = चरज्या = $\frac{\text{घात}\times\text{अक्षज्या}}{\text{द्यु}\times\text{लज्या}}$ = $\frac{\text{घात}\times\text{कुज्या}}{\text{क्राज्या}\times\text{द्यु}}$ = चज्या । एतेन चतुर्थश्लोक उपपद्यते ॥३ ४॥

अब पुन चरज्या के आनयनो को कहते हैं।

हि भा —वा अग्रा को अक्षज्या से गुणकर द्युज्या से भाग देने से चरज्या होती है। अथवा क्रान्तिज्या त्रिज्या घात को अक्षभा (पलभा) से गुणकर द्वादश गुणित द्युज्या से भाग देने से चरज्या होती है ॥३॥ वा घात (क्रान्तिज्या और त्रिज्या के घात) को अक्षज्या से गुणकर लम्बज्या और द्युज्या के घात से भाग देने से चरज्या होती है। वा घात को कुज्या से गुणकर क्रान्तिज्या और द्युज्या के घात से भाग देने से चरज्या होती है ॥४॥

उपपत्ति

$\frac{\text{कुज्या त्रि}}{\text{द्यु}}$ = चरज्या कुज्या त्रि = चज्या द्यु दोनो पक्षो को अक्षज्या से भाग देने से $\frac{\text{कुज्या त्रि}}{\text{अज्या}}$ = $\frac{\text{चज्या द्यु}}{\text{अज्या}}$ = अग्रा चरज्या द्यु = अज्या अग्रा दोनो पक्षो में द्युज्या से भाग देने से $\frac{\text{अज्या अग्रा}}{\text{द्यु}}$ = चरज्या। तथा $\frac{\text{पलभा क्राज्या}}{१२}$ = कुज्या तब $\frac{\text{कुज्या त्रि}}{\text{द्यु}}$ = चरज्या = $\frac{\text{पलभा क्राज्या त्रि}}{१२\times\text{द्यु}}$ इससे तृतीय श्लोक उपपन्न हुआ ॥३॥

$\frac{\text{पलभा क्राज्या त्रि}}{१२\times\text{द्यु}}$ = चरज्या यहां क्राज्या त्रि = घात तब

$\frac{\text{घात पलभा}}{१२\times\text{द्यु}}$ = चरज्या = $\frac{\text{घात अक्षज्या}}{\text{लज्या द्यु}}$ = $\frac{\text{घात कुज्या}}{\text{क्राज्या}}$ इससे चतुर्थ श्लोक उपपन्न हुआ ॥ ३-४ ॥

पुनस्तदानयनान्याह ।

क्रान्त्यक्षज्यासमधृतिघातो द्युज्या समनूधपहृत् ।
स्वधृति क्रान्त्यक्षज्या घातो द्युज्येष्टनरवधहृद्वा ॥५॥
तद्वृतिर्पलगुणकृतिहृतिरवलम्बद्युगुणघातभक्ता वा ।
तद्वृतिपलगुण घातोऽक्षाभाघ्नोऽक्षश्रु तिद्युगुणवधहृद्वा ॥६॥

वि भा —क्रान्त्यक्षज्या समधृतिघात (क्रान्तिज्याऽक्षज्या तद्धृतिवध) द्युज्या-समनूधपहृत् (द्युज्या समशङ्कुभक्त) तदा वा चरज्या भवेत्। वा स्वधृतिक्रान्त्य-क्षज्याघात (हृतिक्रान्तिज्याऽक्षज्याघात) द्युज्येष्टनरवधहृत् (द्युज्येष्टशङ्कुघात-भक्त) तदा चरज्या स्यात् वा तद्वृतिपलगुणकृतिहृति (तद्धृत्यक्षज्यावर्ग) र्लम्बद्युगुणघातभक्ता (लम्बज्याद्युज्ययोर्घातभक्त) तदा चरज्या भवेत्। वा

तद्वृति पलगुणघात (तद्घृत्यक्षज्याघात) अक्षाभाघ्न (पलभागुणित) अक्षश्रुतिद्युगुणवधहृत् (पलकर्णद्युज्याघातभक्त) तदा चरज्या भवेदिति ॥५-६॥

अत्रोपपत्तय ।

अथ पूर्व सिद्ध यत् $\frac{\text{अग्रा अक्षज्या}}{\text{द्यु}}$ = चरज्या। परन्तु $\frac{\text{तद्धृति क्राज्या}}{\text{समश}}$ = अग्रा ततोऽग्राया उत्थापनेन $\frac{\text{क्राज्या अज्या तद्धृति}}{\text{द्यु. समश}}$ = चरज्या। अत्र $\frac{\text{तद्धृति}}{\text{समश}}$ = $\frac{\text{हृति}}{\text{इश}}$ अत $\frac{\text{क्राज्या अज्या हृति}}{\text{द्यु}\times\text{इश}}$ = चरज्या।

अथ $\frac{\text{क्राज्या. अज्या तद्धृति}}{\text{द्यु. सश}}$ = चरज्या· $\frac{\text{क्राज्या}}{\text{सश}} = \frac{\text{अज्या}}{\text{लज्या}}$

$\frac{\text{क्राज्या. अज्या तद्धृति}}{\text{द्यु सश}} = \frac{\text{अज्या. अज्या तद्धृति}}{\text{द्यु लज्या}} = \frac{\text{अज्या}^2\text{ तद्धृति}}{\text{द्यु लज्या}}$ = चरज्या

तथा $\frac{\text{क्राज्या}}{\text{सश}} = \frac{\text{पलभा}}{\text{पलकर्ण}}$ ∴ $\frac{\text{क्राज्या अज्या तद्धृति}}{\text{द्यु. सश}} = \frac{\text{पलभा अज्या तद्धृति}}{\text{द्यु पलक}}$ = चज्या,

एतेन सर्वमुपन्नमाचार्योक्तम् ॥५-६॥

पुन चरज्या के आनयन प्रकारों को कहते हैं।

हि भा.—क्रान्तिज्या, अक्षज्या और तद्घृति के घातों को द्युज्या और समशङ्कु के घात से भाग देने से चरज्या होती है। वा हृति क्रान्तिज्या और अक्षज्या के घात को द्युज्या और इष्ट शङ्कु के घात से भाग देने से चरज्या होती है। वा तद्धृति और अक्षज्या वर्ग के घात को लम्बज्या और द्युज्या के घात से भाग देने से चरज्या होती है। अथवा तद्धृति और अक्षज्या घात को पलभा से गुणकर पलकर्ण और द्युज्या के घात से भाग देने से चरज्या होती है ॥५-६॥

उपपत्ति।

पहले से सिद्ध स्वरूप = $\frac{\text{अग्रा. अक्षज्या}}{\text{द्यु}}$ = चरज्या। परन्तु $\frac{\text{तद्धृति. क्राज्या}}{\text{समश}}$ = अग्रा के स्वरूप का उत्थापन देने से $\frac{\text{क्राज्या अज्या तद्धृति}}{\text{द्यु. समश}}$ = चरज्या। तथा $\frac{\text{तद्धृति}}{\text{सश}}$ = $\frac{\text{हृति}}{\text{इश}} = \frac{\text{क्राज्या अज्या हृति}}{\text{द्यु इश}}$ = चरज्या।

$\frac{\text{क्राज्या. अज्या. तद्धृति}}{\text{द्यु सश}}$ = चरज्या, परन्तु $\frac{\text{क्राज्या}}{\text{सश}} = \frac{\text{अज्या}}{\text{लज्या}}$ अत उत्थापन देने से

$\frac{\text{अज्या. अज्या. तद्धृति}}{\text{द्यु. लज्या}} = \frac{\text{अज्या}^2\text{. तद्धृति}}{\text{द्यु. लज्या}} = \text{चरज्या}$ । तथा $\frac{\text{अज्या}}{\text{लज्या}} = \frac{\text{पलभा}}{\text{पलक}}$. इसलिए

$\frac{\text{अज्या. अज्या. तद्धृति}}{\text{द्यु लज्या}} = \frac{\text{पलभा अज्या. तद्धृति}}{\text{द्यु पलक}} = \text{चरज्या}$ ।

इससे आचार्योक्त उपपन्न हुए ॥५-६॥

पुनस्तदानयनमाह ।

कुज्याघ्नो वा घातोऽग्राद्युगुणवधोद्धृतश्चरार्धज्या ।
नृतलहतो वा घातः स्वधृतिद्युज्यावधविभक्तः ॥७॥

वि भा.—वा घात (तद्धृत्यक्षज्याघात) कुज्याघ्न. (कुज्यागुणित.) अग्राद्युगुणवधोद्धृत (अग्राद्युज्याघातभक्त.) तदा चरार्धज्या भवेत् । अथवा घात, नृतलहत (शंकुतलगुणित) स्वधृतिद्युज्यावधविभक्त. (धृतिद्युज्याघातभक्तः) तदा चरज्या स्यादिति ॥७॥

अत्रोपपत्तिः ।

अथ पूर्वानीतचरज्यास्वरूपम् $= \frac{\text{पभा. अज्या तद्धृति}}{\text{द्यु. पलक}}$ अत्र अज्या. तद्धृति $=$ घात तदा $\frac{\text{घात पलभा}}{\text{द्यु पलक}} = \text{चरज्या}$ परन्तु $\frac{\text{पभा}}{\text{पलक}} = \frac{\text{कुज्या}}{\text{अग्रा}} = \frac{\text{शंतल}}{\text{धृति}}$ अतः

$\frac{\text{घात} \times \text{पभा}}{\text{द्यु पलक}} = \frac{\text{घात कुज्या}}{\text{घात अग्रा}} = \frac{\text{घात शंतल}}{\text{द्यु धृति}} = \text{चरज्या}$ अत उपपन्नम् ॥७॥

पुन चरज्या के आनयन कहते हैं ।

हि भा—घात को कुज्या से गुणाकर अग्रा और द्युज्या के घात से भाग देने से चरज्या होती है। वा घात को शंकुतल से गुणकर धृति और द्युज्या के घात से भाग देने से चरज्या होती है ॥७॥

उपपत्ति ।

पहले से चरज्या स्वरूप $= \frac{\text{पभा अज्या तद्धृति}}{\text{द्यु. पलक}}$ यहां अज्या. तद्धृति $=$ घात

तब $\frac{\text{घात. पभा}}{\text{द्यु पलक}} = \text{चरज्या}$ । परन्तु $\frac{\text{पभा}}{\text{पलक}} = \frac{\text{कुज्या}}{\text{अग्रा}} = \frac{\text{शंतल}}{\text{धृति}}$ इसलिए $\frac{\text{घात. पभा}}{\text{द्यु. पक}} =$

$\frac{\text{घात. कुज्या}}{\text{द्यु. अग्रा}} = \frac{\text{घात. शंतल}}{\text{द्यु धृति}} = \text{चज्या}$, इससे उपपन्न हुआ ॥७॥

पुनश्चरज्यानयनान्याह ।

समनृतल पलगुणहतिरिष्टनरद्युगुणघातभक्ता वा ।
त्रिज्याग्रानृतलवधाद्द्युज्याधृतिघातलब्धं वा ॥८॥
अन्त्याग्रानृतलवधः स्वधृतिवर्गहृतोऽथवा चरार्धज्या ।
नृतलापम त्रिगुणहृतिरिष्टनृद्युगुणघातहृच्चरार्धज्या ॥९॥

वि भा —समनृतलपलगुणहृति (समशङ्कु शङ्कुतलाऽक्षज्याघात) इष्टनरद्युगुणघातभक्ता (इष्टशङ्कुद्युज्याघातविभाजिता) वा चरज्या भवेत् । वा त्रिज्या ग्रानृतलवधात् (त्रिज्याग्रा शङ्कुतलघातात्) द्युज्याधृतिघातलब्ध (द्युज्याहृतिघातभक्तफल) चरज्या भवेत् ॥८॥ वा अथवा अन्त्याग्राशङ्कुतलघात) स्वधृतिवर्गहृत (हृतिवर्ग भक्त) चरार्धज्या भवेत् । वा नृतलापम त्रिगुणहृति (शङ्कुतल क्रान्तिज्या त्रिज्याघात.) इष्टनृद्युगुणघातहृत (इष्टशङ्कु द्युज्याघात-भक्ता) तदा चरार्धज्या भवेदिति ॥९॥

अत्रोपपत्तय

अक्षक्षेत्रानुपातेन $\frac{\text{शतल समश}}{\text{इश}}$ = अग्रा । परन्तु $\frac{\text{अग्रा अक्षज्या}}{\text{द्यु}}$ = चरज्या

ततोऽग्राया स्वरूपस्योत्थापनात् $\frac{\text{शतल समश अज्या}}{\text{इश द्यु}}$ = चरज्या ।

तथा $\frac{\text{शतल अग्रा}}{\text{हृति}}$ = कुज्या तत $\frac{\text{कुज्या त्रि}}{\text{द्यु}}$ = चज्या $\frac{\text{शतल अग्रा त्रि}}{\text{हृति द्यु}}$

एतेन अष्टमश्लोक उपपद्यते ॥

तथा $\frac{\text{शतल अग्रा त्रि}}{\text{हृति द्यु}}$ = चरज्या । परन्तु $\frac{\text{त्रि}}{\text{द्यु}} = \frac{\text{अन्त्या}}{\text{हृति}}$ तत उत्थापनात्

$\frac{\text{शतल अग्रा अन्त्या}}{\text{हृति}^2}$ = चरज्या । $\frac{\text{शतल अग्रा त्रि}}{\text{हृति द्यु}}$ = चरज्या, अत्र हरभाज्यौ

क्रान्तिज्यया गुणितावग्रया भक्तौ तदा $\frac{\text{शतल त्रि क्राज्या}}{\frac{\text{हृति द्यु क्राज्या}}{\text{अग्रा}}} = \frac{\text{शतल त्रि क्राज्या}}{\text{इश द्यु}}$

= चज्या, एतेनोपपन्नमाचार्योक्तमिति ॥८-९॥

अब पुन चरज्या के आनयनों को कहते हैं ।

हि भा —समशङ्कु शङ्कुतल और अक्षज्या के घात को इष्टशङ्कु और द्युज्या घात से भाग देने से चरज्या होती है । त्रिज्या, अग्रा और शङ्कुतल के घात में द्युज्या और हृति के घात से भाग देने से वा चरज्या होती है ॥ अथवा अन्त्या, अग्रा और शङ्कुतल के घात में हृति के वर्ग से भाग देने से चरज्या होती है । वा शङ्कुतल, क्रान्तिज्या और त्रिज्या के घात में इष्टशङ्कु और द्युज्या के घात में भाग देने से चरार्धज्या होती है ॥८-९॥

उपपत्ति

$\frac{\text{अग्रा अक्षज्या}}{\text{द्यु}}$ = चज्या, परन्तु $\frac{\text{शतल सश}}{\text{इश}}$ = अग्रा अतोऽग्राया स्वरूपस्योत्थापनात्

$\frac{\text{श तल सश अज्या}}{\text{द्यु इश}}$ = चज्या । तथा $\frac{\text{श तल} \times \text{अग्रा}}{\text{हृति}}$ = कुज्या तब अनुपात से

$\frac{\text{कज्या त्रि}}{\text{द्यु}}$ = चज्या = $\frac{\text{श तल अग्रा त्रि}}{\text{हृति द्यु}}$ इससे आठवा श्लोक उपपन्न हुआ ॥

$\frac{\text{श तल अग्रा त्रि}}{\text{हृति द्यु}}$ = चज्या परन्तु $\frac{\text{त्रि}}{\text{द्यु}} = \frac{\text{अन्त्या}}{\text{हृति}}$ इसलिये उत्थापन देने से

$\frac{\text{श तल अग्रा अन्त्या}}{\text{हृति}^2}$ = चज्या । $\frac{\text{शतल अग्रा त्रि}}{\text{हृति द्यु}}$ = चज्या यहा हर भाज्य को क्रान्तिज्या से

गुण कर अग्रा से भाग देने से $\frac{\text{श तल त्रि क्राज्या}}{\frac{\text{हृति द्यु क्राज्या}}{\text{अग्रा}}} = \frac{\text{श तल त्रि क्राज्या}}{\text{इश द्यु}}$ = चज्या

इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥८ ९॥

इदानी पुनस्तदानयनान्याह ।

नृतलान्त्यापमगुणहृतिरिष्टनृधृतिघातहृच्चार्धज्या ।
धृतिकुगुणपलगुणवधान्नृतलद्युज्यावधाप्त वा ॥१०॥
क्रान्तिपलगुणधृतिवधाद्द्युज्या नरघातहृच्चरार्धज्या ।
त्रिगुणधृतिवधो द्युज्याहृत्प्रोन्नतगुणान्तर वा स्यात् ॥११॥

वि भा —नृतलान्त्यापमगुणहृति (शङ्कुतलान्त्या क्रान्तिज्याघात) इष्टनृधृतिघातहृत् (इष्टशङ्कु हृतिवधहृत्) तदा चरार्धज्या भवेत् । अथवा धृतिकुगुणपलगुणवधात् (हृतिकुज्याऽक्षज्याघातात्) नृतलद्युज्यावधाप्त (शङ्कुतलद्युज्ययोर्घाताद्यल्लब्ध) सा चरार्धज्या भवेत् ॥१०॥ वा क्रान्तिपलगुणधृतिवधात् (क्रान्तिज्याऽक्षज्याहृतिघातात्) द्युज्यानरघातहृत् (द्युज्याशङ्कुवधहृत्) तदा चरार्धज्या भवेत् । अथवा त्रिगुणधृतिवध (त्रिज्याहृतिघात) द्युज्याहृत् (द्युज्याभक्त) यत्फल तस्य प्रोन्नतगुणस्य (सूत्रस्य) अन्तर वा चरज्या भवेदिति ॥१०-११॥

अत्रोपपत्ति

अथ पूर्वानीतचरज्यास्वरूपम् = $\frac{\text{शतल त्रि क्राज्या}}{\text{इश द्यु}}$ पर $\frac{\text{त्रि}}{\text{द्यु}} = \frac{\text{अन्त्या}}{\text{हृति}}$

अत उत्थापनात् $\frac{\text{श तल अन्त्या क्राज्या}}{\text{इश हृति}}$ = चज्या । तथा च

$\frac{\text{कुज्या. त्रि}}{\text{द्यु}}$ = चरज्या । परन्तु $\frac{\text{हृति. अज्या}}{\text{शङ्कुतल}}$ = त्रि अत उत्थापनात्

$\frac{\text{कुज्या. त्रि}}{\text{द्यु}} = \frac{\text{कुज्या. हृति. अज्या}}{\text{द्यु. शंतल}}$ = चरज्या । एतेन दशमश्लोक उपपद्यते ।

अथ पूर्वचरज्यास्वरूम् = $\frac{\text{शंतल. त्रि. क्राज्या}}{\text{इश. द्यु}}$ परं $\frac{\text{शंतल. त्रि}}{\text{हृ}}$ = अज्या

∴ शंतल. त्रि = अज्या. हृति

ततउत्थापनात् $\frac{\text{अज्या. हृति. क्राज्या}}{\text{इश. द्यु}}$ = चरज्या ।

तथा $\frac{\text{त्रि. हृति}}{\text{द्यु}}$ = अन्त्या, अन्त्या—उन्नतज्या = चरज्या

अत उपपन्नमाचार्योक्तम् ॥१०१-१॥

अब पुनः चरज्या के आनयनों को कहते हैं ।

हि. भा.—शङ्कुतल अन्त्या और क्रान्तिज्या के घात में इष्टशङ्कु और हृति के घात से भाग देने से चरज्या होती है । वा हृति कुज्या और अक्षज्या के घात में शङ्कुतल और द्युज्या के घात से भाग देने से चरज्या होती है ॥ वा क्रान्तिज्या अक्षज्या और हृति के घात में द्युज्या और शङ्कु के घात से भाग देने से चरज्या होती है । अथवा त्रिज्या और हृति के घात में द्युज्या से भाग देने से जो फल हो उसका और उन्नत का लज्या के अन्तर चरज्या होती है ॥१०-११॥

उपपत्ति

पूर्वानीत चरज्या के स्वरूप = $\frac{\text{शंतल त्रि क्राज्या}}{\text{इश. द्यु}}$ लेकिन $\frac{\text{त्रि}}{\text{द्यु}} = \frac{\text{अन्त्या}}{\text{हृति}}$

अत उत्थापन देने से $\frac{\text{शंतल. त्रि. अन्त्या क्राज्या}}{\text{इश हृति}}$ = चज्या ।

तथा $\frac{\text{कुज्या त्रि}}{\text{द्यु}}$ = चज्या । परन्तु $\frac{\text{हृति. अज्या}}{\text{शंतल}}$ = त्रि इसमें उत्थापन देने से

$\frac{\text{कुज्या. त्रि}}{\text{द्यु}} = \frac{\text{कुज्या. हृति. अज्या}}{\text{द्यु. शंतल}}$ = चज्या इससे दसवां श्लोक उपपन्न हुआ ॥

पूर्व चरज्या के स्वरूप = $\frac{\text{शंतल. त्रि क्राज्या}}{\text{इश. द्यु}}$ परन्तु $\frac{\text{शंतल. त्रि}}{\text{हृ}}$ = अज्या

∴ शंतल. त्रि = अज्या. हृति इसमें उत्थापन $\frac{\text{अन्त्या हृति क्राज्या}}{\text{इश. द्यु}}$ = चरज्या ।

तथा $\frac{\text{त्रि हृति}}{\text{द्यु}}$ = अन्त्या   अन्त्या — उत्काज्या = चरज्या

इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥१०-११॥

इदानीं पुनरपि चरज्यानयन प्रकारद्वयेनाह ।

पलगुणकृतितद्धृतिघातस्त्रिज्याद्युगुणघातभक्तो वा ।
उद्धृत्यान्त्याक्षगुणकृतिघातस्त्रिज्याकृतिस्वघृतिघातभक्तो वा ॥१२॥

वि भा —पलगुणकृतितद्धृतिघात (अक्षज्यावर्गतद्धृत्योर्घात.) त्रिज्या· द्युगुणघातभक्त (त्रिज्याद्युज्ययोर्घातभक्त) वा चरज्या भवेत् । वा उद्धृत्यान्त्याक्ष-गुणकृतिघात (तद्धृत्यान्त्याक्षज्यावर्गघात) · त्रिज्याकृतिस्वघृतिघातभक्त (त्रिज्यावर्गहृतिघातभक्त) चरज्या स्यादिति ॥१२॥

अत्रोपपत्ति

$\frac{\text{अज्या तद्धृति}}{\text{त्रि}}$ = अग्रा । तथा $\frac{\text{अग्रा अज्या}}{\text{द्यु}}$ = चरज्या, अत्र चरज्यास्वरूपे

अग्राया उत्थापनात् $\frac{\text{अज्या तद्धृति अज्या}}{\text{त्रि द्यु}} = \frac{\text{अज्या}^2 \text{ तद्धृति}}{\text{त्रि द्यु}}$ = चरज्या

अथ $\frac{\text{हृति त्रि}}{\text{द्यु}}$ = अन्त्या $\frac{\text{हृति त्रि}}{\text{अन्त्या}}$ = द्यु, चरज्यास्वरूपे द्युज्याया

उत्थापनात् $\frac{\text{अज्या}^2 \text{ तद्धृति}}{\frac{\text{त्रि हृति त्रि}}{\text{अन्त्या}}} = \frac{\text{अज्या}^2 \text{. तद्धृति अन्त्या}}{\text{त्रि}^2 \text{ हृति}}$ = चरज्या

एतेनोपपन्नमाचार्योक्तम् ॥१२॥

अब पुनः दो प्रकार से चरज्यानयन कहते हैं ।

हि भा —अक्षज्या वर्ग और तद्धृति के घात को त्रिज्या और द्युज्या के घात से भाग देने से चरज्या होती है । अथवा तद्धृति, अन्त्या और अक्षज्यावर्ग के घात में त्रिज्यावर्ग और हृति के घात से भाग देने से चरज्या होती है ॥१२॥

उपपत्ति

$\frac{\text{अग्रा अज्या}}{\text{द्यु}}$ = चरज्या । परन्तु $\frac{\text{अज्या तद्धृति}}{\text{त्रि}}$ = अग्रा इससे चरज्या के स्वरूप में

अग्रा को उत्थापन देने से $\frac{\text{अज्या}^2 \text{ तद्धृति}}{\text{त्रि द्यु}}$ = चरज्या ।

$\frac{\text{हृति त्रि}}{\text{द्यु}}$ = अन्त्या । ∴ $\frac{\text{हृति त्रि}}{\text{अन्त्या}}$ = द्यु इससे पूर्वानीत चरज्या स्वरूप में द्युज्या को

उत्थापन देने से $\frac{\text{अज्या}^2 \text{ तद्धृति}}{\frac{\text{त्रि हृति. त्रि}}{\text{अन्त्या}}} = \frac{\text{अज्या}^2\text{. तद्धृति. अन्त्या}}{\text{त्रि}^2\text{. हृति}}$ = चरज्या इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥१२॥

इदानीमुपसंहारमाह ।

चरपलभाग्रादीनां दिग्मात्रं साधनानि कथितानि ।
निखिलानि न शक्यन्ते पर्जन्यस्येव जलधाराः ॥१३॥

वि. भा.—चरफलभाग्रादीनां साधनानि मया दिग्मात्र कथितान्यर्थात्पूर्वं कुज्यापलभा क्रान्तिज्या चरज्याऽग्रादीना यानि साधनानि मयाऽभिहितानि केवल दिग्दर्शनरूपाणि, निखिलानि (सम्पूर्णानि) कथयितु न शक्यन्ते, पर्जन्यस्य (मेघस्य) जलधारा इवार्थाद्यथा मेघस्य जलधाराया: सीमा नास्ति तथैवोपर्युक्तविषयाणामपि नास्तीति ॥१३॥

इति वटेश्वरसिद्धान्ते त्रिप्रश्नाधिकारे स्वचरार्धज्याप्राणसाधनविधिः
सप्तमोऽध्याय: समाप्त ॥

अब उपसहार कहते है ।

हि भा.—चर, पलभा और अग्रा आदियों के साधन दिग्मात्र अर्थात् दिग्दर्शन रूप मे हमने कहा है उन सब के सम्पूर्ण विषयो को नही कह सकते हैं जैसे मेघ की जलधारा की सीमा नही है उसी तरह उन विषयो की भी सीमा नही है ॥१३॥

इति वटेश्वरसिद्धान्त मे त्रिप्रश्नाधिकार में स्वचरार्धज्या. प्राणसाधनविधि
नामक सप्तम अध्याय समाप्त हुआ ॥

सप्तमोऽध्यायः

अथ लग्नादिविधिः

तत्रादौ निरक्षोदयसाधनमाह ।

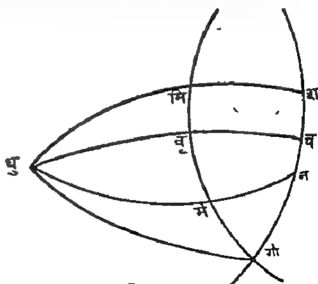
अज वृषमिथुनान्तज्या मिथुनान्तद्युज्यया हता भक्ताः ।
स्वस्वद्युज्ययाप्तधनुरन्तराणि लङ्कोदयप्राणाः ॥१॥

वि भा —अजवृषमिथुनान्तज्या (मेषवृषमिथुनान्तराशिज्या) मिथुनान्तद्युज्यया (परमाल्पद्युज्यया) हता (गुणिता) स्वस्वद्युज्यया भक्ता., आप्तधनुरन्तराणि (प्राप्तफलानां चापान्यधोऽध शुद्धानि) तदा लङ्कोदयप्राणा (लङ्कोदयासव) भवन्तीति ॥१॥

अत्रोपपत्ति ।

राश्यादिबिन्दुर्यदा निरक्षक्षितिजे समागच्छति ततो यावता कालेन राश्यन्तबिन्दुस्तत्क्षितिजे समागच्छति स एव कालस्तद्राशेर्निरक्षोदयासुरर्थाद्राश्याद्युपरि ध्रुवप्रोतवृत्तं कार्यं तथा राश्यन्तोपरि ध्रुवप्रोतवृत्तं कार्यं तयोर्ध्रुवप्रोतवृत्तयोरन्तर्गतनाडीवृत्तीयचापं तद्राशेर्निरक्षोदयासु प्रमाणं तदानयनं क्रियते ।

ध्रुव =ध्रुव । गो=गोलसन्धि =मेषादि । मे=मेषान्तबिन्दु । वृ=वृषान्तबिन्दु । मि=मिथुनान्त गोमे=मेषान्तभुजांश =३०° । गोवृ=वृषान्तभुजांश =६०° । गोमि=मिथुनान्त भुजांश =९० । गोन=मेषोदयमानम् । नव=वृषोदयमानम् । वश =मिथुनोदयमानम् । ध्रुमे =मेषान्तद्युज्याचापम् । ध्रुवृ=वृषान्तद्युज्याचापम् । ध्रुमि=मिथुनान्तद्युज्या=परमाल्पद्युज्याचापम् । <ध्रुगोमे=परमाल्पद्युज्यांश. ।



चित्र न० १३

तदा ध्रुगोमे चापीयत्रिभुजेऽनुपात $\frac{\text{परमाल्पद्यु ज्या} \times \text{एकराशिज्या}}{\text{मेषान्तद्यु ज्या}} =$

$\frac{\text{परमाल्पद्यु ज्या. मेषान्तज्या}}{\text{मेषान्तद्यु ज्या}} =$ मेषनिरक्षोदयज्या । एवं ध्रुगोवृचापीयत्रिभुजे कोणा-

नुपातेन $\frac{\text{परमाल्पद्यु द्विराशिज्या}}{\text{वृषान्तद्यु}} = \frac{\text{परमाल्पद्यु वृषान्तज्या}}{\text{वृषान्तद्यु}} =$ ज्या (मेषोदय+वृषो-

दय) अस्याश्चापम् = मेषोदय+वृषोदय अत्र मेषोदयमानशोधनेन वृषोदयमान भवेत्।

एवमेव $\frac{\text{परमाल्पद्यु ज्या त्रि}}{\text{मिथुनान्तद्यु}} = \frac{\text{परमाल्पद्यु त्रि}}{\text{परमाल्पद्यु}} =$ त्रि = ज्या (मेषोदय+वृषोदय+

मिथुनो) अस्याश्चापम् = मेषोदय+वृषोदय+मिथुनोदय अत्र मेषोदय+वृषोदय शोधनेन मिथुनोदयप्रमाण भवेदेतेनाचार्योक्तमुपपद्यते ॥

भास्कराचार्येणापि सिद्धान्तशिरोमणौ "मेषादिजीवास्त्रिगृहद्युमौर्व्या क्षुण्णा हृता स्वस्वदिनज्ययाप्ता । चापीकृता प्राग्वदधोविशुद्धा मेषादिकानामुदयासवो वा" इत्यनेनेत्थमेव मेषादिराशीना निरक्षोदय (लङ्कोदय) मानानि साधितानि सूर्यसिद्धान्तेऽपि त्रिभद्युकर्णार्धगुणा स्वाहोरात्रार्धभाजिता., इत्यादिनेत्थमेव राशीना निरक्षोदयमानसाधनमभिहितमस्तीति ॥१॥

अब लग्नाविविधि नामक अध्याय आरम्भ किया जाता है उसमे पहले राशियो के निरक्षोदय मान के साधन कहते हैं।

हि भा —मेषान्तज्या, वृषान्तज्या और मिथुनान्तज्या को मिथुनान्तद्युज्या (परमाल्पद्युज्या) से गुणकर अपनी अपनी द्युज्या से भाग देकर जो फल हो उनके चाप को यथोऽध शुद्ध करने से उन राशियो के लङ्कोदयासु मान होते हैं ॥१॥

उपपत्ति

ऊपर दिये चित्र को देखिये। ध्रु व = ध्रु व । गो = गोलसन्धि = मेषादि । मे = मेषान्त बिन्दु । वृ = वृषान्त बिन्दु । मि = मिथुनान्तबिन्दु। गोम = मेषान्तभुजाश = ३०°, गोवृ = वृषान्तभुजाश = ६०°, गोमि = मिथुनान्तभुजाश = ९०, गोन = मेषनिरक्षोदयमानच = वृषनिरक्षोदयमान, चदा = मिथुननिरक्षोदयमान । ध्रु मे = मेषान्तद्युज्याचाप ध्रु वृ = वृषान्तद्युज्याचाप ध्रु मि = मिथुनान्तद्युज्याचाप = परमाल्पद्युज्याचाप < ध्रु गोमे = परमाल्पद्युज्याश । ध्रु गोमे

चापीय त्रिभुज मे कोणानुपात से $\frac{\text{परमाल्पद्युज्या एकराशिज्या}}{\text{मेषान्तद्यु}} = \frac{\text{परमाल्पद्यु मेषान्तज्या}}{\text{मेषान्तद्यु}} =$

मेषनिरक्षोदयज्या । इसके चाप करने से मेषनिरक्षोदय मान होता है। इसी तरह ध्रु गोवृ-

चापीय त्रिभुज मे कोणानुपात से $\frac{\text{परमाल्पद्यु द्विराशिज्या}}{\text{वृषान्तद्यु}} = \frac{\text{परमाल्पद्यु वृषान्तज्या}}{\text{वृषान्तद्यु}} =$ ज्या

(मेषोदय+वृषोदय) इसके चाप करने से मेषोदय+वृषोदय इसमे मेषोदय घटाने से वृषोदय

होता है । एवं ध्रुवप्रोतमिचापीय त्रिभुज में कोणानुपात से $\frac{\text{परमाल्पद्यु त्रि}}{\text{परमाल्पद्यु}}$ = त्रि = ज्या

(मेषोदय + वृषोदय + मिथुनोदय) चाप करने से मेषोदय + वृषोदय + मिथुनोदय इसमें मेषोदय + वृषोदय घटाने से मिथुनोदयमान होता है इससे आचार्योक्त पद्य उपपन्न होता है॥ सिद्धान्तशिरोमणि में भास्कराचार्य भी 'मवादिजीवास्त्रिगृह द्युमौर्व्या क्षुण्णा हृता स्वस्वदिनज्ययाप्ता' इत्यादि से इसी तरह मेषादि राशियो के निरक्षोदयमान साधन किया है । सूर्यसिद्धांत में भी 'त्रिभद्युकर्णार्धगुणा' स्वहोरात्रार्धभाजिता' इत्यादि से इसी तरह राशियो के निरक्षोदयमान के साधन किये हैं ॥१॥

इदानीं पुना राशीनां निरक्षोदयसाधनमाह ।

क्रान्तिज्या राशिज्या कृतिविवरपदैर्हता त्रिभज्यायाः ।
स्वद्युज्ययाऽऽप्तधनुषो विवराण्यथवा निरक्षराश्युदयाः ॥२॥

वि भा —त्रिभज्या (त्रिज्या) क्रान्तिज्या राशिज्या कृतिविवरपदैः (स्वस्वक्रान्तिज्याराशिभुजाज्योर्वर्गान्तरमूलैः) हता (गुणिता) स्वद्युज्ययाऽऽप्ता (स्वस्वद्युज्यया भक्ता) आप्तधनुषो विवराणि (आप्तफलचापानामन्तराणि) अथवा निरक्षराश्युदयाः (लङ्कोदयाः) भवन्तीति ॥२॥

अत्रोपपत्तिः ।

अथ मेषान्तोपरिगतध्रुवप्रोतवृत्ते मेषान्तान्नाडीवृत्तं यावन्मेषान्तक्रान्तिर्भुज एको भुजः । गोलसन्धितो मेषान्तं यावन्मेषान्तभुजांशाः कर्णो द्वितीयो भुजः । नाडीवृत्ते मेषान्तविषुवांशाः (मेषनिरक्षोदयाः) कोटिस्तृतीयो भुज इति भुजकर्णकोटिभिरुत्पन्नस्य चापीयजात्यत्रिभुजस्य ज्याक्षेत्रेनवन्धन क्रियते । भूकेन्द्राद्गोलसन्धिगता रेखा कार्या तदुपरि मेषान्ताल्लम्बं कार्यं सा मेषान्तज्या (मेषान्तभुजज्या) । तथा भूकेन्द्राद् ध्रुवप्रोतवृत्तनाडीवृत्तयोर्योगगता रेखा कार्या, तदुपरि मेषान्ताल्लम्बं कार्यं सा मेषान्तक्रान्तिज्या, एतयोः (मेषान्तज्या—मेषान्तक्रान्तिज्ययोर्मूलगता रेखा कार्या सा नाडीवृत्तधरातलगता, क्रान्तिज्याया नाडीवृत्तधरातलोपरिलम्बत्वात्तद्रेखोपर्यपि लम्बत्वमतो मेषान्तज्या—मेषान्तक्रान्तिज्या तन्मूलगतरेखाभिर्यज्जात्यत्रिभुजं जातं तदेव पूर्वोक्तचापीयजात्यत्रिभुजस्य ज्याक्षेत्रं भवितुमर्हति । परमत्र त्रिभुजे मेषान्तज्या—मेषान्तक्रान्तिज्ये मेषान्तभुजांशतत्क्रान्त्यंशयोर्ज्यारूपे, तन्मूलगता रेखा विषुवांशचापस्य ज्या नास्ति, विषुवांशज्या तु गोलसन्धिगतरेखोपरि मेषान्तगतध्रुवप्रोतवृत्त नाडीवृत्तयोः सम्पाताल्लम्बरूपा रेखाऽस्ति । क्रान्तिज्यामूलाद् भकेन्द्रं यावद्रेखा द्युज्याऽस्ति । मेषान्तज्या—तत्क्रान्तिज्ययोर्मूलगता रेखा गोलसन्धिगतरेखोपरिलम्बरूपाऽस्ति । मेषान्तान्नाडीवृत्तधरातलोपरि क्रान्तिज्यायालम्बत्वसिद्धकरणनियमेन, एतावता सजातीय त्रिभुजद्वय जायते भूकेन्द्राद्ध्रुवप्रोतवृत्तनाडीवृत्तसम्पातगता रेखा त्रिज्यारूपा एको भुजः । ध्रुवप्रोतवृत्तनाडीवृत्तसम्पाताद्गोलसन्धिगतरेखोपरि लम्बो विषुवांशज्या भुजो

द्वितीयो भुज.। विपुवांशज्या मूलाद् भूकेन्द्रं यावद्विपुवांशकोटिज्या कोटिस्तृतीयो भुजः, इति कर्णभुजकोटिभिरुत्पन्नमेकं त्रिभुजम्। तथा क्रान्तिज्यामूलाद् भकेन्द्रं यावद्द्युज्या कर्ण एको भुजः। मेपान्तज्या—तत्क्रान्तिज्ययोर्मूलगता रेखा भुजो द्वितीयो भुजः। मेपान्तज्यामूलाद् भूकेन्द्रं यावत्कोटिस्तृतीयो भुज । इति कर्णभुजकोटिभिरुत्पन्न द्वितीयं त्रिभुजम्। एतयोः साजात्यादनुपात. क्रियते मेपान्यद्युज्यया यदि बद्धरेखा लभ्यते तदा त्रिज्यया किं समागच्छति मेपान्तविपुवांशज्या (मेपनिरक्षोदयज्या) $= \frac{\text{बद्धरेखा. त्रि}}{\text{मेपान्तद्यु}} =$

$\frac{\text{त्रि}}{\text{मेद्यु}} \sqrt{\text{मेपान्तज्या}^2 - \text{मेपान्तक्राज्या}^2}$ अस्याश्चाप तदा मेपनिरक्षोदयमानम्। एव

$\frac{\text{त्रि}}{\text{वृपान्तद्यु}} \sqrt{\text{वृपान्तज्या}^2 - \text{वृपान्तक्राज्या}^2} = \text{वृपान्तविपुवांशज्या} = \text{ज्या}$ (मेपोदय+वृपोदय) चापकरणेन मेपोदय+वृपोदय अत्र मेपोदयशोधनेन वृपोदयमानं भवेत्। एवमेव $\frac{\text{त्रि}}{\text{मिथुनान्तद्यु}} \sqrt{\text{मिथुनान्तज्या}^2 - \text{मिथुनान्तक्राज्या}^2} = \frac{\text{त्रि}}{\text{पद्यु}}$

$\sqrt{\text{त्रि}^2 - \text{परमक्राज्या}^2} = \frac{\text{त्रि. पद्यु}}{\text{पद्यु}} = \text{त्रि} = \text{ज्या}$ (मेपोदय+वृउ+मिउ) चापकरणेन मेपोदय+वृपोदय+मिथुनोदय अत्र मेपोदय+वृपोदय शोधनेन मिथुनोदयमान भवेदिति ॥ पूर्वप्रदर्शितचापीयजात्यत्रिभुजस्य ज्याक्षेत्रबन्धनेन सिद्ध यत्कस्यापि चापीयजात्यक्षेत्रस्य ज्याक्षेत्रे कर्णचापस्य ज्या सर्वदा वास्तवा भवति भुजकोटिचापयोरेकस्यापि ज्या वास्तवा भवति तदितरस्य चापस्य ज्या वास्तवा न भवति किन्तु यस्य चापस्य ज्या वास्तवा तच्चापकोटि व्यासार्धवृत्ते परिणता भवति यथोपरि प्रदर्शितचापीयजात्यत्रिभुजस्य ज्याक्षेत्रे मेपान्तज्या कर्णचापज्या वास्तवैवास्ति मेपान्तक्रान्तिचापस्यापि ज्या वास्तवास्ति किन्तु मेपान्तविपुवांशचापज्या वास्तवा नास्ति किन्तु मेपान्तक्रान्तिकोटिव्यासार्धवृत्ते (द्युज्यावृत्ते) परिणताऽस्ति तेन सा त्रिज्या वृत्ते परिणमनेन वास्तवविपुवांशज्या (निरक्षोदयज्या) भवतीति ॥२॥

अत्र पुन राशियो क निरक्षोदयमानानयन कहते हैं।

हि. भा.— त्रिज्या को अपनी अपनी राशि भुजज्या और क्रान्तिज्या के वर्गान्तरमूल से गुणकर अपनी अपनी द्युज्या से भाग देकर जो फल हो उनके चापो के अधोऽध शुद्ध करने मे निरक्षदेशीय राश्युदय मान होते हैं ॥२॥

उपपत्ति

मेपान्तो परिगत ध्रुव प्रोतवृत्त मे मेपान्त से नाडीवृत्त तक मेपान्त क्रान्ति भुज एक भुज मेपान्त भुजांश कर्ण द्वितीय भुज। नाडी वृत्त मे मेपान्त विपुवांश (मेपनिरक्षोदय)

कोटि तृतीय भुज, इन भुज कर्ण और कोटि से उत्पन्न चापीय जात्य त्रिभुज में ज्याक्षेत्र करते हैं। भूकेन्द्र से गोल सन्धिगत रेखा करना उसके ऊपर मेषान्त से जो लम्बरेखा होती है वह मेषान्तज्या है। भूकेन्द्र से ध्रुव प्रोत वृत नाडीवृत के सम्पात से रेखा लाना उसके ऊपर मेषान्त से जो लम्ब रेखा होती है वह मेषान्त क्रान्तिज्या है। इन दोनो (मेषान्तज्या और मेषान्तक्रान्तिज्या) की मूलगत रेखा (बद्धरेखा) नाडीवृत्त धरातलगत है। क्रान्तिज्या नाडीवृत्त धरातल के ऊपर लम्ब है इसलिये इस बद्ध रेखा के ऊपर भी क्रान्तिज्या लम्ब होगी अत मेषान्तज्या—मेषान्त क्रान्तिज्या और बद्ध रेखाओं से जो जात्य त्रिभुज हुआ है वही पूर्वोक्त चापीय जात्य त्रिभुज का ज्याक्षेत्र हुआ। लेकिन इस त्रिभुज में मेषान्तज्या और मेषान्तक्रान्तिज्या क्रमश मेषान्तभुजाशज्या और मेषान्त क्रान्तिचाप की ज्या है पर बद्ध रेखा विषुवांश चाप की ज्या नहीं है, क्योकि गोलसन्धिगत रेखा के ऊपर नाडीवृत्त ध्रुव प्रोत वृत्त के सम्पात से जो लम्बरेखा होगी वही विषुवांशज्या है। क्रान्तिज्या के मूल से भूकेन्द्र पर्यन्त रेखा द्युज्या है। बद्धरेखा गोल सन्धिगत रेखा के ऊपर लम्ब है मेषान्त से नाडी वृत्त धरातल के ऊपर क्रान्तिज्या के लम्बत्वकरण नियम से, अब दो त्रिभुज बनते हैं, भूकेन्द्र से नाडीवृत्त और ध्रुव प्रोत वृत्त सम्पातगत त्रिज्या रेखा कर्ण भुज। विषुवांशज्या भुज द्वितीयभुज, विषुवांशज्या मूल से भूकेन्द्र तक विषुवांश कोटिज्या कोटितृतीय भुज इन कर्णभुज और कोटि से एक त्रिभुज बना। तथा क्रान्तिज्या मूल से भूकेन्द्र तक द्युज्या कर्ण एक भुज, बद्ध रेखा भुज द्वितीयभुज। मेषान्तज्या मूल से भूकेन्द्र तक कोटि तृतीय भुज, इन कर्णभुज और कोटि से उत्पन्न द्वितीय त्रिभुज हुआ। इन दोनों त्रिभुजों के सजातीय होने के कारण अनुपात करते हैं यदि मेषान्त द्युज्या में बद्धरेखा पाते हैं तो त्रिज्या में क्या इस अनुपात से मेषान्त विषुवांशज्या (मेषनिरक्षोदयज्या) आती है।

$$\frac{\text{बद्धरेखा त्रि}}{\text{मेषान्तद्यु}} = \frac{\text{त्रि}}{\text{मेद्यु}} \sqrt{\text{मेषान्तज्या}^2 - \text{मेषान्तक्राज्या}^2}$$ इसके चाप करने से मेषनिरक्षोदयमान होता है। एवं $\frac{\text{त्रि}}{\text{वृषान्तद्यु}} \sqrt{\text{वृषान्तज्या}^2 - \text{वृषान्तक्राज्या}^2}$ = वृषान्त निरक्षोदय ज्या (मेषान्त+वृषोदय) चाप करने से मेषोदय+वृषोदय इसमे मेषोदय को घटाने से वृषोदय मान होता है। इसी तरह $\frac{\text{त्रि}}{\text{मिथुनान्तद्यु}} \sqrt{\text{मिथुनान्तज्या}^2 - \text{मिथुनक्राज्या}^2} = \frac{\text{त्रि}}{\text{पद्यु}}$

$$\sqrt{\text{त्रि}^2 - \text{परमक्राज्या}^2} = \frac{\text{त्रि पद्यु}}{\text{पद्यु}} = \text{त्रि} = \text{ज्या (मेउ+वृउ+मिउ)}$$ चाप करने से मेउ+वृउ+मिउ इसमें मेउ+वृउ घटाने से मिथुनोदयमान होता है पूर्व प्रदर्शित चापीय जात्य त्रिभुज के ज्या क्षेत्र देखने से सिद्ध होता है कि किसी चापीय जात्यक्षेत्र के ज्याक्षेत्र में कर्ण चाप की ज्या सर्वदा वास्तविक होती है। भुज और कोटिचाप में एक की ज्या वास्तव होती है इतरचाप की ज्या वास्तव नहीं होती है किन्तु जिस चाप की ज्या वास्तविक होती है उस चाप के कोटि व्यासार्ध वृत्त में परिणत होती है, जैसे पूर्व प्रदर्शित चापीय जात्य त्रिभुज के ज्याक्षेत्र में मेषान्तज्या कर्णचापज्या वास्तव है, मेषान्तक्रान्ति चाप की ज्या भी वास्तव

है लेकिन मेषान्त विषुवांशचापज्या वास्तव नहीं है किन्तु मेषान्तक्रान्ति कोटिव्यासार्ध वृत्त मे (द्युज्यावृत्त मे) परिणत है इसलिये उसको त्रिज्यावृत्त मे परिणमन करने से वास्तव विषुवांशज्या (निरक्षोदयज्या) होती है ॥२॥

पुनस्तदानयनमाह ।

मेषादिक्रान्तिज्या ज्यायोगहतात्तदन्तरान्मूलम् ।
त्रिज्यागुणं द्युजीवाऽवाप्तचापान्तराण्यथवा ॥३॥
वाजादिक्रान्तिज्या ज्यायोगहतात्तदन्तरान्निघ्नात् ।
त्रिज्याकृत्या द्युज्याकृत्याप्तपदधनुरन्तराण्यथवा ॥४॥

वि. भा.—अथवा मेषान्तक्रान्तिज्यायोगहतात्तदन्तरात् (मेषादिराशिक्रान्तिज्यातद्भुजज्ययोर्योगगुणितात्तदन्तरात् (मेषादिराशिक्रान्तिज्यातद्भुजज्ययोरन्तरात्) मूल त्रिज्यागुण (त्रिज्यागुणित) द्युजीवाऽवाप्त चापान्तराणि (द्युज्याविभक्त सद्यानि फलानि तच्चापान्तराणि) मेषादिराशीना निरक्षोदयमानानि भवन्तीति ॥३॥

अथवा मेषादिक्रान्तिज्या ज्यायोगहतात्तदन्तरात् (मेषादिराशिक्रान्तिज्या तद्भुजज्ययोर्योगगुणितात्तदन्तरात्) त्रिज्याकृत्या (त्रिज्यावर्गेण) निघ्नात् (गुणितात्) द्युज्याकृत्याप्तपदधनुरन्तराणि (द्युज्यावर्गभक्ताद्यानि फलानि तच्चापान्तराणि, मेषादिराशीना निरक्षोदयमानानि भवन्तीति ॥४॥

अत्रोपपत्ति ।

पूर्वं द्वितीयश्लोकोपपत्तिसिद्धस्वरूपम् $\frac{\text{त्रि}}{\text{मेद्यु}} \sqrt{\text{मेषान्तज्या}^2 - \text{मेक्राज्या}^2}$

$= \text{मेनिरक्षोदयज्या} = \frac{\text{त्रि}}{\text{मेद्यु}} \sqrt{(\text{मेषान्तज्या} + \text{मेक्राज्या})(\text{मेषान्तज्या} - \text{मेक्राज्या})}$

एव $\frac{\text{त्रि}}{\text{वृद्यु}} \sqrt{(\text{वृषान्तज्या} + \text{वृक्राज्या})(\text{वृषान्तज्या} - \text{वृक्राज्या})} = \text{ज्या}\ (\text{मेनिउ} +$ वृनिउ) एवमेव $\frac{\text{त्रि}}{\text{मिद्यु}} \sqrt{(\text{मिथुनान्तज्या} + \text{पक्राज्या})(\text{मिथुनान्तज्या} - \text{पक्राज्या})}$

$= \frac{\text{त्रि}}{\text{पद्यु}} \sqrt{(\text{त्रि} + \text{पक्राज्या})(\text{त्रि} - \text{पक्राज्या})} = \text{ज्या}\ (\text{मेनिउ} + \text{वृनिउ} + \text{मिनिउ})$

एतेषा चापान्यधोऽध. शुद्धानि तदा मेषादिराशीनां निरक्षोदयमानानि भवन्तीति ॥३॥

अथवा $\frac{\text{त्रि}^2}{\text{मेद्यु}^2} (\text{मेषान्तज्या}^2 - \text{मेक्राज्या}^2) = \text{मेनिरक्षोदयज्या}^2$ मूलेन

$\sqrt{\frac{त्रि^2}{मेद्यु^2}}$ (मेषान्तज्या^{2}—मेक्राज्या^{2} वर्गान्तरस्य योगान्तरघातसमत्वात्

$\sqrt{\frac{त्रि^2}{मेद्यु^2}}$ (मेषान्तज्या+मेक्राज्या) (मेषान्तज्या—मेक्राज्या)

=मेषनिरक्षोदयज्या

एवं $\sqrt{\frac{त्रि^2}{वृद्यु^2}}$ (वृषान्तज्या+वृक्राज्या) (वृषान्तज्या—वक्राज्या)

=ज्या (मेषनिरक्षोदय+वृनिरक्षोदय)

एवमेव $\sqrt{\frac{त्रि^2}{पद्यु}}$ (त्रि+परमक्राज्या) (त्रि—पक्राज्या)=

ज्या (मेनिरक्षोदय+वृनिरक्षोदय+मिनिरक्षोदय)

एषां चापान्यधोऽध शुद्धानि तदा मेषादिराशीनां निरक्षोदयमानानि भवन्तीति ॥४॥

हि भा—अथवा मेषादि राशियों की क्रान्तिज्या और भुजज्या के योग से उन्ही के अन्तर को गुणकर मूल लेना उनको त्रिज्या से गुणकर अपनी अपनी द्युज्या से भाग देने से जो फल आवे उनके चाप को अधोऽध शुद्ध करने से मेषादि राशियों के निरक्षोदय मान होते हैं ॥३॥

अथवा मेषादि राशियों की भुजज्या और क्रान्तिज्या के योगान्तर घात को त्रिज्या वर्ग से गुणकर अपने अपने द्युज्या वर्ग से भाग देकर जो फल हो उनके मूलों के चापों को अधोऽध शुद्ध करने से उनके निरक्षोदयमान होते हैं ॥४॥

उपपत्ति ।

पहले के दूसरे श्लोक की उपपत्ति में सिद्ध स्वरूप $\frac{त्रि}{मेद्यु}\sqrt{मेषान्तज्या^2 — मक्राज्या^2}$ =

$\frac{त्रि}{मेद्यु}\sqrt{(मेषान्तज्या + मक्राज्या)(मेषान्तज्या — मेक्राज्या)}$ = मनिरक्षोदयज्या एवं

$\frac{त्रि}{वृद्यु}\sqrt{(वृषान्तज्या + वृक्राज्या)(वृषान्तज्या — वृक्राज्या)}$ = ज्या (मनिउ + वृनिउ) इसी तरह

$\frac{त्रि}{पद्यु}\sqrt{(मिथुनान्तज्या + परक्राज्या)(मिथुनान्तज्या — परक्राज्या)}$

$= \frac{त्रि}{पद्यु}\sqrt{(त्रि + पक्राज्या)(त्रि — पक्राज्या)}$ = ज्या (मनिउ+वृनिउ+मिनिउ)

इन सब के चाप कर अधोऽध शुद्ध करने से मेषादि राशित्रय के निरक्षोदय मान होते हैं ॥३॥

अथव

$\frac{\text{त्रि}^2}{\text{मेद्यु}^2}$ (मेषान्तज्या^{2}—मेक्राज्या^{2}) = मेनिरक्षोदयज्या^{2} वर्गान्तर के योगान्तर घात के बराबर होने से

$\frac{\text{त्रि}^2}{\text{मेद्यु}^2}$ (मेषान्तज्या + मेक्राज्या) (मेषान्तज्या — मेक्राज्या) = मेनिरक्षोदज्या^{2}

मूल लेने से

$\sqrt{\frac{\text{त्रि}^2}{\text{मेद्यु}^2} (\text{मेषान्तज्या} + \text{मेक्राज्या}) (\text{मेषान्तज्या} - \text{मेक्राज्या})}$ = मेनिरक्षोदयज्या इसी तरह

$\sqrt{\frac{\text{त्रि}^2}{\text{वृद्यु}^2} (\text{वृषान्तज्या} + \text{वृक्राज्या}) (\text{वृषान्तज्या} - \text{वृक्राज्या})}$ =

ज्या (मेनिरक्षोदय + वृनिरक्षोदय) इसी तरह

$\sqrt{\frac{\text{त्रि}^2}{\text{पद्यु}^2} (\text{त्रि} + \text{पक्राज्या}) (\text{त्रि} - \text{पक्राज्या})}$ =

ज्या (मेनिरक्षोदय + वृनिरक्षोदय + मिनिरक्षोदय)

इन सब के चाप करने से और अन्तर शुद्ध करने से मेषादि राशित्रय के निरक्षोदय मान होते हैं ॥४॥

अथ निष्पन्नास्तानमूनाह ।

ते चाङ्कागाङ्कभुवो १६७९ऽङ्गगोऽगशशिनः १७९६ शराग्निगोचन्द्राः १९३५ ।
व्यस्तास्तथा चरदलोनयुता निजधाम्नि षट्सु चोत्क्रमतः ॥५॥
निजसप्तम उदयासुभिरस्तं राशिः समेति नियमेन ।
लङ्कोदयासुभिः स्वैर्याम्योत्तरवृत्तमायाति ॥६॥

वि भा.—ते च पूर्वोक्तप्रकारेण समागता निरक्षोदयासव एतावन्तः श्लोकोक्ता भवन्ति । शेषं स्पष्टमिति ॥५-६॥

अत्रोपपत्तिः ।

स्वदेशनिरक्षदेशार्कोदयान्तरं चरम् । मेषादिस्त स्वदेशे निरक्षे च समकालमुदेति परं मेषान्तविन्दुः पूर्वं स्वक्षितिजे ततः पश्चादुन्मण्डले लगति । तेन चरखण्डोनो निरक्षमेषोदयः स्वदेशीयमेषोदयो भवेत् । एवं वृषमिथुनोदययोरपि भवति । किन्तु कर्कादौ चरखण्डानामपचीयमानत्वाद्धनं भवति । तुलादावुन्मण्डलस्य स्वक्षितिजादधः स्थितत्वाच्चरखण्डानि धनानि भवन्ति । मकरादौ हि चरखण्डानामपचीयमानत्वादृणानि भवन्तीति सर्वं बुद्धिमता गोलोपरि ज्ञेयमिति ॥

हि. भा.—पूर्वोक्त प्रकार से मेषादि राशियों के जो निरक्षोदयासु प्रमाण आये हैं वे श्लोक कथित के अनुसार हैं । शेष बात स्पष्ट है ॥५-६॥

उपपत्ति

स्वदेशार्कोदय और निरक्षदशार्कोदय के अन्तर चर है। मेषादि अपने देश और निरक्षदेश म एक ही समय म उदित होती है। लेकिन मेषान्त बिन्दु पहले अपने क्षितिज म उदित होता है उसके बाद उन्मण्डल म इसलिये निरक्षदेशीय मेषोदय म चरखण्डा घटाने से स्वदेशीय मेषोदयमान होता है। इसी तरह वृष और मिथुन का भी समझना चाहिये।

लेकिन कर्कादि मे चरखण्डा के अपचीयमानत्व के कारण धन होते हैं। तुलादियां म अपने क्षितिज से उन्मण्डल के नीचा होने के कारण चरखण्ड धन होते हैं। मकरादियो मे चरखण्ड के अपचीयमानत्व के कारण ऋण होते हैं। ये सब बातें गोल क ऊपर द्रष्टव्य समझनी चाहिए ॥५ ६॥

इदानी पूर्वानीतै स्वदेशीयराश्युदयमानैर्लग्नानयनमाह।

द्युगताद्दिवा विलग्नं निशि षड्भयुताद्रवे साध्यम्।
भोग्यात्तात्कालिकरविभवनागतकलागुणिता ॥७॥
स्वोदयकाला विभक्ता राशिकलाभि फलाऽसवोऽमुष्य ।
प्रोह्य ष्टे भ्यो भोग्य क्षिपेद्रवौ तदनु यावन्त ॥ ८॥
शुद्धयन्त्युदया राशीन् क्षिपेद्रवौ तावतोऽवशेष च।
खगुणघ्नमशुद्धोदयहृद्भागादौ क्षिपेद्विलग्न प्राक् ॥ ९॥

वि भा —दिवा (दिवसे) द्युगतात् (दिनगतकालात्) लग्नानयन कार्यं, निशि (रात्री) षड्भयुताद्रवे (भाधयुक्तरवित) लग्न साध्यम्। भोग्यात् (यस्मिन्निष्टकाले लग्नसाधनमभीष्ट तस्मिन् काले तात्कालिक रविं प्रसाध्य रव्याक्रान्त राशेर्भोग्यांशात्) लग्न साध्यते। स्वोदयकाला (रव्याक्रान्तराशेरुदयासव) रवि भवनागतकला गुणिता (रव्याक्रान्तिराशेर्भोग्यकलाभिर्गुणिता राशिकलाभि (अष्टादशशतकलाभि) विभक्ता फलाऽसव (फल रव्याक्रान्तराशेर्भोग्यासवो भवन्ति) तेऽसव इष्टभ्योऽमुष्य (इष्टकालेभ्य) प्रोह्य भोग्य (भोग्यांशमान) रवौ क्षिपेत् (योजयेत्) तदनु (पश्चात्) यावन्तो राश्युदया शुद्धयन्ति ते शोध्या तावतो राशीन् रवौ क्षिपेत् (यावन्तो राश्युदया शुद्धास्तेषा राश्युदयाना सख्या पूर्वं रवौ क्षिपेत्) अवशेष खगुणघ्न (त्रिंशता गुणित) अशुद्धोदयहृत् (अशुद्धराश्युदय-प्रमाणेन भक्त) फलमशात्मक रवौ भागादौ (अ शादौ) क्षिपेत्तदा प्राक् (प्रथम) विलग्न (प्रथमलग्नं) भवदिति ॥७-९॥

अत्रोपपत्ति ।

अथोदयक्षितिजक्रान्तिवृत्तयो सम्पातबिन्दुर्लग्नमुच्यते तज्ज्ञानार्थमिष्टकाल तात्कालिकरव्यो प्रयोजन भवत्यर्थाद्वर्त्तमानरवीष्टकालयोर्ज्ञानेन तज्ज्ञान भवितु र्हति। रविभोग्यासु लग्नभुक्तासु रविलग्नान्तरराशोदयासुना योगरूपमेवेष्टकाल-ानम्। अत्रैष्टवाने यदि वर्त्तमानरवेर्भोग्यासुप्रमाण शोध्यते तदालग्नभुक्तासु रवि-

लग्नान्तरालोदयप्रमाणयोर्योगोऽवशिष्यतेऽतो वर्त्तमानरवे (तात्कालिकरवे) भोग्यासु प्रमाणमानीयते तत्रानुपातो यदि राशिकलाभिस्तात्कालिकरव्याक्रान्त-राश्युदयाऽसवो लभ्यन्ते तदा तात्कालिकरविभोग्यकलाभि किमित्यनुपातेन समागच्छति तात्कालिकरविभोग्यासवस्तत्स्वरूपम् $= \frac{\text{राश्युदयासु} \times \text{रविभोग्यकला}}{\text{राशिकला}}$

एव समागत रविभोग्यासु प्रमाणमिष्टकाले शोध्य तदा लग्नभुक्तासु रविलग्नान्तरालोदयासु प्रमाणयोर्योगोऽवशिष्यते । रवावपि भोग्याशान् क्षिप्त्वा वर्त्तमान-राशि पूरयेत् । तथाऽधुनाऽऽनीतलग्नभुक्तासु रविलग्नान्तरालोदयासु योगे रवि-लग्नान्तरालोदयासव शोध्या (शेषादर्थादिष्टकाले रविभोग्यासु शोधने य शेषस्त-स्मादुत्तरान् राश्युदयाश्च शोधयेत्, यावन्तो राश्युदया शोधितास्तेषा शोधिताना राश्युदयाना सख्या पूर्वरवौ क्षिपेत् । ततोऽनुपातो यद्यशुद्धोदयासुभिस्त्रिशदशा लभ्यन्ते तदा शेषासुभि किमित्यनुपातेन यदशात्मक फल तद्रवौ देय तदा राश्यादिक लग्न भवेदिति परमितिलग्नानयन न समीचीन "अेनाग्रा स्थूलत्वात्स्थूला उदया भवन्ति राशीनामि' त्याद्युक्त राश्युदयमानस्याप्यसमीचीनत्वात्तत्सम्बन्धेन साधि-ताऽन्यविषयस्याप्यसमीचीनत्वमेवाऽन एतस्याऽऽचार्यस्याऽन्येषामपि प्राचीना-चार्याणा यल्लग्नानयन तन्न समीचीनम् ॥ सिद्धान्तशिरोमणेष्टिप्पण्या "या सायनार्कस्य भुजज्यका सेत्या" त्यादिना लग्नानयन सशोधकेन कृतमस्ति तत्र त्रुटिमवलोक्य म म पण्डित सुधाकरद्विवेदिना तदानयन कृत, तदानयन-प्रकारश्च—

> आकाशमध्यविषुवांशवशात्प्रकुर्याद्यष्टि दिवाकरमत्र मकोटिभागान् ।
> यष्टि जिनांशजगुणं विषुवांशकं च स्वाक्षाढ्य हीनदिनभागमित क्रमेण ॥
> सौम्यानुदग्गोलगते प्रकल्प्य साध्यो भुजांशोऽथ भुजांशरव्यो ।
> युतेर्मित सायनलग्नमान भवेत्स्फुट गोलविदा बुधानाम् ॥

सिद्धान्तशिरोमणेष्टिप्पण्या चन्द्रदेवशास्त्रिणोऽपि लग्नानयनमस्ति परन्तु तत्सर्वापेक्षया सुधाकरद्विवेदिनामेव तदानयन समीचीनमस्ति । एतद्विषये विशे-षज्ञानार्थं मत्कृत लग्नानयन विलोक्य तत्र पूर्वाचार्यकृतलग्नानयनक्रियाऽपेक्षया क्रिया लाघवमुत गौरवमित्यादि तदानयन (लग्नानयन)-चमत्कृतिरपि द्रष्टव्या विवेचकैरिति ॥७६॥

हि.भा—दिन मे दिनगतकाल मे और रात्रि म छ राशि जोडकर लग्नानयन करना चाहिये । वर्त्तमान रवि की भोग्यकला को वर्त्तमान रवि राशि के स्वोदयासु से गुणकर राशिकला से भाग देने से रवि की भोग्यासु होती है, इस भोग्यासु प्रमाण को इष्टासु (इष्ट-काल) मे घटा कर भोग्यांश को रवि म जोड देना चाहिये । इसके बाद शेष मे (इष्टकाल में रवि भोग्यासु घटाने से जो शेष रहा है) जितने राश्युदयमान घटे घटा देना, जिस राशि का उदयमान नहीं घटेगा उसका नाम 'अशुद्धोदय' है, जितने राश्युदयमान घटे हैं उन राश्युदयों की सख्या को पूर्व रवि में जोड देना, शेष 'इष्टासु मे रविभोग्यासु और राश्युदय मानो को

घटाने से जो शेष रहा है) को तीस से गुणकर अयुद्धोदय से भाग देने जो भागादि (अंशादि) फल होता है उसको रवि में जोड़ने से प्रथम लग्न होता है ॥७-६॥

उपपत्ति।

उदयक्षितिज और क्रान्तिवृत्त के सम्पात विन्दु को लग्न कहते हैं, इसका साधन इष्टकाल और रवि के ज्ञान से किया जाता है, रविभोग्यासु, लग्नभुक्तासु और रवि, लग्न के बीच में जो राशियां हैं उनके उदयमानासु इन सब के योग रूप ही इष्टकाल है, इस इष्टकाल में यदि रवि भोग्यासु प्रमाण घटा दिया जाय तो लग्नभुक्तासु और रवि लग्नान्तरालोदय का योग रहेगा इसलिए रवि भुक्तासु प्रमाण अनुपात से लाते हैं। यदि राशिकला में वर्त्तमान रवि राश्युदयासु पाते हैं तो वर्त्तमान रवि भोग्यकला में क्या इस अनुपात से वर्त्तमान रविभोग्यासु प्रमाण आता है $\frac{\text{वर्त्तमानरवि राश्युदयासु} \times \text{रविभोग्यक}}{\text{राशिकला}} = $ वर्त्तमान रवि भोग्यासु। इसको इष्टासु में घटाने से जो शेष रहता है उसका नाम शेष रखते हैं। रवि में भोग्यांश को भी जोड़कर वर्त्तमान राशि को पूरा करना। आतीत शेष में वर्त्तमान रवि राशि के बाद जिन राशियों के उदयमान घटे उन्हें घटा देना, शेष का नाम शेषासु रखना जिस राशि का उदयमान नहीं घटे उसका नाम 'अशुद्धोदय' रखना, जितनी राशियों के उदयमान घटे हैं उनकी संख्या पूर्व रवि में जोड़ देना, तब अनुपात करते हैं यदि अशुद्धोदयासु में तीस अंश पाते हैं तो शेषासु में क्या इस अनुपात से जो अंशात्मक फल आवे उसको रवि में जोड़ देने से राश्यादिक लग्न प्रमाण होता है॥ लेकिन यह लग्नानयन ठीक नहीं है "क्षेत्राणां स्थूलत्वात्स्थूला उदया भवन्ति राशीनाम्" इत्यादि वचन प्रमाण से राशियों के उदयमानों की असमीनता के कारण उसके सम्बन्ध से जो अन्य विषय साधित होंगे वे भी असमीचीन होंगे इसलिए इन आचार्य का तथा अन्य प्राचीनाचार्यों का लग्नानयन समीचीन नहीं है, अन्य प्राचीनाचार्यों ने भी उदयमान ही के सम्बन्ध से लग्नानयन किया है।

सिद्धान्तशिरोमणि की टिप्पणी में "या सायनार्कस्य भुजज्यका सा" इत्यादि से लग्नानयन संशोधन किया हुआ है उसमें कुछ त्रुटि देखकर म म पण्डित सुधाकर द्विवेदी ने उसका आनयन किया है, उनका आनयन प्रकार अधोलिखित है—

"आकाशमध्य विषुवांशवशात्प्रकुर्यादिष्टं दिवाकरमपक्रमकोटिभागान्।" इत्यादि

सिद्धान्तशिरोमणि के टिप्पणी में चन्द्रदेव शास्त्री का भी लग्नानयन है परन्तु उन सब की अपेक्षा द्विवेदी जी का लग्नानयन समीचीन है। लग्नानयन में विशेष बातों के ज्ञान के लिए हमारा 'लग्नानयन' देखना चाहिये, पूर्वकृत लग्नानयन में जो क्रियायें हैं उनकी अपेक्षा हमारे लग्नानयन में क्रियासूक्ष्मता या क्रियागौरव, चमत्कार इत्यादि विवेचकों को देखना चाहिए॥ ७ ६॥

इदानीं लग्नादिष्टकालानयनमाह।

लग्नार्कयोर्गतैष्या अंशा निजभोदया हता भक्ताः।
खगुणैस्तदन्तरालोदयमिश्रा इष्टाऽसवोऽह्यसकृत्॥१०॥

वि भा —लग्नार्कयो (लग्नरव्यो) गतैष्या अशा (भुक्ताशा भाग्याशाश्च) निजभोदयाहता (रव्याक्रान्तराशिस्वदेशोदयगुणिता) खगुणै (त्रिशद्भि) भक्ता स्तदा लग्नस्य भुक्तासवो रवेर्भोग्यासवो भवन्ति, एतयोर्योगमध्ये, अन्तरालोदयमिश्रा (रविलग्नयोर्मध्ये यावन्तोराशयस्तदुदया योज्या) तदाऽसकृदिष्टासवो भवन्तीति॥१०॥

अत्रोपपत्ति

यस्मिन् राशौ रविर्वर्तते तस्य ये भोग्याशा (भुक्ताशाग्रतो राश्यन्त यावत्) तेभ्योऽनुपातेन यदि त्रिशदशै रव्याक्रान्तराशे स्वदेशोदयासवा लभ्यन्ते तदा रविभोग्याशै के" अनेन समागच्छन्ति रविभोग्याशा । एव लग्नभुक्ताशवशतोऽप्यनुपातेन लग्नभुक्तासवो भवन्ति तथा रवेरग्रतो लग्नात्पूर्व रविलग्नयोर्मध्ये येऽसवइति नयाणा (रविभोग्यासु लग्नभुक्तासु रविलग्नान्तरालोदयासूना) योगे ऽलेऽभीष्टकाल स्यात् ॥ अथ कालस्तात्कालिकरविशादसकृत्साधित सूक्ष्मोऽन्यथा स्थूल भास्कराचार्येणापि "अर्कस्य भोग्यस्तनुभुक्तयुक्तो मध्योदयाढ्य समयो विलग्नादि त्यादिनाऽन्यै श्रीपतिप्रभृतिभिरप्याचार्यैरेतदेव कथ्यते नाऽत्र मनवैपम्यमिति सुज्ञै र्ज्ञेयमिति ॥ १० ॥

हि भा —लग्न के गताश (भुक्ताश) रवि के भोग्याश को स्वदेशराश्युदय स गुणा कर तीस से भाग देने से लग्न की भुक्तासु और रवि की भोग्यासु होती है इन दोनो के योग म रवि और लग्न के मध्य मे जितनी राशिया है उनके स्वदेशोदयमान जोडने से असकृत्कम से इष्टकाल होता है । १० ॥

उपपत्ति

जिन राशि म रवि हैं उनके जो भोग्याश (भुक्ताशाग्र से राश्यन्त तक) है तत्सम्ब धी असु प्रमाण लाते हैं जैसे तीस भ श मे रव्याक्रान्त राशि के स्वदेशोदयासु पाते हैं तो रवि के भोग्याश म क्या इस अनुपात से रवि की भोग्यासु आती है । लग्नभुक्ताश से भी लग्न भुक्तासु ल आकर दोनो के योग म रवि और लग्न के मध्य म जितनी राशिया हैं उनके उदयमान जोडने मे इष्टकाल होता है । यह इष्टकाल तात्कालिक रविवश साधन करन म असकृत्कम द्वारा सूक्ष्म होता है ॥ भास्कराचार्य भी 'अर्कस्य भोग्यस्तनुभुक्तयुत ' इत्यादि से तथा श्रीपति आदि सब आचार्य इसी बात को कहते हैं इसम किसी का मतवैपम्य नहीं है ॥ १० ॥

प्रकारान्तरेण लग्नानयनमाह ।

उत्क्रमतो मेषादीन् क्रमेण जूकादिकान् प्रकल्प्य तत ।
रात्रिद्युव्यत्ययत षड्भयुत प्राग्विलग्न वा ॥ ११ ॥

वि भा —मेषादीन् उत्क्रमत (व्यस्तात्) जूकादिकान् (तुलादीन्) क्रमत प्रकल्प्य रात्रिद्युव्यत्ययत (रात्रिदिनयोर्विलासात्) यल्लग्न तत् षड्भयुत (षड्राशिसहित) वा प्राग्विलग्न (प्रथमलग्न) भवेदिति ॥ ११॥

अत्रोपपत्तिरत्राप्यतिसुगमा ॥११॥

हि भा —वा, मेषादि राशियों को विलोम तरह से और तुलादि राशियों को क्रम से मानकर रात्रि और दिन में व्यत्यय (उल्टा) मानकर जो लग्न होता है उसमें छः राशि जोड़ने से प्रथम लग्न होता है ॥ ११ ॥

इसकी उपपत्ति व्याख्या ही से स्पष्ट है ॥११॥

इदानीं यदेष्टासूनामल्पत्वात्तेभ्यो भोग्यासवो न शुद्धास्तदा कथं लग्नसाधनमित्याह ।

भोग्यात्कालादूनः काल खगुणाहतो निजोदयहृत् ।
अंशादिफलं सूर्ये संयोज्य प्राग्विलग्नं स्यात् ॥ १२ ॥
षड्भयुगुदयरविरस्तविलग्नं भवति निश्चयेन ॥ १२½ ॥

वि भा —काल (प्राणिभूत इष्टकाल) भोग्यात्कालात् (प्राणिभूतादभुक्तकालात्) यदि ऊन (न्यून) तदा प्राणिभूतेष्टकालः खगुणाहत (त्रिंशद्गुणित) निजोदयहृत् (रव्याक्रान्तराश्युदयेन भक्त) लब्धमंशादिक फलं सूर्ये संयोज्य (रवौ योज्य) तदा प्राग्विलग्न (प्रथमलग्न) स्यात् । षड्भयुगुदयरवि (सषड्भोदयकालीनरवि) अस्तविलग्न (सप्तमलग्न) भवतीति ॥१२-१२½॥

अत्रोपपत्ति ।

यदि भोग्यासुभि इष्टकालासु प्रमाणमल्प स्यात्तदा रव्याक्रान्तराश्युदयासुभिर्यदि त्रिंशदंशास्तदेष्टकालासुभि के इत्यनुपातेन समागतमंशादिफल रवौ योज्य तदा लग्न भवति । तदोदयकालीनरविरेव षड्राशियुतस्तदाऽस्तलग्न भवेदिति बालैरपि बुध्यते भास्करेणापि "भोग्यतोऽल्पेष्टकालात्खरामाहतादित्यादिना" श्रीपतिनाऽपि "यदीष्टकालान्न पलप्रभुक्तमि"त्यादिनैतदेव कथ्यतेऽन्यैरपि सर्वैरेवमेव कथ्यते ॥ १२-१२½ ॥

हि भा —यदि भोग्यकालासु से इष्टकालासु अल्प हो तब इष्टकालासु को तीस से गुणा कर रव्याक्रान्तराशि के स्वदेशोदय से भाग देने से जो अंशादि फल हो उसको रवि में जोड़ने से लग्न होता है । उदयकालिक रवि में छ राशि जोड़ने से अस्त लग्न (सप्तमलग्न) होता है ॥ १२-१२½ ॥

उपपत्ति ।

यदि भोग्यासु प्रमाण से इष्टकालासु प्रमाण अल्प हो तो अनुपात करते हैं यदि रवि जिस राशि में है उस राशि के स्वदेशोदयासु में तीस अंश पाते हैं तो इष्टकालासु में क्या इस अनुपात से जो अंशादिक फल आता है उसको रवि में जोड़ने से लग्न होता है । उदयकालीन रवि में छ राशि जोड़ने से अस्तलग्न (सप्तमलग्न) होता है ॥ भास्कराचार्य भी "भोग्यतोऽल्पेष्टकालात्खरामाहतात्" इत्यादि से तथा श्रीपति भी "यदीष्टकालान्न पलप्रभुक्त" इत्यादि से इसी बात को कहते हैं अन्य सब आचार्य भी एक स्वर से इसी बात को कहते हैं ॥१२-१२½॥

इदानीमिष्टासुभ्य भुक्तासुना शुद्धौ लग्नसाधनमुक्त्वा तस्मादिष्टकालानयनमाह ।

एकस्मिन् यदि भवने विलग्नसूर्यौ तदा तयोर्विवरे ।
भागाः स्वोदयगुणिता वियदग्निविभाजिताः कालः ॥१३॥

वि. भा—यदि विलग्नसूर्यौ (साधितलग्नरवी) एकस्मिन् भवने (एकराशौ) भवतस्तदा तयोर्विवरे (लग्नरव्योरन्तराले) ये भाग (अंशा) ते स्वोदयगुणिता (रव्याक्रान्तराशिस्वदेशोदयगुणिता) वियदग्निविभाजिता (त्रिशद्भक्ता) तदा काल (इष्टकालः) स्यात् । लग्नरवी यदैकराशिगतौ भवतस्तदाऽभुक्त त्यक्त्वा लग्नस्य भुक्ताशैर्लग्न साध्य रव्याक्रान्तराशेरुपरितनराशिषु लग्नसाधनेऽभुक्तस्य प्रयोजन भवति । तेन लग्नरव्योरन्तरकालसाधनार्थं लग्नरव्योरन्तरे येंऽशादयस्ते एव गृह्यन्त इति ॥ १३ ॥

अत्रोपपत्ति ।

यदि लग्नसूर्यावेकस्मिन्नेव राशौ भवतस्तदाऽनुपातेन "त्रिंशदंशैर्यदि रव्याक्रान्तराश्युदयमान लभ्यते तदा रविलग्नान्तरांशं किमिति" अनेन यदस्वात्मक फल समागच्छेत्स एवेष्टकाल स्यात् ॥ भास्कराचार्येण "यद्यैकभे लग्नरवी तदा तद्भागान्तरघ्नोदयखाग्निभाग" इत्यादिना श्रीपतिना च "सूर्योदयावेकगृहे यदास्तस्तदन्तराशानुदयेने" त्यादिनाऽन्यैरप्याचार्यैः स्वस्वसिद्धान्ते एतादृश एव प्रकारोऽभिहित इति विज्ञेयमिति ॥ १३ ॥

हि भा—यदि लग्न और सूर्य एक राशि मे हो तो दोनो के अन्तरांश को रवि जिस राशि मे हो उसके स्वदेशोदय मान से गुणकर तीस से भाग देने से इष्टकाल होता है । यदि लग्न और रवि एक राशि मे हो तो अभुक्त को छोडकर भुक्तांश मे लग्न साधन करना चाहिये । रवि जिस राशि मे है उससे आगे की राशियो मे अभुक्त का प्रयोजन होता है । इसलिए लग्न और रवि के अन्तर सम्बन्धी कालज्ञान के लिये लग्न और रवि के अन्तर मे जो अंश है वही ग्रहण किये जाते हैं ॥ १३ ॥

उपपत्ति ।

यदि लग्न और रवि एक राशि मे है तो "तीस अंश मे यदि रव्याक्रान्त राशि के स्वदेशोदय मान पाते है तो रवि और लग्न के अन्तरांश मे क्या" इस अनुपात से जो असुात्मक फल आता है वही इष्टकाल है ॥ भास्कराचार्य "यदैकभे लग्नरवी तदा तद्भागान्तरघ्नोदयखाग्निभाग" इत्यादि से और श्रीपति भी सूर्योदयावेकगृहे यदास्तस्तदन्तराशानुदयेन" इत्यादि से अन्य आचार्य भी अपने अपने सिद्धान्त मे इसी तरह के प्रकार लिखते हैं ॥१३ ।

इदानीं रवितो लग्नेऽल्पे सतीष्टकालानयनमाह ।

रजनीशेषाल्लग्ने रव्यूने साधितः कालः ।
द्युनिशाच्छोध्य कालस्तत्कालरविवशादसकृत् ॥ १४ ॥

वि. भा.—लग्ने रव्यूने (रवितोऽल्पे) तदा साधितः कालः "एकस्मिन् यदि भवने विलग्नसूर्यावि" त्यादिनाऽऽनीतः कालो रजनीशेषात् (रात्रिशेषवशात्क्षितिजतोऽघो भवति) तस्मात्सकालो द्युनिशात् (अहोरात्रात्) शोध्यस्तदा तत्कालरविवशादसकृत्कालो भवेदिति ॥१४॥

अत्रोपपत्तिः ।

अथ तात्कालिकरविकेन्द्रोपरिगताहोरात्रवृत्तयो क्षितिजवृत्तयो सम्पातात्तात्कालिकरविं यावत्सावनात्मक इष्ट काल । तथोदयकाले यत्र रविः स चौदयिक स प्रवहवेगादिष्टकाले यत्र गतस्तदुपरिगताहोरात्रवृत्तक्षितिजवृत्तयो सम्पातादुदयरविं यावन्नाक्षत्रात्मक इष्टकाल. । लग्नसाधने सावनात्मक इष्टकालो गृह्यते परन्तु राश्युदयास्तु नक्षत्रात्मकास्तर्हीष्टासुभ्यो राश्युदया. कथं शोध्यन्ते (द्वयोर्विजातीयत्वात्) भास्करेणैतदर्थमेव कथ्यते "लग्नार्थमिष्टघटिका यदि सावनास्तास्तात्कालिकार्ककरणेन भवेयुरार्क्ष्यं । आर्क्ष्योदया हि महशोऽत्र इहापनेयास्तात्कालिकत्वमथ न क्रियते यदाऽर्क्ष्यं" लग्नात्कालसाधनेऽसकृत्कर्मणः कारणमपि तात्कालिकरविग्रहणमेवेति ॥ १४ ॥

हि भा यदि रवि से लग्न अल्प हो तब "एकस्मिन् यदि भवने" इत्यादि स जो इष्टकाल आया है वह रात्रि शेषवश से क्षितिज से नीचा होता है इसलिए उस इष्टकाल को अहोरात्र मे घटा देना चाहिए तब तात्कालिक रवि वश करके असकृत्प्रकारेण इष्टकाल होता है ॥ १४ ॥

उपपत्ति

तात्कालिक रवि केन्द्रोपरिगत अहोरात्रवृत्त और क्षितिज वृत्त के सम्पात से तात्कालिक रविकेन्द्र तक सावनात्मक इष्टकाल है । उदयकाल मे जहा रवि रहते हैं वह औदयिक रवि है । वह प्रवहवेग से इष्टकाल मे जहा गये हैं उनके ऊपर जो अहोरात्रवृत्त होगा वह क्षितिजवृत्त मे जहा पर लगेगा वहा (उदयरव्युपरिगत अहोरात्रवृत्त और क्षितिजवृत्त के सम्पात) से उदय रवि तक नाक्षत्रात्मक इष्टकाल है । लग्न साधन मे सावन इष्टकाल का ग्रहण करते हैं । लेकिन राशियो का उदयमान नाक्षत्रात्मक है तब इष्टासु मे राश्युदयो को क्यो घटाते है (दोनो मे विजातीयत्व होने के कारण योगान्तर नही होना चाहिए) इसी को भास्कराचार्य कहते हैं "लग्नार्थमिष्टघटिका" इत्यादि लग्न पर से इष्टकाल ज्ञान के लिए असकृत्कर्म के कारण भी तात्कालिक रवि का ग्रहण करना ही है ॥ १४ ॥

इदानीं स्वदेशोदयैर्विना लग्नरव्योरन्तरासुमानानयनमाह ।

भानोर्लङ्कोदयवत्प्राणाः साध्याश्चरासवश्चापि ।
तद्वियुतिर्मकरादौ कर्क्यादौ तु युतिः प्राणाः ॥१५॥
स्पष्टा स्युर्मेषादौ कर्क्यादौ तु भार्धतः शुद्धा ।
जूकादौ भार्धयुता मकरादौ शोधिताश्चक्रात् ॥१६॥
लग्नाद्येवं प्राणाः सूर्याकलाभिर्हतास्त्वयाल्पाश्चेत् ।
ख खषट्द्वयेन युक्ता विनोदयैर्लग्नकालः स्यात् ॥१७॥

सं भा—मानो (सूर्यस्य) लङ्कोदयवत् (लङ्कोदयानयनरीतिवत्) प्राणा (उदयासव) साध्या, चरासवश्च साध्या, मकरादौ (मकरादिषट्के रवौ) तद्वियुति (तयोरानीतयोरुदयासुचरास्वो) वियुति (विश्लेष) कर्क्यादौ (कर्क्यादिषट्के-रवौ) युति (तयो समानीतयोरस्वोर्योग) तदा या असुकला भवेयुस्ता एव मेषादौ (मेषादिराशित्रये प्रथमपदे रवौ स्थिते) स्पष्टा रविभुक्तिकला भवन्ति कर्क्यादौ (कर्क्यादिराशित्रये रवौ द्वितीयपदे) ता कला भार्धत शुद्धा (राशि-षट्केभ्यो विशोधिता) जूकादौ (तुलादिराशित्रये तृतीयपदे रवौ) ता कला भार्ध-युता (षड्राशिसहिता) मकरादौ (मकरादिराशित्रये चतुर्थपदे रवौ) ता कला-श्चक्राच्छोधिताः (चक्रकलाभ्यो हीना) तदा शेषा स्पष्टा रविभुक्तकला भवन्ति। लग्नाच्चैवम्। अत्रायमर्थ —लग्नादपि लङ्कोदयसाधनवदसव साध्या, लग्नादेव चरार्धासवश्च साध्या। एतयोरस्वोरन्तरयोगौ मकरकर्क्यादिषु लग्नवशादन्तर मेषादिपदविकल्पनाद्रविवदेव, प्राणा (लग्नभुक्तकला) भवन्ति। एवमुपरिलिखित-नियमेन रविलग्नयो पृथक् पृथक् स्पष्टा भुक्त कला भवन्ति। तत सूर्यकलाभिरानी-ताभि, ऊनिता (रहिता) लग्नकला कार्या। चेद्यल्पा (सूर्यकलातोलग्नकला न्यूना) तदा खखषट्द्वयेन (२१६००) भुक्तालग्नकला कार्यास्तत्र रविकला ऊनिता-स्तदा शेषा रविलग्नयोरन्तरासवो यावद्भिरसुभि सूर्योदयमारभ्य तल्लग्नम्। यदि रविकलाभ्यो लग्न भुक्ता कला शोध्यन्ते तदा रव्युद 'द्विलोमेन कालसिद्धि-रिति ॥१५-१७॥

अत्रोपपत्ति।

लङ्कोदयसाधनावसरे राश्यन्तेषु राश्युदयमानानि साधितानि, अत्र राशिम-ध्येष्वपि साध्यानि। लग्नरव्योश्चरार्धानयनोपपत्ति पूर्वविधिनैव बोध्या। शेषोप-पत्तिर्भाष्यावलोकनेनैव स्पष्टेति ॥१५-१७॥

हि भा—लङ्कोदय साधन रीति के अनुसार सूर्य के उदयासुप्रमाण साधन करना तथा चरासु भी साधन करना, मकरादि छ राशियो मे रवि के रहने से उन दोनो (रव्यु-दयासु और चरासु) के अन्तर करने से तथा कर्क्यादि छ राशियों मे रवि के रहने से रव्युदयासु और चरासु के योग करने से जो असुकला होती है वही मेषादि तीन राशि (प्रथम पद) मे रवि के रहने म स्पष्ट रवि भुक्तकला होती है। कर्क्यादि तीन राशि (द्वितीय पद) मे रवि के रहने से उन कलाओ को छ राशि मे घटाने से, तुलादि तीन राशि (तृतीय पद) म रवि के रहने से उन कलाओ को छ राशियो मे जोडने से मकरादि तीन राशि (चौथे पद) मे उन कलाओ को चक्र म घटाने मे स्पष्ट रविभुक्त कला होती है। लग्न से इसी तरह लग्नभुक्त कला होती है। जैसे लङ्कोदय साधन की तरह लग्नोदयासु साधन करना, तथा पूर्ववत् ही लग्न के चरार्धासु साधन करना, मकरादि और कर्क्यादि मे लग्न के रहने मे उन दोनो असुओ के अन्तर और योग करना चाहिए। इसके बाद मेषादि पद क्रम से रवि की तरह क्रिया करने मे लग्न की भुक्त कला होती है। इस तरह रवि और लग्न की स्पष्टभुक्त कला प्रमाण आ गया। उसके बाद लग्न भुक्त कला में रवि भुक्त कला

को घटाना, यदि रवि भुक्त कला से लग्न भुक्त कला स्वल्प हो तो लग्न मे २१६०० कला जोडकर सूर्य भुक्त कला को उसमे घटाने से रवि और लग्न के अन्तरासु प्रमाण होता है। यदि सूर्य कला मे लग्न कला घटे तो रव्युदय मे विलोम रीति से कालसिद्धि होती है ॥१५-१७॥

उपपत्ति।

राशियो के लङ्कोदय साधन मे राश्यन्त मे राशियो के उदयमान साधन किये गये है। यहा राशियो के मध्य मे भी साधन करना चाहिए। रवि और लग्न की चरार्धनियमोपपत्ति पूर्ववत् साधन करना। शेष बातें भाष्य देखने से स्पष्ट है ॥१५-१७॥

प्रकारान्तरेण तदानयनमाह।

उदयाः षष्टिविभक्ता कालांशाश्चरासवश्चापि।
चरखण्डलवैर्हीनयुक्तास्ते पूर्ववत्कार्याः ॥ १८ ॥
तैः कालांशैः पूर्ववदेवं ष्टकालांशकेभ्यश्च।
लग्नं लग्नादपि घटिकाः स्यु स्वोदयैर्विना वाऽपि ॥ १९ ॥

वि भा.—उदया (लङ्कोदयासव) षष्टिविभक्ता (षष्ट्या भक्ता) तदा कालांशा भवन्ति। चरार्धासवोऽपि षष्टिभिर्भाज्यास्तदा चरार्धांशा: स्युः। चरखण्डलवै (चरार्धांशै) ते कालांशा पूर्ववत् हीनयुक्ताः कार्या (चरर्धांशा, क्रमस्थापितेभ्यो मेषादिकलांशेभ्य क्रमशस्त्याज्या। उत्क्रमस्थापितेषूत्क्रमतो युक्ता तुलादिक्रमस्थापितेषु क्रमचरार्धांशा शोध्या। मकरादिषूत्क्रमस्थापितेषु उत्क्रमतो युक्तास्तदा स्वदेशोदया भवन्ति। तै कालांशै (सस्कृतलङ्कोदयकालांशमानै.), इष्टकालांशकेभ्यश्च (इष्टासव षष्ट्या भक्ता इष्टकालांशास्तेभ्य) लग्नानयनप्रकारेण- "भोग्यात्तात्कालिकरविभवनागतकला इत्यादि" अनेन लग्नं साध्य तदेवाभीष्टलग्नमिति लग्नात्कालानयनमपि पूर्वयुक्त्या कार्यं नाऽत्र कोऽपि विशेष इति ॥१८-१९॥ एतदुपपत्तिर्भाष्येनैव स्पष्टेति ॥१८-१९॥

इति वटेश्वरसिद्धान्ते त्रिप्रश्नाधिकारे लग्नादिविधिरष्टमोऽध्यायः।

हि भा—लङ्कोदयासु को साठ से भाग देने से कालांश होते हैं, चरार्धासु को भी साठ से भाग देने से चरार्धांश होते हैं। क्रमस्थापित मेषादि कालांशो मे चरार्धांश को घटा देना चाहिये। उत्क्रमस्थापित उक्त कालांशो मे उत्क्रम से जोड देना चाहिए। तुलादि क्रम स्थापित कालांशो मे क्रम से चरार्धांश को घटाना तथा मकरादि उत्क्रम स्थापित कालांशो मे उत्क्रम से जोडना तब स्वदेशोदय होते हैं। उन सस्कृत लङ्कोदय कालांशमानो से तथा इष्टकालांश (इष्टासु को साठ से भाग देने से इष्टकालांश होते हैं) से लग्नानयन प्रकार "भोग्यात्तात्कालिक रविभवनागतकला" इत्यादि से लग्न साधन करना वही इष्टलग्न होता है। इस पर से पूर्व युक्ति से कालानयन भी करना चाहिए इसमे कोई विशेषता नही है ॥१८-१९॥

इसकी उपपत्ति भाष्य ही से स्पष्ट है ॥१८-१९॥

इति वटेश्वरसिद्धान्त मे त्रिप्रश्नाधिकार मे लग्नादिविधि नामक
अष्टम अध्याय समाप्त हुआ।

नवमोऽध्यायः

अथ क्षुदलभादिविधि

तत्रादौ दिनार्धशङ्क्वर्थमाह।

क्रान्त्यक्षान्तरयोग समान्यककुभोर्नताशका खाक्षाः।
तज्ज्या दृग्ज्या दोर्ज्या नतांशकोनास्त्रिगृहभागा ॥१॥
उन्नतभागा. कोटिस्तज्ज्या दोर्ज्यान्तर तथा शङ्कुः।
उन्नतजीवा त्रिज्या कर्णो यष्टिस्तथा नलकः ॥२॥

नि भा—समान्यककुभो (तुल्यभिन्नदिशो) क्रान्त्यक्षान्तरयोगोऽर्था-देकदिक्कयो क्रान्त्यक्षांशयोरन्तर भिन्नदिक्कयोस्तयोर्योगस्तदा नतांशका स्युस्ते च खाक्षा (एतत्सज्ञका) तज्ज्या (नतांशज्या) दृग्ज्या सा च दोर्ज्या (भुजज्या) भवति, नतांशकोनास्त्रिगृहभागा (नतांशहीना नवति) उन्नतभागा (उन्नतांशा) तज्ज्या दोर्ज्यान्तर (भिन्नभुजज्या) सा कोटि। तथा उन्नतजीवा (उन्नांशज्या) शङ्कु, त्रिज्याकर्णं, तथा यष्टिर्नलक (यष्टेरेव नाम नलक)ज्ञातव्य इति ॥१-२॥

अत्रोपपत्ति

मध्यान्हकाले याम्योत्तरवृत्ते यदि रवि खस्वस्तिकनिरक्षखस्वस्तिक-योरन्तरेऽस्ति तदा रवितो निरक्षखस्वस्तिक यावत्क्रान्ति। खस्वस्तिकनिरक्षख-स्वस्तिकयोरन्तरेऽक्षांशा। अत्रानयोरन्तरकरणेन रवित खस्वस्तिक यावन्नतांश-सज्ञक। यदि रविर्निरक्षखस्वस्तिकाद्दक्षिणदिशि तदा तत्र क्रान्त्यक्षांशयोर्योग-करणेन नतांशा भवन्ति। एतज्ज्या (नतांशज्या) दृग्ज्या, नतांशोननवतिर्नतांश-कोटिरुन्नतांशास्तज्ज्याशङ्कु कोटिसज्ञक। त्रिज्याकर्ण इति दृग्ज्याशङ्कु त्रिज्याभिर्भुजकोटिकर्णैरेक छायाक्षेत्र समुत्पद्यत इति ॥१-२॥

हि भा—क्रान्ति और अक्षांश के एक दिशा रहने से अन्तर और भिन्न दिशा रहने से योग करने से नतांश होता है। इसको खाक्ष भी कहते हैं। इसकी ज्या (नतांशज्या) दृग्ज्या कहलाती है। यह दोर्ज्या (भुजसज्ञक) है। नतांश को नब्बे में घटाने से जो शेष रहता है उसे उन्नतांश कहते हैं उसकी ज्या (उन्नतांशज्या) कोटिदोर्ज्यान्तर (भिन्नभुजज्या) कहते हैं यह कोटि है इसको शङ्कु कहते हैं। त्रिज्या कर्ण है। यष्टि को नलक कहते है ॥१-२॥

उपपत्ति ।

मध्यान्ह काल म याम्योत्तरवृत्त मे यदि खस्वस्तिक और निरक्षखस्वस्तिक के बीच म रवि है तो रवि से निरक्षखस्वस्तिक तक क्रान्ति है और खस्वस्तिक, तथा निरक्षखस्वस्तिक के अन्तर अक्षांश है, यहा दोनो के अन्तर करने मे रवि से खस्वस्तिक तक रवि का नतांश होता है । यदि रवि निरक्ष खस्वस्तिक से दक्षिण हैं तब क्रान्ति और अक्षांश के योग करने म न तांश होता है । इसकी ज्या (नतांशज्या) दृग्ज्या कहलाती है । यह भुज है, नतांश को नब्बे मे घटाने से जो शेष रहता है उसे नतांश कोटि या उन्नतांश (रवि से क्षितिज पर्यन्त) कहते हैं इसकी ज्या (उन्नतांशज्या) शंकु कहलाती है । दग्ज्या शंकु त्रिज्या (भुजकोटिकर्णों) से एक छायाक्षेत्र बनता है ॥१-२॥

इदानीं मध्यच्छाया दिग्व्यवस्थामाह ।

सौम्यक्रान्तेरल्पेऽक्षे याम्या द्युदलभाऽन्यथा सौम्या ।
द्युज्यातो लम्बज्या यदि महती लघ्वी स्यात्तदाऽप्येवम् ॥३॥
द्युज्या धनुसमेत पलेन समेन यदा त्रिभान्नूनम् ।
याम्याऽन्यथेतराभा तत्त्रिभविवर नतांशा स्यु ॥४॥
लम्बक्रान्त्योर्योगस्त्रिभाधिकश्चेद् द्युखण्डभा याम्या ।
सौम्याऽन्यथा त्रिभोनस्तन्नतभागा स्युरयवैषाम् ॥५॥

वि भा —सौम्यक्रान्ते (उत्तरक्रान्तित)अक्षेऽल्पे(अक्षांशाऽल्पे) द्युदलभा (मध्यच्छाया) याम्या (दक्षिणा) भवति, अन्यथा (सौम्यक्रान्तेरक्षांशाधिके) मध्यच्छाया सौम्या (उत्तरा) भवति यदि द्युज्यातो लम्बज्या महती, लघ्वी च स्यात्तदाप्येवमेव मध्यच्छायादिगिति ॥३॥

पलेन समेन (अक्षांशतुल्येन) द्युज्याधनु समेत (द्युज्याचापसहित) यदा त्रिभादून (नवत्यंशाल्प) भवेदर्थादक्षांशद्य ज्याचापयोर्योगो यदि नवत्यंशाल्पो भवेत्तदा मध्यच्छाया याम्या (दक्षिणा) भवेत् । अन्यथा (द्युज्याचापाक्षांशयोर्योगो यदि नवत्यंशाधिकस्तदेतराभा उत्तरच्छाया) भवेत् । तत्त्रिभविवर (द्युज्याचापाक्षांशयोगनवत्यंशयोरन्तर) नतांशा स्युरिति ॥४॥

चेत् (यदि) लम्बक्रान्त्योर्योगस्त्रिभाधिक (नवत्यंशाधिक) तदा द्युखण्डभा (मध्यच्छाया) याम्या(दक्षिणा) भवेत् । अन्यथा (लम्बक्रान्त्योर्योगस्य त्रिभाऽल्पत्वे) मध्यच्छाया सौम्या (उत्तरा) भवेत् । त्रिभोन (लम्बक्रान्त्योर्योगस्त्रिभोन) तदेषा नतभागा (नतांशा) स्युरिति ॥५॥

अत्रोपपत्ति ।

अक्षांशस्य दिक् सवदा दक्षिणा, नाडी वृत्ताद्यस्यां दिशि रविस्तद्दिश्येव क्रान्तिदिक् खस्वस्तिकादुत्तरे यदा रविस्तदा रवितो निरक्षखस्वस्तिक यावदुत्तरा क्रान्ति । खस्वस्तिकनिरक्षखस्वस्तिकयोरन्तरेऽक्षांशा । अत्रोत्तरक्रान्तेरक्षांशाधिकत्वात्

तत्र (उत्तरक्रान्तौ) अक्षांशस्य शोधनेन खस्वस्तिकादपि यावन्नतांशा भवन्ति, खस्वस्तिकाद्रवेरुत्तरे स्थितत्वात् छायायाश्च रवितो विरुद्धदिशि स्थितत्वाच्च भूपृष्ठ-स्थितशङ्कोरूर्ध्वाधररेखामण्डरूपत्वेन तदीया छाया दक्षिणा भवेत्। यदि खस्व-स्तिकनिरक्षखस्वस्तिकयोरन्तरे रविस्तदोत्तरा क्रान्तेरक्षांशाल्पत्वादक्षांशे क्रान्तेः शोधनेन नतांशा भवन्ति, परमत्र खस्वस्तिकाद् दक्षिणदिशि रविरतः शङ्कुच्छाया (मध्यच्छाया) उत्तरा भवति। यदि च द्युज्याचापाक्षांशयोर्योगो नवत्यंशाल्पस्तदाऽप्ये-वमेव (मध्यच्छाया दक्षिणा) स्थितिर्भवति। यथा, द्युचाप+अक्षांश इति यदि नव-त्यंशाल्पस्तदा नवत्यंशे तच्छोधनेन

९०—(द्युचाप+अक्षांश)=९०—द्युचाप—अक्षांश=क्रान्ति-अक्षांश एत-द्दर्शनेन पूर्वोक्तम् "उत्तरक्रान्तेरक्षांशाधिके छाया दक्षिणा" एव सिद्ध्यति, यदि च द्युचाप+अक्षांश नवत्यंशाधिकस्तदा नवत्यंशशोधनेन द्युचाप+अक्षांश—९०=, अक्षांश—(९०—द्युचा)=अक्षांश—क्रान्ति=नतांश, एतत्स्थितौ पूर्वमेव मध्य-च्छायोत्तरा सिद्धा तेन द्युचाप+अक्षांश अस्य नवत्यंशाधिकत्वे मध्यच्छायोत्तरा भवेत्।

एवं यदि लम्बांश+क्रान्ति नवत्यंशाधिकस्तदाऽपि छाया दक्षिणा भवेद्यथा लम्बांश+क्रान्ति नवत्यंशशोधनेन लम्बांश+क्रान्ति—९०=क्रान्ति—(९०—लम्बांश)=क्रान्ति—अक्षांश=नतांश तदा पूर्वोक्तस्थितौ दक्षिणैव-च्छाया भवति। लम्बांश+क्रान्ति एतस्य नवत्यंशाल्पत्वे मध्यच्छायोत्तरा भवति। लम्बांश+क्रान्ति इति यदि नवत्यंशाल्पस्तदैतस्य नवत्यंशे शोधनेन ९०—(लम्बांश+क्रा)=९०—लम्बांश—क्रा=अक्षांश—क्रा=नतांश एतत्स्थितौ मध्यच्छायो-त्तरा पूर्वसिद्धैवेत्याचार्योक्तं सर्वं युक्तियुक्तमिति ॥२-५॥

हि. भा.—उत्तरा क्रान्ति से अक्षांश अल्प हो तो मध्यच्छाया दक्षिण दिशा की होती है अन्यथा (अक्षांश से उत्तराक्रान्ति के अल्प होने से) मध्यच्छाया उत्तर होती है। यदि द्युज्या चाप में अक्षांश जोड़ने से तीन राशि (नवत्यंश) से अल्प हो तो भी मध्यच्छाया दक्षिण होती है, अन्यथा (द्युज्याचाप में अक्षांश जोड़ने से नवत्यंश से अधिक रहने से) मध्यच्छाया उत्तर होती है। (द्युज्याचाप और अक्षांश के योग और नवत्यंश का अन्तर मध्यनतांश होता है। लम्बांश और क्रान्ति के योग यदि नवत्यंशाधिक हो तो भी मध्यच्छाया दक्षिण होती है। अन्यथा (लम्बांश और क्रान्ति के योग यदि नवत्यंशाल्प हो तो) मध्य-च्छाया उत्तर होती है ॥२-५॥

उपपत्ति

अक्षांश की दिशा बराबर दक्षिण होती है, नाडीवृत्त से जिस दिशा में रवि रहते हैं वह क्रान्ति की दिशा है। खस्वस्तिक से यदि रवि उत्तर है तो रवि से निरक्षखस्वस्तिक तक रवि की उत्तरा क्रान्ति है, खस्वस्तिक और निरक्षखस्वस्तिक के अन्तर में अक्षांश है, यहां उत्तरा क्रान्ति अक्षांश से अधिक है इसलिये क्रान्ति में अक्षांश को घटाने से खस्वस्तिक से रवि तक

स्तिके लगति । निरक्षखस्वस्तिकाच्चराग्रद्वयबद्धसूत्रोपरिलम्बो निरक्षोर्ध्वाधरसूत्रमेव भूकेन्द्रान्निरक्षखस्वस्तिकं यावत्त्रिज्याऽस्ति, भूकेन्द्राच्चराग्रद्वयबद्धसूत्रपर्यन्तं निरक्षोर्ध्वाधरसूत्रखण्डं चरज्याऽतस्त्रिज्याया चरज्याया योजनेन निरक्षखस्वस्तिकाच्चराग्रद्वयबद्धसूत्रपर्यन्तं लम्बरूपा रेखाऽन्त्या स्यात् दक्षिणगोले त्वेतद्विलोमा स्यादिति ॥७॥

अब दिनार्ध हृति और दिनार्धान्त्या के साधन कहते हैं ।

हि भा —दक्षिण गोल में द्युज्या में कुज्या को घटाने से और उत्तर गोल में जोडने से मध्यहृति होती है । एवं दक्षिणगोल में त्रिज्या में चरज्या को घटाने से और उत्तर गोल में जोडने से मध्यान्त्या होती है ॥७॥

उपपत्ति ।

दक्षिणगोल में निरक्षोदयास्त सूत्र से स्वोदयास्त सूत्र के ऊपर रहने के कारण दोनों सूत्रों के अन्तर्गत कुज्या को यदि याम्योत्तराहोरात्रवृत्त के सम्पात से निरक्षोदयास्त सूत्र के ऊपर लम्बरूप द्युज्या में घटा देते हैं तो याम्योत्तराहोरात्रवृत्त के सम्पात से स्वोदयास्त सूत्र के ऊपर लम्बरूप हृति प्रमाण होता है । उत्तर गोल में द्युज्या में कुज्या को जोडने से हृति होती है । तथा उत्तरगोल में क्षितिज हारात्रवृत्त सम्पातोपरिगत ध्रुव प्रोतवृत्त नाडीवृत्त में पूर्व स्वस्तिक से चरान्त पर नीचे लगता है उस बिन्दु से पूर्वापर सूत्र के समानान्तर सूत्र कर दिये उसका नाम चराग्रद्वय बद्धसूत्र है । अहोरात्रपरिगतध्रुव प्रोतवृत्त नाडीवृत्त के सम्पात बिन्दु से चराग्रद्वय बद्ध सूत्र के ऊपर जो लम्ब करते हैं वह अन्त्या है । मध्यान्ह काल में अहोरात्रपरिगत ध्रुव प्रोत वृत्त याम्योत्तर वृत्त ही होता है वह नाडीवृत्त में निरक्षखस्वस्तिक बिन्दु में लगता है । उस बिन्दु से (निरक्षखस्वस्तिक से) चराग्रद्वयबद्ध सूत्र के ऊपर लम्ब निरक्षोर्ध्वाधर सूत्र है अर्थात् भूकेन्द्र से निरक्ष खस्वस्तिक तक त्रिज्या है, और भूकेन्द्र से चराग्रद्वय बद्धसूत्र तक निरक्षोर्ध्वाधर सूत्र खण्ड चरज्या है, त्रिज्या में चरज्या को जोड देने से मध्यान्त्या होती है, दक्षिणगोल में पूर्वापर सूत्र से चराग्रद्वय बद्ध सूत्र के ऊपर रहने के कारण त्रिज्या में चरज्या को घटाने से मध्यान्त्या होती है, सूर्यसिद्धान्त में भी, 'त्रिज्योदक् चरजायुक्ता याम्यायां तद्विवर्जिता' इत्यादि से तथा सिद्धान्तशिरोमणि में, "क्षितिज्ययैवं द्युगुणश्च सा हृतिः' इत्यादि से इसी विषय को कहा है ॥७॥

इदानीं शङ्कुसाधनान्याह ।

लम्बज्यापमजीवासमनरसूर्यैर्धृतिः पृथग्गुणिताः ।
त्रिज्याप्ता तद्धृति पलकर्णैर्भक्ता नराः क्रमशः ॥८॥
द्युज्याऽन्त्ययोश्च घातो गदितैर्गुणकारकैः पृथग्गुणितः ।
त्रिज्यागुणितैर्हरैर्विभाजयेच्छङ्कवो वा स्युः ॥९॥

वि भा —धृति (हृति) लम्बज्यापमजीवासमनरसूर्यैः (लम्बज्याक्रान्तिज्यासमशङ्कुद्वादशभिः) पृथग्गुणिता त्रिज्याप्ता तद्धृतिपलकर्णैः (त्रिज्याप्ता पलकर्णैः) क्रमशो भक्तास्तदा नराः (शङ्कवः) स्युः ॥८॥

वा द्युज्यान्त्ययोर्घातो गदितै (पूर्वकथितैर्लम्बज्यापमजीवेत्यादिभि) गुणकारकै (गुणकाकै) पृथग्गुणित, त्रिज्यागुणितै हरै (पूर्वकथितहरै) विभाजयेत्तदा शङ्कव स्युरिति ॥९॥

अत्रोपपत्ति ।

अक्षक्षेत्रानुपातेन $\frac{\text{लम्बज्या हृति}}{\text{त्रि}}$ = शङ्कु । $\frac{\text{क्राज्या. हृति}}{\text{अग्रा}}$ = शङ्कु ।

$\frac{\text{समश हृति}}{\text{तद्धृति}}$ तथा । = शङ्कु $\frac{\text{१२ हृति}}{\text{पलक}}$ = शङ्कु

अथ द्युज्यान्त्ययोश्च घात इत्यादिश्लोकोक्त्या

$\frac{\text{द्यु अन्त्या लज्या}}{\text{त्रि. त्रि}}$ = $\frac{\text{हृति लज्या}}{\text{त्रि}}$ = शङ्कु । $\frac{\text{द्यु अन्त्या क्राज्या}}{\text{त्रि अग्रा}}$ =

= $\frac{\text{हृति क्राज्या}}{\text{अग्रा}}$ = शङ्कु । $\frac{\text{द्यु अन्त्या समश}}{\text{त्रि तद्धृति}}$ = $\frac{\text{हृति समश}}{\text{तद्धृति}}$ = शङ्कु

$\frac{\text{द्यु. अन्त्या. १२}}{\text{त्रि. पलक}}$ = $\frac{\text{हृति. १२}}{\text{पलक}}$ = शङ्कु एतेनाचार्योक्तमुपपन्नम् ॥८-९॥

अब शङ्कु के आनयन प्रकारों को कहते हैं ।

हि भा —हृति को लम्बज्या, क्रान्तिज्या, समशङ्कु और द्वादश से पृथक पृथक् गुणाकर क्रमश त्रिज्या, अग्रा, तद्धृति और पलकर्ण से भाग देने से शङ्कु प्रमाण होते हैं ॥ अथवा द्युज्या और अन्त्या के घात को पूर्व कथित गुणकाङ्कों से गुणाकर त्रिज्या गुणित पूर्वहरों से भाग देने से शङ्कु होते हैं ॥ ८ ९ ॥

उपपत्ति

अक्षक्षेत्र के अनुपात से $\frac{\text{लज्या हृति}}{\text{त्रि}}$ = शङ्कु । $\frac{\text{क्राज्या हृति}}{\text{अग्रा}}$ = शङ्कु ।

$\frac{\text{समश} \times \text{हृति}}{\text{तद्धृति}}$ = शङ्कु, तथा $\frac{\text{१२} \times \text{हृति}}{\text{पलक}}$ = शङ्कु

"द्युज्यान्त्ययोश्च घात" इत्यादि से $\frac{\text{द्यु अन्त्या लज्या}}{\text{त्रि त्रि}}$ = $\frac{\text{हृति लज्या}}{\text{त्रि}}$ = शङ्कु

तथा $\frac{\text{द्यु अन्त्या क्राज्या}}{\text{त्रि अग्रा}}$ = $\frac{\text{हृति क्राज्या}}{\text{अग्रा}}$ = शङ्कु ।

तथा $\frac{\text{द्यु. अन्त्या समश}}{\text{त्रि तद्धृति}}$ = $\frac{\text{हृति समश}}{\text{तद्धृति}}$ = शङ्कु ।

$\frac{\text{द्यु अन्त्या १२}}{\text{त्रि. पलक}}$ = $\frac{\text{हृति १२}}{\text{पलक}}$ = शङ्कु । इनसे आचार्योक्त पद्य उपपन्न हुए । ८-९॥

पुनः शंक्वानयनान्याह।

घातस्त्रिज्याहृत-हरगुणकान्तर-सङ्गुणस्त्रिगुणनिघ्नः।
छेदैर्भक्त फलवियुतघातस्त्रिज्यया हृत. शङ्कवो वा स्युः ॥१०॥

वि भा.—घात (द्युज्यान्त्ययोर्घात) त्रिज्याहृतहरगुणकान्तरसङ्गुणः (त्रिज्यागुणित हरगुणकान्तर गुणित) त्रिगुणनिघ्नैः (त्रिज्यागुणितैः) छेदैः (पूर्वकथितहरैः) भक्त (विभाजितः) फलवियुतघातः (लब्धिरहित द्युज्यान्त्ययोर्घात) त्रिज्यया हृत (त्रिज्याभक्ता) वा (अथवा) शङ्कव स्युरिति ॥१०॥

अत्रोपपत्ति

श्लोकोक्त्या $\frac{\text{द्यु. अन्त्या. त्रि (त्रि—लज्या)}}{\text{त्रि. त्रि}}$ = फलम् अनेन रहितघातः

द्यु. अन्त्या — $\frac{\text{द्यु. अन्त्या त्रि (त्रि — लज्या)}}{\text{त्रि. त्रि}}$

= $\frac{\text{द्यु. अन्त्या. त्रि. त्रि—द्यु.अन्त्या. त्रि. त्रि+द्यु. अन्त्या. त्रि. लंज्या}}{\text{त्रि. त्रि}}$

= $\frac{\text{द्यु. अन्त्या. त्रि. लज्या}}{\text{त्रि. त्रि}}$ त्रिज्यया भक्त. $\frac{\text{द्यु. अन्त्या. लंज्या}}{\text{त्रि. त्रि}}$

= $\frac{\text{हृति. लंज्या}}{\text{त्रि}}$ = शङ्कुः। घात = द्यु अन्त्या

एव $\frac{\text{द्यु. अन्त्या. त्रि. (अग्रा—क्राज्या)}}{\text{त्रि. अग्रा}}$ = फलम् अनेन रहितघात.

द्यु. अन्त्या— $\frac{\text{द्यु. अन्त्या. त्रि (अग्रा—क्राज्या)}}{\text{त्रि. अग्रा}}$

= $\frac{\text{द्यु. अग्रा. त्रि. अग्रा — द्यु. अन्त्या त्रि. अग्रा + द्यु. अन्त्या. त्रि. क्रांज्या}}{\text{त्रि. अग्रा}}$

= $\frac{\text{द्यु. अन्त्या त्रि. क्राज्या}}{\text{त्रि अग्रा}}$ त्रिज्या भक्त. $\frac{\text{द्यु. अन्त्या. क्राज्या}}{\text{त्रि. अग्रा}}$

= $\frac{\text{हृति. क्राज्या}}{\text{अग्रा}}$ = शङ्कु। एवमेवान्योऽपि प्रकारो ज्ञेय इति ॥१०॥

पुन शङ्कु साधन कहते हैं।

हि.भा—द्युज्या और अन्त्या के घात को त्रिज्या गुणित हर और गुणक के अन्तर से गुणकर त्रिज्यागुणित हरो से भाग देने पर जो फल हो उन्हे घात मे (द्युज्या और अन्त्या के गुणनफल मे) घटा कर त्रिज्या मे भाग देने से प्रकारान्तर से शङ्कु के मान होते हैं ॥१०॥

उपपत्ति

श्लोकोक्ति के अनुसार $\frac{\text{द्यु. अन्त्या. त्रि (त्रि—लंज्या)}}{\text{त्रि. त्रि}}$ = फल इसको घात में घटाने से द्यु. अन्त्या — $\frac{\text{द्यु. अन्त्या. त्रि (त्रि—लंज्या)}}{\text{त्रि. त्रि}}$

$= \frac{\text{द्यु. अन्त्या. त्रि. त्रि — द्यु. अन्त्या. त्रि. त्रि + द्यु. अन्त्या. त्रि लंज्या}}{\text{त्रि. त्रि}}$

$\frac{\text{द्यु. अन्त्या. त्रि. लंज्या}}{\text{त्रि. त्रि}}$ त्रिज्या से भाग देने से

$= \frac{\text{द्यु. अन्त्या. लंज्या}}{\text{त्रि. त्रि}} = \frac{\text{हृति. लंज्या}}{\text{त्रि}}$ = शङ्कु । घात = द्यु. अन्त्या

इसी तरह $\frac{\text{द्यु. अन्त्या. त्रि (अग्रा—क्राज्या)}}{\text{त्रि अग्रा}}$ = फल, इसको घात में घटाने से

द्यु. अन्त्या — $\frac{\text{द्यु. अन्त्या. त्रि (अग्रा—क्राज्या)}}{\text{त्रि. अग्रा}}$

$= \frac{\text{द्यु. अन्त्या. त्रि. अग्रा — द्यु. अन्त्या. त्रि. अग्रा + द्यु. अन्त्या. त्रि. क्राज्या}}{\text{त्रि अग्रा}}$

$= \frac{\text{द्यु. अन्त्या. त्रि. क्राज्या}}{\text{त्रि. अग्रा}}$ त्रिज्या से भाग देने से

$\frac{\text{द्यु. अन्त्या. क्राज्या}}{\text{त्रि. अग्रा}} = \frac{\text{हृति क्राज्या}}{\text{अग्रा}}$ = शङ्कु । इसी तरह आगे के प्रकार भी समझना चाहिए ॥१०॥

पुनः शङ्क्वानयनान्याह ।

वैतद्गुणहारान्तरनिहताऽन्त्या हृता पृथग् हारैः ।
फलरहिताऽन्त्या द्युज्यागुणिता त्रिज्याहृता नराः क्रमशः ॥११॥

वि. भा —वा (अथवा) अन्त्या एतद्गुणहारान्तरनिहताः (पूर्वकथितगुणहारान्तरगुणिताः) पृथग्-हारैः (पूर्वकथितभाजकैः) हृताः (भक्ताः) फलरहिताऽन्त्याः (फलोनाऽन्त्याः) द्युज्यागुणिताः त्रिज्याहृताः (त्रिज्याभक्ता.) तदा क्रमशो नराः (शङ्कवः) स्युरिति ॥११॥

अत्रोपपत्तिः

श्लोकोक्त्या $\frac{\text{अन्त्या (त्रि—लंज्या)}}{\text{त्रि}}$ = फलम् अनेन रहिताऽन्त्या तदा

अन्त्या — $\frac{\text{अन्त्या (त्रि—लंज्या)}}{\text{त्रि}} = \frac{\text{अन्त्या. त्रि—अन्त्या. त्रि + अन्त्या. लंज्या}}{\text{त्रि}}$

$= \frac{\text{अन्त्या. लज्या}}{\text{त्रि}}$ द्युज्यया गुणिता त्रिज्याभक्ता तदा $\frac{\text{अन्त्या. लज्या द्युज्या}}{\text{त्रि त्रि}}$

$= \frac{\text{लज्या हृति}}{\text{त्रि}} =$ शङ्कु ।

एवं $\frac{\text{अन्त्या (अग्रा—क्राज्या)}}{\text{अग्रा}} =$ फलम्, अनेन रहिताऽन्त्या तदा

$\text{अन्त्या} - \frac{\text{अन्त्या (अग्रा—क्राज्या)}}{\text{अग्रा}} = \frac{\text{अन्त्या अग्रा—अन्त्या अग्रा+अन्त्या क्राज्या}}{\text{अग्रा}}$

$= \frac{\text{अन्त्या क्राज्या}}{\text{अग्रा}}$ द्युज्या गुणिता त्रिज्या भक्ता तदा $\frac{\text{अन्त्या क्राज्या द्यु}}{\text{अग्रा त्रि}}$

$= \frac{\text{हृति क्राज्या}}{\text{अग्रा}} =$ शङ्कु । एवमग्रेऽपीति ॥११॥

पुनः शङ्कु साधन कहते हैं।

हि भा—अथवा अन्त्या को पूर्व कथित गुणक और हर के अन्तर से गुणाकर पृथक् पृथक् पूर्व कथित हरो से भाग देकर जो फल हो उन्हें अन्त्या में घटा कर द्युज्या से गुणाकर त्रिज्या से भाग देने से क्रम से शङ्कु के मान होते हैं ॥११॥

उपपत्ति

इलोकोक्ति से $\frac{\text{अन्त्या (त्रि—लज्या)}}{\text{त्रि}} =$ फल। इसको अन्त्या में घटाने से

$\text{अन्त्या} - \frac{\text{अन्त्या (त्रि—लज्या)}}{\text{त्रि}} = \frac{\text{अन्त्या त्रि—अन्त्या त्रि+अन्त्या लज्या}}{\text{त्रि}}$

$= \frac{\text{अन्त्या लज्या}}{\text{त्रि}}$ इसको द्युज्या से गुणाकर त्रिज्या से भाग देने से

$\frac{\text{अन्त्या लज्या द्यु}}{\text{त्रि त्रि}} = \frac{\text{हृति लज्या}}{\text{त्रि}} =$ शङ्कु । इसी तरह

$\frac{\text{अन्त्या (अग्रा—क्राज्या)}}{\text{अग्रा}} =$ फल। इसको अन्त्या में घटाने से

$\text{अन्त्या} \frac{\text{अन्त्या (अग्रा—क्राज्या)}}{\text{अग्रा}} = \frac{\text{अन्त्या अग्रा—अन्त्या अग्रा+अन्त्या क्राज्या}}{\text{अग्रा}}$

$= \frac{\text{अन्त्या क्राज्या}}{\text{अग्रा}}$ इसको द्युज्या से गुणाकर त्रिज्या से भाग देने से

$\frac{\text{अन्त्या क्राज्या द्यु}}{\text{त्रि अग्रा}} = \frac{\text{हृति क्राज्या}}{\text{अग्रा}} =$ शङ्कु । इसी तरह आगे के प्रकार भी समझने चाहिए ॥११॥

पुनः शङ्क्वानयनप्रकारान्तराण्याह ।

वाऽन्त्यागुणितैर्गुणकैर्हता द्युजीवा पृथक्-पृथक् क्रमशः ।
भक्ताऽनन्तरहारैर्नरा द्युजीवाः पृथग्गुणिताः ॥१२॥
वोक्तगुणहारविवरैर्भक्ताश्छेदैर्हि लब्धफलसमेता ।
द्युज्या गुणके हारान्महति विहीनाऽल्पके शेषाः ॥१३॥
अन्त्या गुणिता भक्ता त्रिमज्यया शङ्कवः क्रमशः ॥१३½॥

वि. भा.—वा (अथवा) द्युजीवा (द्युज्या) पृथक् पृथक् अन्त्यागुणितैर्गुणकैः (अन्त्यागुणितैः पूर्वकथितगुणकैः) हता (गुणिता) अनन्तरहारैः (पूर्वानीतहारैः) भक्ता तदा नराः (शङ्कवः) स्युः । वा द्युजीवा (द्युज्या) उक्तगुणहारविवरैः (पूर्वकथितगुणकहारान्तरैः) पृथक् गुणिता छेदैः (पूर्वकथितहारैः) भक्ता लब्धफलसमेता (लब्धफलेन युता) द्युज्या कार्या, हाराद् गुणके महति सति, हाराद्गुणकेऽल्पके लब्धफलेन विहीना द्युज्या कार्या शेषा अन्त्या गुणितास्त्रिभज्यया भक्तास्तदा क्रमशः शङ्कवः स्युरिति ॥१२-१३½॥

अत्रोपपत्तिः ।

श्लोकोक्त्या $\frac{\text{अन्त्या}\cdot\text{लज्या}\cdot\text{द्यु}}{\text{त्रि}\cdot\text{त्रि}} = \frac{\text{हृति}\cdot\text{लज्या}}{\text{त्रि}} = \text{शङ्कु}$ । एवमेव

$\frac{\text{अन्त्या}\cdot\text{क्राज्या}\cdot\text{द्यु}}{\text{त्रि}\cdot\text{अग्रा}} = \frac{\text{हृति}\cdot\text{क्राज्या}}{\text{त्रि}} = \text{शङ्कु}$ । एवमग्रेऽपि ज्ञेयम् ।

एतेन वाऽन्त्यागुणितैरित्यादर्भक्तानन्तरहारैरित्यन्तमुपपन्नम् ।

अथावशेषार्थं श्लोकोक्त्यैव $\frac{\text{द्यु}(\text{त्रि}-\text{लज्या})}{\text{त्रि}} = \frac{\text{द्यु}\cdot\text{त्रि}-\text{द्यु}\cdot\text{लज्या}}{\text{त्रि}}$

अत्र गुणकाङ्क = लज्या । हर = त्रि परन्तु त्रि > लज्या

अर्थात् हर > गुणक अतः द्युज्या—लब्धफल = द्युज्या — $\frac{\text{द्युज्या}\cdot\text{त्रि}-\text{द्यु}\cdot\text{लज्या}}{\text{त्रि}}$

$= \frac{\text{द्युज्या}\cdot\text{त्रि}-\text{द्युज्या}\cdot\text{त्रि}+\text{द्युज्या}\cdot\text{लज्या}}{\text{त्रि}} = \frac{\text{द्युज्या}\cdot\text{लज्या}}{\text{त्रि}}$ अन्त्यागुणिता त्रिज्या

भक्ता तदा $\frac{\text{द्युज्या}\cdot\text{लज्या}\cdot\text{अन्त्या}}{\text{त्रि}\cdot\text{त्रि}} = \frac{\text{हृति}\cdot\text{लज्या}}{\text{त्रि}} = \text{शङ्कु}$ ।

एवमेव $\frac{\text{द्युज्या}(\text{अग्रा}-\text{क्राज्या})}{\text{अग्रा}} = \frac{\text{द्युज्या}\cdot\text{अग्रा}-\text{द्युज्या}\cdot\text{क्राज्या}}{\text{अग्रा}}$ अत्रापि

गुणकाङ्क < हर यतः गुणकाङ्कः = क्राज्या । हर अग्रा । अग्रा > क्राज्या

अतः द्युज्या— $\frac{(\text{द्युज्या}\cdot\text{अग्रा}-\text{द्युज्या}\cdot\text{क्राज्या})}{\text{अग्रा}}$

$= \frac{\text{द्यु ज्या. अग्रा} - \text{द्यु ज्या अग्रा} + \text{द्यु ज्या. क्राज्या}}{\text{अग्रा}} = \frac{\text{द्युज्या. क्राज्या}}{\text{अग्रा}}$

इदमन्त्यया गुणित त्रिज्याभक्त तदा $\frac{\text{द्यु ज्या क्राज्या अन्त्या}}{\text{अग्रा त्रि}} = \frac{\text{हृति. क्राज्या}}{\text{अग्रा}}$ = श कु। एवमेवाग्रेऽपि बाध्यमिति॥ एतेन 'द्युजीवा पृथग्गुणिता' इत्यारभ्य "शकव क्रमश" इत्यन्तमुपपन्नम् ॥१२—१३½॥

पुन शकु के साधन कहते हैं।

हि भा —अथवा द्युज्या को अलग अलग अन्त्यागुणित पूव गुणकों स गुणाकर पूर्वानीतहारों से भाग देन स श कु प्रमाण होते हैं।

अथवा द्युज्या का पूर्वकथित गुणक और हार क अन्तर स गुणाकर पूर्वकथित हारो से भाग देने से जो फल हो उन्हे द्युज्या म जोड देना। यदि हर गुणक अधिक हो, यदि हर से गुणक अल्प हो तो लब्ध फल को द्युज्या म घटा देना, जो शेष रहे उन्हे अन्त्या स गुणा-कर त्रिज्या से भाग देने स क्रम से शकुमान होते हैं ॥१२ १३½॥

उपपत्ति।

श्लोकोक्ति के अनुसार $\frac{\text{अन्त्या लज्या द्युज्या}}{\text{त्रि त्रि}} = \frac{\text{हृति लज्या}}{\text{त्रि}} = \text{श कु}$।

इसी तरह $\frac{\text{अन्त्या क्राज्या द्युज्या}}{\text{त्रि अग्रा}} = \frac{\text{हृति क्राज्या}}{\text{अग्रा}} = \text{शकु}$। इसी तरह आगे भी समझना चाहिये। इससे 'वान्त्यागुणिते इत्यादि म भवनानन्तरहारे' यहा तक उपपन्न हुआ॥ अब शेष के लिए श्लोकोक्ति के अनुसार—

$\frac{\text{द्यु (त्रि—लज्या)}}{\text{त्रि}} = \frac{\text{द्यु त्रि—द्यु लज्या}}{\text{त्रि}}$ यहा गुणक = लज्या। हर = त्रि परन्तु त्रि > लज्या अर्थात हर > गुणक इसलिए द्यु—लब्धफल = द्यु — $\frac{\text{(द्यु त्रि—द्यु लज्या)}}{\text{त्रि}}$

$= \frac{\text{द्यु त्रि—द्यु त्रि} + \text{द्यु लज्या}}{\text{त्रि}} = \frac{\text{द्यु लज्या}}{\text{त्रि}}$ इसको अन्त्या से गुणाकर त्रिज्या से भाग देने से $\frac{\text{द्यु लज्या अन्त्या}}{\text{त्रि त्रि}} = \frac{\text{हृति लज्या}}{\text{त्रि}}$ = शकु। इसी तरह $\frac{\text{द्यु (अग्रा—क्राज्या)}}{\text{अग्रा}}$

$= \frac{\text{द्यु अग्रा—द्यु क्राज्या}}{\text{अग्रा}}$ = लब्धफल यहा भी हर > गुणक अग्रा = हर, क्राज्या = गुणक परन्तु अग्रा > क्राज्या इसलिए द्यु—लब्धफल = द्यु — $\frac{\text{(द्यु अग्रा—द्यु क्राज्या)}}{\text{अग्रा}}$

$= \frac{\text{द्यु. अग्रा—द्यु अग्रा} + \text{द्यु क्राज्या}}{\text{अग्रा}} = \frac{\text{द्यु क्राज्या}}{\text{अग्रा}}$ इसको अन्त्या से गुणाकर त्रिज्या से भाग

देने से $\frac{\text{द्यु. क्रांज्या. अन्त्या}}{\text{अग्रा त्रि}} = \frac{\text{हृति क्रांज्या}}{\text{त्रि}}$ = शङ्कु। इसी तरह आगे भी समझना चाहिए।
इससे "द्युजीवा. पृथग्गुणिता." यहां से लेकर "शङ्कव क्रमशः" यहां तक उपपन्न हुआ ॥१२-१३½॥

पुन. शङ्क्वानयनप्रकारान्तराण्याह।

अपमोत्क्रमगुणनिहता पूर्वगुणाश्छेदगुणकविवरेण ॥१४।
त्रिगुणाहतेन युक्ता विवराण्येतैर्हतार्थान्त्या।
भक्तानन्तरहारैः फलरहितान्त्यैव शङ्कव क्रमश ॥१५॥

वि. भा.—पूर्वगुणाः (पूर्वकथिता लम्बज्यापमजीवा समनरमूर्यैरित्या-द्युक्ता.) अपमोत्क्रमगुणनिहता (क्रान्त्युत्क्रमज्यागुणिताः) त्रिगुणाहतेन (त्रिज्या-गुणितेन) छेदगुणकविवरेण (हारगुणकान्तरेण) युक्तास्तदा विवराणि (अन्त-राणि) स्युः। एतैः (विवरैः) अर्थान्त्या (अन्त्या) हता (गुणिता) अनन्तरहारै. (पूर्वकथितहारैः) भक्ता फलरहितान्त्यैव (फलोनान्त्यैव) क्रमशः शङ्कवः स्युरिति ॥ १४-१५ ॥

अत्रोपपत्तिः।

क्रान्त्युत्क्रमज्या = त्रि — क्रान्तिकोटिज्या = त्रि — द्यु

श्लोकोक्त्यनुसारेण लज्या (त्रि — द्यु) + त्रि (त्रि — लज्या) | त्रि = हरः,
= लज.त्रि — लज्या द्यु + त्रि त्रि — त्रि लज्या | लज्या = गुण

= त्रि.त्रि — लज्या द्यु = अन्तरम् = विवरम्। एतेन गुणिताऽन्त्या
(त्रि त्रि — लज्या द्यु) अन्त्या = त्रि त्रि अन्त्या — लज्या द्यु अन्त्या पूर्वकथित-
हारेण भक्ता $\frac{\text{त्रि त्रि अन्त्या — लज्या द्यु अन्त्या}}{\text{त्रि त्रि}}$ एतद्रहिताऽन्त्या

अन्त्या — $\frac{(\text{त्रि त्रि अन्त्या — लज्या द्यु अन्त्या})}{\text{त्रि त्रि}}$ =

$\frac{\text{अन्त्या.त्रि त्रि — त्रि त्रि अन्त्या + लज्या द्यु अन्त्या}}{\text{त्रि त्रि}} = \frac{\text{लज्या.द्यु.अन्त्या}}{\text{त्रि त्रि}}$

= $\frac{\text{हृति लज्या}}{\text{त्रि}}$ = शङ्कु। एवमेव

क्रांज्या (त्रि — द्यु) + त्रि (अग्रा — क्रांज्या) | अग्र हरः = अग्रा
गुणः = क्रांज्या

= क्रांज्या.त्रि — क्रांज्या. द्यु + त्रि.अग्रा — त्रि.क्रांज्या
= त्रि. अग्रा — क्राज्या.द्यु = विवर = अन्तरम् एतेन गुणिताऽन्त्या
त्रि.अग्रा.अन्त्या — क्राज्या.द्यु. अन्त्या पूर्वकथितहारेण भक्ता

$$\frac{\text{त्रि अग्रा अन्त्या}-\text{क्राज्या द्यु अन्त्या}}{\text{त्रि अग्रा}}\ \text{एतद्रहिताऽन्त्या}$$

$$\text{अन्त्या}-\left(\frac{\text{त्रि अग्रा अन्त्या}-\text{क्राज्या द्यु अन्त्या}}{\text{त्रि अग्रा}}\right)=\frac{\text{क्राज्या द्यु अन्त्या}}{\text{त्रि अग्रा}}=$$

$\frac{\text{हृति क्राज्या}}{\text{अग्रा}}=$ शङ्कु एवमग्रेऽपि बोध्यम् । एतेन "प्रथमोत्क्रमगुणनिहता" इत्यादि सर्वमुपपन्नम् ॥१४-१५॥

फिर शङ्कु के आनयन-प्रकार कहते हैं ।

हि. भा.—पूर्वकथित गुणकों को क्रान्ति के उत्क्रमज्या से गुणकर त्रिज्यागुणित हर और गुणक के अन्तर को जोड़ देने से विवर (अन्तर) संज्ञक होता है । इससे अन्त्या को गुणकर पूर्वकथित हारों से भाग देकर जो फल हो उन्हें अन्त्या में घटाने से क्रम से शङ्कु के मान होते हैं ॥ १४-१५ ॥

उपपत्ति ।

श्लोकोक्ति के अनुसार लज्या (त्रि—द्यु) + त्रि (त्रि—लज्या) | त्रि—द्यु = क्रान्त्युत्क्रमज्या
| त्रि = हर । लज्या = गुण

= लज्या त्रि — लज्या द्यु + त्रि त्रि — त्रि लज्या

= त्रि त्रि — लज्या द्यु = विवरसंज्ञक = अन्तर इससे अन्त्या को गुणने से

(त्रि त्रि अन्त्या — लज्या द्यु अन्त्या) पूर्वकथितहार से भाग देने से

$$\frac{\text{त्रि त्रि अन्त्या}-\text{लज्या द्यु अन्त्या}}{\text{त्रि त्रि}}\ \text{इसको अन्त्या में घटाने से}$$

$$\text{अन्त्या}-\left(\frac{\text{त्रि त्रि अन्त्या}-\text{लज्या द्यु अन्त्या}}{\text{त्रि त्रि}}\right)=$$

$$\frac{\text{अन्त्या त्रि त्रि}-\text{त्रि त्रि अन्त्या}+\text{लज्या द्यु अन्त्या}}{\text{त्रि त्रि}}=\frac{\text{लज्या द्यु अन्त्या}}{\text{त्रि त्रि}}$$

$=\frac{\text{हृति लज्या}}{\text{त्रि}}=$ शङ्कु । इसी तरह

क्राज्या (त्रि द्यु) + त्रि (अग्रा—क्राज्या) यहाँ अग्रा = हर । क्राज्या = गुणक
= क्राज्या त्रि — क्राज्या द्यु + त्रि अग्रा — त्रि क्राज्या

= त्रि अग्रा — क्राज्या द्यु = विवरसंज्ञक । इससे अन्त्या को गुणने से

त्रि अग्रा अन्त्या — क्राज्या द्यु अन्त्या पूर्व कथित हार से भाग देने से

$$\frac{\text{त्रि अग्रा अन्त्या}-\text{क्राज्या द्यु अन्त्या}}{\text{त्रि अग्रा}}\ \text{इसको अन्त्या में घटाने से}$$

अन्त्या — $\frac{\text{त्रि अग्रा अन्त्या — क्राज्या द्यु अन्त्या}}{\text{त्रि अग्रा}}$ =

$\frac{\text{अन्त्या त्रि अग्रा — त्रि अग्रा अन्त्या + क्राज्या द्यु अन्त्या}}{\text{त्रि अग्रा}} = \frac{\text{क्राज्या द्यु अन्त्या}}{\text{त्रि अग्रा}}$

$= \frac{\text{हृति क्राज्या}}{\text{अग्रा}}$ = शङ्कु । इसी तरह आगे भी समझना चाहिए । इससे "अपमो-त्क्रमगुणनिहता ।।" इत्यादि उपपन्न हुआ ।। १४—१५ ।।

पुनस्तदानयनान्याह ।

पलगुणपलभा कुज्याऽग्राभिर्धृ तिः पृथग्गुणिता ।
त्रिज्याक्षश्रवणाग्रोद्धृतिभक्ता च नृतलानि ।। १६ ।।
अथवा धृत्यान्त्याद्यैः कथितगुणैः प्रोक्तहारकैः प्राग्वत् ।
नृतलानि तत्कृतिविधुधृतिवर्गान्मूलमथवा ते ।। १७।।

वि. भा. —धृतिः (हृतिः) पृथक् पलगुणपलभाकुज्याऽग्राभिः (अक्षज्या-पलभा कुज्याऽग्राभिः) गुणिता, त्रिज्याक्षश्रवणाग्रोद्धृतिभक्ता (त्रिज्यापलकर्णाग्रात-द्धृतिभिर्भक्ता) तदा नृतलानि (शङ्कुतलानि) भवन्ति । अथवा कथितगुणैः (पूर्व-कथितगुणकैः) प्रोक्तहारकैः (कथितहारमानैः) धृतिर्नृत्यान्त्याद्यैः (तद्धृत्यन्त्याद्यैः) नृतलानि (शङ्कुतलानि) भवन्ति । तत्कृतिविधुधृतिवर्गात् (शङ्कुतलवर्गोनहृतिवर्गात्) मूलं तदा ते शङ्कवः स्युरिति ।। १६—१७ ।।

अत्रोपपत्तिः ।

अक्षक्षेत्रानुपातेन $\frac{\text{अज्या हृति}}{\text{त्रि}}$ = शङ्कुतल । $\frac{\text{पभा हृति}}{\text{पक}}$ = शङ्कुतल ।

$\frac{\text{कुज्या हृति}}{\text{अग्रा}}$ = शङ्कुतल । $\frac{\text{अग्रा हृति}}{\text{तद्धृति}}$ = शङ्कुतल ।

ततः $\sqrt{\text{हृति}^2 - \text{शङ्कुतल}^2}$ = शङ्कु । धृत्यान्त्याद्यैः कथितगुणैरित्यादि स्पष्टमेव ।। १६—१७ ।।

फिर शङ्कु के आनयन करते हैं ।

हि. भा. —हृति को अलग अलग अक्षज्या, पलभा, कुज्या और और अग्रा से गुणा कर त्रिज्या, पलकर्ण, अग्रा और तद्धृति से भाग देने से शङ्कुतल होते हैं । अथवा पूर्वकथित गुणक और हरों के द्वारा साधित हृति- अन्त्या आदि से शङ्कुतल के मान आते हैं । हृतिवर्ग में शङ्कुतलवर्ग को घटा कर मूल लेने से शङ्कुमान हैं ।। १६-१७ ।।

उपपत्ति ।

अक्षक्षेत्र के अनुपात से $\frac{\text{अज्या हृति}}{\text{त्रि}}$ = शङ्कुतल । $\frac{\text{पभा हृति}}{\text{पक}}$ = शङ्कुतल

$\frac{\text{कुज्या हृति}}{\text{अग्रा}}$ = शतल। $\frac{\text{अग्रा हृति}}{\text{तद्धृति}}$ = शतन तव $\sqrt{\text{हृति} - \text{शतल}}$ = शङ्कु ।

धृत्यान्त्यादौ कथितगुणे इत्यादि की उपपत्ति स्पष्ट ही है ॥ १६ १७ ॥

इदानीं दिनार्धकर्णानयनमाह ।

त्रिज्या धृतिविशेषोऽक्षश्रुतिनिहतो विभाजितो धृत्या ।
फलवियुगुदक् समेताऽक्षश्रुतिरितरद्युदलकर्णः ॥१८॥

वि. भा.—त्रिज्याधृतिविशेष (त्रिज्याहृतिवियोग) अक्षश्रुतिनिहत (पलकर्णगुणित) धृत्या विभाजित (हृतिभक्त) फलवियुक्तसमेताऽक्षश्रुति (फलरहितयुत पलकर्ण) तदेतरद्युदलकर्ण (भिन्नमध्यकर्ण) भवेदिति।

अत्रोपपत्तिः ।

अत्र ग्रन्थे धृतिशब्देन सर्वत्रैव हृतिर्ग्राह्या ।

श्लोकोक्त्या पक + $\frac{(\text{त्रि} - \text{हृति})\text{पक}}{\text{हृ}} = \frac{\text{पक हृति} + \text{पक त्रि} - \text{पक हृति}}{\text{हृ}}$

$= \frac{\text{पक त्रि}}{\text{हृ}} = \frac{\text{पक त्रि १२ श}}{\text{हृ १२} \times \text{श}} = \frac{\text{त्रि} \times \text{१२} \times \text{हृ}}{\text{हृ श}} = \frac{\text{त्रि १२}}{\text{श}}$ = मच्छाक एवम

न्तरपक्षेऽपि ज्ञेयमिति ॥१८॥

हि. भा.—त्रिज्या और हृति के अन्तर को पलकर्ण से गुणकर हृति से भाग देना जो फल हो उसे दक्षिणोत्तर क्रम से पलकर्ण में जोड़ने और घटाने से दूसरा मध्यकर्ण होता है अर्थात् प्रकारान्तर से मध्यकर्ण होता है ॥१८॥

उपपत्ति

श्लोकोक्ति के अनुसार पक + $\frac{(\text{त्रि हृति})\text{ पक}}{\text{हृ}} = \frac{\text{पक हृति} + \text{पक त्रि} - \text{पक हृ}}{\text{हृ}}$

$= \frac{\text{पक त्रि}}{\text{हृ}} = \frac{\text{पक त्रि} \times \text{१२} \times \text{श}}{\text{हृ} \times \text{१२} \times \text{श}} = \frac{\text{त्रि} \times \text{१२} \times \text{हृ}}{\text{हृ} \times \text{१२} \times \text{श}} = \frac{\text{त्रि १२}}{\text{श}}$ = मध्यच्छाक

इसी तरह अन्तर पक्ष में भी समझना चाहिये ॥१८॥

इदानीं पुनर्मध्यकर्णानयनमाह ।

त्रिज्याऽक्षकर्णगुणिता स्वधृतिभक्ता वा द्युदलकर्णः ।
द्युज्यान्त्याघातहृदक्षश्रवणत्रिगुणकृतिघातो वा ॥१९॥

वि. भा.—त्रिज्या अक्षकर्णगुणिता (पलकर्णगुणिता) स्वधृतिभक्ता (हृतिविभक्ता) वा (अथवा) द्युदलकर्ण (मध्यकर्ण) भवतीति ॥

अथवा अक्षश्रवणत्रिगुणकृतिघातः (पलकर्णत्रिज्यावर्गवधः) द्युज्यान्त्या घातहृत् (द्युज्यान्त्या घातभक्तः) तदा मध्यकर्णो भवेदिति ॥१६॥

अत्रोपपत्तिः ।

अथ $\frac{\text{त्रि.१२}}{\text{शकु}}$ = मध्यकर्णः । परन्तु. $\frac{\text{१२×हृति}}{\text{पक}}$ = शङ्कु ।

तत उत्थापनेन $\frac{\text{त्रि १२}}{\frac{\text{१२×हृति}}{\text{पक}}} = \frac{\text{त्रि.१२.पक}}{\text{१२ हृति}} = \frac{\text{त्रि.पक}}{\text{हृति}}$ = मध्यकर्णः एतेन प्रथमप्रकार उपपद्यते ॥

अथ द्युज्यान्त्याघातहृदित्यादिश्लोकोक्त्या $\frac{\text{पक त्रि}^2}{\text{द्यु ज्या.अन्त्या}} = \frac{\text{पक.त्रि}^2}{\text{द्यु}\frac{\text{हृति.त्रि}}{\text{द्यु}}}$

$= \frac{\text{पक.त्रि}^2}{\text{हृति.त्रि}} = \frac{\text{पक त्रि}^2\text{. १२ श}}{\text{हृति त्रि.१२ श}} = \frac{\text{पक.त्रि.१२ शं}}{\text{हृ.१२×श}} = \frac{\text{त्रि १२×हृति}}{\text{हृति श}}$

$= \frac{\text{त्रि १२}}{\text{श}}$ = मध्यकर्णः एतेन द्वितीयप्रकार उपपद्यत इति ॥

अथवा

$\frac{\text{त्रि.१२}}{\text{शकु}}$ = मध्यकर्णः । परं $\frac{\text{१२ हृति}}{\text{पक}}$ = शङ्कु अत उत्थापनेन $\frac{\text{त्रि × १२}}{\frac{\text{१२ × हृति}}{\text{पक}}}$ =

$\frac{\text{त्रि × १२ × पक}}{\text{१२×हृति}} = \frac{\text{त्रि पक}}{\text{हृति}}$ = मकर्णः । यत $\frac{\text{अन्त्या × द्यु}}{\text{त्रि}}$ = हृति

अतो हृतेरुत्थापनेन $\frac{\text{त्रि पक}}{\frac{\text{अन्त्या द्यु}}{\text{त्रि}}} = \frac{\text{त्रि पक त्रि}}{\text{अन्त्या × द्यु}} = \frac{\text{त्रि}^2\text{ पक}}{\text{अन्त्या × द्यु}}$ = मध्यकर्णः

अत उपपन्नमाचार्योक्त मध्यकर्णानयनमिति ॥१६॥

हि. भा—वा त्रिज्या को पलकर्ण से गुणकर हृति से भाग देने से मध्यकर्ण होता है। अथवा पलकर्ण और त्रिज्यावर्ग के घात को द्युज्या और अन्त्या के घात से भाग देने से मध्यकर्ण होता है ॥ १६ ॥

उपपत्ति ।

$\frac{\text{त्रि.१२}}{\text{शंकु}}$ = मध्यकर्ण । परन्तु $\frac{\text{१२ हृति}}{\text{पक}}$ = शंकु इससे मध्यकर्ण के स्वरूप में शंकु को उत्थापन देने से $\frac{\text{त्रि.१२}}{\frac{\text{१२×हृति}}{\text{पक}}} = \frac{\text{त्रि १२.पक}}{\text{१२ हृति}} = \frac{\text{त्रि.पक}}{\text{हृति}}$ = मध्यकर्ण

इससे प्रथम प्रकार उपपन्न हुआ ॥

द्वितीय प्रकार के लिए उपपत्ति ।

$\frac{\text{त्रि } १२}{\text{शङ्कु}}$ = मध्यकर्ण । परन्तु $\frac{१२ \text{ हृति}}{\text{पक}}$ = शङ्कु इससे उत्थापन देने से

$\frac{\text{त्रि } १२}{\frac{१२ \text{ हृति}}{\text{पक}}} = \frac{\text{त्रि } १२ \text{ पक}}{१२ \text{ हृति}} = \frac{\text{त्रि पक}}{\text{हृति}}$ = मकर्ण । यत $\frac{\text{अन्त्या} \times \text{द्यु}}{\text{त्रि}}$ = हृति

इससे मध्यकर्ण स्वरूप में हृति का उत्थापन देने से $\frac{\text{त्रि पक}}{\frac{\text{अन्त्या द्यु}}{\text{त्रि}}} = \frac{\text{त्रि पक त्रि}}{\text{अन्त्या द्यु}} =$

$\frac{\text{त्रि}^2 \text{ पक}}{\text{अन्त्या द्यु}}$ = मध्यकर्ण इससे आचार्योक्त मध्यकर्णानयन उपपन्न हुआ ॥१६॥

इदानीं मध्यच्छायानयनमाह ।

दृग्ज्याऽक्षश्रुतिगुणिता तद्धृतिभक्ता द्युदलभा स्यात् ।
भावृत्ते स्वाग्रा याऽऽत्रश्रवणहता धृतिविभक्ता ॥२०॥
तत्पलभा विवरैक्य द्युदलाभा सौम्ययाम्ययोर्वा स्यात् ॥२०½॥

वि. भा.—दृग्ज्या अक्षश्रुतिगुणिता (पलकर्णगुणा) तद्धृतिभक्ता (हृतिविभक्ता) तदा द्युदलभा (मध्यच्छाया) स्यादिति ॥ २०-२०½ ॥

वा (अथवा) स्वाग्रा (त्रिज्या गोलीयाग्रा) या साऽक्षश्रवणहता (पलकर्णगुणा) धृतिविभक्ता (हृतिभक्ता) तदा भावृत्त (छायावृत्त) अग्रा भवेत् । सौम्ययाम्ययोर्गोल (उत्तरदक्षिणयोर्गोल) तत्पलभा विवरैक्य (छायाकर्णगोलीयाग्रा पलभयोरन्तरैक्य) तदा द्युदलभा (मध्यच्छाया) भवेदिति ॥२०-२०½॥

अत्रोपपत्ति ।

अथ $\frac{\text{दृग्ज्या } १२}{\text{शङ्कु}}$ = मछाया । परन्तु $\frac{१२ \text{ हृति}}{\text{पक}}$ = शङ्कु

तत उत्थापनेन $\frac{\text{दृग्ज्या } १२}{\frac{१२ \text{ हृति}}{\text{पक}}} = \frac{\text{दृग्ज्या } १२ \text{ पक}}{१२ \text{ हृति}} = \frac{\text{दृग्ज्या पक}}{\text{हृति}}$ = मछा

एतेन प्रथमप्रकार उपपद्यते ।

अथ छायाकर्णगोलीयाग्रा = $\frac{\text{अग्रा छाकर्ण}}{\text{त्रि}}$ । परन्तु $\frac{\text{त्रि पक}}{\text{हृति}}$ = छाकर्ण

तत उत्थापनेन $\frac{\text{अग्रा त्रि पक}}{\text{त्रि हृति}} = \frac{\text{अग्रा पक}}{\text{हृति}}$ = छायाकर्णगोलीयाग्रा ।

अग्रा ± शङ्कुतल = भुज, परं छायाकर्णगोले पभा = शङ्कुतल छायाकर्णे अग्रा ± पलभा = छायाकर्णगोले मध्यभुज = मध्यछाया

एतेन भावृत्ते स्वाग्रा याऽक्षश्रवणहतेत्याद्युपपद्यत इति ॥२०-२०½॥

हि. भा.—इष्ज्या को पलकर्ण से गुणा कर हृति से भाग देने से मध्यछाया होती है। अथवा अग्रा को पलकर्ण से गुणाकर हृति से भाग देने से भावृत्तीय (छायाकर्णगोलीय) अग्रा होती है। उत्तर और दक्षिण गोल क्रम से उसके (छायाकर्णगोलीयाग्रा के) और पलभा के अन्तर और योग करने से मध्यच्छाया होती है ॥२०-२०½॥

उपपत्ति।

$\frac{\text{इज्या}.१२}{\text{शंकु}}$ = मध्यच्छाया। परन्तु $\frac{१२.\text{हृति}}{\text{पक}}$ = शंकु इससे उत्थापन करने से

$\frac{\text{इज्या}.१२}{\frac{१२.\text{हृति}}{\text{पक}}} = \frac{\text{इज्या }१२.\text{पक}}{१२.\text{हृति}} = \frac{\text{इज्या पक}}{\text{हृति}}$ = मध्यच्छाया।

इससे प्रथम प्रकार उपपन्न हुआ॥ २०-२०½ ॥

छायाकर्णगोलीयाग्रा = $\frac{\text{अग्रा.छायाक}}{\text{त्रि}}$। परन्तु $\frac{\text{त्रि.पक}}{\text{हृति}}$ = छायाकर्ण

इससे छायाकर्ण गोलीयाग्रा के स्वरूप में छायाकर्ण को उत्थापन करने से

$\frac{\text{अग्रा त्रि.पक}}{\text{त्रि. हृति}} = \frac{\text{अग्रा.पक}}{\text{हृति}}$ = छायाकर्ण गोलीयाग्रा।

अग्रा±शंकुतल = भुज। परन्तु छायाकर्ण गोल में शंकुतल = पलभा इसलिये छायाकर्णगोलीयाग्रा±पलभा = छायाकर्णगोभुज = मछाया इससे भावृत्ते स्वाग्रा याऽक्षश्रवणहता इत्यादि आचार्योक्त मध्यच्छायानयन उपपन्न हुआ॥ २०-२०½ ॥

पुनर्मध्यच्छायानयनमाह

भावृत्ताग्रोनयुते पलभे दिनार्धभेस्तोऽथवा गोले।
सौम्ये याम्ये ज्ञेयाः सुधियाऽन्ये वा प्रकाराश्च ॥२१॥

वि. भा.—अथवा सौम्ये याम्ये गोले (उत्तरदक्षिणगोले) भावृत्ताग्रोनयुते पलभे (छायावृत्तीयाग्रा रहितसहिते पलभे) दिनार्धभे (मध्यच्छाये) स्तः (भवतः) वा सुधियाऽन्ये प्रकाराश्च ज्ञेया इति ॥२१॥

अत्रोपपत्तिः।

अस्योपपत्तिः पूर्वश्लोकोपपत्त्यैव स्फुटेति॥ २१ ॥

हि. भा.—अथवा उत्तर दक्षिण गोल में छायावृत्तीयाग्रा को पलभा में घटाना, और जोड़ना तब मध्यच्छाया होती है या पण्डित लोग इससे अन्य प्रकारों को भी समझें ॥२१॥

उपपत्ति।

इसकी उपपत्ति पहले श्लोक की उपपत्ति में स्पष्ट है॥ २१ ॥

इदानीं द्युज्याऽन्त्ययोरानयनमाह ।

पलकर्णहतत्रिगुणकृतिः कर्णघ्नद्युज्ययाप्ताऽन्त्या ।
कर्णाऽन्त्याघातहृता लब्धा द्युज्या ततो भवति ।।२२।।

वि भा—पलकर्णहतत्रिगुणकृतिः (पलकर्णगुणितत्रिज्यावर्ग.) कर्णघ्न-द्युज्ययाऽप्ता (छायाकर्णगुणितद्युज्यया भक्ता) तदाऽन्त्या भवति । पलकर्णहत-त्रिगुणकृति. कर्णान्त्याघातहृता (छायाकर्णान्त्याघातभक्ता) लब्धा ततोऽन्त्यातो द्युज्या भवतीति ।।२२।।

अत्रोपपत्तिः ।

अथ द्युज्यान्त्या घातहृदक्षश्रवणत्रिगुणकृतिघात इत्यादिना

$\frac{त्रि^2 \text{ } पक}{द्यु \text{ } अन्त्या}$ = मकर्ण. $\frac{त्रि^2 \text{ } पक}{द्यु \text{ } मकर्ण}$ = अन्त्या

वा $\frac{त्रि^2 \text{ } पक}{मक}$ = अन्त्या द्यु.. $\frac{त्रि^2 \text{ } पक}{मक. \text{ } अन्त्या}$ = द्यु । अत उपपद्यते आचार्यो-क्तमिति ।।२२।।

हि भा—पलकर्णगुणित त्रिज्यावर्ग में छायाकर्ण गुणित द्युज्या से भाग देने से अन्त्या होती है। पलकर्णगुणित त्रिज्यावर्ग में छायाकर्ण और अन्त्या के घात से भाग देने से द्युज्या होती है ।।२२।।

उपपत्ति ।

द्युज्यान्त्याघातहृदक्षश्रवणत्रिगुणकृतिघात" इत्यादि से

$\frac{त्रि^2 \text{ } पक}{द्यु \text{ } अन्त्या}$ = मध्यकर्ण । ∴ $\frac{त्रि^2 \text{ } पक}{द्यु. \text{ } मक}$ = अन्त्या ।

वा $\frac{त्रि^2. \text{ } पक}{मक}$ = अन्त्या द्यु ∴ $\frac{त्रि^2 \text{ } पक}{मक \text{ } अन्त्या}$ = द्यु ।

इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ।।२२।।

इदानीं हृत्यानयनमाह ।

द्युगुणत्रिगुणान्तरगुणिताऽन्त्या त्रिज्याहृत्फलोनिता च धृतिः ।
वा कुगुणचरगुणान्तरगुणिताऽन्त्या चरगुणहृत्फलोनिता च धृतिः ।।२३।।

वि. भा.—अन्त्या—द्युगुणत्रिगुणान्तरगुणिता (द्युज्यात्रिज्यान्तरगुणा) त्रिज्याहृत् (त्रिज्याभक्ता) फलोनिता (फलरहिता) अन्त्या, धृतिः (हृतिः) भवेत् । वा, अन्त्या कुगुणचरगुणान्तरगुणिता (कुज्याचरज्यान्तरगुणा) चरगुणहृत् (चरज्याभक्ता) फलोनिता (फलरहिता) अन्त्या—धृतिः (हृतिः) भवेदिति ।।२३।।

अत्रोपपत्ति.।

श्लोकोक्त्या अन्त्या— $\frac{\text{अन्त्या (त्रि—द्यु)}}{\text{त्रि}}=\frac{\text{अन्त्या त्रि—अन्त्या.त्रि+अन्त्या. द्यु}}{\text{त्रि}}$

$=\frac{\text{अन्त्या. द्यु}}{\text{त्रि}}$=हृतिः। एवमेव अन्त्या— $\frac{\text{(चरज्या—कुज्या) अन्त्या}}{\text{चरज्या}}$

$=\frac{\text{अन्त्या. चज्या—अन्त्या. चज्या+अन्त्या. कुज्या}}{\text{चज्या}}=\frac{\text{अन्त्या. कुज्या}}{\text{चरज्या}}$

$=\frac{\text{अन्त्या. द्यु}}{\text{त्रि}}$=हृति। अत आचार्योक्तं युक्तियुक्तमिति ॥२३॥

इति वटेश्वरसिद्धान्ते त्रिप्रश्नाधिकारे द्युदलभादिविधिर्नवमोऽध्यायः ॥

हि. भा —अन्त्या को त्रिज्या और द्युज्या के अन्तर से गुणकर त्रिज्या से भाग देने से जो फल हो उसे अन्त्या मे घटाने से हृति होती है। वा अन्त्या को कुज्या और चरज्या के अन्तर से गुणकर चरज्या से भाग देने से जो फल हो उसे अन्त्या मे घटाने से हृति होती है ॥२२॥

उपपत्ति।

श्लोकोक्ति के अनुसार अन्त्या— $\frac{\text{अन्त्या (त्रि—द्यु)}}{\text{त्रि}}=\frac{\text{अन्त्या. त्रि—अन्त्या. त्रि+अन्त्या. द्यु}}{\text{त्रि}}$

$=\frac{\text{अन्त्या द्यु}}{\text{त्रि}}$=हृति। इसी तरह

अन्त्या— $\frac{\text{(चरज्या—कुज्या) अन्त्या}}{\text{चज्या}}=\frac{\text{अन्त्या चज्या—अन्त्या. चज्या+कुज्या. अन्त्या}}{\text{चज्या}}$

$\frac{\text{कुज्या अन्त्या}}{\text{चज्या}}=\frac{\text{द्यु. अन्त्या}}{\text{त्रि}}$=हृति। अतः आचार्योक्त युक्तियुक्त है ॥२३॥

इति वटेश्वरसिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकारमे द्युदलभादिविधि. नामक नवम अध्याय समाप्त हुआ।



दशमोऽध्यायः

अथेष्टच्छायाविधि.

तत्र कर्णवृत्ताग्रावशेन छायाकर्णानयनमाह ।

भावृत्ताग्राक्षज्याघात कुज्याहृतो द्युतिश्रवणः ।
भावृत्ताग्रा लम्बज्याघात. क्रान्तिज्ययाप्तो वा ॥१॥
भावृत्ताग्रा त्रिज्यावधोऽथवा भाजितोऽग्रया भवति ॥१½॥

वि भा —भावृत्ताग्राक्षज्याघात (छायाकर्णगोलीयाग्राऽक्षज्यावध) कुज्या हृत (कुज्याभाजित) फल द्युतिश्रवण (छायाकर्ण) भवेत् । वा भावृत्ताग्रालम्बयाघात (छायाकर्णगोलीयाग्रा लम्बज्यावध) क्रान्तिज्ययाऽप्त (क्रान्तिज्यया भक्त फल छायाकर्णो भवेत् ॥ अथवा भावृत्ताग्रा त्रिज्यावध (छायाकर्णगोलीयाग्रा त्रिज्याघात) अग्रया भाजित फल छायाकर्णो भवति ॥१ १½॥

अत्रोपपत्ति ।

श्लोकोक्त्या $\frac{\text{छायाकर्णगोलीयाग्रा अक्षज्या}}{\text{कुज्या}} = \frac{\text{अग्रा} \times \text{छायाकर्ण} \times \text{अक्षज्या}}{\text{त्रि कु}}$

$= \frac{\text{त्रि} \times \text{छायाकर्ण}}{\text{त्रि}} = $ छायाकर्ण । यत $\frac{\text{अग्रा छाकर्ण}}{\text{त्रि}} = $ छायाकर्णगो अग्रा

$\frac{\text{अग्रा अक्षज्या}}{\text{कुज्या}} = $ त्रि

अत सिद्धम् ।

तथा $\frac{\text{छायाकर्णगोअग्रा अक्षज्या}}{\text{कुज्या}} = $ छायाकर्ण । पर $\frac{\text{अक्षज्या}}{\text{कुज्या}} = \frac{\text{लज्या}}{\text{क्रांज्या}}$

$\therefore \frac{\text{छायाकर्णगोअग्रा लज्या}}{\text{क्रांज्या}} = $ छायाकर्ण ।

तथा $\frac{\text{छायाकर्णगोअग्रा त्रि}}{\text{अग्रा}} = \frac{\text{अग्रा छायाकर्ण त्रि}}{\text{त्रि अग्रा}} = $ छायाकर्ण ।
एतेन सर्वं सिद्धमिति ॥१—१½ ।

हि. भा.—छायावृत्तीय अग्रा और अक्षज्या के घात को कुज्या से भाग देने से छायाकर्ण होता है। वा छायावृत्तीय अग्रा और लम्बज्या के घात को क्रान्तिज्या से भाग देने से छायाकर्ण होता है॥ अथवा छायावृत्तीय अग्रा और त्रिज्या के घात को अग्रा से भाग देने छायाकर्ण होता है ॥१-१½॥

उपपत्ति।

श्लोकोक्ति के अनुसार $\frac{\text{छायाकर्णगोअग्रा} \times \text{अक्षज्या}}{\text{कुज्या}} =$

$\frac{\text{अग्रा. छायाकर्ण. अक्षज्या}}{\text{त्रि. कुज्या}} = \frac{\text{त्रि. छायाकर्ण}}{\text{त्रि}} = \text{छायाक.}$ } यत. $\frac{\text{अग्रा. छाक}}{\text{त्रि}} = \text{छायाकर्णगोअग्रा}$

$\frac{\text{अग्रा. अक्षज्या}}{\text{कुज्या}} = \text{त्रि}$

∴ सिद्ध हुआ ॥१-१½॥

तथा $\frac{\text{छायाकर्णगोअग्रा. अक्षज्या}}{\text{कुज्या}} = \text{छायाकर्ण}$। लेकिन $\frac{\text{अक्षज्या}}{\text{कुज्या}} = \frac{\text{लंज्या}}{\text{क्राज्या}}$

इसलिए $\frac{\text{छायाकर्णगोअग्रा. लज्या}}{\text{क्राज्या}} = \text{छायाकर्ण}$।

तथा $\frac{\text{छायाकर्णगोअग्रा. त्रि}}{\text{अग्रा}} = \frac{\text{अग्रा. छायाकर्ण. त्रि}}{\text{अग्रा}} = \text{छायाकर्ण}$

∴ सिद्ध हो गया ॥१-१½॥

इदानीं कर्णवृत्ताग्रावशेन छायानयनमाह।

भावृत्ताग्रा दृग्ज्यावधेऽग्रया भाजिते भवेच्छाया ॥२॥

वि. भा.—भावृत्ताग्रा दृग्ज्यावधे (छायाकर्णगोलीयाग्रा दृग्ज्याघाते) अग्रया भाजिते (अग्राभक्ते) तदा छाया भवेदिति ॥२॥

अत्रोपपत्ति।

श्लोकोक्त्या $\frac{\text{छायाकर्णगोअग्रा. दृग्ज्या}}{\text{अग्रा}} = \frac{\text{अग्रा. छायाकर्ण. दृग्ज्या}}{\text{त्रि. अग्रा}}$

$= \frac{\text{छायाकर्ण. दृग्ज्या}}{\text{त्रि}} = \text{छाया}$ ∴ सिद्धम् ॥२॥

हि. भा.—छायावृत्तीयाग्रा और दृग्ज्या के घात को अग्रा से भाग देने से छाया होती है ॥२॥

उपपत्ति

स्वोक्ति के अनुसार $\frac{\text{छायाकर्णगोऽग्रा दृग्ज्या}}{\text{अग्रा}} = \frac{\text{अग्रा छाकर्ण दृग्ज्या}}{\text{त्रि अग्रा}} =$

$\frac{\text{छाकर्ण दृग्ज्या}}{\text{त्रि}} =$ छाया। अत आचार्योक्त युक्तियुक्त है ॥२॥

इदानीं शङ्क्वानयनमाह।

त्रिज्याऽर्काभ्यस्ता कर्णहृता सर्वदा भवेच्छङ्कुः।
दृग्ज्या सूर्याभ्यस्ता प्रभा हृता वा भवेच्छङ्कुः ॥३॥

वि भा —त्रिज्या—अर्काभ्यस्ता (द्वादशगुणिता) कर्णहृता (छायाकर्णभक्ता) सदा सर्वदा शङ्कुर्भवेत्। वा दृग्ज्या सूर्याभ्यस्ता (द्वादशगुणिता) प्रभाहृता (छायाभक्ता) तदा शङ्कुर्भवेदिति ॥३॥

अत्रोपपत्ति ।

छायाक्षेत्रानुपातेन $\frac{\text{त्रि १२}}{\text{छायाकर्ण}} =$ शकु

तथा $\frac{\text{दृग्ज्या १२}}{\text{छाया}} =$ शकु। यत $\frac{\text{त्रि}}{\text{छाकर्ण}} = \frac{\text{दृग्ज्या}}{\text{छाया}}$

∴ युक्तियुक्तमेवोक्तमाचार्येणेति ॥३॥

हि भा —त्रिज्या को बारह से गुणकर छायाकर्ण से भाग देने से शकु होता है। वा दृग्ज्या को बारह से गुणकर छाया से भाग देने से शकु होता है ॥३॥

उपपत्ति ।

छायाक्षेत्र के अनुपात से $\frac{\text{त्रि. १२}}{\text{छाकर्ण}} =$ शकु। तथा $\frac{\text{त्रि}}{\text{छाकर्ण}} = \frac{\text{दृग्ज्या}}{\text{छाया}}$

इसलिये $\frac{\text{त्रि १२}}{\text{छाकर्ण}} = \frac{\text{दृग्ज्या १२}}{\text{छाया}} =$ शकु। ∴ आचार्योक्त युक्तियुक्त है ॥३॥

पुनस्तत्साधनान्याह।

समनृक्रान्त्यवलम्बज्या सूर्यहि ताडित नृतलम्।
क्रमशोऽग्रा कुज्याऽक्षगुणपलमाहृतं नरा: स्युर्वा ॥४॥

वि भा —वा नृतल (शङ्कुतल) समनृक्रान्त्यवलम्बज्या सूर्ये (समशङ्कुक्रान्तिज्यालम्बज्याद्वादशभि) ताडित (गुणित) क्रमश अग्राकुज्याऽक्षगुणपलहृत (अग्राकुज्याऽक्षज्यापलभाभिर्भक्त) तदा नरा (शङ्कव) स्युरिति ॥४॥

अत्रोपपत्ति ।

अक्षक्षेत्रानुपातेन $\frac{\text{समश}\times\text{शङ्कुतल}}{\text{अग्रा}}=\text{शङ्कु}$ । $\frac{\text{क्राज्या शङ्कुतल}}{\text{कुज्या}}=\text{शङ्कु}$ ।

$\frac{\text{लज्या शङ्कुतल}}{\text{अक्षज्या}}=\text{शङ्कु}$ । $\frac{१२\times\text{शङ्कुतल}}{\text{पभा}}=\text{शकु}$ । अत आचार्योक्तपद्य मुपपन्नम् ॥४॥

हि भा—अथवा शकुतल को समश कु क्रान्तिज्या, लम्बज्या और द्वादश से अलग अलग गुणकर क्रम से अग्रा, कुज्या, अक्षज्या और पलभा से भाग देने से श कु प्रमाण होते हैं ॥४॥

उपपत्ति ।

अक्षक्षेत्र के अनुपात से $\frac{\text{समश शकुतल}}{\text{अग्रा}}=\text{शङ्कु}$ । $\frac{\text{क्राज्या शङ्कुतल}}{\text{कुज्या}}=\text{शकु}$ ।

$\frac{\text{लज्या शकुतल}}{\text{अक्षज्या}}=\text{शकु}$ । तथा $\frac{१२\ \text{शङ्कुतल}}{\text{पलभा}}=\text{शङ्कु}$ । इससे आचार्योक्त पद्य उपपन्न हुआ ॥४॥

अथेष्टशङ्क्वानयने ।

स्वधृतिस्वान्त्ये गुणिते द्युदलनरेण क्रमाद्विभक्ते च ।
धृत्यान्त्याभ्यां लब्धावभीष्टकालोद्भवौ शङ्कू ॥५॥

वि भा—स्वधृतिस्वान्त्ये (इष्टहृतीष्टान्त्ये) द्युदलनरेण (दिनार्धशङ्कुना) गुणिते, क्रमात् (क्रमशः) धृत्यान्त्याभ्यां (हृतिमध्यान्त्याभ्यां) विभक्ते (भाजिते) लब्धौ अभीष्टकालोद्भवौ शङ्कू (इष्टकालिकौ शङ्कू) भवेतामिति ॥ मध्यान्त्यैवा-न्त्या कथ्यते सर्वत्रेति ॥५॥

अत्रोपपत्ति ।

अक्षक्षेत्रानुपातेन $\frac{\text{शकु}\times\text{इहृ}}{\text{हृ}}=\text{इष्टशकु}$ । शकु $=$ मध्यशकु । हृ $=$ मध्यहृति । परन्तु $\frac{\text{अन्त्या द्यु}}{\text{त्रि}}=\text{हृ}$ अत उत्थापनेन $\frac{\text{शकु}\times\text{इहृ}}{\frac{\text{अन्त्या द्यु}}{\text{त्रि}}}=$

$\frac{\text{शकु}\times\text{इहृ}\times\text{त्रि}}{\text{अन्त्या द्यु}}=\frac{\text{शकु इअन्त्या}}{\text{अन्त्या}}=\text{इष्टशकु}$ । अत उपपन्नमाचार्योक्तम् ॥५॥

हि भा—इष्टहृति और इष्टान्त्या को दिनार्धशङ्कु से गुणकर क्रम से हृति और अन्त्या से भाग देने से इष्टशङ्कु होते हैं। यहा दो प्रकार से इष्टशङ्कु कहा गया है ॥५॥

उपपत्ति

अक्षक्षेत्र में अनुपात से $\frac{\text{शङ्कु}_0 \cdot \text{इहृ}}{\text{हृ}}$ = इष्टशङ्कु$_0$ | शङ्कु$_0$=मध्यशङ्कु$_0$ हृति=मध्यहृति

परन्तु $\frac{\text{अन्त्या द्यु}}{\text{हृ}}$ =हृ इष्टशङ्कु$_0$ के स्वरूप में हृति को उत्थापन देने से $\frac{\text{शङ्कु}_0 \cdot \text{इहृ}}{\frac{\text{अन्त्या द्यु}}{\text{त्रि}}}$

$= \frac{\text{शङ्कु इहृ त्रि}}{\text{अन्त्या द्यु}} = \frac{\text{शङ्कु}_0 \text{ इष्टान्त्या}}{\text{अन्त्या}}$ =इष्टशङ्कु$_0$।

इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥५॥

पुन प्रकारान्तराभ्या तदानयनमाह।

स्वधृतिविवर्जिता धृत्या नतोत्क्रमज्यया वा हतो द्युदलशङ्कु:।
धृत्याऽन्त्याभ्या भक्त फलोनित स एव चेष्टनर ॥६॥

वि भा—द्युदलश कु (मध्यश कु) स्वधृतिविवर्जिताधृत्या (इष्टहृतिरहितहृत्या) वा नतोत्क्रमज्यया (नतकालोत्क्रमज्यया) हत (गुणित) धृत्याऽन्त्याभ्या (हृत्यन्ताभ्या) भक्त (भाजित) फलोनित (फलरहित) स एव (द्युदलश कु रेव) तदेष्टश कुर्भवेदिति ॥६॥

अत्रोपपत्ति।

अक्षक्षेत्रानुपातेन $\frac{\text{श इहृ}}{\text{हृ}}$ =इष्टश कु, एतस्य श को विशोधनेन

$\text{श} - \frac{\text{श इहृ}}{\text{हृ}} = \frac{\text{श हृ} - \text{श इहृ}}{\text{हृ}} = \frac{\text{श (हृ} - \text{इहृ)}}{\text{हृ}}$ =श —इश

इद शङ्क्वन्तर(शकु)मस्माद्विशोध्य तदेष्टशकु =श—शङ्क्वन्तर=इष्टश= $\frac{\text{श इहृ}_0}{\text{हृ}}$

अथ $\frac{\text{इहृ}}{\text{अन्त्या}} = \frac{\text{इ अन्त्या}}{\text{अन्त्या}}$ $\frac{\text{श इहृ}}{\text{हृ}} = \frac{\text{श इअन्त्या}}{\text{अन्त्या}}$ =इशकु । एतस्या(श)त्र विशोधनेन श—$\frac{\text{श इअन्त्या}}{\text{अन्त्या}} = \frac{\text{श अन्त्या—श इ अन्त्या}}{\text{अन्त्या}}$ =

$\frac{\text{श (अन्त्या—इष्टान्त्या)}}{\text{अन्त्या}} = \frac{\text{श नतोत्क्रमज्या}}{\text{अन्त्या}}$ =शङ्क्वन्तर =श —अन्तर=

$\frac{\text{श . इ अन्त्या}}{\text{अन्त्या}}$ =इश कु। अत उपपन्नमाचार्योक्तम् ॥६॥

हि भा.—इष्टश कु को इष्ट रहित हृति से वा नतकाल की उत्क्रमज्या से क्रमश गुणाकर, हृति और अन्त्या से भाग देने से इष्टशकु होते हैं ॥६॥

उपपत्ति

अक्षक्षेत्र के अनुपात से $\frac{\text{श इहृ}}{\text{हृ}}$ = इ शक्व इसको (श) में घटाने से श $-\frac{\text{श इहृ}}{\text{हृ}}$

$=\frac{\text{श हृ — श इहृ}}{\text{हृ}}=\frac{\text{श (हृ — इहृ)}}{\text{हृ}}$ = शक्वन्तर, इस शक्वन्तर को (श) इससे घटाने से

$\frac{\text{श इहृ}}{\text{हृ}}$ = इष्टशकु ।

$\frac{\text{इहृ}}{\text{हृ}}=\frac{\text{इअन्त्या}}{\text{अन्त्या}}$ $\frac{\text{श इहृ}}{\text{हृ}}=\frac{\text{श इअन्त्या}}{\text{अन्त्या}}$ = इशकु इसको (श) इससे

घटाने से श $-\frac{\text{श इअन्त्या}}{\text{अन्त्या}}=\frac{\text{श अन्त्या — श इअन्त्या}}{\text{अन्त्या}}=\frac{\text{श (अन्त्या — इअन्त्या)}}{\text{अन्त्या}}=$

$\frac{\text{श नतोत्क्रमज्या}}{\text{अन्त्या}}$ = शक्वन्तर, श शक्वन्तर = इशकु = $\frac{\text{श इअन्त्या}}{\text{अन्त्या}}$

अत आचार्योक्त उपपन्न हुआ ।।६।।

इदानीं पुनरिष्टशङ्क्वानयनमाह ।

क्रान्त्युत्क्रमगुणरविहतिरक्षश्रुतिहृत्पलोत्क्रमज्या च ।
युग्विवरं तत्स्वान्त्यघ्नं त्रिज्याहृत्फलवियुक्तासेष्टनरः ।।७।।

वि भा —क्रान्त्युत्क्रमगुणार्कविहृति (क्रान्त्युत्क्रमज्या द्वादशघात ।) अक्षश्रुतिहृत् (पलकर्णहृत्) पलोत्क्रमज्या (अक्षांशोत्क्रमज्या) युक् (युता) विवरं (विवरसंज्ञकम्) तत्स्वान्त्यघ्नं (इष्टान्त्यया गुणितं) त्रिज्याहृत् (त्रिज्याभक्तं) फलवियुक्ता सा (फलरहिता सेष्टान्त्या) इष्टनरः (इष्टशङ्कुः) भवेदिति ।।७।।

अत्रोपपत्ति

पलोक्त्या $\frac{१२}{\text{पक}}$ (त्रि — द्यु) = $\frac{\text{१२} \times \text{क्रान्त्युत्क्रमज्या}}{\text{पक}}$

$=\frac{\text{१२ त्रि}}{\text{पक}}-\frac{\text{१२ द्यु}}{\text{पक}}$ = लज्या $-\frac{\text{१२ द्यु}}{\text{पक}}$ अत्राक्षांशोत्क्रमज्या योजनेन लज्या —

$\frac{\text{१२} \times \text{द्यु}}{\text{पक}}$ + अक्षांशोत्क्रमज्या = त्रि $-\frac{\text{१२ द्यु}}{\text{पक}}$ = विवरसंज्ञकम् इष्टमिष्टान्त्यज्यया

गुणितं त्रिज्याभक्तं तदा $\frac{\text{इअन्त्या}}{\text{त्रि}}\left(\text{त्रि}-\frac{\text{१२ द्यु}}{\text{पक}}\right)$

= इअन्त्या $-\frac{\text{१२ द्यु . इअन्त्या}}{\text{पक . त्रि}}$ = इअन्त्या $-\frac{\text{१२ इहृ}}{\text{पक}}$ = इअन्त्या — इशकु

इअन्त्या — (इअन्त्या — इशकु) = इष्टशकु । अत आचार्योक्तं युक्तियुक्तमिति ।।७।।

हि भा —क्रान्ति की उत्क्रमज्या और बारह के घात में पलकर्ण से भाग देकर फल में अक्षांश की उत्क्रमज्या जोडकर जो हो उसका नाम विवर रखना, उसको (विवर को) इष्टान्त्या से गुण कर त्रिज्या से भाग देने से जो हो उसको स्वान्त्या (इष्टान्त्या) में घटाने से इष्टशंकु होते हैं ॥ ७ ॥

उपपत्ति ।

श्लोकोक्ति के अनुसार $\frac{१२ \text{ क्राउज्या}}{\text{पक}} = \frac{१२}{\text{पक}}(\text{त्रि}-\text{द्यु}) = \frac{१२ \text{ त्रि}}{\text{पक}} - \frac{१२ \text{ द्यु}}{\text{पक}}$

$= \text{लज्या} - \frac{१२ \text{ द्यु}}{\text{पक}}$ इसमे अक्षांश की उत्क्रमज्या जोडने से

$\text{लज्या} - \frac{१२ \text{ द्यु}}{\text{पक}} + \text{अक्षांशोत्क्रमज्या} = \text{त्रि} - \frac{१२ \text{ द्यु}}{\text{पक}} = \text{विवर}$ ।

इसको इष्टान्त्या से गुणकर त्रिज्या से भाग देने से इअन्त्या— $\frac{१२ \text{ द्यु इअन्त्या}}{\text{पक त्रि}}$

$= \text{इष्टान्त्या} - \frac{१२ \text{ इह}}{\text{पक}} = \text{इष्टान्त्या} - \text{इग}$ इसको इष्टान्त्या में घटाने से इष्टशंकु होते हैं ॥ ७ ॥

इदानीं मध्यशङ्कुतोऽभीष्टशङ्कोरानयनमाह ।

विवरोनत्रिज्याघ्ना स्वान्त्योनाऽन्त्या त्रिभज्यया भक्ता ।
फलवियुतो मध्यनरोऽभीष्टनरो युतो मध्य. ॥८॥

वि भा —स्वान्त्योनाऽन्त्या (इष्टान्त्या रहिताऽन्त्या) विवरोनत्रिज्याघ्ना पूर्वानीतविवररहितत्रिज्यागुणिता) त्रिभज्यया भक्ता (त्रिज्याभक्ता) फलवियुत (फलरहित) मध्यनर (दिनार्धशंकु) अभीष्टनर (इष्टशंकु) भवेत् । फलयुतोऽभीष्टनरो मध्य (मध्यशंकु) भवेदिति ॥८॥

अत्रोपपत्ति ।

पूर्वानीतविवरस्वरूपम् $= \text{त्रि} - \frac{१२ \text{ द्यु}}{\text{पक}}$ अनेन रहिता त्रिज्या

$\text{त्रि} - \left(\text{त्रि} - \frac{१२ \text{ द्यु}}{\text{पक}}\right) = \text{त्रि} - \text{त्रि} + \frac{१२ \text{ द्यु}}{\text{पक}} = \frac{१२ \text{ द्यु}}{\text{पक}}$ अनेन

(अन्त्या—इष्टान्त्या) गुणिता त्रिज्यया भाजिता तदा

$\frac{१२ \text{ द्यु}}{\text{पक त्रि}}(\text{अन्त्या} - \text{इअन्त्या}) = \frac{१२ \text{ द्यु अन्त्या}}{\text{पक त्रि}} - \frac{१२ \text{ द्यु इअन्त्या}}{\text{पक त्रि}}$

$=$ दि $\frac{१}{२}$ शकु — इशकु अनेन रहितो दिनार्धशकुरिष्टशकुर्भवेद्यदि चात्र वेष्ट शकुर्योज्यते तदा दिनार्धशकुर्भवेदिति ॥८॥

हि भा — इष्टान्त्या रहित अन्त्या को विवर रहित त्रिज्या से भाग देने से जो फल हो उसको दिनार्ध शकु म घटाने से इष्टशकु होता है और फल म इष्टशकु को जोडने से दिनार्धशकु होना है ॥८॥

उपपत्ति ।

श्लोकोक्ति के अनुसार क्रिया करते हैं । पूर्वानीत विवर का स्वरूप $=$ त्रि — $\frac{\text{१२ द्यु}}{\text{पक}}$

इसको त्रिज्या मे घटाने से त्रि — $\left(\text{त्रि} - \frac{\text{१२ द्यु}}{\text{पक}}\right) = \text{त्रि} - \text{त्रि} + \frac{\text{१२ द्यु}}{\text{पक}} = \frac{\text{१२ द्यु}}{\text{पक}}$

इससे (अन्त्या — इअन्त्या) इसको गुणकर त्रिज्या से भाग देने से

$$\frac{\text{१२ द्यु}}{\text{पक त्रि}}(\text{अन्त्या} - \text{इअन्त्या}) = \frac{\text{१२ द्यु अन्त्या}}{\text{पक त्रि}} - \frac{\text{१२ द्यु इअन्त्या}}{\text{पक त्रि}}$$

$=$ दि $\frac{१}{२}$ शकु — इष्टशकु $=$ फल, दि $\frac{१}{२}$ श — फल $=$ दि $\frac{१}{२}$ श — (दि $\frac{१}{२}$ श — इश) $=$ इश वा फल $+$ इश $=$ दि $\frac{१}{२}$ — इश $+$ इश $=$ दि $\frac{१}{२}$ श

आचार्योक्त कथन युक्तियुक्त है ॥८॥

इदानीमुन्नतकालानयनमाह ।

धृति कुज्योनसमेता सौम्येतरयोर्भवेद् गुण्य ।
त्रिज्या चरजीवाभ्यो गुणितो गुण्यो द्युगुणकुगुणभक्त ॥९॥
तद्धनुरूनसमेत चरासुभि स्यात्समुन्नतकम् ॥९½॥

वि भा — सौम्येतरयोर्गोले (उत्तरदक्षिणयोर्गोले) धृति (हृति) कुज्योनसमेता (कुज्यया रहिता सहिता च) तदा गुण्य (कला) भवति । गुण्य (कला) पृथक् त्रिज्याचरजीवाभ्या (त्रिज्याचरज्याभ्या) गुणित क्रमश द्युगुणकुगुणभक्त (द्युज्या कुज्याभ्या भाजित) तद्धनु (तच्चाप) चरासुभिर्गोलक्रमेणोनसमेत तदा समुन्नतक (उन्नतकाल) भवेदिति ॥ ९½ ॥

अथोपपत्ति ।

ग्रहात्स्वोदयास्तसूत्रोपरि कृतो लम्बो हृति (धृति), तथा ग्रहादेव निरक्षोदयास्तसूत्रोपरिलम्ब कला (गुण्य) । अथोत्तरदक्षिणगोलक्रमेण हृति $\mp$ कुज्या $=$ कला $=$ गुण्यस्वोदयास्तनिरक्षोदयास्तसूत्रयोरन्तरम् $=$ कुज्या । अथ रविबिम्बके न्द्रगत ध्रुवप्रोतवृत्तनाडीवृत्तसम्पातात्पूर्वस्वस्तिक यावत्सूत्रचापम् । एतज्ज्यासूत्र सज्ञ ज्ञातव्यम् । अथ भूकेन्द्राद्रविबिम्बकेन्द्रगतध्रुवप्रोतवृत्तनाडीवृत्तसम्पात यावदानीत त्रिज्यासूत्र कर्ण । सूत्र भुज । सूत्रमूलाद्भूकेन्द्र यावत्पूर्वापरसूत्रे कोटि

रिति कर्णभुजकोटिभिरुत्पन्नमेकं त्रिभुजम् । तथाऽहोरात्रवृत्तगर्भकेन्द्राद्रविबिम्बकेन्द्रावधि द्युज्याकर्णः । कला (गुण्य.) भुजः । निरक्षोदयासूत्रे कोटिरिति कर्णभुजकोटिभिरुत्पन्नं द्वितीय त्रिभुजम् । एतयोस्त्रिभुजयोस्त्रिज्याद्युज्ये समानान्तरे तथा कोटिरेखे अपि समानान्तरे तेनैकादशाध्याययुक्त्या कोटिकर्णाभ्यामुत्पन्नकोणमाने समाने निष्पन्ने, एकैकः कोणः समकोणत्वात्समान एवातस्तृतीयकोणयोरपि समत्वादुक्तत्रिभुजयोः साजात्यानुपात. $\frac{\text{गुण्य}\times\text{त्रि}}{\text{द्यु}} = \frac{\text{कला . त्रि}}{\text{द्यु}} = \frac{\text{कला . चज्या}}{\text{कुज्या}}$ = सूत्र एतच्चाप रविबिम्बकेन्द्रगतध्रुवप्रोतवृत्तनाडीवृत्तसम्पातात्पूर्वस्वस्तिकावधिनाडीवृत्ते सूत्रचापम् क्षितिजाहोरात्रवृत्तसम्पातगतध्रुवप्रोतवृत्तनाडीवृत्तसम्पातात्पूर्वस्वस्तिकावधिनाडीवृत्ते चरम् । एतच्चर गोलक्रमेण सूत्रचापे रहितं सहितं च तदा रविबिम्बकेन्द्रोपरिगतध्रुवप्रोतवृत्तनाडीवृत्तसम्पाताद्रविबिम्बोयाहोरात्रवृत्तक्षितिजवृत्त सम्पातगत ध्रुवप्रोतवृत्त नाडीवृत्तसम्पात यावन्नाडीवृत्ते—उन्नतकालमानं भवेदिति ॥ ६$\frac{1}{2}$ ॥

हि. भा.—उत्तर गोल मे और दक्षिण गोल मे हृति (धृति) मे कुज्या को घटाने से और जोड़ने से गुण्य (कला) होता है । गुण्य (कला) को अलग अलग त्रिज्या और चरज्या से गुणकर क्रम से द्युज्या और कुज्या से भाग देने से जो फल हो उसके चाप मे चरासु को गोल क्रम से हीन और युत करने से उन्नत काल होता है ॥ ६$\frac{1}{2}$ ॥

उपपत्ति ।

ग्रह से स्वोदयास्त सूत्र के ऊपर जो लम्ब होता है उसे हृति(धृति)कहते है । ग्रह से निरक्षोदयास्त सूत्र के ऊपर जो लम्ब होता है उसे कला (गुण्य) कहते हैं । स्वोदयास्त सूत्र और निरक्षोदयास्त सूत्र के अन्दर कुज्या है अत उत्तर दक्षिण गोल क्रम से हृति∓कुज्या = कला = गुण्य । रविबिम्ब केन्द्रगत ध्रुवप्रोतवृत्त नाडीवृत्त के सम्पात से पूर्व स्वस्तिकपर्यंत नाडीवृत्त मे सूत्रचाप है । इसकी ज्या सूत्र है । भूकेन्द्र से रविबिम्ब केन्द्रगत ध्रुवप्रोतवृत्त नाडीवृत्त सम्पातगत रेखा त्रिज्या सूत्रकर्ण, सूत्रभुज, सूत्रमूल से भूकेन्द्रपर्यन्त पूर्वापर सूत्र में कोटि, इन कर्ण, भुज और कोटि से उत्पन्न एकजात्य त्रिभुज है । और अहोरात्रवृत्तगर्भ केन्द्र से रविबिम्ब केन्द्रावधि द्युज्या कर्ण, गुण्य (कला) भुज और निरक्षोदयास्त सूत्र मे कोटि, इन कर्ण, भुज और कोटि से उत्पन्न द्वितीय जात्यत्रिभुज है । इन दोनो त्रिभुजो मे त्रिज्या और द्युज्या समानान्तर है, तथा कोटि रेखा भी समानान्तर है इसलिए एकादशाध्याय की युक्ति से कोटि और कर्ण से उत्पन्न कोण दोनो त्रिभुज मे बराबर हुए । दोनो त्रिभुजों में एक-एक कोण समकोण है इसलिए अवशिष्ट तृतीय कोण भी तुल्य होगा, अत. दोनो त्रिभुजो के सजातीय होने से अनुपात करते है $\frac{\text{गुण्य त्रि}}{\text{द्यु}} = \frac{\text{कला त्रि}}{\text{द्यु}} = \frac{\text{कला}\times\text{चरज्या}}{\text{कुज्या}}$ = सूत्र । इसके चाप करने से रविबिम्ब केन्द्रगत ध्रुवप्रोत वृत्त नाडीवृत्त के सम्पात से पूर्व स्वस्तिक पर्यन्त नाडीवृत्त मे सूत्रचाप हुआ । क्षितिजाहोरात्रवृत्त सम्पातगत ध्रुवप्रोतवृत्त नाडीवृत्तसम्पात से पूर्वस्वस्तिक पर्यन्त नाडीवृत्त मे चरासु है । गोलक्रम से सूत्रचाप मे चरासु को घटाने से और जोड़ने से रविबिम्ब केन्द्रोपरिगत ध्रुव प्रोतवृत्त नाडीवृत्त के सम्पात से

रविबिम्बीयाहोरात्रवृत्त क्षितिजवृत्त के सम्पातगत ध्रुवप्रोतवृत्त नाडीवृत्त के सम्पात पर्यन्त नाडीवृत्त में उन्नत कालमान होता है ॥ ६½ ॥

इदानीं प्रकारान्तरेणोन्नतकालानयनमाह ।

द्युदलश्रवणहताऽन्त्या स्वेष्टश्रवणोद्धृता फलस्य धनुः ।
चरासुभिरूनयुतं वा समुन्नतं सौम्यदक्षिणयोः ॥ १० ॥

वि भा—अन्त्या (मध्यान्त्या) द्युदलश्रवणहता (मध्यकर्णगुणा) स्वेष्टश्रवणोद्धृता (स्वेष्टच्छायाकर्णेनभक्ता) फलमिष्टान्त्या स्यात्, तद्धनु (तच्चाप) सौम्यदक्षिणयो (उत्तरदक्षिणयोर्गोले) स्वचरासुभि ऊनयुत तदा समुन्नत (उन्नतकालमान) भवेदिति ॥१०॥

अत्रोपपत्ति ।

$\frac{\text{इहृति त्रि}}{\text{द्यु}}$ = इष्टान्त्या । पर $\frac{\text{हृति इश}}{\text{दि}\frac{१}{२}\text{श}}$ = इहृति इष्टान्त्यास्वरूपे इष्टहृतेरुत्थापनेन $\frac{\text{हृति इश त्रि}}{\text{द्यु दि}\frac{१}{२}\text{श}} = \frac{\text{अन्त्या इश}}{\text{दि}\frac{१}{२}\text{श}}$ = इष्टान्त्या । यत $\frac{\text{हृति त्रि}}{\text{द्यु}}$ = अन्त्या

$= \frac{\text{अन्त्या इश} \times १२ \times \text{त्रि}}{\text{दि}\frac{१}{२}\text{श १२ त्रि}} = \frac{\text{अन्त्या} \times \text{इश} \times \text{दि}\frac{१}{२}\text{ छाकर्ण}}{१२ \times \text{त्रि}}$

$= \frac{\text{अन्त्या} \times \text{दि}\frac{१}{२}\text{ छाकर्ण}}{\frac{१२ \times \text{त्रि}}{\text{इश}}} = \frac{\text{अन्त्या दि}\frac{१}{२}\text{ छाकर्ण}}{\text{इछाकर्ण}}$ = इष्टान्त्या

अस्याश्चापमुत्तरदक्षिणयोर्गोलक्रमेण चरासुभिर्हीन युत तदोन्नतकालो भवेदिति ॥१०॥

हि भा—वा अन्त्या को दिनार्धकर्ण से गुणाकर इष्टच्छायाकर्ण से भाग देकर जो फल हो उसका चाप करना उसको उत्तर गोल और दक्षिण गोल क्रम से अपनी चरासु करके घटाना और जोड़ना तब उन्नतकाल होता है ॥ १० ॥

उपपत्ति ।

$\frac{\text{इहृति त्रि}}{\text{द्यु}}$ = इष्टान्त्या, यत $\frac{\text{हृति इश}}{\text{दि}\frac{१}{२}\text{श}}$ = इहृति

इसलिये $\frac{\text{हृति इश त्रि}}{\text{द्यु दि}\frac{१}{२}\text{ श}}$ = इष्टान्त्या = $\frac{\text{अन्त्या इश}}{\text{दि}\frac{१}{२}\text{ श}}$, यत $\frac{\text{हृति त्रि}}{\text{द्यु}}$ = अन्त्या

हरभाज्यौ त्रि × १२ गुणितौ तदा $\frac{\text{अन्त्या इश १२ त्रि}}{\text{दि}\frac{१}{२}\text{ श १२ त्रि}} = \frac{\text{अन्त्या इश दि}\frac{१}{२}\text{ छाक}}{\text{१२ त्रि}}$

$= \frac{\text{अन्त्या दि}\frac{१}{२}\text{ छाक}}{\frac{\text{१२ त्रि}}{\text{इश}}} = \frac{\text{अन्त्या दि}\frac{१}{२}\text{ छाक}}{\text{इछाक}}$ = इष्टान्त्या इसके चाप में उत्तरगोल और दक्षिण गोल में चरासु को घटाने और जोड़ने से उन्नत कालमान होता है ॥१०॥

इदानीमुन्नतकालादिष्टान्त्यानयनमाह ।

चरदलवियुतसमेतात्सौम्ययाम्यगोलयोर्जीवा: ।
उन्नतजीवा ज्ञेया यथा कलाभ्यस्तथाऽसुभ्यः ॥११॥

वि भा —सौम्ययाम्यगोलयो. (उत्तरदक्षिणगोलयो) चरदलवियुतसमेतात् (चरासुरहितायुताच्च) उन्नतकालाद्याज्या सोन्नतकालज्या (सूत्रसञ्ज्ञिका) ज्ञेया इति कलाभ्यो यथा भवन्ति तथैवाऽसुभ्योऽपि भवन्तीति ॥११॥

अस्योपपत्ति ।

अथोत्तरगोलक्षितिजाहोरात्रवृत्तयो. सम्पातोपरिगत ध्रुवप्रोतवृत्त पूर्वस्वस्तिकादधः नाडीवृत्ते लगति तद्ध्रुवप्रोतवृत्त नाडीवृत्ते यत्र लग्न तत पूर्वस्वस्तिक यावन्नाडीवृत्ते चरासव । तथा तस्मादेव विन्दो (क्षितिजाहोरात्रवृत्तसम्पातोपरिगतध्रुवप्रोतवृत्तनाडीवृत्तसम्पातात्) ग्रहोपरिगत ध्रुवप्रोतवृत्त नाडीवृत्तसम्पात यान्नाडीवृत्ते उन्नतकालोऽस्तोऽत्रोन्नतकाले यदि चरासुमान शोध्यते तदा पूर्वस्वस्तिकाद्ग्रहोपरि ध्रुवप्रोतवृत्त नाडीवृत्तसम्पात यावन्नाडीवृत्ते सूत्रचाप भवति, चापस्यास्यज्यासूत्रसञ्ज्ञकम् । दक्षिणगोले विपरीतस्थितिर्बोध्येति ॥११॥

हि भा —उत्तर गोल मे उन्नतासु मे चरासु को घटाने से और दक्षिणगोल मे जोड़ने से जो चाप होता है उसकी ज्या उन्नतज्या (सूत्र) होती है । यह उन्नतासु और चरासु से जैसे होती है उसी तरह उन्नतकला और चरकला से होती है ॥ ११ ॥

उपपत्ति ।

उत्तरगोल मे क्षितिज और अहोरात्रवृत्त के सम्पात के ऊपर जो ध्रुव प्रोतवृत्त जाते है वह नाडीवृत्त मे पूर्व स्वस्तिक से नीचा लगता है जहा लगता है वहा से ग्रहोपरिगत ध्रुवप्रोतवृत्तनाडीवृत्त के सम्पात तक उन्नतकाल है तथा उसी विन्दु (क्षितिज और अहोरात्रवृत्त के सम्पातोपरिगत ध्रुव प्रोतवृत्त नाडीवृत्त के सम्पात विन्दु) से पूर्वस्वस्तिक तक चरासु है, अत उन्नतकाल मे चरासु को घटाने से पूर्वस्वस्तिक से ग्रहोपरिगत ध्रुवप्रोतवृत्त नाडीवृत्त के सम्पात तक सूत्रचाप रहता है इसकी ज्या उन्नतज्या (सूत्र) होती है ॥ ११ ॥

सा चरदलगुणयुक्ता सौम्ये याम्ये विवर्जिता स्वान्त्या ।
अन्त्यानतोत्क्रमज्या विवर्जिता सा भवेत्स्वान्त्या ॥ १२ ॥

वि. भा —सौम्ये (उत्तरगोले) सा (उन्नतज्या) चरदलगुणयुक्ता (चरज्यायुता) याम्ये (दक्षिणगोले) विवर्जिता (हीना) तदेष्टान्त्या स्यात् । नतोत्क्रमज्या विवर्जिता (नतकालोत्क्रमज्यया रहिता) अन्त्या (मध्यान्त्या) सा स्वान्त्या (इष्टान्त्या) भवेदिति ॥ १२ ॥

अत्रोपपत्ति.।

उत्तरगोले क्षितिजाहोरात्रवृत्त सम्पातोपरिगत ध्रुव प्रोतवृत्तसम्पातात्पूर्वापर रेखाया समानान्तरा रेखा कार्या सा च पूर्वापररेखातोऽध एव भवेत्तदुपरीष्टग्रहो परिगतध्रुवप्रोतवृत्तनाडीवृत्तसम्पाताल्लम्ब कार्यं सैवेष्टान्त्या, इष्टग्रहोपरि ध्रुव-प्रोतवृत्तनाडीवृत्तयो सम्पात्पूर्वापररेखोपरि यो लम्ब सोन्नतकालज्या (सून) भवति। समानान्तररेखा पूर्वापररेखयो सर्वत्र चरज्या तुल्यमेवान्तरमत उन्नत-ज्या + चरज्या = इष्टान्त्या। दक्षिणगोले विपरीतस्थिति। मध्यान्हकाले ग्रहस्य याम्योत्तरवृत्ते स्थितत्वात्तदुपरिगत ध्रुवप्रोतवृत्त याम्योत्तरवृत्तमेव तन्नाडीवृत्ते निरक्षखस्वस्तिके लगति निरक्षखस्वस्तिकात्पूर्वापरसूत्रोपरिलम्बो निरक्षोर्ध्वाधर-सून तेनेदमेव समानान्तररेखोपर्यपि लम्बो भवेत्तेन भूकेन्द्रान्निरक्षखस्तिक यावत् = त्रि अत्र यदि चरज्या (पूर्वापररेखा समानान्तररेखयोरन्तररूपा) योज्यते निरक्ष-खस्वस्तिकात्समानान्तररेखा यावत्मध्यान्त्या (अन्त्या) भवेत्। दक्षिणगोले विपरीत-स्थिति। अन्त्याया यदीष्टान्त्यामान शोध्यते तदा नतकालोत्क्रमज्या भवति यदि नतकालोत्क्रमज्या मानमन्त्याया शोधयेत्तदेष्टान्त्या भवेदेवेति ॥ ८ ॥

हि भा —उत्तरगोल म उन्नतकालज्या म चरज्या को जोडने से और दक्षिणगोल म उन्नत कालज्या म चरज्या को घटाने से इष्टान्त्या होती है वा अन्त्या (मध्यान्त्या) मे नतकाल की उत्क्रमज्या को घटाने से इष्टान्त्या होती है ॥१२॥

उपपत्ति।

उत्तरगोल म क्षितिज और अहोरात्रवृत्त के सम्पात के ऊपर ध्रुवप्रोतवृत्त नाडीवृत्त मे पूव स्वस्तिक से नीचा लगता है जहा लगता है उस बिन्दु से पूर्वा पर रेखा के समानान्त-रेखा पूर्वापर सूत्र से नीचा होगा इसके ऊपर इष्टग्रह के ऊपर ध्रुवप्रोतवृत्त नाडीवृत्त के सम्पात बिन्दु से जो लम्ब होता है वही इष्टान्त्या है इष्टग्रह के ऊपर ध्रुवप्रोतवृत्त और नाडी वृत्त के सम्पाते पूर्वापर रेखा के ऊपर जो लम्ब होता है वह उन्नतकालज्या (सूत्र) है पूर्वा पर रेखा और समानान्तर रेखा के अन्तर हर जगह चरज्या के बराबर है अत उन्नत ज्या + चरज्या = इष्टान्त्या। दक्षिणगोल मे विपरीत स्थिति होती है। अन्त्या — इष्टान्त्या = नतकालोत्क्रमज्या वा अन्त्या — नतकालोत्क्रमज्या = इष्टान्त्या गोल के ऊपर ये सब बातें स्पष्ट देखने मे आती हैं ॥ १२ ॥

पुनरुन्नतकालानयनमाह।

त्रिगुणचरगुणाभ्या हृता धृति र्द्युगुणकुगुणाभ्या हृदन्त्या।
चरदलवियुक् समेता धनुश्च प्राग्वत्समुन्नतकम् ॥ १३ ॥

वि भा —धृति (हृति) पृथक् त्रिगुण चरगुणाभ्या (त्रिज्याचरज्याभ्या) हृता (गुणिता) द्युगुणकुगुणाभ्या (द्युज्याकुज्याभ्या) पृथक् हृत् (भक्ता) तदा-ऽन्त्या भवेत्। सा चाऽन्त्या गोलक्रमेण चरदलवियुक्समेता (उत्तरगोले चररहिता,

दक्षिणगोले चरज्यायुक्ता) तदा यद्भवेत्तद्धनु. (चापं) प्राग्वत् (पूर्ववत्) समुन्नतक (उन्नतकालो) भवेदिति ॥ १३ ॥

अत्रोपपत्तिः ।

अथ $\frac{\text{इहृति.त्रि}}{\text{द्यु}}$ = इअन्त्या । यत· $\frac{\text{त्रि}}{\text{द्यु}} = \frac{\text{चरज्या}}{\text{कुज्या}}$ = अतउत्थापनेन

$\frac{\text{इहृ.चरज्या}}{\text{कुज्या}}$ = इअन्त्या ।

उत्तरगोले इअन्त्या—चरज्या = सूत्र = उन्नतकालज्या, अस्याश्चापं तदोन्नतकालः
दक्षिणगोले इअन्त्या + चरज्या = उन्नतकालज्या, अस्याश्चापमुन्नतकाल. ।

∴ सिद्धम् ॥१३॥

हि भा —इष्टहृति को अलग अलग त्रिज्या और चरज्या से गुणकर द्युज्या और कुज्या से भाग देने से इष्टान्त्या होती है उत्तरगोल मे उसमे चरज्या घटाने से दक्षिण गोल मे चरज्या जोड़ने से जो हो उसके चाप उन्नतकाल होता है ॥१३॥

उपपत्ति ।

$\frac{\text{इहृति त्रि}}{\text{द्यु}}$ = इष्टान्त्या = $\frac{\text{इहृति चरज्या}}{\text{कुज्या}}$ ∵ $\frac{\text{त्रि}}{\text{द्यु}} = \frac{\text{चरज्या}}{\text{कुज्या}}$

तब पूर्ववत् इष्टान्त्या—चरज्या = उन्नतकालज्या, उत्तरगोल मे
दक्षिणगोल मे इष्टान्त्या + चरज्या = उन्नतकालज्या
इसके चाप करने से उन्नतकाल होता है ॥१३॥

इदानीं विशेषमाह ।

अन्त्याऽश्चरार्धजीवा न विशुद्धयति चे द्विशेष चापेन ।
हीनं चरार्धमथवा विनगत शेषोन्नतः कालः ॥ १४ ॥

वि. भा.—अन्त्याश्चरार्धजीवा चेन्न विशुद्धयति (यद्यन्त्यातश्चरार्धज्या न विशुद्धयति) तदातयोर्विशेषचापेन (द्वयोरन्तर चादेनार्थाद्विलोमशोधनेन यदवशिष्टं तच्चापेनेत्यर्थः) चरार्धं हीन कार्य तदा शेष मुन्नकालः स्यादिति ॥१४ ॥
अत्रोपपत्तिरतिसुगममेवेति ॥ १४ ॥

इति वटेश्वरसिद्धान्ते त्रिप्रश्नाधिकारे इष्टच्छायाविधिनामको दशमोऽध्याय. समाप्तः ।

हि. भा.—यदि अन्त्या मे चरार्धज्या घटाने से न घटे तब विलोम शोधन करने से जो हो उसके चाप को चरार्ध में घटाने से उन्नतकाल होता है ॥ १४ ॥
इसकी उपपत्ति अति सरल है ॥ १४ ॥

इति वटेश्वरसिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार मे इष्टच्छायाविधि नामक दशम अध्याय समाप्त हुआ॥

०—०

एकादशोऽध्यायः

अथ सममण्डलप्रवेशविधि

तत्रादौ कोणदृग्ज्यानयनमाह

समदृङ्मण्डलविवरे क्षितिजे जीवा निगद्यते दिग्ज्या ।
दिग्ज्याकृतिरग्रा कृत्या हीना कृतशक्रताडिता निहता ॥१॥
त्रिज्याकृत्या प्रथमोऽग्रा रव्यक्षभाहता त्रिज्या ।
त्रिज्यागुणिता ह्यपरो विभक्तौ तौ च स्फुटौ स्याताम् ॥२॥
दिग्ज्यार्कघातकृत्यक्षाभा त्रिज्यावधवर्गयोगेन ।
अन्यपवर्गयुतादाद्या-मूल युतोनित चान्येन ॥३॥
सौम्येतरयोर्गोलयोर्दिशि विदिङ्नर सूर्ये ।
उत्तरयाम्यस्थे समवृत्तादुदग्रवौ पदेन युक्तञ्च ॥४॥
समदक्षिणगे रवावग्रा यत्र भवेन्न दिग्ज्योना ।
दिग्ज्या वर्गोनाऽग्रा कृतिवशेन तत्र चाऽद्योऽन्य ॥५॥
आद्योनादन्यवर्गतो यत्पद तेन हीनस्तापन शङ्कु ।
एवमेव हि कोणानामन्याना वा सुखेन ससाध्य ॥६॥

वि भा—समदृङ्मण्डलविवरे क्षितिजे जीवा (सममण्डल दृङ्मण्डलयो क्षितिजे यदन्तर पूर्व स्वस्तिकाद्दृग्वृत्तक्षितिजवृत्तयो सम्पात यावद्दिगशचाप तज्ज्या) द्विज्या कथ्यते । दिग्ज्याकृति (दिग्ज्यावर्ग) अग्राकृत्याहीना (अग्रावर्ग रहिता) कृतशक्रताडिता (द्वादशवर्गगुणिता) त्रिज्याकृत्या निहता (त्रिज्यावर्गगुणित) प्रथम (प्रथमसज्ञक), अग्रारव्यक्षभाहता त्रिज्या (अग्रा द्वादशपलभागुणिता त्रिज्या) त्रिज्या गुणिता अपर (परसज्ञक) द्विज्याप्वर्कघात कृत्यक्षाभा त्रिज्या-वधवर्गयोगेन (दिग्ज्या द्वादशघातवर्गस्य पलभा त्रिज्याघातवर्गस्य च योगेन) तौ प्रथमपरौ विभक्तौ तदा स्फुटौ (विशिष्टौ) प्रथमपरौ (आद्यान्यौ) स्याताम् । अन्य-वर्गयुतादाद्यात् (विशिष्टान्यवर्गयुताद्विशिष्टादाद्यात्) मूल यत्तदन्येन (विशिष्टपरेण) सूर्ये सौम्येतरगोलयो (उत्तरगोलदक्षिणगोलयोश्च स्थिते रवौ) युतोनित विदिङ्नर (कोणशङ्कु) भवेत् । शेष स्पष्टमिति ॥१-६॥

अत्रोपपत्ति

अत्र कोणशङ्कुप्रमाणम् = य

तदा छायाकर्णगोले भुज $= \frac{\text{द्विज्या छा}}{\text{त्रि}}$ । तथा अग्रा ± शङ्कुतल = भुज

एतस्य भुजस्य छायाकर्ण

गोले परिणामनेन $\frac{\text{छाक}}{\text{त्रि}}\left(\text{अग्रा} \pm \text{श तल}\right) = \frac{\text{छाक}}{\text{त्रि}}\left(\text{अग्रा} \pm \frac{\text{पभा य}}{१२}\right)$

= छायाकर्णगोले भुज ।

एतयोश्छायाकर्णगोलीयभुजयो समीकरणम्

$\frac{\text{द्विज्या छा}}{\text{त्रि}} = \frac{\text{छाक}}{\text{त्रि}}\left(\text{अग्रा} \pm \frac{\text{पभा य}}{१२}\right)$ पर $\frac{\text{दृज्या छाक}}{\text{त्रि}}$ = छा अत उत्थापनेन

$\frac{\text{द्विज्या दृज्या छाक}}{\text{त्रि त्रि}} = \frac{\text{छाक}}{\text{त्रि}}\left(\text{अग्रा} \pm \frac{\text{पभा य}}{१२}\right) = \frac{\text{द्विज्या दृज्या}}{\text{त्रि}}$

$= \text{अग्रा} \pm \frac{\text{पभा य}}{१२}$ वर्गकरणेन

$\frac{\text{द्विज्या}^2\ \text{दृज्या}^2}{\text{त्रि}^2} = \text{अग्रा}^2 \pm \frac{\text{२अ पभा य}}{१२} + \frac{\text{पभा}^2\ \text{य}^2}{१२^2} = \frac{\text{द्विज्या}^2\ (\text{त्रि}^2 - \text{य}^2)}{\text{त्रि}^2}$

$= \frac{\text{द्विज्या}^2\ \text{त्रि}^2 - \text{द्विज्या}^2\ \text{य}^2}{१२}$ छेदगमेन

$\text{अग्रा}^2\ १२^2\ \text{त्रि}^2 \pm \text{२अ पभा य त्रि}^2\ १२ + \text{पभा}^2\ \text{य}^2\ \text{त्रि}^2$
$= \text{द्विज्या}^2\ \text{त्रि}^2\ १२^2 - \text{द्विज्या}^2\ \text{य}^2\ १२^2$

समशोधनेन

$\text{पभा}^2\ \text{य}^2\ \text{त्रि}^2 + \text{द्विज्या}^2\ \text{य}^2\ १२^2 \pm \text{२अ पभा य त्रि}^2\ १२$
$= \text{द्विज्या}^2\ \text{त्रि}^2\ १२^2 - \text{अग्रा}^2\ १२^2\ \text{त्रि}^2$
$= \text{य}^2\ (\text{पपत}^2\ \text{त्रि}^2 + \text{द्विज्या}^2\ १२^2) \pm \text{२अ पभा य त्रि}^2 .\ १२$
$= १२^2\ \text{त्रि}^2\ (\text{द्विज्या}^2 - \text{अग्रा}^2) = \text{प्रथम} = \text{आद्य}$
अत्र अग्रा पभा १२ त्रि^2 = पर = अन्य
तदा $\text{य}^2\ (\text{पभा}^2\ \text{त्रि}^2 + \text{द्विज्या}^2\ १२^2) \pm$ २ य अन्य = प्रथम = आद्य
पक्षौ $\text{पभा}^2\ \text{त्रि}^2 + \text{द्विज्या}^2\ १२^2$ भत्तौ तदा

$\text{य}^2 \pm \frac{\text{२य अन्य}}{\text{पभा}^2\ \text{त्रि}^2 + \text{द्विज्या}^2\ १२^2} = \frac{\text{आद्य}}{\text{पभा}^2\ \text{त्रि}^2 + \text{द्विज्या}\ १२^2}$

$= \text{य}^2 \pm \text{२य अन्य}^2 = \text{आ}^2$ पमयो 'अ' योजनेन

$य^2 \pm २य\ अन्य + अन्य^2 = आ^2 + अन्य^2$ मूलेन $य \pm अन्य^2 = \sqrt{आ^2 + अन्य^2}$

$य = \sqrt{आ^2 + अन्य^2} \mp अन्य^2$ एवमाचार्योक्तमुपपन्नम् ।

यदा च दिग्ज्या <अग्रा तदाऽपि पूर्ववदेवोपपत्तिः कार्येति ॥१-६॥

हि भा—पूर्वापर वृत्त और दृग्वृत्त के अन्तर (पूर्वस्वस्तिक से दृग्वृत्त क्षितिजवृत्त के सम्पात तक) में क्षितिजवृत्तीय चाप दिगंशचाप है इसकी जीवा (ज्या) दिग्ज्या कहलाती है। दिग्ज्या वर्ग में अग्रावर्ग को घटाकर एक सौ चवालीस या द्वादश वर्ग और त्रिज्यावर्ग से गुणा करने से जो होता है उसका नाम प्रथम (आद्य) है। अग्रा बारह पलभा और त्रिज्या वर्ग के घात का नाम अपर (पर-अन्य) है। दिग्ज्या और बारह के घात वर्ग में त्रिज्या और पलभा के घात वर्ग जोड़ करके जो है उससे प्रथम और अन्य को भाग देने से विशिष्ट प्रथम (आद्य) तथा विशिष्ट पर (अन्य) होता है। आद्य में अन्यवर्ग जोड़ कर मूल जो हो उसको सूर्य के उत्तर गोल और दक्षिण गोल में रहने से अन्य करके रहित और सहित करने से कोण शङ्कु होता है। शेष बातें स्पष्ट हैं ॥१-६॥

उपपत्ति

यहां कोण शङ्कु के मान $= य$

तब छायाकर्ण गोल में भुज $= \frac{दिज्या\ छा}{त्रि}$ । तथा अग्रा $\pm$ शतल $=$ भुज इसको

छायाकर्ण गोल में परिणामन करने से $\frac{छाक}{त्रि}\left(अग्रा \pm श\ त\right) = \frac{छाक}{त्रि}\left(अग्रा \pm \frac{पभा\ य}{१२}\right)$

अतः छायाकर्ण गोलीय दोनों भुजा के समीकरण करने से $\frac{छाक}{त्रि}\left(अग्रा \pm \frac{पभा\ य}{१२}\right)$

$\frac{दिज्या\ छा}{त्रि}$ परन्तु $\frac{दृज्या\ छाक}{त्रि} =$ छा उत्थापन देने से

$$\frac{छाक}{त्रि}\left(अग्रा \pm \frac{पभा\ य}{१२}\right) = \frac{दृज्या\ छाक\ दिज्या}{त्रि\ त्रि}$$

$$अग्रा \pm \frac{पभा\ य}{१२} = \frac{दृज्या.\ दिज्या}{त्रि}$$ वर्ग करने से

$$\frac{दिज्या^2\ दृज्या^2}{त्रि^2} = अग्रा^2 \pm \frac{२अ\ पभा\ य}{१२} + \frac{पभा^2\ य^2}{१२^2}$$

$$= \frac{दिज्या^2\ (त्रि^2 - य^2)}{त्रि^2} = \frac{दिज्या^2\ त्रि^2 - दिज्या^2\ य^2}{त्रि^2}$$ छेदगम करने से

$अ^2\ १२^2 \pm २अ\ पभा\ य\ १२\ त्रि^2 + पभा^2\ य^2\ त्रि^2 = दिज्या^2\ त्रि^2\ १२^2 - दिज्या^2$ $य^2\ १२^2$ समशोधन से $य^2\ (पभा^2\ त्रि^2 + दिज्या^2\ १२^2) \pm २अ\ पभा^2\ १२^2\ त्रिय =$

$दिज्या^2\ १२^2\ त्रि^2 - अ^2\ १२^2\ त्रि^2 = १२^2\ त्रि^2\ (दिज्या^2 - अ^2)$

यहा १२^{२} त्रि^{२} (दिज्या^{२}—अ^{२}) = १४४ त्रि^{२}(दिज्या^{२}—अग्रा^{२}) = प्रथम = आद्य

तथा अ पभा १२ त्रि^{२} = पर = अन्य

तत्र य^{२} (पभा^{२}. त्रि^{२} + दिज्या^{२} १२^{२}) ± २य. अन्य = आद्य दोनो पक्षो मे पभा^{२}. त्रि^{२} + दिज्या^{२} १२^{२}

इससे भाग देने मे $\dfrac{\text{य}^{२} \pm \text{२य अन्य}}{\text{पभा}^{२}\ \text{त्रि}^{२} + \text{दिज्या}^{२}\ \text{१२}^{२}} = \dfrac{\text{आद्य}}{\text{पभा}^{२}\ \text{त्रि}^{२} + \text{दिज्या}^{२}\ \text{१२}^{२}}$

= य^{२} ± २य अन्य^{१} = आद्य^{१} दोनो पक्षो म अन्य^{१} जोडने से

य^{२} ± २य अन्य^{१} + अन्य^{२} = आद्य^{१} + अन्य^{१} मूल लेने से

य ± अन्य^{१} = $\sqrt{\text{आद्य}^{१} + \text{अन्य}^{२}}$ अत य = $\sqrt{\text{आ}^{१} + \text{अन्य}^{२}}$ + अन्य^{१}

इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ।

यदि दिज्या < अग्रा तो भी पूर्वोपपत्ति के अनुसार उपपत्ति करनी चाहिए ।।१-६।।

इदानीं समशङ्कुसाधनान्याह

त्रिज्या क्रान्तिगुणाघ्ना पलज्यया भाजिता समना ।
पलकर्णहता चापमजीवाऽक्षभाहृता समना ।।७।।
वाऽग्राक्रान्तिज्याहतिरुर्वीयोद्धृता सम शङ्कुः ।
वा स्वधृतिघ्नापमजीवा नृतलहृता समनरो भवति ।।८।।
लम्बज्याऽग्राघातात्पलज्यया भाजितात्समनरो वा ।
द्वादशगुणिता वाऽग्रा विषुवच्छायोद्धृता समना ।।९।।
इष्टनराभ्यस्ताऽग्रा नृतलविभक्ताऽथवा समः शङ्कुः ।
उद्धृत्याग्राकृत्योर्विशेषमूलं समनरो वा स्यात् ।।१०।।

वि. भा —त्रिज्या क्रान्तिगुणाघ्ना (क्रान्तिज्या गुणिता) पलज्यया भाजिता (अक्षज्याभक्ता) तदा समना (समशङ्कुः) भवेत् । वा अपमजीवा (क्रान्तिज्या) पलकर्णहता (पलकर्णगुणिता) अक्षभा हृता (पलभा भक्ता) तदा समना (समशङ्कुः) भवेत् ।। वा अग्रा क्रान्तिज्याहति (अग्राक्रान्तिज्याघात) उर्वीजीवोद्धृता (कुज्याभक्ता) सम शङ्कुर्भवेत् । वा अपमजीवा (क्रान्तिज्या) स्वधृतिघ्ना (हृतिगुणिता) नृतलहृता (शङ्कुतलभक्ता) तदा समनर (समशङ्कुः) भवति ।। वा लम्बज्याऽग्राघातात् पलज्यया (अक्षज्यया) भाजितात् समनर (समशङ्कुः) भवेत् । वा अग्रा द्वादशगुणिता—विषुवच्छायोद्धृता (पलभाभक्ता) तदा समना (समशङ्कुः) भवेत् ।। वा अग्रा इष्टनराभ्यस्ता (इष्टशङ्कुगुणिता) नृतलविभक्ता (शङ्कुतलभक्ता) तदा सम शङ्कुर्भवेत् । वा उद्धृत्याग्राकृत्योर्विशेषमूल (तद्धृत्यग्रावर्गान्तरमूल) समशङ्कुर्भवेदिति ।।७-१०।।

अत्रोपपत्तिः ।

$$\text{अक्षक्षेत्रानुपातेन } \frac{\text{त्रि. क्रांज्या}}{\text{अक्षज्या}} = \text{समशङ्कु} = \frac{\text{पलक. क्रांज्या}}{\text{पभा}} \text{ । यतः}$$

$$\frac{\text{त्रि}}{\text{अक्षज्या}} = \frac{\text{पक}}{\text{पभा}} \text{ तथा } \frac{\text{अग्रा. क्राज्या}}{\text{कुज्या}} = \text{समशङ्कु} = \frac{\text{हृति क्राज्या}}{\text{शकुतल}} \text{ । यतः}$$

$$\frac{\text{अग्रा}}{\text{कुज्या}} = \frac{\text{हृति}}{\text{शतल}} \text{ तथाच } \frac{\text{लज्या. अग्रा}}{\text{अक्षज्या}} = \text{समशंकु} = \frac{12 \times \text{अग्रा}}{\text{पभा}} \text{ । यतः}$$

$$\frac{\text{लज्या}}{\text{अज्या}} = \frac{12}{\text{पभा}} \text{ अथवा } \frac{\text{इशंकु. अग्रा}}{\text{शतल}} = \text{समशंकु । तथाच}$$

$$\sqrt{\text{तद्धृति}^2 - \text{अग्रा}^2} = \text{समशंकु । } \therefore \text{ सर्वं सिद्धम् ॥७-१०॥}$$

हि. भा.—त्रिज्या को क्रान्तिज्या से गुणकर अक्षज्या से भाग देने से समशङ्कु मान होता है । वा क्रान्तिज्या को पलकर्ण से गुणकर पलभा से भाग देने से समशङ्कु होता है ॥ वा अग्रा और क्रान्तिज्या के घात में कुज्या से भाग देने से समशङ्कु होता है । वा क्रान्तिज्या को हृति से गुणाकर शङ्कुतल से भाग देने से समशङ्कु होता है ॥ वा लम्बज्या और अग्रा के घात में अक्षज्या से भाग देने से समशङ्कु होता है । वा अग्रा को बारह से गुणकर पलभा से भाग देने समशङ्कु होता है ॥ अथवा इष्टशङ्कु और अग्रा के घात में शङ्कुतल से भाग से समशङ्कु होता है । वा तद्धृति और अग्रा के वर्गान्तर मूल समशङ्कु होता है ॥७-१०॥

उपपत्ति ।

$$\text{अक्षक्षेत्र के अनुपात से } \frac{\text{त्रि क्राज्या}}{\text{अक्षज्या}} = \text{समशङ्कु} = \frac{\text{पक क्राज्या}}{\text{पभा}} \because \frac{\text{त्रि}}{\text{अक्षज्या}}$$

$$= \frac{\text{पक}}{\text{पभा}} \text{ तथा } \frac{\text{अग्रा क्राज्या}}{\text{कुज्या}} = \text{समशङ्कु} = \frac{\text{हृति. क्राज्या}}{\text{शतल}} \text{ । } \because \frac{\text{अग्रा}}{\text{कुज्या}} = \frac{\text{हृति}}{\text{शतल}}$$

$$\text{तथा } \frac{\text{लज्या अग्रा}}{\text{अक्षज्या}} = \text{समशं} = \frac{\text{१२ अग्रा}}{\text{पभा}} \text{ । } \because \frac{\text{लज्या}}{\text{अक्षज्या}} = \frac{12}{\text{पभा}} \text{ अथवा}$$

$$\frac{\text{इशङ्कु. अग्रा}}{\text{शतल}} = \text{समश । तथा } \sqrt{\text{तद्धृति}^2 - \text{अग्रा}^2} = \text{समशङ्कु ॥}$$

∴ सिद्ध हो गया ॥७-१०॥

पुनस्तदानयनान्याह ।

पलकर्णाऽर्ककुगुणहतिरक्षभाकृतिहृता समः शङ्कुः ।
वा लम्बत्रिगुणकुगुणहतिरक्षभाकृतिहृता समना ॥११॥
नरधृतिकुगुणाभ्यासो नृतलकृतिहृतोऽथवा समः शङ्कुः ।
घृतिकुगुणार्कवधो वाऽक्षाभा नृतलघातहृत्समना ॥१२॥

वि. भा.—पलकर्णार्कगुणहतिः (पलकर्णद्वादशकुज्याघातः) अक्षभाकृतिहृता (पलभावर्गभक्ता) तदा समः शंकुर्भवेत्। वा लम्बत्रिगुणकुगुणहतिः (लम्बज्यात्रिज्याकुज्याघातः) अक्षभाकृतिहृता (पलभावर्गभक्ता) तदा समना (समशंकुः) भवेत् ॥ अथवा नरघृतिकुगुणाभ्यासः (शंकुहृतिकुज्याघातः) नृतलकृतिहृतः (शंकुतलवर्गभक्त) सम शंकुर्भवेत्। वा घृतिकुगुणार्कवधः (हृतिकुज्या द्वादशघातः) अक्षभानृतलघातहृत् (पलभाशंकुतलघातभक्तः) तदा समना (समशंकु.) भवेदिति ॥१२

अत्रोपपत्ति. ।

$$\frac{१२.\ अग्रा}{पभा} = सम\ कु \text{। परन्तु } \frac{पक.\ कुज्या}{पभा} = अग्रा \text{ तत उत्थापनेन}$$

$$\frac{१२ \times पक\ कुज्या}{पभा\ पभा} = \frac{१२\ पक\ कुज्या}{पभा^2} = समशं = \frac{लज्या.\ त्रि.\ कुज्या}{पभा^2}$$

$$\text{वा } \frac{शंकु \times अग्रा}{शंकुतल} = समशं \text{। परन्तु } \frac{हृ.\ कुज्या}{शंतल} = अग्रा \text{ तत उत्थापनेन}$$

$$\frac{शंकु\ हृति\ कुज्या}{शंत\ शंत} = \frac{शंकु\ हृति.कुज्या}{शंत^2} = समशंकु \text{।}$$

$$= \frac{१२ \times हृति\ कुज्या}{पभा\ शंतल} \text{। यत. } \frac{शंकु}{शंतल} = \frac{१२}{पभा}$$

∴ सिद्धम् ॥११-१२॥

हि भा—पलकर्ण द्वादश और कुज्या के घात में पलभावर्ग से भाग देने से समशंकु होता है। वा लम्बज्या त्रिज्या और कुज्या घात में पलभावर्ग से भाग देने से समशंकु होता है॥ अथवा शंकुहृति और कुज्याघात में शंकुतलवर्ग से भाग देने से समशंकु होता है। वा हृतिकुज्या और द्वादश के घात में पलभा और शंकुतल के घात से भाग देने से समशंकु होता है॥११-१२॥

उपपत्ति

$$\frac{१२.\ अग्रा}{पभा} = समशंकु \text{। परन्तु } \frac{पक\ कुज्या}{पभा} = अग्रा \text{ उत्थापन देने से}$$

$$\frac{१२ \times पक.\ कुज्या}{पभा\ पभा} = \frac{१२.\ पक\ कुज्या}{पभा^2} = समशंकु = \frac{लज्या\ त्रि.\ कुज्या}{पभा^2}$$

$$\text{वा } \frac{शंकु \times अग्रा}{शंतल} = समशंकु \text{ लेकिन } \frac{हृति\ कुज्या}{शंतल} = अग्रा$$

उत्थापन देने से

$$\frac{\text{[illegible]} \times \text{कुज्या}}{\text{श तल} \times \text{श तल}} = \frac{\text{श क} \times \text{हृति} \times \text{कुज्या}}{\text{श तल}^2} = \text{समशं कु} = \frac{12 \times \text{हृति} \times \text{कुज्या}}{\text{श तल. पभा}}$$

∴ सिद्ध हुआ ॥११-१२॥

इदानीं समकर्णानयनान्याह ।

द्वादशगुणिताऽक्षज्या क्रान्तिज्या भाजिता समश्रवणः ।
लम्बज्याऽक्षभयाघ्ना क्रान्तिज्याहृत्सम. कर्णः ॥१३॥
त्रिज्याऽक्षभयाऽभ्यस्ता वाऽग्रा भक्ता समश्रुतिर्भवति ।
त्रिज्याक्षश्रुतिघातात्तदधृत्याप्तात्सम. श्रवणः ॥१४॥
त्रिगुणपलभाकृतिहतिरक्षश्रुतिकुगुणघातहृत्कर्णः ।
वाऽक्षाभाघ्नाऽक्षज्या कुज्याभक्ता सम. श्रवणः ॥१५॥

वि. भा.—अक्षज्या द्वादशगुणिता क्रान्तिज्याभाजिता (क्रान्तिज्याभक्ता) तदा समश्रवणः (समकर्णः) भवेत् । लम्बज्या, अक्षभयाघ्ना (पलभया गुणिता) क्रान्तिज्याहृत् (क्रान्तिज्याभक्ता) तदा सम: कर्णो भवेत् । वा त्रिज्या, अक्षभयाऽभ्यस्ता (पलभया गुणिता) अग्रा भक्ता तदा समश्रुतिः (समकर्णः) भवति । त्रिज्याऽक्षश्रुतिघातात् (त्रिज्यापलकर्णवधात्) तद्धृत्याप्तात् (तद्धृतिभक्तात्) सम श्रवणः (समकर्णः) भवेत् ॥ त्रिगुणपलभाकृतिहतिः (त्रिज्यापलभावर्गहति) अक्षश्रुतिकुगुणघातहृत् (पलकर्णकुज्याघातभक्ता) तदा समकर्णो भवेत् । वा अक्षज्या अक्षाभाघ्ना (पलभागुणिता) कुज्या भक्ता तदा सम. श्रवणः (समकर्णः) भवेदिति ॥१३-१५॥

अत्रोपपत्ति

$$\frac{\text{त्रि } 12}{\text{समशं कु}} = \text{समकर्ण} = \frac{\text{त्रि } 12}{\frac{\text{त्रि क्रांज्या}}{\text{अज्या}}} = \frac{\text{त्रि } 12 \text{ अक्षज्या}}{\text{त्रि क्रांज्या}} = \frac{12 \times \text{अक्षज्या}}{\text{क्रांज्या}}$$

$$\therefore \frac{\text{अक्षज्या}}{\text{लज्या}} = \frac{\text{पभा}}{12} \quad 12 \times \text{अक्षज्या} = \text{पभा लज्या} \therefore \frac{12 \text{ अज्या}}{\text{क्रांज्या}}$$

$$\frac{\text{पभा लज्या}}{\text{क्रांज्या}} = \text{सकर्ण यतः} = \frac{\text{लंज्या}}{\text{क्रांज्या}} = \frac{\text{त्रि}}{\text{अग्रा}} \therefore \frac{\text{पभा लज्या}}{\text{क्रांज्या}} = \frac{\text{पभा त्रि}}{\text{अग्रा}} = \text{सम-}$$

$$\text{कर्ण । यतः } \frac{\text{पभा तद्धृति}}{\text{पक}} = \text{अग्रा} \therefore \frac{\text{पभा त्रि}}{\text{अग्रा}} = \frac{\text{पभा त्रि}}{\frac{\text{पक तद्धृति}}{\text{पक}}} = \frac{\text{पभा त्रि पक}}{\text{पभा तद्धृति}}$$

$$= \frac{\text{त्रि पक}}{\text{तद्धृति}} = \text{सकर्ण ।}$$

$$\text{अथ } \frac{\text{पभा त्रि}}{\text{अग्रा}} = \text{समकर्ण} = \frac{\text{पभा त्रि}}{\frac{\text{पक कुज्या}}{\text{पभा}}} = \frac{\text{पभा त्रि पभा}}{\text{पक कुज्या}} = \frac{\text{त्रि पभा}^2}{\text{पक कुज्या}} =$$

$\frac{\text{पभा अक्षज्या}}{\text{कुज्या}}$ एतावता सर्वं सिद्धम् ॥१३-१४॥

इति वटेश्वरसिद्धान्ते त्रिप्रश्नाधिकारे सममण्डल-
प्रवेशविधिरेकादशोऽध्यायः ।

हि. भा.—अक्षज्या को बारह से गुणकर क्रान्तिज्या से भाग देने से समकर्ण होता है। लम्बज्या को पलभा से गुणकर क्रान्तिज्या से भाग देने से समकर्ण होता है। वा त्रिज्या को पलभा से गुणकर अग्रा से भाग देने से समकर्ण होता है। त्रिज्या और पलकर्ण के घात में तद्धृति (तद्धृति) से भाग देने से समकर्ण होता है॥ त्रिज्या और पलभावर्ग के घात को पलकर्ण और कुज्या के घात से भाग देने से समकर्ण होता है। वा अक्षज्या को पलभा से गुणकर कुज्या से भाग देने से समकर्ण होता है ॥१३-१४॥

उपपत्ति।

$$\frac{\text{त्रि}\ १२}{\text{समशङ्कु}} = \text{समकर्ण} = \frac{\text{त्रि}\ १२}{\frac{\text{त्रि क्राज्या}}{\text{अक्षज्या}}} = \frac{\text{त्रि}\ १२\ \text{अक्षज्या}}{\text{त्रि. क्राज्या}} = \frac{१२\ \text{अक्षज्या}}{\text{क्राज्या}}\ ।$$

$$\frac{\text{अक्षज्या}}{\text{लज्या}} = \frac{\text{पभा}}{१२} \qquad \text{अक्षज्या}\ १२ = \text{पभा लज्या}\ \therefore\ \frac{१२\ \text{अक्षज्या}}{\text{क्राज्या}} = \frac{\text{पभा लज्या}}{\text{क्राज्या}}$$

$$= \text{समक परन्तु}\ \frac{\text{लज्या}}{\text{क्राज्या}} = \frac{\text{त्रि}}{\text{अग्रा}}\ \therefore\ \frac{\text{पभा लज्या}}{\text{क्राज्या}} = \frac{\text{पभा त्रि}}{\text{अग्रा}} = \text{समकर्ण}$$

$$\text{परन्तु}\ \frac{\text{पभा तद्धृति}}{\text{पलक}} = \text{अग्रा} \qquad \frac{\text{पभा त्रि}}{\text{अग्रा}} = \frac{\text{पभा त्रि}}{\frac{\text{पभा तद्धृति}}{\text{पक}}} = \frac{\text{त्रि पक}}{\text{तद्धृति}} = \text{समक}$$

$$\text{अथ}\ \frac{\text{पभा त्रि}}{\text{अग्रा}} = \text{समक} = \frac{\text{पभा त्रि}}{\frac{\text{पक कुज्या}}{\text{पभा}}} = \frac{\text{पभा त्रि पभा}}{\text{पक कुज्या}} = \frac{\text{त्रि पभा}^2}{\text{पक कुज्या}} =$$

$$\frac{\text{पभा अक्षज्या}}{\text{कुज्या}} = \text{समकर्ण}\ \therefore\ \text{सिद्ध हुआ}\ ॥१३\text{-}१४॥$$

इति वटेश्वरसिद्धान्त में त्रिप्रश्नाधिकार में सममण्डलप्रवेशविधि नामक
एकादश अध्याय समाप्त हुआ।



द्वादशोऽध्यायः

अथ कोणशङ्कुविधि

तत्रादौ कोणशङ्क्वानयनमाह ।

त्रिज्याकृतिदलमग्राकृतिवियुगिनकृतिहत भवेदाद्य ।
अन्योऽर्कपलभाग्रा वधोऽक्षभाकृतियुतेर्द्विनगै ॥ १ ॥
भक्तावाद्यस्यान्यकृतियुतस्य पद युतमुदग्वियुग्याम्ये
अन्येन कोणनास्याद्वियुगुदपि लघु पदाच्चान्य ॥ २ ॥

वि. भा —त्रिज्याकृतिदल (त्रिज्यावर्गार्धं) अग्राकृतिवियुक् (अग्रावर्गहीन) इनकृतिहत (द्वादशवर्गगुणित) आद्यसञ्ज्ञक । अर्कपलभाग्रावध (द्वादशपलभाग्रा घात) अन्य (अन्यसञ्ज्ञक) अक्षभाकृतियुतै (पलभावर्गयुतै) द्विनगै (द्विसप्तभि) तौ (आद्यान्यौ) भक्तौ तदा विशिष्टावाद्यान्यौ भवत । अन्यकृतियुतस्य (अन्यवर्गयुतस्य) आद्यस्य पद (मूल) अन्येनोदग्गोले (उत्तरगोले) युत याम्ये (दक्षिणगोले) वियुक (रहित) तदा कोणना (कोणशङ्कु) भवेत् ॥ यदाऽन्य पदाल्लघुर्न भवेत्तदोदगपि उत्तरगोलेऽपि) वियुक् हीन तदा कोणशङ्कुरिति ॥१ २ ॥

अत्रोपपत्ति ।

कोणवृत्तस्थरवे क्षितिजोपरियोलम्ब स एव कोणशङ्कु । तन्मूलात्पूर्वापररेखोपरि यो लम्ब सभुज । तन्मूला(कोणशङ्कुमूला)देवयाम्योत्तररेखोपरिकृतो लम्ब कोटि । कोणशङ्कुमूलस्य कोणदिक्सूत्रे गतत्वादत्र भुजे कोटिसमे भवत । तेनात्र भुजवर्गो द्विगुण शङ्कुमूलाद् भूकेन्द्र यावद्दृग्ज्याया वर्गसम ।

अत्र कल्प्यते कोणश कुप्रमाणम् = य तदाऽक्षक्षेत्रानुपातेन श कुतलम् = $\frac{\text{पभा य}}{१२}$

तत उत्तरदक्षिणगोलयो क्रमेण भुजमानम् = अ $\mp$ $\frac{\text{पभा य}}{१२}$ | अ = अग्रा । परमत्र

$२भु^{२} - दृग्ज्या^{२} = त्रि^{२} - य^{२}$ $२य^{२} = २\left(अ \mp \frac{\text{पभा य}}{१२}\right)^{२} = २\left(अ^{२} \mp \frac{\text{२अ पभा य}}{१२}\right.$

$\left. + \frac{\text{पभा}^{२}\,\text{य}}{१२^{२}}\right) = \frac{१४४अ^{२} \mp २अ\,\text{पभा य} \times १२ + \text{पभा}^{२}\,\text{य}^{२}}{७२}$ $दृग्ज्या^{२} = त्रि^{२} - य^{२}$ छेद

गमेन $१४४ अ^२ = २ अ पभा य १२ + पभा^२ य^२ = ७२ त्रि^२ - ७२ य^२$ समशोधनादिना

$$पभा^२ \times य^२ + ७२ य^२ \mp २ अ पभा य १२ = ७२ त्रि^२ - १४४ अ^२ = १४४ \left(\frac{त्रि^२}{२} - अ^२\right)$$

$$= य^२ \left(पभा^२ + ७२ \mp २ अ पभा य १२ \right) = १४४ \left(\frac{त्रि^२}{२} - अ^२\right)$$

अत्र $१४४ \left(\frac{त्रि^२}{२} - अ^२\right)$ = आद्यसंज्ञक । अ × पभा १२ = अन्यसंज्ञकः

तदा $य^२ (पभा^२ - ७२) \mp २ य अन्य = आद्य$ पक्षौ $पभा^२ + ७२$ भक्तौ

$$तदा\ य \mp \frac{२ य\ अन्य}{पभा^२ + ७२} = \frac{आद्य}{पभा^२ + ७२} = य^२ \mp अन्य^२ = आद्य^२$$ वर्गपूर्त्तिकरणेन

$य^२ = २ य\ अन्य^२ + अ^२ न्य^२ = आद्य + अ^२ न्य^२$ मूलेन

$य \mp अन्य = \sqrt{आद्य - अ^२ न्य^२}$ $य = \sqrt{आद्य^२ + अ^२ न्य^२} \pm अन्य^२$

अत उपपन्नमाचार्योक्तम् ।

अत्र यदा त्रिज्यावर्गार्धतोऽग्रावर्गोऽधिकस्तदोत्तरगोले आद्यस्य ऋणत्वात् कोणशङ्कुचतुष्टयमुत्पद्यते । दक्षिणगोले तु कोणशङ्कोरभाव इति । एतत्कोणशङ्कानयनप्रकारानुरूपमेव सिद्धान्तशेखरे श्रीपतिकृत कोणशङ्कोरानयन यथा तदुक्त प्रकार ।

अग्राकृत्या विहीन त्रिगुणकृतिदल वेदशक्रप्रमाद्य
सूर्याग्राक्षप्रमाणामभिहृतिरपगे भक्तयोरक्षभाया ।
कृत्याद्यचन्द्रयाढयया तौ परकृतिसहिताद्यतो यत्पद स्या-
दन्येनाढय विहीन धनमयमकशुगोलयो कोणश कु ॥
उत्तरेतरविदिङनरो भवेदुत्तरे तु पदहीनयुक्परः
दक्षिणेन सममण्डलात्ततो भाश्रुतीष्टघटिकाश्च पूर्ववत् ।

ब्रह्मगुप्तप्रकारस्य वाऽनुरूप श्रीपतिकृत कोणशङ्कोरानयन ब्रह्मगुप्तप्रकारश्च—

अर्काग्रावर्गोन त्रिज्यावर्गार्धमर्ककृतिगुणितम् ।
आद्योऽन्योऽग्राद्वादशविषुवच्छायावधो हृतयो ॥ १ ॥
विषुवच्छायाकृत्या द्वयग७रसयुतयाऽन्यकृतियुतादाद्यात् ।
पदमन्ययुतविहीन सौम्येतरगोलयो शकु ॥ २ ॥
विदिशो सौम्येतरयोरुत्तरगोले पदोनयुक्तोऽन्य ।
सममण्डलदक्षिणगे न च्छायानाडीका प्राग्वत् ॥ ३ ॥

सूर्यसिद्धान्तेऽपि 'त्रिज्यावर्गार्धतोऽग्राज्यावर्गोनात् द्वादशाहृतादि" त्यादिना-ऽयमेव कोणशङ्क्वानयनप्रकार उक्त । भास्कराचार्येण "अग्राकृति द्विगुणिता त्रिगुणस्य

वर्गो" दित्यादिना विदिताऽग्रावशेनाऽसकृत्कर्मणा कोणशकोरानयन सिद्धान्तशिरोमणौ कृत तद्व्यभिचारश्चोत्तरगोले "युग्माश्चोनाऽक्षप्रभावर्गनिघ्नी वाणाब्ध्यशज्याद्विकाश्वैर्विभक्ता । अक्षच्छायावर्गयुक्ते फलाच्चेदग्रा न्यूना स्यात्खिल सौम्यगोले" एतेन प्रकारेण म म सुधाकरद्विवेदिना प्रदर्शित । दक्षिणगोले तद्वयभिचारश्च सिद्धान्तशिरोमणेष्टिप्पण्या सशोधकेन (म म वापूदेवशास्त्रिणा) प्रदर्शित । यदि च भुज >ज्या४५ तदा पूर्वोक्त श्रीपत्यादिप्रकारेण व्यभिचार इति सुधिया सम्यग्विचार्य ज्ञेयम् ।

पूर्वं मया लिखित यदा त्रिज्यावर्गार्धतोऽग्रावर्गोऽधिकस्तदोत्तरगोले कोणशकुचतुष्टयमुत्पद्यते परमेव कस्मिन् देशे भवति तदर्थ विचार्यते ।

यत्र देशे परमाग्रा = ज्या४५ तद्देशीयपलभामानम् = य

$$\text{तदा } \text{य}^2+१२^2=\text{पलक}^2 \quad \frac{\text{पक}^2\times\text{त्रिज्या}^2}{१२^2}=\text{परमाग्रा}=$$

$$\frac{(\text{य}^2+१२^2)\ \text{जिज्या}^2}{१२^2}=\text{ज्या}^2४५ \text{ छेदगमेन } \text{य}^2\ \text{जिज्या}^2+१२^2\ \text{जिज्या}^2=\text{ज्या}^2४५$$

$\times१२^2$ समशोधनेन

$$\text{य}^2\ \text{जिज्या}^2=\text{ज्या}^2४५\times१२^2-१२^2\ \text{जिज्या}^2=१२^2(\text{ज्या}^2४५-\text{जिज्या}^2)$$

$$\text{य}^2\ \frac{१२^2(\text{ज्या}^2४५-\text{जिज्या}^2)}{\text{जिज्या}^2}\text{मूलेन } \frac{१२\sqrt{\text{ज्या}^2४५-\text{जिज्या}^2}}{\text{जिज्या}^2}=१७।५।२२$$

अत्र परमाग्रा प्रमाण पञ्चचत्वारिंशज्ज्यासम स्वीकृत्य यदि पलभामान साध्यते तदा १७।५।२२ भवति तेन सिद्ध यदत्र देशे पलभै '१७।५।२२" तत्तुल्य भवेत्तत्र देशेऽग्रा = ज्या४५, इतोऽधिके पलभादेशे अग्रा > ज्या४५

वा अग्रा^{2} > ज्या^{2}४५

वा अग्रा^{2} > $\frac{\text{त्रि}^2}{२}$ यत्रैव भवति तत्र देशे दक्षिणगोले कोणशकोरभाव उत्तरगोले कोणश कुचतुष्टयमुत्पद्यत इति पूर्वोक्त युक्तियुक्तमिति ॥ १-२ ॥

हि भा —त्रिज्यावर्गार्ध मे अग्रावर्ग घटा कर बारह के वर्ग से गुणा करने से जो हो उसका नाम आद्य है पलभा, अग्रा, और वारह के घात का नाम अन्य है। आद्य और अन्य को पलभावर्ग और बहत्तर के योग मे भाग देने से विशिष्ट आद्य और अन्य होते हैं । आद्य मे अन्य वर्ग जोड कर मूल लेने से जो हो उसमे अन्य को युत और हीन करने से उत्तरगोल और दक्षिणगोल मे शकु कोणशकु होता है ॥ १-२ ॥

उपपत्ति

कोणवृत्ताहोरात्रवृत्त के सम्पात से क्षितिज धरातल के ऊपर जो लम्ब होता है उसे कोणशंकु कहते हैं। उसके मूल से पूर्वापर रेखा के ऊपर जो लम्ब होता है वह भुज है। तथा कोणशंकु ही के मूल से याम्योत्तररेखा के ऊपर जो लम्ब होता है वह कोटि है, यहां पर कोणशंकुमूल के कोणसूत्र के ऊपर पतित होने से भुज और कोटि बराबर होती है इसलिए $\text{भु}^2+\text{को}^2=2\text{भु}^2=\text{दृग्ज्या}^2=$ भूकेन्द्र से कोणशङ्कुमूल तक यहां कल्पना करते हैं कोणशङ्कुमान $=\text{य}$ तब अक्षक्षेत्र के अनुपात से $\frac{\text{पभा}\ \text{य}}{12}=$ शङ्कुतल अतः उत्तर और दक्षिण गोल क्रम से भुज $=\text{अ}\mp\frac{\text{पभा}\ \text{य}}{12}$ | $\text{अ}=\text{अग्रा}$, $\text{अ}\mp\text{शङ्कुतल}=\text{भुज}$

लेकिन यहां $2\text{भु}^2=\text{दृग्ज्या}^2=\text{त्रि}^2-\text{य}^2$

इसलिए $2\text{भु}^2=2\left(\text{अ}\mp\frac{\text{पभा}\ \text{य}}{12}\right)^2=2\left(\text{अ}^2\mp\frac{2\text{अ}.\ \text{पभा}.\ \text{य}}{12}+\frac{\text{पभा}^2.\ \text{य}^2}{12^2}\right)$

$=\frac{144\text{अ}^2\mp2\text{अ}\ \text{पभा}.\ \text{य}\times12+\text{पभा}^2\ \text{य}^2}{72}=\text{दृग्ज्या}^2=\text{त्रि}^2-\text{य}^2$ छेदगम से

$144\text{अ}^2\mp2\text{अ}\ \text{पभा}.\ \text{य}.\ 12+\text{पभा}^2\ \text{य}^2=72\text{त्रि}^2-72\text{य}^2$ समशोधनादि से

$\text{पभा}^2.\ \text{य}^2+72\text{य}^2\mp2\text{अ}\ \text{पभा}\ \text{य}\ 12=72\text{त्रि}^2-144\text{अ}^2=144\left(\frac{\text{त्रि}^2}{2}-\text{अ}^2\right)=\text{य}^2(\text{पभा}^2+72)\mp2\text{अ}\ \text{पभा}\ \text{य}\ 12=144\left(\frac{\text{त्रि}^2}{2}-\text{अ}^2\right)$

यहां $144\left(\frac{\text{त्रि}^2}{2}-\text{अ}^2\right)=\text{आद्य}$।

$\text{अग्रा}\ \text{पभा}.\ 12=\text{अन्त्य}$

तब $\text{य}^2(\text{पभा}^2+72)\mp2\text{य}\ \text{अन्त्य}=\text{आद्य}$ दोनों पक्षों को पभा^2+72 इससे भाग देने से $\text{य}^2\mp\frac{2\text{य}\ \text{अन्त्य}}{\text{पभा}^2+72}=\frac{\text{आद्य}}{\text{पभा}^2+72}=\text{य}^2\mp2\text{य}\ \text{अन्त्य}'=\text{आद्य}'$ वर्गपूर्ति करने से

$\text{य}^2\mp2\text{य}\ \text{अन्त्य}'+\text{अन्त्य}'^2=\text{आद्य}'+\text{अन्त्य}'^2$ मूल लेने से

$\text{य}\mp\text{अन्त्य}'=\sqrt{\text{आद्य}'+\text{अन्त्य}'^2}\ \therefore\ \text{य}=\sqrt{\text{आद्य}'+\text{अन्त्य}'^2}\pm\text{अन्त्य}'$

इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ॥

यहां जब त्रिज्यावर्गार्ध से अग्रावर्ग अधिक होगा तब आद्य के ऋण होने के कारण उत्तर गोल में चार कोणशंकु उत्पन्न होते हैं और दक्षिणगोल में कोणशंकु का अभाव होता है। इस कोणशंकु के आनयन के सदृश ही सिद्धान्तशेखर में श्रीपति ने कोणशंकु का आनयन किया है। जैसे उनके प्रकार अधोलिखित हैं—

"अग्राकृत्याविहीन त्रिगुणकृतिदल वेदशक्रघ्नमाद्य।" इत्यादि।

या, ब्रह्मगुप्त प्रकार के अनुरूप ही श्रीपति प्रकार को कह सकते। ब्रह्मगुप्तप्रकार देखिये—

"अर्काग्रावर्गोन त्रिज्यावर्गार्धमर्कंकृतिगुणितम् ।" इत्यादि ।

सूर्यसिद्धान्त मे भी "त्रिज्यावर्गार्धतोऽग्राज्यावर्गोनात्" इत्यादि से यही कोणशंकु के आनयन प्रकार कहा गया है । भास्कराचार्य "अग्राकृति द्विगुणिता त्रिगुणस्य वर्गात्" इत्यादि से विदित अग्रावश करके असकृत्प्रकार से सिद्धान्तशिरोमणि मे कोणशकु का आनयन किया है उसका व्यभिचार उत्तरगोल में—

"युग्माश्वोनाऽक्षप्रभावर्गनिघ्नी बाणाब्व्यंशज्या द्विकाश्वं विभक्ता ।

अक्षच्छायावर्गयुग्नं फलाश्चेदग्रा न्यूना स्यात्खिल सौम्यगोले।" इस प्रकार से म म सुधाकर द्विवेदी ने दिखलाये हैं । दक्षिणगोल मे उसका व्यभिचार सिद्धान्तशिरोमणि की टिप्पणी मे सशोधक (म म बापूदेवशास्त्री) ने दिखलाया है ? यदि भुज $>$ ज्या ४५ तब पूर्वोक्त श्रीपत्यादि प्रकारो के व्यभिचार होता है ।

पहले हमने लिखा है कि जब त्रिज्यावर्गा से अग्रावर्ग अधिक होता है तब उत्तरगोल मे चार कोणशङ्कु उत्पन्न होते है लेकिन किस देश म ऐसी स्थिति होती है उसके लिए विचार करते हैं । जिस देश मे परमाग्रा = ज्या ४५ उस देश के पलभामान = य मानते हैं ।

$$\text{तब } \text{य}^२ + १२^२ = \text{पक}^२ \quad \frac{\text{पक}^२ \ \text{त्रिज्या}^२}{१२^२} = \text{परमाग्रा}^२ = \frac{(\text{य}^२ + १२^२)\text{त्रिज्या}^२}{१२^२}$$

= ज्या^{२}४५ छेदगम से य^२ त्रिज्या^{२} + १२^२ त्रिज्या^{२} = ज्या ४५ $\times$ १२^२ समशोधन से

$$\text{य}^२ \ \text{त्रिज्या}^२ = \text{ज्या}^२ ४५ \times १२^२ - १२^२ \text{त्रिज्या}^२ = १२ (\text{ज्या}^२ ४५ - \text{त्रिज्या}^२)$$

$$\text{य}^२ = \frac{१२^२ (\text{ज्या}^२ ४५ - \text{त्रिज्या}^२)}{\text{त्रिज्या}} \text{ मूल लेने से } \quad १२ \ \frac{\sqrt{\text{ज्या}^२ ४५ - \text{त्रिज्या}^२}}{\text{त्रिज्या}}$$

= १७।५।२२

यहा परमाग्रा का मान पैतालीस अंश की ज्या के बराबर मानकर यदि पलभा का मान साधन करते है तो १७।५।२२ इतना होता है इसलिए इससे सिद्ध होता है कि जिस देश मे पलभा के मान (१७।५।२२) इतना होगा उस देश में अग्रा = ज्या४५ इससे अधिक पलभा जिस देश म होगी उस देश मे अग्रा $>$ ज्या४५

वा अग्रा^{२} $>$ ज्या^{२}४५

वा अग्रा^{२} $> \frac{\text{त्रि}^२}{२}$ जहा पर ऐसा होता है वहा उत्तरगोल मे चार कोणशकु उत्पन्न होते हैं और दक्षिणगोल मे कोणशकु से अभाव होता है । ये सब बातें गोल पर स्पष्ट है ॥१-२॥

इष्टाग्रान्तरकृत्या द्विगुणितयोदग्वियुक् त्रिगुणवर्गात् ।

मूलकोण नरो वा पलभाघ्नोऽर्कविहृद्दिष्टमसकृदेवम् ॥ ३ ॥

दक्षिणगोले चेष्टयुजाग्रयोक्तविधिना विदिग्ना स्यात् ।
तस्माद्दृग्ज्या कर्णच्छाया ससाधयेत्प्राग्वत् ॥ ४ ॥

वि भा —उत्तरगोले द्विगुणितया—इष्टाग्रान्तरकृत्या (इष्टोनाग्राकृत्या) त्रिगुणवर्गात् (त्रिज्यावर्गात्)वियुक्—मूल वा कोणनर (कोणश कु) भवेत् । दक्षिणगोले चेष्टयुजाग्रया पूर्वोक्त्या कोणशकु स्यात् । स (कोणश कु) पलभाघ्न (पलभागुणित) अर्कविहृत् (द्वादशभक्त) तदेष्ट स्यादेवमसकृत्क्रिया कार्या तदा वास्तव कोणश कुर्भवेत् । तस्माच्छको पूर्ववत् दृग्ज्या कर्णच्छाया साध्या इति ॥

अत्रैतदुक्त भवति याम्योत्तरगोलयो क्रमेणेष्टशब्देन स्वेच्छाकल्पित शक्वग्र कथ्यते । तेनेष्टेनाग्राया किञ्चिदूने नाधिकेन वा युतोनिता या रव्यग्राया द्विगुणितया त्रिज्यावर्गाच्छोधितयाऽवशिष्टमूल कोणशङ्कुर्भवेत । पूर्वं यदिच्छानुरूपमिष्ट कल्पित तदानेतु 'पलभाघ्नोऽर्कविहृदिति, कोणशङ्कु पलभागुणितो द्वादशभक्त फलमिष्टसज्ञ भवेत् । ततस्तेनेष्टेन दक्षिणोत्तरगोलयोर्युतोनिताया अग्राया वर्गे द्विगुणिते त्रिज्यावर्गाच्छोधितेऽवशिष्टस्य मूल कोणशङ्कु । अस्मात्पुनरिष्ट साध्य तेन युतोनितयाऽग्रया द्विगुणितया पूर्वोक्ता कोणशङ्कु साध्य । एवमसकृत्कर्म तावत्कार्य यावत्साधित कोणशकु स्थिरो भवेदिति ।

एतत्कोणश कुवशेन $\sqrt{\text{त्रि}^2 - \text{कोश कु}^2}$ = दृग्ज्या तत $\frac{\text{दृग्ज्या } १२}{\text{कोश}}$ = कोछाया । एतेनोपपन्नमाचार्योक्तम् ॥३ ४॥

अत्रोपपत्तिर्भाष्येनैव स्पष्टेति ॥

एतत्प्रकारानुरूपमेव सिद्धान्तशेखरे श्रीपतिकृत कोणशकोरानयनम् । यथा—

इनाऽग्रकाया सहितोनिताया इष्टेन याम्योत्तरगोलगेऽर्के ।
वर्गे द्विनिघ्ने कृतितस्त्रिमौर्व्यास्त्यक्ते पद यत्स हि कोणश कु ॥
पलप्रभाघ्नेऽर्कहृते च तस्मिन्—इष्ट भवेत्तेन तत प्रसाध्य ।
विदिङ नर पूर्ववदग्रकाया यावत्स्थिर स्यादसकृद्विधानात् ॥॥ ३ ४ ॥

हि भा —उत्तरगोल म त्रिज्यावग मे इष्ट और अग्रा के अतर वग को द्विगुणित कर घटा देने से जो शेष रहे उसका मूल कोणश कु होता है । दक्षिण गोल म त्रिज्या वर्ग मे इष्ट युत अग्रा के वग को द्विगुणित करने से जो हो उसको जोडकर मूल लेने से कोणशकु होता है । कोणश कु को पलभा से गुणकर बारह मे भाग देने से इष्टसज्ञक होता है इस तरह असकृत्कम करने वास्तव कोणश कु होता है । इस शकु से पूर्ववत् दृग्ज्या छाया कर्ण और छाया का साधन करना चाहिए ।

इष्ट शब्द से अपनी इच्छा से कल्पित शक्वग्र है, उत्तरगोल म इष्टरहित अग्रावग को द्विगुणित कर त्रिज्यावग म घटाकर मूल लेने मे कोणशकु होता है, दक्षिणगोल म इष्टयुत

अग्रावर्ग को द्विगुणित कर त्रिज्यावर्ग म घटाकर मूल लेने से कोणशकु होता है। अब पहले जो इच्छानुरूप इष्ट मान कर कोणश कु का आनयन किया है उसी इष्ट का साधन करते हैं, कोणशकु को पलभा से गुणकर बारह से भाग देने स जो फल होता है वह इष्टसज्ञक है। इस इष्ट पर से पुन उत्तर और दक्षिण गोल म पूर्वोक्त रीति से कोणश कु प्रमाण होता है। इस पर से पुन पूर्वनियम से इष्ट साधन करना, इसको उत्तर और दक्षिण गाल क्रम स अग्रा म हीन और युत करके कोणश कु साधन करना चाहिए। इस तरह असकृत्कम तव तक करना चाहिए जब तक कोणश कु स्थिर हो, इस तरह कोणश कु का वास्तव ज्ञान होता है।

तब $\sqrt{\text{त्रि}^2 - \text{कोणश}^2}$ = दृग्ज्या इस पर से "दृग्ज्या त्रिजीवे रविसङ्गुणे ते शङ्कूद्धृते भाश्रवणौ भवेताम्" इत्यादि छाया और छायावर्ण का ज्ञान हो जायेगा ॥३-४॥

इसकी उपपत्ति भाष्य देखने से स्पष्ट है ॥३ ४॥

सिद्धान्तशेखर मे श्रीपति ने इस प्रकार के अनुरूप ही कोणश कु का साधन किया है। जैसे "इनाऽग्रकाया सहितोनिताया इष्टेन याम्योत्तरगोलगेऽर्के।" इत्यादि ॥३ ४॥

इदानी पुनरपि कोणशकोरानयनमाह।

त्रिज्यायाऽक्षश्रुत्येष्टोनयुतयाऽग्रायोष्ट्या प्राग्वत्।
साध्यौ विदिङ्नरौ वा सौम्येतरगोलयोरसकृत् ॥५॥

वि भा —वा सौम्येतरगोलयो (उत्तरदक्षिणगोलयो) अक्षश्रुत्या त्रिज्यया (पलकर्णतुल्यत्रिज्यया) त्रिज्यया—इष्टयाऽग्रया (पलकर्ण व्यासार्धपरिणतयाऽग्रया) इष्टोनयुतया प्राग्वत् (इष्टाग्रान्तरकृत्या द्विगुणितयेत्यादिवत्) असकृद्विदिङ् नरौ (कोणश कू) साध्यावर्थात्प्रथम त्र्यग्रामानमानीय त पलकर्णव्यासार्धवृत्ते समानीय तदग्रावशेनेष्टाग्रान्तरकृत्या द्विगुणितयेत्यादि पूर्वोक्त्याऽसकृत् कर्मणा गोलयो कोणश कू भवेता पलकर्णव्यासार्धवृ नीयाग्रावशेन पलकर्णरूपत्रिज्यावशेन च प्रथमकोणशङ्क्वानयनप्रकारेण 'त्रिज्याकृतिदलमग्राकृतिवियुगि' त्यादिना वा कोणशङ्क्वानयन भवितुमर्हति परन्त्वाचार्येणाऽत्र प्रदर्शितप्रथमप्रकारेणैव तदानयन कृतमिति ॥५॥

अत्रोपपत्तिर्भाष्यावलोकनेनैव स्पष्टेति ॥५॥

सिद्धान्तशेखरे श्रीपतिनाऽग्रा पलकर्णव्यासार्धवृत्ते परिणता कृत्वा तदग्रावशेन कोणशङ्क्वानयन कृत तदेतदनुरूपमेव तदानयन च।

सेष्टाया पलकर्णमण्डलभुवोऽग्राया कृति द्व्याहृता
त्यक्त्वाऽक्षश्रुतिवर्गत पदमसौ कोणोद्भव स्यान्नर।
प्राग्वच्चासकृदिष्टमिष्टरहितान्यग्राङ्गुलान्युत्तरे
कृत्वा भास्वति चानुपातविधिना लिप्तामयोऽसौ भवेत्।

तथाच पलकर्णवृत्ताग्रावशेन "अग्राकृत्याविहीनमि"त्यादिना कोणशङ्क्वानयनं कृतमस्ति तदेतदाचार्योक्तप्रथमप्रकारीयकोणशङ्क्वानयन प्रकारेणाऽपि तथैव भवितुमर्हतीति ।

हि भा—वा उत्तरगोल और दक्षिण गोल में पलकर्णतुल्य त्रिज्या से और इष्टाग्रा (पलकर्णव्यासार्धवृत्त परिणत अग्रा) में इष्ट घटाकर और जोडकर जो होंगे उन पर से इष्टाग्रान्तरकृत्या द्विगुणितयेत्यादि की तरह असकृद्विधि से कोणशङ्कु साधन करना अर्थात् पहले अग्रा को पलकर्ण व्यासार्धवृत्त में परिणत कर उस अग्रा पर से इष्टाग्रान्तरकृत्या इत्यादि प्रकार के तरह असकृत्कर्म करने से दोनों गोला में कोणशङ्कु होते हैं। वा पलकर्ण व्यासार्ध वृत्तीयाग्रावश से और पलकर्ण रूप त्रिज्या से प्रथम कोणशङ्कु के आनयन प्रकार त्रिज्याकृतिदलमग्रा कृतिवियुगि त्यादि से कोणशङ्कु के साधन ही हो सकते है, परन्तु यहां पर आचार्य ने उपरिलिखित प्रथम प्रकार ही से कोणशङ्कु का साधन किया है ॥५॥

इसकी उपपत्ति व्याख्या ही से स्पष्ट है ॥५॥

सिद्धान्तशेखर में श्रीपति ने अग्रा को पलकर्ण तुल्य त्रिज्यावृत्त में परिणत कर उस पर परिणत अग्रा पर से कोणशङ्कु का साधन किया है वह इस प्रकार के अनुरूप ही है। उनका साधन इस प्रकार है।

सेऽग्रा पलकर्ण मण्डपभुवोऽग्राय कृति द्युशात्तम् । इत्यादि

तथा पलकर्ण वृत्तीयाग्रावश से 'अग्राकृत्या विहीनम् इत्यादि प्रकार से कोणशङ्कु के साधन सिद्धान्तशेखर में श्रीपति ने किया है। वह वटेश्वराचार्यकृत प्रथम प्रकारीय कोणशङ्कु साधन से भी उसी तरह होता है।

इदानीं पुनः कोणशङ्कुसाधनमाह।

इष्टश्रवणाभ्यस्ता अग्रास्त्रिज्योद्धृता लघुका ।
तैरपि विदिङ्नरो वा त्रिज्यामिष्टश्रुतिं कृत्वा ॥६॥
इष्टभुजा वियुजा वा साध्यौ लघ्वग्रया विदिङ्नारौ ।
असकृद्याम्योत्तरयोस्त्रिज्याह्वयेनेष्टकर्णेन ॥७॥

वि भा—वा इष्टश्रुतिं (इष्टकर्णं) त्रिज्यां कृत्वाऽर्थादिष्टकर्णं त्रिज्यां मत्वाऽग्रा इष्टश्रवणाभ्यस्ता (इष्टकर्णगुणिता) त्रिज्याभक्तास्तदा लघुका (इष्टकर्णतुल्यत्रिज्यावृत्तपरिणता अग्रा) तैरपि पूर्ववत् 'त्रिज्याकृतिदलमग्रा-कृतिवियुगि' त्यादिप्रकारेण विदिङ्नर (कोणशङ्कु) भवेत् ॥६॥

वा त्रिज्याह्वयेनेष्टकर्णेन (इष्टकर्णेन त्रिज्यासंज्ञकेन) याम्योत्तरयो (दक्षिणोत्तरयो) गोले लघ्वग्रया (इष्टकर्णत्रिज्याव्यासार्धपरिणतयाऽग्रया) असकृत्कर्मणा विदिङ्नारौ (कोणशङ्कू) साध्याविति ॥७॥

अत्रोपपत्तिः

इष्टकर्णं व्यासार्धवृत्तपरिणताऽग्रया लघुकसञ्ज्ञिकया "त्रिज्याकृतिदलमग्राकृतिवियुगि" त्यादिप्रकारेण कोणशंकुसाधनं स्पष्टमेव तथा चेष्टकर्णव्यासार्धवृत्तपरिणतयाऽग्रया लघ्वग्रासंज्ञिकया दक्षिणोत्तरगोलयो. 'इष्टाग्रान्तरकृत्या द्विगुणितये' त्यादिप्रकारेणासकृत्कर्मणा कोणशंकू भवेतामेवेति दिक् ॥६-७॥

हि.भा.—वा इष्टकर्ण को त्रिज्या मानकर अग्रा को इष्टकर्ण से गुणाकर त्रिज्या से भाग देने से फल लघुक या लघ्वग्रा सञ्ज्ञक होता है इस पर से पूर्ववत् "त्रिज्याकृतिदलमग्राकृतिवियुगि" इत्यादि प्रकार से कोणशंकु होता है ॥ वा इष्टकर्णत्रिज्या से दक्षिणगोल और उत्तरगोल में लघ्वग्रा 'इष्टकर्णव्यासार्धं वृत्त परिणत अग्रा' से असकृत्प्रकार द्वारा कोणशंकु होते हैं ॥६-७॥

उपपत्ति

इष्टकर्ण व्यासार्धवृत्त परिणत अग्रा (लघुसञ्ज्ञक अग्रा) पर से "त्रिज्याकृतिदलमग्राकृतियुग" इत्यादि प्रकार से कोणशंकु का साधन स्पष्ट है। वा इष्टकर्णव्यासार्ध वृत्त परिणत अग्रा पर से दक्षिणगोल और उत्तरगोल में "इष्टाग्रान्तरकृत्या द्विगुणितया" इत्यादि प्रकार द्वारा असकृत्कर्म से कोणशंकु होते हैं ॥६-७॥

इदानीं पुनरपि कोणशंकुसाधनमाह ।

धृतिगुणिताम्त्रिगुणहृता अग्रा धृतिवृत्तिगा भवन्ति लघुकाः ।
तैः प्राग्वत्कोणनरः साध्यस्त्रिज्यां प्रकल्प्य धृतिम् ॥८॥
वाऽग्रास्तद्धृतिगुणितास्त्रिज्याभक्ता भवन्ति तद्धृतिगाः ।
लघुका हि विदिङ्नारस्तैः प्राग्वत्त्रिज्याह्वयोद्धृत्या ॥९॥
इष्टयुतयोनया वा तयाऽग्रया कोणना पूर्ववत्साध्यः ।
याम्योत्तरयोरसकृत्त्रिज्याह्वयतद्धृतिं कृत्वा ॥१०॥

वि.भा.—धृतिं (हृतिं) त्रिज्यां प्रकल्प्याग्रा हृति (धृति) गुणास्त्रिज्याभक्तास्तदा लघ्वग्रा (हृतिव्यासार्धवृत्तपरिणताग्रा) भवन्ति. तैः (लघ्वग्राप्रमाणैः) प्राग्वत् (पूर्ववत्) कोणनरः (कोणशंकु) साध्य ॥ वा अग्रास्तद्धृतिगुणिताः (तद्धृतिगुणिताः) त्रिज्याभक्तास्तदा तद्धृतिव्यासार्धवृत्तपरिणता अग्राः (लघ्वग्राः) तैः (लघ्वग्राप्रमाणैः) त्रिज्याह्वयोद्धृत्या (त्रिज्यासञ्ज्ञकतद्धृत्या) पूर्ववद्विदिङ्नारः (कोणशंकुः) भवेदिति । वा त्रिज्याह्वयतद्धृतिं (त्रिज्यासञ्ज्ञकतद्धृतिं) कृत्वा याम्योत्तरयोर्गोले इष्टयुतया तयाऽग्रया वेष्टोनया तयाऽग्रयाऽसकृत्पूर्ववत्कोणना (कोणशंकुः) भवेदिति ॥८-१०॥

पूर्वोपपत्तिपर्यालोचनयैव स्फुटेति ॥८-१०॥

इति वटेश्वरसिद्धान्ते त्रिप्रश्नाधिकारे कोणशंकुविधिर्द्वादशोऽध्यायः ।

हि *भा* —हृति को त्रिज्या मानकर अग्रा को हृति से गुणाकर त्रिज्या से भाग देने से लब्धग्रा (हृतिव्यासार्धवृत्तपरिणताग्रा) होती है, इस पर से पूर्ववत् 'त्रिज्या कृति-दलमग्राकृतियुग्' इत्यादि से कोणशंकु होता है। वा अग्रा को तद्धृति (तद्‌धृति) से गुणकर त्रिज्या से भाग देने से लब्धग्रा (तद्धृतिव्यासार्धवृत्तपरिणताग्रा) होती है। इससे तथा त्रिज्यासंज्ञक तद्धृति से पूर्ववत् कोणशंकु होता है। वा तद्धृति को त्रिज्या मानकर दक्षिण गोल तथा उत्तरगोल में इष्टयुत तथा इष्टरहित अग्रा पर से असकृत्कर्म से पूर्ववत्कोणशंकु होता है ॥८-१०॥

इसकी उपपत्ति पूर्वोपपत्ति देखने से स्पष्ट है ॥८-१०॥

इति वटेश्वरसिद्धान्त में त्रिप्रश्नाधिकार में कोणशंकुविधि नामक बारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।



त्रयोदशोऽध्यायः

अथ छायातोऽर्कानयनविधिः

तत्रादौ रविक्रान्त्यानयनमाह ।

द्युदलद्युतेरुपचयः कुलीरराशेर्मृगादपचयः स्यात् ।
खाक्षाऽक्षान्तरयोगः सामान्यककुभोरिनक्रान्तिः ॥१॥

वि भा —कुलीराशे (कर्कादित) द्युदलद्युते (दिनार्धच्छायाया) उपचय (वृद्धि) भवेत् मृगात् (मकरादे) दिनार्धच्छायाया अपचय (हानि) भवेत्। समान्यककुभो (तुल्यभिन्नदिशो) खाक्षाक्षान्तरयोग (नतांशाक्षांशयोरन्तर-योग) कायस्तदेनक्रान्ति (सूर्यक्रान्ति) भवेदिति ॥१॥

अत्रोपपत्ति ।

मध्यच्छाया ज्ञानेन $\sqrt{छाया^2 + १२^2}$ = छायाकर्ण, तत $\frac{छाया त्रि}{छायाकर्ण}$ = दृग्ज्या अस्याश्चाप मध्यनतांशा भवेयु । ततोऽक्षांशनतांशयो समदिश्यन्तरेण भिन्नदिशि योगेन क्रान्तिर्भवेदिति ॥१॥

हि भा —कर्कादि से मध्यच्छाया की वृद्धि होती है और मकरादि से अपचय (ह्रासता) होता है। एक दिशा म अक्षांश और नतांश के अन्तर करने से, भिन्न दिशा मे दोनो के योग करने से रवि की क्रान्ति होती है ॥१॥

उपपत्ति

यहा मध्यच्छाया ज्ञान से $\sqrt{छाया^2 + १२^2}$ = छायाकर्ण, तब $\frac{छाया त्रि}{छायाकर्ण}$ = दृग्ज्या इसके चाप करने स नतांश होता है। अक्षांश और नतांश के एक दिशा मे अतर करने से तथा भिन्न दिशा मे योग करने से रवि की क्रान्ति होती है ॥१॥

इदानीं सममण्डलशङ्कुज्ञानेन रविज्ञानमाह ।

अक्षज्याघ्न समना जिनांशजीवाहृतोऽर्कबाहुज्या ।
उद्धृतिरक्षज्याघ्ना मिथुनान्ताऽग्रोद्धृता वा स्यात् ॥२॥

वि. भा—समना (समश कु) अक्षज्याघ्ना (अक्षज्यागुणित) जिनाशजीवाहृत (जिनाशज्याभक्ता) तदाऽर्कबाहुज्या (रविभुजज्या) भवेत् । उद्धृति (तद्धृति) अक्षज्याघ्ना (अक्षज्यागुणिता) मिथुनान्ताऽग्रोद्धृता (मिथुनान्ताऽग्राभक्ता) तदा रविभुजज्या भवेत् ॥२॥

अत्रोपपत्ति ।

यदि त्रिज्ययाऽक्षज्या लभ्यते तदा समशकुना केतिजाता क्रान्तिज्या= $\frac{\text{अज्या सश}}{\text{त्रि}}$ ततोऽनुपातो यदि जिनज्यया त्रिज्या लभ्यते तदा क्रान्तिज्यया केति समागता रविभुजज्या= $\frac{\text{त्रि. क्राज्या}}{\text{जिज्या}}$ अत्र क्रान्तिज्याया उत्थापनेन ।

$$\frac{\text{त्रि अक्षज्या सश}}{\text{जिज्या. त्रि}}=\frac{\text{अक्षज्या सश}}{\text{जिज्या}}=\text{रविभुजज्या ।}$$

अथवा समश $=\frac{\text{क्राज्या तद्धृति}}{\text{अग्रा}}$, पर मिथुनान्ते क्राज्या=जिज्या

$$\therefore \frac{\text{अक्षज्या सश}}{\text{जिज्या}}=\frac{\text{अज्या जिज्या तद्धृति}}{\text{जिज्या मिथुनान्ताग्रा}}=\frac{\text{अज्या. तद्धृति}}{\text{मिथुनान्ताग्रा}}=\text{रभुज्या}$$

एतावताऽऽचार्योक्तमुपपन्नम् ॥२॥

हि भा—समश कु को अक्षज्या से गुणकर जिनज्या से भाग देने से रविभुजज्या होती है या उद्धृति (तद्धृति) को अक्षज्या से गुणकर मिथुनान्ताग्रा से भाग देने से रविभुजज्या होती ॥२।

उपपत्ति

यदि त्रिज्या में अक्षज्या पाते है तो समशकु में क्या इस अनुपात से क्रान्तिज्या आती है, $\frac{\text{अज्या सश}}{\text{त्रि}}=\text{क्राज्या ।}$

तथा $\frac{\text{त्रि क्राज्या}}{\text{जिज्या}}=\frac{\text{त्रि अज्या सश}}{\text{त्रि जिज्या}}=\frac{\text{अज्या सश}}{\text{जिज्या}}=$ रविभुजज्या वा सश $=\frac{\text{क्रान्तिज्या तद्धृति}}{\text{अग्रा}}$ परन्तु मिथुनान्त में क्राज्या=जिज्या $\frac{\text{अक्षज्या सश}}{\text{जिज्या}}=$ रविभुजज्या

इसमें समश कु के उत्थापन देने से $\frac{\text{अक्षज्या जिज्या तद्धृति}}{\text{जिज्या मिथुनान्ताग्रा}}=\frac{\text{अज्या तद्धृति}}{\text{मिथुनान्ताग्रा}}$ =रविभुजज्या, इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥२॥

पुना रविभुजज्यानयनमाह ।

लम्बज्या तद्धृतिवधान्मिथुनान्तसमनृहृतदिनभुजज्या ।
तद्ध तिपलगुणघातोऽर्कघ्नोऽक्षश्रु तिजिनज्यकावधहृतो वा ।।३।।

वि भा —लम्बज्या तद्धृतिघातात् मिथुनान्तसमनृहृतात् (मिथुनान्तसमश कुभक्तात्) फलमिनभुजज्या (रविभुजज्या) स्यात् । वा तद्धृतिपलगुणघात (तद्धृत्यक्षज्यावध) अर्कघ्न (द्वादशगुणितः) अक्षश्रुतिजिनज्यकावधहृत (पलकर्णजिनज्याघातभक्त) तदा रविभुजज्या भवेदिति ।।३।।

अत्रोपपत्ति ।

अथ $\frac{\text{अक्षज्या तद्धृति}}{\text{मिथुनान्ताग्रा}}$ = रविभुजज्या । परन्तु $\frac{\text{अज्या मिथुनान्त सश}}{\text{ल ज्या}}$ =

मिथुनान्ताग्रा तत उत्थापनेन रविभुजज्या = $\frac{\text{अक्षज्या तद्धृति}}{\frac{\text{अज्या मिथुनान्त सश}}{\text{लज्या}}}$

= $\frac{\text{तद्ध ति लज्या}}{\text{मिथुनान्त समश}}$ = रविभुज्या । वा $\frac{\text{अज्या तद्ध}}{\text{मिथुनान्ताग्रा}}$ = रविभुजज्या

यत $\frac{\text{पक जिज्या}}{१२}$ = मिथुनान्ताग्रा तत उत्थापनेन $\frac{\text{अज्या तद्धृति}}{\frac{\text{पक जिज्या}}{१२}}$ =

$\frac{\text{अक्षज्या तद्धृति १२}}{\text{पक जिज्या}}$ = रविभुजज्या ।

एतावताऽऽचार्योक्तमुपपद्यते ।।३।।

हि. भा —लम्बज्या और तद्धृति के घात को मिथुनान्त समशंकु से भाग देने से रविभुजज्या होती है । वा तद्धृति और अक्षज्या के घात को बारह से गुणकर पलकर्ण और जिनज्या के घात से भाग देने से रविभुजज्या होती है ।।३।।

उपपत्ति

$\frac{\text{अक्षज्या तद्धति}}{\text{मिथुनान्ताग्रा}}$ = रविभुजज्या । परन्तु $\frac{\text{अज्या मिथुनान्ताग्रासश}}{\text{लज्या}}$ = मिथुनान्ताग्रा

अत मिथुनान्ताग्रा को उत्थापन देने से $\frac{\text{अज्या तद्धृति}}{\frac{\text{अज्या मिथुनान्तसश}}{\text{ल ज्या}}}$ = $\frac{\text{तद्धृति ल ज्या}}{\text{मिथुनान्त सश}}$.

रविभुजज्या । वा $\frac{\text{अज्या तद्धृति}}{\text{मिथुनान्ताग्रा}}$ = रविभुज्या । पर $\frac{\text{पक जिज्या}}{१२}$ = मिथुनान्ताग्रा

उत्थापन देने से मिथुनान्ताग्रा $\frac{\frac{\text{अज्या तद्धृति}}{\text{पक्ष जिज्या}}}{१२} = \frac{\text{अज्या तद्धृति १२}}{\text{पक्ष जिज्या}}$ = रभुज्या

इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥३॥

इदानीं कर्णवृत्ताग्रातो रविज्ञानमाह ।

भावृत्ताग्रा त्रिज्या लम्बज्या सहतिर्भक्ता ।
भाकर्णान्त्यापमज्यावधेन लब्ध भुजज्या वा ॥४॥

वि भा—भावृत्ताग्रा त्रिज्या लम्बज्या संहति (छायाकर्णवृत्ताग्रा त्रिज्या लम्बज्याघात) भाकर्णान्त्यापमज्यावधेन (छायाकर्णपरमक्रान्तिज्याघातेन) भक्ता, लब्ध (फल) वा भुजज्या (रविभुजज्या) स्यादिति ॥ ४ ॥

अत्रोपपत्ति ।

अक्षक्षेत्रानुपातेन $\frac{\text{लज्या अग्रा}}{\text{त्रि}}$ = क्राज्या, तत $\frac{\text{त्रि क्राज्या}}{\text{जिज्या}}$ = रविभुजज्या

$\frac{\text{लज्या अग्रा त्रि}}{\text{त्रि जिज्या}}$ = रविभुज्या। पर अग्रा= $\frac{\text{छाकवृअग्रा त्रि}}{\text{छाक}}$

अतो रविभुजज्यास्वरूपेऽग्राया उत्थापनेन

$\frac{\text{लज्या छाकवृअग्रा त्रि त्रि}}{\text{त्रि जिज्या छाक}} = \frac{\text{लज्या छाकवृअग्रा त्रि}}{\text{जिज्या.छाक}}$ = रविभुज्या ।

एतावताऽऽचार्योक्तमुपपन्नम् ।

सूर्यसिद्धान्तेऽपि 'इष्टाग्राघ्नी तु लम्बज्या' इत्यादिनैवमानयन रविभुजज्याया इति ॥४॥

हि भा—वा छायाकर्णवृत्तीय अग्रा, त्रिज्या और लम्बज्या के घात में छायाकर्ण और परम क्रान्तिज्या (जिनज्या) के घात से भाग देने से रविभुजज्या होती है ॥४॥

उपपत्ति ।

अक्षक्षेत्र के अनुपात से $\frac{\text{लज्या अग्रा}}{\text{त्रि}}$ = क्राज्या, $\frac{\text{त्रि क्राज्या}}{\text{जिज्या}}$ = रविभुजज्या

रविभुजज्या के स्वरूप में क्रान्तिज्या को उत्थापन देने से

$\frac{\text{लज्या अग्रा त्रि}}{\text{त्रि जिज्या}} = \frac{\text{लज्या अग्रा}}{\text{जिज्या}}$ = रविभुज्या ।

परन्तु अग्रा= $\frac{\text{छावृत्तीयाग्रा त्रि}}{\text{छाकर्ण}}$

इसलिये रवि भुजज्या के स्वरूप मे क्रान्तिज्या को उत्थापन देने से

$\frac{\text{लज्या छायाकर्ण वृत्तीयाग्रा त्रि}}{\text{जिज्या छाकर्ण}}$ = रविभुजज्या ।

इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ।

सूर्यसिद्धान्त मे भी "इष्टाग्राघ्नी तु लम्बज्या" इत्यादि से इसी तरह रविभुजज्या का आनयन है ॥ ४ ॥

पुना रविभुजज्यानयनमाह ।

त्रिज्याऽग्रानहृतिर्वा धृतिजिनलवगुणवधोद्धृता दोर्ज्या ।
सवितुस्तच्चाप चाय प्रथमपदे भास्करस्तदेय किल ॥५॥
भार्धाच्च्युतं द्वितीये सभार्धमपरे ततश्च्युतं चान्त्ये ।
एवमपरः प्रकारैः कुर्याद्दिनमणिसाधन गणकः ॥६॥

वि भा —वा त्रिज्याऽग्रानहृति (त्रिज्याऽग्राश कुघात) धृतिजिनलवगुणवधोद्धृता (हृतिजिनज्याघातभक्ता) तदा सवितु (सूर्यस्य) दोर्ज्या (भुजज्या) भवति । तच्चाप रविभुजाशा भवन्ति । अथ समागतो भास्कर (सूर्य) प्रथमपदे (मेषादिराशित्रये) भवति । तदेव चाप भार्धाच्च्युत (राशिषट्केभ्य शोधित) तदा द्वितीये पदे (कर्क्यादिराशित्रये) रविर्भवेत् । तदेव सभार्ध (राशिषट्कसहित) तदाऽपरे तृतीये पदे रविर्भवेत् । तदेव भगणतश्च्युत तदाऽन्त्ये पदे (चतुर्थे पदे) रविर्भवेच्छेप स्पष्टमिति ॥५-६॥

अत्रोपपत्ति ।

$\frac{\text{श} \times \text{अग्रा}}{\text{हृ}}$ = क्राज्या । तत $\frac{\text{त्रि क्राज्या}}{\text{जिज्या}}$ = रविभुजज्या, अत्र क्रातिज्याया उत्थापनेन $\frac{\text{त्रि श अग्रा}}{\text{हृ जिज्या}}$ = रविभुजज्या, अस्याश्चाप रविभुजाशा भवन्ति शेप स्पष्टमिति ॥५-६॥

इति वटेश्वरसिद्धाते त्रिप्रश्नाधिकारे छायातोऽर्कानयनविधिस्त्रयोदशोऽध्याय ॥

हि भा —वा त्रिज्या, अग्रा, और शकु के घात मे हृति और जिनज्या के घात से भाग देने से रवि की भुजज्या होती है, उसके चाप रवि भुजाश होते हैं, यह रवि प्रथम पद मे होते हैं, चाप को छ राशि (१८०°) मे घटाने से द्वितीय पद मे होते हैं, उस चाप मे छ राशि जोडने से तृतीय पद मे रवि होते हैं। और भगण (१२ राशि) मे घटाने से चतुर्थ पद मे रवि होते हैं ॥ ५ ६ ॥

गेनात्र मत्स्यद्वयं भवति, मत्स्यद्वयमुखपुच्छगतयो रेखयोर्यत्र योगस्तस्माच्छायाग्र-पर्यन्तं यद्रेखाप्रमाणं, तद्वृत्तमुत्पद्यते तदेव भाभ्रमवृत्तं तस्मिन्नेव वृत्ते तद्दिने सदा छायाग्रं भ्रमतीति ।

एवं शेषविन्दुभिः शङ्कुभ्रमवृत्तमालेख्यम् । अत्रैतदुक्तं भवति छायाभ्रमणरेखानिरूपणार्थं यादृग्रूपेण भुजद्वययोर्मध्यच्छायायाश्च संस्थानं ततो विपरीतदिक्संस्थापनात्पूर्वरीत्यैव शङ्कुभ्रमवृत्तं भवत्यर्थाद्भुजाङ्गुलानि स्वदिशि प्रसार्य छायावृत्तपरिधौ सन्यस्य तत्र यद्विन्दुद्वयं तथा मध्यभुजाङ्गुलानि दिङ्मध्यविन्दुतोदक्षिणोत्तररेखायां स्वदिशि प्रसार्य तदग्रे यो विन्दुरेतद्विन्दुत्रयगतं यद्वृत्तं मेव शङ्कुभ्रमरेखा स्यादिति ॥१-६॥

अत्रोपपत्तिः

छायात्रयाग्रविन्दुषु गतं वृत्तं छायाभ्रमवृत्तम् (भाभ्रमरेखा) इति प्राचीनानां मतम् । विन्दुत्रयोपरिगतवृत्तस्य केन्द्रज्ञानार्थं मध्यद्वयमुत्पाद्य मत्स्यद्वयान्तरसूत्रयुति कृता । रेखार्धविन्दुतस्तदुपरि लम्बकरणार्थं मत्स्योत्पादनं कृतम् । साम्प्रतं रेखार्धविन्दुतस्तदुपरिलम्बकरणं च सुगममेव । छायात्रयाग्रविन्दुषु परस्परकृताभी रेखाभिरेकं त्रिभुजमुत्पद्यते रेखागणितचतुर्थाध्यायचतुर्थक्षेत्रवलेन तदुपरिगत वृत्तं कार्यं तदेव प्राचीनोक्तच्छायाभ्रमणमार्गस्वरूपम् वस्तुतश्छायाभ्रमणं वृत्तं सदा न भवति, भास्कराचार्येण प्राचीनोक्तच्छायाभ्रमणवृत्तस्य खण्डनं "भान्तिपाद भाभ्रमणं न स" दित्यादिना कृतं खण्डनं समीचीनमेवेति दिक् ॥१-६॥

हि भा —जल समीकृत भूमि में दिङ्मध्य को केन्द्र मानकर इष्टकालिक द्वादशाङ्गुलशङ्कुच्छायाङ्गुल तुल्य कर्कट से जो वृत्त होता है वह छायावृत्त है केन्द्र (दिङ्मध्यविन्दु) से मध्यच्छाया स्थापन करना उस छायावृत्त में विपरीत दिशा में स्थापित भुजद्वय पर से तथा उत्तर च्छायाग्रविन्दु से दो मत्स्य (मछली के आकार) बनाना, दक्षिणगोल और उत्तरगोल में मुख और पुच्छ में गतसूत्रद्वय को बाँध कर उन दोनों के योगविन्दु में कर्कट के अग्र को रखकर तीनों बिन्दुओं में गतवृत्त बनाना चाहिये । यहाँ यह कहा गया है कि दिङ्मध्य बिन्दु केन्द्र से छायाङ्गुल तुल्य कर्कट से लिखित वृत्त में (छायावृत्त में) विपरीत अवस्थान क्रम से दोनों भुजों को स्थापन करना तथा मध्यकेन्द्र से दक्षिणोत्तर रेखा में मध्यछाया को स्थापन करना । इस तरह करने से छायावृत्त में पूर्व संस्थापित विपरीत दिशा के भुजद्वय के अग्रविन्दुद्वय तथा मध्यछायाविन्दु ये तीन बिन्दु हैं । इन तीनों बिन्दुओं से जो दो मत्स्य बनते हैं उनमें मुख और पुच्छगत रेखाद्वय का जहाँ योग होता है वहाँ से छायाग्रपर्यन्त जो रेखा है उस व्यासार्ध से जो वृत्त बनता है वही भाभ्रमवृत्त होता है । उस वृत्त में उस दिन सदा छाया भ्रमण करती है ॥

इस तरह शेष बिन्दुओं से शङ्कुभ्रमवृत्त लिखना चाहिए । छायाभ्रमरेखा निरूपण के लिए जिस तरह भुजद्वय का तथा मध्यच्छाया का स्थापन किया गया है उससे विपरीत दिशा में संस्थापन से पूर्वरीति के अनुसार ही शङ्कुभ्रमवृत्त होता है अर्थात् भुजाङ्गुल को अपनी दिशा में फैला कर छायावृत्त परिधि में स्थापन कर वहाँ जो दो बिन्दु होते हैं और

दिङ्मध्य बिन्दु से मध्यभुजाङ्गुल को दक्षिणोत्तर रेखा मे अपनी दिशा मे फैला कर उसके अग्र मे जो बिन्दु होता है। इन तीनो बिन्दुओ मे गये हुए वृत्त को शंकुभ्रमवृत्त कहते हैं ॥१-६।

उपपत्ति ।

तीन छायाओ के अग्रबिन्दु मे गये हुए वृत्त को छायाभ्रमवृत्त (भाभ्रमरेखा) प्राचीनाचार्य कहते हैं। तीन बिन्दुओ के ऊपर गये हुए वृत्त के केन्द्रज्ञान के लिए दो मत्स्य (मछलिया) बना कर दोनो मत्स्यो के अन्तर सूत्र की युति की। रेखार्ध बिन्दु से उसके (रेखा के) ऊपर लम्ब करने के लिए मत्स्योत्पादन किये। इस समय मे रेखार्ध बिन्दु से उसके ऊपर लम्ब करना सरल ही है। तीनो छायाओ के अग्रबिन्दुओ मे परस्पर रेखा करने मे एक त्रिभुज बनता है रेखागणित चतुर्थाध्याय के चतुर्थ क्षेत्र के बल से उसके ऊपर वृत्त करना वही प्राचीनोक्त छायाभ्रमण मार्ग होता है। वस्तुत छायाभ्रमण के आकार बराबर वृत्ताकार नही होता है प्राचीनोक्त छायाभ्रमण निरूपण का खण्डन भास्कर ने किया है, वह युक्तियुक्त है ॥१ ६॥

इदानी भाभ्रमवशेन दिग्ज्ञानमाह ।

भाभ्रममण्डलपरिधिनाऽत्र ज्ञेया दिशा लेखाः ॥७॥
तच्छङ्क्वन्तरमाभाः प्राच्यपरेऽर्के समवलयगे वा ।
कोणगते कोणभाः याम्योत्तरवृत्तगादिना वा या ॥८॥

वि भा—अत्र भाभ्रममण्डलपरिधिना (छायाभ्रमणवृत्तपरिधिसम्बन्धेन दिशालेखा (पूर्वापरादिदिशा गणना) ज्ञेया। तच्छङ्क्वन्तर (तत्तस्य छायाभ्रमणवृत्तस्य शङ्को शङ्कुमूलस्य यदन्तर) आभा (दिनमध्यच्छाया) भवन्त्यत्र शङ्कुशब्देन तन्मूलं गृह्यते। प्राच्यपरेऽर्के समवलयगे इत्यादिना तत्तत्स्थानभेदेन तत्तन्नाम्नी छाया भवतीति ॥७-८॥

अत्रोपपत्ति

जलसमीकृतभूमाविष्टशङ्कु स्थापयेत् ततो यस्मिन् कपाले सूर्यो भवेत्ततो भिन्ने कपाले छायाग्रय गृहीत्वा प्रथमच्छायाग्रबिन्दु केन्द्र मत्वेष्टेन कर्कटकेन वृत्त विलेख्य तेनैव कर्कटकेन द्वितीयच्छायाग्रबिन्दुकेन्द्रतो वृत्त लेख्यम्। एवमेव तृतीयच्छायाग्रबिन्दुकेन्द्रवशेनापि वृत्त भवेत्। एतेषा त्रयाणा वृत्ताना मध्ये प्रथमद्वितीयतृतीयवृत्तयो सम्पातद्वयेन च मत्स्यद्वयमुत्पद्यते तयोर्मत्स्ययोर्यद्दिश्यन्तर महत्स्यात्ते मुखे यद्दिश्यन्तरमल्प ते पुच्छे तन्मुखगतौ सूक्ष्मकीलकौ सस्थाप्य तयो सूत्रे बद्ध्वा पुच्छगते नि सार्य तयो सूत्रयोर्मुखपुच्छानुसारेण यत्र योग सा दक्षिणदिग्भवति यदि रवि शङ्कुमूलादुत्तरस्या दिश्यर्थादुत्तरगोले भवेत्। दक्षिणगोलस्थे रवौ तन्मध्यसूत्रयोर्योग शङ्कुमूलत आरभ्योत्तरदिग्भवति। उत्तरगोले छायाया दक्षिणाभिमुखत्वाद्दक्षिणगोले च छायाया उत्तराभिमुखत्वाच्च। ततो मध्यबिन्दुत सूत्रयोगबिन्दुगतसूत्र वर्धयेत्सैव दक्षिणोत्तरा दिग्भवति। एवमेव दक्षिणोत्तर-

गेनात्र मत्स्यद्वयं भवति, मत्स्यद्वयमुखपुच्छगतयो रेखयोर्यत्र योगस्तस्माच्छायाग्रपर्यन्तं यद्रेखाप्रमाणं, तद्वृत्तमुत्पद्यते तदेव भाभ्रमवृत्तं तस्मिन्नेव वृत्ते तद्दिने सदा छायाग्रं भ्रमतीति।

एवं शेषैर्बिन्दुभिः शङ्कुभ्रमवृत्तमालेख्यम्। अत्रैतदुक्तं भवति छायाभ्रमणरेखानिरूपणार्थं यादृग्रूपेण भुजद्वयोर्मध्यच्छायायाश्च संस्थापनं ततो विपरीतदिक्संस्थापनात्पूर्वरीत्यैव शङ्कुभ्रमवृत्तं भवत्यर्थाद्भुजाङ्गुलानि स्वदिशि प्रसार्य छायावृत्तपरिधौ सन्यस्य तत्र यद्बिन्दुद्वयं तथा मध्यभुजाङ्गुलानि दिङ्मध्यबिन्दुतो दक्षिणोत्तररेखायां स्वदिशि प्रसार्य तदग्रे यो बिन्दुरेतद्बिन्दुत्रयगतं यद्वृत्तं सैव शङ्कुभ्रमरेखा स्यादिति ॥१६॥

अत्रोपपत्तिः

छायात्रयाग्रबिन्दुषु गतं वृत्तं छायाभ्रमवृत्तम् (भाभ्रमरेखा) इति प्राचीनानां मतम्। बिन्दुत्रयोपरिगतवृत्तस्य केन्द्रज्ञानार्थं मध्यद्वयमुत्पाद्य मत्स्यद्वयान्तरसूत्रयुतिः कृता। रेखार्धबिन्दुतस्तदुपरि लम्बकरणार्थं मत्स्योत्पादनं कृतम्। साम्प्रतं रेखार्धबिन्दुतस्तदुपरिलम्बकरणं च सुगममेव। छायात्रयाग्रबिन्दुषु परस्परकृताभी रेखाभिरेकं त्रिभुजमुत्पद्यते रेखागणितचतुर्थाध्यायचतुर्थक्षेत्रबलेन तदुपरिगतं वृत्तं कार्यं तदेव प्राचीनोक्तच्छायाभ्रमणमार्गस्वरूपं वस्तुतश्छायाभ्रमणं वृत्ते सदा न भवति, भास्कराचार्येण प्राचीनोक्तच्छायाभ्रमणवृत्तस्य खण्डनं "भान्तितयाद् भाभ्रमणं न स" दित्यादिना कृतं खण्डनं समीचीनमेवेति दिक् ॥१-६॥

हि. भा.—जल समीकृत भूमि में दिङ्मध्य को केन्द्र मानकर इष्टकालिक द्वादशाङ्गुलशङ्कुच्छायाङ्गुल तुल्य कर्कट से जो वृत्त होता है वह छायावृत्त है केन्द्र (दिङ्मध्यबिन्दु) से मध्यच्छाया स्थापन करना उस च्छायावृत्त में विपरीत दिशा में स्थापित भुजद्वय परसे तथा उत्तर च्छायाग्रबिन्दु से दो मत्स्य (मछली के आकार) बनाना, दक्षिणगोल और उत्तरगोल में मुख और पुच्छ में गतसूत्रद्वय को बाँध कर उन दोनों के योगबिन्दु में कर्कट के अग्र को रखकर तीनों बिन्दुओं में गतवृत्त बनाना चाहिये। यहाँ यह कहा गया है कि दिङ्मध्य बिन्दु केन्द्र से छायाङ्गुल तुल्य कर्कट से लिखित वृत्त में (छायावृत्त में) विपरीत अवस्थान क्रम से दोनों भुजों को स्थापन करना तथा मध्यकेन्द्र से दक्षिणोत्तर रेखा में मध्यछाया को स्थापन करना। इस तरह करने से छायावृत्त में पूर्व संस्थापित विपरीत दिशा के भुजद्वय के अग्रबिन्दुद्वय तथा मध्यछायाबिन्दु ये तीन बिन्दु हैं। इन तीनों बिन्दुओं से जो दो मत्स्य बनते हैं उनमें मुख और पुच्छगत रेखाद्वय का जहाँ योग होता है वहाँ से छायाग्रपर्यन्त जो रेखा है उस व्यासार्ध से जो वृत्त बनता है वही भाभ्रमवृत्त होता है। उस वृत्त में उस दिन सदा छाया भ्रमण करती है।

इस तरह शेष बिन्दुओं से शङ्कुभ्रमवृत्त लिखना चाहिए। छायाभ्रमरेखा निरूपण के लिए जिस तरह भुजद्वय का तथा मध्यच्छाया का स्थापन किया गया है उससे विपरीत दिशा में संस्थापन से पूर्वरीति के अनुसार ही शङ्कुभ्रमवृत्त होता है अर्थात् भुजाङ्गुल को अपनी दिशा में फैला कर छायावृत्त परिधि में स्थापन कर वहाँ जो दो बिन्दु होते हैं और

दिङ्मध्य बिन्दु से मध्यमुजाङ्गुल को दक्षिणोत्तर रेखा मे अपनी दिशा मे फैला कर उसके अग्र मे जो बिन्दु होता है । इन तीनो बिन्दुओ मे गये हुए वृत्त को शंकुभ्रमवृत्त कहते हैं ॥१-६।

उपपत्ति ।

तीन छायाओ ने अग्रबिन्दु मे गये हुए वृत्त को छायाभ्रमवृत्त (भाभ्रमरेखा) प्राचीनाचार्य कहते हैं। तीन बिन्दुओ के ऊपर गये हुए वृत्त के केन्द्रज्ञान के लिए दो मत्स्य (मछलिया) बना कर दोनो मत्स्यो के अन्तर सूत्र की युति की। रेखार्ध बिन्दु से उसके (रेखा के) ऊपर लम्ब करने के लिए मत्स्योत्पादन किये । इस समय मे रेखार्ध बिन्दु से उसके ऊपर लम्ब करना सरल ही है। तीनो छायाओ के अग्रबिन्दुओ मे परस्पर रेखा करने से एक त्रिभुज बनता है रेखागणित चतुर्थाध्याय के चतुर्थ क्षेत्र के बल से उसके ऊपर वृत्त करना वही प्राचीनोक्त छायाभ्रमण मार्ग होता है । वस्तुत. छायाभ्रमण के आकार बराबर वृत्ताकार नहीं होता है प्राचीनोक्त छायाभ्रमण निरूपण का खण्डन भास्कर ने किया है, वह युक्तियुक्त है ॥१-६॥

इदानी भाभ्रमवशेन दिग्ज्ञानमाह ।

भाभ्रममण्डलपरिधिनाऽत्र ज्ञेया दिशां लेखाः ॥७॥
तच्छ्रवन्तरमाभाः प्राच्यपरेऽर्के समवलयगे वा ।
कोणगते कोणाभाः याम्योत्तरवृत्तगादिना वा या ॥८॥

वि भा—अत्र भाभ्रममण्डलपरिधिना (छायाभ्रमणवृत्तपरिधिसम्बन्धेन दिशालेखा (पूर्वापरादिदिशा गणना) ज्ञेया । तच्छ्रवन्तर (तत्तस्य छायाभ्रमणवृत्तस्य शको श कुमूलस्य यदन्तर) आभा (दिनमध्यच्छाया) भवन्त्यत्र श कुशब्देन तन्मूल गृह्यते। प्राच्यपरेऽर्के समवलयगे इत्यादिना तत्तत्स्थानभेदेन तत्तन्नाम्नी छाया भवतीति ॥७-८॥

अत्रोपपत्ति

जलसमीकृतभूमाविष्टशकु स्थापयेत् ततो यस्मिन् कपाले सूर्यो भवेत्ततो भिन्ने कपाले छायाग्रय गृहीत्वा प्रथमच्छायाग्रबिन्दु केन्द्र मत्वेष्टेन कर्कटकेन वृत्त विलेख्य तेनैव कर्कटकेन द्वितीयच्छायाग्रबिन्दुकेन्द्रतो वृत्त लेख्यम् । एवमेव तृतीयच्छायाग्रबिन्दुकेन्द्रवशेनापि वृत्त भवेत् । एतेषा त्रयाणा वृत्ताना मध्ये प्रथमद्वितीयतृतीयवृत्तयो सम्पातद्वयेन च मत्स्यद्वयमुत्पद्यते तयोर्मत्स्ययोर्यद्दिग्यन्तर महत्स्यात्ते मुखे यद्दिग्यन्तरमल्प ते पुच्छे, तन्मुखगतौ सूक्ष्मकीलकौ सस्थाप्य तयो सूत्रे वद्ध्वा पुच्छगते नि सार्य तयो सूत्रयोर्मुखपुच्छानुसारेण यत्र योग सा दक्षिणदिग्भवति यदि रवि श कुमूलादुत्तरया दिश्यर्थादुत्तरगोले भवेत् । दक्षिणगोलस्थे रवौ तन्मध्यसूत्रयोर्योग श कुमूलत आरभ्योत्तरदिग्भवति । उत्तरगोले छायाया दक्षिणाभिमुखत्वाद्दक्षिणगोले च छायाया उत्तराभिमुखत्वाच्च । ततो मध्यबिन्दुत सूत्रयोगबिन्दुगतसूत्रं वर्धयेत्सैव दक्षिणोत्तरा दिग्भवति । एवमेव दक्षिणोत्तर-

सूत्राग्रबिन्दुभ्या श कुमूलविन्दुना च वृत्तत्रयं पूर्ववत्कृत्वा तेभ्यो मत्स्यद्वयमुत्पाद्य पूर्ववन्मुखपुच्छगता रेखा पूर्वापरा भवेदिति । भिन्नकपालजेष्वपि विन्दुत्रयेषु पूर्ववदेव वृत्तत्रय लिखेत्—पूर्ववदेवावशेष वोध्यम् ॥ एव भाभ्रमवृत्तसम्बन्धेन दिग्ज्ञान भवति । शकुमूलस्यच्छायाभ्रमणवृत्तस्य च यद्दक्षिणोत्तरमन्तर तन्मध्यान्हकालिकच्छायाभ्रमण भवतीति ॥७-८॥

हि भा —छायाभ्रमण वृत्त के सम्बन्ध से दिशाओ का ज्ञान समभना चाहिए। छायाभ्रमण वृत्त और शकुमूल का अन्तरच्छाया प्रमाण होता है ॥७-८॥

उपपत्ति

जल से समान की हुई पृथ्वी मे इष्टशकु को स्थापन करना। जिस कपाल मे सूर्य हैं उमसे भिन्न कपाल में तीन छायाओ के अग्र बिन्दु ग्रहणकर प्रथमच्छायाग्र बिन्दु को केन्द्र मान कर इष्टव्यासार्ध से वृत्त बनाना। इसी तरह द्वितीयच्छायाग्र बिन्दु और तृतीयच्छायाग्र बिन्दु को केन्द्र मानकर उसी व्यासार्ध से वृत्तद्वय बनाना। तब प्रथम और द्वितीय वृत्त के जो सम्पातद्वय हैं तथा द्वितीय और तृतीय वृत्त के जो सम्पातद्वय (दो सम्पातविन्दु) हैं इन से दो मत्स्य (मछली का आकार) बनता है उन दोनो मत्स्यों के जिस दिशा मे अन्तर बडा है वे दोनो मुख और जिस दिशा मे अन्तर छोटा है वे दोनो पुच्छ, उन दोनों मुखो मे दो कील रख कर उन दोनो मे सूत्र बांध कर पुच्छगत रेखा को बढा देना चाहिए उन दोनो सूत्रो का जहा पर सम्पात होता है वह दक्षिण दिशा है यदि शकुमूल से रवि उत्तर गोल मे हो तब यदि रविदक्षिणगोल म है तब उन दोनो सूत्रो के योग श कु मूल से लेकर उत्तर दिशा होती है। मध्यबिन्दु और सूत्रद्वययोग बिन्दु गत रेखा को बढाने से दक्षिणोत्तर रेखा होती है। इसी तरह दक्षिणोत्तर सूत्र के अग्रबिन्दुद्वय से जो दो वृत्त होंगे तथा शकुमूल बिन्दु को केन्द्र मानकर जो वृत्त होगा इन तीनो वृत्तो से पूर्ववत् मत्स्यद्वय बनाकर उसके मुख और पुच्छगत सूत्र पूर्वापर रेखा होती है। यदि छायाग्रगत बिन्दु भिन्न भिन्न कपाल मे हो तथापि पूर्ववत् ही सब बातें समझनी चाहिए। कुछ भी विशेषता नही होती है। इस तरह भाभ्रम वृत्त के द्वारा दिशाओ का ज्ञान होता है। शकुमूल और छाया भ्रमण वृत्तपरिधि का अन्तर जो है वह मध्यच्छाया होती है ॥७-८॥

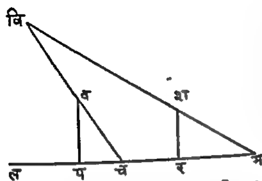
इदानी गृहपटलाभ्यन्तरे सूर्यविलोकनविधिमाह।

गृहमध्यगपरिलेखात्कर्णस्थितया विधाय गृहपटलम्।
दिग्योगस्थितदृष्ट्या पश्यति सूर्यग्रहं स्विष्टम् ॥९॥
तैलेऽथ दर्पे वा जलेऽथवा शङ्कुमार्गविन्यस्ते।
शंवग्रस्थितदृष्ट्या दिनमपि पश्येद्भ्रमन्तमादित्यम् ॥१०॥
केन्द्रगप्रभाग्रदृशा विलोकयेच्छङ्कुमार्गम ह्यपरम्।
भागाङ्कच्छिद्रैर्वा पश्यति तद्विद्धमिव सूर्यम् ॥११॥

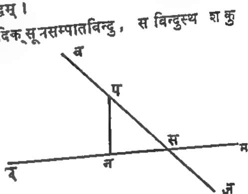
वि. भा—दिग्योगस्थित (दिक्सूत्राणा योगविन्दुस्थदृष्ट्या) शेष स्पष्टम् ॥९-११॥

अत्रोपपत्ति ।

एकस्मिन्नेव समये दृक्सूत्रे यत्र तत्र स्थापितशङ्कोश्छाया सर्वत्र तुल्या भवन्ति, कथमिति प्रदर्श्यते । लम = दृक्सूत्रम्, वि = ग्रहबिम्बकेन्द्रम् । पव = रश = शकु, पच = छा, रम = छा । वच = छायाकर्ण, शम = छायाकर्णं, अथ ग्रहबिम्बस्यातिदूरे स्थितत्वाद्यदि स्वल्पान्तरतो विच, विम रेखे समानान्तरे तदा <म = <च, <प = <र = ९०, तथा पव = रश = शकु, अत पवच, रशम त्रिभुज समाने (रे १अ २६ क्षे युक्त्या) ते पच = रम = छा = छा, पूर्वोक्त सिद्धम् ।



अथ रम = पूर्वापर रेखा, स = दिक्सूत्रसम्पातविन्दु, स विन्दुस्थ शकुच्छाया = सज यदि पूर्वयुक्तित सज = सप = पव, तदा प विन्दुगतश कोश्छायाग्र स विन्दो भवेदतस्तच्छक्वग्रात् स विन्दुगता रेखा ग्रहबिम्बकेन्द्रगता भवितुमर्हति, तेन शकुग्रस्थदृष्टया ग्रहदर्शन भवेदेव, व विन्दो शकौ स्थापिते छायाग्र प विन्दुगत भवेत्तेन तत्रस्थे जले, तैले दर्पणे वा ग्रहप्रतिबिम्ब भवति, परावर्तितकिरणसूत्र सविन्दो पूर्व शकुतुल्यस्थापितशक्वग्रगत भवति (पतित परावर्तितकोणयो समत्वात्) तेन प विन्दुत स विन्दुस्थापितश क्वग्रगतरेखा मार्गेण शक्वग्रस्थाऽधोदृष्टया प विन्दुगतजलादौ ग्रहदर्शन भवेदेवेति ।



भास्करादिभिराचार्यैर्नलकयन्त्रद्वारा ग्रहावलोकनप्रकारोऽभिहितो यथा भास्करस्य सिद्धान्तशिरोमणौ—

विधाय बिन्दु समभूमिभागे ज्ञात्वा दिश कोटिरत प्रदेया ।
प्रत्यङ्मुखी पूर्वकपालसस्थे पूर्वामुखी पश्चिमगे ग्रहे सा ॥
कोट्यग्रतो दोरपि याम्यसौम्यो विन्दोश्च भाभाग्रभुजाग्रयोगात् ।
सूत्र च विन्दुस्थनराग्रसक्त प्रसाय कर्णाकृतिसूत्रगत्या ॥
दृगुच्चमूल नलक निवेश्य वशद्वयाधारमथास्यरन्ध्रे ।
विलोकयेत्खे खचर किलैव जले विलोम तदपि प्रवेक्ष्ये ॥

एतादृश एव प्रकारो —चार्यस्य श्रीपतेश्चापि—

यद्यपि वटेश्वराचार्येण नलकयन्त्रस्य चर्चा न क्रियते किन्तु भङ्ग्यन्तरेण शङ्कुद्वारैव भास्करादिवत्सर्वं कथ्यत इति ॥९-१०॥

हि भा —दिक्सूत्रों का योगविन्दुस्थितदृष्टिवश कार्य करना। शेष बातें स्पष्ट है ॥९-११ ॥

उपपत्ति ।

एक ही समय मे दृक्सूत्र मे कहीं पर शकु स्थापन करने से उसकी छाया सर्व जगह बराबर होती है, इसको सिद्ध करने के लिये युक्ति दिखलाते हैं, संस्कृत उपपत्ति में जो क्षेत्र है उसको देखिये ।

लम=दृकसूत्र, वि=ग्रहविम्ब केन्द्र, पव=रश=शकु। पच=छाया=छा, रम=छाया, =छा, वच=छायाकर्ण, शम=छायाकर्ण,, ग्रहविम्ब के अतिदूर रहने के कारण यदि स्वल्पान्तर से विच और विम रेखा को समानान्तर मान लें तो रेखागणित से <म=<च, <प=<९०=र तथा पव=रश=शंकु इसलिए पवच और रशम ये दोनो त्रिभुज बराबर हुए तब पच= रम=छा=छा, इससे पूर्वोक्त सिद्ध हुआ,

अब मान लीजिये रम=पूर्वापर रेखा, व=दिक्सूत्र सम्पात विन्दु स्थित शकुच्छाया =सज यदि पूर्व युक्ति से सज=सप=पव तव प विन्दुगत शकु के छायाग्र स विन्दु में होता है इसलिए उस शकवग्र से स विन्दुगत रेखा ग्रह विम्ब केन्द्रगत होती है अत शकवग्र- स्थित दृष्टि से ग्रह दर्शन होगा ही, व विन्दु म शकु स्थापन करने से छायाग्र प विन्दुगत होता है इसलिए वहा जल, वा तेल या दर्पण देखने मे उनम ग्रहविम्ब प्रतिबिम्बित होता है, और परावर्त्तित किरण सूत्र स विन्दु मे पूर्व शकु के बराबर स्थापित शकु के अग्रगत होता है (पतित कोण और परावर्तित कोण के तुल्य होने के कारण) इसलिए प विन्दु म स्थापित शकु के अग्रगत रेखा मार्ग द्वारा शकु के अग्र म स्थित अधोदृष्टि से प विन्दुगत जलादि म ग्रहविम्ब दर्शन होता ही है ॥

भास्कर आदि आचार्यों ने नलक यन्त्र द्वारा ग्रह देखने के लिये प्रकार कहा है ।
सिद्धान्तशिरोमणि मे भास्कराचार्य का मत है—

"विधाय विन्दु समभूमिभागे ज्ञात्वा दिश कोटिरत प्रदेया ।" इत्यादि

इसी तरह लल्लाचार्य और श्रीपति के भी कथन हैं। यद्यपि वटेश्वराचार्य नलक यन्त्र की चर्चा नही करते हैं किन्तु दूसरी तरह शकु ही के द्वारा भास्करादि आचार्य की तरह सब कुछ कहते हैं ॥९-११॥

इदानीमिष्टच्छायावृत्ते पलभासाधनमाह ।

द्द्याद्भुजवदिनाग्रा तदग्रयोस्तूदयास्तमनसूत्रम् ।
छायावृत्ते तन्नरान्तरमक्षच्छायाङ्गुलानि स्युः ॥१२॥

वि भा —भुजवत् इनाग्रा (सूर्याग्रा) छायावृत्ते दद्यात् । अर्थाच्छायावृत्तीय यदुदयास्तसूत्र (सूर्याग्रया यदि तदीयमुदयास्तसूत्र तदा छायाऽग्रया किमित्यनुपातेन

समागत) तदुभयदिशि (पूर्वदिशि पश्चिमदिशि च) छायावृत्ते छायावृत्तीयाग्रांश-दानेन यौ बिन्दू तन्मध्यगतसूत्रमेव छायावृत्ते उदयास्तसूत्रम् । अस्योदयास्तसूत्रस्य शंकुमूलस्य च यदन्तरं सैव पलभा भवति छायावृत्ते, तत्र शंकुतलपलभयोस्तु-ल्यत्वात् ।।१२।।

अत्रोपपत्ति ।

क्ष्माजे द्युरात्रसममण्डलमध्यभागजीवाऽग्रका भवति पूर्वपराशयो. सा ।
अग्राग्रयो. प्रगुणमत्र निबद्धसूत्रं यत्तद्वदन्ति गणका उदयास्तसूत्रम् ॥

इति भास्करोक्तोदयास्तस्वरूपं सूर्याग्रया साधितप्रसिद्धमेव, शंकुमूलात्-दुदयास्तसूत्रोपरिकृतो लम्बः शंकुतलम् । एतच्छंकुतल छायावृत्ते परिणामितं पलभातुल्यमेव भवति ।

छायावृत्ते परिणतं शंकुतल पलभातुल्य कथ भवति तत्प्रदर्श्यते ।

अक्षाक्षक्षेत्रानुपातेन $\frac{\text{पलभा शकु}}{१२}$ = शंकुतलम्, इद छायाकर्णवृत्ते परि-णाम्यते तदा $\frac{\text{पलभा शकु छाकर्ण}}{१२\times\text{त्रि}}$ = छायावृत्ते शंकुतलम् । परन्तु $\frac{१२.\ \text{त्रि}}{\text{छायाक}}$ = शकु अतोऽत्र स्वरूपे शंकोरुत्थापनेन $\frac{\text{पलभा १२ त्रि छाक}}{\text{१२ त्रि छाक}}$ = पलभा = छाया-कर्णगोलीयशंकुतलम् । अत सिद्धम् ।।१२।।

हि. भा —भुज की तरह सूर्य की अग्रा को देना चाहिए अर्थात् सूर्य को अग्रा मे यदि उदयास्त सूत्र पाते हैं तो छायाग्रा मे क्या इस अनुपात से छायावृत्तीय उदयास्त सूत्र होता है । यही उदयास्त सूत्र "छायावृत्त मे पूर्व तरफ और पश्चिम तरफ छायावृत्तीयाग्रा दान देकर तदग्रगत रेखा करने से होता है इस उदयास्त सूत्र और शङ्कुमूल का अन्तर जो है वही पलभा होती है क्योकि छायावृत्त मे परिणत शंकुतल और पलभा बराबर होती है ।।१२।।

उपपत्ति ।

क्ष्माजे द्युरात्र सममण्डलमध्यभागजीवाऽग्रका भवति पूर्वपराशयो सा ।
अग्राग्रयो प्रगुणमत्र निबद्धसूत्र यत्तद्वदन्ति गणका उदयास्तसूत्रम् ॥

यह सूर्याग्रा से साधित भास्कर कथित उदयास्त सूत्र प्रसिद्ध ही है । शङ्कुमूल से दयास्त सूत्र के ऊपर जो लम्ब करते है वह शङ्कुतल है । इस शङ्कुतल को छायावृत्त मे रिणामन करने से पलभा के बराबर होता है ।

छायावृत्त मे परिणतशङ्कुतल पलभा के बरा क्यों होता है तदर्थ युक्ति ।

अक्षक्षेत्र के अनुपात से $\frac{\text{पभा शङ्कु}}{\text{१२}}$ = शङ्कुतल । इसको छायाकर्णवृत्त में परिणत करते हैं $\frac{\text{पभा शङ्कु, छाक}}{\text{१२ त्रि}}$ = छायावृत्त में शङ्कुतल । परन्तु $\frac{\text{१२ त्रि}}{\text{छाकर्ण}}$ = शङ्कु अत शङ्कु को उत्थापन देने से $\frac{\text{पभा १२ त्रि छाक}}{\text{१२ त्रि छाक}}$ = पभा = छायाकर्णगोलीय शङ्कुतल अत सिद्ध हो गया ॥१२॥

इदानीं छायापरिलेखमाह ।

तच्छङ्कुमस्तकान्तरमक्षश्रवणोऽक्षभा न्यसेत्केन्द्रम् ।
याम्योत्तराऽक्षे केन्द्रं तस्माद्वृत्तं लिखेद्विमलम् ॥१३॥
सिद्धाशं घटिकाङ्कं खटिका लेखाश्च केन्द्रगाः कार्याः ।
तद्भ्रमतो भाभ्रमणं तद्वद्वा भ्रमणमविरतम् ॥१४॥
यस्माद्विमले वृत्ते शङ्कुच्छाया भ्रमौ स्फुटौ भवतः ।
तात्कालिकाच्च सूर्यात्क्रान्त्याद्यं साधितं स्पष्टम् ॥१५॥
स्पष्टगतिर्यु चराणां ग्रहोन्नपातैर्विना न सम्यगतः ।
कार्याविसितास्तेषां स्वायुषि भगणाः कृता यात्रा ॥१६॥

वि भा—तच्छङ्कुमस्तकान्तर (पलभाग्रशङ्क्वोरन्तरं) अक्षश्रवण (पलकर्ण) अक्षभा न्यसेत् (पलभा स्थापयेत्) तदा केन्द्र (छायावृत्तकेन्द्र) स्यादर्थाच्छायावृत्तीयपलभास्थापनवशेन छायावृत्तकेन्द्रज्ञान भवेत् । केन्द्र याम्योत्तराक्षे (दक्षिणोत्तररेखायां) भवति, तस्मात् (केन्द्रविन्दुत.) विमल वृत्त (छायावृत्त) लिखेच्छेष स्पष्टमिति ॥१३ १६॥

इति वटेश्वरसिद्धान्ते त्रिप्रश्नाधिकारे छायापरिलेखविधिश्चतुर्दशोध्याय ।

हि भा—पलभाग्र और शङ्क्वग्र का अन्तर पलकर्ण होता है । पलभा को स्थापन करना तब केन्द्र (छायावृत्तके केन्द्र) का ज्ञान होता है अर्थात् पलभा स्थापन वश से छायावृत्त केन्द्रज्ञान होता है, वह केन्द्र दक्षिणोत्तर रेखा में होता है, उस केन्द्रविन्दु से छायावृत्त लिखना चाहिये, आगे की बातें स्पष्ट हैं ॥१३-१६॥

इति वटेश्वरसिद्धान्त में त्रिप्रश्नाधिकार में छायापरिलेखविधि नामक
चौदहवा अध्याय समाप्त हुआ ॥

पञ्चदशोऽध्यायः

अथ प्रश्नाध्यायविधिः

तत्रादौ तदारम्भप्रयोजनमाह ।

त्रिप्रश्ने प्रश्नसंख्यां कथमपि गणकैः शक्यते नावगन्तुम्,
मानाढ्यज्याविधीनामत इह लघुक स्पष्टशब्दार्थमूचे ।
प्रश्नाध्यायं विधास्ये नृपसदसि समाकर्ण्य यद्गोलबाह्या,
ग्लानिं संयान्त्यबोधादतिमलयतरोर्दोलनेन प्रपत्रम् ॥१॥

वि भा —गणकैः (ज्योतिर्विद्भिः) कथमपि (केनाप्युपायेन) त्रिप्रश्ने (त्रयाणां दिग्देशकालानां प्रश्ना यत्र तस्मिन्नधिकारे त्रिप्रश्नाधिकारे इत्यर्थः) प्रश्नसंख्या (तत्सम्बन्धिप्रश्नगणना) अवगन्तु (ज्ञातु) न शक्यते (न पार्यते) अत (अस्मात्कारणात्) इह (त्रिप्रश्नाधिकारे) मानाढ्यज्याविधीनां (मानयुक्तज्यारीतीनामर्थाज्ज्यात्मकपदार्थमानज्ञानार्थं रीतीनां) लघुक (गणितलाघवार्थं तन्नामक) स्पष्टशब्दार्थं (स्पष्ट शब्दार्थो यस्य त) ऊचे (कथितवान्) अर्थाद् यथा बहुत्र स्थले गणितलाघवार्थं माद्यान्यसंज्ञे रक्ष्येते तथैवात्राधिकारे कोणशक्वादि साधनेषु लघुक नाम रक्षितम्) । यत् (यस्मात्कारणात्) नृपसदसि (राजसभायां) गोलबाह्या (गोलज्ञानशून्या) प्रश्नाध्याय (प्रश्नप्रकरण) समाकर्ण्य (श्रुत्वा) ग्लानिं (लज्जा मनोदु ख वा) सयान्ति (प्राप्नुवन्ति) अबोधात् (तत्प्रश्नज्ञानरहितात्), मतिमलयतरोर्दोलनेन प्रपत्र (अतिशयमलयाचलस्थवृक्षदोलनेन यथा तत्पत्र पतित तथैव राजसभायां गोलज्ञानशून्यत्वात्प्रश्नश्रवणेन तत्पतनं भवतीत्यर्थः) अत प्रश्नाध्याय, विधास्ये (करवाणि) ॥१॥

हि भा —ज्योतिषी लोग किसी तरह भी त्रिप्रश्न (दिशा, देश और काल सम्बन्धी प्रश्न जिसमें उस त्रिप्रश्नाधिकार) मे तत्सम्बन्धी प्रश्नो की गणना को समर्थ नही होते हैं इसलिए इस त्रिप्रश्नाधिकार म ज्यात्मक पदार्थ के मानज्ञानार्थ परिपाटी के लिए लघुक जिस का शब्दार्थ स्पष्ट है अर्थात् छोटा उसको कहा है अर्थात् जैसे बहुत स्थलो मे गणित लाघव के लिए आद्य, अन्य आदि नाम रखते है वैसे ही इस अधिकार मे कोणशक्वादि साधनो मे लघुक नाम रक्खा गया है, जिस कारण से आज सभा मे गोलज्ञान रहित व्यक्ति अबोध के कारण प्रश्नाध्याय को सुन कर हास्यास्पद को पाते है, जैसे अतिशय मलय पर्वत के ऊपर वृक्षो के डोलने से पत्ते गिरते है उसी तरह राजसभा मे वे लोग गिरते है । इसलिए प्रश्नाध्याय को करता हू ॥१॥

तत्र प्रश्नानाह ।

भाप्रवेशनविधिं गमनाद्यो भात्रयेण ककुभः कथयेद्वा ।
एवमपक्रमपलैश्च विना यो भाभ्रमं प्रकथयेद् गणकः सः ॥२॥

वि भा —यो भागमनात् (छायानिर्गमनतः) भाप्रवेशनविधिम् (छायाप्रवेशपद्धति) वा भात्रयेण (छायात्रितयेन) ककुभ कथयेत् (दिग्ज्ञान कथयेत्) एवं अपक्रम पलैर्विना (क्रान्त्यक्षांशैर्विना) भाभ्रम (छायाभ्रमण) प्रकथयेत्स गणकोऽस्तीति ॥२॥

अत्र प्रश्नत्रय वर्त्तते । तत्र प्रथम प्रश्नोत्तरार्थं विचार्यते ।

समायां भूमाविष्टच्छायाकर्णव्यासार्धेन वृत्तं विलिख्य तद्वृत्तकेन्द्रे स्थापितस्य शङ्कोश्छायाग्रं पूर्वाह्णे यत्र विशति स पश्चिमबिन्दु । अपराह्णे च यत्र निर्गच्छति स पूर्वबिन्दु । एतद्बिन्दुद्वयगता रेखा स्थूला पूर्वापरा रेखा वास्तवपूर्वापररेखाया असमानान्तरा । यद्येकस्मिन् दिने रविक्रान्ति स्थिरा कल्प्येत तदा छाया प्रवेशनिर्गमकालयो समत्वात्तदग्रयोरपि समत्व तेन निर्गमकालिकाग्रातुल्यं वास्तवपश्चिमबिन्दुतोऽग्रागदानेन यो बिन्दु स एव च्छायाप्रवेशबिन्दुरिति । परमेकस्मिन् दिने रविक्रान्ति स्थिरा न तेन पूर्वोक्तरीत्या छायाप्रवेशबिन्दुज्ञान सम्यक् न जातमतस्तद्वास्तवज्ञानार्थमुपाय —

छायाप्रवेशकालिकक्रान्ति = क्रा } छायाप्रवेशकालिकाग्रा = अग्रा
छायानिर्गमकालिकक्रान्ति = क्रा' } छायानिर्गतकालिकाग्रा = अ'ग्रा

अथाग्रान्तरमानीयते यथा

अक्षक्षेत्रानुपातेन $\frac{\text{त्रि क्राज्या}}{\text{लज्या}}$ = अग्रा । $\frac{\text{त्रि अग्रा}'}{\text{लज्या}}$ = अ'ग्रा

छायाकर्णवृत्ते परिणाम्यते

$\frac{\text{त्रि क्राज्या} \times \text{छाकर्ण}}{\text{लज्या त्रि}}$ = छायाकर्णवृत्ते प्रवेशकालिकाग्रा = $\frac{\text{क्राज्या छाक}}{\text{लज्या}}$

तथा $\frac{\text{त्रि.क्रा'ज्या छाकर्ण}}{\text{त्रि लज्या}}$ = छायाकर्णवृत्ते निर्गमकालिकाग्रा = $\frac{\text{क्रा'ज्या छाक}}{\text{लज्या}}$

एतयोरन्तरम्

$\frac{\text{छाक}}{\text{लज्या}}$ (क्रा'ज्या ∼ क्राज्या) = छायाकर्णवृत्तीयाग्रान्तर = छायाकर्णवृत्ते भुजान्तर एतावत्येवान्तरे प्रवेशबिन्दु रव्यायनवशा सचालयेत् । यदि रविरुत्तरायणे तदोत्तरतो दक्षिणायने रवौ दक्षिणतश्चालयेत्तदा चालितपूर्वबिन्दुपश्चिमबिन्दुगता रेखा वास्तवपूर्वापररेखाया समानान्तरा भवेत् । परमत्र निर्गमबिन्दु (पूर्वबिन्दु)-

वशेन प्रवेशबिन्दुज्ञानमपेक्षितमत पूर्वोक्ताऽग्रान्तरस्य निर्गमच्छायाग्रबिन्दुतो दानेन प्रवेशबिन्दुज्ञान भवेदेवेति ।

श्रीपतिभास्करप्रभृतिभिराचार्यैः पूर्वोक्तरीत्याऽग्रान्तर भुजान्तर वा ससाध्य तद्वशेन वास्तवपूर्वापररेखाया समानान्तर रेखाज्ञान कृत पूर्वोक्तमग्रान्तर भुजान्तर वा रेखात्मक तस्य वृत्तपरिघौ दानानौचित्यात्तद्रीत्या न वास्तवदिग्ज्ञान भवति । दिङ्मीमासायां म म श्रीसुधाकरद्विवेदिना पूर्वसाधितछायावृत्तीय भुजान्तरवशेन स्फुट दिग्ज्ञान कृतमिति ॥ २ ॥

द्वितीयतृतीयप्रश्नयोरुत्तरार्थम्

एतत्प्रश्नद्वयोत्तरार्थयुक्तिश्छायापरिलेखविधौ ७-८ श्लोकयोर्युक्त्यवलोकनेन स्पष्टेति ॥ २ ॥

हि भा—जो व्यक्ति छाया निर्गमन से छायाप्रवेशविधि को और तीन कालिक छाया से दिशाज्ञान को तथा क्रान्ति और अक्षाश के बिना छायाभ्रमण को कहे वह ज्योतिषी है ॥ २ ॥

यहाँ तीन प्रश्न है । यहा प्रथम प्रश्न के उत्तर के लिए विचार करते है ।

उपपत्ति ।

समान पृथ्वी मे इष्टच्छाया कर्णव्यासार्ध से वृत्त लिखकर उसके केन्द्र मे शकु को स्थापन करने से उसकी छाया पूर्वान्ह मे जहा प्रवेश करती है वह पश्चिम बिन्दु है । अपरान्ह मे उसी शकु की छाया जहा निर्गत होती है वह स्थूल पूर्व बिन्दु है । इन दोनो बिन्दुओ मे लगी जो रेखा होती है वह स्थूल पूर्वापर रेखा है, जो कि वास्तव पूर्वापर रेखा की असमानान्तर है । यदि छायाप्रवेशकालिक अग्रा और निर्गमकालिक अग्रा बराबर रहती तब तो वह रेखा वास्तव पूर्वापररेखा की समानान्तर रेखा ही होती पर दोनो कालिक अग्रा तब ही बराबर हो सकती है जबकि एक दिन मे रवि की क्रान्ति स्थिर मानी जाय पर यह मानना असङ्गत है । अत वास्तविक पूर्वापर दिशा ज्ञान के लिये विचार करते हैं ।

यहा कल्पना करते है छायाप्रवेशकालिक क्रान्ति = क्रा, छायानिर्गमकालिकक्रान्ति = क्रा' ; छायाप्रवेशकालिक अग्रा = अग्रा, छायानिर्गमकालिक अग्रा = अग्रा'

अक्षक्षेत्रानुपात से $\frac{\text{त्रि क्राज्या}}{\text{लज्या}}$ = प्रवेशका अग्रा । $\frac{\text{त्रि क्रा'ज्या}}{\text{लज्या}}$ = निर्गमका अ'ग्रा

छायाकर्ण वृत्त मे परिणामन करने से

$\frac{\text{त्रि क्राज्या छाकर्ण}}{\text{लज्या त्रि}} = \frac{\text{क्राज्या छाक}}{\text{लज्या}}$ = छायाकर्ण वृत्तीयाग्रा

एव $\frac{\text{क्राज्या छाक}}{\text{लज्या}}$ = निर्गमका छायाकर्ण वृत्तीया

दोनो के अन्तर करने से

$$\frac{\text{छाक}}{\text{लज्या}}(\text{क्रा'ज्या}-\text{क्राज्या}) = \text{छायाकर्णवृत्तीयाग्रान्तर} = \text{छायाकर्ण वृत्तीयभुजान्तर}$$

इतने ही अन्तर पर रवि के अयन वश करके प्रवेश विन्दु को चलाना चाहिये। यदि रवि उत्तरायण मे हो तो उत्तर से रवि १ दक्षिणायन मे रहने से दक्षिण से चालन देने मे चालित पूर्वविन्दु और पश्चिम विन्दुगतरेखा वास्तव पूर्वापर रेखा की समानान्तर रेखा होती है। लेकिन यहा निर्गम विन्दु से प्रवेश विन्दुज्ञान अपेक्षित है इसलिये पूर्वसाधित अग्रान्तर या भुजान्तर तुल्य निर्गम विन्दु से दान देने से प्रवेश विन्दुज्ञान होगा।

श्रीपति तथा भास्कर आदि आचार्य ने पूर्वरीति से अग्रान्तर साधन करके तत्तुल्य पूर्वविन्दु को चालित कर वास्तव पूर्वापर रेखा की समानान्तर रेखा का ज्ञान किया है। पूर्वोक्त अग्रान्तर या भुजान्तर रेखात्मक है उसको वृत्तपरिधि मे दान देना अनुचित है इसलिए उन लोगो के दिक्ज्ञान ठीक नही है। म म श्री सुधाकर द्विवेदी ने दिङ्मीमांसा मे पूर्वसाधित छायावृत्तीय भुजान्तरवश मे वास्तव दिक्ज्ञान किया है ॥२॥

द्वितीय और तृतीय प्रश्न के उत्तर मे लिए युक्ति "छायापरिलेखविधि" के ७-८ श्लोको की युक्ति देखने से स्पष्ट है ॥२॥

इदानीमन्यान् प्रश्नानाह।

वेत्ति दिशोऽपमजाशपलैर्यो द्युदलद्युतिं द्युतिभ्रमावृत्तात्।
मध्यदिनद्युतितोऽर्कमवेत्य स्वाक्षजभा कुरुते गणकः स ॥३॥

वि भा—योऽपमजाशपलै (क्रान्त्यक्षाशै) दिशो वेत्ति (दिग्ज्ञान जानाति) उत द्युतिभ्रमावृत्तात् (छायाभ्रमणवृत्तात्) द्युदलद्युतिं (मध्यच्छाया) जानाति, तथा द्युदलद्युतित (मध्यच्छायात) अर्क (रवि) अवेत्य (ज्ञात्वा) स्वाक्षजभा (पलभा) कुरुते, सो गणकोऽस्तीति ॥

एतेषामुत्तरार्थमुपपत्तय।

अत्र प्रश्नचतुष्टय वर्तते तत्र प्रथमप्रश्नस्योत्तरार्थं विचार। क्रान्त्यक्षाशयोर्ज्ञानात्प्रश्नाध्यायस्य द्वितीयश्लोकोपपत्तिदर्शनात् "तत्कालापमजीवयोस्तु विवरादि" त्यादि भास्करोक्तेन वा तदुत्तर सुलभमेवेति ॥

द्वितीयप्रश्नोत्तरार्थं विचार।

छायाभ्रमणवृत्तान्मध्यच्छायाज्ञान छायापरिलेखविधौ ७ ८ श्लोकयोरुपपत्तिदर्शनेन स्फुटमेवेति ॥

तृतीयप्रश्नोत्तरार्थं विचार ।

मध्यच्छायातो रवेर्ज्ञानम् ।

मध्यच्छायाज्ञानेन $\sqrt{\text{छाया}^2+१२^2}$ = छायाकर्ण । तत $\frac{\text{छाया त्रि}}{\text{छायाक}}$ = दृग्ज्या । अस्या

अपि दिनार्धे नतांशा भवेयु । ततो दिनार्धनतांशयो संस्कारेण क्रान्तिज्ञान भवेत्तत

$\frac{\text{त्रि क्राज्या}}{\text{जिज्या}}$ = रविभुजज्या । अस्याअपि रविभुजांशा भवन्तीति ॥

हि भा —जो व्यक्ति-विशेष क्रान्ति और अक्षांश को जानकर दिशा को जानते है, छायाभ्रमणवृत्त से मध्यच्छाया को जानते हैं, वा मध्यच्छाया से रवि को जानकर पलभा को जानते हैं वे ज्योतिषी है ॥

इन प्रश्नो के उत्तर के लिए उपपत्ति

यहा चार प्रश्न हैं, उनमे से प्रथम प्रश्न के उत्तर के लिए विचार करते हैं। क्रान्ति और अक्षांश के ज्ञान से प्रश्नाध्याय के द्वितीयश्लोक की उपपत्ति देखने से या "तत्कालापम-जीवयोस्तु विवरात्" इत्यादि भास्करोक्त दिग्ज्ञान से सुलभ ही से दिग्ज्ञान हो जायगा ॥

द्वितीय प्रश्न के उत्तर के लिए विचार।

छायाभ्रमण वृत्त परिधि से मध्यच्छाया ज्ञान के लिए छायापरिलेखविधि के ७ ८ श्लोकों की उपपत्ति देखनी चाहिये ॥

तृतीय प्रश्न के उत्तर का विचार स्पष्टार्थ है ॥३॥

इदानीमन्यान् प्रश्नानाह ।

वीक्ष्य रवेरुदय रविविद्यो यष्टिविधेर्निखिलोर्ध्वमितिं च ।
वेत्ति पल पलभां गणितज्ञ गोलजातविषयज्ञवरिष्ठ. ॥४॥

वि भा —यो रविवित् (रविपरिचित) रवेरुदय वीक्ष्य (दृष्ट्वा) यष्टिविधे (यष्टियन्त्रविधित) निखिलोर्ध्वमितिं (निखिलाना सम्पूर्णानामूर्ध्वस्थिताना मान) पल पलभां च (अक्षांशपलभा च) वेत्ति (जानाति) स गोलजातविषयज्ञ-वरिष्ठ (गोलीयविषयपण्डितेषु श्रेष्ठ) स्यादिति ॥ ४ ॥

एतदुत्तरार्थं विचार्यते ।

अत्र प्रथम रवेरग्राया नतोन्नतांशज्ययोश्च स्वरूप प्रदर्श्य तत्साधन च क्रियते।

समाया भूमौ सरलशलाका रूपयेष्टयष्टचा लिखिते वृत्ते दिक्साधनद्वारा दिक्साधन कृत्वा चक्रांशाङ्कित कार्यं प्रतिभागेषु षष्टि कला अङ्काश्च तदा

पूर्वापररेखातो यावत्यंशान्तरे रविर्भवति तदंशज्या तस्मिन् दिने रवेरग्रा ज्ञातव्या। वृत्तकेन्द्रे वृत्तव्यासार्धरूपा नष्टच्छायेष्टयष्टिर्यथा भवेत्तथा तिर्यक् रविकेन्द्र-गामिसूत्राकाराऽऽवद्धलम्वा धार्या । वृत्तकेन्द्रार्थरङ्गुलैर्लम्बपातोऽर्थाद्यल्लम्बरूप-सरलशलाका बद्धा पूर्वयष्टिघृंता तन्निपातो भवति तदङ्गुलमान एव यष्टिव्या-सार्धोत्पन्नवृत्ते नतांशज्या (दृग्ज्या) भवति । लम्बाशलाङ्गुलप्रमाणमुन्नतां-शज्या (शङ्कु) भवतीति ॥

अत्र यष्टिव्यासार्धं (त्रिज्या) रूपा, एतद्व्यासार्धोत्पन्नवृत्तं क्षितिजवृत्तम्। अत्र वृत्ते पूर्वबिन्दुतः औदयिक रविं यावदग्रा चापांशाः। अग्राग्रे उदितो रविर्यथा यथोपरिगच्छति तथा तथा केन्द्रे स्थापितयष्टिर्नष्टद्युति. स्यात्। नष्टद्युतेर्यष्टे-रग्राद्यावान् लम्बस्तावानेव तस्मिन् काले शङ्कुः तथा लम्बमूलबिन्दोर्वृत्तकेन्द्रपर्यन्तं नतांशज्या (दृग्ज्या) भवति। एतयोस्त्रिज्या वृत्ते परिणाम्यते, यदि यष्टमाऽऽनीतें यष्टिव्यासार्धवृत्तीये नतांशोन्नतांशज्ये लभ्येते तदा त्रिज्ययाके इत्यनुपातेन त्रिज्यावृत्तीये नतांशोन्नतांशज्ये समागते।

पूर्वलिखितवृत्ते मध्यान्हकाल एव वृत्तकेन्द्रादुत्तरदिशि दक्षिणदिशि च शङ्कुपतनं भवितुमर्हति तेनोत्तरगोले मध्यान्हकाले वृत्तकेन्द्रादुत्तरदिशि शङ्कुमूल-पतने तन्मूलत पूर्वापरसूत्रोपरि यो लम्ब. स भुजः। एतेन भुजेन रहिता रव्यग्रा शङ्कुतलं भवेत्। वृत्तकेन्द्राद्दक्षिणे शङ्कुमूले भुजेन युताऽग्रा शङ्कुतलं भवेत्। ततोऽनु-पातो यदि मध्यान्हशङ्कौ शङ्कुतलं लभ्यते तदा द्वादशाङ्गुलशङ्कौ का समागच्छति पलभा। अथ $\sqrt{\text{मध्यशं}^2 + \text{शङ्कुतलं}^2} = \text{हृति}$

$$\text{तदा}\quad \frac{\text{शङ्कु}\times\text{त्रि}}{\text{हृति}} = \text{लम्बज्या}\text{। तथा}\quad \frac{\text{शङ्कुतल}\times\text{त्रि}}{\text{हृति}} = \text{अक्षज्या}\text{।}$$

मध्यान्हतो भिन्नसमये पलभाज्ञानार्थं

उपरिलिखितोपपत्तौ मध्यनतज्योन्नतज्ये (दृग्ज्या शङ्कु) यदा ज्ञाते भवतस्तदा

$\frac{\text{दृग्ज्या}\times 12}{\text{शङ्कु}} = \text{छा} \therefore \sqrt{\text{छा}^2 + 12^2} = \text{छायाकर्ण}$ तदा यत, छायाकर्णगोले पभा

$=$ शङ्कुतल $\therefore$ छायाकर्णगोलीयाग्रा $\pm$ भुज $=$ छायाकर्णगोले $\times$ शङ्कुतल $=$ पलभा

भास्कराचार्येणाऽपि यष्टियन्त्रेणाग्राक्षांशादिज्ञानं सिद्धान्तशिरोमणौ वृत्तं यथा च तत्पद्यानि।

"त्रिज्या विष्कम्भार्धं वृत्तं कृत्वा दिगङ्कितं तत्र।
दत्वाऽग्रा प्राक् पश्चाद् द्युज्या वृत्तं च तन्मध्ये॥
तत्परिधौ षष्टयङ्कं यष्टिर्नष्टद्युतिस्ततः केन्द्रे।
त्रिज्याङ्गुला निधेया यष्टयग्राग्रान्तरं यावत्॥

तावत्या मौर्व्या यद् द्वितीयवृत्ते धनुर्भवेत्तत्र ।
दिनगतशेषा नाड्य प्राक्पश्चात् स्यु क्रमेणैवम् ॥
यष्ट्यग्राल्लम्बो ना ज्ञेया दृग्ज्या नृकेन्द्रयोर्मध्ये ।
उदयेऽस्ते यष्ट्यग्रप्राच्यपरा मध्यमग्रा स्यात् ॥
दा कूदयास्तसूत्रान्तरमर्कगुण नरोद्धृत पलभा ॥" इति ॥४॥

हि भा—जो रविज्ञाता रवि के उदय को देखकर यष्टियन्त्र विधि से सम्पूर्ण पदार्थो के मान और अक्षांश तथा पलभा के मान को जानते है वह गणित के पण्डित गोलीयविपय के पण्डितो मे श्रेष्ठ है ॥ ४ ॥

इनके उत्तर के लिए विचार करते है ।

यहाँ पहले रवि की अग्रा के तथा नताशज्या और उन्नताशज्या के स्वरूप को दिखा-कर उनके साधन करते हैं । समान पृथ्वी मे सरलशलाका का रूप इष्टयष्टि को त्रिज्या मान कर वृत्त बनाना, वह क्षितिज वृत्त है । दिक्साधन नियम से इस वृत्त मे पूर्वापररेखा और दक्षिणोत्तररेखा का ज्ञान कर लेना, इस वृत्त मे पूर्वविन्दु से जितने अन्तर पर रवि है उसकी ज्या अग्रा है । अग्राग्र मे उदित रवि ज्यो ज्यो ऊपर जाते हैं त्यो त्यो केन्द्र मे स्थापित यष्टि नष्टद्युति होती है । नष्टद्युति यष्टि के अग्र से जो लम्ब होता है वह शकु है, लम्बमूलविन्दु से वृत्त केन्द्र पर्यन्त नताशज्या (दृग्ज्या) होती है । इन दोनो को त्रिज्यावृत्त मे परिणामन करते हैं यदि यष्टि व्यासार्ध मे यष्टि व्यासार्धोत्पन्न नताशज्या और उन्नताशज्या पाते हैं तो त्रिज्या मे क्या इस अनुपात से त्रिज्यावृत्तीय नताशज्या और उन्नताशज्या आती है, पूर्व-लिखितवृत्त मे मध्यान्हकाल ही मे वृत्त केन्द्र से उत्तर दिशा मे और दक्षिण दिशा मे शकुमूल गिरता है इसलिये उत्तर गोल मे मध्यान्हकाल मे वृत्तकेन्द्र से उत्तर तरफ शकुमूल गिरने पर शकुमूल से पूर्वापर सूत्र के ऊपर जो लम्ब करते हैं वह भुज है । रवि की अग्रा मे इस भू को घटाने से शकुतल होता है । वृत्तकेन्द्र से दक्षिण तरफ शकुमूल गिरने पर रवि की अग्रा मे भुज को जोडने से शकुतल होता है । तब अनुपात करते है यदि मध्यशकु मे शकुतल पाते हैं तो द्वादशाङ्गुल शकु मे क्या इस अनुपात से पलभा आती है। $\sqrt{\text{मशकु}^2 + \text{शकुतल}^2}$ $=$ द्युति । तब $\frac{\text{शकुतल} \times १२}{\text{द्युति}}$ $=$ अक्षज्या

इस पर से पलभाज्ञान सुलभ ही है ।

मध्यान्ह से भिन्न समय मे पलभाज्ञान के लिए पूर्वलिखित उपपत्ति से जब मध्यान्ह काल मे दृग्ज्या और शकु विदित हुआ है तो $\frac{\text{दृग्ज्या}.१२}{\text{शकु}}$ $=$ छा । $\sqrt{\text{छा}^2 + १२^2}$ $=$ छायाकर्ण,

इस छायाकर्ण व्यासार्धवृत्त मे पलभा $=$ शकुतल होता है इसलिए छायाकर्ण वृत्तीय अग्रा $\pm$ भुज $=$ छायाकर्ण वृत्तीय शकुतल $=$ पलभा इस तरह पलभा ज्ञान होता है । भास्करा-

चार्य ने भी यष्टियन्त्र के द्वारा दिनगत घटिकादिज्ञान, अग्रा, अक्षांशादि का ज्ञान सिद्धान्त-शिरोमणि में किया है, जैसे उनके पद्य हैं—

"त्रिज्या विष्कम्भार्धं वृत्तं कृत्वा दिगङ्कितं तत्र" इत्यादि ॥४॥

इष्टभा च सममण्डलभा च कोणभा च बहुधा समीक्ष्य यः ।
शीघ्रमेव बहुधार्कमानयेत्कालमिष्टमथवा स तन्त्रवित् ॥५॥

वि. भा.—यः इष्टभां (इष्टच्छायां) सममण्डलच्छायां—कोणच्छायां च समीक्ष्य (दृष्ट्वा) शीघ्रमेव बहुधार्कं (रविं) आनयेदथवेष्टकालमानयेत्स तन्त्रवित् (ज्योतिर्वित्) स्यादिति ॥५॥

एतदुत्तरार्थं विचार्यते । प्रथमद्वितीयप्रश्नोत्तरार्थं विचारः ।

सममण्डलच्छायाज्ञानेन $\sqrt{\text{सछा}^2+१२^2}$=सममण्डलकर्णः । ततः $\frac{१२\times त्रि}{सक}$ =समशङ्कुः अथ त्रिज्यया यदि अक्षज्यां लभ्यते तदा समशङ्कुना केतिजाता क्रान्ति-ज्या= $\frac{अज्या\times सश}{त्रि}$

अत्र समश कोरुत्थापनेन $\frac{अज्या\ १२\ त्रि}{सक\ त्रि}=\frac{अज्या\ १२}{सक}$ =क्रान्तिज्या ।

अथ $\frac{अज्या\ १२}{सक}=\frac{अज्या\ १२\ लज्या}{सक\ लज्या}=\frac{पभा\ लज्या}{सक}$ =क्रान्तिज्या

ततः $\frac{त्रि\ क्राज्या}{जिज्या}$=अस्याश्चाप तदा रविभुजांशा भवेयुरिति ।

सममण्डलकर्णज्ञानेन रव्यानयनप्रकारः सिद्धान्तशेखरे श्रीपतिनाऽप्येवमेव कृतोऽस्ति । यथा च तदीयः श्लोकः ।

सूर्याक्षभाघ्ने पललम्बजीवे कर्णेन भक्ते समशङ्कुजेन ।
क्रमाद् भवेतामपमज्य के ते त्रिकर्त न प्राक्तनकर्मणाऽर्कः ॥

अथवा समशङ्कुज्ञानेन रव्यानयनप्रकारः ।

अथ त्रिज्ययाऽक्षज्या लभ्यते तदा सममण्डलशङ्कुकर्णेन केति जाता क्रान्ति-ज्या= $\frac{अज्या\ सश}{त्रि}$ ततो जिनज्यया त्रिज्या लभ्यते तदा क्रान्तिज्यया केति जाता

रविभुजज्या $=\frac{त्रि\ क्राज्या}{जिज्या}=\frac{अज्या\ सश\ त्रि}{त्रि\ जिज्या}=\frac{अज्या\ सश}{जिज्या}$ अस्या-श्चाप तदा रविर्भवेदिति ॥५॥

अथ तृतीयप्रश्नोत्तरार्थं विचार ।

कोणच्छायातो रवेर्ज्ञानम् ।

कोणवृत्तस्थिते रवौ कोणवृत्तपूर्वापरवृत्ताभ्यामुत्पन्नकोण = ४५। तथा कोणवृत्तयाम्योत्तरवृत्ताभ्यामुत्पन्नकोणश्च = ४५ तेनाऽत्र कोणश कु-मूलात्पूर्वापरसूत्रोपरिलम्बो भुज = कोणश कुमूलाद्याम्योत्तरसूत्रोपरिलम्ब कोटि-सञ्ज्ञक । कोणश कुमूलाद्भूकेन्द्र यावद्दृग्ज्या, तदा भुजकोटिदृग्ज्याभिरुत्पन्नत्रिभुजे कोणानुपातेन त्रिज्यया यदि दृग्ज्या लभ्यते भूकेन्द्रलग्नकोणज्यया पञ्चचत्वारिंश ज्ज्यया केत्यनुपातेन समागतो भुज = $\frac{\text{दृग्ज्या} \times \text{ज्या } ४५}{\text{त्रि}}$, अथ कोणवृत्तस्थरव्यु-परिगतध्रुवप्रोतवृत्तनाडीवृत्तसम्पातान्निरक्षोर्ध्वाधरसूत्रोपरिलम्ब = त्रिज्यावृत्तीय-नतकालज्या इय द्युज्यावृत्तपरिणता याम्योत्तरवृत्तधरातलोपरिकोणश कोरग्रा-ल्लम्बरूपा रेखा नतकालज्या भवति सा च पूर्वानीतकोट्या समाना । तत

$\frac{\text{दृग्ज्या} \times \text{ज्या } ४५}{\text{त्रि}} = \frac{\text{द्युज्या} \times \text{नतकालज्या}}{\text{त्रि}}$ $\frac{\text{दृग्ज्या} \times \text{ज्या } ४५ \times \text{त्रि}}{\text{त्रि नतकाज्या}} =$

$\frac{\text{दृग्ज्या ज्या } ४५}{\text{नतकाज्या}}$ = द्युज्या, त्रिज्यावर्गे विशोध्य मूल ग्राह्य तदा क्रान्तिज्या भवेत्त-तो रविज्ञान सुगममेव ।। प्रथमप्रश्नोत्तर सुगममेवेति ।।५।।

हि भा—इष्टच्छाया सममण्डलच्छाया तथा कोणच्छाया को जानकर जो व्यक्ति रवि को लाते है अथवा इष्टकाल को लाते है वे ज्यौतिषिक है ।।५।।

इनके उत्तर के लिये विचार करते हैं । पहले दूसरे प्रश्न के उत्तर के लिए विचार । सममण्डलच्छाया ज्ञान से $\sqrt{\text{सछा}^2 + १२^2}$ = सममण्डल कर्ण तब $\frac{१२ \times \text{त्रि}}{\text{सक}}$ = सश कु । यदि त्रिज्या मे अक्षज्या पाते है तब समशकु मे क्या इस अनुपात से क्रान्तिज्या आती है । $\frac{\text{अज्या सश}}{\text{त्रि}}$ = क्रान्तिज्या । यहा समशकु को उत्थापन करने से

$\frac{\text{अज्या } १२ \text{ त्रि}}{\text{त्रि सक}} = \frac{\text{अज्या } १२}{\text{सक}}$ = क्राज्या = $\frac{\text{अज्या} \times १२ \times \text{लज्या}}{\text{सक} \times \text{लज्या}} = \frac{\text{पभा लज्या}}{\text{सक}}$

तब $\frac{\text{त्रि. क्राज्या}}{\text{जिज्या}}$ = रभुजज्या, इसके चाप करने से रवि भुजाश होता है । सममण्डल कर्ण-ज्ञान से रवि के आनयन प्रकार सिद्धान्तशेखर मे श्रीपति ने भी इसी तरह किया है । जैसे—

सूर्याक्षभाघ्ने पललम्बजीवे कर्णेन भक्ते समशङ्कुजेन ।
क्रमाद् भवेतामपमज्यके ते विकर्तन प्राक्तनकर्मणाऽस्त ।

अथवा समशङ्कु ज्ञान से रवि का आनयन प्रकार ।

त्रिज्या मे यदि अक्षज्या पाते हैं तो समशङ्कु मे क्या इस अनुपात से क्रान्तिज्या आती है $\frac{\text{अज्या सश}}{\text{त्रि}}$ = क्राज्या । तब जिनज्या मे यदि त्रिज्या पाते हैं तो क्रान्तिज्या मे क्या इस अनुपात से रवि की भुजज्या आती है, $\frac{\text{त्रि क्राज्या}}{\text{जिज्या}}$ = रभुज्या

यहां क्रान्तिज्या को उत्थापन देने से $\frac{\text{अज्या सश त्रि}}{\text{त्रि.जिज्या}}$ = रविभुज्या

$= \frac{\text{अज्या सश}}{\text{जिज्या}}$ = रभुज्या । इसके चाप करने मे रवि भुजांश होता है ॥५॥

तीसरे प्रश्न के उत्तर के लिए विचार । कोण छाया से रवि का ज्ञान ।

कोणवृत्त मे रवि के रहने से कोणवृत्त और पूर्वापर वृत्त से उत्पन्न कोण = ४५ तथा कोणवृत्त और याम्योत्तर वृत्त से उत्पन्नकोण = ४५ इसलिए कोण शकुमूल से पूर्वापर सूत्र के ऊपर लम्ब = भु = कोणश कुमूल से याम्योत्तर रेखा के ऊपर लम्ब = कोटि कोणश कुमूल से भूकेन्द्र पर्यन्त = दृग्ज्या, तब भुज, कोटि और दृग्ज्या इन भुजकोटि और कर्ण से उत्पन्न त्रिभुज मे कोणानुपात करते हैं । यदि त्रिज्या मे दृग्ज्या पाते हैं तो पैंतालीस अंश की ज्या मे क्या इस अनुपात से कोटि प्रमाण आता है ।

$\frac{\text{दृग्ज्या} \times \text{ज्या ४५}}{\text{त्रि}}$ = कोटि । कोणवृत्तस्थ रवि के ऊपर ध्रुवप्रोतवृत्त और नाडीवृत्त के सम्पात बिन्दु से निरक्षोर्ध्वाधर सूत्र के ऊपर लम्ब = नतकालज्या, यह नतकालज्या त्रिज्यावृत्तीय है इसको द्युज्यावृत्त मे परिणत करने से कोणश कु के अग्र से याम्योत्तरवृत्त धरातल के ऊपर लम्बरेखा = द्युज्यावृत्तीय नतकालज्या = पूर्वानीतकोटि

$= \frac{\text{नतकाज्या द्युज्या}}{\text{त्रि}} = \frac{\text{दृग्ज्या ज्या ४५}}{\text{त्रि}} \therefore \frac{\text{दृग्ज्या ज्या ४५ त्रि}}{\text{त्रि नतकाज्या}}$ = द्युज्या

$= \frac{\text{दृग्ज्या ज्या ४५}}{\text{नतकाज्या}}$ इसके वर्ग को त्रिज्यावर्ग मे घटाकर मूल लेने से क्रान्तिज्या होती है $\sqrt{\text{त्रि}^2 - \text{द्यु}^2}$ क्रान्तिज्या तब $\frac{\text{त्रि क्राज्या}}{\text{जिज्या}}$ = रवि भुजज्या इसके चाप करने से रवि का भुजांश होता है ॥

प्रथम प्रश्न का उत्तर सुगम ही है ॥५॥

पुन प्रश्नानाह ।

चरखण्डपलांशविद्रवि कुर्यादिष्टचरासुतोऽक्षभाम् ।
स्वपलद्युतितश्चरार्धकं त्रिप्रश्नोक्तमवैति स स्फुटम् ॥६॥

वि. भा.—यश्चरखण्डपलांशवित् (चरार्धाक्षांशज्ञाता) रविं कुर्यात् (रविं साधयेत्) तथेष्टचरासुत. (इष्टचरार्धज्ञानात्) अक्षभा (पलभा) साधयेत् । स्वपलद्युतित (स्वपलभात) चरार्धंक साधयेत्स स्फुट त्रिप्रश्नोक्त विधिं जानातीति ॥६॥

अत्र प्रश्नत्रयमस्ति

तत्र प्रथमप्रश्नोत्तरार्थमुपपत्ति ।

अक्षांशज्ञानेन पलभाज्ञान सुलभमेव ∵ ९०–अक्षांश=लम्बांश

तदा $\frac{\text{अज्या } १२}{\text{लज्या}}$=पलभा तदा कल्प्यते क्रान्तिज्याप्रमाणम्=य

तदा $\frac{\text{पभा य}}{१२}$=कुज्या, वर्गकरणेन $\frac{\text{पभा}^२\text{य}^२}{१२^२}$, अथ क्रान्तिज्यावर्गोनस्त्रिज्यावर्गो द्युज्यावर्ग.=त्रि²–य² तदा $\frac{\text{चज्या द्यु}}{\text{त्रि}}$=कुज्यावर्गेण $\frac{\text{चज्या}^२\text{ द्यु}^२}{\text{त्रि}^२}$=कुज्या²

कुज्यावर्गयो. समीकरणम्

$$\frac{\text{पभा}^२\text{ य}^२}{१२^२}=\frac{\text{चज्या}^२.\text{द्यु}^२}{\text{त्रि}^२}=\frac{\text{चज्या}^२(\text{त्रि}^२-\text{य}^२)}{\text{त्रि}^२}$$ छेदगमेन

$$\text{त्रि}^२.\text{य}^२.\text{पभा}^२=१२^२\times\text{चज्या}^२(\text{त्रि}^२-\text{य}^२)=\text{चज्या}^२\ १२^२\ \text{त्रि}-१२^२\ \text{चज्या}^२\text{य}^२$$

समशोधनेन

$$\text{त्रि}^२\text{य}^२\text{पभा}^२+१२^२\text{चज्या}^२\text{य}^२=\text{चज्या}^२\ १२^२\ \text{त्रि}^२$$
$$=\text{य}^२(\text{त्रि}^२\text{पभा}^२+१२^२-\text{चज्या}^२)=\text{चज्या}^२\ १२^२\ \text{त्रि}^२$$

$$\therefore\frac{\text{चज्या}^२\ १२^२\ \text{त्रि}^२}{\text{त्रि}^२\text{पभा}^२+१२^२\text{चज्या}^२}=\text{य}^२=\frac{\text{त्रि}^२}{\frac{\text{त्रि}^२\text{पभा}^२+१२^२.\text{चज्या}^२}{\text{चज्या}^२\ १२^२}}$$ मूलेन य मान भवेत् ।

ततो रविज्ञान सुगमकमिति ॥

सिद्धान्तशेखरे श्रीपतिनैवमेव क्रान्तिज्ञान कृतम् । यथा—

सूर्यघ्नी चरशिञ्जिनीकृतकृतिस्तद्युक्तभक्ता सती ।
त्रिज्याऽक्षप्रभयोर्वधस्य करणी छेदस्त्रिभज्या कृते ॥
लब्धेर्मूलमिनापमस्य हि गुणस्तस्मादपि प्रोक्तवत् ।
तिग्मांशुर्विषुवात्प्रभाचरदलज्ञानादसौ जायते ॥

ब्रह्मगुप्तोक्तप्रकारसदृश एव श्रीपतिप्रकार । ब्रह्मगुप्तप्रकारश्च—

अर्काज्ञाने ज्ञाने विषुवच्छाया चरासूनाम् ।
इष्टचरार्धस्य ज्याक्षयवृद्धिज्या तदर्घ वधकृत्या ॥
त्रिज्या विषुवच्छाया वधवर्गो युतहृतश्छेद ।

व्यासार्धकृतेर्मूल क्रान्तिज्या व्यासदलगुणा भक्ता ।
जिनभागजीवया लब्धचापमर्क. पदैः प्राग्वत् ॥

$$\text{अथ } \frac{\text{चज्या}^2.१२^2.\text{त्रि}^2}{\text{त्रि}^2.\text{पभा}^2+१२^2.\text{चज्या}^2}=\text{य}^2=\frac{\text{चज्या}^2.१२^2}{\text{पभा}^2+\frac{१२^2.\text{चज्या}^2}{\text{त्रि}^2}}\text{—मूलेन}$$

$$\frac{\text{चज्या } १२}{\sqrt{\text{पभा}^2+\frac{१२^2.\text{चज्या}^2}{\text{त्रि}^2}}}=\text{य}$$ एतेन "चरज्यकाऽर्काभिहतिस्त्रिमौर्व्या भक्ता" इत्यादि भास्करोक्तं समुपद्यते ॥६॥

हि. भा.—चरखण्ड और अक्षांश जानकर रवि को जो लाते हैं तथा इष्टचरासु पर से पलभा लाते हैं और स्वपलभा से जो चरार्ध लाते हैं वह स्पष्टरूप से त्रिप्रश्नोक्तविधि को जानते है ॥२॥

यहा तीन प्रश्न हैं उनमे प्रथम प्रश्न के उत्तर ।

अक्षांशज्ञान से लम्बांशज्ञान होगा तब $\frac{\text{अज्या } १२}{\text{लज्या}}=\text{पभा}$,

क्रान्तिज्या का मान = य ।

तब $\frac{\text{पभा.य}}{१२}=\text{कुज्या}$ ∴ $\frac{\text{पभा}^2\text{ य}^2}{१२^2}=\text{कुज्या}^2$ । $\text{त्रि}^2-\text{य}^2=\text{द्यु}^2$ ∴ $\frac{\text{चज्या.द्यु}}{\text{त्रि}}=\text{कुज्या}$

∴ $\frac{\text{पभा}^2\text{ य}^2}{१२^2}=\frac{\text{चज्या}^2.\text{द्यु}^2}{\text{त्रि}^2}$ छेदगम करने से $\text{पभा}^2\text{ य}^2.\text{त्रि}^2=\text{चज्या}^2.\text{द्यु}^2.१२^2$

$$=\text{चज्या}^2.१२^2(\text{त्रि}^2-\text{य}^2)$$
$$=\text{चज्या}^2\ १२^2\ \text{त्रि}^2-\text{चज्या}^2.१२^2.\text{य}^2=\text{पभा}^2.\text{य}^2.\text{त्रि}^2$$

समयोजन से

$$\text{चज्या}^2.१२^2\ \text{त्रि}^2=\text{पभा}^2\text{ य}^2\text{ त्रि}^2+\text{चज्या}^2.१२^2.\text{य}^2=\text{य}^2(\text{पभा}^2.\text{त्रि}^2+\text{चज्या}^2.१२^2)$$

$$\therefore \frac{\text{चज्या}^2.१२^2.\text{त्रि}^2}{\text{पभा}^2.\text{त्रि}^2+\text{चज्या}^2\ १२^2}=\text{य}^2 \quad \cdots(१)$$

$$=\frac{\text{त्रि}^2}{\frac{\text{पभा}^2.\text{त्रि}^2+\text{चज्या}^2.१२^2}{\text{चज्या}^2.१२^2}}=\text{य}^2$$ मूल लेने से य मान होता है इस पर से रवि-ज्ञान सुगम ही है ॥

सिद्धान्तशेखर मे श्रीपति ने इसी तरह क्रान्तिज्ञान किया है । यथा—

"सूर्यघ्नी चरशिञ्जिनीहृतकृतिस्तद्युक्तभक्ता सती" इत्यादि ।

श्रीपति का यह प्रकार भी ब्रह्मगुप्तप्रकारसदृश ही है । जैसे ब्रह्मगुप्त प्रकार यह है—

"अक्षज्ञाने ज्ञाने विषुवच्छाया चरासूनाम्" । इत्यादि

(१) यहां हर और भाज्य में त्रि² भाग देने से $\dfrac{\text{चज्या}^2 \cdot १२^2}{\text{पभा}^2 + \dfrac{१२^2 \cdot \text{चज्या}^2}{\text{त्रि}}}$ मूल लेने से

$\dfrac{\text{चज्या } १२}{\sqrt{\text{पभा}^2 + \dfrac{१२^2 \cdot \text{चज्या}^2}{\text{त्रि}^2}}} = \text{य}$ इससे "चरज्यकार्काभिहतिस्त्रिमौर्व्या भक्ता"

इत्यादि भास्करोक्त उपपन्न होता है ।।१।।

इदानीं द्वितीयप्रश्नस्योत्तरार्थं विधिः ।

एकक्रान्तौ द्वयोर्देशयोश्चरे च, च' तथा द्वयोर्देशयोः पलभे पभा, पभा'

तदा $\dfrac{\text{पभा क्रांज्या त्रि}}{१२ \times \text{द्यु}} = \text{चज्या}$ । तथा $\dfrac{\text{पभा' क्रांज्या त्रि}}{१२ \cdot \text{द्यु}} = \text{च'ज्या}$

$\therefore \dfrac{\text{चज्या}}{\text{च'ज्या}} = \dfrac{\text{पभा}}{\text{पभा'}}$ उत्क्रमनिष्पत्त्या $\dfrac{\text{च'ज्या}}{\text{चज्या}} = \dfrac{\text{प'भा}}{\text{पभा}}$ अत्र यदि च = स्वदेशचर

च' = इष्टदेशचरम्

तदा $\dfrac{\text{पभा च'ज्या}}{\text{चज्या}} = \text{प'भा}$ यदि स्वदेशचरार्धज्यया स्वदेशीयपलभा लभ्यते

तदेष्टदेशचरार्धज्यया केति तदिष्टदेशपलभा भवत्येतद्विलोमेन स्वपलभा भवतीति ।

ब्रह्मगुप्तोक्तस्य "विषुवच्छायाभक्ता स्वचरार्धज्येष्ठयाऽन्यया गुणिता ।
लब्धस्य चापमिष्टच्छायायाश्चरदलप्राणाः" ।

अस्य प्रकारस्य वैपरीत्येनोपरिलिखितोपपत्ति सिद्धयति ।।

अथवा "स्वदेशजाक्षद्युतिरिष्टदेशचरार्धजीवा गुणिता विभक्ता ।
स्वपत्तनोद्भूतचरार्धमौर्व्या प्रजायतेऽसौ पलभाऽन्यदेशे ।।"

पूर्वप्रदर्शितोपपत्ति श्रीपरयुक्तश्लोकस्यैवोपपत्तिर्बोध्येति ।।६।।

द्वितीय प्रश्न के उत्तर के लिये विचार ।

एक क्रान्ति में दो देशों के चर = च, च' दोनों देशों की पलभा पभा, प'भा

तब $\dfrac{\text{पभा.क्रांज्या त्रि}}{१२ \text{ द्यु}} = \text{चज्या}$ । $\dfrac{\text{पभा' क्रांज्या त्रि}}{१२ \cdot \text{द्यु}} = \text{च'ज्या} \therefore \dfrac{\text{च'ज्या}}{\text{चज्या}} = \dfrac{\text{पभा'}}{\text{पभा}}$

तब $\dfrac{\text{च'ज्या पभा}}{\text{चज्या}} = \text{पभा'}$ | यहां यदि च = स्वदेश चरार्ध
पभा = स्वदेश पलभा

तब सिद्ध हुआ कि स्वदेश चरार्धज्या में यदि स्वदेश पलभा पाते हैं तो इष्टदेश चरार्धज्या में क्या इष्टदेश की पलभा आती है । इसके विलोम क्रिया से स्वदेश पलभा होती है ।।

ब्रह्मगुप्तोक्त—"विषुवच्छाया भक्ता स्वचरार्धज्येष्ठयाऽन्यया गुणिता" । इत्यादि

इस प्रकार के उल्टी क्रिया से पूर्वोक्त उपपत्ति सिद्ध होती है ।

अथवा "स्वदेशजाक्षश्रुतिरिष्टदेशचरार्धजीवा गुणिता विभक्ता । इत्यादि

पूर्व प्रदर्शित उपपत्ति श्रीपति के इस श्लोक की उपपत्ति समझनी चाहिये ॥ ६ ॥

तृतीयप्रश्नोत्तरार्थं विधिः ।

पूर्वप्रदर्शितद्वितीयप्रश्नोपपत्तौ $\frac{\text{च'ज्या}}{\text{चज्या}} = \frac{\text{प'भा}}{\text{पभा}}$ सिद्धमस्ति तदा

$\frac{\text{पभा' चज्या}}{\text{च'ज्या}} = \text{पभा}$ । वा विलोमेन $\frac{\text{पभा च'ज्या}}{\text{चज्या}} = \text{च'ज्या}$ ।

सिद्धान्तशेखरे "अन्यदेशपरभा समाहता स्वीयपत्तन-चरार्ध-शिञ्जिनी ।
भाजिता पलभया स्वया ततश्चापमन्यविषये चरासवः ॥"

श्रीपतिनाऽनेन श्लोकेन स्पष्टमेव तृतीयप्रश्नोत्तरं कथ्यते यदुपपत्तिर्मया प्रदर्शितेति ॥ ६ ॥

तीसरे प्रश्न के उत्तर के लिए विधि ।

पूर्व प्रदर्शित द्वितीयप्रश्नोत्तरोपपत्ति में $\frac{\text{च'ज्या}}{\text{चज्या}} = \frac{\text{प'भा}}{\text{पभा}}$ यह स्वरूप सिद्ध है

तब $\frac{\text{पभा' चज्या}}{\text{च'ज्या}} = \text{पभा}$ । इसके विलोम से $\frac{\text{पभा च'ज्या}}{\text{चज्या}} = \text{च'ज्या}$

सिद्धान्तशेखर में "अन्यदेशपलभा समाहता स्वीयपत्तनचरार्धशिञ्जिनी । इत्यादि इस श्लोक से श्रीपति स्पष्ट ही तृतीय प्रश्न के उत्तर कहते हैं जिसकी उपपत्ति हमने दिखलाई है ॥ ६ ॥

इदानीमन्यप्रश्नानाह ।

स्वविषयोदयमन्तरा यो वेत्ति लग्नरविमध्यनाडिकाम् ।
उन्नतं नतमहर्दले कुजान्नुद्युतेर्दिनपतिं स तन्त्रवित् ॥७॥

वि भा.—यः स्वविषयोदयमन्तरा (स्वदेशीय राश्युदयैर्विना) लग्नरविमध्यनाडिकाम् (लग्नरव्योरन्तरघटिका वेत्ति (जानाति) स तन्त्रवित् (ज्योतिर्वित्) अस्तीति प्रथमः प्रश्नः । अहर्दले (मध्याह्ने) कुजात् (क्षितिजात्) उन्नतं (उन्नतांशमान) नतं (नतांशमान) च यो वेत्ति स तन्त्रविदस्तीति द्वितीयः प्रश्नः । नुः (शङ्कोः) द्युतेः (छायातः) दिनपतिं (सूर्यं) यो वेत्ति स तन्त्रविदिति तृतीयः प्रश्न इति ॥७॥

अथ प्रथमप्रश्नोत्तरं प्रदर्श्यते ।

रविलग्नयोश्चरार्धोपपत्तिं स्वाग्रावृत्तयोः प्रदर्श्य मृगकर्कादौ च तयोरन्तरयोगौ क्रियेते यतः प्रथमचतुर्थौ क्रान्तिवृत्तपादौ चरार्धरहितावुदयं गच्छतः । तथा

द्वितीयतृतीयपादौ चरार्धयुतावुदयं गच्छतः। रविलग्नयोश्च कालकलाः प्रथमे पदे तावत्य एव युज्यन्ते मेषादित्वाद्राशीना भोग्योत्पन्नत्वाद्राशिषट्ककलाभ्यो विशोधयितुं युज्यते। एवं कालगतौ रविलग्नभुक्ती भवत। अधिकत्वाच्च लग्नस्य ततो रविकलाः शोध्यन्ते तदा शेषाः कलास्तयोरन्तरासवः। यदि रविकलाभ्यो लग्नकलाः शोध्यन्ते तथापि रव्युदयाद्वैपरीत्येन काल उपपद्यते॥ अतः प्रश्नोतरसिद्धिर्जातेति ॥७॥

हि. भा.—अपने देश के राशियो के उदयमान के बिना रवि और लग्न के अन्तर घटी को जो जानता है वह ज्योतिषी है यह प्रथम प्रश्न है। क्षितिज से उन्नतांश और नतांश को मध्यान्हकाल मे जो जानता है वह ज्योतिषी है यह दूसरा प्रश्न है। तथा मध्यच्छाया से रवि को जो जानता है वह ज्योतिषी है यह तीसरा प्रश्न है॥

प्रथम प्रश्न का उत्तर।

रवि और लग्न की चरखण्डोपपत्ति अपनी अग्रावृत्त मे देखनी चाहिए मकरादि और कर्कादि केन्द्र मे उन दोनो के अन्तर और योग करते हैं क्योंकि क्रान्तिवृत्त के प्रथम और चतुर्थ पाद चरार्ध रहित होकर उदय को प्राप्त होते हैं और द्वितीय तथा तृतीय पाद चरार्धयुत होकर उदय को प्राप्त होते हैं। रवि और लग्न की कालकला उतनी ही युक्त है मेषादित्व से राशियो के भोग्योत्पन्नत्व के कारण छ राशिकलाओ मे घटाने के लिए युक्त है इस तरह कालगति रवि और लग्न की भुक्ति होती है। लग्न के अधिकत्व से उसमे रविकलाओं को घटाते हैं शेषकला उन दोनो की अन्तरासु होती है। यदि रविकला में लग्नकलाओ को घटाते हैं तो भी रवि के उदय से विपरीत क्रिया से काल होता है॥

अथ द्वितीयप्रश्नोत्तरार्थ विधि।

"पलावलम्बावपमेन सस्कृतौ नतोन्नते ते भवत" इत्यादिना तद्वासना स्पष्टैवास्तीति॥

द्वितीय प्रश्न के उत्तर के लिए विधि।

"पलावलम्बावपमेन सस्कृतौ नतोन्नते ते भवत" इत्यादि से नतोन्नत साधन की उपपत्ति स्पष्ट ही है॥

अत्र तृतीयप्रश्नोत्तरार्थमुच्यते।

मध्यच्छायाज्ञानेन $\sqrt{\text{छा}^2+१२^2}$ = छायाकर्ण ततः $\frac{\text{छाया.त्रि}}{\text{छायाक}}$ = दृग्ज्या, अस्याश्चापं नतांशा भवेयु। यद्युत्तरच्छायाग्रं तदा दक्षिणाः। यदि दक्षिणं तदोत्तरा। एवं दिनार्धे ये नतांशा भवन्ति ते यदि दक्षिणास्तदाऽक्षांशैर्वियुक्ता। यद्युत्तरास्तदाऽक्षांशैर्युताः सन्तः क्रान्त्यंशा भवन्ति ततो यदि जिनज्यया त्रिज्या लभ्यते तदा क्रान्तिज्यया किमित्यनुपातेन समागच्छन्ति रविभुजज्यास्तत्स्वरूपम् $\frac{\text{त्रि.क्राज्या}}{\text{जिज्या}}$ = रविभुजज्या एतच्चापं रविभुजांशा भवेयुरिति॥

परमथ रवि कस्मिन् पदे समागत इत्येतदर्थं विचार्यते ।

जिनाधिकाक्षांशदेशे प्रथमपदे तूत्तरोत्तर क्रान्तेरुपचयादक्षांशे तद्विशोधनेनोत्तरोत्तर नतांशा अल्पा भवन्ति । परन्तु तेऽक्षांशन्यूना अतएव "पलभाऽल्पिका छायाऽपचयिनी भवति" द्वितीयपदे क्रान्तेरुत्तरोत्तरमुपचयादुत्तरोत्तर नतांशा अधिका भवन्ति तेन तद्वशतश्छायाप्युत्तरोत्तरमुपचयिनी (वृद्धिमती) भवति किन्तु पलभाऽल्पा, यतो हि नतांशा अक्षांशाल्पा पदान्त यावद् भवन्ति । तृतीयपदे उत्तरोत्तर क्रान्तेरपचयात्तस्या अक्षांशस्य च योगकरणेन नतांशा भवन्ति ते चाक्षांशाधिका उत्तरोत्तरमधिकाश्च भवन्ति, पदान्त यावदेव स्थितिस्तेन तत्र पलभाऽधिका छायोत्तरोत्तर वृद्धिमती भवति । चतुर्थ पदे च क्रान्तेरुत्तरोत्तरमपचयत्वात्तस्या अक्षांशस्य च योगकरणेनोत्तरोत्तरमपचयीभूता अक्षांशाधिका नतांशा भवन्ति तेन छाया तत्रोत्तरोत्तर पलभाऽधिका क्षीयमाणा चेति ॥ जिनाऽल्पाक्षांश देशे तु पूर्ववदेव तृतीयचतुर्थ पदयो स्थिति । परन्तु जिनाधिकाक्षांशदेशे रवे खस्वस्तिकाद्दक्षिणे स्थितत्वात् । जिनाऽल्पाक्षांशदेशे खस्वस्तिकाद्भागद्वये रवेर्गतत्वात्तन्नियमेन न कार्यसिद्धि । तत्रापि क्रान्त्यंशाऽक्षांशयोस्तुल्यत्वे शून्यसमाछाया तदल्पे पूर्वं नियमानुसारस्थितिरेव । तथाऽक्षांशाधिकक्रान्तौ खस्वस्तिकयोरवेरुत्तरगतत्वात्तत्र प्रथमपदे उत्तरोत्तरमुत्तरनतांशवृद्धेर्दक्षिणाभिमुखी वृद्धिमती च छाया भवति । द्वितीयपदे क्रान्तेरपचयान्नतांशापचयत्व तेन तत्र दक्षिणाभिमुखी अपचयिनी छाया भवतीति ॥

सिद्धान्ततत्त्वविवेके कमलाकरेण पदज्ञानाय स्वप्रकारो लिखितस्तदुपपत्तिरेव मया लिखिता तत्प्रकारश्च—

आद्ये पदेऽपचयिनी पलभाऽल्पिका स्यात् छायाऽल्पिका भवति वृद्धिमती द्वितीये ।
छायाऽधिका भवति वृद्धिमती तृतीये तुर्ये पुन क्षयवती सदनल्पिका च ॥
वृद्धि व्रजन्ती यदि दक्षिणाग्रच्छाया तथापि प्रथम पद स्यात् ।
ह्रास प्रयान्तीमथ ता विलोक्य रवेर्विजानीहि पद द्वितीयम् ॥

सिद्धान्तशेखरे श्रीपतिकथितश्लोकद्वये सर्व कमलाकरोक्तसदृशमेव केवल "छायाऽधिका भवति वृद्धिमती तृतीये" इति स्थले "अक्षद्युते समधिकोपचिता तृतीये" इति भागे दृश्यते, प्रथमश्लोकेन जिनाऽधिकाक्षांशदेशे द्वितीयश्लोकेन जिनाऽल्पाक्षांशदेशे रविपदज्ञानार्थमुपायो वर्णित । एतदतिरिक्तं कस्याप्याचार्ये पदज्ञानाय नैवेदृशी व्यवस्था कुत्रापि लिखिता । पूर्वं सर्वे जानन्ति स्म यदेतत्कमलाकरोक्तमेवास्ति परन्तु सिद्धान्तशेखरे उपरिलिखित श्लोकद्वय दृष्ट्वा 'श्रीपत्युक्तप्रकार एव कमलाकरेण स्वग्रन्थे निवेशित अत्र न कोऽपि सन्देह कस्यापि मनसि भविष्यतीति ॥७॥

तृतीय प्रश्न व उत्तर के लिए विचार करते हैं ।

मध्यछाया ज्ञान से $\sqrt{\text{छा}^2 + १२^2}$ = छायाकर्ण तब $\frac{\text{छाया त्रि}}{\text{छायाक}}$ = दृग्ज्या, इसके चाप

करने से नताश होता है, छायाग्र के उत्तर रहने से दक्षिण नताश होता है, छायाग्र के दक्षिण रहने से उत्तर नताश होता है, इस तरह दिनार्ध में जो नताश होता है वह यदि दक्षिण है तो उसमें अक्षांश घटाने से क्रान्ति होती है, यदि नताश उत्तर है तो उसमें अक्षांश जोड़ने से क्रान्ति होती है तब अनुपात करते है कि यदि जिनज्या मे त्रिज्या पाते है तो क्रान्तिज्या में क्या इस अनुपात से रवि की भुजज्या आती है $\frac{\text{त्रि क्राज्या}}{\text{जिज्या}}$ = रवि भुजज्या, इसके चाप करने से रवि के भुजांश होते हैं। लेकिन यह रवि किस पद मे आये इसके लिए विचार करते हैं। जिनाधिकांश देश मे प्रथम पद मे उत्तरोत्तर क्रान्ति के बढ़ने के कारण अक्षांश मे उसको घटाने से शेष तुल्य नताश उत्तरोत्तर अल्प होता है। लेकिन वह अक्षांश से न्यून है इसलिए "पलभा से अल्पच्छाया अपचयिनी (ह्रासाभिमुख) होती है।

द्वितीयपद मे क्रान्ति के उत्तरोत्तर अधिक होने के कारण नताश उत्तरोत्तर अधिक होता है उसके वश से छाया भी उत्तरोत्तर उपचयिनी (वृद्धि की तरफ) होती हैं लेकिन वह छाया पलभा से अल्प है क्योकि पदान्त तक नताश अक्षांशाल्प होते है।

तृतीयपद मे उत्तरोत्तर क्रान्ति के उपचय (वृद्धि की तरफ) के कारण अक्षांश मे जोड़ने जो नताश होता है वह अक्षांशाधिक होता है और उत्तरोत्तर अधिक होता है। पदान्त तक ऐसी ही स्थिति रहती है इसलिए यहा छाया पलभा से अधिक और उत्तरोत्तर वृद्धिमती होती है।

चतुर्थ पद मे क्रान्ति के उत्तरोत्तर अपचयत्व से (क्षीयमाण होने से) अक्षांश के साथ योग करने से जो नताश होता है वह अक्षांश से अधिक होता है इसलिए वहा छाया उत्तरोत्तर क्षीयमाण और पलभा से अधिक होती है॥

जिनाऽल्पाक्षांश देश मे तृतीय और चतुर्थ पद की स्थिति पूर्ववद् ही होती है। लेकिन जिनाधिकाक्षांश देश मे रवि को खस्वस्तिक से दक्षिण दिशा मे रहने के कारण जिनाऽल्पाक्षांश देश मे खस्वस्तिक से दोनो तरफ रवि के जाने के कारण पूर्वोक्त नियम से कार्य सिद्धि नहीं होती है वहा भी क्रान्त्यंश और अक्षांश के तुल्य रहने से छाया शून्य होती है, अल्पता मे पहले नियम के अनुसार ही स्थिति होती है।

अक्षांशाधिक क्रान्ति मे खस्वस्तिक से रवि के उत्तर तरफ जाने के कारण वहा प्रथम पद मे उत्तर नताश के उत्तरोत्तर वृद्धि से दक्षिणाभिमुखो और वृद्धिमती छाया होती है। द्वितीय पद मे क्रान्ति के अपचय से नताश का भी अपचयत्व होता है इसलिए वहा दक्षिणाभिमुखी और अपचयिनी छाया होती है।

सिद्धान्ततत्त्वविवेक मे पदज्ञान के लिए अपने प्रकार लिखे हैं हमने उसकी उपपत्ति लिखी है। उनका प्रकार यह है—

आद्ये पदेऽपचयिनी पलभाऽल्पिका स्यात् छायाऽल्पिका भवति वृद्धिमती द्वितीये।
छायाऽधिका भवति वृद्धिमती तृतीये तुर्ये पुनः क्षयवती तदनल्पिका च ॥ इत्यादि।

सिद्धान्तशेखर मे श्रीपतिकथित श्लोकद्वय (दोनो श्लोकों) मे सब कुछ कमलाकर कथित के समान ही है केवल "छायाऽधिका भवति वृद्धिमती तृतीये" इस जगह "अक्षद्युते समधिकोपचिता तृतीये" यह पाठ देखते हैं, प्रथम श्लोक मे जिनाऽधिकाक्षांश देश मे द्वितीय श्लोक से "जिनाऽल्पाक्षांश देश मे" रवि पदज्ञान के लिए उपाय दिखलाया गया है। इनके अतिरिक्त कोई प्राचीनाचार्य ने पदज्ञान के लिए इस तरह की व्यवस्था कहीं नहीं लिखी है, पहले सब जानते थे जो कि यह प्रकार कमलाकर ही का है लेकिन सिद्धान्तशेखर में पूर्वोक्त श्लोकद्वय को देखकर "श्रीपति के लिखे हुए प्रकार ही कमलाकर अपने ग्रन्थ मे लिख दिये है" इसमे किसी के मन मे कुछ भी सन्देह नही होगा ॥७॥

इदानीमन्यप्रश्नानाह ।

बाहुकोटिदिवसार्धभाङ्गुलैरिष्टभालिखितमण्डले पुमान् ।
शंकु भाभ्रममवैति यो हि सोऽतीव प्रौढगणकोऽस्ति भाभ्रमे ॥८॥

वि भा —य पुमान् (पुरुष) इष्टभालिखितमण्डले (इष्टकालिकद्वादशाङ्गुलच्छायाङ्गुलप्रमाणेन कर्कटकेन दिङ्मध्यविन्दुतो लिखिते छायावृत्ते) बाहुकोटिदिवसार्धभाङ्गुलै (भुजकोटिदिनार्धच्छायाङ्गुलप्रमाणैः) शंकुभाभ्रम (शङ्कुभ्रममार्गं छायाभ्रममार्गं च जानाति) सो भाभ्रमे (छायाभ्रमणविषये) अतीव प्रौढगणक (अतीवनिष्णातज्योतिषिक) अस्तीति ॥ ८ ॥

अस्योत्तरार्थमुच्यते ।

पूर्वं छायाभ्रमरेखानिरूपणार्थं शङ्कुभ्रमरेखानिरूपणार्थं योपपत्तिरभिहिता तद्दर्शनेनैवैतदुत्तर स्फुट भवतीति ।

हि भा —जो मनुष्य इष्टकालिक द्वादशाङ्गुल शङ्कुच्छायाङ्गुल प्रमाण कर्कट से दिङ्मध्य विन्दु से बनाये हुए छायावृत्त मे भुजकोटि और मध्यच्छायाङ्गुलो से शङ्कुभ्रम मार्ग और छायाभ्रममार्ग को जानता है वह छायाभ्रम विषय मे अतिशय प्रौढ (निपुण) ज्योतिषी है ॥ ८ ॥

इसके उत्तर के लिए कहते हैं।

पहले छायाभ्रमरेखा निरूपण के लिए तथा शङ्कुभ्रमरेखा निरूपण के लिये जो उपपत्ति कही गई है उसके देखने ही से इन प्रश्नो के उत्तर स्पष्ट हैं ॥ ८ ॥

इदानीमन्यप्रश्नमाह ।

अभ्रवेदप्रमिता नतासवस्तिग्मगौ हि सममण्डलस्थिते ।
अक्षभा नवमिता किल यत्र ब्रूहि तत्र नियतं दिवाकरम् ॥९॥

वि भा —तिग्मगौ (सूर्ये) सममण्डलस्थिते (समवृत्तप्रवेशे) यत्राऽभ्रवेदप्रमिता (चत्वारिंशत्) नतासव । अक्षभा (पलभा) नव मितास्तत्र नियत (निश्चित) दिवाकर (सूर्यं) ब्रूहि (कथय) ॥ ९ ॥

एतदुत्तरार्थमुच्यत ।

अत्र समप्रवेशकालिक नतकालपलभयोर्ज्ञानेन रव्यानयनप्रकारार्थं प्रश्न इति । समप्रवेशे रवौ लम्बांशा कोटि । सममण्डलनतांशा भुज । सममण्डलद्युज्या चापांशा कर्णं इत्येभि कोटिभुजकर्णैरुत्पन्नचापीयजात्ये चापीयत्रिकोणमित्या—

$$\text{त्रि नकोज्या} = \text{स्पक्रा} \times \text{स्पल} = \frac{\text{त्रि क्राज्या}}{\text{द्यु}} \times \frac{\text{त्रि लज्या}}{\text{अज्या}}$$ अत्र भुज समुख कोण = नतकाल

$$\text{अत स्पक्रा} = \frac{\text{त्रि नकोज्या}}{\text{स्पल}} = \frac{\text{त्रि नकोज्या}}{\frac{\text{त्रि लज्या}}{\text{अज्या}}} = \frac{\text{त्रि नकोज्या अज्या}}{\text{त्रि लज्या}}$$

$$= \frac{\text{नकोज्या अज्या}}{\text{लज्या}} = \frac{\text{नकोज्या पभा}}{१२}$$ । यत $\frac{\text{अज्या}}{\text{लज्या}} = \frac{\text{पभा}}{१२}$ तत

$$\text{त्रि}^{२} + \text{स्प}^{२}\text{क्रा} = \text{छे}^{२}\text{क्रा} = \text{त्रि}^{२} + \frac{\text{नकोज्या}^{२}\,\text{पभा}^{२}}{१२^{२}} = \frac{\text{त्रि}^{२}\,१२^{२} + \text{नकोज्या}^{२}\,\text{पभा}^{२}}{१२^{२}}$$

$$\text{ततोऽनुपातेन क्रान्तिज्या}^{२} = \frac{\text{त्रि}^{२}\,\text{स्प}^{२}\text{क्रा}}{\text{छे क्रा}} =$$

$$= \frac{\frac{\text{त्रि}^{२}\,\text{नकोज्या}^{२}\,\text{पभा}}{१२^{२}}}{\frac{\text{त्रि}^{२}\,१२^{२} + \text{नकोज्या}^{२}\,\text{पभा}^{२}}{१२^{२}}} = \frac{\text{त्रि}^{२}\,\text{नकोज्या}^{२}\,\text{पभा}^{२}}{\text{त्रि}^{२}\,१२^{२} + \text{नकोज्या}^{२}\,\text{पभा}^{२}}$$ हरभाज्यौ (त्रि²)

भक्तौ तदा $\frac{\text{नकोज्या}^{२}\,\text{पभा}^{२}}{१२^{२} + \frac{\text{नकोज्या}^{२}\,\text{पभा}^{२}}{\text{त्रि}^{२}}} = \text{क्राज्या}^{२}$ (१) मूलेन

$$\frac{\text{नकोज्या पभा}}{\sqrt{१२^{२} + \frac{\text{नकोज्या पभा}}{\text{त्रि}^{२}}}} = \text{क्राज्या}$$ । तत $\frac{\text{त्रि क्राज्या}}{\text{जिज्या}} = \text{रभुज्या}$, अस्या-

श्चाप रवे भुजांशा भवेयु । एतेन तदा नतज्या त्रिभजीवयोरि त्यादि भास्करोक्त-मुपपद्यते ।

तथा (१) अनेन त्रिज्यादिनार्धसममण्डलान्तरासुज्ययो कृतिविशेष ।
स्वविषयविषुवच्छायावर्गेण गुणो द्विधा प्रथम ॥१॥
व्यासार्धवर्गभक्तो लब्ध द्वादशजवर्गसयुक्तम् ।
छेदो द्वितीयराशेर्लब्ध पद क्रान्तिरर्कोऽत ॥२॥

ब्रह्मगुप्तोक्तमित्युपपद्यते तथाऽस्यैव श्लोकान्तरमात्र श्रीपत्युक्तम् —
"समनरनतकालज्या त्रिमौर्वीकरण्योर्विवरमभिहत तद्वैषुवत्याश्च कृत्या

पृथगथ पदजीवा वर्गसभक्तमाद्य फलमिनहृतियुक्तं भाजक सोऽन्यराशेः ॥ फलस्य यत्पदं भवेदपक्रमस्य शिञ्जिनी । स्फुटं ततश्च पूर्ववत्प्रसाध्येद्दिवाकरम् ॥ इत्युपपद्यते ॥ ९ ॥

हि भा —सूर्य के सममण्डल में रहने से जहां पर चालीस नतकाल हैं, और पलभा नौ (९) है वहां सूर्य के प्रमाण कहो ॥९॥

इसके उत्तर के लिए विचार ।

यहां सम प्रवेशकाल में पलभा और नतकाल जानकर सूर्यानयन प्रकार के लिए प्रश्न है । रवि के सम प्रवेश म रहने से द्युज्याचाप, लम्बांशकोटि, नतांशभुज इन कर्णकोटि और भुज से जो चापीय त्रिभुज बनता है उसमें भुजसमुखकोण=नतकाल, तब चापीय त्रिकोण मिति से—

$$\text{त्रि नकोज्या}=\text{स्पक्रा}\times\text{स्पल} \qquad \frac{\text{त्रि नकोज्या}}{\text{स्पल}}=\text{स्पक्रा} \;\Big|\; \text{परन्तु } \frac{\text{त्रि लज्या}}{\text{अज्या}}=\text{स्पल}$$

$$\therefore \frac{\text{त्रि नकोज्या}}{\text{स्पल}}=\frac{\text{त्रि नकोज्या}}{\frac{\text{त्रि लज्या}}{\text{अज्या}}}=\frac{\text{नकोज्या अज्या}}{\text{लज्या}}=$$

$$\frac{\text{नकोज्या पभा}}{१२}=\text{स्पक्रा । तथा त्रि}^2+\text{स्प}^2\text{क्रा}=\text{छे}^2\text{क्रा}$$

$$\text{त्रि}^2+\frac{\text{नकोज्या}^2\text{ पभा}^2}{१२^2}=\text{छे}^2\text{क्रा}=\frac{\text{त्रि}^2\,१२^2+\text{नकोज्या}^2\text{ पभा}^2}{१२^2}$$

$$\text{अनुपात से } \frac{\text{त्रि}^2\text{ स्प}^2\text{क्रा}}{\text{छे}^2\text{क्रा}}=\text{क्रान्तिज्या}^2$$

$$=\frac{\text{त्रि}^2\text{ नकोज्या}^2\text{ पभा}^2}{\text{त्रि}^2\,१२^2+\text{नकोज्या}^2\text{ पभा}^2} \text{ हर और भाज्य को (त्रि}^2\text{) इससे भाग देने से}$$

$$\frac{\text{नकोज्या}^2\text{ पभा}^2}{१२^2+\frac{\text{नकोज्या}^2\text{ पभा}^2}{\text{त्रि}^2}}=\text{क्राज्या}^2 \quad (१) \text{ मूल लेने से क्रांतिज्या होती है}$$

इस पर से सूर्य ज्ञान सुलभ ही है ॥

(१) इससे "त्रिज्यादिनार्धसममण्डलान्तराद्युज्ययो कृतिविशेष ।" इत्यादि ।

यह ब्रह्मगुप्तोक्त उपपन्न होता है । इन्हीं के श्लोकान्तर रूप म श्रीपरयुक्त प्रकार है । जैसे—

"समनरनतकालज्या त्रिमौर्वीकरणोविवरमभिहत तद्दैपुवत्यास्च कृत्या ।" इत्यादि । इसीके सदृश 'तदानतज्या त्रिभजीवयोर्वत्" इत्यादि भास्करोक्त भी है ॥ ९ ॥

इदानीमन्यप्रश्नानाह ।

यत्र शून्यतुरगाः पलांशकाः नोदयं व्रजति तत्र भानुमान् ।
केन नोऽस्तमुपयाति नेहसा कीदृशश्च सविता निगद्यताम् ॥ १०॥

वि. भा.—यत्र देशे शून्यतुरगाः (सप्ततिः) पलांशकाः (अक्षांशाः) सन्ति तत्र भानुमान् (सूर्यः) न उदय व्रजति (उदय गच्छति) केन नेहसा (कालेन) अस्त न समुपयाति, तत्र सविता (सूर्यः) कीदृश इति कथ्यताम् ॥१०॥

अस्योत्तरार्थमुच्यते ।

यत्र देशेऽक्षज्या द्युज्या समा वा लम्बाशा. क्रान्तितुल्यास्तस्मिन् देशे. मेषादिषु—कर्कादिषु च त्रिषु राशिषु सूर्यो नास्त गच्छत्यर्थादितावधिपर्यन्त सर्वदैव दृश्य एव तिष्ठति । तथा वृश्चिकादिषु—मकरादिषु च त्रिषु राशिषु नोदयति, यदा मेषादिगतस्य रवेः क्रान्तिज्या तुल्या लम्बज्या भवेयुस्तदा यो मध्यमार्कस्तथा कर्कादिगतस्य रवेर्यदा क्रान्तिज्या तुल्या लम्बज्यास्तदा यो मध्यमार्कस्तयोरन्तरे याः कलास्ता रविमध्यमगतिभक्तास्तदा दिनानि भवन्ति तावद्दिनपर्यन्तमुत्तरक्रान्तेर्लम्बांशाधिकत्वाद्रवेरनस्तमयः । दक्षिणक्रान्तेर्लम्बाशाधिकत्वात्तत्र तावद्दिनपर्यन्त रवेरनुदय इति ॥ १० ॥

यत्र देशे षट्षष्टि ६६ वा भागाधिका अक्षाशास्तत्र यावत्काल रवेरुत्तरा क्रान्तिर्लम्बाशाधिका भवति तावत्काल सर्वदादिनमेव । दक्षिणक्रान्तिर्यावत्काल लम्बाशाधिका तावत्सर्वदा रात्रिरेव भवेत् अनुदयानस्तमययो रव्योरन्तराद्रविमध्यमगत्याऽनुपातेन तदन्तरदिनानयन सुलभमेवेति ॥१०॥

हि. भा.—जिस देश मे अक्षाश सत्तर है वहा सूर्य नही उदित होते हैं और कितने समय मे सूर्य अनस्तमय होते हैं । और वहा सूर्य किस तरह के है सो कहो ॥१०॥

इसके उत्तर के लिए विचार ।

जिस देश मे अक्षज्या और द्युज्या बराबर है या लम्बाश और क्रान्ति बराबर है उस देश मे मेषादि तीन राशियो में और कर्कादि तीन राशियो मे सूर्य अस्तगत नही होते हैं अर्थात् इस अवधि मे रवि बराबर दृश्य ही होते है । तथा वृश्चिकादि तीन राशियो मे और मकरादि तीन राशियों मे रवि उदित नही होते हैं । जब मेषादिगत रवि की क्रान्तिज्या तुल्य लम्बज्या होगी तब जो मध्यम रवि होगे तथा कर्कादि गत रवि की क्रान्तिज्या तुल्य लम्बज्या जब हो तब जो मध्यम रवि होगे उन दोनो मध्यम रवियो के अन्तर मे जो कला है उनमे रवि मध्यमगति से भाग देने से दिन होते हैं उतने दिन तक उत्तर क्रान्ति के लम्बाशाधिक होने के कारण रवि के अनस्तमय होता है । दक्षिण क्रान्ति के लम्बाशाधिक होने के कारण उतने दिन रवि के अनुदय होता है ॥

वा जिस देश मे ६६ अंश से अधिक अक्षाश है उस देश मे जब तक रवि की उत्तरा-

क्रान्ति लम्बांशाधिक होती है तावत्कालपर्यन्त बराबर दिन होता है, दक्षिणक्रान्ति जब तक लम्बांशाधिक होती है तावत्कालपर्यन्त बराबर रात्रि ही होती है। अनुदय अनस्तम रवि के अन्तर से तथा रविमध्यम गति से अनुपात द्वारा उन दोनों के अन्तर सम्बन्धिदिनानयन बहुत सुलभ ही से होता है ॥१०॥

अथान्य प्रश्नमाह।

षट्कृति ३६ पललवा समवृत्ते तिग्मगोविषयवर्गमिता भा।
यत्र तत्र नलनीवनबन्धु ब्रूहि तेऽत्र यदि कौशलमस्ति ॥११॥

वि भा—यत्र देशे षट्कृति (षट्त्रिंशत्) पललवा (अक्षांशा) सन्ति, तिग्मगो (सूर्ये) समवृत्ते (सममण्डल प्रवेशे) विषयवर्ग २५ ममिता (पञ्चवर्गतुल्या) भा (छाया) अस्ति तत्र नलनीवनबन्धु (सूर्यं) ब्रूहि (कथय) यदि ते (तव) अत्र गणिते कौशलमस्ति (नैपुण्यमस्ति) तदा कथयेति ॥११॥

एतदुत्तरार्थमुच्यते।

यद्यप्यस्य प्रश्नस्योत्तरं मया पूर्वं लिखितं तथापि पुनर्लिख्यते। सममण्डलच्छाया ज्ञाताऽस्ति तदा $\sqrt{छा + १२^२}$ = समकर्णः। ततः $\frac{१२ \times त्रि}{सक}$ = समशंकु। तदा त्रिज्ययाऽक्षज्या लभ्यते तदा समशंकुना केत्यनुपातेन समागता क्रान्तिज्या तत्स्वरूपम् = $\frac{अक्षज्या सशं}{त्रि}$ अत्र समशङ्कोरुत्थापनेन $\frac{अज्या १२ त्रि}{सक त्रि} = \frac{अज्या १२}{सक}$ = क्रान्तिज्या। ततः $\frac{त्रि क्राज्या}{जिज्या}$ = रविभुज्या अस्याश्चापं रविभुजांशा भवेयुरिति ॥११॥

हि भा—जिस देश में छत्तीस अक्षांश हैं सूर्य के सममण्डल में रहने से पच्चीस छाया होती है तब सूर्य के प्रमाण को कहो यदि इस गणित में तुम्हें निपुणता है तो कहो ॥११॥

इसके उत्तर के लिए विचार करते हैं।

यद्यपि इस प्रश्न के उत्तर हम पहले एक जगह लिख चुके हैं तथापि यहां लिखते हैं। यहां सममण्डलच्छाया विदित है तब $\sqrt{छा^२ + १२^२}$ = समकर्ण तब $\frac{१२ \times त्रि}{सक}$ = समशंकु। त्रिज्या में यदि अक्षज्या पाते हैं तो समशंकु में क्या इस अनुपात से क्रान्तिज्या आती है, $\frac{अज्या सशं}{त्रि}$ = क्रान्तिज्या यहां समशंकु का उत्थापन देने से $\frac{अज्या १२ त्रि}{सक त्रि}$ = $\frac{अज्या १२}{सक}$ = क्राज्या इससे $\frac{त्रि क्राज्या}{जिज्या}$ = रविभुज्या, इसके चाप करने से रवि के भुजांश होते हैं ॥११॥

इदानीमन्यं प्रश्नमाह ।

यत्र वेददहना पलांशकास्तिग्मगौ च मिथुनान्तसंस्थिते ।
वह्निपूर्वदिशि मध्यगे तथा तत्र शंकुमिति मुच्यतां बुधाः ॥१२॥

वि. भा.—यत्र देशे वेददहनाः (चतुस्त्रिंशत्) पलांशकाः (अक्षांशाः) सन्ति; वह्निपूर्वदिशि मध्यगे (आग्नेयपूर्वदिशोर्मध्ये) मिथुनान्तसंस्थिते तिग्मगौ (मिथुनान्तस्थिते सूर्ये) सति तत्र देशे हे बुधाः शंकुमिति (शंकुमानं) उच्यतामिति ॥ १२ ॥

एतदुत्तरार्थमुच्यते ।

अत्राक्षांशज्ञानेन सूर्ये आग्नेयपूर्वदिशोर्मध्ये मिथुनान्तस्थिते तदीयः शंकुः (कोणशंकुः) को भवतीति विचारार्थम् अक्षांशज्ञानेन पलभाज्ञानं तथा रविर्मिथुनान्तेऽस्ति तेन तत्क्रान्तिः=जिनांशाः ततो $\frac{\text{त्रि.जिज्या}}{\text{लज्या}}$ = अग्रा । तदाऽग्रापलभयोर्ज्ञानेन "त्रिज्याकृतिदलमग्राकृतिवियुगि" त्यादिना सुखेन विदिक्कोणशंकुज्ञानं भवेदेव ॥ १२ ॥

हि. भा.—जिस देश में चौंतीस अक्षांश है और आग्नेय तथा पूर्वदिशा के मध्य में मिथुनान्त में रवि के रहने पर उस देश में शंकुमान (कोणशंकु) को कहो ॥ १२ ॥

इसके उत्तर के लिए विचार करते हैं ।

यहां अक्षांश ज्ञान से तथा आग्नेय और पूर्व दिशाओं के मध्य में मिथुनान्त में रवि के रहने से शंकु (कोणशंकु) मान क्या होता है इसके विचार के लिये अक्षांशज्ञान से पलभा का ज्ञान होगा, रवि मिथुनान्त में है इसलिए क्रान्तिज्या = जिनज्या तब $\frac{\text{त्रि क्राज्या}}{\text{लज्या}}$ = अग्रा

इस तरह अग्रा के ज्ञान होने से "कोणशंक्वानयनविधि" द्वारा कोणशङ्कु ज्ञान होजायगा ॥ १२ ॥

इदानीमन्यं प्रश्नमाह ।

वल्लकीभृदवसानमागतः कुङ्कुमारुणरुचिर्गभस्तिमान् ।
नाऽस्तमेति पलशिञ्जिनीं जनाः कीर्त्तयन्ति कियतीं वदाचिरात् ॥ १३ ॥

वि. भा.—कुङ्कुमारुणरुचि (कुङ्कुमसदृशरक्तकान्तिः) गभस्तिमान् (सूर्यः) वल्लकीभृदवसानं (वल्लकीं वीणां बिभर्ति धारयति वल्लकीभृद्धनुस्तदवसानमन्तं) आगतः, नास्तमेत्यर्थाद्धनुरन्तमागतः सूर्यो नास्तं गच्छति, तत्र जनाः (लोकाः) कियतीं पलशिञ्जिनीं (अक्षज्या) कीर्त्तयन्ति (गायन्ति) इत्यचिरात् (शीघ्रं) वद (कथय) अर्थात्सूर्यः धनुरन्तं प्राप्तो नास्तं गच्छति स कीदृशो देशस्तदक्षांशमानं कथयेति प्रश्नः ॥ १३ ॥

अत्रोपपत्ति ।

धनुरन्तक्रान्ति =२४°, एतत्तुल्यलम्बांशेऽक्षांशा =६६°, एतस्मादधिकेऽक्षांशेऽर्थाद्धनुरन्तक्रान्तितोऽल्पे लम्बांशे धनुमकरौ सर्वदाऽदृश्यावेव भवत । लम्बाधिका क्रान्तिरुदक् च यावत्तावद्दिन सन्ततमेव तत्र। यावच्च याम्या सतत तमिस्रा इत्याद्युक्तेर्याम्यगोलीयधनुरन्तक्रान्तेर्लम्बांशस्याल्पत्वात्सर्वदा तददृश्यता भवेदेव तत्राक्षांशमान शट्षष्टितोऽधिकमिति दिक् ॥ १३ ॥

इति वटेश्वरसिद्धान्ते त्रिप्रश्नाधिकारे स्फुट- प्रश्नाध्याय पञ्चदश ।

इति आनन्दपुरीय भट्टमहदत्तसुतवटेश्वराचार्यविरचिते वटेश्वरसिद्धान्ते त्रिप्रश्नाधिकारस्तृतीयोऽधिकार समाप्तिमगमदिति ।

हि भा —कुङ्कुम की तरह लाल कान्ति वाले सूर्य वल्लकीभृत् (धनु) उसके अन्त (धनुरन्त) मे आकर अस्तगत नही होते हैं जिस देश मे यह स्थिति होती है उस देश के अक्षांश को कहो ॥ १३ ॥

उपपत्ति

धनुरन्तक्रान्ति = २४, इतने लम्बांश देश म अक्षांश =६६°, इससे अधिक अक्षांश मे अर्थात् धनुरन्तक्रान्ति से अल्पलम्बांश मे धनु और मकर सर्वदा अदृश्य ही रहते हैं "लम्बाधिका क्रान्तिरुदक् च यावत्तावद्दिन सन्ततमेव तत्र। यावच्च याम्य सतत तमिस्रा" इस उक्ति से दक्षिण गोलीय धनुरन्तक्रान्ति को लम्बांशाधिक होने से सर्वदा उसकी अदृश्यता होती है वहा अक्षांश मान ६६ छियासठ अंश से अधिक होता है। इति ॥ १३ ॥

इति वटेश्वरसिद्धान्त मे त्रिप्रश्नाधिकार मे स्फुटप्रश्नाध्यायविधि नामक पन्द्रहवा अध्याय समाप्त हुआ ॥

इति आनन्दपुरीय भट्ट महदत्त के पुत्र वटेश्वराचार्य विरचित वटेश्वरसिद्धान्त म त्रिप्रश्नाधिकार नामक तृतीय अधिकार समाप्त हुआ ॥